बृहज्जातकम्

भाषा टीका

प्रकाशक

ज्योतिष प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१००१

फोन नं. - [illegible]

[illegible] [illegible]

ॐ

"श्री"

।।श्रीः।।

दैवज्ञ-वराहमिहिराचार्य-विरचितं

बृहज्जातकम्

सोदाहरणोपपत्तिकसारार्थदीपिकाख्यया
हिन्दीव्याख्यया संवलितम्
भट्टोत्पलीय-संस्कृत-विवृत्त्या विलसितम्

विंशोत्तरीमहादशायामन्तर्दशादिचक्रम्-
नवांशदशावर्ष-अन्तर्दशादिचक्रेण विभूषितम्-
विशिष्ट परिशिष्टभागेन च समलङ्कृतम्

टीकाकार व सम्पादक
वाराणसेय-संस्कृतविश्वविद्यालयीयसम्मानितप्राध्यापक-
त्रिस्कन्धज्यौतिषाचार्यः
पं० श्रीसीताराम झा

प्रकाशकः-
ज्योतिष प्रकाशन
चौक, वाराणसी–२२१००१
फोन ३२०४०२

पुस्तक मिलने का पता
ठाकुर प्रसाद बुकसेलर
चौक, वाराणसी-२२१००१

सन् २००१] [मूल्य १५०)- रूपये

प्रकाशक:-
ज्योतिष प्रकाशन
चौक, वाराणसी-२२१००१

राशिस्वरूप तथा राश्यधिपति चक्र



फोटो कम्पोजिंग:
ज्योतिष प्रकाशन
चौक, वाराणसी

मुद्रक :

बृहज्जातकस्य विषयानुक्रमणिका

--*इति*--

प्राक्कथन-

समस्त विद्याओं को 'वेद' कहते हैं, जो छः भागों में विभक्त करके 'वेदाङ्ग' माने जाते हैं। उनमें 'ज्यौतिष,' नेत्ररूप है, यथा महर्षि नारद-

सिद्धान्त-संहिता-होरा-रूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् ।।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति ।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।।'

ज्यौतिष के 'गणित' और 'फलित' दो भाग हैं। गणित को निश्चयात्मक होने के कारण 'सिद्धान्त' कहते हैं, यथा सूर्य-सिद्धान्त आदि। फलित को अनुमान बल पर कहे जाने के कारण 'सम्भावनात्मक' कहा गया है। उसके दो भाग हैं, जिसमें सामूहिक फल कहे गये हैं, उसको 'संहिता' और जिसमें वैयक्तिक [प्रत्येक मानव अथवा प्राणियों के अपने-अपने जन्म-लग्न (होरा) से भिन्न-भिन्न] जीवन-फल कहे गये हैं वह 'होरा' अथवा 'जातक स्कन्ध' कहा जाता है। मानव समाज को सामूहिक फल समझने की उतनी अभिरुचि नहीं रहती है, जितनी अपने जीवन के शुभाशुभ भविष्य-फल जानने की। अधुना पाश्चात्य वैज्ञानिकजन भी भारतीय फलित ज्यौतिष का अनुसन्धान करके निश्चित विश्वास कर चुके हैं कि पृथ्वी पर होनेवाली शुभ किंवा अशुभ (सुभिक्ष अथवा दुर्भिक्ष) समस्त घटनाएँ आकाशस्थ ग्रहों और नक्षत्रों के परस्पर किरण-सम्पर्क से ही होती हैं। ग्रह और नक्षत्र प्रकाशवान् होने के कारण 'ज्यौतिष' कहे जाते हैं। कोशकारों ने कहा है- *'ज्योतिर्ब्रह्मणि विश्वेशे नक्षत्रग्रहमण्डले।'* तत्सम्बन्धी विचार को 'ज्यौतिष' कहते हैं।

ज्यौतिषशास्त्र का प्रयोजन-

शुभाशुभफलादेशो ज्योतिःशास्त्र- प्रयोजनम् ।
स च लग्न-बलाधीनः कथितः पूर्वसुरिभिः ।।
भ-चक्रस्य समा भागा उक्ता द्वादश राशयः ।
राशीनामुदयो लग्नं ते तु मेष-वृषादयः ।।' स्पष्टार्थ।

प्राणियों के जन्म समय में उदय-क्षितिज में जो राशि (नक्षत्र-ग्रह-समूह) लगा रहती है उसे 'लग्न' कहते हैं। इसका विस्तृत वर्णन 'सोदाहरण लग्नविवेक' नामक पुस्तक में देखिये। यहाँ हम ऋषियों द्वारा वर्णित (प्राणियों के जीवन-फल रूप) 'जातक शास्त्र' का ही संक्षिप्त वर्णन करते हैं। शास्त्रों-पुराणों में उन्हीं को 'ऋषि पद' दिया गया है, जिनका उपदेश-वचन निश्चित रूप से सत्य हो और जो स्वयं विषय-ज्ञान में निःसन्देह हों। जैसे पूर्व समय में नारद, वसिष्ठ आदि एवं कलियुगादि में पराशर। इन सबके वचन प्रायः सत्य ही हुआ करते थे, अतः इनके उपदेशों को लोग 'शास्त्र' मानते हैं और उनपर विश्वास करते हैं। किन्तु विज्ञजनों के मत से विश्वास करने योग्य शास्त्र वही है, जो 'प्रमाणसङ्गत' हो। प्रमाण तीन है- शब्द, अनुमान और प्रत्यक्ष। जहाँ केवल 'शब्द' 'आगम अथवा आप्त-पुरुष, वचन) प्रमाण हैं, उस पर विश्वास करने वाले 'आस्तिक', अन्यथा नास्तिक' माने जाते हैं। कहा भी है-

'यान्यप्रत्यक्षशास्त्राणि विवादस्तत्र केवलः ।
प्रत्यक्षं ज्यौतिषं यत्र प्रमाणं तारकाग्रहाः ।।

प्रत्यक्ष होने पर ही किसी प्रमाण पर विश्वास होता है। अब शब्द प्रमाण के सम्बन्ध में सुनिये। यथा- *'काश्यां मरणान्मुक्तिः।' 'कोटिजन्मार्जितं पापं गङ्गास्नानात् प्रणश्यति।'*

इसे कोई प्रत्यक्ष नहीं दिखला सकता या देख सकता है। ज्यौतिष शास्त्र में ऋषि-वचन भी प्रत्यक्ष से विरुद्ध हो तो अमान्य समझा जाता है। यथा कमलाकर-

'युयुक्ता न मुन्युक्तरप्यत्र शास्त्रे भवेत् कार्यवर्यस्य या दृग्विरुद्धा।'

पराशर के अनन्तर राजा विक्रम के सभासद वराहमिहिर ने ऋषिप्रणीत जातक ग्रन्थों के विषय को स्व-निर्मित अनेक छन्दों में रचना करके इसका नाम 'होराशास्त्र' रखा। किन्तु उसको कुछ विस्तृत जानकर, इसमें वर्णित समस्त विषयों को संक्षेप में छोटा बनाकर लिखा, जिसकी अवतरणिका के वाक्य ये हैं-

'होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि ।
यत् तस्याप्यार्याभिः सारमहं संप्रवक्ष्यामि ।।'

छोटा होने के कारण जिसका नाम 'स्वल्पजातक' और पूर्वरचित होराशास्त्र का नाम लोगों ने 'बृहज्जातक' रखा। ऋषि से इतर आचार्यों द्वारा प्रणीत जातक ग्रन्थों में यही (बृहज्जातक) श्रेष्ठ माना जाता है। मानव धर्मवश वराहमिहिर को ऋषिप्रणीत वचनों के अर्थ में कहीं-कहीं भ्रम और सन्देह हुआ। जैसे वियोनिजन्माध्याय' में मुनियों ने मानवी के गर्भ में वियोनि (मनुष्येतर पशु-पक्षी की आकृति, कहीं तरु-गुल्म) का जन्म देखकर उन-उन योगों का उल्लेख किया। एवं 'आकृति योगाध्याय' में वज्र, यव आदि योगों में सन्देह हुआ तो ऋषियों पर आक्षेप वचन लिखा-

''पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।
चतुर्थे भवनेसूर्याज्ज्ञ-सितौभवतः कथम्? ।।'' इत्यादि

फिर भी, अन्य जातक ग्रन्थों से यह बहुत अंश में श्रेष्ठ है। हमने इसका समाधान अपनी हिन्दी व्याख्या में संयुक्तिकर दिया है। यद्यपि इसकी संस्कृत टीका 'भट्ट उत्पल' ने कर दी है, तथापि उनको भी भ्रान्तिस्थल में भ्रान्ति बनी ही रही। इतना होने पर भी संस्कृतज्ञों के लिए वह अतीव उपयुक्त है। सकल साधारण जन के बोधार्थ 'सारार्थदीपिकाख्या' हिन्दी व्याख्या भी मैंने कर दी है। मुझे विश्वास है कि इस व्याख्या से समस्त जनता को अवश्य लाभ पहुँचेगा। अन्त में, इस टीका के सम्पादन में उदाहरण, गणित एवं प्रूफ-संशोधन में पं० जुहारीलाल विश्वम्भर, वेद-ज्यौतिषाचार्य, अर्जुन झा 'पथिक' बी० ए०, ज्यौतिषाचार्य एवं मन्नालाल अभिमन्यु, एम० ए० ने सहयोग दिया। अत; इन तीनों व्यक्तियों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हुआ मानव-धर्मवश अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

वाराणसी, गुरुवार विनीत–
सम्वत् २०३१ चैत्र शुक्ल ५] *सीताराम झा*

दैवज्ञवरवराहमिहिराचार्यविरचितं

बृहज्जातकम्

भट्टोत्पलसंस्कृतव्याख्यया सारार्थदीपिका हिन्दी व्याख्यया चोपेतम्

* * *

दैवज्ञभट्टोत्पलकृत मङ्गलाचरणपूर्वक वस्तुनिर्देश-

ब्रह्माजशङ्कररवीन्दुकुजज्ञजीव-
शुक्रार्कपुत्रगणनाथगुरून्प्रणम्य ।
यः सङ्ग्रहोऽर्कवरलाभविशुद्धबुद्धै-
रावन्तिकस्य तमहं विवृणोमि कृत्स्नम् ॥१॥

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषां
तस्योच्छित्तिभयात्पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम् ।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-
दित्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते ॥२॥

वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले
ग्रहर्क्षगणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले ।
भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धास्ततः
करोमि विवृतिप्लवं निजधियाहमत्रोत्पलः ॥३॥

इह शास्त्रे कानि सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युयन्ते। वाच्य-वाचकलक्षणः सम्बन्धः वाच्योऽर्थो वाचकः शब्दः। अथवोपायोपेयलक्षणः संबंधः उपायस्त्विदं शास्त्रमुपेयो यद्विज्ञानम्। अथवा आब्रह्मादिविनिः-सृतमिदं वेदांगमिति सम्बन्धः। राशिस्वरूपहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभाग-त्रिंशद्भागपरिज्ञानग्रहस्वरूपग्रहराशिबलाबलवियोनिजन्माधानपरिज्ञान-जन्मकालविस्मापनप्रभावकथनारिष्टायुर्दायदशांतर्दशाष्टकवर्गकर्माजीव-राजयोगनाभसयोगचंद्रयोगद्विग्रहादियोगप्रव्रज्याराशिशीलदृष्टिफल-भावफलाश्रयप्रकीर्णानिष्टयोगस्त्रीजातकनिर्याणिनष्टजातकद्रेष्काणगुण-रूपमभिधेयम्। लोकानां प्राक्कर्मविपाकव्यंजकत्वं प्रयोजनम्। सत्पात्रशुभा-शुभकथनादिहलोकपरलोकसिद्धिरिति प्रयोजनम्। किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते। यस्मान्नृणां श्रोतॄणां संबन्धाभिधेयप्रयोजनकथनाच्छास्त्रविषये श्रद्धा जायत इति। तथा चोक्तमत्रार्थे 'सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबंधकथनाद्यतः। तस्मा-त्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते॥ किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु

केनचित्। यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत्॥ सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत्प्रयोजनं नोक्तंतावत्तत्केन गृह्यते॥' इति। कस्यास्मिञ्छास्त्रेऽधिकार इत्यत्रोच्यन्ते। द्विजस्यैव। यतस्तेन षडंगो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च। कान्यङ्गानीत्युच्यन्ते- *'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः। छन्दसां लक्षणं चैव षडंगो वेद उच्यते॥'* इति। तथा चोक्तमंगे 'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः। यस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेदयज्ञान्॥' इति। ज्योतिःशास्त्रंवेदांगमेव। ननुकुतोज्योतिःशास्त्रस्यवेदांगत्वमुक्तम्। तदुच्यते। चन्द्रसूर्योपरागसंक्रान्तिव्यतीपातवैधृतगजच्छायैकादश्यमावस्यादिपुण्य-कालकथनात् यज्ञानां कालव्यंजकत्वात् अन्येषां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तानां कर्मणां कालकथनाच्चास्य वेदांगत्वमेव। तथा च भास्करसिद्धांते- "वेदा-स्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण। शास्त्रादस्मात्कालबोधो यतः स्याद्वेदांगत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्। शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ। या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चांगमध्येऽस्य तेनोच्यते। संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषांगेन हीनो न किञ्चिन्नरः॥ तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम्। यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थमोक्षाँल्लभते यशश्च।" सतामयमाचारोयच्छास्त्रप्रारम्भे ष्वभिमतदेवतायाः प्रासादा त्तन्नमस्कारेण तत्स्तुत्या तद्भक्तिविशेषेण चाभिप्रेतार्थसिद्धिं वाञ्छति। तदयमप्या-वन्तिकाचार्यः श्रीवराहमिहिरनामा द्विजोऽर्कात्लब्धवरप्रसादो ज्योतिः शास्त्रसंग्रहकृद्गणितस्कंधादनन्तरं होरास्कंधं चिकीर्षुरशेषविघ्नो पशांत्यर्थं भगवतः सूर्यादात्मगामिनीं वाक्सिद्धिं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना-
मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजतां भर्तामरज्योतिषाम्।
लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुश्चानेकधा यः श्रुतौ
वाचं नः स ददात्वनेककिरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः॥१॥

मूर्तित्वे इति॥ स रविर्भगवानादित्यो नोऽस्मभ्यं वाचं गिरं ददातु प्रय-च्छतु। कीदृशो रविः? अनेककिरणः न एकः किरणो यस्यासावनेककिरणः प्रभूतरश्मिः।सहस्ररश्मिरित्यर्थः।पुनः किंभूतः? त्रैलोक्यदीपः त्रयो लोका स्त्रैलोक्यं भूर्भुवःस्वराख्यं तत्र दीपः प्रकाश्यसाधर्म्यात्। तथा मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतः शशं प्राणिविशेषं बिभर्त्ति धारयतीति शशभृच्चं-

द्रमास्तस्य मूर्तित्वे शरीरत्वे परिकल्पितः। 'शशिनो मूर्तिरादित्यः' इति पर्यवस्थापितः यतो जलमयश्चन्द्रः प्रकाशशून्यः प्रोक्तः तस्मिंस्तरणिकिरण-प्रतिफलनादितरस्य ज्योत्स्नाप्रसरविस्तरः। यस्मादुक्तमाचार्येणैव बृहत् संहितायाम् 'नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम्। स्वच्छाय-यान्यदसितं कुंभस्येवातपस्थस्य।त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलंबते यथा शौक्ल्यम्। दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः। सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम्। क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मंदिरस्यांतः।' इति। तथा च भास्करसिद्धान्ते। 'तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिंडो दिनकरादिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति। तदितरदिशि बाला-कुंतलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययेवातपस्थः।' इति। तथा च वेदे। "सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः" इति। अथवा शशिभृतो महादेवस्य मूर्तित्वे परिकल्पितः। यतोऽसौ भगवानष्टमूर्तिः 'क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याख्या' इत्यष्टमूर्तयस्तस्य महादेवस्यातो माहेश्वरी मूर्तिरादित्य इति। शशिभृत इति साधुपाठः। तथा वर्त्माऽपुनर्जन्मनां न पुनर्जन्म विद्यते येषां तेऽपुनर्जन्मानो मुक्तास्तेषां वर्त्म मार्गः मोक्षद्वारमित्यर्थः। यतो द्विविधो मार्गः देवयानाख्यः पितृयाणाख्यश्च। तत्र पितृयाणमार्ग-द्वारभूतश्चंद्रमाः येन स्वर्गगामिनः स्वर्गं गच्छन्ति। मोक्षद्वारं सूर्यः। यतः सूर्य- मंडलं भित्त्वा मोक्षभाजो भवन्ति मोक्षद्वारं गच्छन्तीति। तथा च श्री भारते भगवान्व्यासः। 'स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपम्।' इति। आत्मे-त्यात्मविदाम् आत्मानं विदंति जानंतीत्यात्मविदो योगिनस्तेषां स एवात्मा चित्तत्वम्। तेजोरूपी प्राणरूपेण हृदयांतरस्थितः। तथा च श्रुतिः। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति। जगतो जङ्गमस्य तस्थुवः स्थावरस्य सूर्य एवात्मा। क्रतुश्च यजताम्। यजमानानां स एव क्रतुर्यज्ञः। यत उक्तं मनुना। 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टे-रन्नं ततः प्रजाः।' इति। भर्तामरज्योतिषाम्। अमरा देवाः ज्योतींषिग्रहन-क्षत्रादीनि तेषां भर्ता प्रभुः, प्रधान इत्यर्थः। यतः सर्वे एव देवयोनयस्त-स्योपस्थानं कुर्वन्ति। ग्रहनक्षत्राणां च केवलं तद्वशेन नित्योदयास्तमयाः। यत उक्तम्। 'तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यंबुगोलकाः। प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः।' इति। एवं गुणाधिक्यादमरज्योतिषां प्रभुः। लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुरिति। लोकाः भूर्लोकादयस्तेषां प्रलये विनाशे उद्भवे उत्पत्तौ स्थितौ पालने विभुर्विष्णुः। भगवताऽतीतवर्तमानभाविकाल-

त्रयपरिच्छेदचिह्नभूतत्वात्। चशब्दोऽत्रावधारणे। अनेकधा यः श्रुतौ। श्रुतौ वेदे योऽनेकधानेकप्रकारैः पठ्यते। तथा च श्रुतिः। 'इंद्रं मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः' इति॥१॥

सम्पादक (भाषाभाष्यकार) कृत मङ्गलाचरण–

श्रीमद्वराहमिहिरोदितजातकं सद्
भट्टोत्पलेन विवृतं सुरभाषया यत्।
तच्चाल्पसंस्कृतविदामवबोधनार्थं
नत्वा श्रियं नरगिरा विवृणोमि चाहम् ॥ १ ॥

भाषा- जो सुधामय चन्द्रमण्डल में प्रतिबिम्बित होकर विद्यमान है, अपुनर्जन्माओं (मुमुक्षुओं) का मार्ग, आत्मज्ञानियों की आत्मा, याजक (यज्ञ करने वालों) का यज्ञ स्वरूप, अमर (इन्द्रादि देव), ज्योति (आकाशस्थ तेजोमय पिण्ड नक्षत्र और ग्रह) के भर्ता (पोषक), समस्त लोक (विश्व) के प्रलय, उत्पत्ति और पालन करने में समर्थ, वेदों में अनेक नाम से वर्णित, अनेक किरण (अनन्त तेजोरश्मि वाले) एवं गुणविशिष्ट वे (भगवान् सूर्य) हमें वाक्शक्ति प्रदान करें॥ १ ॥

विशेष अर्थ- यहाँ बहुत सी पुस्तकों में 'शशिभूतः' पाठ है किन्तु वह प्रामादिक है, क्योंकि तीनों देव एवं तीनों लोक के रचयिता को महादेव का एक अङ्ग कहना असङ्गत है। अतः (शशभृतः) यही पाठ युक्त है। चन्द्रबिम्ब में प्रतिबिम्बित होकर रात्रि में भी प्रकाश होने के कारण 'त्रैलोक्यदीप' विशेषण उपपन्न होता है॥१॥

अधुनास्य शास्त्रस्य परप्रणीतत्वादानर्थक्यं परिजिहीर्षुरन्य-शास्त्रेभ्योऽस्य गुणवत्त्वं प्रदर्शयञ्छार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

भूयोभिः पटुबुद्धिभिः पटुधियां होराफलज्ञप्तये
शब्दन्यायसमन्वितेषु बहुशः शास्त्रेषु दृष्टेष्वपि ।
होरातन्त्र महार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं
स्वल्पं वृत्तविचित्रमर्थबहुलं शास्त्रप्लवं प्रारभे ॥२॥

भूयोभिरिति। होरायास्तंत्रं होरातन्त्रम् अथवा होरा एव तंत्रं तदेव महार्णवो दुष्पारत्वात् तंत्र्यते तार्यते येनार्थस्तत्तंत्रम्। अहं होरातत्र-महार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानां शास्त्रप्लवं प्रारभे। होरातंत्रमेव महार्णवो महासमुद्रस्तत्प्रतरणे प्रतरणविषये भग्नोद्यमानां भग्नोत्साहानां शास्त्रप्लवं प्रारभे करोमि। शास्त्रमेव प्लवः शास्त्रप्लवस्तं शास्त्रप्लवम्। यथा प्लव-

स्तितीर्षूणां परपारगमनमाशु संपादयति, तथेदमपि। होरातन्त्रमहार्णव-प्रतरणे भग्नोद्यमानामित्यस्य प्लवेन साधर्म्यम्। वेन कृते होरातन्त्ररमहार्णव-प्रतरणे भग्नोद्यमानामित्यत आह भूयोभिरिति। भूयोभिर्बहुतरैः। किंभूतैः? पटुबुद्धिभिः पटुः पट्वी बुद्धिर्येषां ते पटुबुद्धयः प्रचुराः प्रज्ञास्तैः। शास्त्रेषु दृष्टेषु चिरं विचारितेषु सत्स्वपि। किंभूतेषु शब्दन्यायसमन्वितेषु। शब्दानां न्यायः शब्दन्यायः मीमांसा। तदुक्तम्। 'शब्दानामेव सा शक्तिस्तर्को यः पुरुषाश्रयम्।' इति। अथवा शब्दाश्च न्यायाश्च शब्दन्यायाः शब्दोऽर्थवान्न्यायो मीमांसा तैः समन्वितेषु संयुक्तेषु। किमेकवारं दृष्टेषु नेत्याहबहुश इति। बहुशः बहून्वारान्व्याससमासैर्बहुप्रकारै रचितेष्वित्यर्थः। किमर्थं दृष्टेषु। पटुधियां होराफलज्ञप्तये। चतुरबुद्धीनां होराफलावबोधनाय प्राक्तनकर्मविपाको होरा होरायाः फलं होराफलं तस्य ज्ञप्तिस्तत्फलं शुभाशुभं तज्ज्ञानाय। किम्भूतं शास्त्रप्लवं? स्वल्पं लघुग्रंथम्। पुनः किम्भूतं? वृत्तविचित्रम्। वृत्तैः शार्दूलविक्रीडितप्रभृतिभिर्विचित्रं रम्यं तस्मात्स्वल्पतयैवास्य गुणवत्त्वम्। यतस्तेषामत्राप्युद्यमभङ्गो न भवति। स्वल्पमित्यनेन ग्रहणधारणसुखतां प्रदर्शयति। तथा च हस्तिवैद्यकरो वीरसेनः। 'समासोक्तस्य शास्त्रस्य सुखं ग्रहणधारणे।' वृत्तविचित्रमित्यनेन सूक्तता प्रदर्शयति। ननु स्वल्पशास्त्रस्य स्वल्पार्थतैव भविष्यतीत्याह-अथबहुलं बह्वभिधेयम्। अत एव पूर्वविरचितशास्त्रेभ्योऽस्य गौरवम्। अन्यथा हि शास्त्रसम्भवात्पुनरुक्ततादोषः स्यात्। एतदुक्तं भवति। प्रागभिहितशास्त्राण्यातिविस्तृतान्यतस्तेषु भग्नोद्यमास्तदर्थमहं शास्त्रप्लवं प्रारभे। ननु कदाचिदल्पप्रज्ञतया ते भग्नोद्यमास्तत्कुतोलब्धम्। यथा पूर्वशास्त्राणां महत्त्वाद्भग्नोद्यमास्तदर्थमिदमल्पमित्यत इदमाह। पटुधियामित्यनेनतत्प्रतिपादितं भवति। न हि ते बुद्धिहीनत्वात्तेषु शास्त्रेषु भग्नोद्यमाः किं तर्हि शास्त्रदोषादन्यथाऽत्रापि तेषामुद्यमभङ्गः स्यात्। प्लवमपि स्वल्पं च लघुवृत्तमदीर्घं वृत्तविचित्रं रम्यमर्थबहुलं वित्तपरिपूर्णमेवंविधं तितीर्षूणामतिसुखावहं भवतीति॥ २॥

भाषा- अपनी-अपनी तीक्ष्ण बुद्धियों से शब्द (व्याकरण), न्याय (मीमांसादि तर्क सहित) अनेक शास्त्रों के पुनः पुनः अवलोकन करने पर भी होरातन्त्र (जन्मलग्नवश जातक के फलज्ञापक शास्त्र) रूप महार्णव (अपार समुद्र) के पार पाने में भग्न हो गये हैं उद्यम (यत्न) जिनके ऐसे परिपक्व बुद्धिवाले विज्ञजनों के होराफल (जन्मलग्न से जीवनफल)

ज्ञानार्थ मैं वृत्तों (नाना छन्दों) से लक्षित छोटे शास्त्ररूप प्लव (नौका) का निर्माण करना प्रारम्भ करता हूँ॥२॥

विशेष अर्थ- जैमिनि, पराशरादि ऋषियों ने प्राणियों के जन्मलग्नवश शुभाशुभ जीवनफल को विस्तृत रूप से कहा है। वराहमिहिराचार्य ने उन सब फलों का सार स्वल्प में बताया है। जैसे समुद्र में पार होने के लिए बड़े-बड़े जहाज बनाये जाते हैं, किन्तु उनको चलाने में अन्य व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है, किन्तु छोटी नौका पर चढ़कर अकेला भी, भोजनादि सामग्री साथ में लेकर, धीरे-धीरे चलाकर समुद्र पार कर जाता है, उसी प्रकार मुनिजनों से निर्मित शास्त्र में, गुरुजनों की सहायता की अपेक्षा होती है किन्तु इस छोटे से शास्त्र को बार-बार देखने से विज्ञजन होराफल को जान सकते हैं॥ २॥

अधुना होराशास्त्रस्य पुराकृतकर्मविपाकव्यञ्जकत्वं वर्णद्वयपरिहारेण शब्दव्युत्पत्तिं प्रदर्शयन्निन्द्रवज्रयाऽऽह-

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति॥३॥

होरेति। होरार्थं शास्त्रं होरा तामहोरात्रविकल्पमेके वांछन्ति। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रो होराशब्देनोच्यते। तस्य विकल्पो विकल्पना। एके अन्ये होरां वांछन्तीत्यर्थः। कथमुच्यते? पूर्वापरवर्णलोपात्। अहोरात्रशब्दस्य पूर्वो वर्णोऽकारोऽपरवर्णश्च त्रकारस्तयोलोपमदर्शनं कृत्वा होराशब्दोऽवशिष्यते। किमर्थं? पुनरहोरात्रशब्दाद्धोराशब्दो व्युत्पाद्यते इति। अत्रोच्यते। मेषादयो द्वादश लग्नराशयोऽहोरात्रान्तर्भूताः लग्नस्य च कालवशाज्ज्ञानं लग्नवशाच्छुभाशुभज्ञानम्। अतोऽहोरात्राश्रयत्वात्तत एव होराशब्दो व्युत्पाद्यते एतदेवाचार्यस्याप्यभिप्रेतम्। यतः परमतप्रतिषिद्धमनुमतमिति। तथा च सारावल्याम्- 'आद्यन्तवर्णलोपाद्धोरास्माकं भवत्यहोरात्रात्। तत्प्रतिषिद्धः सर्वो ग्रहभगणश्चिन्त्यते यस्मात्॥' किमस्य प्रयोजनमित्याहकर्मार्जितमिति। पूर्वभवे प्राग्जन्मनि यत्सदादि शुभमशुभं मिश्रं च कर्मार्जितं तस्य पक्तिंपाकं सम्यक् अभिव्यक्तिन प्रकटीकरोति। तथा च लघुजातके। 'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्। व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव॥' इति। ननु शुभस्याशुभस्य वावश्यंभाविनः किं व्यनक्ति? उच्यते। द्विविधं शुभाशुभं दृढ़कर्मोपार्जितमदृढ़कर्मोपार्जितं च। तत्र दृढ़कर्मोपार्जितस्य दशाफलं पाकक्रमेण व्यनक्ति। अशुभं दशाफलं ज्ञात्वा यात्रादेः परिहारः कर्त्तव्यः। शुभं ज्ञात्वा यात्रादेरतिशयेन दानम्। अदृढ़कर्मोपार्जितस्याष्टकवर्गेण

फलव्यक्तिः। तच्चाशुभं ज्ञात्वा शान्त्यादिभिरुपशमं नयेत्। तथा च यवनेश्वरः। 'यद्यद्विधानं नियतं प्रजानां ग्रहर्क्षयोगप्रभवं प्रसूतौ। भाग्यानि तानीत्यभिशब्दयन्ति वार्तानियोगेति दशा नराणाम्। तदप्यभिज्ञैर्द्विविधं निरुक्तं स्थिराख्यमौत्पातिकसंज्ञितं च। कालक्रमाज्ञातकनिश्चितं यत्क्रमोपसर्पि स्थिरमुच्यते तत्। सप्तग्रहाणां प्रथितानि यानि स्थानानि जन्मप्रभावानि सद्भिः। तेभ्यः फलं चारग्रहक्रमस्था दद्युर्यदोत्पादकसंज्ञितं तत्॥' अनेनास्थिरस्य शान्त्यादिभिरुपशमः प्रदर्शितो भवति। उक्तं च भगवता व्यासेन। 'विहन्याद्दुर्बलं दैवं पुरुषेण विपश्चिता।' इति॥ ३॥

भाषा- (होरा शब्द व्युत्पत्ति-कोशकारों ने लग्न और राश्यर्ध होरा नाम से कहा है। क्योंकि-अहोरात्र के बीच में १२ लग्न और २४ राश्यर्ध बीतते हैं इसलिए यहाँ वराहमिहिर कहते हैं–) होरा– यह 'अहोरात्र' का ही विकल्प है, ऐसा बहुत से आचार्यों का कहना है। क्योंकि 'अहोरात्र' इस चार अक्षर से बने शब्द में से पूर्व वर्ण 'अ' और अपर वर्ण 'त्र' को निकाल देने से बीच में 'होरा' ही दो वर्ण बचते हैं। यह (होरा-शास्त्र) प्राणियों के पूर्वजन्म में उपार्जित शुभ या अशुभ कर्मों के फल-प्राप्ति-समय को सूचित करता है॥ ३॥

विशेष अर्थ– इसलिए लोग जन्म या गर्भाधानकालिक लग्न और ग्रहों की स्थिति बनाकर रखते हैं जिसको जन्मपत्र कहा जाता है। जिससे शुभ फल की प्राप्ति के समय में थोड़ा भी यत्न करने से अवश्य शुभ फल का लाभ होता है। और अशुभ फलप्राप्ति समय में धर्मानुष्ठानादि द्वारा अशुभ फलों को टाल दिया जाता है, अथवा थोड़े समय (स्वल्प चिन्तन) में ही अशुभ फल का भोग हो जाता है॥ ३॥

अधुना व्यवहारार्थं कालाख्यस्य पुरुषस्य मेषादिराशिपूर्वकं शिरःप्रभृत्यङ्गविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

कालाङ्गानि वराङ्गमाननपुरो हृत्क्रोडवासोभृतो
वस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।
मेषाश्विप्रथमा नवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्ययाः॥४॥

कालाङ्गानीति। कालस्यांगानि कालाङ्गानि तानि च मेषप्रभृतिराशयो नवर्क्षचरणा नवभिर्ऋक्षचरणैर्नक्षत्रपादैः प्रमाणं येषां ते। अश्विप्रथमाः अश्विनीतःप्रभृति नवनक्षत्रपादा एकैकस्य प्रमाणम्। मेषप्रभृतिराशयोऽश्विप्रथमैर्नक्षत्रपादैर्युक्ता इत्यर्थः। तथाभूता राशयो धातुरवयवाः।

तथा च यवनेश्वरः। 'द्वे द्वे सपादे भवनं गते' इति। तथा च भगवान्गार्गिः। 'अश्विनी भरणी मेषः कृत्तिकापाद एव च। तत्पादत्रितयं ब्राह्मं वृषः सौम्यदलं तथा। सौम्यार्द्धमार्द्रा मिथुनं त्वदित्याश्चरणत्रयम्। तत्पादः पुष्यमाश्लेषा राशिः कर्कटकः स्मृतः। पित्र्यं भाग्यमथार्यम्णः पादः सिंहः प्रकीर्तितः। तत्पादत्रितयं कन्या हस्तश्चित्रार्धमेव च। तुला चित्रादलं स्वातिर्विशाखचरणत्रयम्। तत्पादं मित्रदैवत्यं ज्येष्ठा वृश्चिक उच्यते। मूलमाप्यं तथा धन्वो पादो विश्वेश्वरस्य च। तत्पादत्रितयं श्रोत्रं मकरो वासवं दलम्। तद्दलं वारुणं कुम्भस्तथाजाच्चरणत्रयम्। तत्पाद एको मीनः स्यादहिर्बुध्न्यं च रेवती।' चक्रे स्थिताश्चक्रस्थिताः, चक्रस्थिता राशयः, अथवा चक्रवत् स्थिताः, अनेन संस्थानमेषां प्रदर्शितं भवति। तत्र काला-ख्यस्य वराङ्गं शिरो मेषः। आननं मुखं तद्वृषः। उरो वक्षो मिथुनम्। तद् हृदयं कुलीरः कर्कटः। क्रोडमुदरं सिंहः। वासोभृत् कटिः कन्या। वस्तिर्नाभिव्यञ्जनयोरन्तरे तुला। व्यञ्जनं येन पुंस्त्वं व्यंज्यते लिङ्गं तत् वृश्चिकः। ऊरुयुगलं धन्वी। जानुयुगलं मकरः। जंघे द्वे कुम्भः। अंघ्रिद्वयं पादयुगलं मीन इति। तथा च वादरायणः। 'मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातुर्वक्षो भवेन्नृमिथुनं हृदयं कुलीरः। सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च बस्तिस्तुलाभृदथ मेहनमष्टमं स्यात्। धन्वी चास्योरुयुगं मकरो जानुद्वयं भवति। जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति।' अस्य प्रयोजनम्। जन्मकाले यो राशि पापग्रहाक्रान्तः स कालाख्यस्य पुरुषस्य यस्मिन्नंगे स्थितस्तत्रांगे जातस्योपघातो वक्तव्यः। यत्र सौम्यः स्थितस्तत्र पुष्टिरिति। तथा च सारावल्याम्। 'कालनरस्यावयवान्पुरुषाणां कल्पयेत्प्रसवकाले। सदसद्ग्रहसंयोगात्पुष्टात्सोपद्रवांश्चापि'। इति। राशिक्षेत्रमित्यादि। एषां च प्रत्येकस्य राशिरिति संज्ञा तस्यैव पर्यायनामानि। क्षेत्रं गृहमृक्षं भं राशिश्च क्षेत्रं च गृहं च ऋक्षं च भं च तानि राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं च गृहत्वाद्भवनग्रहणे सिद्धे यत्पुनर्भवनग्रहणं कृतं तत्सर्वेषां गृहपर्यायाणां ग्रहणार्थम्। ऋक्षत्वादपि भग्रहणे सिद्धे यत्पुनर्भग्रहणं तेनैतद्दर्शयति। यत्र यत्र होराशास्त्रे भग्रहणमृक्षग्रहणं वा तत्र तत्र राशेरेव ग्रहणं स्यान्न तु नक्षत्रस्य। एते राश्यादयः शब्दा एकार्थसम्प्रत्यया एकार्थाभिधायका इत्यर्थः।४।

भाषा - (समस्त श्रुति, स्मृति, पुराणों में इस चराचर विश्व को परब्रह्म परमेश्वर का व्यक्त स्वरूप बताया गया है, जिसको ब्रह्माण्ड या भचक्र

कहा जाता है। यहाँ उनके अंग-विभागों को बताया जाता है–) भचक्र में मेष और अश्विनी के प्रारम्भ बिन्दु से (भचक्र के तुल्य १२ विभाग) नक्षत्रों के ९, ९ चरण (सवा-दो सवा-दो नक्षत्रों) के १२ राशियाँ भगवान् कालपुरुष के मस्तकादि चरण पर्यन्त अङ्ग हैं, जैसे-मेष मस्तक, वृष मुख, मिथुन छाती, कर्क हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि, तुला वस्ति, वृश्चिक लिङ्ग, धनु जांघ, मकर ठेहुना, कुम्भ फीली (धावा) और मीन पैर है।

विशेष अर्थ- वराहमिहिर ने लघुजातक में कहा है कि-जैसे कालपुरुष के अङ्ग में राशियाँ हैं उसी प्रकार प्राणियों के अङ्ग में भी समझना। जन्म-समय में जिस अंग की राशि में शुभ ग्रह हो उस अंग की पुष्टि और जिस अंग की राशि में पापग्रह हो उस अंग को विकलता (व्रण आदि रोगभय) से युक्त समझना चाहिए॥ ४॥

अधुना राशीनां स्वरूपविज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः।
तौलीससस्यदहना प्लवगा च कन्या
शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे॥ ५॥

मत्स्याविति। मीनो राशिर्मत्स्यौ मत्स्यद्वयमन्योन्यं पुच्छाभिमुखम्। एतत्तु कुतो लभ्यते? उच्यते। तस्यैवोभयोदयत्वात्। वक्ष्यति च। 'लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम्' इति। घटी कुम्भः, स्कन्धासक्तरिक्तघट-धारी पुरुषः कुम्भः। मिथुनो नृमिथुनराशिर्मिथुनं नृमिथुनं स्त्रीपुमांसौ तन्मिथुनम्। सगदं सवीणं पुमान्सगदः स्त्री सवीणा। चापी नरोऽश्वजघनः धन्वी राशिश्चापी विद्यमानधन्वा नरोऽश्वजघनः। अश्वस्तुरगस्तस्येव जघनं पादं यस्य सोऽश्वजघनः, चतुष्पादित्यर्थः। मकरो मृगास्यो मकरो राशिर्मकर एव स च मृगास्यो मृगमुखः। तौलीत्यादि। तुला विद्यमान-तुलः पुरुषः। कन्या कुमारी प्लवगा नौकास्था ससस्यदहना। सस्यं च दहनश्च तौ सस्यदहनौ ताभ्यां सह वर्तत इति ससस्यदहना। शेषा राशयो मेषवृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशाः स्वसंज्ञाविहिताकृतयः तद्यथा मेषो मेषः, वृषो वृषभः, कर्कटः कुलीरो जलचरप्राणी, सिंहः केसरी, वृश्चिको वृश्चिकः कीटजातिः। तथा च सत्यः। 'छागो वृषभो वीणागदाधरं मिथुन-मंभसि कुलीरः। सिंहः शैले कन्या नौसंस्था दीपसस्यकरा। पुरुषस्तुला-धरो वृश्चिकोऽथ धन्वी नरो हयांत्याधः। मकरार्धं मृगपूर्वं कुम्भी पुरुषो

झषो मीनः॥' स्वचराश्च सर्वे, सर्वे द्वादश राशयः स्वचराः स्वेषु स्वेषु स्थानेषु चरन्ति, यथादृष्टस्थाननिवासिन इत्यर्थः। तद्यथा– मेष-वृष-वारण्यौ दिवारात्रौ ग्राम्यौ मिथुनं ग्राम्यः कर्कटोऽम्बुचरः सिंह आरण्यः कन्या दर्शितदेशविभागा तुला पण्यवीथिस्थः वृश्चिकः श्वभ्रमचारी धन्वी ग्राम्यः मकरस्य पूर्वभाग आरण्योऽन्यो जलचरः कुम्भो ग्राम्यः मीनो जलचर इति। तथा च यवनेश्वरः–

'आद्यः स्मृतो मेषसमानमूर्तिः कालस्य मूर्द्धा गदितः पुराणैः।
सोऽजाविका सञ्चरकन्दराद्रिस्तेनाग्निधात्वाकररत्नभूमिः।१।
वृषाकृतिस्तु प्रथितो द्वितीयः स वक्त्रकण्ठायतनं विधातुः।
वनाद्रिसानुद्विपगोकुलानां कृषीवलानामधिवासभूमिः।२।
वीणागदाभृन्मिथुनं तृतीयः प्रजापतेः स्कंधभुजांसदेशे।
प्रनर्तको गायनशिल्पकस्त्रीक्रीडारतिर्द्यूतविहारभूमिः।३।
कर्को कुलीराकृतिरम्बुसंस्थो वक्षःप्रदेशे विहितश्च धातुः।
केदारवापीपुलिनानि तस्य देवाङ्गनारम्यविहारभूमिः।४।
सिंहश्च शैले हृदयप्रदेशे प्रजापतेः पञ्चममाहुराद्याः।
तस्याटवीदुर्गगुहावनाद्रिव्याधावनीदुर्गवनप्रदेशाः।५।
प्रदीपिकां गृह्य करेण कन्या नौस्था जले षष्ठमिति ब्रुवन्ति।
कालार्थधीरा जठरं विधातुःसशाड्वला स्त्री रतिशिल्पभूमिः।६।
वीथ्यां तुला पण्यधरो मनुष्यः स्थितः स नाभीकटिवस्तिदेशे।
शुक्लार्थवीथ्यापणपट्टनाध्वसार्थाधिवासोन्नतसस्यभूमिः।७।
श्वभ्रोऽष्टमो वृश्चिकविग्रहस्तु प्रोक्तः प्रभोर्मेढ्रगुदप्रदेशे।
गुहाबिलश्वभ्रविषाश्मगुप्तिर्वल्मीककीटाजगराहिभूमिः।८।
धन्वी मनुष्यो हयपश्चिमार्धस्तमाहुरूरू भुवनप्रणेतुः।
समस्थितव्यस्तसमस्तवाजिसुरास्त्रभृद्यज्ञरथाश्वभूमिः।९।
मृगार्द्धपूर्वी मकरोम्बुगार्धो जानुप्रदेशे तमुशन्ति धातुः।
नदीवनारण्यसरोद्र्यनूपश्वभ्राधिवासो दशमः प्रदिष्टः।१०।
स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य कुम्भो जंघे तमेकादशमाहुरार्याः।
शुष्कोदकाधारकुशस्य पक्षी स्त्रीशौण्डिको द्यूतनिवासभूमिः।११।

जले तु मीनद्वयमन्त्यराशिः कालस्यपादौ विहितौ वरिष्ठौ।
स पुण्यदेवद्विजतीर्थभूमिर्नदीसमुद्रांबुचयाधिवासः ।१२।
प्रयोजनं हृतनष्टादिषु द्रव्यस्थानपरिज्ञानम्। उक्तं च –
'राशिभ्यः कालदिग्देशा' इति *//इति ५//*

भाषा– परस्पर मुखपुच्छमिलित दो मछलियों के सदृश मीन राशि का स्वरूप है। कन्धे पर घड़ा लिये हुए पुरुष के समान कुम्भ है। वीणायुत स्त्री तथा गदायुत पुरुष की जोड़ी मिथुन का स्वरूप है। हाथ में धनुष लिये हुए घोड़े के जंघा वाले मनुष्य सदृश धनु है। हरिण के समान मुख वाले मगर के समान मकर है। हाथ में अन्न और अग्नि लेकर नौका पर बैठी हुई कन्या के समान कन्या राशि है। शेष राशि अपने नाम के सदृश (अर्थात् मेष मेढ़ा के समान, वृष बैल के समान, कर्क केकड़ा के समान, सिंह सिंह के समान, वृश्चिक बिच्छू के सदृश) हैं तथा सब राशियाँ अपने-अपने स्थान में रहने वाली हैं।। ५।।

विशेष अर्थ- भाव यह है कि मेष और वृष, यह दिन में वन में और रात्रि में ग्राम में रहते हैं। मिथुन ग्राम में, कर्क जल में, सिंह वन में, कन्या जल में नौका पर, तुला बाजार में, वृश्चिक बिल (गड्ढे) में, धनु ग्राम में, मकर के पूर्वार्ध वन में और उत्तरार्ध जल में, कुम्भ ग्राम में और मीन जल में रहने वाला है। इसका प्रयोग प्रश्न लग्नादि द्वारा हृत नष्टादिक द्रव्य के स्थान, जन्मलग्न से प्रसवादि स्थान समझने में होता है। क्योंकि देश, दिशा, काल-इनका ज्ञान राशि के द्वारा ही होता है।। ५ ।।

अधुना राशिनवमांशद्वादशांशाधिपांस्तोटकेनाऽऽह–

क्षितिजसितज्ञचन्द्ररविसौम्यसितावनिजाः
सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः ।
अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधि-
र्भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात्क्रमशः ।। ६ ।।

क्षितिजसितज्ञेति। क्षितिजादयो ग्रहाः गृहपा अंशकपाश्च गृहाणां राशीनां मेषादीनां पतयः स्वामिनो भवन्ति। क्षितिजोऽगारकः स मेषस्याधिपतिः। सितः शुक्रो वृषभस्य। ज्ञो बुधो मिथुनस्य। चन्द्रः कर्कटस्य। रविरादित्यः सिंहस्य। सौम्यो बुधः कन्यायाः। सितः शुक्रस्तुलायाः। अवनिजोऽगारको वृश्चिकस्य। सुरगुरुर्बृहस्पतिर्धन्विनः। मंदः शनैश्चरो मकरस्य। सौरिः शनैश्चरः कुम्भस्य। गुरुर्बृहस्पतिर्मीनस्येति। प्रयोजनं होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता इत्यत्र। एत एव नवांशकाधिपतयः न केवलं

मेषस्य भौमाऽधिपतिः। यावद्यस्मिन्राशौ मेषनवांशकोदयो भवति तस्यापि भौमोऽधिपतिः। शेषाणामप्येवमेव। ते च नवांशकाः कथं भवन्तीत्याह– अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधिरिति। अजो मेषः। मृगो मकरः। तौली तुला। चंद्रभवनं कर्कटकः। आदिनवांशविधिरिति प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्रैवमभिसम्बन्धोऽभिजायते। अजादिमृगादि-तौल्यादिचन्द्रभवनादिनवांशविधिः सर्वराशीनां भवति। तत्राजादिनवांश-विधिर्मेषस्य। तेन मेषवृषमिथुनकर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिकधनुर्धराणां सम्बन्धिनो नवांशाः मेषस्य भवन्ति। मृगादिर्वृषस्य। तेन मकरकुम्भमीनमेष-वृषमिथुनकर्कटसिंहकन्यासम्बधिनो नवांशाः वृषस्य। तुलादिर्मिथुनस्य। तेन तुलावृश्चिकधनुर्मकरकुम्भमीनमेषवृषमिथुनानां सम्बन्धिनो नवांशाः मिथुनस्य। कर्कटादिः कर्कटस्य। तेन कर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिकधनुर्मकर-कुम्भमीनानां सम्बन्धिनो नवांशाः कर्कटस्य। एवं सिंहस्य मेषवत्। कन्यायाः वृषवत्। तुलायाः मिथुनवत्। वृश्चिकस्य कर्कटवत्। पुनरपि धनुषो मेषवत्। मकरस्य वृषवत्। कुम्भस्य मिथुनवत्। मीनस्य कर्कटवत्। तदुक्तं ग्रन्थांतरे–

'मेषकेसरिधन्विनां मेषाद्या अंशकाः स्मृताः।
वृषकन्यामृगाणां च मकराद्या नव स्मृताः॥
तुलामिथुनकुंभानां तुलाद्या नव कीर्तिताः।
कर्कटालिझषाणां च कर्कटाद्या नवांशकाः॥'

प्रयोजनं ***'स्तेनो भोक्ता पंडिताद्या'*** इत्यादि। भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात्क्रमश इति। भवनसमा अंशका भवनसमांशकाः, भवनानि द्वादश तत्समा अंशकाः द्वादशांशका इत्यर्थः। ते च प्रत्येकस्य राशेः स्वगृहादारभ्य गणनीयाः। तद्यथा- मेषस्य मेषवृषमिथुनकर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिक-धन्विमकरकुम्भमीनानां सम्बन्धिनो द्वादशभागाःभवन्ति। ते मेषाद्यधिपतयः। एवं वृषस्य वृषाद्याः मेषांताः। मिथुनस्य मिथुनाद्याः वृषांताः। कर्कटस्य कर्कटाद्याः मिथुनांताः। सिंहस्य सिंहाद्याः कर्काटान्ताः। कन्यायाः कन्याद्याः सिंहांताः। तुलायास्तुलाद्याः कन्यांताः। वृश्चिकस्य वृश्चिकाद्यास्तुलांताः। धन्विनो धनुराद्याः वृश्चिकांताः। मकरस्य मकराद्याः धन्व्यंताः। कुम्भस्य कुम्भाद्याः मकरांताः। मीनस्य मीनाद्याः कुम्भांता इति। प्रयोजनं चैषां 'तत्कालिकेंदुसहितो द्विरसांशको यः' इत्यादि॥६॥

भाषा– मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि, बृहस्पति ये क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी हैं। तथा मेषादि राशियों के नवांशादिकों के भी क्रम से मङ्गलादिक ही स्वामी होते

हैं। तथा मेषादिक राशियों में क्रम से मेष, मकर, तुला, कर्क से आरम्भ कर ९, ९ राशियों के नवांश होते हैं, और प्रति राशि में अपने ही से आरम्भ कर क्रम से १२ राशियों के द्वादशांश होते हैं। स्पष्टार्थ नीचे चक्र देखिये।

विशेष अर्थ- राश्याधिप निरूपण करने का प्रयोजन यह है कि-जो राशि या अंश अपने स्वामी से युत दृष्ट हो वह सबल होकर भावफल की पुष्ट करती है अन्यथा निर्बल होकर भावफल का ह्रास करती है। तथा प्रत्येक राशि ९, ९ विभाग करके नवमांश कहे गये हैं। इनका प्रयोजन– *'लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात्'* इत्यादि जातक के स्वरूप जीविका आदि में होता है। तथा प्रत्येक राशि में अढ़ाई-अढ़ाई अंश के १२ विभाग बनाकर द्वादशांश कहे गये हैं। जिनका प्रयोजन– *'तत्कालिकेन्दुसहितो द्विरसांशको यः'* इत्यादि में आगे होता है॥ ६॥

राशि-स्वामिचक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
स्वामी	मंगल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	शनि	शनि	गुरु

नवमांशचक्र

अंशकला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३।२०	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क
६।४०	वृष	कुम्भ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चि.	सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चि.	सिंह
१०।००	मिथु.	मीन	धनु	कन्या	मिथु.	मीन	धनु	कन्या	मिथु.	मीन	धनु	कन्या
१३।२०	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला
१६।४०	सिंह	वृश्चि.	कुम्भ	वृश्चि.	सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चि.	सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चि.
२०।००	कन्या	सिंह	मीन	धनु	कन्या	मिथु.	मीन	धनु	कन्या	मिथु.	मीन	धनु
२३।२०	तुला	कन्या	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर
२६।४०	वृष	मिथु.	वृष	कुम्भ	वृश्चि.	सिंह	वृश्चि.	कुम्भ	वृष	सिंह	वृष	कुम्भ
३०।००	धनु	कर्क	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथु.	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन

अधुना त्रिंशांशकाधिपतीन्पुष्पिताग्रयाऽऽह–

कुजरविजगुरुज्ञशुक्रभागाः पवनसमीरणकौर्पिजूकलेयाः।
अयुजि युजि तु भे विपर्ययस्थाः शशिभवनालिझषान्तमृक्षसन्धिः।७

कुजेति॥ कुजो भौमः रविजः शनिः गुरुर्बृहस्पतिः ज्ञो बुधः शुक्रो भार्गवः एवं कुजरविजगुरुज्ञशुक्राणां क्रमेण भागाः पवनसमीकरणकौर्पि-जूकलेयाः। तद्यथा–पवना वायवः पञ्च, पञ्च एव भागाः कुजस्य। तत ऊर्ध्वं समीरणाः पञ्चैव, रविजस्य एवं दश। अत ऊर्ध्वं कौर्पिसंज्ञा अष्टौ गुरोः कौर्पाख्यो वृश्चिकः स च गणनयाष्टमः एवमष्टादश। ततः पर

द्वादशांशचक्र

अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
२।३०	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
५।०	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष
७।३०	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष
१०।०	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथु.
१२।३०	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क
१५।०	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह
१७।३०	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या
२०।०	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला
२२।३०	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.
२५।०	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु
२७।३०	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर
३०।०	मीन	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ

जूकसंज्ञाः सप्त भागाः बुधस्य जूकसंज्ञा तुलायाः स च गणनया सप्तमः एवं पंचविंशतिः। तत ऊर्ध्वं लेयसंज्ञाः पञ्च शुक्रस्य लेयसंज्ञा सिंहस्य स च गणनैया पञ्चमः एवं त्रिंशत्। किं सामान्येनेत्यत आह- अयुजि युजीति। अयुजि विषमराशौ कुजादयो ग्रहाः पवनादीनां भागानां यथा-क्रमेणाधिपतयः। तत्र मेषमिथुनसिंहतुलाधनुः कुंभानां विषमराशीना-मेष क्रमः। युजि तु भे विपर्ययस्थाः युजि समराशौ पवनादिभागाः ग्रहाश्च विपर्ययस्थाः व्यत्ययेन तिष्ठन्ति। तद्यथा। तत्रादौ पञ्च शुक्रस्य ततः परं सप्त बुधस्य एवं द्वादश। ततः परमष्टौ जीवस्य एवं विंशतिः। ततः परं पञ्च शनेः एवं पञ्चविंशतिः। ततः परं पञ्च भौमस्य एवं त्रिंशत्। तत्र वृषकर्कटकन्यावृश्चिकमकरमीनाः समराशयः एवं त्रिंशद्भागाधिपतयः पञ्च ताराग्रहाः। अत्र केचिदाहुर्यथा। विपर्ययस्था इत्यनेनानन्तराणामेव पवनादिसंख्यानां भागानां विपर्ययेण भवितव्यं न व्यवहितानां कुजादीनाम्। तच्चायुक्तम्। यस्मात्तशब्दोऽत्र पठ्यते स च कुजादिसमुच्चयार्थः। तथा च श्रुतकीर्तिः।' पञ्चाथ पञ्च चाष्टौ सप्त च पञ्चैव चौजभवनेषु। धरणि-सुतमन्दसुरगुरुबुधशुक्राणां क्रमेणांशाः। पञ्चैव सप्त चाष्टौ पञ्च च पञ्चाथ युग्मभवनेषु। भागा भार्गवशशिसुतसुरेज्यशनिभूमिपुत्राणाम्।' इति। प्रयोजनम्। 'कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता।

भूम्यात्मजर्क्षे क्रमशोंऽशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवाणाम्।' इत्यादि। शशिभवनालिझषांतमृक्षसन्धिः। अन्तशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। शशिभवनान्तमल्यन्तं झषान्तं च ऋक्षसन्धिः। शशिभवनं कर्कटः, अलिर्वृश्चिकः, झषो मीनः एतेषामन्तं नवमनवांशुकं यत्र नक्षत्रराश्यो-र्युगपदवसानं तदृक्षसन्धिः यस्मादाश्लेषान्ते कर्कटकान्तः। ज्येष्ठान्ते वृश्चिकान्तः रेवत्यन्ते मीनान्त इति। एतदेव लोके गण्डान्तमिति प्रसिद्धम्। उक्तं च। 'अश्विनीपित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः। वर्तन्ते विषमर्क्षान्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम्।' इति। प्रयोजनं च। 'सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत् सौम्यदृष्टिः' इति॥७॥

भाषा- विषम राशियों में प्रारम्भ से ५ अंश भौम (मङ्गल) के, उसके पश्चात् ५ अंश शनि के, उसके बाद ८ अंश बृहस्पति के, उसके बाद ७ अंश बुध के, तथा अन्त में ५ अंश शुक्र के विंशांश होते हैं तथा समराशियों में इससे विपरीत (अर्थात् पहिले ५ अंश शुक्र के, फिर ७ अंश बुध के, उसके बाद फिर ८ अंश बृहस्पति के, फिर ५ अंश शनि के और अन्त में ५ अंश मङ्गल के त्रिंशांश होते हैं। तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का अन्त ऋक्षसन्धि कहलाती है॥७॥

विशेष अर्थ- जहाँ साथ ही नक्षत्र और राशियों का अन्त और आरम्भ होता है वह ऋक्षसन्धि कहलाता है। दूसरे राशियों का अन्त और आरम्भ नक्षत्रों के बीच में, तथा नक्षत्रों का आरम्भ भी राशियों के मध्य में ही होता है। इसलिए उसमें सन्धिदोष नहीं है। ऋक्षसन्धि को ही गण्डान्त भी कहते हैं। सन्धि में जन्म होने से अशुभ फल होता है तथा त्रिंशांश से आगे शुभाशुभ विचार किया गया है। त्रिंशांश मङ्गलादि पाँच ही ग्रहों के क्यों होते हैं और उनमें भी सबके तुल्य अंश क्यों नहीं होते? इसकी युक्ति 'लग्नविवेक' के षड्वर्ग विचार में देखिये॥७॥

अधुना लोकव्यवहारार्थं मेषादीनां संज्ञाः पर्य्यायथाऽऽह-

क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपाथोनजूककौर्प्याख्याः।
तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम्॥८॥

क्रियेति॥ इत्थमेवं प्रकारनामानो मेषाद्या राशयो ज्ञेयाः। तद्यथा— क्रियो मेषः, ताबुरिर्वृषः, जितुमो मिथुनः, कुलीरः कर्कटः, लेयः सिंहः, पाथोनः कन्या, जूकस्तुला, कौर्प्याख्यो वृश्चिकः, तौक्षिको धन्वी, आकोकेरो मकरः, हृद्रोगः कुम्भः, अन्त्यभं मीन इति। प्रयोजनं च। 'गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले' इत्यादि॥८॥

भाषा- क्रिय १, ताबुरि २, जितुम ३, कुलीर ४, लेय ५, पाथोन ६, जूक ७, कौर्पि ८, तौक्षिक ६, आकोकेर १०, हृद्रोग ११, अन्त्यभ १२– ये क्रम से मेषादि द्वादश राशियों की संज्ञाएँ हैं।। ८।।

विषमराशि	मंगल	शनि	बृहस्पति	बुध	शुक्र	त्रिंशांशपति
अंश	५	५	८	७	५	
समराशि	शुक्र	बुध	बृहस्पति	शनि	मंगल	त्रिंशांशपति
	५	७	८	५	५	

अधुना ग्रहस्य क्षेत्रहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशभागत्रिंशद्भागानां वर्गसंज्ञाः व्यवहारार्थमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

दृक्काणहोरानवभागसंज्ञास्त्रिंशांशकद्वादशसंज्ञिताश्च ।
क्षेत्रं च यद्यस्य स तस्य वर्गो होरेति लग्नं भवनस्य चार्द्धम् ।६

दृक्काणेति।। दृक्काणादयः षट् पदार्थाः स्वकीयग्रहस्य वर्गसंज्ञाः। तत्र दृक्काणो राशित्रिभागः होरा राश्यर्द्धं नवभागो नवांशकः एषा संज्ञा येषां ते तथा। त्रिंशांशकस्त्रिंशद्भागः द्वादशांशो द्वादशभागः एतत्संज्ञिताश्च एषः संज्ञाख्या येषां ते तथा। यद्यस्य ग्रहस्य क्षेत्रं राशिः स तस्य वर्गः। वर्गशब्देनात्र षड्वर्गः। एते सर्व एव ग्रहस्यात्मीयवर्गसंज्ञाः।एवं षड्-विकल्पो राशिः षट्स्वात्मीयेषु स्थितो वर्गस्थो भवति। ननु ग्रहवर्गस्य षड्विकल्पा न सम्भवन्ति। यतश्चन्द्रार्कयोस्त्रिंशांशकाभावः भौमादीनां होराभावः तस्मात्पक्षे सम्भवन्ति तेन पञ्चस्वात्मीयेषु स्थितो वर्गस्थः। एतदप्युपलक्षणार्थम्। अतो यथासम्भवं त्र्यादिविकल्पस्थो ग्रहो वर्गस्थ उच्यते। यस्माद्भगवान् गार्गिः-

'क्षेत्रं होराथ दृक्काणो नवांशो द्वादशांशकः ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं सर्वस्य समुदाहृतः ।।
त्र्यादिष्वपि पदार्थेषु स्थितः स्वेषु स्ववर्गगः ।
पञ्चवर्गगतोऽप्येवं ग्रहो भवति नान्यथा ।।'

प्रयोजनम्। 'एकोऽपि वर्गोपगतो नराणां शुभोऽशुभो वापि चतुष्ट-यस्थः। वर्गोऽपि वास्योदयगो विनाशं बहुप्रकारं कुरुतेऽध्वगानाम्।' इत्यादि। होरालग्नयोः सहार्थमाह– होरेति। लग्नं भवनस्य चार्धमिति। होरेति लग्नमुच्यते। प्रयोजनं च। 'होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता' इति। भवनस्य च राशेरर्द्धं होरा। प्रयोजनम्। 'मार्तण्डेन्द्वोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे' इति।। ६।।

भाषा- द्रेष्काण, होरा, नवमांश, त्रिंशांश, द्वादशांश, और क्षेत्र (राशि), इनमें जो जिस ग्रह का हो वह उसका वर्ग कहलाता है। तथा 'होरा' शब्द से लग्न और राशि का आधा भी समझा जाता है। अर्थात् यहाँ षड्वर्ग में होरा शब्द से राशि का आधा ही ग्रहण करना चाहिए।। ६।।

अधुना राशीनां रात्रिदिनसंज्ञात्वं पृष्ठोदयशीर्षोदयत्वं च वसन्ततिलकेनाऽऽह-

गोऽजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा-निशाख्याः
पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्तएव ।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ।।१०।।

गोऽजेति।। गोऽजाश्विकर्किमिथुनाः- गोशब्देन वृष उच्यते, अजो मेषः, अश्वोऽस्यास्तीत्यश्वी धन्वी, कर्की कुलीरः मिथुनः प्रसिद्धः एते गोऽजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा मृगेण सहिताः षड्राशयो निशाख्या रात्रिबलसञ्ज्ञाः। पृष्ठोदया विमिथुनाः त एव रात्रिसञ्ज्ञा विमिथुनाः मिथुनवर्जिताः पृष्ठोदयसञ्ज्ञा भवन्ति। पृष्ठेनोदयं यांतीत्यर्थः। मिथुनः पुनः शीर्षोदयः। शीर्षोदया इति। उक्तेभ्यः शेषाः सिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाः शीर्षोदयाः शिरसोदयं यान्ति दिनबलाश्च भवन्ति। अत्र रात्रिदिनबलाख्यास्त इति सञ्ज्ञामात्रम्। यतस्तेषामुत्तरत्र बलं वक्ष्यति द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च संध्याद्वय इति। एवं सत्याचार्यस्य स्ववचनविरोधः स्यात्। तस्मात्संज्ञामात्रं बलग्रहणम्। प्रयोजनम्। 'रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म' इत्यादि। तथा पृष्ठोभयकोदयर्क्षगा इति। यात्रायां वक्ष्यति च। 'शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्यसिद्धिः पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च।' तथा 'शस्तं दिवा दिनबले निशि नक्तवीर्ये रात्रौ विपर्ययबले गमनं न शस्तम्।' अन्यच्चैभ्यो मीनस्य विशेषमाह। लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्ममिति। पृथुरोमा मत्स्यस्तद्युग्मं मत्स्यद्वयं मीनो राशिः स उभयतः पृष्ठशीर्षाभ्यां लग्नं समेत्यागच्छति।।१०।।

भाषा- वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर-ये छः रात्रिबली और इनमें मिथुन को छोड़कर बाकी ५ पृष्ठोदय हैं। तथा शेष राशियाँ शीर्षोदय और दिनबली हैं, परन्तु मीनराशि उभयोदय (शीर्ष-पृष्ठोदय) है।।१०।।

मेष वृष धनु कर्क मकर	पृष्ठोदय	रात्रिबली
सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ	शीर्षोदय	दिनबली
मिथुन	शीर्षोदय	रात्रिबली
मीन	उभयोदय	दिनबली

विशेष अर्थ- इसका प्रयोजन 'रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म' इत्यादि नष्ट-जातकादि में होता है। तथा यात्रा में 'शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्यसिद्धिः पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च' तथा च 'शस्तं दिने दिनबले, निशि नक्तवीर्ये ज्ञेयं विपर्ययबले गमनं न शस्तम्', इत्यादि में होता है।। १०।।

अधुना राशिनां क्रूरसौम्यविभागं स्त्रीपुरुषविभागं चरस्थिरद्विस्व-भावविभागं दिगधिपत्वं होराद्रिक्काणपतीनां विभागं च मन्दाक्रान्तयाऽऽह—

क्रूरः सौम्यः पुरुषवनिते ते चरागद्विदेहाः
प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्कर्कटाः सत्रिकोणाः।
मार्तण्डेन्द्वोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे
(१) दृक्काणाः स्युः स्वभवनसुतत्रित्रिकोणाधिपानाम्।।११।।

क्रूरः सौम्य इति।। ते मेषादयो राशयो यथाक्रमं क्रूरसौम्यसंज्ञाः। तत्र मेषः क्रूरः। वृषः सौम्यः। मिथुनः क्रूरः। कर्कटः सौम्यः। एवं सर्वेषां योज्यम्। तेन विषमराशयः क्रूरसंज्ञाः, समराशयः सौम्यसंज्ञाः। प्रयोजनं च 'क्रूरेषु जाताः क्रूरस्वभावा सौम्येषु जाताः सौम्यस्वभावा भवन्ति।' इति। तथा चाचार्यः। 'ओजे पुरुषा ज्ञेयाः सौम्याः स्त्रीसंज्ञकाः क्रमाद्युग्मे। उग्रेषूग्राः सौम्या सौम्य युग्मेषु भवनेषु।' पुरुषवनिते इति। त एव मेषा-दयो यथाक्रमं पुरुषवनिताख्या ज्ञेयाः। तेन मेषः पुरुषो नरः। वृषो वनिता स्त्री। एवं सर्वत्र। तेन षड्विषमराशयः पुरुषसंज्ञाः, षट् समराशयः स्त्रीसंज्ञाः। प्रयोजनं च पुरुषराशिषु जातास्तेजस्विनः। स्त्रीराशिषु जाता मृदवो भवन्ति। ते च रागद्विदेहा इति। त एव मेषादयो राशयो यथाक्रमं यथासङ्ख्य च रागद्विदेहाख्या भवन्ति। तत्र मेषश्चरः वृषोऽगः स्थिरः मिथुनो द्विदेहो द्विस्वभावः। एवं कर्कटादिषु योज्यम्। तेन मेषकर्कट-तुलामकराश्चराः। वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः स्थिराः। मिथुनकन्याधनुर्मीना द्विस्वभावाः। प्रयोजनं च। 'चरराशिषु जाताश्चरस्वभावाः स्थिरेषु स्थिरस्वभावा द्विस्वभावेषु मिश्रस्वभावा भवन्ति।' तथा च सत्यः।

(१) द्रेक्काणविचारः— द्रेक्क-द्रेक्काणदृक्काणा भवन्ति च दृक्काणवत्।' इति परद्विरूपकोषः। तथा- 'दृग् ज्ञाने ज्ञातरि त्रिषु' कणोऽतिऽसूक्ष्मे' इति चामरकोषः। कणस्यातिसूक्ष्मस्य भावः काणो धर्मः स्यात्तेनस्वकीय-बुद्धि-धर्मयोर्विचार्थभागो द्रेक्काणांशः कथ्यतेऽत एव प्रथम-पञ्चम-नवमपा एव तत्पतयो भवितुर्महन्तीति दिक्।

अथवा 'रूपात् कटपयपूर्ववर्णैर्वर्णक्रमाद्भवन्यङ्काः।' इति महासिद्धान्त-नियमात् (द्रिक् = ८१, द्वादशतष्टितशेषः = ९। का = १। ण = ५)। (दृक्कणाः ९।१।५) अतएव 'दृक्काणः प्रथमपञ्चनवपानाम्' इति (स्फुटं सिद्ध्यतीति)।

'चरसंज्ञाः स्थिरसंज्ञा द्विप्रकृतिरिति राशयः क्रमशः। राशिस्वभावतुल्या जायन्ते प्रकृतयः प्रसूतानाम्।' प्रागादीशा इति। क्रियो मेषः वृषः प्रसिद्धः नृयुङ्मिथुनं कर्कटकः कुलीरः। एते क्रियवृषनृयुक्कर्कटाः सत्रिकोणाः त्रिकोणाभ्यां स्वपञ्चमनवमाभ्यां सहिताः प्रागादिषु पूर्वाद्यासु चतसृषु दिशासु ईशाः स्वामिनो भवन्ति। मेषः स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह पूर्वस्याम्। एवं वृषः स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह दक्षिणस्याम्। मिथुनः स्वपञ्चमनवमाभ्यां पश्चिमायाम्। एकमेव कर्कोऽपि। तेन मेषसिंहधन्विनः पूर्वस्याम्। वृषकन्यामकरा दक्षिणस्याम्। मिथुनतुलाकुंभाः पश्चिमायाम्। कर्कटवृश्चिकमीना उत्तरस्यामिति। प्रयोजनम्- 'हृतनष्टादौ चौरादेर्द्रव्यस्य वा दिग्विज्ञानम् च।' तथा च। 'यातव्यदिङ्मुखगतस्य सुखेन सिद्धिर्व्यर्थश्रमो भवति दिक्प्रतिलोमलग्ने।' इति। मार्तण्डेन्द्वोरिति। मार्तण्डः सूर्यः इन्दुश्चन्द्रः अयुज्ययुग्मराशौ विषमराशौ यथाक्रमं मार्तण्डेन्द्वोर्होरे भवतः। प्रथमा होरा सूर्यस्य। द्वितीया होरा चन्द्रस्य। होराशब्देनात्र राश्यर्द्धमुच्यते। समभे चन्द्रभान्वोश्चेति। समभे समराशौ चन्द्रभान्वोर्होरे भवतः। प्रथमा होरा चन्द्रस्य शशिनः। द्वितीया भानोः सूर्यस्य। प्रयोजनम्- 'सूर्यहोरायां जातास्तेजस्विनश्चन्द्रस्य होरायां मृदुस्वभावा भवन्ति।' दृक्काणाः स्युरिति। दृक्काणो राशित्रिभागः स्वभवनसुतत्रित्रिकोणाधिपानां सम्बन्धिनो दृक्काणा भवन्ति। प्रथमो द्रेष्काणः स्वभवनाधिपतयेरात्मीयभवनाधिपतेः। द्वितीयः सुतभवनस्य पञ्चमस्थानाधिपतेः। तृतीयस्त्रित्रिकोणाधिपतेः। नवमस्थानाधिपतेः। तेन मेषस्य प्रथमो द्रेष्काणः प्रथमस्य भौमस्य, द्वितीयःपञ्चमस्थान सिंहाधिपतेरर्कस्य तृतीयो नवमस्थानधनुषोऽधिपतेर्गुरोरिति। वृषस्य प्रथमः शुक्रस्य, द्वितीयो बुधस्य तृतीयः शनेः। मिथुनस्य प्रथमो बुधस्य द्वितीयः शुक्रस्य तृतीयः शनेः। कर्कटस्य प्रथमश्चन्द्रस्य द्वितीयो भौमस्य तृतीयो जीवस्य। सिंहस्य प्रथमः सूर्यस्य, द्वितीयो जीवस्य तृतीयो भौमस्य। कन्यायाः प्रथमो बुधस्य, द्वितीयः शनेः, तृतीयः शुक्रस्य। तुलायां प्रथमः शुक्रस्य, द्वितीयः सौरस्य, तृतीयो बुधस्य। वृश्चिकस्य प्रथमो भौमस्य, द्वितीयो जीवस्य, तृतीयश्चन्द्रस्य। धन्विनः प्रथमो जीवस्य द्वितीयो भौमस्य, तृतीयो रवेः। मकरस्य प्रथमः शनेः, द्वितीयः शुक्रस्य, तृतीयो बुधस्य। कुम्भस्य प्रथमः शनेः, द्वितीयो बुधस्य, तृतीयः शुक्रस्य। मीनस्य प्रथमो जीवस्य, द्वितीयश्चन्द्रस्य, तृतीयो भौमस्येति। प्रयोजनम्। 'द्विरुत्तमास्वांशकभत्रिभागगैः' इत्यादि॥ ११॥

भाषा- मेष आदि १२ राशियाँ क्रम से पाप और सौम्य, पुरुष, स्त्री, चर, स्थिर (अचल) द्विस्वभाव हैं, तथा मेष, वृष, मिथुन, कर्क ये अपने-अपने पञ्चम, नवम राशि सहित क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं। विषम राशियों में प्रथम राश्यर्ध (होरा) सूर्य की, द्वितीय शशि की और सम-राशियों में प्रथम शशि की, द्वितीय भानु की होरा होती है। तथा प्रत्येक राशि में प्रथम द्रेष्काण अपने से नवीं राशि का स्वामी का होता है॥ ११॥

विशेष अर्थ- मेष सिंह धनु पूरब राशी। वृष कन्या मृग दक्षिण वासी॥
मिथुन तुला घट पश्चिम जानो। कर्क मीन अलि उत्तर मानो॥

प्रयोजन– राशि के स्वभावानुसार ही जातक का स्वभाव होता है। यथा क्रूर में क्रूर स्वभाव, सौम्य में सौम्य स्वभाव। चर में चञ्चल, स्थिर में स्थिर और द्विस्वभाव में पूर्वार्द्ध में स्थिर, उत्तरार्द्ध में चञ्चल होता है॥११॥

स्पष्टज्ञानार्थ कोष्ठक

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	राशि
क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौ.	अशुभ शुभ
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरु.स्त्री संज्ञा
चर	स्थिर	द्विस्व.	चर	स्थि.	द्विस्व.	चर	स्थि.	द्विस्व.	चर	स्थि.	द्विस्व.	चरादि संज्ञा
पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्त.	पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्त.	पूर्व	दक्षि.	पश्चि.	उत्त.	दिशापति

अधुना मतांतरेण होराद्रेक्काणपतीनां लक्षणमिंद्रवज्रयाऽऽह-

केचित्तु होरां प्रथमां भपस्यवाञ्छन्ति लांभाधिपतेर्द्वितीयाम्।
द्रेक्काणसंज्ञामपि वर्णयन्ति स्वद्वादशैकादशराशिपानाम्॥१२॥

केचिदिति। केचिद्यवनेश्वरादयः प्रथमां होराम् भपस्य राश्यधिपते-र्वाञ्छन्ति इच्छन्ति। द्वितीयां लाभादिपतेरेकादशस्थानाधिपस्य। यथा मेषस्य प्रथमहोरा भौमस्य। द्वितीया होरैकादशकुम्भपतेः सौरस्य। एवं सर्वेषामपि योज्यम्। द्रेक्काणसंज्ञामपीति। स्वद्वादशैकादशराशिपानामपि द्रेक्काणसंज्ञां वर्णयन्ति कथयन्ति। प्रथमं स्वाधिपतेरात्मीयस्वामिनः। द्वितीयं द्वादशाधिपतेः। तृतीयमेकादशराश्यधिपतेः। यथा मेषस्य प्रथमो द्रेष्काणो भौमस्य द्वितीयो जीवस्य तृतीयः सौरस्य। एवमन्येषामपि ज्ञातव्यम्। तथा च यवनेश्वरः। 'आद्या तु होरा भवनस्य। पत्युरेका-दशक्षेत्रपतेर्द्वितीया। स्वद्वादशैकादशराशिपानां द्रेक्काणसंज्ञाः क्रमश-स्त्रयोऽत्र॥' एवं यवनेश्वरमतेन सर्वग्रहाणां होराधिपत्यमस्ति। एतदाचार्यस्य नाभिप्रेतं सत्यादीनामपि। तथा च सत्यः। 'ओजेषु रवेर्होरा प्रथमा

युग्मेषु चोत्तरा शेषा। इन्दोः क्रमशो ज्ञेया जन्मनि चेष्टौ स्वहोरास्थौ। राशिपरेर्द्रेक्काणस्तत्पञ्चमनवम् (१।५।९) भवनपतयः स्युः। तेषामधिपतयः स्वस्वदृक्काणे ग्रहा बलिनः॥' *इति॥१२॥*

भाषा- यवन आदि आचार्य प्रथम होरा राशिपति को और द्वितीय होरा उस राशि से एकादशेश को कहते हैं। द्रेष्काण भी प्रथम राशीश को, द्वितीय उस राशि से द्वादशेश को तथा तृतीय एकादशेश को कहते हैं।

विशेष अर्थ- सत्याचार्य आदि आचार्यों के विरुद्ध होने के कारण यवनोक्त होरा, द्रेष्काण मान्य नहीं है॥१२॥

अथ ग्रहाणामुच्चनीचविभागं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

(१) अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः।१३

अजेति॥ अजादयो राशयो यथाक्रमेण दिवाकरादीनां ग्रहाणां तुङ्गाः उच्चसंज्ञाः। तद्यथा। अजो मेष आदित्यस्योच्चम्, वृषभो वृषः स चन्द्रस्य। मृगो मकरः स भौमस्य, अङ्गना कन्या बुधस्य। कुलीरः कर्कटो जीवस्य, झषो मीनः शुक्रस्य। वणिक् तुलाधरः सौरस्य। एत एव राशयो दशादिषु भागेषु सूर्यादीनां परमोच्चसंज्ञा भवन्ति। तत्रादित्यस्य मेषो दशमभागे परमोच्चः। चन्द्रस्य वृषः शिखिसंख्ये तृतीये भागे। भौमस्य मकरो मनुयुक्संख्येऽष्टाविंशे भागे परम उच्चः। मनवश्चतुर्दश तेषां युगं द्विगुणा मनव इत्यर्थः। बुधस्य कन्या तिथिसंख्ये पञ्चदशे भागे। जीवस्य कर्कट इन्द्रियसंख्ये पञ्चमे भागे। शुक्रस्य मीनस्त्रिनवकसंख्ये सप्तविंशे। सौरस्य तुला विंशे। ननु सर्व एव राशिरुच्चसंज्ञः स च त्रिंशदंशकः तत्र दशादीनां तदन्तर्भूतानां सिद्धैवोच्चसंज्ञा तत्किं दशाद्युपादानम्। सत्यम्। किंतु परमोच्चत्वज्ञापनार्थं दशादीनां ग्रहणम्। अन्यथा सर्व एव राशयोऽमी उच्चसंज्ञाः। तेनोक्तराशिदशाद्यंशस्थाः कथिता ग्रहाः परमोच्चस्था इत्युच्यन्ते।

(१) उच्च नीचचक्रम्।

	ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चम्	राशि	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
	अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचम्	राशि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
	अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

परमोच्चज्ञानेन चोच्चादव्यतिरिक्तं प्रयोजनमस्ति। तथा च भगवान् गार्गिः। 'स्वोच्चगो रविशीतांशू जनयेतां नराधिपम्। उच्चस्थौ धनिनं ख्यातं स्वत्रिकोणगतावपि।।' तथा च यवनेश्वरः 'स्वोच्चेषु सर्वान्परिगृह्य-भागांस्तिष्ठत्सु सर्वेषु बलाधिकेषु। लग्ने शुभे पूर्णवपुष्मतींदौ त्रैलोक्य-राज्याधिपतिः प्रसूते।।' अथेदृशा एवंविधाः सूर्यादयः परमोच्चस्थिता द्रष्टव्याः। अत्र वृत्तभङ्गभयात्पूरणप्रत्ययान्ता दशादय आचार्येण नोक्ताः। पूरणप्रत्ययान्तत्वमेषां यवनेश्वरवाक्याज्ज्ञायते। तथा च यवनेश्वरः। 'सूर्यस्य भागे दशमे तृतीये चन्द्रस्य जीवस्य तु पञ्चमेंऽशे। सौरस्य विंशे त्वधिसप्तके तु विद्याद्भृगोः पञ्चदशे बुधस्य। भौमस्य विशेऽष्ट-युते परोच्चम् विंशल्लवे सूर्यसुतस्य तूच्चम्।' तेऽस्तनीचा इति। त आदित्यादयो ग्रहा अस्तनीचाः अस्ते नीचम् येषां ते, अस्तः सप्तमः प्रकृतित्वात् स्वोच्चात्सप्तमः प्रत्येकस्य नीचसंज्ञा। तद्यथा। आदित्यस्य स्वोच्चान्मेषात्सप्तमस्तुला स नीचसंज्ञः। एवं चन्द्रस्य सप्तमो वृश्चिकः। भौमस्य सप्तमः कर्कटः। बुधस्य मीनः। गुरोर्मकरः। शुक्रस्य कन्या। सौरस्य मेष इति। अत्रापि दशादिषु भागेषु परमनीचस्था द्रष्टव्याः। तथा च यवनेश्वरः 'स्वोच्चात्तु जामित्रमुशन्ति नीचं त्रिंशल्लवो यच्च समानसंख्या।' अथेदृशा एवंविधा रव्यादयः परमनीचस्था भवन्ति। परमनीचस्थानामनिष्टं फलं भवतीति गार्गिणा प्रदर्शितम्। तथा च गार्गिः। 'अन्धं दिगम्बरं मूर्खं परपिण्डोपजीविनम्। कुर्यातामतिनीचस्थौ पुरुषं शशिभास्करौ।।' इति।।१३।।

भाषा- मेष में १० अंश से सूर्य का वृष में ३ अंश पर, चन्द्रमा का २८ अंश पर, मकर में मङ्गल का १५ अंश पर, कन्या में बुध का ५ अंश पर, कर्क में गुरु का २७ अंश पर , मीन शुक्र का २७ अंश पर और २० अंश पर तुला शनि का उच्च स्थान है। और ये सब ग्रह अपने-अपने उच्च से सप्तम राशि में उतने ही अंश पर परम नीच के होते हैं।

विशेष अर्थ- इसका प्रयोजन *'त्रिभिरुच्चगतैर्भूपोदीनोनीचस्थितैर्ग्रहैः'* इत्यादि जातक फल में होता है। उपरोक्त उच्च राशियों में अंश का निर्देश करने का आशय यह है कि जो राशि अपना उच्च भी है और मूल त्रिकोण भी है तथा स्वगृह भी है तो उनमें कौन-सा फल कहना चाहिए। *जैसे*- कन्या राशि बुध का गृह भी है, मूलत्रिकोण भी है और उच्च भी है, यदि बुध कन्या में हो तो वह किस अधिकार में समझा जायेगा? इसी प्रकार और ग्रहों में भी सन्देह-निवारण के लिए उच्च का अंशों से विभाग कर दिया गया है।।१३।।

यहाँ विशेष सारावली का वचन—

'विंशात्यंशोः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य ।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात् त्रिकोणमपरेंऽशाः ॥
द्वादश भागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।
उच्चमथो कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सदा चिन्त्यम् ॥
परतस्त्रिकोणभवनं पञ्चभिरंशैर्निजं गृहं परतः ।
दशभिर्भागैश्चापे त्रिकोणभवनं गुरोः स्वभं परतः ॥
शुक्रस्य तु तिथयोंऽशास्त्रिकोणमपरे स्वराशिश्च ।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा-सिंहे ॥'

सूर्य का सिंह में २० अंश तक मूलत्रिकोण तथा आगे के १० अंश स्वगृह। चन्द्रमा का वृष में ३ अंश तक उच्च तथा शेष २७ अंश त्रिकोण। मङ्गल का मेष में १२ अंश तक त्रिकोण, बाद के १८ अंश स्वगृह। बुध का कन्या में १५ अंश तक उच्च, उसके आगे के ५ अंश त्रिकोण तथा अन्त के १० अंश स्वगृह। शुक्र का तुला में १५ अंश त्रिकोण तथा अगले १५ अंश स्वगृह। शनि का कुम्भ में २० अंश तक त्रिकोण और बाद के १० अंश स्वगृह होते हैं॥१३॥

अधुना ग्रहाणां वर्गोत्तममूलत्रिकोणपरिज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्य-
पर्यन्ततः शुभफला नवभागसंज्ञाः ।
सिंहो वृषः प्रथमषष्ठहयाङ्गतौलि-
कुम्भास्त्रिकोणभवनानि भवन्तिसूर्यात् ॥१४॥

वर्गोत्तमा इति॥ चरगृहादिषु चरस्थिरद्विस्वभावेषु यथासंख्यं पूर्वमध्यपर्यन्ततः आदिमध्यावसानतः। पूर्वमध्यपर्यन्तगा वा पाठः। ये नव भागास्ते वर्गोत्तमसंज्ञा भवन्ति वर्गांशकसमूहे उत्तमाः। प्रधाना वर्गोत्तमाः। तद्यथा चरेषु मेषकर्कितुलामकरेषु प्रथमो नवांशो वर्गोत्तमाख्यो भवति। स्थिरेषु वृषसिंहवृश्चिककुम्भेषु मध्यमः, पञ्चमो नवांशको वर्गोत्तमः। द्विस्वभावेषु मिथुनकन्याधन्विमीनेषु पर्यन्ततः नवमो नवांशको वर्गोत्तमः। एतदुक्तम् भवति-प्रत्येकस्मिन् राशौ स्वनवमांशको वर्गोत्तमाख्यः इति। तथा च यवनेश्वरः। 'स्वे स्वे गृहेषु स्वगृहांशका ये वर्गोत्तमास्ते यवनैर्निरुक्ताः।' इति। शुभफला नवभागसंज्ञा इति। ते च वर्गोत्तमाख्या नवभागसंज्ञा जन्मनि शुभफलदाः शुभं फलं ददति। वक्ष्यति च। 'शुभं वर्गोत्तमे जन्म' इति। तथा च सत्यः। 'चरभवनेष्वाद्यंशाः स्थिरेषु मध्या

द्विमूर्तिष तथान्त्याः। वर्गोत्तमाः प्रदिष्टास्तेष्विह जाताः कुले मुख्याः।।' प्रयोजनम्-स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैः।' इति। सिंहो वृष इत्यादि। सिंहादयो राशयो यथापाठक्रमेण सूर्यादीनां ग्रहाणां त्रिकोणभवनानि मूलत्रिकोणभवनानि भवन्ति। तद्यथा। सिंहः सूर्यस्यादित्यस्य मूलत्रिकोणसंज्ञः वृषश्चन्द्रस्य प्रथमो मेषोऽङ्गारकस्य षष्ठः कन्या बुधस्य हयाङ्गो धन्वी बृहस्पतेः तौली तुला शुक्रस्य कुम्भः सौरस्येति। प्रयोजनम्–उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः इत्यादि।।१४।।

भाषा– चर, स्थिर और द्विस्वभाव में क्रम से प्रथम (१) मध्यम (५) और अन्तिम (९) नवांश शुभ फलदायक वर्गोत्तम कहलाता है। तथा सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला और कुम्भ राशि– ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के मूलत्रिकोण होते हैं।।१४।।

विशेष अर्थ- किसी भी राशि का अपना ही नवांश सर्वोत्तम कहलाता है। जैसे-मेष आदि चर राशियों में १ पहिला नवांश और वृष आदि स्थिर राशियों में मध्य का (५वाँ) तथा मिथुन आदि द्विस्वभाव राशि में अन्तिम (९वाँ) नवांश अपना ही होता है। इसका प्रयोजन 'शुभं वर्गोत्तमे जन्म' तथा *'उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः'* इत्यादि कहे हुए में आगे होता है।। १४।।

अधुना लग्नादीनां तन्वाद्या द्वादशसंज्ञाः, तृतीयषष्ठदशमैकादशानां चोपचयसंज्ञा वसन्ततिलकेनाऽऽह–

होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धु-
पुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः ।
रिःफाख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभ
दुश्चिक्यसञ्ज्ञितगृहाणि न नित्यमेके ।।१५।।

होरादय इति। होरादयो लग्नोदयस्तेषां यथाक्रमेण तन्वादीनि नामानि तत्र लग्नस्य तनुरित्याख्या। द्वितीयस्य कुटुम्बम्। तृतीयस्य सहोत्थः, सहोत्थो भ्राता। चतुर्थस्य बन्धु; बन्धुशब्दो ज्ञातिवाची। पुत्राख्यः पञ्चमः। अरिः शत्रुस्तदाख्यः षष्ठः। पत्न्याख्यः सप्तमः। मरणाख्योऽष्टमः। शुभाख्यो नवमः। आस्पदाख्यो दशमः। आयाख्य एकादशः। रिःफाख्यो द्वादश। इतिशब्दः प्रकारार्थद्योतकः। तेन होरादीनां तन्वादिपर्याया अपि संज्ञाभूता इत्यवगन्तव्यम्। उपचयान्यरिकर्मलाभदुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणीति। अरिः षष्ठं कर्म दशमं लाभ एकादशं दुश्चिक्यसंज्ञं तृतीयं एतानि गृहाणि स्थानानि उपचयसंज्ञानीति। न नित्यमेके

इति। एके केचिन्न नित्यमुपचयानीति वर्णयन्ति कथयन्ति। तेषामयमभिप्रायः। यदि पापग्रहेण स्वस्वामिशत्रुणा वा दृष्टा भवन्ति तदा नोपचयास्ते। तत्र च गर्गादिवाक्यम् 'अथोपचयसंज्ञा स्यात्त्रिलाभरिपुकर्मणाम्। न चेद्भवन्ति दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः।।'

'एतदाचार्यवराहमिहिरस्य नाभिप्रेतम्। यतोऽसौ सर्वदैवोपचयाख्यस्तैर्व्यवहरति। सत्यादयोऽप्येवम्। तथा च सत्यः। 'दशमैकादशषष्ठतृतीयसंज्ञानि जन्मलग्नाभ्याम्। उपचयभवनानि स्युः शेषाण्यृक्षाण्युपचयाख्यानि।।' यवनेश्वरश्च। 'षष्ठं तृतीयं दशमं च राशिमेकादशं चोपचयर्क्षमाहुः। होरागृहस्थानशशाङ्कभेभ्यः शेषाणि चैभ्योऽपचयात्मकानि।' प्रयोजनम्– 'उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत्।' इत्यादि।। १५।।

भाषा- तनु १, कुटुम्ब २, सहोत्थ (सहज) ३, बन्धु ४, पुत्र ५, अरि ६, पत्नी ७, मरण ८, शुभ ९, आस्पद १०, आय ११ और रिष्फ १२, ये लग्नादि द्वादश भावों की संज्ञा है। तथा ६, १०, ११, ३ इन चार स्थानों की उपचय (वृद्धि) संज्ञा है। ये नित्य उपचय नहीं हैं, ऐसा कितने आचार्यों का मत है।। १५।।

विशेष अर्थ- लग्न आदि के तनु इत्यादि नाम क्यों हुए, इसकी युक्ति लघुपराशरी की मेरी टीका में देखिये, तथा उपचय के नित्य नहीं होने में गर्ग का वाक्य– *'अथोपचयसंज्ञा स्यात् त्रिलाभरिपुकर्मणाम्। चेद् भवन्ति न दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः'* – अर्थात ३,६,१०,११ इन सबकी उपचय संज्ञा तभी होती है, जब पापग्रह अथवा अपने स्वामी के शत्रु से दृष्ट नहीं हो। पर वराहमिहिर ने सत्याचार्य के अनुसार नित्य उपचय माना है। इस प्रकार उपचय से भिन्न स्थान अपचयसंज्ञक है।।१५।।

पुनरपि होरादीनां संज्ञांतराणि वसन्ततिलकेनाऽऽह–

कल्पस्वविक्रमगृहप्रतिभाक्षतानि
चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभवव्ययानि ।
लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञे
द्यूनं च सप्तमगृहंदशमर्क्षमाज्ञा(१) ।। १६ ।।

कल्पेति।। एतेषामपि लग्नादीनां द्वादशानां यथाक्रमं कल्पाद्याः संज्ञा भवन्ति। तद्यथा लग्नं कल्पाख्यम्। कल्पशब्दः शक्तीवाची। द्वितीयं स्वम्। तृतीयं विक्रमम्। चतुर्थं गृहम्। पञ्चमं प्रतिभा। षष्ठं क्षतम्।

(१) 'दशम खमाज्ञा' इति पाठः साधुः।

सप्तमं चित्तोत्थम्। अष्टमं रन्ध्रम्। नवमं गुरुम्। दशमं मानम्। एकादशं भवम्। द्वादशं व्ययम्। लग्नाच्चतुर्थनिधने इति। लग्नाच्चतुर्थं स्थानं निधनमष्टमं च ते चतुरस्रसंज्ञे चतुरस्राख्ये, लग्नात्सप्तमं गृहं द्यूनं, दशमर्क्षं दशमराशिराज्ञाख्यः। एताः संज्ञा व्यवहारार्थ ज्ञेयाः।। १६।।

भाषा- कल्प १, स्व (धन) २, विक्रम ३, गृह ४, प्रतिभा (बुद्धि) ५, क्षत ६, चित्तोत्थ (मदन) ७, रन्ध्र ८, गुरु ९, मान १०, भव ११, व्यय १२, ये लग्नादि द्वादश भावों के नाम हैं। लग्न से ४।८ भावों की चतुरस्र संज्ञा, सप्तम की द्यून संज्ञा तथा ख और आज्ञा ये दशम के नाम हैं।।१६।।

अथ केन्द्राणां संज्ञास्तत्स्थराशिबलं च दोधकेनाऽऽह-

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम्।
तेषु यथाभिहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च ।।१७।।

कण्टकेति।। सप्तमलग्नचतुर्थानि प्रसिद्धानि। खभं दशमम्। ख आकाशमध्ये तत्कालं यद्भं राशिबर्तते तस्य खभमिति संज्ञा। एतेषां सप्तमलग्नचतुर्थखभानं राशीनां प्रत्येकस्य कण्टककेन्द्रचतुष्टयाख्यास्तिस्रः संज्ञाः। तेषु स्थानेषु यथाभिहितेषु यथानिर्दिष्टेषु कीटनराम्बुचराः पशवश्च राशयो बलाढ्या भवन्ति। तद्यथा कीटो वृश्चिकः सप्तमे स्थाने बली। नराः नृराशयो मिथुनकन्यातुलाधन्विपूर्वार्धकुम्भाः एते लग्ने स्थिता बलिनः। अम्बुचरा जलचरराशयः कर्कटमीनमकरपरार्द्धास्ते चतुर्थस्थाने बलिनः। पशवश्चतुष्पदाः मेषवृषसिंहधन्विपरार्द्धमकरपूर्वार्द्धास्ते दशमस्थान बलिनः। तथा च भगवान् गार्गिः। 'नृयुक्तुला घटः कन्या पूर्वमर्द्धं च धन्विनः। लग्नस्था बलिनो ज्ञेया एते हि नरराशयः। चतुर्थे कर्कटो मीनो मकरार्द्धं च पश्चिमम्। विज्ञेया बलिनो नित्यमेते हि जलराशयः। सप्तमे वृश्चिकः कीटो बलवान्परिकीर्तितः। धन्व्यन्तार्द्धाजगोसिंहा बलिनः खे चतुष्पदाः।' अत्रार्द्धशब्देन मकरपूर्वार्द्धमपि गृह्यत' इति।। १७।।

भाषा- केन्द्र आदि संज्ञा– लग्न से ७, १, ४ और १० इन चारों स्थानों की कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय– ये तीन संज्ञाएँ हैं। इनमें यथाक्रम से पठित (७, १, ४, १०) स्थानों में क्रम से कीट, नर, जलचर, पशु (चतुष्पद) राशियाँ बली होती हैं।। १७।।

धनुः पूर्वदलं कन्या नृयुक्कुम्भ-तुलानराः।
मृगान्त्यार्थं च मीनश्च कर्कश्च जलराशयः।।
गोऽजसिंहा मृगाद्यार्थं चापान्त्यार्थं चतुष्पदाः।
कीटाख्यो वृश्चिकस्त्वेवं राशयो हि चतुर्विधाः।।

अधुना परिशिष्टस्थानानां संज्ञान्तराणि वसन्ततिलकेनाऽऽह—

केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्वमा-
पोक्लिमं हिबुकमम्बुसुखं च वेश्म ।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं,
मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात् ।।१८।।

केन्द्रादिति। सर्वस्मात्केन्द्राद्द्वितीयस्थानं पणफरं तेन द्वितीयपञ्चमाष्टमैकादशस्थानानां पणफरसंज्ञा। परतश्च सर्वमापोक्लिमं सर्वस्मात्पणफरात्परं सर्वं स्थानमापोक्लिमं तेन तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थानानामापोक्लिममिति संज्ञा। हिबुकमम्बुसुखं च वेश्म वेश्मशब्दो गृहपर्याया वेश्मेति चतुर्थस्य प्राक्संज्ञाभिहिता तस्यैव हिबुकसंज्ञा च। जामित्रमस्तभवनम्। अस्तभवनं सप्तमस्थानम्। यतः सर्व एव ग्रहा उदयराशेः सप्तमराशावस्तं यान्ति तदेवास्तभवनं जामित्रम्। सुतभं त्रिकोणम्। सुतभं पञ्चमस्थानं त्रिकोणसंज्ञम्। मेषूरणं दशमं दशमस्थानं मेषूरणसंज्ञं च। अत्रास्मिन् दशमे स्थाने कर्मेत्यपरां संज्ञां विद्यात् जानीयात्।।१८।।

भाषा- केन्द्र (१।४।७।१०) के आगे के (२, ५, ८, ११), इन चार स्थानों का नाम पणफर है। उसके अतिरिक्त सब (३, ६, ९, १२), ये आपोक्लिम संज्ञक हैं। हिबुक, अम्बु, सुख, वेश्म– ये ४ चतुर्थभाव की, तथा सुत, त्रिकोण– ये पञ्चम भाव की और मेषूरण, कर्म ये दशम भाव की संज्ञायें हैं।।१८।।

अथ होरादीनां राशीनां बलं व्यवहारार्थं प्रमाणं च शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा
केन्द्रस्था द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते चसंध्याद्वये ।
(१) पूर्वार्द्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तद्
दुश्चिक्यं सहजं तपश्च नवमं त्र्याद्यं त्रिकोणं च तत् ।।१९।।

(१) पूर्वार्द्ध इति। एतेन सार्द्धसप्ताङ्गुलपलभासन्नदेशे मेषादीनां राशीनामंशात्मकान्युदयमानानि साधितानि। तत्साधनं सयुक्तिकं प्रदर्श्यते तत्र स्वदेशोदयसाधनार्थं चरपलसाधनार्थं ग्रहलाघवोक्तमद्यम्–

'मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्द्धजाभा पलभा भवेत् सा।
त्रिष्ठा हन्ता स्युर्दशभिर्भुजङ्गैर्दिग्भिश्चराद्धाणि गुणोद्धृतान्त्या।।

एतत्पद्यानुसारेण सार्द्धसप्ताङ्गुलपलभादेशे मेषादिराशित्रयस्य चरपलानि मेच=७५। वृष=६०। मिच=२५। ततो–

'लङ्कोदया विघटिका गजभानि गोङ्कदस्रास्त्रिपक्षदहना कृमगोत्क्रमस्थाः।
हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थैर्मेषादितो घटत उत्क्रमस्त्विमे स्युः।।
एतत्पद्यानुसारेण सार्धसप्ताङ्गुलासन्नपलभादेशे उदयमानानि पलात्मकानि।

लङ्कोदय, चर-पला. स्वदेश उदय

मेष उदय	= २७८-७५=२०३=२००	स्वल्पान्तरात्
वृष उदय	= २९०-६०=२३६=२४०	,,
मिथु.उदय	= ३२३-२५=२९८=२८०	,,
कर्क उदय	= ३२३+२५=३४८=३२०	,,
सिंह उदय	= २९९+६०=३५९=३६०	,,
कन्या उदय	= २७८+७५=३५३=४००	,,

अत्राचार्येण स्वल्पान्तरात् फलोपयोगित्त्वाच्चत्वारिंशत्पलोत्तराणि गृहीतानि तात्रिंदश भक्ता-त्र्यंशात्मकानि मेषादिषड्राशीनामुदयमानानि-

मेष उदय	= २००÷१०=२०=५ X ४।
वृष उदय	= २४०÷१०=२४=६ X ४।
मिथु.उदय	= २८०÷१०=२८=७ X ४।
कर्क उदय	= ३२०÷१०=३२=८ X ४।
सिंह उदय	= ३६०÷१०=३६=९ X ४।
कन्या उदय	= ४००÷१०=४०=१० X ४।

एतान्येव विलोमेन तुलादीनां षण्णां राशीनां मानानि भवन्ति।
उक्तञ्च सिद्धान्तशिरोमणौ–

योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तयोऽस्तमुपयाति तेन च।
राशिरूर्ध्वमपमण्डलं कुजादर्धमेव सततं यतः स्थितम्।।' इति। अत उपपन्नम्।

होरेति।। होरा लग्नं तत्स्वामिना तत्पतिना वीक्षिता दृष्टा वीर्योत्कटा बलवती भवति। तथा तेनैव युता संयुता बलवती। तथा गुरुणा जीवेन वीक्षिता युता च बलवती। तथा ज्ञेन बुधेन वीक्षिता युता च बलवती भवति। नान्यैश्चेति। अन्यैर्ग्रहैः स्वामीगुरुज्ञवर्जितैर्दृष्टा युता वा बलवती न भवति। अथ यद्युक्तानुक्तैर्मिश्रैर्युतदृष्टा भवति तदा मध्यबला अर्थादिव स्वामीगुरुज्ञवर्जमन्यैर्युतदृष्टा बलहीना भवति। तथा च बादरायणः। 'जीवस्वनाथशशिजैर्युतदृष्टा बलवती भवति होरा। मेषैर्बलहीना स्यादेवं मिश्रैतु मध्यबला।। बलहीना यदि सर्वैर्न वीक्षिता नैव युक्ता वा।।' केन्द्रस्थाः इति वीर्योत्कटा इत्यनुवर्तते। अत्रादिशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः। केन्द्रस्थाः सर्वा एव राशयो बलिनो भवन्ति। पणफरस्था

मध्यबला आपोक्लिमस्था हीनबलाः। अत्र केचित् केन्द्रपणफरापोक्लिमस्थानां द्विपदचतुष्पदकीटानां यथाक्रमं बलवत्त्वं व्याचक्षते। तदयुक्तम्। यस्माद्बादरायणः। 'केन्द्रस्थातिबलाः स्युर्मध्यबलाः पणफराश्रिता श्रेयाः। आपोक्लिमगाः सर्वे हीनबलाः राशयः कथिताः॥' इति। द्विपदादयोह्नि निशि च सन्ध्याद्वय इति। वीर्योत्कटा इत्यनुवर्तते। द्विपदचतुष्पदकीटाः यथाक्रममह्नि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये वीर्योत्कटा भवन्ति। अह्नि दिने द्विपदा बलिनः निशि रात्रौ चतुष्पदाः सन्ध्याद्वये कीटाः। अत्र न केवलं वृश्चिकः यावदाप्याः सर्वे कीटग्रहणेन ज्ञेयाः। अत्र च श्रीदेवकीर्तिः। 'मिथुनतुलकुम्भकन्या दिवा बला धन्विनश्च पूर्वार्धम्। अजवृषसिंहा रात्रौ मृगहययोः पूर्वपश्चार्धे॥ वृश्चिकमीनकुलीरा मकरान्त्यार्द्धं च सन्ध्यायाम्।' इति। पूर्वार्द्धे विषया कृतगुणाः इति। विषयादयः इद्रियाणि तानि पञ्च तदादयः पञ्चषट्सप्ताष्टनवदश कृतगुणा इति। विषया सर्व एव कृतगुणाश्चतुर्गुणिताः पूर्वार्द्धे मानम्। कस्य। प्रकृतत्वाद्धचक्रस्य पूर्वार्द्धे प्रथमराशिषट्के इत्यर्थः। प्रतीपं च यदेव चक्रपूर्वार्द्धे मेषादीनां राशीनां षण्णां प्रमाणं तदेव प्रतीपं च विपर्यस्तं तुलादिषु षट्सु मानम्। तद्यथा विषयादयः ५।६।७।८।९।१० एते चतुर्गुणिता जाताः २०।२४।२८।३२।३६।४० एते प्रमाणं मेषादीनां व्यत्ययाच्च तुलादीनामिति। तथा च सत्यः। 'चतुरुत्तरोत्तराः स्युर्विंशतिभागा भवन्ति मेषाद्ये। मानमिहार्द्धे पूर्वे मीनाद्ये चोत्क्रमादर्धे॥' भागव्यवहारश्च क्षेत्रे भागेनैकेन काले दश चषका भवन्ति। यस्माद्या कला क्षेत्रे सा काले प्राण इति। यस्माद्भट्टब्रह्मगुप्तेनोक्तम्। 'लङ्कासमपश्चिमगं प्राणेन कलां भूमण्डले भ्रमति।' इति। एवमेते भागा दशगुणिताश्चषका भवन्ति। तत्रैतज्ज्ञातम्। काले घटिका सा षष्ट्यधिकेन शतत्रयेण गुणिता प्राणा भवन्ति। क्षेत्रे च ता एव विलिप्तास्तासां षष्ट्या भागमपहृत्य षड्भागाः क्षेत्रे भवन्ति। एवं मेषादीनां प्राणभागा दशगुणिताश्चषका भवन्ति। तेन चषकशतद्वयं मेषमीनयोः प्रमाणम्। एवं चत्वारिंशदधिकं शतद्वयं वृषकुम्भयोः। शतद्वयमशीत्यधिकं मिथुनमकरयोः शतत्रयं विंशत्यधिकं कर्कटधनुषोः। शतत्रयं षष्ट्यधिकं सिंहवृश्चिकयोः शतचतुष्टयं कन्या-तुलयोः। एत एव चषकाः दशविभक्ताः, भागत्वेन परिकल्पिताः। यतः क्षेत्रे दशभिश्चषकैर्भागो भवति। ननु चरदलवशात्प्रतिदेशमननुरूपेषु राश्युदयेषु गणितस्कन्धसिद्धेषु किमर्थमेकरूपं तदुदयप्रमाणं दर्शितमाचार्येण।

अत्रोच्यते। नष्टचिन्तादिष्वर्थपरिज्ञानाय पुरुषावयवानां ह्रस्वदीर्घत्वज्ञापनायोपयुज्यते। तथा च यवनेश्वरः। 'आद्यन्तराशेरुदयप्रमाणं द्वौ द्वौ मुहूर्तौ नियतं प्रदिष्टौ। क्रमोत्क्रमाभ्यामधिपञ्चमं स्याच्चक्रार्द्धयोर्विद्धयुदयप्रमाणम्। एवम्प्रमाणानि गृहाणि बुद्ध्वा ह्रस्वानि मध्यानि तथायतानि। चक्राङ्गभेदैः सदृशीकृतानि मार्गप्रमाणानि विकल्पयीत।।' अङ्गविभागकल्पनं वक्ष्यति कादिविलग्नविभक्तभगात्र इति। तत्र यस्मिन्नङ्गे दीर्घराशिर्भवति दीर्घाधिपो वा ग्रहस्तदङ्गं दीर्घं भवति, मध्ययोर्मध्यं, ह्रस्वयोर्ह्रस्वमिति तथा च सारावल्याम् ह्रस्वास्तिमिगोजघटा मिथुनधनुः कर्किमृगमुखाश्च समाः। वृश्चिककन्यामृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः।। एभिर्लग्नादिगतैः शीर्षप्रभृतीनि सर्वजन्तूनाम्। सदृशानि च जायन्ते गगनचरैश्चैव तुल्यानि।।' तथा च सत्यः। 'दीर्घाधिपतिर्दीघे गृहे स्थितोऽवयवदीर्घकृद्भवति।' एवमादिष्वर्थेष्वेतैर्विकल्पना कार्या। लग्नोदयनिरूपणो गणितस्कन्धसिद्धेरेव कार्येति। दुश्चिक्यं सहजमिति। सहजस्य तृतीयस्थानस्य दुश्चिक्यसंज्ञा। तपश्च नवममिति। नवमस्थानस्य तु तपः संज्ञा। त्र्याद्यं त्रिकोणं च तत्। तदेव नवमं स्थानं त्र्याद्यं त्रिकोणं त्रिशब्द आद्यो यस्य तत्त्रिस्त्रिकोणमित्यर्थः। त्रिकोणं च तदेव नवममिति।।१९।।

भाषा- यदि लग्न अपने स्वामी और बुध, गुरु से दृष्टयुत हो, दूसरे ग्रह से युतदृष्ट नहीं हो तो विशेष बलवान् होता है। अर्थात् सिद्ध हुआ कि दूसरे ग्रह से भी युतदृष्ट हो तो मध्यबली होता है। और स्वामी तथा बुध, गुरु से दृष्ट न हो तो निर्बल होता है। तथा द्विपद, चतुष्पद, जलचर और कीट, ये केन्द्र में बली होते हैं। अर्थात् पणफर में मध्यबल और आपोक्लिम में हीनबल समझे जाते हैं। तथा द्विपद राशि दिन में, चतुष्पद रात्रि में तथा जलचर और कीट दोनों सन्ध्या के समय बली होते हैं। पाँच आदि अंकों (५।६।७।८।९।१०) को ४ से गुणा करने से (२०।२४।२८।३२।३६।४०) क्रम से पूर्वार्द्ध अर्थात् मेषादि ६ राशियों के अंशात्मक उदयमान होते हैं। तृतीय भाव का दुश्चिक्य और नवम का तप और त्रित्रिकोण नाम है।।१९।।

विशेष अर्थ- स्थूल व्यवहार के लिए ७।३० अर्थात् साढ़े सात पलभासन्न देशीय मान साधन कर अंशात्मक बनाकर आचार्य ने यहाँ पठित किया है। इसका प्रत्येक देश में व्यवहार नहीं हो सकता है। उदाहरणस्वरूप पलभा=७।३० इस पर से चरखण्डा ७५।६०।२५ इनको क्रमोत्क्रम से लङ्कोदय में घटाने और जोड़ने से स्वदेशोदय पल होते हैं तथा पलों में १० का भाग देने पर अंशात्मक मान सिद्ध होता है।।१९।।

स्पष्टार्थ गणित देखिये-

	लङ्कोदय– चरखण्ड–स्वोदयपल–अंशात्मक	
मेष मीन	२७८–७५=२०३=२०=५ X ४	स्वप्लान्तरात्
वृष कुम्भ	२९९–६०=२३९=२४=६ X ४	,,
मिथु.मक.	३२३–२५=२९८=२८=७ X ४	,,
कर्क धनु	३२३+२५=३४८=३२=८ X ४	,,
सिंह वृश्चि.	२९९+६०=३५९=३६=९ X ४	,,
कन्यातुला	२७८+७५=३५३=४०=१० X ४	,,

अधुना राशिवर्णान्मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

रक्तः श्वेतः शुकतनुनिभः पाटलो धूम्रपाण्डु-
श्चित्रः कृष्णः कनकसदृशः पिङ्गलः कर्बुरश्च ।
बभ्रुः स्वच्छः प्रथमभवनाद्येषु वर्णाः प्लवत्वं
स्वाम्याशाख्यं दिनकरयुताद्भादद्वितीयं च वेशिः ॥२०॥

रक्त इति ।। प्रथमभवनं मेषस्तदादिषु राशिषु यथाक्रममेते वर्णाः। तत्र मेषो रक्तो लोहितवर्णः। वृषः श्वेतः शुक्लः। मिथुनः शुकतनुनिभः हरित इत्यर्थः। कर्कटः पाटलः पाटलापुष्पवर्णः ईषत्कृष्णरक्त इत्यर्थः। सिंहो धूम्रपाण्डुरीषच्छुक्लः। कन्या चित्रा नानावर्णेत्यर्थः। तुला कृष्णः। वृश्चिकः कनकसदृशः सुवर्णवर्णः। धन्वी पिङ्गलः पीतवर्णः। मकरः कर्बुरः शुक्लकपिलव्यामिश्रवर्णः। कुम्भो बभ्रु नकुलवर्णसदृशः। मीनः स्ववर्णो मत्स्यवर्ण इत्यर्थः। प्रयोजनम्–'वियोनिजन्मज्ञाने लग्नांशकादिति वक्ष्यति। प्लवत्वं स्वाम्याशाख्यमिति। स्वामिन आशा स्वाम्याशा, आशा दिक् तत्र प्लवत्वं, प्लवस्य भावः प्लवत्वम्। सर्वस्य राशेः स्वम्याशाख्यं स्थानं प्लवत्वं निम्नतेत्यर्थः। यथा मेषवृश्चिकयोर्भौमोऽधिपतिः, तस्य दक्षिणा दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ। वृषतुलयोः शुक्रोऽधिपतिः, तस्याग्नेयी दिक्, तत्र प्लवसंज्ञौ। मिथुनकन्ययोर्बुधोऽधिपतिस्तस्योत्तरा दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ। कर्कटस्य चन्द्रोऽधिपतिस्तस्य वायवी दिक्, तत्र स प्लवसंज्ञः। सिंहस्यादित्योऽधिपतिस्तस्य पूर्वा दिक्, तत्र स प्लवसंज्ञः। धन्विमीनयोर्जीवोऽधिपस्तिस्तस्यैशानी दिक्, तत्र तौ प्लवसंज्ञौ। मकरकुम्भयोः सौरोधिपतिस्तस्य पश्चिमा दिक्, तत्र तौ प्लवसंज्ञौ। एवं राशिस्वामिनो या दिक् तद्दिक्प्लवो राशिर्ज्ञेयः। प्रयोजनम्– 'हृतनष्टादिषु तद्दिङ्मुखम् चौरादेः। अन्यच्च यात्रायामुपयुज्यते।' तथा च सारावल्याम्। 'भवनाधिपतिग्रामप्लव इह यवनैः प्रबन्धतः कथितः। चिरेण महीपतिः

शत्रून्।।' इति। दिनकरयुताद्भाद्द्वितीयं तत्प्लवगो विनिहन्यादि च वेशिरिति। दिनकरः सूर्यस्तेन युतो यो राशिस्तस्माद्द्वितीयो वेशिसंज्ञः। प्रयोजनं यात्रायां वक्ष्यति। 'वेशिर्विलग्नोपगयो यियासोः' इति। तथा च। 'वेशिस्थाने च सद्ग्रहः' इत्यादि। अत्र संज्ञाध्याये याः संज्ञा उक्तास्ता द्विप्रकाराः। तत्र काश्चित्संज्ञामात्रप्रयोजनाः, काश्चित्फलनिर्देशप्रयोजनाः। तत्रेमाः संज्ञामात्रप्रयोजनाः। यथा लग्नस्य होरा तृतीयस्य दुश्चिक्यम्। चतुर्थस्य हिबुकम्। पञ्चमस्य त्रिकोणम्। सप्तमस्य द्यूनम्। नवमस्य त्रिकोण-संज्ञा। दशमस्य मेषूरणम्। द्वादशस्य रिःफम्। चतुर्थाष्टमयोश्चतुरस्रसंज्ञा। लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां कण्टककेंद्रसंज्ञा चतुष्टयसंज्ञा च। तथा द्वितीय-पञ्चमाष्टमैकादशस्थानानां पणफरसंज्ञा। तृतीयषष्ठनवमद्वादशानामा-पोक्लिमसंज्ञा। एताः संज्ञामात्रप्रयोजनाः। इमाश्च फलनिर्देशप्रयोजनाः। तत्र लग्नस्य तनुर्संज्ञा कल्पसंज्ञा च। तेन लग्नाच्छरीरवृद्ध्यन्वेषण-मारोग्यान्वेषणं च कार्यम्। द्वितीयस्य कुटुम्बसंज्ञा च। तेन तस्माज्ज्ञाति-धनान्वेषणं कार्यम्। तृतीयस्य सहजसंज्ञा विक्रमसंज्ञा च। तेन तस्माद् भ्रातृणां पुरुषार्थस्य चान्वेषणं कार्यम्। चतुर्थस्य बन्धुसंज्ञा वेश्मसंज्ञा सुखसंज्ञा च। तेन तस्माद्बन्धुसुखगृहाणां चान्वेषणं कार्यम्। पञ्चमस्य बुद्धिसंज्ञा पुत्रसंज्ञा च। तेन तस्माद्बुद्धिपुत्रयो रन्वेषणं कार्यम्। षष्ठस्य अरिसंज्ञा क्षतसंज्ञा च। अरिशब्दः शत्रुवाची क्षतशब्दो व्रणवाची तेन तस्मादरातिव्रणान्वेषणं कार्यम्। सप्तमस्य दारसंज्ञा चित्तोत्थसंज्ञा जामित्रसंज्ञा च। दारशब्द भार्यावाची, तेन तस्माद्भार्याकामविवाहान्वेषणं कार्यम्। अष्टमस्य मरणरन्ध्रसंज्ञा। मरणं मृत्युः, रन्ध्रशब्दः पापपर्यायः, तेन तस्मान्मरणपापान्वेषणं कार्यम्। नवमस्य शुभसंज्ञा गुरुसंज्ञा तपःसंज्ञा च। शुभशब्देनात्र धर्मो ज्ञेयः, गुरवो मातृपितृपूर्वकाः तपो व्रतादि, तेन तस्माद्धर्ममातृपितृपूर्वकाणां गुरूणां तपसां चान्वेषणं कार्यम्। दशमस्या-स्पदकर्मसंज्ञा। आस्पदशब्दः कर्मवाची स्थानवाची वा कर्मास्पदसंज्ञे सुप्रसिद्धे; तेन तस्मात् क्रियाभावान्वेषणं कार्यम्। एकादशस्य भवाय-संज्ञा। भवशब्दोऽत्र विद्यादिगुणसम्पत्प्राप्तिवाची आयशब्दोऽर्थवाची। तेन तस्मात्तयोरन्वेषणं कार्यम्। व्यय इति द्वादशस्याख्या, तेन तस्मा-द्व्ययान्वेषणं कार्यम्। तृतीयषष्ठदशमैकादशस्थानानुपचयसंज्ञा उपचय-करत्वात्। इदं च तेषामुपचयकरत्वं यदि तत्रस्थाः पापा अपि शुभ-फलदा भवन्ति। तथा हि 'षष्ठस्थानं बिना सौम्याः सर्वत्र भावविवृद्धि-

कराः। षष्ठस्थाः पुनररिहानिं न कुर्वन्ति क्षतहानिं च।।' पापास्तूपचयस्था भावविवृद्धिं कुर्वाणा अपि षष्ठमुचयस्थानं तच्चिंत्यदुष्टभावयोररिक्षतयोरपि हानिं कुर्वन्ति यतस्तेषामुपर्युचयकरा इत्यन्वर्थसंज्ञा। उपचयस्थास्त एव पापदा भावहानिं कुर्वाणा अपि अष्टमद्वादशस्थानं विचिन्त्यमनिष्टभावं भावस्यानिष्टत्वात् स्थानस्योपचयात्मकत्वाद्वृद्धिं प्रापयन्ति। तथा च श्रीदेवकीर्तिः। 'सौम्याः षष्ठे पापास्तन्वर्थसुखारिधर्मधीद्युनगाः। कुर्युर्भावविपत्तिशेषोपगताश्च तद्वृद्धिम्।।' इति। एतद्विशेषवचनं बिना सर्वत्रोपतिष्ठत इति।।२०।।

भाषा- १ लाल, २ शुक्ल, ३ हरा (हरित), ४ सफेद-लाल मिला हुआ, ५ धूम्रपाण्डु (श्वेत-पीतमिश्रित पाण्डु कहलाता है उसमें भी कुछ कालापन), ६ चित्र (अनेक वर्ण), ७ कृष्ण, ८ सुवर्ण वर्ण, ९ पिङ्गल (कपिल) १० कर्बुर (अनेक वर्ण), ११ बभ्रु (पिङ्गल), १२ स्वच्छ। ये क्रम से मेष आदि १२ (बारह) राशियों के वर्ण हैं तथा स्वामियों की दिशा में राशियों-का प्लवत्व (झुकाव) होता है, और सूर्य से द्वितीय स्थान 'वेशि' संज्ञक है।२०।

विशेष अर्थ– इसका प्रयोजन *'चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः'* लग्नांशकाद् *'ग्रहयोगेक्षणाद्वा'* इत्यादि जातक और चोर आदि के वर्ण समझने में होता है। तथा प्लवत्व का प्रयोजन हृतनष्टादि में। प्लवत्व दिशा में चोर तथा वस्तु की स्थिति रहती है। तथा तत्प्लवगे। विनिहन्यादिचरेण महीपतिः शत्रून्' इत्यादि युद्ध यात्रा में होता है। तथा जन्मकाल में वेशिस्थान में शुभग्रह हो तो जातक भाग्यवान् होता है।।२०।।

इति सटीक बृहज्जातके राशिप्रभेदाध्यायः ।। १ ।।

अथ ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायः ।।२।।

अथातो ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायो व्याख्यायते। तत्र चराचरं जगद्ग्रहभयमेव प्राक्कालाख्यपुरुषस्य कालाङ्गनीत्येचं मेषादिना राशिनक्षत्रमयोंऽगविभागः प्रदर्शितः। तत्प्रदर्शनेन ग्रहमय एवासौ प्रदर्शितो भवति यतो राशिस्वामिनो ग्रहा एव अधुना तस्यात्मादीन्भावान्ग्रहमयानेव जगत्पालकांस्तथा राजादीन्ग्रहमयानेव शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः।
राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः ।।१।।

कालात्मा दिनकृदिति।। कालस्यात्मा कालात्मा दिनकृत्सूर्यः। तस्यैव तुहिनगुरुश्चन्द्रो मन तुहिनेन हिमेन सदृशाः शीतलाः गावो रश्मयो यस्य स तुहिनगुः। सत्त्वं कुजो भौमः। सत्त्वस्य लक्षणम्। 'अधिकारकरं सत्त्वं वासनाभ्युदयागमे।' सत्त्वशब्दोऽत्र शौर्यपर्यायः यच्च सिंहादीनामस्ति तथा च 'एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञे। सत्त्वाश्रयान्मृग-पतौ राजेति गिरः परिणमन्ति।'' उत्कृष्टस्वभावेनेत्यर्थः। ज्ञो बुधो वचो गिरः। जीवो बृहस्पतिर्ज्ञानसुखे ज्ञानं च सुखे ज्ञानसुखे। सितः शुक्रो मदनः कामः। दिनस्येशो दिनेशः सूर्यस्तस्यात्मजः पुत्रः शनैश्चरा दुःखम्। अत्र कालग्रहणं कालस्य सर्वगतत्वप्रदर्शनार्थम्। अत्र न केवलं कालपुरुषस्य मेषाद्या राशयः शिरःप्रभृत्यंगविभागेन स्थिताः यावदादित्यादियश्चात्म-विभागेन सर्वस्य जगतः स्थिताः। प्रयोजनम्। 'पीडिते ग्रहे देहतोऽपि तदङ्गभावात्मगुणपीडनं वक्तव्यं पुष्टे पुष्टिः।' इति। न केवलं यावज्जन्मनि बलवद्भिर्ग्रहैरेत एव भावा आत्मादयः शुभा भवन्ति दुर्बलैर्दुर्बलाः किन्तु सौरस्य विपरीतम्। तथा च सारावल्याम्–

'आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतम्।।'इति।।

राजानावित्यादि। रविरादित्यः शीतगुश्चन्द्रः एतौ राजानौ नृपौ। क्षिति-भूमिरस्याः सुतः पुत्रोंऽगारकः सनेता सेनापतिः। कुमारो बुधः कुमारो जुव-राजः राजपुत्र इति केचित्। सूरिर्बृहस्पतिः दानवपूजितः शुक्रः एतौ सचिवौ मन्त्रिणौ। सहस्रांशुः सूर्यस्तस्माज्जातः शनैश्चरः स प्रेष्यो दासः। ननु जगत्पालनकरणे शनैश्चरः प्रेष्यः किमत्रोच्यते। प्रेष्योऽपि स्वकर्मणां पालक एव। प्रयोजनम्। जन्मनि प्रश्नकाले वा बलवानुपचयस्थो ग्रहो भवति। तदुक्तो राजादिकस्तस्य कार्यसाधको भवति अन्यथा हानिकरः।। १ ।।

भाषा– सूर्य काल (समय रूप परमेश्वर) की आत्मा है, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्व (बल), बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख, शुक्र काम तथा शनि कालपुरुष का दुःख है। सूर्य और चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध युवराज, गुरु और शुक्र ये दोनों मन्त्री तथा शनि प्रेष्य (भृत्य) है।।१।।

विशेष अर्थ– इसका प्रयोजन *'आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तरा। दुर्बलैर्दुर्बलाज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतः।।'* आत्मा आदि ग्रहों के बली होने से आत्मा आदि पुष्ट और निर्बल होने से आत्मा आदि भी दुर्बल होते हैं। तथा राजा आदि ग्रह जन्म-समय या प्रश्न-समय में बली और लग्न से उपचय में हो तो राजा आदि हो या राजादि के द्वारा कार्य-सिद्धि होती है।।१।।

अधुना व्यवहारार्थं सूर्यचन्द्रबुधाङ्गारकशनैश्चराणां सञ्ज्ञा शालिन्याऽऽह—

हेलिः सूर्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिर्हेम्ना विज्ञो बोधमश्चेन्दुपुत्रः।
आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः कोणो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च ॥२॥

हेलिरिति॥ सूर्य आदित्यो हेलिसंज्ञः। चन्द्रमाः शीतरश्मिसंज्ञः। शीता रश्मयः किरणाः यस्य सः। इन्दुपुत्रो बुधः स हेम्ना विज्ञो बोधनः एतास्तस्य संज्ञाः। अवनिर्भूस्तस्यापत्यभावनेयो भौमः स आरः वक्रः क्रूरदृक् एताः भौमस्य संज्ञाः। सूर्यपुत्रः सौरः कोणः मन्दः असितः एताः शनैश्चरस्य संज्ञाः॥२॥

भाषा—सूर्य का नाम हेलि। चन्द्रमा का शीतरश्मि। बुध के इन्दुपुत्र, हेम्ना, वित् एवं बोधन नाम हैं। मङ्गल के आर, क्रूरदृक् आवनेय। शनि के कोण, मन्द, सूर्यपुत्र, असित॥२॥

अधुना गुरुशुक्रराहुकेतूनां संज्ञा वसन्ततिलकेनाऽऽह—

जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसां पतीज्यः
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च।
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखीति केतुः
पर्यायमन्यमुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥३॥

जीव इति॥ जीवो बृहस्पतिः स एवाङ्गिराः सुरगुरुः सुरा देवास्तेषां गुरुः वचसां पतिः तथा इज्यः पूज्यः देवानाम् एता बृहस्पतेः संज्ञाः। शुक्रो भार्गवः स एव भृगुः भृगुसुतः सितः आस्फुजित् च शब्दः समुच्चयार्थः एताः शुक्रस्य संज्ञाः। राहुः स्वर्भानुः स एव तमः अगुः न विद्यन्ते गावो रश्मयो यस्य सः अरश्मिरित्यर्थः असुरो दैत्यः एता राहोः संज्ञाः। शिखीति केतुः केतोः शिखीति संज्ञा शिखा विद्यते यस्य स शिखी अन्यं पर्यायं लोकादन्यशास्त्रादुपलभ्य वदेत् ब्रूयात्। यथा—रविस्तीक्ष्णांशुर्दिवाकरो भास्वांस्तीक्ष्णरश्मिर्भानुर्विवस्वानित्यादिकाः सूर्यस्य। शशाङ्कस्तुहिनगुर्मृगांकः शशी निशाकरो नक्षत्रपतीरित्याद्याश्चन्द्रस्य। कुजो लोहितो भौमः क्ष्मातनय इत्याद्याः भौमस्य। सौम्यो रौहिणेयश्चांद्रिर्मृगांकतनय इन्दुज इत्याद्याः बुधस्य। सूरिः सुरेयो वाक्पतिर्देवपुरोहित इन्द्रमन्त्रीत्याद्याः गुरोः। भार्गव उशना दैत्येज्योऽसुरगुरुः दैत्यर्त्विगित्याद्याः शुक्रस्य। यमो रविजः पातङ्गिश्छायासुत इत्याद्याः सौरस्य। सैंहिकेयः स्वर्भानुर्दानवोऽमृतचौरो विधुन्तुद इत्याद्याः राहोरिति॥३॥

भाषा– गुरु के जीव, अङ्गिरा, सुरगुरु, वाचस्पति, इज्य। शुक्र के भृगसुत, सित और आस्फुजित्। राहु के तम, अगु, असुर, आर। केतु का नाम शिखी है। इस प्रकार और भी पर्याय (संज्ञा) शास्त्रान्तर से प्रसिद्ध समझकर कहना चाहिए।। ३।।

अधुना ग्रहवर्णाञ्छालिन्याऽऽह–

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्चवक्रः।
दूर्वाश्यामोज्ञो गुरुर्गौरगात्रः श्यामः शक्रो भास्करिः कृष्णदेहः।४।

रक्तश्याम इति।। रक्तश्चासौ श्यामः पाटलपुष्पवर्ण इत्यर्थः। एवं-विधो भास्कर आदित्यः। इन्दुश्चन्द्रो गौरः श्वेतवर्णप्रायः। वक्रोंऽगारकः स नात्युच्चो नातिदीर्घो रक्तगौरः पद्मपत्राभः। ज्ञो बुधः स दूर्वाश्यामः शाद्वलवर्णः। गुरुर्बृहस्पतिः स गौरगात्रो गौरशरीरः। शुक्रः श्यामवर्णो नातिगौरो नातिकृष्णः। भास्करिः सौरिः स कृष्णदेहोऽसितशरीरः। वर्णप्रयोजनम्। सर्वग्रहेषु यो वलवांस्तद्वर्णस्तत्कालजातो भवति, प्रश्न-काले चौरादेरपि।। ४।।

भाषा– सूर्य लालमिश्रित श्याम वर्ण। चन्द्रमा गौर वर्ण है। मंगल सामान्य लम्बा और लाली लिये हुए गौर वर्ण है। बुध दूर्वा के समान श्याम वर्ण। गुरु गौर शरीर का। शुक्र श्याम (शुक्ल-कृष्णमिश्र) वर्ण और शनि काला वर्ण वाला है।। ४।।

विशेष अर्थ– प्रयोजन- जन्म काल में जो ग्रह सबसे बली हो उस ग्रह के सदृश जातक का वर्ण होता है। तथा प्रश्न-लग्न के समय में जो ग्रह सबसे बलवान हो उसके सदृश चौरादि का वर्ण समझना चाहिये।।४।।

अधुना ग्रहाणां वर्णस्वाम्यं ग्रहदेवता स्वदिक्स्वाम्यं सौम्यपापत्वं च शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरितव्यापीतचित्रासिता
वह्न्यम्ब्वग्निजकेशवेन्द्रशचिकाःसूर्यादिनाथाःक्रमात्।
प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमः सौरेन्दुवित्सूरयः
क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः ।।५।।

वर्णा इति।। ताम्रादयो वर्णाः सूर्यादिग्रहनाथाः सूर्यादयो ग्रहा नाथाः स्वामिनो येषां ते। ताम्रवर्णस्यादित्यो नाथः स्वामी। सितस्य श्वेतस्य चन्द्रः। अतिरक्तस्यातिलोहितस्य भौमः। हरितस्य शुक्रवर्णस्य बुधः। विशेषेण आसमन्तात्पीतो व्यापीतस्तस्य हरिद्रासदृशस्य जीवः। चित्रस्य नानावर्णस्य शुक्रः। असितस्य कृष्णवर्णस्य सौरिः। प्रयोजनम्।

हृतनष्टादिद्रव्यवर्णज्ञानं जन्मनि प्रश्नकाले चोक्तद्रव्यलाभोऽन्यथा हानिः ग्रहपूजायां यद्वर्णकुसुमपूजा। तथा च याज्ञवल्क्यः।' 'वर्णैर्मण्डलकेषु च' इति। वह्नीत्यादि। सूर्यादिनाथा इत्यनुवर्तते सूर्यादीनां नाथाः सूर्यादिनाथाः, आदित्यस्य वह्निरग्निर्नाथः स्वामी। चन्द्रमसोऽम्बु जलम्। भौमस्याग्निजः कुमारः स्वामिकार्तिकेय इत्यर्थः। बुधस्य केशवो विष्णुः। गुरोरिन्द्रः शतक्रतुः। शुक्रस्य शचीन्द्राणी। सौरस्य कः प्रजापतिर्ब्रह्मेत्यर्थः। प्रयोजनम्। ग्रहपूजायां ग्रहोक्तदेवता पूज्याः। तथा यवनेश्वरः। 'देवा ग्रहाणां जलवह्निविष्णुप्रजापतिस्कन्दमहेन्द्रदेवो। चन्द्रार्कचान्द्र्यर्कजभौमजीवशुक्रांश्च यज्ञेषु यजेत शश्वत्॥' तथा चौरनामानयने बलवद्ग्रहोक्तदेवतापर्यायनाम। तथा च यात्रायां ग्रहदेवतां सम्पूज्य तद्दिशं यायात्। तथा च सारावल्याम्। 'ताम्रसितरक्तहरितकपीतविचित्रासिता इनादीनाम्। पावकजलगुहकेशव-शक्रशचीवेधशः पतयः॥ पूर्वादिग्रहदेवांस्तन्मन्त्रैः समभिपूज्य तामाशाम्। कनकगजवाहनादीन्प्राप्नोति नृपोऽरितः शीघ्रम्॥' प्रागाद्या इति। प्रागाद्याः पूर्वप्रथमा दिशस्तासां पूर्वादीनां रव्यादयो नाथाः। तत्र पूर्वस्यां दिशि रविरादित्योऽधिपतिः। पूर्वदक्षिणस्यां शुक्रः। दक्षिणस्यां लोहितोंऽगारकः। दक्षिणपश्चिमायां तमो राहुः। पश्चिमायां सौरिः शनैश्चरः। पश्चिमोत्तरस्यामिंदुश्चन्द्रः। उत्तरस्यां वित् बुधः। उत्तरपूर्वस्यां सूरिर्बृहस्पतिः। प्रयोजनम्। केन्द्रस्थे ग्रहे सूतिकागृहद्वारज्ञानं हृतनष्टादिषु चौरादेर्गमनं च। क्षीणेन्द्वर्केति क्षीरश्चासाविन्दुश्च क्षीणेन्दुः कृष्णाष्टम्यर्द्धाच्छुक्लाष्टम्यर्द्धं यावत्। क्षीणश्चन्द्रः परतः पूर्ण आयुर्दायविधौ कृष्णपक्षत्रयोदश्यन्तात्प्रभृति यावदमावास्यान्ते सूर्यमण्डलोद्गतस्तावत् क्षीण इति। यस्माद्यवनेश्वरश्चन्द्रस्य पापत्वं न कदाचिदपीच्छति तद्वाक्यम्। 'मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्तेराद्ये शशी मध्यबलो दशाहे। श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव॥' तथा च 'क्रूरग्रहोऽर्कः कुजसूर्यजौ च पापौ शुभाः शुक्रशशाङ्कजीवाः। सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यैर्वर्गैस्तु तुल्यप्रकृतित्वमेति।' इति। तस्मादेव तावत्क्षीण इति। अर्क आदित्यः महीसुतोंऽगारकः अर्कतनयः सौरिः एते सदैव पापाः बुधस्तैर्युतस्तेषामेकतमेन युक्तः पाप एव सौम्याः शेषाः। शुक्लपक्षाष्टम्यर्द्धात्कृष्णपक्षाष्टम्यर्द्धं यावत् चन्द्रः सौम्यः। बुधः पापवियुतः सौम्य एव। जीवशुक्रो सदैव सौम्याविति। प्रयोजनम्। पापसौम्यग्रहबलाज्जातः पापात्मकः सौम्यस्वभावश्च भवति॥ ५॥

भाषा– ताम्रवर्ण, शुक्ल, अत्यन्त लाल, हरा, पीला, चित्रवर्ण और काला-इन वर्णों के क्रम से सूर्यादि ग्रह स्वामी होते हैं। तथा अग्नि, जल, कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा–ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के देवता होते हैं। और सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और बृहस्पति–ये क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं। तथा क्षीणचन्द्र सूर्य, मङ्गल और शनि– ये पापग्रह हैं; इनसे युत बुध हो तो वह भी पापग्रह हो जाता है। अर्थात् इनके अतिरिक्त (पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) शुभ ग्रह हैं।। ५।।

विशेष अर्थ– नष्टादि द्रव्य के वर्ण-ज्ञान वा जन्म-समय में जो ग्रह बली रहता है उस वर्ण के पदार्थ का लाभ अन्यथा हानि इत्यादि में वर्ण का प्रयोजन होता है। तथा ग्रहों की पूजा (शान्ति) में ग्रहों के देवता की पूजा की जाती है। तथा देवता की पूजा में उनके ग्रहों की पूजा होती है। एवं केन्द्रस्थ बली ग्रह की दिशा में सूतिका ग्रह का द्वार और चोर आदि की दिशा जानने में ग्रह की दिशा का प्रयोजन होता है। तथा दिशा के स्वामी के दिन आदि में उस दिशा में दिग्बल और पृष्ठ दिशा में दिक्शूल होता है।। ५।।

अधुना ग्रहाणां प्रकृतिविभागं महाभूताधिवत्यं चौपच्छन्दसिकेनाऽऽह–

बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः।
शिखिभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण ।।६।।

बुधसूर्यसुताविति।। बुधश्चान्द्रिः सूर्यसुतः शनिः एतौ नपुंसकाख्यौ नपुंसकनामानौ। शशी चन्द्रः शुक्रो भार्गव एतौ द्वौ युवतिसंज्ञौ। शेषा रविजीवभौमा नराः पुरुषसंज्ञाः पुरुषनामानः। प्रयोजनम्–जन्मनि चिन्तायां हृतनष्टादिषु बलवन्तः स्वपक्षमेव कुर्वन्ति। एषामुपतापे तदाश्रितानामुपतापः। शिखिभूखपयोमरुद्गणानामिति। शिख्यादीनां पञ्चानां महाभूतानां पञ्च ग्रहा भूमिसुतादयः क्रमेण वशिनः। तद्यथा। शिखिनोऽग्नेर्भूमिसुतोऽगारको वशी भौमोऽग्नेः स्वामीत्यर्थः। एवं भूमे बुधः। खस्याकाशस्य जीवः। पयसोऽम्भसः शुक्रः। मरुतो वायोः शनैश्चरः। गणग्रहणमत्र वृत्तपूरणार्थम्। नन्वादित्यचन्द्रयोः कस्मान्नोक्तमित्यत्रोच्यते। तयोः पूर्वमेवोक्तं वह्न्यम्ब्विति तावेव प्रसिद्धौ। प्रयोजनम्– स्वदशायां महाभूतकृतां छायां व्यञ्जयन्ति वक्ष्यति च। 'छायां महाभूतकृतां च सर्वे' इति। ६।

भाषा– बुध, शनि नपुंसक। चन्द्र, शुक्र स्त्रीग्रह। शेष, (रवि, मंगल और गुरु) ये पुरुष ग्रह हैं। तथा १ अग्नि, २ भूमि, ३ आकाश, ४ जल और ५ वायु– इन पाँच तत्त्वों के स्वामी क्रम से मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि– ये ५ ग्रह हैं।। ६।।

विशेष अर्थ– जन्म-समय में जातक के और प्रश्न-समय में चोर आदि के पुंस्त्रीत्व, पुंग्रह और स्त्री ग्रह से समझा जाता है। तथा ग्रहों की शुभ दशा में अपने तत्त्वसम्बन्धी गुणों से सुख, अशुभ दशा में तत्त्वसम्बन्धी गुणों से दुःख होता है। जो आगे दशाध्याय में वर्णित है॥ ६॥

अधुना ग्रहाणां ब्राह्मणादिवर्णाधिपत्यं गुणविभागं चोपजातिकयाऽऽह–

विप्रादितः शुक्रगुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम्।
चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्को यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि।७

विप्रादित इति॥ विप्रादितो ब्राह्मणादेर्वर्णचतुष्टयस्य स्वामिनो ग्रहा अधिपतयः। शुक्रो भार्गवो गुरुर्बृहस्पतिरेतौ द्वौ ब्राह्मणानामधिपती। कुजो भौमोऽर्क आदित्यः एतौ द्वौ क्षत्रियाणाम्। शशी चन्द्रो वैश्यानां। शूद्राणां बुधः। असितः शनैश्चरौत्यजानां वर्णप्रतिलोमभवानां चाण्डालमागधनिषादादीनाम्। प्रयोजनम्—हृतनष्टादिषु ग्रहबला-च्चौरादीनां ग्रहोक्तवर्णप्रभावः एषामुपघाते तद्वर्णोपघातः। तथा च सत्यः। 'गुरुशुक्रौ रविरक्तौ चन्द्रसौम्यः शनैश्चरश्चेति। विप्रक्षत्रियविट्-शूद्रसंकराणांप्रभुत्वकराः। अजये जयेऽथ तुष्टावप्रीतौ वित्तनाशने लाभे। तेभ्यस्तेभ्यः कुयुर्गुणांश्चदोषांश्च पक्षांस्तान्॥' चन्द्रार्कजीवा इत्यादि। चन्द्रः शशी अर्कः आदित्यः जीवो बृहस्पतिः एते सत्त्वसंज्ञा। ज्ञो बुधः सितः शुक्रः एतौ द्वौ रजःसंज्ञौ। कुजोंऽगारकः आर्किः सौरः एतौ द्वौ तमःसंज्ञौ। एते यथाक्रमं सत्त्वादिगुणाधिपतयो ग्रहाः। प्रयोजनम्—'सत्त्वं रजस्तमा वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृग्' इति। अन्ये पुनर्ग्रहबलाद्वर्णयन्ति। तथा च श्रीदेवकीर्तिः। 'बलवद्भिस्तद्गुणो भवेज्जातः' इति। अत्राचार्यस्य यवनेश्वरेण सह मतभेदः। तेन भौमः सात्त्विक उक्तः। तथा च तद्वाक्यम्। 'सत्त्वाधिका भास्करभौमजीवा भृग्वात्मजो राजसिकः शशी च। शनैश्चरस्तामसिको बुधस्तु संयोगता-ऽस्माल्लभते विशेषान्॥' आचार्यस्य सत्यवचनमभिमतम्। तथा च सत्यः। 'तामसिकौ कुजसौरी राजसिको भार्गवः शशिसुतश्च। जीवशशिभास्कराः सात्त्विका ग्रहवत्प्रकृतयो नृणाम्॥' एवं यत्र यत्रा-चार्यस्य यवनेश्वरेण सह मतभेदस्तत्राङ्गीकृतं सत्यमतमपि। अथ पूर्वमभिहितं सत्त्वं कुजः। चन्द्रार्कजीवा पुनः किमित्युक्तम्। उच्यते। इह गुणवचनः सत्त्वशब्दस्तत्र शौर्यपर्यायः यः कार्याकार्यप्रवृत्तानां सिंहादीनामप्यस्ति येन एकाकिनोऽपि वनवासिनः। तथा च। 'एकाकिनि

वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञः। सत्त्वस्थिते मृगपतौ राजेति गिरः परिणमन्ति॥' अथ गुणस्वरूपम्।

'यः सात्त्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः।
रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः॥
तमोऽधिकोवञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः।'इति।७।

भाषा– शुक्र, गुरु– ये ब्राह्मणों के स्वामी, मङ्गल और सूर्य क्षत्रियों के स्वामी, चन्द्रमा वैश्यों का तथा शनि नीच जातियों का स्वामी है। तथा चन्द्र, सूर्य, गुरु– ये सत्त्वगुणी; बुध, शुक्र रजोगुणी; मंगल और शनि तमोगुणी ग्रह हैं॥७॥

विशेष अर्थ– प्रयोजन–प्रश्नकाल में बली ग्रह से चोर आदि का वर्ण समझाने में होता है तथा 'सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्' इत्यादि जातक के गुण समझने में होता है॥७॥

अधुना चन्द्रार्कयोः स्वरूपं तोटकेनाऽऽह–

मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सवितात्पकचः।
तनुवृत्ततनुर्बहुवातकफः प्राज्ञश्च शशी मृदुवाक् सुभदृक्॥८॥

मधुपिङ्गलदृगिति॥ मधुवत्पिङ्गला दृष्टिर्यस्य सः ईषत्कातराक्षः। चतुरस्रतनुः प्रसारितभुजद्वयप्रमाणसमोच्छ्रायः। पित्तप्रकृतिः पित्ताधिकः। अल्पकचो विरलकेशः एवंविधः सविता आदित्यः तनुवृत्ततनुरित्यादि। तन्वी चासौ वृत्ता च तनुवृत्ता तादृशी तनुर्यस्य स तनुवृत्ततनुः। कृशवर्तुलाङ्ग इत्यर्थः। बहुवातकफः प्रभूतमारुतश्लेष्मा प्राज्ञो मेधावी मृदुवाक् कोमलभाषी शुभदृक् दर्शनीयाक्षः एवंविधः शशी चन्द्रः॥८॥

भाषा– मधु के समान पिंगल वर्ण दृष्टि चतुरस्र (लम्बाई और चौड़ाई में बराबर) शरीरवाला। पित्ताधिक, थोड़े केश वाला-ऐसा सूर्य का स्वरूप है। तनु (छोटा) और गोलाकृति शरीर अधिक वातकफ, प्रांज्ञ (मेधावी), मृदुभाषी, सुन्दर नेत्र– इस प्रकार का चन्द्रमा का स्वरूप है॥८॥

विशेष अर्थ– इसका प्रयोजन– *'लग्नवांशपतुल्य तनुः स्यात्'* इत्यादि जन्म-लग्न नवांश पति ग्रह के स्वरूप स्वभाव जातकादि के कहने में होता है॥८॥

अथाङ्गारकबुधयोः स्वरूपं स्वागतयाऽऽह–

क्रूरदृक्तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः।
श्लिष्टवाक्सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिश्च॥९॥

क्रूरेति॥ क्रूरा दुष्टा दृक् दृष्टिर्यस्य स क्रूरदृगङ्गारकः स च तरुणमूर्तिर्नित्यं यौवनोपेताकारविग्रहः उदारो दाता पैत्तिकः पित्तबहुलः

सुचपलोऽतीवास्थिरचित्तः कृशमध्यस्तनूदरः एवंविधोंऽगारकः। श्लिष्ट-वागत्यादि। श्लिष्टवाग्गद्गदभाषीसतत हास्यरुचिः नित्यं परिहासशीलः पित्तमारुतकफप्रकृतिर्दोषत्रयोल्वणस्वभावः एवंविधो ज्ञो बुधः॥६॥

भाषा– क्रूर दृष्टि वाला युवावस्था, उदार (दाता), पित्तप्रकृति, चञ्चल, क्षीण कटि– ऐसा मंगल का स्वरूप है। श्लिष्ट अनेक अर्थवाला वाक्य बोलने वाला, सर्वथा हास्य में रुचि रखने वाला, पित्त, वायु, कफ तीनों प्रकृति वाला– ऐसा बुध है॥६॥

अथ जीवशुक्रयोः स्वरूपं वंशस्थेनाऽऽह–

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्धजेक्षणो बृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मक।
भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः कफानिलात्मासितवक्रमूर्द्धजः।१०

बृहत्तनुरिति॥बृहत्तनुः स्थूलशरीरः मूर्धजाः केशा ईक्षणे नयने च पिंगले कपिले यस्य कपिलकेशकातराक्ष इत्यर्थः। श्रेष्ठमतिर्धर्मानुप्रज्ञः कफात्मकः श्लेष्मात्मा एवंविधो बृहस्पतिः। भृगुरित्यादि। सुखी नित्यं सुखासक्तः कान्तवपुर्दर्शनीयशरीरः सुलोचनः शोभनाक्षः कफानिलात्मा श्लेष्ममारुतप्रकृतिः असितवक्रमूर्द्धजः असिताः कृष्णा वक्राः कुटिलाः मूर्द्धजाः केशाः यस्य स कृष्णकुटिलकेश इत्यर्थः। एवंविधो भृगुः शुक्रः॥१०॥

भाषा– दीर्घ और स्थूल शरीर, पिंगल वर्ण तथा पिंगल केश और पिंगल नेत्र वाला, उत्तम बुद्धि– ऐसा बृहस्पति का स्वरूप है। सदा सुखी, दर्शनीय शरीर, सुन्दर नेत्र, कफ, वायु प्रकृति, काला और टेढ़ा-टेढ़ा (ओठिया) केश वाला शुक्र का स्वरूप है॥१०॥

अधुना शनैश्चरस्वरूपं स्नाय्वादिसारत्वं च ग्रहाश्रयं वसंततिलकेनाऽऽह–

मन्दोऽलसः कपिलदृक्कृशदीर्घगात्रः
स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा।
स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा-
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्य भौमाः॥११॥

मन्दोऽलस इति॥ अलसः क्रियास्वपटुः कपिलदृक् पिंगलाक्षः कृशं दुर्बलं दीर्घमुच्चतरं गात्रं यस्य गात्राणि वा सः दुर्बलोर्ध्वदेहः स्थूलद्विजो बृहद्दन्तः परुषरोमकचा रुक्षतनूरुहकेशः अनिलात्मा वातप्रकृतिः एवंविधो मन्दः शनैश्चरः। स्नाय्वस्थीत्यादि। मन्दादीनां ग्रहाणां स्नाय्वादिसारत्वं स्नाय्वस्थिनी प्रसिद्धार्थे। देहवतां शनैश्चरादित्यौ स्नाय्वस्थिसारौ शनैश्चरः स्नायुसारः। आदित्योऽस्थिसारः। असृग्रुधिरं तच्चन्द्रमाः। त्वक् चर्म

तद्बुधः। अथशब्द आनन्तर्यार्थे। शुक्रं रेतः तच्छुक्रः। वसा मेदस्तत्सुरेज्यो गुरुः। मज्जा अस्थ्यन्तर्गतो धातुविशेषः स भौमः। ग्रहाणां स्वरूप-ज्ञानप्रयोजनम्। लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यादित्यत्रोपयुज्यते। जन्मकाले यो ग्रहो बलवांस्तत्पठितस्वरूपस्तत्कालजातो भवति तद्धातुसारश्च हृत-नष्टादिषु प्रश्नकालेऽप्येवंविधा धातुरूपाश्चौरादयः व्याधिप्रश्ने यल्लग्नं यश्च लग्ने नवांशको तत्स्वामिनो बलवशादभिहितदोषभवा पीडा॥११॥

भाषा– आलस्ययुक्त कपिल नेत्र, दुबला और लम्बा शरीर, स्थूल दाँत, कठोर रोम और केश तथा वात प्रकृति शनि है। शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति और मङ्गल– ये क्रम से स्नायु (शिरा), अस्थि, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जारूप हैं अर्थात् इन सात धातुओं में बल वाले होते हैं॥११॥

विशेष अर्थ– जन्मकाल में जो ग्रह बलवान होता है, उसी के समान ही जातक भी रूप और गुण से युक्त होता है। *यथा–* 'एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्। कुर्युदिहं नियतं बह्वश्च समानता मिश्रम्' (ल. जा.)। तथा जो ग्रह बली रहता है उस धातु की पुष्टता, जो निर्बल रहता है, उस धातु की दुर्बलता जानने के लिये इसका प्रयोजन होता है॥११॥

अधुना ग्रहाणां स्थानवस्त्रद्रव्यर्तुप्रभुत्वं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

देवाम्ब्वग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्करेशाः क्रमाद्
वस्त्रं स्थूलमभुक्तमग्निकहतं मध्यं दृढं स्फाटितम्।
ताम्रं स्यान्मणिहेमयुक्तिरजतान्यर्काच्च मुक्तायसी
द्रेष्काणैः शिशिरादयः शशुरुचज्ञग्वादिपूद्यत्सु वा॥१२॥

देवाम्ब्वग्नीति। अर्कात्प्रभृति तदादीनां ग्रहाणां क्रमाद्देवादीनि स्थानानि। तत्र देवस्थानमादित्यस्य। अम्बुस्थानं चन्द्रमसः। अग्निस्थानं भौमस्य। विहारस्थानं क्रीडास्थानं बुधस्य। कोशो भाण्डारागारं तत्स्थानं बृहस्पतेः। शयनस्थानं शुक्रस्य। क्षित्युत्करः अवकरराशिस्तत्स्थानं शनैश्चरस्य। एषां स्थानानामेत ईशाः स्वामिनः। प्रयोजनम्। बलवति ग्रहे ग्रहोक्तस्थाने प्रसवज्ञानं हृतनष्टादेश्चौरादेः स्थानं द्रव्यस्य च। वस्त्रमित्यादि। अर्कादिति सर्वत्रानुवृत्तिः। तत्र स्थूलतन्तुकृतमादित्यस्य वस्त्रम्। अभुक्तं नवं चन्द्रस्य। अग्निना हतमेकदेशदग्धं भौमस्य। केनाम्बुना हतं क्लिन्नं बुधस्य। मध्यं नातिनवं नातिजीर्णं बृहस्पतेः। दृढङ्कालान्तरस्थायि शुक्रस्य। स्फाटितं जीर्णं शनैश्चरस्य। प्रयोजनम्।

सूतिकावस्त्रज्ञाने हृतनष्टादिचिन्तायां च बलवद्ग्रहवशाद्वस्त्रज्ञानम्। ताम्रं स्यादित्यादि, आदित्यस्य ताम्रं चन्द्रस्य मणयः भौमस्य हेम सुवर्णं, बुधस्य युक्तिः युज्यते इति युक्ति रीतिकांस्यादि। रजतं रौप्यं बृहस्पतेः स्वस्थानस्थस्य सुवर्णमपि। मुक्ता शुक्रस्य अयः कृष्णलोहं सीसत्रपुणीं च शनैश्चरस्य। तथा तेनैव सूक्ष्मजातके उक्तम्। 'अर्कादिताम्रमणिहेमयुक्तिरजतानि मौक्तिकं लोहम्। वक्तव्यं बलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि॥' तथा च बादरायणः। 'अर्कस्य ताम्रं मणयो हिमांशोर्भौमस्य हेमेन्दुसुतस्य युक्तिः। जीवस्य रौप्यं स्वगृहे स्थितस्य तस्यैव हेमोशनसश्च मुक्ता। तीक्ष्णांशुदेहप्रभवस्य सीसकृष्णायसं च प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।' प्रयोजनम्। सूतिकागृहे बलवद्ग्रहे द्रव्यसत्ता हृतनष्टादिचिन्तायां द्रव्यनाशादिपरिज्ञानं तच्छुभदशायां तस्मिन्नुपचयस्थे तदाप्तिः उक्तविपरीते हानिः। द्रेष्काणैरित्यादि। अत्र शकारादिभिर्गुपर्यन्तैर्वर्णैः साज्ञाद्यैः शनैश्चरप्रभृतीनां गुर्वन्तानां वृत्तानुरोधान्निर्देशः कृतः। शनैश्चरशुक्ररुधिरचन्द्रबुधगुरुषूद्यत्सु लग्नगतेषु शिशरादयः षडर्तवो ज्ञेयाः। तत्र शकारोपलक्षितशनैश्चरः तस्मिन्नुदयति लग्नस्थे शिशिरर्तुर्विज्ञेयः। शुकारोपलक्षितः शुक्रः तस्मिन्नुदयति वसन्त। रुकारोपलक्षितो रुधिरो भौमस्तस्मिन् ग्रीष्मः। चकारोपलक्षितश्चन्द्रस्तस्मिन् वर्षा। ज्ञो बुधस्तस्मिञ्छरत्। गुकारोपलक्षितो गुरुस्तस्मिन् हेमन्तः। आदित्येऽप्युदयति ग्रीष्मः। तथा च बादरायणः। 'ग्रीष्ममथ प्रवदन्ति कुजार्कौ' इति। द्रेष्काणैरित्यस्य वा इत्यनेन व्यवहितेन सम्बन्धः। द्रेष्काणैर्वोदयद्भिः शनैश्चरादिसम्बन्धिभिः शिशिरादयो ज्ञेयाः एतदुक्तं भवति। लग्ने ग्रहाभावे शनैश्चरद्रेष्काणे लग्नगते शिशिरः। एवं शुक्रद्रेष्काणे लग्नगते वसन्तः। भौमद्रेष्काणे ग्रीष्मः। रविद्रेष्काणे ग्रीष्म एव। चन्द्रद्रेष्काणे वर्षा। बुधद्रेष्काणे शरत्। जीवद्रेष्काणे हेमन्तः। अत्र च मुख्यो ग्रहोदयेनर्तुनिर्देशस्तदभावे द्रेष्काणेनेति ज्ञातव्यम्। बहूनामुदयेऽपि द्रेष्काणेनैव। केचिद्बहूनामुदये बलवद्ग्रहेणेति व्याचक्षते। तथा च मणित्थः। 'रव्याद्यैर्लग्नोपगतैर्यो बलवांस्तद्ग्रहर्तुनिर्देशनिर्देशः।' इति। तत्रैतज्ञातं लग्ने यो ग्रहः स्थितस्तदुक्तऋतुर्वाच्यः। बहुषु लग्नगतेषु यो बलवान्, ग्रहाभावे द्रेष्काणपतेर्ऋतुनिर्देशः। प्रयोजनम्। 'नष्टजातके ऋतुनिर्देशो हृतनष्टादिचिन्तायां च।' इति। अत्राचार्येण ग्रहाणां शाखाधिपत्यं नोक्तम्। उक्तं च स्वल्पजातके। 'ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः।' ऋग्वेदाधिपतिर्गुरुः। अथर्ववेदाधिपतिः सौम्यो

बुधः। सामवेदाधिपतिर्भौमः। यजुर्वेदाधिपतिः शुक्र। प्रयोजनम्। बलवति शाखाधिपे ब्राह्मणो जातस्तच्छाखापाठको भवति। ब्राह्मणे जाते शाखाविज्ञानम्। अनिष्टस्थानस्थे ग्रहे तन्मन्त्रैः शान्तिरिति ।।१२।।

भाषा- देवमन्दिर, जलाशय, अग्निकुण्ड, क्रीड़ास्थल, कोशागार, शयन स्थान और उत्कर भूमि (कतवार रखने की जगह)– ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के स्थान हैं। तथा स्थूल (मोटा), अभुक्त (बिलकुल नया), अग्निहत (जला हुआ), क-हत (जल से भींगा हुआ), मध्यम दर्जे का, दृढ़ (खूब मजबूत) और फटे हुए– इस प्रकार के वस्त्र क्रम से सूर्यादि ग्रहों के होते हैं। और ताँबा, मणि, सुवर्ण, मुक्ति (कांसा) आदि, चाँदी, मोती और लौह– ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के द्रव्य हैं।

श–(शनि), शुरु (शुक्र), (रुधिर-मंगल), चं (चन्द्र), ज्ञ (बुध), गुं (गुरु)। ये ग्रह लग्न में हो तो क्रम से शिशिर १, वसन्त २, ग्रीष्म ३, वर्षा ४, शरद ५, हेमन्त ६– ये ऋतु समझना अथवा इन ग्रहों में जिसका द्रेष्काण लग्न में हो, उसकी ऋतु समझनी चाहिए।।१२।।

विशेष अर्थ– स्थान और वस्त्रादि का प्रयोजन हृत, नष्टादि में तथा जन्मकाल में प्रसूति के स्थान-वस्त्रादि जानने में होता है। तथा नष्ट जन्मपत्रादि बनाने में ऋतुज्ञान का प्रयोजन होता है। अर्थात् लग्न में जो ग्रह हो उसी की ऋतु जाननी चाहिए। यदि लग्न में अनेक ग्रह हों तो उनमें सबसे बलवान ग्रह को ऋतु समझना। तथा सूर्य के द्रेष्काण लग्न में हो तो ग्रीष्म ऋतु जानना। आगे नष्ट जातकाध्याय में *'ग्रीष्मोऽर्कलग्ने कथितास्तु शेषैः'* ऐसा कहा भी है। उदाहरण भी वहीं दिखाया गया है।

इस ग्रंथ में वेदों के अधिपति नहीं कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं–

'ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो, यजुर्वेदाधिपो भृगुः।
सामवेदाधिपो भौमो, बुधोऽथर्वपतिः स्मृतः ।।इति।।१२।।

अथ ग्रहाणां दृष्टिस्थानानि विसर्गदृष्टिफलानि च प्रहर्षिण्याह–

(१) त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमान्य-
वलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो
भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ।।१३।।

(१) सामान्येन पराक्रमे राज्ये च सर्वेषामल्पदृष्टिर्भवत्यतो ग्रहा अपि तृतीयं (पराक्रमस्थानं) तथा दशमं (राज्यस्थानं) चैकेन चरणेन पश्यन्तीति किं चित्रम्? तदपेक्षया विद्यायां तथा धर्मे च किञ्चिदधिका दृष्टिर्भवत्यतो ग्रहा अपि पञ्चमं

त्रिदशेति। यस्मिन्स्थाने ग्रहाः स्थितास्तस्मात्त्रिदशादीनि स्थानानि चरणाभिवृद्धितः पादवृद्ध्याऽवलोकयन्ति। ग्रहो यस्मिन्राशौ स्थितस्तस्माद्यस्तृतीयो ग्रहो दशमश्च तथा तृतीयदशमस्थौ राशी यौ तौ पादेन चतुर्थभागदृष्ट्याऽवलोकयन्ति। एवं त्रिकोणस्थौ नवपञ्चमस्थानगतावर्धदृष्ट्या। चतुरस्रेऽष्टमचतुर्थे अष्टमचतुर्थस्थानस्थौ पादोनदृष्ट्या। सप्तमगं गृहं परिपूर्णदृष्ट्या। चरणाभिवृद्धित इत्यत्राभिशब्दो वीप्सां द्योतयति। चरणवृद्ध्या पादवृद्ध्येत्यर्थः। यावत्पाददृष्ट्या पश्यन्ति तावत्फलं प्रयच्छन्ति। तथा च स्वल्पजातके। 'दशमतृतीये नवमपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च। पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति।।' अर्थादेवंविधो ग्रहोऽनुक्तस्थानानि न पश्यतीति। तथा च सारावल्याम्। 'सव्यं पश्यन्ति सदा ग्रहान्ग्रहाश्चरणवृद्धितः सर्वे। त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमगताः क्रमेणैव।। पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः। चतुरस्रं भूमिसुतः सीतार्कबुधहिमकराः कलत्रञ्च।।' तथा यवनेश्वरः। 'द्वौ पश्चिमौ षष्ठमथ द्वितीयं संस्थानराशेः परिहृत्य राशीन्। शेषान्ग्रहः पश्यति सर्वकालमिष्टेषु चैषां विहिता दृगिष्टा।। जामित्रभे दृष्टिफलं समग्रं स्वपादहीनं चतुरस्रयोश्च। त्रिकोणयोर्दृष्टिफलार्धमाहुर्दुश्चिक्यसंज्ञे दशमे च पादम्।' रविजामरेज्यरुधिरा इति। किलेत्यागमसूचने। चरणाभिवृद्धित इत्यनुवर्तते। एते रविजादयश्च-

---

(विद्यास्थानं) नवमं (धर्मस्थानञ्च) चरणद्वयेन पश्यन्ति। विद्याधर्म्मतोऽपि किञ्चिदधिका दृष्टिः सुखे मृत्यौ च भवन्ति; तेन ग्रहाः सुखं (चतुर्थं) अष्टमं (मृत्युस्थानञ्च) चरणत्रयेण पश्यन्तीति युक्तमेव। तथा च जायायां (स्त्रियां) सर्वेषां सर्वतोभावेन दृष्टिर्भवत्येवेति प्रकृतिसिद्धं सर्वत्र प्रसिद्धमेव। उक्तञ्च भर्तृहरिणा—

'विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।।'

इत्यादि। तस्मात् सर्वे ग्रहाः सप्तमं (जायास्थानं) सम्पूर्णदृशा विलोकयन्तीति किमाश्चर्य्यम्।

अथ च रविजामरेज्यरुधिरः परवत्यादिना विशेषं कथयति— तद्युक्तिर्यथा रविजो भृत्योऽतो राज्यपराक्रमरक्षणं तत्कर्त्तव्यमतस्तृतीयं दशमञ्च रविजः पूर्णदृशा पश्यतीति युक्तमेव। तथा विद्याधर्मरक्षणं तच्क्षणञ्च गुरोः कार्यं, तस्मात् त्रिकोणं गुरु पूर्णदृशा पश्यतीत्यपि समुचितम्। एवं मृत्युसुखरक्षणं नेतृकर्म तेन तत्स्थानं (चतुरस्रं) नेता मङ्गलो पश्यति। तथा राजराजकुमारास्तु जायाशक्ता भवन्ति तेन ते (रविचन्द्रबुधाः) सप्तमं (जायास्थानं) पूर्णदृशा पश्यन्तीत्यपि समुचितमेव।

रणाभिवृद्धितः पादोपचयाद्वीक्षणे दर्शने क्रमशोऽधिकफलप्रदा भवन्ति। रविजः सौरिः सुदर्शने पादफलप्रदः। अमरेज्यो बृहस्पतिरर्धफलप्रदः। रुधिरोंऽगारकः स पादहीनफलप्रदः। अपरेऽर्कचन्द्रबुधशुक्रास्ते वीक्षणे समग्रफलदाः। एतन्नैसर्गिकं ग्रहाणां दृष्टिफलं स्थानवशादेतेषां यथास्वं दृष्टिफलमूह्यमेवमेके व्याचक्षते अपरे त्वाहुः। स्थानफलमेतत्। तेन त्रिदशादिस्थानगतान्ग्रहराशीन्पश्यन्तो रविजादयो दर्शनेऽधिकफलप्रदा भवन्ति। तद्यथा। तृतीयदशमस्थान्ग्रहान्राशीन्वा शनैश्चरः पश्यन्नन्येभ्यो ग्रहेभ्योऽधिकफलप्रदो भवति। परिपूर्णं पश्यतीत्यर्थः। एवं त्रिकोणस्थाज्जीवः चतुस्रगान्भौमः सप्तमस्थान्सूर्यचन्द्रबुधशुक्राः। एतच्च बहुतराणामाचार्याणां मतम्। तथा च भगवान्गार्गिः। 'दुश्चिक्यदशगान्सौरिस्त्रिकोणस्थान्बृहस्पतिः। चतुर्थाष्टमगान्भौमः शेषाः सप्तमसंस्थितान्। भवन्ति वीक्षणे नित्यमुक्ताधिकफला ग्रहाः।" इति॥१३॥

भाषा- ग्रह अपने-अपने आश्रित स्थान से ३, १० को एक चरण से; ५, ९ को २ चरण से; ४, ८ को ३ चरण से और ७ सप्तम स्थान को ४ चरण (पूर्ण) दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार सामान्य कहकर विशेष कहते हैं। शनि ३, १० को गुरु ५, ९ को, मंगल ४, ८ को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। और शेष ग्रह केवल सप्तम को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

अर्थात् सिद्ध हुआ कि इनसे भिन्न स्थान (१, २, ६, ८, ११,१२) इनको नहीं देखते हैं। और दृष्टि के अनुसार ही फल भी देते हैं। लघुजातक में कहा भी है कि–

"पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति"॥१३॥

अधुना ग्रहाणां कालनिर्देशं रसनिर्देशं च वैतालीयेनाऽऽह–

अनयक्षणवासरर्तवो मासोर्द्धं च समाश्च भास्करात्।
कटुकलवणतिक्तमिश्रिता मधुराम्लौ च कषाय इत्यपि॥१४॥

अयनेति। भास्करादादित्यात्प्रभृत्ययनादिकालनिर्देशः। तत्रायननिर्देशो भास्करात्सूर्यात्। क्षणो मुहूर्तस्तन्निर्देशश्चन्द्रात्। वासरो दिवसस्तन्निर्देशो भौमात्। ऋतुर्मासद्वयात्मकस्तन्निर्देशो बुधात्। मासनिर्देशो जीवात्। मासार्द्धं पक्षस्तन्निर्देशः शुक्रात्। समाः संवत्सरास्तन्निर्देशः सौरात्। प्रयोजनम्। प्रश्नलग्ने यस्य ग्रहस्य नवांशकोदयः स ग्रहस्तस्मान्नवांशकाद्यावत्संख्ये नवांशके भवति तावत्संख्योऽयनादिको ग्रहोपलक्षितकालशुभाशुभफलपक्तौ वाच्यः।

(१) अन्ये त्वेवं व्याचक्षते। लग्ने यावत्संख्यो नवांशकः उदितस्ताव-त्संख्योऽयनादिकालोंऽशकपतिवशाद्वक्तव्यः। तथा च मणित्थः। 'लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः। वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे॥' कटुकलवणेत्यादि। भास्करादित्यात्कटुकादिरसनिर्देशः। तत्रादित्यात्सूर्यात्कटुकस्य रसस्य निर्देशः कटुकं मरीचादि। चन्द्रात् लवणस्य। भौमात्तिकस्य तिक्तं निम्बादि। बुधान्मिश्रस्य षड्रसस्य। जीवान्मधुरस्य मिष्टस्य। शुक्रादम्लस्य। सौरात्कषायस्य। प्रयोजनम्। आधानकाले यो बलवांस्तदुक्तरसदोहदो गर्भिण्या भवति। तथा च सारावल्याम्। 'मासि तृतीये स्त्रीणां दोहदको जायतेऽवश्यम्। स रसाधिपत्यभावैर्विलग्नयोगादि भिश्चिन्त्यः।' भोजनाश्रये च प्रश्ने ग्रहोदये तन्नवांशकोदये वा तदुक्तरसान्वितभोजनज्ञानमिति॥ १४॥

भाषा- सूर्य आदि ग्रहों से अयन, मुहूर्त, दिन, ऋतु, मास, पक्ष और वर्ष क्रम से समझना और सूर्यादि ग्रहों से ही कटु, लवण, तिक्तमिश्रित (सब रस मिला हुआ) मधुर, अम्ल, और कषाय (कसैला)– इन रसों को भी समझना चाहिये॥ १४॥

विशेष अर्थ- शत्रु की जय-पराजय, परदेशी के आगमन-प्रश्न आदि में इसका प्रयोजन होता है। ***जैसे***– लग्न में जिस ग्रह का नवांश जितनी संख्या में हो उस ग्रहसंबंधी काल के शुभाशुभ फल में समझना। यथा सारावली का वचन *'लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांश संख्यः वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे।'*

उदाहरण– मानो किसी ने प्रश्न किया कि 'मेरा कार्य कितने दिन में सिद्ध होगा' प्रश्नकालिक स्पष्ट लग्न ३।१५।२०।२४ कर्क का पाँचवाँ नवांश है, इसलिये नवांश पति मंगल हुआ। मंगल से मास का निर्देश है, इसलिए कहना चाहिए कि ५वें महीने में कार्य सम्पन्न होगा। एवं–कोई प्रश्न करे कि 'मैंने आज कौन से रस का भोजन किया या करूँगा।' तो स्पष्ट लग्न बनाकर देखना कि लग्न में जो ग्रह हों और जिस ग्रह का नवांश हो उन

(१) लग्नवांशत् क्रियन्मिते नवमांशे ग्रहो वर्तते तज्ज्ञानोपायः प्रदर्श्यतेः–

ग्रहाल्लग्नं विशोध्य शेषस्यांशाः कार्यास्ततोऽनुपातो यदि त्रिंशदंशेर्नव नवमांशा लभ्यन्ते तदा लग्नग्रहान्तरांशैः किमिति लब्धिर्लग्नग्रहान्तरनवांशसङ्ख्या स्यात्। ततोऽयनद्वयमेवातो रविनवांशसंङ्ख्या द्विभक्तैकशेषे सौम्यायनं द्विशेषे याम्यायनं ज्ञेयम्। तथा च चन्द्रनवांशसङ्ख्या पञ्चदशभक्ता शेषाः मुहूर्ताः पञ्च-दशैव। तथा कुजनवांशसंख्या सप्तशेषिता रव्यादयो वासरा ज्ञेयाः। बुधनव-मांशसंख्या षड्भक्ता शेषमृतुप्रमाणम्। एवं गुरुनवमांशसंख्या द्वादशभक्ता शेषाच्चैत्रादिमासज्ञानम्। तथा च शुक्रनवांशसंख्या द्विभक्ता शेषात्पक्षज्ञानम्। एवं शनिनवांशसंख्यातुल्यवर्षप्रमाणं ज्ञेयमिति दिक्।

ग्रह के रसों का आदेश करें। कहा भी है *'सरसाधिपस्य भावैर्विलग्नयोगादिभिश्चिन्त्यः'* माना कि–उपरोक्त प्रश्नलग्न कर्क में रवि और बृहस्पति हैं और मंगल का नवांश है तो कटु, तिक्त और मधुर रस भोजन सामग्री कहना।। १४।।

अधुना मित्रामित्रविधिं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयौ व्यर्का विभौमाः क्रमा-
द्वीन्द्वर्का विकुजेन्द्विनाश्च सुहृदः केषाञ्चिदेवं मतम्।
सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोणभवनात्स्वात्स्वान्त्यधीधर्मपाः
स्वोच्चायुः सुखपाः स्वलक्षणविधेर्नान्यैर्विरोधादिति।।१५।।

जीव इति।। सूर्यादीनां ग्रहाणां क्रमाज्जीवादयः सुहृदः। तत्रादित्यस्य सूर्यस्य जीवो बृहस्पतिः सुहृन्मित्रम्। जीवबुधौ गुरुसौम्यौ चन्द्रस्य। सितः शुक्रः इन्दुतनयो बुधः एतौ भौमस्य। विगतोऽर्कः सूर्यो येभ्यो ग्रहेभ्यस्ते सूर्यवर्जिताः सर्व एव बुधस्य। विभौमा विगतोंऽगारको येभ्यस्ते भौमरहिताः सर्व एव बृहस्पतेः। वीन्द्वर्का विगतौ चन्द्रार्कौ येभ्यस्ते सर्व एव शुक्रस्य। विकुजेन्द्विनाः कुजो भौम इन्दुश्चन्द्रः इनः सूर्यः एते (१) विकुजेन्द्विनाः सर्व एव सौरस्य शनैश्चरस्य एवं केषाञ्चिन्मतं, न बहूनाम्। अत्र च तेषां शत्रुमित्रव्यवहार एवेष्टो नो-दासीनव्यवहारस्तस्मान्मित्रेभ्योऽन्ये ह्यमित्राणीति केचिद्यवनेश्वरादयः। तथा यवनेश्वरः। 'रवेर्गुरुर्मित्रमतोऽन्यथान्ये गुरोस्तु भौमं परिहृत्य सर्वे। चान्द्रेरनर्का भृगुनन्दनस्य त्वर्केन्दुवर्जं सुहृदः प्रदिष्टाः।। भौमस्य शुक्रः शशिजश्च मित्र इन्दोर्बुधं देवगुरुं च विद्यात्। सौरस्य मित्रा-ण्यकुजेन्दुसूर्याः शेषान्रिपून्विद्धि नृणां च तद्वत्'। सत्योक्त इति। सत्योक्ते होराशास्त्रे स्वत्रिकोण भवनादात्मीयमूलत्रिकोणराशेः स्वां-त्यधीर्धमपाः स्वोच्चायुः सुखपाश्च ते ग्रहस्य सुहृदो भवन्ति। तत्र त्रिकोणं मूलत्रिकोणं तस्मात्स्वपो द्वितीयराश्यधिपः तस्मादेवान्त्यपो द्वादशस्थानाधिपः धीस्थानपः धीस्थानस्य पञ्चमस्याधिपः धर्मपो नवमाधिपः स्वोच्चपो ग्रहोक्तस्योच्चस्य स्वामी आयुषोऽष्टमस्थानस्याधि-पतिः सुखपश्चतुर्थस्थानाधिपतिः ग्रहो मित्रं भवति। स्वलक्षणविधे-र्विरोधादन्यैरपठितस्थानाधिपतिभिर्ग्रहैः सह नायं मित्रामित्रविभागः कल्पनीयः। विरोधादसुहृद्भवं स्वं च तल्लक्षणं स्वलक्षणं स्वलक्षणे विधिः स्वलक्षणविधिः तेन विरोधस्तस्मात्। एतदुक्तं भवति। योऽयं

(१) विगता येभ्यस्ता।

स्वविधिर्मित्रलक्षणविभागः प्रदर्शितः अतोऽन्यस्थानाधिपा ये ग्रहास्ते ग्रहस्य सुहृदो न भवति। तथा च सत्यः। 'सुहृदस्त्रिकोणभवनाद्ग्रहस्य सुतभे व्ययेऽथ धनभवने। स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न शेषाः॥' स्वजनसंज्ञं चतुर्थस्थानं ततो द्विराश्यधिपो मित्रसंज्ञः एक-राश्यधिपो मध्यमः अनुक्तराश्यधिपः शत्रुः। वक्ष्यति च। 'द्व्येकानुक्त-भपान्सुहृत्समरिपून्सञ्चिन्त्य नैसर्गिकान्' इति। एकराश्यधिपो मध्यम इति। यदुक्तं तथा चन्द्रार्कावेकराश्यधिपावपि मित्रसंज्ञौ भवतः तयोर्हि राशिद्वयस्याधिपत्याभावात् राशिद्वयस्य योऽधिपतिर्ग्रहः स एवोच्चराश्यधिपत्वात् द्विभपत्वं प्राप्नोति तथापि द्विभप एव ज्ञातव्यः, तस्य स्वराशिव्यतिरेकात्। एतन्मन्दबुद्धिव्युत्पादनार्थं स्पष्टतरं व्या-ख्यायते। तद्यथा। आदित्यस्य सिंहस्त्रिकोणं तस्माद्द्वादशस्थानस्य कर्कटस्य चन्द्रमा अधिपतिः। स एकराश्यधिपोऽपि सन् द्वितीयराशे-राधिपत्याभावाद् दित्यस्य मित्रम्। सिंहाच्चतुर्थो वृश्चिकः नवमो मेषः तयोर्भौमोऽधिपतिः। आदित्यस्योच्चं मेषः तस्याधिपो भौमः मेषस्य सिंहनवमत्वादादित्यस्य स्वोच्चत्वादेकराशित्वं मेषस्यैकत्वाद्वृश्चिकस्य द्वितीयत्वाद्भौमो द्विराश्यधिपो जातः तेनादित्यस्य मित्रम्। सिंहा-त्पञ्चमाष्टमौ धन्विमीनौ तयोरधिपतिर्जीवः स चोक्तस्थानद्वयस्या-धिपतित्वादादित्यस्य मित्रम्। सिंहाद्द्वतीयैकादशौ कन्यामिथुनौ तयोर्बुधः स्वामी तत्र द्वितीयस्थानस्योक्तत्वादेकादशस्यानुक्तत्वात् पठितैकराश्यधिपत्वाद्बुधो रवेर्मध्यमः। सिंहात्षष्ठसप्तमस्थाने मकर-कुम्भौ नोक्तौ तयोराधिपत्यादादित्यस्य शनैश्चरः शत्रुः। सिंहाद्दशम-तृतीये वृषतुले तयोरनुक्तयोः स्थानयोराधिपत्याच्छुक्र आदित्यस्य शत्रुः। एवं रवेः। अथ चन्द्रस्य यथा। चंद्रस्य वृषस्त्रिकोणस्तस्माच्चतुर्थ-स्थानं सिंहस्तस्याधिपः सूर्यः स एकराश्यधिपो द्वितीयराशेराधि-पत्याभावाच्चन्द्रस्य मित्रम्। वृषाद्द्वितीयो मिथुनः पञ्चमः कन्या तयोर्बुधोऽधिपतिः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपत्याच्चन्द्रस्य मित्रम्। वृषात्सप्तमद्वादशौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमः स्वामी तत्र द्वादशस्योक्त-त्वात्सप्तमस्थानुक्तत्वात् पठितैकराश्यधिपत्वाद्भौमश्चन्द्रस्य मध्यमः। वृषाद् द्वितीयपञ्चमयोर्मिथुनकन्ययोः स्वामी बुधस्योक्तस्थानद्वयाधि-पत्वाद्बुधश्चन्द्रस्य मित्रम्। वृषादष्टमैकादशौ धन्विमीनौ तयोर्जीवः स्वामी तत्रैकादस्यानुक्तत्वात् अष्टमस्योक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वा-

ज्जीवश्चन्द्रस्य मध्यस्थः। चन्द्रस्य वृषः उच्चः वृषात्षष्ठस्तुला तयोः शुक्रोऽधिपतिस्तत्र वृषस्योच्चत्वेनोक्तत्वात्षष्ठस्यानुक्तत्वात्पठितैक-राश्यधिपत्वाच्चन्द्रस्य शुक्रो मध्यस्थः। वृषान्नवमदशमौ मकरकुम्भौ तयोः स्वामी शनिः तत्र नवमस्योक्तत्वाद्दशमस्यानुक्तत्वात्पठितैक-राश्यधिपत्वात्सौरः चन्द्रस्य मध्यस्थः। एवं चन्द्रस्य। अथ भौमस्य। तद्यथा। भौमस्य मेषस्त्रिकोणं मेषाच्चतुर्थस्थानस्य कर्कटस्याधिपश्चन्द्रः स एकराश्यधिपोऽपि सन्द्वितीयराशेराधिपत्याभावाद्भौमस्य मित्रम्। मेषात्पञ्चमस्य सिंहस्याधिपः सूर्यः। स एकराश्यधिपोऽपि सन्द्वितीयराशे-राधिपत्वाभावाद्भौमस्य मित्रम्। मेषात्तृतीयषष्ठौ मिथुनकन्ये नोक्ते तयोर्बुधस्याधिपत्याद्भौमस्य बुधः शत्रुः। मेषाद्द्वितीयसप्तमौ वृषतुले तयोः शुक्रः स्वामी तत्र द्वितीयस्योक्तत्वात्सप्तमस्यानुक्तत्वात्पठितैक-राश्यधिपत्वाच्छुक्रो भौमस्य मध्यमः। मेषाद्दशमैकादशौ मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधिपतिः भौमस्य मकर उच्चः तस्योक्तत्वादेकादशस्यानुक्त-त्वापठितैकराश्यधिपत्वात् सौरो भौमस्य मध्यमः। एवं भौमस्य। अथ बुधस्य कन्या मूलत्रिकोणं तस्माद्द्वादशस्थानस्य सिंहस्याधिपतिः सूर्यः स एकराश्यधिपोऽपि सन्द्वितीयराशेराधिपत्याभावाद् बुधस्य मित्रम्। कन्यायाः द्वितीयनवमौ तुलावृषौ तयोः शुक्रोऽधिपतिः स चोक्तस्थान-द्वयस्याधिपत्वाद्बुधस्य मित्रम्। कन्याया एकादशस्थानस्य कर्कट-स्याधिपतिश्चन्द्रः तस्यानुक्तत्वाद्बुधस्य शत्रुः। कन्यायाः तृतीयाष्टमौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमोऽधिपतिः तत्राष्टमस्योक्तत्वात्तृतीयस्यानुक्त-त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात् भौमो बुधस्य मध्यमः। कन्यायाश्चतुर्थसप्तमौ धन्विमीनौ तयोऽर्जीवोऽधिपतिस्तत्र चतुर्थस्योक्तत्वात्सप्तमस्यानुक्त-त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाज्जीवो बुधस्य मध्यमः। कन्यायाः पञ्चमषष्ठौ मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधिपतिस्तत्र पञ्चमस्योक्तत्वात्षष्ठस्यानुक्त-त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात्सौरो बुधस्य मध्यमः। एवं बुधस्य। अथ गुरोः। जीवस्य धन्वी त्रिकोणं तस्मादष्टमस्थानस्य कर्कटस्याधिपतिश्चन्द्रः स एकराश्यधिपोऽपि सन् द्वितीयराशेराधिपत्याभावाज्जीवस्य मित्रम्। धनुषो नवमस्य सिंहस्याधिपतिः सूर्यः स एकराश्यधिपोऽपि सन्द्वितीयस्य राशेराधिपत्याभावाज्जीवस्य मित्रम्। धनुषः पञ्चमद्वादशौ मेषवृश्चिकौ तयोर्भौमोऽधिपतिः स चोक्तस्थानस्याधिपत्वाज्जीवस्य मित्रम्। धनुषो द्वितीयतृतीयौ मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधिपतिस्तत्र द्वितीयस्योक्तत्वा-

तृतीयस्यानुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात् सौरो जीवस्य मध्यस्थः। धनुषः सप्तमदशमे मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः स चानुक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वाद्गुरोः शत्रुः। धनुषः षष्ठैकादशस्थाने वृषतुले तयोः शुक्रोऽधिपतिः स्थानद्वयस्यानुक्तत्वाच्छुक्रो गुरोः शत्रुः। एवं जीवस्य। अथ शुक्रस्य। शुक्रस्य तुला त्रिकोणं तुलायाः नवमद्वादशस्थाने मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वाच्छुक्रस्य मित्रम्।तुलायाश्चतुर्थपञ्चमौ मकरकुंभौ तयोरधिपतिः सौरः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपत्वाच्छुक्रस्य मित्रम्। तुलायाः द्वितीयसप्तमौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमोऽधिपतिः तत्र द्वितीयस्योक्तत्वात्सप्तमस्यानुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाद्भौमः शुक्रस्य मध्यस्थः। शुक्रस्य मीन उच्चं तुलायास्तृतीयषष्ठौ धन्विमीनौ तयोर्जीवोऽधिपतिः तत्र मीनस्योच्चादुक्तत्वाद्धन्विनोऽनुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाज्जीवः शुक्रस्य मध्यस्थः। तुलादेकादशः सिंहस्तस्याधिपः सूर्यः स एकराश्यधिपोऽपि सन् द्वितीयराशेराधिपत्याभावाच्छुक्रस्यार्कः शत्रुः। तुलात्कर्कटस्य दशमस्थानस्याधिपश्चन्द्रः स एकराश्यधिपोऽपि द्वितीयराश्याधिपत्याभावाच्छुक्रस्य चन्द्रः शत्रुः। एवं शुक्रस्य। अथ सौरस्य कुम्भस्त्रिकोणं कुम्भात्पञ्चमाष्टमे मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वात्सौरस्य मित्रम्। कुम्भाद्द्वितीयैकादशौ धन्विमीनौ तयोर्जीवोऽधिपतिः तत्र द्वितीयस्योक्तत्वादेकादशस्यानुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात्सौरस्य जीवो मध्यस्थः। कुंभात्षष्ठः कर्कटस्याधिपश्चन्द्रस्तस्यानुक्तत्वात्सौरस्य चंद्रः शत्रुः। कुंभात्सप्तमः सिंहस्तस्याधिपतिः सूर्यस्तस्यानुक्तत्वात्सौरस्य सूर्यः शत्रुः। कुंभात्तृतीयदशमौ मेषवृश्चिकौ तयोर्भौमोऽधिपतिस्तयोरनुक्तत्वाद्भौमः सौरस्य शत्रुरिति॥ १५॥

भाषा- बृहस्पति। बृहस्पति, बुध। शुक्र, बुध। रवि वर्जित सब ग्रह। मंगल वर्जित सब ग्रह। रवि, चन्द्रवर्जित सब ग्रह। तथा कुज, चन्द्र, रवि, इन तीनों से अतिरिक्त शेष ग्रह, क्रम से सूर्यादि ग्रहों के मित्र होते हैं। इस प्रकार किसी (यवन आदि आचार्य) का मत है। परञ्च सत्याचार्य के मत से ग्रहों के अपने-अपने मूल त्रिकोण से २।१२।५।९।८।४– इन स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं। अर्थात् शेष स्थानों के स्वामी शत्रु होते हैं। तथा जिनमें मित्र और शत्रु दोनों के लक्षण हों वे सम (उदासीन) होते हैं। इस प्रकार से अपने लक्षणों के विरोध होने के कारण दूसरे (यवन आदि अन्य आचार्य) के कहे अनुसार मैत्री-विचार नहीं ग्रहण करना चाहिए॥१५॥

सत्याचार्योक्तमैत्री का उदाहरण– अपने मूलत्रिकोण से २।१२।५।६।८।४- इन उक्त स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं। (१।३।६।७।१०।११ इन) अनुक्त स्थानों के स्वामी ग्रह के शत्रु होते हैं। इसको ध्यान में रख कर विचार करना चाहिये– जैसे सूर्य के मूलत्रिकोण (सिंह) से उक्त द्वितीय स्थान के स्वामी होने के कारण बुध सूर्य का मित्र हुआ तथा 'अनुक्त' एकादश स्थान के स्वामी होने से शत्रु भी हुआ। अतः मित्र और शत्रु होने के कारण बुध सूर्य का सम हुआ। तथा सिंह से ३।१० (तुला और वृष)– इन दोनों अनुक्त स्थान के स्वामी होने से शुक्र सूर्य का शत्रु हुआ। तथा सिंह से ४।६, इन दोनों उक्त स्थान के स्वामी होने से मंगल सूर्य का मित्र हुआ। तथा सिंह से ५।८, इन दोनों उक्त स्थान के स्वामी होने से गुरु सूर्य का मित्र हुआ। एवं सिंह से ६।७, इन दोनों अनुक्त स्थान के स्वामी होने से शनि सूर्य का शत्रु हुआ। एवं सिंह से १२ उक्त स्थान के स्वामी होने के कारण चन्द्रमा मित्र हुआ। इस प्रकार सब ग्रहों के अपने-अपने मूलत्रिकोण से विचार कर मित्र, सम और शत्रु समझना चाहिए।। १५।।

इस प्रकार दोनों उक्त स्थान के स्वामी मित्र, एक उक्त एक अनुक्त के स्वामी सम और अनुक्त स्थान के स्वामी शत्रु होते हैं। इससे सिद्ध उदाहरण–

अधुना सत्योक्तान् द्व्येकानुक्तभपान् ग्रहस्य सुहृन्मध्यस्थ-
शत्रूञ्छार्दूलविक्रीडितद्वयेनाऽऽह–

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषारवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाःशीतगोः।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सिताऽर्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ।।१६।।

शत्रू मंदसिताविति।। रवेरादित्यस्य मंदः सौरः सितः शुक्रः एतौ द्वौ शत्रू रिपू शशिजो बुधः समो मध्यस्थः न शत्रुर्न मित्रमुदासीन इत्यर्थः। शेषा ग्रहाश्चंद्रांगारकगुरवो मित्राणीति। तीक्ष्णांशुरित्यादि। शीतगोश्चंद्रमसः तीक्ष्णांशुः सूर्यः हिमरश्मिजो बुधः एतौ द्वौ सुहृदौ मित्रे शेषाः समा एव भौमजीवशुक्रसौराः समा मध्यस्था उदासीना इत्यर्थः। जीवेन्दूष्णकरा इति। कुजस्य भौमस्य जीवो बृहस्पतिः इन्दुश्चन्द्रः उष्णकरः सूर्य एते सुहृदो मित्राणि ज्ञो बुधः अरिः शत्रुः। सितार्की शुक्रसौरौ समौ मध्यस्थाविति। मित्रे सूर्यसिताविति। सूर्यो रविः सितः शुक्रः एतौ द्वौ बुधस्य मित्रे सुहृदौ; हिमगुश्चन्द्रमाः शत्रुररिः; अपरेऽन्ये भौमगुरुसौराः समा मध्यस्था इति।। १६।।

भाषा- सूर्य के शनि, शुक्र शत्रु; बुध सम तथा शेष चन्द्र, मंगल और गुरु मित्र होते हैं। चन्द्रमा के सूर्य-बुध मित्र तथा शेष सभी ग्रह सम हैं।

अर्थात् चन्द्रमा के नैसर्गिक शत्रु नहीं हैं। मंगल के गुरु, चन्द्र, रवि मित्र; चन्द्रमा शत्रु और बाकी मंगल, गुरु, शनि सम हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु, शेष-मंगल, गुरु, शनि सम हैं॥१६॥

यवनोक्त मैत्री चक्र—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	गुरु	गुरु बुध	बुध शुक्र	शनि गुरु शुक्र मंगल	सूर्य चन्द्र बुध शुक्र शनि	मंगल बुध गुरु शनि	बुध गुरु शुक्र
शत्रु	चन्द्र मंग. बुध शुक्र शनि	सूर्य मंगल शुक्र शनि	सूर्य चन्द्र गुरु शुक्र	सूर्य	मंगल	चन्द्र सूर्य	सूर्य चन्द्र मंगल

सत्योक्त नैसर्गिक मैत्री चक्र—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र मंग. गुरु	सूर्य बुध	सूर्य चन्द्र गुरु	सूर्य शुक्र	सूर्य चन्द्र मंगल	बुध शनि	बुध शुक्र
सम	बुध	मंगल गुरु शुक्र शनि	शुक्र शनि	मंगल गुरु शनि	शनि	मंगल गुरु	गुरु
शत्रु	शनि शुक्र	×	बुध	चन्द्र	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र	सूर्य चन्द्र मंगल

सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयो
ये प्रोक्ताःस्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्तिताः॥१७॥

सूरेरित्यादि। सूरेर्बृहस्पतेः सौम्यो बुधः सितः शुक्रः एतावरी शत्रू, रविसुतः सौरो मध्यस्थः अपरे अन्ये रविचन्द्रभौमाः अन्यथा मित्राणीत्यर्थः। सौम्यार्कीत्यादि। शुक्रस्य सौम्यार्की बुधसौरौ सुहृदौ मित्रे कुजो भौमः गुरुर्जीवः एतौ द्वौ समौ मध्यस्थौ, शेषावादित्यचन्द्रावरी शत्रू। शुक्रज्ञावित्यादि। सौरस्य शनेः शुक्रज्ञौ सितबुधौ सुहृदौ मित्रे, सुरगुरुर्जीवः समो मध्यस्थः अन्येऽपरे रविशशिभौमाः अरयः शत्रवः। ये प्रोक्ता इत्यादि। ये मया स्वत्रिकोणभादिषु पूर्वं त्रिकोणभवनात्स्वा-त्स्वांत्यधीधर्मपा इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तास्त एवेह प्रविभज्य पुनर्भूयः कीर्तिताः उदाहरणत्वेन प्रदर्शिता इति॥१७॥

भाषा- बृहस्पति के बुध-शुक्र शत्रु; शनि सम और रवि, चन्द्र, मंगल मित्र हैं। शुक्र के बुध-शनि मित्र, मंगल-गुरु सम और बाकी (रवि-चन्द्र) शत्रु हैं। तथा शनि के शुक्र, बुध मित्र; गुरु सम और अन्य (रवि चन्द्र, मंगल) शत्रु होते हैं। पूर्व 'स्वत्रिकोणभात्' इत्यादि से जो नैसर्गिक मैत्री कही, उसे ही मैंने फिर यहाँ उदाहरण रूप से स्पष्ट कहा है।। १७।।

एवं नैसर्गिकमित्रामित्रमध्यस्थविभागमुक्त्वाऽधुना तात्कालिकं मित्रामित्रविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

अन्योन्यस्य धनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थिता-
स्तत्काले सुहृदः स्वतुङ्गभवनेऽप्येकेऽरयस्त्वन्यथा।
द्व्येकानुक्तभपान् सुहृत्समरिपून्सञ्चिन्त्य नैसर्गिकां-
स्तत्काले च पुनस्तु तानधिसुहृन्मित्रादिभिः कल्पयेत् ।।१८।।

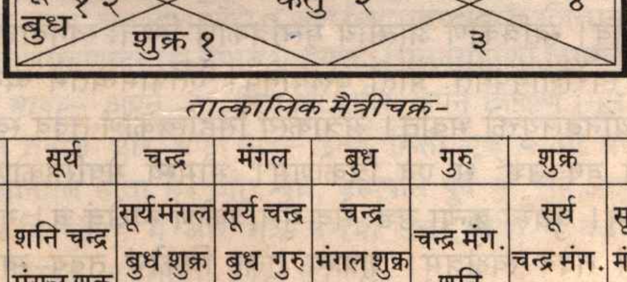
अन्योन्यस्येति।। अन्योन्यस्य परस्परमेतेषु धनादिषु स्थानेषु ग्रहस्य ग्रहा व्यवस्थितास्तत्काले जन्मनि यात्रायां विवाहे प्रश्ने वा तत्समये सुहृदो मित्राणि भवन्ति। धनस्थानं द्वितीयं व्ययस्थानं द्वादशम्, आयस्थानं एकादशं, सहजस्थानं तृतीयं, व्यापारस्थानं कर्माख्यं दशमं, बन्धुस्थानं चतुर्थम्; एतेषु स्थानेषु यो: ग्रहः स्थितः यमाद्ग्रहाद्व्यवस्थितस्तस्य सुहृन्मित्रं भवति स च तस्यापि। यत उक्तमन्योन्यस्येति। स्वतुंगभवनेऽप्येक इति। एकेऽन्ये पुनराचार्याः ग्रहस्य यस्योच्चे यो ग्रहः स्थितः तस्य स्वोच्चस्थितं तत्कालं मित्रमिच्छन्ति। ते च यवनेश्वरादय; तथा च तद्वा-क्यम्। 'मूलत्रिकोणाद्धनधर्मबन्धुपुत्रव्ययस्थानगता ग्रहेन्द्राः। तत्कालमेते सुहृदो भवन्ति स्वोच्चे च यो यस्य विकृष्टवीर्यः।।' इति। एतदप्याचार्यस्य नाभिप्रेतम्। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्। 'तत्काले च दशायबन्धु-सहजस्वांत्येषु मित्रं स्थिताः' इति। अरयस्त्वन्यथेति। अन्यथा अन्येन प्रकारेण ग्रहस्य ग्रहा व्यवस्थितास्तत्कालेऽरयः शत्रवो भवन्ति अन्योन्यमिति। तद्यथा। एकराशिगताः पञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनवमस्थानस्थश्च तत्कालं शत्रुर्ग्रहस्य ग्रहो भवति। द्व्येकानुक्तभपानिति। पूर्वमेव दर्शितं द्वितय-भपानेकभपाननुक्तभपांश्च मित्रमध्यस्थशत्रून्नैसर्गिकान् 'शत्रू मन्दसितौ' इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तान्संचिंन्य विज्ञाय तत्काले जन्मादौ तानेवाधिसुहृ-न्मित्रादिभिरुपलक्षितान्। तत्र धनादीनि मित्रस्थानानि तेषु नैसर्गिकसुहृ-त्स्थितोऽधिमित्रं भवति। मध्यस्थो मित्रम् शत्रुर्मध्यस्थ इति धनादिवर्जितेष्व-न्येषु स्थितो निसर्गसुहृन्मध्यस्थो भवति। मध्यस्थः शत्रुः शत्रुरधिशत्रुरिति। अधुना ग्रहाणां चतुर्विधं बलं भवति स्थानदिक्चेष्टाकालबलाख्यम्।। १८।।

भाषा– जन्म, प्रश्न आदि इष्ट समय में परस्पर द्वितीय, द्वादश, तृतीय, एकादश और चतुर्थ, दशम में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। और अन्य स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं। किसी (यवन आदि) के मत से अपने से उच्च स्थित ग्रह भी मित्र होते हैं। परञ्च यह सत्याचार्य का अभिप्रेत नहीं है। क्योंकि उन्होंने लघुजातक में 'तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्रम्' ऐसा ही कहा है।

अब पञ्चधा मैत्री कहते हैं- पूर्व जो दो कथित स्थान के स्वामी को मित्र, एक स्थान के स्वामी को सम और अनुक्त स्थान के स्वामी शत्रु नैसर्गिक (अर्थात् शत्रू मन्दसितौ इत्यादि) कहे गये हैं। उनको विचार कर और तात्कालिक मैत्री भी विचार कर फिर उन्हें अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रु– इस प्रकार कल्पना (विचार) करना चाहिए।। १८।।

विशेष अर्थ– जो ग्रह नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हो, वह अधिमित्र; जो नैसर्गिक, सम और तात्कालिक मित्र हो वह मित्र; जो नैसर्गिक तो शत्रु और तात्कालिक मित्र, वह सम हो जाता है। जो नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु हो, वह शत्रु ही होता है। तथा जो दोनों प्रकार से शत्रु हो वह अधिशत्रु होता है।

उदाहरण– तात्कालिक कुण्डली देखिये। सूर्य से १०।११।१२ और द्वितीय स्थान में शनि, चन्द्र और मंगल हैं; इसलिये ये चारों सूर्य के तात्कालिक मित्र हुए। और शेष ग्रह– बुध और बृहस्पति– ये दो शत्रु हुए। इस प्रकार सब ग्रहों के अपने-अपने स्थान से विचार कर चक्र में दिये जाते हैं।। १८।।



तात्कालिक मैत्रीचक्र–

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	शनि चन्द्र मंगल शुक्र	सूर्य मंगल बुध शुक्र गुरु शनि	सूर्य चन्द्र बुध गुरु शुक्र शनि	चन्द्र मंगल शुक्र शनि	चन्द्र मंग. शनि	सूर्य चन्द्र मंग. बुध	सूर्य चन्द्र मंगल बुध गुरु
शत्रु	बुध गुरु	x	x	गुरु सूर्य	सूर्य बुध शुक्र	गुरु शनि	शुक्र

अब यहाँ चन्द्रमा और मंगल नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हैं, अतः ये दोनों सूर्य के अधिमित्र हुए। तथा बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु है, इसलिए शत्रु ही हुआ। एवं बृहस्पति नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक शत्रु होने से सम हुआ। शुक्र, शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र होने से सम हुए। इस प्रकार तात्कालिक चक्र से सब ग्रहों का विचार करे।।१८।।

उक्त-रीति से पञ्चधा मैत्री चक्र–

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अ. मि.	चन्द्र मंगल	सूर्य बुध	चन्द्र गुरु सूर्य	शुक्र	चन्द्र मंगल	बुध	बुध
मित्र	०	मंग. गुरु शुक्र शनि	शुक्र शनि	मंग. शनि	शनि	मंगल	सूर्य चन्द्र मंग. गुरु
सम	गुरु शुक्र शनि	+	बुध	सूर्य चन्द्र	सूर्य	सूर्य चन्द्र शनि	शुक्र
शत्रु	बुध	+	+	गुरु	+	गुरु	+
अ. श.	+	+	+	+	बुध शुक्र	+	+

तत्र तावत्स्थानदिग्बलं दोधकेनाऽऽह–

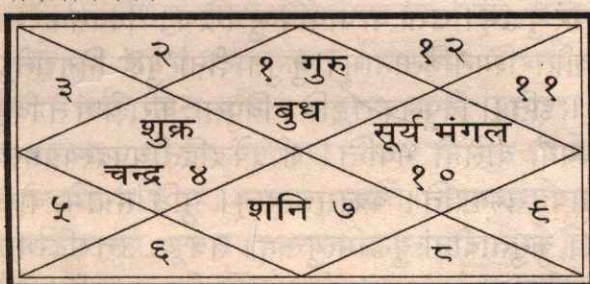
स्वोच्चसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशैः स्थानबलंस्वगृहोपगतैश्च।
दिक्षु बुधाङ्गिरसौ रविभौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च।।१९।।

स्वोच्चसुहृदिति।। स्वग्रहणं प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्र स्वोच्चस्थितो ग्रहो बलवान् भवति। तात्कालिकस्य सुहृदो मित्रस्य क्षेत्रे स्थितो बलवानेव। स्वत्रिकोणे आत्मीये मूलत्रिकोणे स्थितः स्वनवांशे स्थितः स्वगृहे स्वराशावुपगतः प्राप्तो बलवानेव। एतेषामन्यतमे व्यवस्थितो ग्रहः स्थानबलयुक्तो भवति। अत्रार्कस्य सिंहस्त्रिकोणं तदेव स्वगृहम्। चन्द्रस्य वृष उच्चः स एव त्रिकोणम्। भौमस्य मेषस्त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम्। बुधस्य कन्या उच्चः सैव मूलत्रिकोणं स्वक्षेत्रं च। गुरोर्धन्वी त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम्। शुक्रस्य तुला त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम्। एतेषामाचार्येण विशेषो नोक्तः। अस्माभिरन्यहोराशास्त्रादानीय शिष्यहितायेह लिख्यते। *तथा च सारावल्याम्–*

'विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य।
उच्चं भागत्तृतीयं वृष इन्दोः स्यात्त्रिकोणमपरेंऽशाः।।

द्वादशभागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य।
उच्चफलं कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सदा चिंत्यम्।।
परतस्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः।
दशभिर्भागैर्जीवस्य त्रिकोणफलं स्वभं परं चापे।।
शुक्रस्य तु त्रयोंऽशास्त्रिकोणमपरे घटे स्वराशिश्च।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा सिंहे।।'

एतदार्याचतुष्टयं सुबोधम्। दिक्षुबुधाङ्गिरसावित्यादि। प्राच्याद्यासु चतसृषु दिक्षु क्रमाद्बुधादयो बलिनो भवन्ति। तत्र पूर्वस्यां बुधांगिरसौ ज्ञजीवौ बलिनौ भवतः। लग्नास्थावित्यर्थः। दक्षिणस्यां रविभौमौ सूर्याङ्गारकौ दशमस्थावित्यर्थः पश्चिमायां सूर्यसुतः शनिः सप्तमस्थानस्थ इत्यर्थः। उत्तरस्यां सितशीतकरौ शुक्रचन्द्रौ चतुर्थस्थावित्यर्थः। यो ग्रहो तत्र बली स तस्मात्सप्तमस्थानस्थो विबलो भवति। मध्येऽनुपातत ऊह्यमिति सर्वत्रेयं परिभाषा। ग्रहाणामुच्चनीचविभागे राशीनां दिग्बलप्रविभागेऽपि।



तथा च यवनेश्वरः।

'गुर्विन्दुजौ पूर्वविलग्नसंस्थौ नभस्थलस्थौ च दिवाकरारौ।
सौरोऽस्तगः शुक्रनिशाकरौ तु जले स्थितावग्न्यबलौ भवेताम्।। इति।।

अग्र्यबलग्रहणादन्तरेऽनुपात एव युक्तः। एतद्ग्रहाणां दिग्बलम्।।१९।।

भाषा– अपने उच्च, मित्र की राशि, अपने त्रिकोण (मूल त्रिकोण), अपने नवांश और अपने गृह– इनमें किसी एक में भी ग्रह के रहने से स्थानबल होता है। और बुध, बृहस्पति पूर्व में; रवि, मङ्गल दक्षिण में; शनि पश्चिम में और शुक्र-चन्द्रमा उत्तर दिशा में बली होते हैं। यह दिग्बल कहलाता है।।१९।।

विशेष अर्थ- कुण्डली देखिये-प्रथम लग्न पूर्व, दशम लग्न दक्षिण, सप्तम लग्न पश्चिम और चतुर्थ लग्न उत्तर दिशा है। कहा भी है–

'यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्ग्रहाद्यमिह लग्नमुच्यते।
प्राचिपश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे।'

इसलिए बुध-बृहस्पति लग्न में, रवि-मङ्गल दशम में, शनि सप्तम में और चन्द्रमा-शुक्र चतुर्थ लग्न में बली होते हैं। अर्थात् विरुद्ध दिशा में निर्बल होते हैं। इसलिए मध्य में अनुपात से-'मन्दाल्लग्नमिनात्कुजाच्च हिबुक' इत्यादि प्रकार से केशवीय जातक-पद्धति में स्पष्ट बल-साधन किया गया है॥ १६॥

अधुना चेष्टाबलं दोधकेनाऽऽह-

उदगयने रविशीतमयूखौ वक्रसमागमगाः परिशेषाः।
विपुलकरायुधि चोत्तरसंस्थाश्चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः।२०।

उदगयने इति॥ मकरादिराशिषट्कमुत्तरमयनं कर्कटादिराशिषट्कं दक्षिणमयनमिति। उदगयने उत्तरायणे रविशीतमयूखौ सूर्याचन्द्रमसौ बलिनौ भवतः। परिशेषाः भौमबुधगुरुसितसौराः वक्रगा विपरीतगतयो बलिनो भवन्ति। तथा समागमगाश्चन्द्रेण सहिता बलिन एव। चन्द्रेण सह संयोगो ग्रहाणां समागमशब्दवाच्यः। रविणा सहाऽस्तमयो, भौमादीनां परस्परं युद्धम्। उक्तं चाचार्यविष्णुचन्द्रेण। 'दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम्। कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्'॥ इति॥ विपुलकरा इति। विपुलाः करा येषां ते विपुलकराः विस्तीर्णरश्मयो बलिनो भवन्ति। शीघ्रकेंद्रद्वितीयपदस्थग्रहस्य विपुलकरत्वं प्रायः सम्भवति। वक्रासन्नत्वात्। युधि संग्रामे चोत्तरसंस्था बलिन एव। कुसुतादीनां युद्धमित्युक्तम्। तत्र यः उत्तरदिग्भागस्थितः स जयी बलवान् उत्तरसंस्थत्वमत्रोपलक्षणार्थं यस्तु जयी स बलवान्। तत्रैतज्जयिलक्षणम्। दक्षिणदिक्स्थः पुरुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृतोऽणुः अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः॥ उक्तविपरीतलक्षणसंपन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः। विपुलः स्निग्धो द्युतिमान्दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः॥' इति। एतच्छुक्रस्य प्रायः सम्भवति। यस्मात्पुलिशाचार्यः। 'सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः।' इति। एतच्चेष्टाबलम्। एषामन्यतमेन संयुक्तश्चेष्टाबलयुक्तो भवति॥२०॥

भाषा- सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में, शेष मङ्गलादि ५ ग्रह वक्रगति और समागम (चन्द्रमा के साथ) होने पर बली होते हैं। और जो ग्रह विपुल (अधिक) किरण वाले हों तथा जो ग्रह युद्ध में उत्तर दिशा में हो वे बली होते हैं। इस प्रकार के बलवाले ग्रह को चेष्टाबली समझना चाहिए॥२०॥

विशेष अर्थ- 'दिवाकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम्।
कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्॥'

मङ्गलादि ग्रह सूर्य के साथ रहने से अस्त तथा चन्द्रमा के साथ रहने से समागम कहलाता है। और ये ही मङ्गलादि ग्रह परस्पर युक्त होते हैं तो युद्ध कहलाता है। उनमें उत्तरवाला ग्रह बली समझा जाता है। केवल शुक्र विपुल रश्मिवाला हो तो दक्षिण में रहने पर भी बली समझा जाता है। यथा पुलिशाचार्यः-'सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः' ग्रहों का शीघ्र केन्द्र द्वितीयपद में हो तो विपुल किरणवाला होता है।।२०।।

अधुना ग्रहाणां कालबलं च मालिन्याऽऽह—

निशि शशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये
बहुलसितगताः स्युः क्रूरसौम्याः क्रमेण ।
द्व्ययनदिवसहोरामासपैः कालवीर्यं
शरुबुगुशुचसाद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः ।।२१।।

इतिश्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीतेबृहज्जातके
ग्रहयोनिप्रभेदोऽध्यायोद्वितीयः ।। २ ।।

निशीति।। शशिकुजसौराश्चन्द्रभौमशनयः निशि रात्रौ वीर्यवन्ता बलिनः। ज्ञो बुधः सर्वदा सर्वस्मिन्काले निशि दिने च बली। अन्येऽपरे रविगुरुसिता अह्नि दिने बलिनः। क्रूराः पापाः प्रागुक्ता बहुलपक्षे कृष्णपक्षे बलिनः। सौम्याः शुभग्रहाः सितगता शुक्लपक्षे बलिनः। कृष्णपक्षे चन्द्रमा अपि क्रूरो बलवान् भवति। यस्माद्यवनेश्वरः। 'मासे तु शुक्ले प्रतिपत्वृतेः पूर्वे शशी मध्यबलो दशाहे। श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्प-बलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव।।' इति। द्व्ययनेति। द्व्ययनं प्रमाणं यस्य तत् द्व्ययनं वर्षम्। स्ववर्षे आत्मीयवर्षे यो ग्रहो यत्र वर्षेऽधिपतिः स तत्र बलवान् स्वदिवसे आत्मीयवासरे स्वहोरायां कालहोरायां तथा स्वमासे यस्मिन्मासे योऽधिपतिः स तत्र बली। द्व्ययनदिवसहोरामासानां येऽधिपतयस्तैर्ग्रहैः कालबलमुपलक्षणीयं ते कालबलोपेता इत्यर्थः। केचिद्द्व्ययनदिवसहोरामासपैरिति पठन्ति। अन्ये स्वदिवससमहोरामासगैरिति पठन्ति। एष सापराधः पाठः। एतेषु सर्वे एव बलिनो भवन्ति। एतत् ग्रहाणां कालवीर्यमेषामन्यतमेन संयुक्तः कालबलसंपन्नो भवति। शरुबुगुशुचसाद्या इति। शादयो वर्णाः येषां शकार आद्यस्ते शाद्याः। शकाराद्यः शनैश्चरः सर्वेभ्यो बलहीनः। रुका-राद्यो रुधिरो भौमः शनैश्चरात् बलवान्। बुकाराद्यो बुधः स भौमा-द्बलवान्। गुकाराद्यो गुरुः स बुधाद्बली। शुकाराद्यः शुक्रः स जीवाद्बली।

चकाराद्यश्चंद्रः स शुक्राद्बली। सकाराद्यः सविता स चन्द्राद्बलीति। एतद्ग्रहाणां नैसर्गिकं बलम्। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्। 'मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः। नैसर्गिकबलमेतद्बलसाम्येऽस्मादधिकचिंता॥' इति। यत्र ग्रहाणां ग्रहयोर्वा बलसाम्यं तत्रास्माद्बलादधिवीर्यता ज्ञेयेति। अत्राचार्येण चतुःप्रकारस्य ग्रहाणां बलस्य फलं नोक्तं तच्चास्माभिः शिष्यहितहेतवेऽन्यशास्त्राल्लिख्यते। तथा च सारावल्याम्-

'उच्चबलेन समेतः परां विभूतिं ग्रहः प्रसाधयति।
स्वत्रिकोणबलः पुसां सांचिव्यं बलपतित्वं च॥
स्वर्क्षबलेनहतः प्रमुदितधनधयसंपदाक्रांतम्।
मित्रभबलसंयुक्तो जनयति कीर्त्यान्वितं पुरुषम्॥
तेजस्विनमतिसुखिनं सुस्थिरविभवं नृपाच्च लब्धधनम्।
स्वनवांशकबलयुक्तः करोति पुरुषं प्रसिद्धं च॥'

सूक्ष्मजातके उक्तम्। *'बलवान्मित्रस्वगृहोच्चनवांशेष्वीक्षितः शुभैश्चापि। चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः॥'* इति। तत्र शुभदृष्टस्य फलं तावत्-

'शुभदर्शनबलसहितः पुरुषं कुर्याद्धनान्वितं ख्यातम्।
सुभगं प्रधानमखिलं सुरूपदेहं च सौम्यं च॥
पुंस्त्रीभवनबलेन च करोति जनपूजितं क लाकुशलम्।
पुरुषं प्रसन्नचित्तं कल्पं परलोकभीरुं च॥
आशाबलसमवेतो नयति स्वदिशं ग्रहेश्वरः पुरुषम्।
नीत्वा वस्त्रविभूषणवाहनसौख्यान्वितं कुरुते॥
क्वचिद्राज्यं क्वचित्पूजां क्वचिद् द्रव्यं क्वचिद्यशः।
ददाति विहगश्चित्रं चेष्टावीर्यसमन्वितः॥
वक्रिनस्तु महावीर्याः शुभा राज्यप्रदा ग्रहाः।
पापा व्यसनदाः पुंसां कुर्वन्ति च वृथाटनम्॥

स्वस्थः(१)शरीरसमागमसुखमाहवजयबलेन विदधाति।
शुभमतुलं विहगेन्दो राज्यं च विनिर्जितारातिम्॥
रात्रिदिवाबलपूर्णैर्भूगजलाभेन शौर्यपरिवृद्ध्या।
मलिनयते त्रैपक्षं भुनक्ति सर्वं नरः प्रकटः॥
द्विगुणं द्विगुणं दद्युर्वर्षाधिपमासदिवसहोरेशाः।
कुर्युर्वृद्ध्या सौख्यं स्वदशासु धनं च कीर्तिं च॥
पक्षबलाद्रिपुनाशं रत्नाम्बरहस्तिसम्पदं दद्युः।
स्त्रीकनकभूमिलाभम् कीर्तिं च शशाङ्ककरधवलाम्॥
सकलबलभारभरिता निर्मलकरजालभासुराः सततम्।
राज्यं ग्रहा विदद्यः सौख्यं च मनोरथातीतम्॥

(१) 'स्वस्थो देहसमागम' इत्यादिपाठः साधुः।

आचारसौख्यशुभशौचयुता:सुरूपास्तेजस्विनश्रुतविदो द्विजदेवभक्ता:।
सद्वस्त्रमाल्यजनभूषणसम्प्रियाश्च सौम्यैर्ग्रहैर्बलयुतैः पुरुषा भवन्ति ॥
लुब्धाः कुकर्मनिरता निजकार्यनिष्ठा:पापान्विता: सकलहाश्च तमोऽभिभूता:।
क्रूरा:शठावधरता मलिना: कृतघ्ना: पापग्रहैर्बलयुतैः पुरुषा भवन्ति ॥
पुंराशिपुंग्रहेन्द्रैर्धीरा: संग्रामकांक्षिणो बलिन:।
नि:स्नेहा: सुकठोरा: क्रूरा मूर्खाश्च जायन्ते।
युवतिभवनस्थितेषु च मृदव: संग्रामभीरव: पुरुषा:।
जलकुसुमवस्त्रनिरता: सौम्या: कलहासंयुक्ता: ॥'

इति। *एतत्सर्वं सुगमम् ॥ २१ ॥*

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ ग्रहयोनिप्रभेदोऽध्यायो द्वितीय: ॥ २ ॥

भाषा– चन्द्र, मंगल, शनि– ये रात्रि में, बुध सर्वदा, शेष ग्रह दिन में, दिन का स्वामी दिन में, होरा का स्वामी होरा में, मास का स्वामी मास में (रवि, बृहस्पति और शुक्र), ये दिन में बली होते हैं। द्व्यन (वर्ष) का स्वामी वर्ष में बली होता है। यह कालबल कहलाता है।

अब नैसर्गिक बल कहते हैं। 'श (शनि) कु (मङ्गल) बु (बुध) गु (गुरु) शु (शुक्र) च (चन्द्रमा) और स (सविता=रवि) ये क्रम से बली होते हैं।२१।

इस प्रकार के बलयुक्त ग्रहों के फल संस्कृत टीकाकार ने स्पष्ट लिखा है।

अथ वियोनिजन्माध्याय: ॥३॥

अथातो वियोनिजन्माध्यायो व्याख्यायते। क: पुनरर्थो वियोनिजन्मेत्युच्यते। विविधवियोनिजन्मनां तिर्यक्पक्षिस्थावरादीनामुत्पत्तिर्वियोनिजन्मेत्युच्यते। तत्र प्रष्टुः सकाशाज्ज्ञातककालं प्रश्नकालं वा विज्ञाय वियोनिजन्मनिश्चयज्ञानं भवति। तत्तु वसन्ततिलकेनाऽऽह–

क्रूरग्रहैः सुबलिभिर्विबलैश्च सौम्यैः
क्लीबे चतुष्टयगते तदवेक्षणाद्वा।
चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं सत्त्वं
वदेद्यदि भवेत्स वियोनिसंज्ञ: ॥१॥

क्रूरग्रहैः सुबलिभिरिति ॥ चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपमिति। चन्द्रमा उपगतो व्यवस्थितो यस्मिन् द्विरसभागे द्वादशभागे तत्समानरूपं तत्सदृशरूपं सत्त्वं प्राणिनं वियोनिजन्मानं वदेत्। स च द्विरसभागो यदि वियोनिसंज्ञस्तदैव वदेन्नान्यथेति। तत्र मेषद्वादशभागे व्यवस्थिते चन्द्रमसि मेषाख्यस्य। एवं वृषद्वादशभागे व्यवस्थिते वृषाख्यस्य महि-

पादेश्च। कर्कटद्वादशभागे व्यवस्थिते कुलीरादेः। सिंहद्वादशभागे व्यवस्थिते सिंहद्वीपिश्रृगालमार्जारादिसत्त्वानां जन्म। वृश्चिकद्वादशभागे व्यवस्थिते सर्पकीटादेः। धनुर्धरद्वादशभागे द्वितीयार्धे व्यवस्थितेऽश्वगर्दभादिजन्म। मकरद्वादशभागे पूर्वार्धे व्यवस्थिते मृगजन्म। अपरे मण्डूकादेर्जलचर-प्राणिन इच्छन्ति। मीने मीनस्यैव। किमेतावतैव वियोनिजन्मनिश्चयेनेत्याह। क्रूरग्रहैरित्यादि। क्रूरग्रहैरादित्याङ्गारकशनैश्चरैर्बुधेन च तदेकतमेन युक्तेन क्षीणेन चन्द्रमसा एतैः सुबलिभिः बलयुक्तैः, सौम्यैः शुभग्रहैः क्रूरपरि-शिष्टैर्विबलैर्वीर्यरहितैः क्लीबे शनैश्चरे बुधे वा चतुष्टयगते केन्द्रस्थे एको वियोनिजन्मयोगः। तदवेक्षणाद्वा चन्द्रमसि प्रदर्शितवियोनिजन्मद्वादश-भागे व्यवस्थिते। क्रूरैर्बलयुक्तैः सौम्यैर्हीनबलैर्यत्र तत्रावस्थितेन बुधेन शनै-श्चरेण वा लग्ने दृष्टे वियोनिजन्मज्ञानं द्वितीयो योगः। अथदिवं द्विपदद्वादश-भागव्यवस्थिते चन्द्रमसि पूर्वोक्तं योगाभावे द्विपदजन्म। तथा च सारावल्याम्-

'क्रूरैः सुबलसमेतैर्विबलैः सौम्यैर्वियोनिभागगते।
चन्द्रे ज्ञशनी केन्द्रे तदीक्षिते चोदये वियोनिः स्यात्॥
मेषे शशी तदंशे छागादिप्रसवमाहुराचार्याः।
गोमहिषाणां गोंऽशे नररूपाणां तृतीयेंऽशे॥
तत्र चतुर्थे भागे कूर्मादीनां भवेदुदकजानाम्।
व्याघ्रादीनां परतः परतो ज्ञेयो नराणां च॥
वणिगंशे नररूपा वृश्चिकभागे तथा भुजङ्गाद्याः।
खरतुरगाद्या नवमे मृगशिखिनां स्यात्तथा दशमे॥
ज्ञेयाश्च तत्र विविधा वृक्षास्तृणजातयश्चित्राः।
एकादशे च पुरुषा जलजा नानाविधाश्चान्त्ये॥'

श्वमार्जारमूषकादीनां संख्याज्ञानं श्वप्रभृतीनां प्रसवे यावन्तो द्वादशांशका लग्ने तावन्ति वदेत्प्राज्ञः पुंस्त्रीसंज्ञान्यपत्यानि॥ १॥

भाषा– जितने भी पापग्रह हैं वे बली हों और सब शुभ ग्रह निर्बल हों एवं बुध-शनि केन्द्र में हो तो–इस प्रकार के योग में जिस प्रकार के द्विरसभाग (द्वादशांश) में चन्द्रमा हो उसी प्रकार प्राणियों का स्वरूप कहना। यदि वह (द्वादशांश) वियोनिसंज्ञक (द्विपद से अलग) राशि हो तो वियोनि का जन्म समझना। अथवा पापग्रह बली और शुभग्रह निर्बल हो और बुध अथवा शनि से दृष्ट लग्न हो तो भी वियोनि का जन्म कहना। यदि चन्द्रमा वियोनिसंज्ञक द्वादशांश में हो अर्थात् चन्द्रमा द्विपद द्वादशांश में हो तो द्विपद का ही जन्म समझना॥ १॥

विशेष अर्थ–'क्रूरैः सुबलसमेतैर्विबलैःसौम्यैर्वियोनिभागगते।
चन्द्रे ज्ञशनौ केन्द्रे तदीक्षिते चोदये वियोनिः स्यात्।।
मेषे शशी तदंशेच्छागादिप्रसवमाहुराचार्याः।
गोमहिषाणां गोंऽशे नररूपाणां च मिथुनांशे।।इत्यादि।।

अर्थात् यदि चन्द्रमा मेष के द्वादशांश में हो तो छाग, मेढ़ा आदि का जन्म, यदि वृष का अंश हो तो गाय, भैंस आदि, कर्क के अंश में हो तो केकड़ा, कछुआ आदि, सिंह के द्वादशांश में हो तो बाघ, सिंह, बिलार आदि, इसी प्रकार यदि वृश्चिक के द्वादशांश में हो तो बिच्छू, सर्प आदि, धनु के उत्तरार्ध में घोड़े, गदहे आदि, मकर के पूर्वार्ध में हरिण आदि; उत्तरार्ध में गोह एवं जलजन्तु इत्यादि और मीन के अंश में हो तो मछली आदि जलजन्तु का जन्म समझना। किन्तु मिथुन, कन्या आदि शेष द्विपद राशि के द्वादशांश में चन्द्रमा हो तो मानव का जन्म समझना चाहिए।१।

अथ वियोनिजन्मज्ञाने योगान्तरं वैतालीयेनाऽऽह–

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः।
लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वात्रापि वियोनिमादिशेत्।।२।।

पापा इति।। चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपमित्यनुवर्तते। पापाः क्रूरा ग्रहाः प्रागुक्ता बलिनः सचलाः न केवलं यावत्स्वभागगाः स्वनवांशस्थाः। भागग्रहणेनेह नवांशक एव ज्ञातव्यः। शोभनाः सौम्यग्रहाः प्रागुक्ताः पारक्ये परनवांशके विबला वीर्यरहिताः व्यवस्थिताः लग्नं तात्कालिकं च यदि वियोनिसंज्ञकं भवतितदत्राप्यस्मिन्नपि योगे चन्द्रोपगद्विरस-भागसमानरूपं सत्त्वं जातमिति वदेत्।। २।।

भाषा–यदि पापग्रह बली होकर अपने नवांश में हो और शुभग्रह निर्बल होकर दूसरे के नवांश में हो तथा वियोनि (द्विपद भिन्न) राशि लग्न हो तो ऐसे योग में चन्द्रोपगत द्वादशांश के (चन्द्रमा जिस राशि के नवमांश में हो), उसके समान वियोनि का जन्म समझना।। २।।

अथ वियोनावपि चतुष्पदानां प्राधान्येनोपयोगित्वात्त-
दङ्गविभागं राश्यात्मकमुपजातिकयाऽऽह–

क्रियः शिरो वक्त्रगलो वृषोऽन्ये पादोंसकं पृष्ठमुरोऽथ पार्श्वे।
कुक्षिस्त्वपानाङ्घ्र्यथ मेढ्रमुष्कौ स्फिक्पुच्छमित्याह चतुष्पदाङ्गे।३

क्रिय इति।। क्रियो मेषश्चतुष्पदानां शिरस्तदुपलक्षितमित्यर्थः। वृषो वक्त्रंगलो वक्त्रं मुखं गलः कम्बलं वृषः। अन्ये मिथुनादयो यथाक्रमं पादादि। मिथुनः पदांसकं पादौ पूर्वपादावंसौ स्कन्धौ। पृष्ठं कर्कटः।

उरो वक्षः सिंहः अथशब्द आनन्तर्ये। पार्श्वे पार्श्वद्वयं कन्या। कुक्षिद्वयं तुला। अपानं गुदा वृश्चिकः। अंघ्री पश्चिमपादौ धन्वी। अथशब्दः पादपूरणे मेढ्रः लिङ्गं मुष्कौ वृषणौ मकरः। स्फिचौ (१) कुम्भः। पुच्छं लांगूलं मीनः। इति शब्दप्रकारे। केचिच्चतुष्पदांगे राशिविभागमाहुः। आहेति ब्रुवन्त्याचार्या इति वाक्याध्याहारः। चतुष्पदग्रहणमुपलक्षणार्थम्। पक्षिणामप्येवं पूर्वपादस्थाने पक्षपाली। शेषं सामान्यं प्रयोजनम्। राश्युपलक्षितेंऽगे व्रणोपघातादेर्विज्ञानमिति।। ३।।

भाषा- १ मेष मस्तक, २ वृष मुख और गला, ३ मिथुन अगले पैर और कन्धा, ४ कर्क पीठ, ५ सिंह छाती, ६ कन्या दोनों पार्श्व (पिंजर), ७ तुला पेट, ८ वृश्चिक अपान (गुदामार्ग), ९ धनु पिछले पैर, १० मकर लिङ्ग और अण्डकोश, ११ कुम्भ स्फिक (पूठ), १२ मीन पुच्छ– इस प्रकार चार पैर वाले के अङ्ग में राशियों का विभाग कहा गया है।। ३।।

विशेष अर्थ- शुभ और अशुभ ग्रह के योग से वियोनि के अङ्गों की पुष्टि और हानि समझना।

अथ वियोनिवर्णज्ञानं वैश्वैदेव्याऽऽह–

लग्नांशकाद् ग्रहयोगेक्षणाद्वा वर्णान्वदेद्बलयुक्ताद्वियोनौ।
दृष्ट्यासमानान्प्रवदेत्स्वसङ्ख्यया रेखां वदेत्स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे।।४।।

लग्नांशकादिति।। लग्ने येन ग्रहेण योगो यस्तत्र व्यवस्थितस्तस्य यो वर्णः प्रागुक्तः वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरिता इत्याद्याः तद्वर्णं वियोनौ सत्त्वजाते वदेत् हृतनष्टादौ वा। ईक्षणाद्वेति। अथ लग्ने न कश्चिद्ग्रहो भवति तदा येन ग्रहेण लग्नमीक्ष्यते तस्य यो वर्णस्तं वा वदेत्। अथ लग्नं न केनचिद्युतं दृष्टं भवति तदा लग्नांशकात् लग्ने यद्राशिनवांशकोदयो भवति तद्राशिवर्णं रक्तः श्वेत इत्यादि वा वदेत्। दृष्ट्या समानानिति। अथ बहुभिर्ग्रहैर्लग्नं युतदृष्टं च भवति तदा बहूनैव वर्णान्वदेत्। तथापि यो वीर्यवान् सकलस्तद्वर्णबाहुल्यम्। यदुक्तंबलयुक्तादिति। अथ स्वस्वामिना युतदृष्टस्य राशेः सम्बन्धिनवांशको लग्नगतो भवति तदा तद्वर्णमेव वदेत्। तत्र च यो ग्रहो वियोनौ यस्मिन्नंगे व्यवस्थितस्तत्रात्मीयवर्णं करोति। एतत्कुतो लब्धं सप्तमस्थानगतैर्ग्रहैर्बलवद् ग्रहवर्णं पृष्ठे वियोनौ रेखां वदेत्। तथा च सारावल्याम्–

मेषादिभिरुदयस्थैरंशैर्वा ग्रहयुतेश्च दृष्टैर्वा।
स्वग्रहांशक संयोद्विद्याद्वर्णाम् पारांशके रुक्षान्।।

(१) स्फिचौ कटिप्रोथौ कटिस्थमांसपिण्डावित्यर्थः। 'स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथौ' इत्यमरः।

सप्तमसंस्था कुर्युः षष्ठे रेखां स्ववर्णसमाम्।
वीक्षन्ते यावन्तो वियोनिवर्णांश्च तावन्तः॥
बलदीप्तो गगनचरः करोति वर्णं वियोनीनाम्।
पीतं करोति जीवः शशी सितं भार्गवो विचित्रं च॥
रक्तं दिनकररुधिरौ रविजः कृष्णं बुधः शबलम्।
स्वे राशौ परभागे परराशौ स्वे नवांशके तिष्ठत्॥
पश्यन्ग्रहो विलग्नं स्ववर्णवर्णं तदा कुरुते॥४॥

भाषा- लग्न के नवांश से वियोनि का वर्ण कहना चाहिए। यदि लग्न में किसी ग्रह का योग हो तो उस ग्रह के समान वर्ण कहना। यदि लग्न में ग्रह नहीं हों और जिस किसी भी ग्रह की लग्न पर दृष्टि हो तो उसी के समान वर्ण कहना चाहिए। यदि लग्न में एक से अधिक ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो सबसे बली ग्रह के समान वर्ण कहना अथवा जितने ग्रह की दृष्टि हो उतने ही वर्ण कहना। तथा सप्तम भाव में जितने ग्रह हों उतनी ही रेखा (चिह्न) वियोनि के पृष्ठ (बहिरङ्ग) अर्थात् सप्तम भाव की राशि जिस अङ्ग की हो उस पर कहना चाहिए॥ ४॥

विशेष अर्थ– 'सप्तमसंस्थाः कुर्युः पृष्ठे रेखां स्ववर्णसमाम्।
वीक्षन्ते यावन्तो वियोनिवर्णाश्च तावन्तः॥ ॥सारावली से॥

अधुना पक्षिजन्मज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह—

खगे दृकाणे बलसँय्युतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये।
बुधांशके ता विहगाः स्थलाम्बुजाः शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसंभवाः।५

खगे इति॥ खगे दृकाणः पक्षिद्रेष्काणस्तत्र पक्षिद्रेष्काणो मिथुनद्वितीयः सिंहप्रथमः तुलाद्वितीयः कुम्भप्रथमः एषामन्यतमद्रेष्काण उदयति शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसम्भवाः यथाक्रमं विहगाः पक्षिणः स्थलाम्बुजा भवन्ति। पक्षिद्रेष्काणे शनैश्चरेण युते दृष्टे वा स्थलजपक्षिणां जन्म वक्तव्यम् एवमिन्दुना युते दृष्टे वा जलजानां पक्षिणां जन्मेति एको योगः। अत्र लग्ने प्रथमभागे नवांशके यो ग्रहः स्थितः स प्रथमद्रेष्काणस्थः ततः परमन्यस्मिन्नवांशके द्वितीयद्रेष्काणस्थः ततः परमन्यस्मिन्नंशके तृतीयद्रेष्काणस्थ इति। एवं त्रयो भागा विंशतिः कलाश्चैकनवांशकप्रमाणं परिकल्प्य ग्रहस्थितिरन्वेष्या। सर्वराशिष्वियं परिभाषा। बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये यस्य तस्य लग्नस्य चरनवांशकोदये बलसंयुतेन येन ग्रहेण युक्ते तथाभूतशनैश्चरयुतदृष्टे स्थलजानां चन्द्रयुतदृष्टे जलजानामिति द्वितीयो योगः। बुधांशके वेति। बुधनवांशके मिथुनकन्ययोरन्यतमे

तात्कालिकस्य लग्नस्योदिते तस्मिंश्च बलवद्ग्रहसंयुक्ते शनैश्चरयुतदृष्टे स्थलजानां चन्द्रयुतदृष्टे जलजानामिति तृतीयो योगः। एते शनैश्चर-स्येन्दोर्वा योगेन वीक्षणेन वा सम्भवन्तीति। तथा च सारावल्याम्–

'विहगोदितदृक्काणे ग्रहेण बलिना युतेऽथ चरभांशे।
बौधेंऽशे वा विहगाः स्थलाम्बुजाः शनिशशीक्षणाद्योगात्' इति॥५॥

भाषा- यदि लग्न में पक्षी द्रेष्काण हो अथवा चर राशि का नवांश हो अथवा बुध का नवांश हो और बली ग्रह से युक्त हो और उस पर शनि की दृष्टि अथवा योग हो तो स्थल पक्षी, यदि चन्द्रमा की दृष्टि हो तो जलपक्षी का जन्म कहना। यदि शनि-चन्द्रमा दोनों की दृष्टि या योग हो तो जल और स्थल दोनों स्थान में रहने वाला पक्षी समझना, इस प्रकार अर्थ से सिद्ध होता है॥५॥

विशेष अर्थ- पक्षी द्रेष्काण मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय, कुम्भ का प्रथम, यह द्रेष्काणाध्याय में द्रेष्काण के स्वरूप में कहा गया है।५।

अधुना वृक्षजन्मज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैस्तरूणां
तोयस्थले तरुभवोंऽशकृतः प्रभेदः।
लग्नाद्ग्रहः स्थलजलर्क्षपतिस्तु यावां-
स्तावन्त एव तरवः स्थलतोयजाताः॥६॥

होरेति॥ होरा लग्नम् इन्दुश्चन्द्रः सूरिर्जीवः रविरादित्यः एतैर्वि-बलैर्वीर्यरहितैः प्रष्टा तरूणां वृक्षाणां जन्म पृच्छतीति वक्तव्यम्। तत्रायं विशेषः। तोयस्थले इति। तत्र तरुभवो वृक्षजन्म किं तोये जले स्थले निर्जले देशे वेति तत्प्रभेदस्तद्विकल्पोंशकृतो नवांशकविहितः तत्र तोयराश्यंशकोदये तोयसमीपजान्वृक्षाननूपजान्। तोयराशयः कर्कट-मकरपश्चार्द्धमीनाः एतैरनूपजवृक्षजन्मज्ञानम्। इतरराश्यंशकोदये स्थल-वृक्षजन्मज्ञानं तत्रापि संख्यम्। लग्नाद्ग्रह इति। उदितांशैः स्थलचारी जलचारी वा भवति तदधिपतिर्यावत्संख्यराशौ लग्नाद्व्यवस्थित-स्तावत एव तत्संख्यास्तरवो वृक्षाः स्थलजा जलजा वा वक्तव्याः। अत्रा-प्यंशकपतिवशाद्वक्ष्यमाणायुर्दायविधिना द्विगुणत्वं वाच्यम्। 'स्वतुंगवक्रो-पगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैः।' इति। अत्र द्वित्रिगुणत्वं प्राप्ते यावन्त्यो गणना भवन्ति तावन्त्यः कार्या इत्यागमविदः। तथा च सारावल्याम्–

'लग्नार्कजीवचन्द्रैरबलैः शेषैश्च मूलयोनिः स्यात्।
स्थलजलभवनविभागा वृक्षादीनां प्रभेदकराः॥
स्थलजलग्रहयोर्लग्नाद्यावति राशौ तु तेऽपि तावन्तः।
द्वित्रिगुणत्वं तेषामायुर्दायप्रकारोक्तम्' *॥इति॥६॥*

भाषा– लग्न, चन्द्रमा, बृहस्पति, रवि– ये निर्बल हों तो वृक्षों का जन्म समझना। जल सम्बन्धी या स्थल सम्बन्धी वृक्ष का प्रभेद नवांश से समझना। अर्थात् जलचर नवांश हो तो जल के समीप का, स्थल राशि नवांश हो तो स्थल का वृक्ष समझना। वा जलचर या स्थलचर नवांश का स्वामी लग्न से जितने संख्या आगे राशि में हो उतने ही जल या स्थल के वृक्ष कहना॥६॥

विशेष अर्थ– नवांशपति अपने उच्च में या वक्र हो तो संख्या को ३ से गुणा करना चाहिए। यदि वर्गोत्तम नवांश या स्वनवांश स्वराशि स्वद्रेष्काण में हो तो द्विगुणित संख्या समझना॥६॥

अधुना स्थलजलजांशस्वामिवशाद्वृक्षाणां विशेषज्ञानं मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

अन्तः साराञ्जनयति रविर्दुर्भगान्सूर्यसूनुः
क्षीरोपेतांस्तुहिनकिरणः कण्टकाढ्यांश्च भौमः।
वागीशज्ञौ सफलविफलान् पुष्पवृक्षांश्च शुक्रः
स्निग्धानिन्दुः कटुकविटपान्भूमिपुत्रश्च भूयः॥७॥

अन्तःसारानिति॥ रविः सूर्योऽशकपतिरन्तःसारान् मध्यदृढान् शिंशपादीन्वृक्षान् जनयति उत्पादयति। सूर्यसूनुरार्किर्दुर्भगान्दृङ्मनसोरप्रियान् कुर्कुसप्रभृतीन् जनयति। तुहिनकिरणश्चन्द्रः क्षीरोपेतान्सक्षीरानिक्षुप्रभृतीन् जनयति। भौमः कुजः कण्टकाढ्यान्कण्टकबहुलान्खदिरप्रभृतीन् जनयति। वागीशज्ञाविति। वागीशो बृहस्पतिः ज्ञो बुधः एतौ द्वौ यथासंख्येन सफलविफलान्वृक्षान् जनयतः। तत्र बृहस्पतिः सफलानाम्रप्रभृतीन्। बुधो विफलान् येषां लोके पुष्पमेवोपयुज्यते न फलानि तान् जनयति। शुक्रः पुष्पवृक्षान् चम्पकप्रभृतीन् जनयति। इन्दुश्चन्द्रः भूयः पुनः स्निग्धान् सचिक्कणान् धवदेवदारुप्रभृतीञ्जनयति। भूमिपुत्रोंऽगारकः कटुकविटपान् भल्लातकप्रभृतीन् जनयति। अत्रोभयजनितृत्वनिर्देशाच्चन्द्रभौमयोर्विकल्पेनादेशः॥७॥

भाषा– नवांशपति सूर्य हो तो मध्य में सारवाले (साखू आदि) वृक्षों का, शनि हो तो खराब (दुर्गन्धादियुत) वृक्षों का, चन्द्रमा दूध वाले वृक्षों का, मंगल काँटे वालों वृक्षों का, गुरु फल वाले वृक्षों का, बुध बिना फलवाले वृक्षों का, शुक्र पुष्पों के वृक्षों का उत्पादक है। चन्द्रमा सब चिकने वृक्षों का तथा सब कड़ुवे-निम्ब आदि वृक्षों का भी उत्पादक मंगल है।७।

अथ भूमितरुशुभाशुभज्ञानं संख्या च वंशस्थेनाऽऽह–

शुभोऽशुभर्क्षे रुचिरं कुभूमिजं करोति वृक्षं विपरीतमन्यथा।
परांशके यावति विच्युतः स्वकाद्भवन्ति तुल्यास्तरवस्तथाविधाः।८

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
वियोनिजन्माध्यायस्तृतीयः ।। ३ ।।

शुभोऽशुभर्क्ष इति।। स एव स्थलजलांशपतिर्ग्रहः शुभस्तत्कालमशुभर्क्षे पापग्रहराशौ व्यवस्थितो भवति तदा रुचिरं शोभनं वृक्षं कुभूमिजमशोभनभूमिजातं वदेत्। अन्यथा विपर्यये विपरीतं वृक्षं करोति। अंशपतिरशुभस्तत्कालं शुभग्रहराशिस्थो भवति तदा अशोभनं वृक्षं शोभनभूमिजातं वदेत्। अथदिवं शुभग्रहे शुभक्षेत्रस्थे शुभं वृक्षं शोभनभूमिजातं वदेत्। अशुभग्रहे अशुभक्षेत्रस्थे अशोभनं वृक्षमशोभन भूमिजातं वदेत्। परांशके यावतीति। स्वस्थल जलांशपतिर्ग्रहः स्वकादात्मीयादंशकाद्विच्युतश्चलितं नो यावत्संख्ये परनवांशके व्यवस्थितः स्वमंशमतिक्रम्य यावत्संख्ये परनवांशके वर्तते ततुल्यास्तत्संख्यास्तथाविधास्तज्जातीयाश्च तरवो वृक्षा भवन्ति। तत्र पुनः संख्याकरणाद्विकल्पेनादेश इति। तथा च सारावल्याम्–

'स्वांशात्परांशगामिषु यावत्संख्या भवन्ति तावन्तः।
स्थलजा वा जलजा वा तरवः प्राक्संख्या वाच्याः,।। इति ।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ
वियोनिजन्माध्यायस्तृतीयः ।। ३ ।।

भाषा– अंशपतिग्रह यदि शुभ हो और अशुभ राशि में हो तो सुन्दर वृक्ष खराब भूमि में, अन्यथा विपरीत समझना, (अर्थात् पापग्रह शुभराशि में हो तो खराब वृक्ष सुन्दर भूमि में, तथा शुभ ग्रह शुभ राशि में हो तो सुन्दर वृक्ष सुन्दर भूमि में, एवं पापग्रह पापराशि में हो तो खराब वृक्ष खराब भूमि में समझना) तथा अंशपति ग्रह अपने नबांश से ज़ितने नवांश आगे हो उतने तुल्य और उतने ही प्रकार (स्थल या जल) के वृक्ष होते हैं।।८।।

अथ निषेकाध्यायः ॥४॥

अथातो निषेकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावृतौ सति गर्भाधानमित्यत ऋतुनिरूपणमृतावपि स्त्रीपुरुषसंयोगज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह—

कुजेन्दु तु प्रतिमासमार्तवं गते तु षोडर्क्षमनुष्णदीधितौ।
अतोऽन्यथास्थे शुभपुंग्रहेक्षिते नरेण संय्योगमुपैति कामिनी ॥ १ ॥

कुजेन्दुहेत्विति ॥ कुजो भौमः इन्दुश्चन्द्रः तौ हेतुः कारणं निमित्तं यस्य रजसः तत्कुजेन्दुहेतु। प्रतिमासं मासं मासं प्रतीति प्रतिमासम्। स्त्रीणां प्रतिमासमार्तवं कुजेन्दुहेतु। प्रतिमासग्रहणेन प्रथमोद्भूतरजोनिवृत्तिं दर्शयन् गर्भग्रहणक्षममार्तवं प्रदर्शयति। ऋतौ भवमार्तवम्। कथमित्याह। गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधिताविति। अनुष्णदीधितौ शीतमयूखे चन्द्रे पीडर्क्षं गते। प्रकृतत्वात्स्त्रीणामनुपचयगृहाश्रित आर्तवं कारणं भवति। अथदिवं यदि चन्द्रः कुजसंदृष्टो भवति एतदुक्तं भवति। स्त्रिया जन्मर्क्षादनुपचयस्थश्चन्द्रमास्तत्र च यद्यङ्गारकेण दृश्यते तदा गर्भग्रहणक्षम आर्तवहेतुर्भवति, अन्यत्र बालवृद्धातुरवन्ध्याभ्यः। अत्र च वादरायणः।

'स्त्रीणां गतोऽनुपचयर्क्षमनुष्णरश्मिः संदृश्यते यदि धरातनयेन तासाम्।
गर्भग्रहार्तवमुशंति तदा न वन्ध्या वृद्धातुराल्पवसामपि चैतदिष्टम् ॥'

तथा च सारावल्याम्—

'अनुपचयराशिसंस्थे कुमुदाकरबान्धवे रुधिरदृष्टे।
प्रतिमासं युवतीनां भवतीह रजो ब्रुवंत्येके ॥
इन्दुर्जलं कुजोग्निर्जलमस्त्रं त्वग्निरेव पित्तं स्यात्।
एवं रक्ते क्षुभिते पित्तेन रजः प्रवर्त्तते स्त्रीषु ॥
एवं यद्भवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत्।
उपचयसंस्थे विफलं प्रतिमासं दर्शनं तस्य ॥'

एवं गर्भग्रहणयोग्यमार्तवं प्रदर्श्य स्त्रीपुरुषसंयोगसम्भवासम्भवौ प्रदर्शयति। अतोऽन्यथास्थ इति। अतोऽन्यथोक्तप्रकारादन्यथास्थे विपर्ययस्थे चन्द्रमसि तत्रोक्तविपर्यस्थः पुरुषजन्मराशेरुपचयस्थश्चन्द्रमा यदि भवति तस्मिञ्छुभेन सौम्येन पुंग्रहेण गुरुणेक्षिते दृष्टे कामिनी स्त्री नरेण पुरुषेण सह संयोगं मैथुनमुपैति गच्छतीति वक्तव्यम्। नन्वत्रातोऽन्यथास्थ इति स्त्रिया उपचयस्थः कस्मान्न व्याख्यायते। अयुक्तमेतत्। प्राधान्यात्पुरुषस्यैव। यस्माद्बादरायणः। 'पुरुषोपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः।

स्त्रीपुरुषसंप्रयोगं तदा वदेदन्यथा नैव।' इति। सारावलीकारेण सामान्ये-नोक्तम्। तद्यथा-'उपचयभवने शशभृद्दृष्टो गुरुणा सुहृद्भिरथवासौ। पुंसां करोति योगं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः॥' कस्मिन्कालेऽयं विचारः। उच्यते चतुर्थदिने स्नातायाम्। तथा मणित्थः-

'ऋतुविरमे स्नातायां यद्युपचसंस्थितःशशी भवति।
बलिना गुरुणा दृष्टो भर्ता सह संगमश्च तदा॥
राजपुरुषेण रविणा विटेन भौमेन वीक्षिते चन्द्रे।
सौम्येन चपलमतिना भृगुणा कान्तेन रूपवती॥
भृत्येन सूर्यपुत्रेणायाति स्त्री संगमं हि तदा।
एकैकेन फलं स्याद्दृष्टे नान्यैः कुजादिभिः पापैः॥
सर्वैः स्वगृहं त्यक्त्वा गच्छतिवेश्यापदं युवतिः॥' *इति।१।*

भाषा- प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमा के कारण स्त्रियों को ऋतुधर्म होता है। यदि स्त्री की जन्मराशि से अनुपचय स्थान में चन्द्रमा हो और मङ्गल से दृष्ट हो तो गर्भधारण योग्य ऋतु होता है। और इससे भिन्न (अर्थात् पुरुष राशि से अनुपचय स्थान ३।६।१०।११) में चन्द्रमा हो तथा शुभ पुरुष ग्रह (गुरु) से दृष्ट हो तो स्त्री को पुरुष का संयोग होता है॥१॥

अथ मैथुनज्ञानप्रकारमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

यथास्तराशिर्मिथुनं समेति तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः।
असद्ग्रहालोकितसँय्युतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः॥२॥

यथास्तराशिरिति॥ आधानलग्नात्प्रश्नलग्नाद्वा योऽस्तराशिः सप्तमो-स्तऽलग्नस्तत्संज्ञको यो जन्तुस्तन्मिथुनं स्त्रीपुमांसौ यथा येन प्रकारेण समेति संयोगं सुरतं याति तथा तेनैव प्रकारेण तस्य नरस्य मिथुनप्रयोगः संयोगो वाच्यो वक्तव्यः। तस्मिन्नेवास्ते सप्तमे स्थाने असद्ग्रहालोकित-संयुते पापग्रहैर्दृष्टे युक्ते वा सरोषः सकलहो मिथुनप्रयोगो वाच्यः। इष्टैः सौम्यैर्युतदृष्टे सविलासहासः। विलासोपहाससीत्कारादिसंयुक्तो मिथुन-प्रयोगो वाच्यः। अथदिव न केनचिद्युतदृष्टे न सरोषो नापि सविलास इति। मिश्रयुतदृष्टे सरोषः सविलासहासश्चेति। तथा च सारावल्याम्-

'द्विपदादयो विलग्नात् सुरतं कुर्वन्तिसप्तमे यद्वत्।
तद्वत्पुरुषाणामपि गर्भाधानं समादेश्यम्॥
अस्ते शुभयुतदृष्टे सरोषकलहं भवेद्ग्राम्यम्।
सौम्यं सुरतं वात्स्यायनसम्प्रयोगिकाख्यातम्'॥ *इति।२।*

भाषा- गर्भाधानलग्न या प्रश्नलग्न से सप्तम राशिसमान जन्तु जिस प्रकार मैथुन करता है उसी प्रकार मैथुन का प्रयोग कहना चाहिए। सप्तम भाव यदि पापग्रह के साथ-साथ दृष्ट भी हो तो कलहपूर्वक, यदि शुभग्रह के साथ-साथ दृष्ट हो तो हास-विलासपूर्वक मैथुन का प्रयोग कहना चाहिए।२।

अथ गर्भसम्भवासम्भवज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह–

रवीन्दुशुक्रावनिजैः स्वभागगैर्गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा।
भवत्यपत्यं हि विबीजिनाभिमे करा हिमांशोर्विदृशामिवाफलाः।३

रवीति।। रविः सूर्यः इन्दुश्चन्द्रः शुक्रः सितः अवनिजोंऽगारकः एतैः स्वभागगैर्यत्र कुत्र राशौ स्वनवांशकस्थितैरपत्यं भवति। गर्भसम्भवो भवतीत्यर्थः। यदि च सर्वे स्वभागगा न स्युस्तदा पुरुषोपचयर्क्षगाभ्यां सूर्यसिताभ्यां स्वनवांशकगाभ्यामेव गर्भसम्भवो वाच्यः। एवं भौमचन्द्राभ्यां नार्युपचयर्क्षगाभ्यां स्वनवांशकस्थाभ्यामाधानकालेऽवश्यमेवापत्यं भवति। गर्भसम्भवो भवतीत्यर्थः। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्। 'बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम्। स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति।।' गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वेति। गुरौ बृहस्पतौ त्रिकोणयोर्नवमपञ्चमयोरुदये लग्नेऽपि वा संस्थिते एषामन्यतमस्थानस्थेऽपि भवत्यपत्यसम्भवः। विबीजिनामिमे। इति हि यस्मादर्थे इमे हि योगाः विबीजिनां षण्ढानां विगतं बीजं वीर्यं येषां स्त्रीपुरुषाणां तेषामफला विद्यमाना अपि न सम्भवन्ति। अत्रोदाहरणम्। करा हिमांशोर्विदृशामिवाफला इति। यथा हिमांशोः शीतरश्मेः चन्द्रस्य करा रश्मयो विद्यमाना अपि विदृशामन्धानामफला निष्फला भवन्ति। विगता दृशो येषां ते विदृशस्तेषामिवेति।।३।।

भाषा– रवि, चन्द्र, मङ्गल तथा शुक्र– ये अपने नवांश में हों अथवा गुरु त्रिकोण या लग्न में हो तो निश्चय ही सन्तान (गर्भ) सम्भव होता है। ये योग जैसे– अन्धे व्यक्ति को चन्द्रकिरण निष्फल होती हैं, वैसे ही निर्वीर्य (नपुंसक) लोगों के लिए व्यर्थ होते हैं।।३।।

अधुना स्त्रीपुंसयोराधानकालवशादाप्रसवावधि यावच्छुभाशुभज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह–

दिवाकरेन्द्वोः स्मरगौ कुजार्कजौ
गदप्रदौ पुङ्गलयोषितोस्तदा।
व्ययस्वगौ मृत्युकरौ युतौ तथा
तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ।।४।।

दिवाकरेति।। दिवाकरात्सूर्यात्स्मरगौ सप्तमस्थानस्थौ कुजार्कजौ कुजोऽगारकः अर्कजः सौरि एतौ यदि भवतस्तदा पुङ्गलस्य मनुष्यस्य गदप्रदौ रोगप्रदौ भवतः एतदुक्तं भवति। आधानकाले यत्रार्कः स्थितस्तस्मात्सप्तमे स्थाने यदाङ्गारको भवति तदा पुंसो रोगप्रदो भवति स्वमासे। एवमिन्दोश्चन्द्रात्सप्तमो भौमः सौरो वा भवति तदा योषितः स्त्रियाः रोगप्रदो भवति। स्वमासे एव। व्ययस्वगौ मृत्युकराविति। तावेव कुजसौरौ व्ययस्वगौ द्वादशद्वितीयगौ तयोर्दिवाकरेन्द्वोः सकाशादुभयत्र पार्श्वस्थितौ तदा पुङ्गलयोषितोः स्त्रीपुरुषयोर्मृत्युकरौ भवतः एतदुक्तं भवति। सूर्यादिको द्वादशे द्वितीयो द्वितीये तदा तयोर्मध्ये यो बलवान् स स्वमासे मृत्युकरो नरस्य भवति। चंद्रादप्येवं व्यवस्थितौ यथा चंद्रादेको द्वादशे द्वितीयो द्वितीये तदा तयोर्मध्ये यो बलवान्स स्वमासे मृत्युकरः स्त्रिया भवति। युतौ तथेति। तदिति कुजसौरयोः परामर्शः। तयोः कुजसौरयोरुभयोर्मध्याद्यदेकेनादित्यो युतो भवत्यन्येनदृश्यते तदा नरस्य मरणाय कल्पितो निश्चितः। एवं चन्द्रमा यद्येकेन युक्तो भवत्यपरेण दृष्ट-स्तदा स्त्रिया मरणाय कल्पितः। द्वयोर्मध्ये यो बलवांस्तस्य मास इति।४।

भाषा– सूर्य से सप्तम में शनि और मङ्गल हो तो पुरुषों के लिए तथा चन्द्रमा से सप्तम में हों तो स्त्री के लिए रोगप्रद होते हैं। इसी प्रकार सूर्य से (१२।२) में हो तो पुरुष के लिए मृत्युकारक होते हैं। तथा मङ्गल एवं शनि– इन दोनों में से किसी एक से युत और एक से दृष्ट सूर्य हो तो पुरुष के, एवं उन्हीं दोनों मङ्गल, शनि में किसी एक से युत और एक से दृष्ट चन्द्रमा हो तो स्त्री के लिए मरणकारक होते हैं।।४।।

अथ निषिक्तस्य पितृमातृपितृव्यमातृष्वसॄणां शुभाशुभज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह–

दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसञ्ज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात्।
पितृव्यमातृष्वसृसञ्ज्ञितौ च तावथौजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ।५

दिवार्कशुक्राविति।। दिवा दिने निषिक्तस्य जातस्य वा जंतोर्यथाक्रमं पितृमातृसंज्ञितावर्कशुक्रौ भवतः पितृसंज्ञकोऽर्को मातृसंज्ञकः शुक्रः। एवमेव निशि रात्रौ निषिक्तस्य जातस्य वा शनैश्चरेंदू सौरचंद्रौ यथाक्रमं पितृमातृसंज्ञितौ भवतः। तत्र शनैश्चरः पितृसंज्ञकः चंद्रो मातृसंज्ञकः। तद्विपर्ययादिति। तद्विपर्ययाद्दिवारात्रिव्यत्ययात्तावेव पूर्वोक्तौ ग्रहौ पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ भवतः। तत्र दिवा निषिक्तस्य जातस्य वार्कः पितृव्यसंज्ञः शुक्रो मातृष्वसृसंज्ञः। तत्संज्ञयोः प्रयोजनं तावथौजयुग्म-

र्क्षगतौ शुभौ ज्ञेयौ। ओजा विषमराशयो युग्माः समराशयः। तत्र दिवार्को विषमर्क्षगो मेषमिथुनसिंहतुलाधन्विकुंभानामन्यतमस्थः पितुः शुभकृत् रात्रौ पितृव्यस्य। तथा दिवा शुक्रः समर्क्षगो वृषकर्कटकन्या-वृश्चिकमकरमीनानामन्यतमस्थो मातुः शुभकृत् रात्रौ मातृष्वसुः। शनै-श्चरो रात्रौ विषमर्क्षगतः पितुः शुभकृत् दिवा विषमर्क्षगः पितृव्यस्य। तथा चन्द्रो रात्रौ समर्क्षगो मातुः शुभकृत् दिवा मातृष्वसुः। सामर्थ्यादिवोक्तम्। विपर्ययस्थः स एवोक्तयोरशुभः। यथा दिवा समक्षेत्रगतोऽर्कः पितुरशुभो रात्रौ पितृव्यस्य। दिवा विषमर्क्षगतः शुक्रो मातुरशुभो रात्रौ मातृष्वसुः। रात्रौ समक्षेत्रगतः शनैश्वरः पितुरशुभो दिवा पितृव्यस्य। रात्रौ विषम-र्क्षगतश्चन्द्रमा मातुरशुभो दिवा मातृष्वसुरिति॥ ५॥

भाषा– यदि दिन में गर्भाधान या जन्म हो तो सूर्य पितृसंज्ञक और शुक्र मातृसंज्ञक, तथा रात्रि में हो तो शनि पितृसंज्ञक और चन्द्रमा मातृ संज्ञक होते हैं। इसके विपरीत पितृव्य और मातृष्वसृसंज्ञक होते हैं। अर्थात् दिन में शनि पितृव्य (चाचा आदि) चन्द्रमा मातृष्वसृ (मौसी आदि) संज्ञक, तथा रात्रि में गर्भाधान होने से सूर्य पितृव्य और शुक्र मातृष्वसृसंज्ञक होते हैं। इनमें पितृसंज्ञक और पितृव्यसंज्ञक यदि विषम राशि में हो तो पिता और पितृव्य (चाचा आदि) को शुभ देते हैं तथा मातृसंज्ञक और मातृष्वसृसंज्ञक ग्रह सम राशि में हो तो माता और मौसी आदि को शुभ फल देते हैं। अर्थात् इससे अन्यथा अशुभ होते हैं॥ ५॥

अथाधानप्रश्नमध्ये आधानकालवशान्मातुर्मरणयोगद्वयं द्रुतपदेनाऽऽह–

अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भिर्मरणमेति शुभदृष्टिमयाते।
उदयराशिसहिते च यमे स्त्री विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे॥६॥

अभिलषद्भिरिति। उदयर्क्षमुदयलग्नमसद्भिः पापग्रहैरभिलषद्भिः तत्रोदयलग्नाभिलाषुकैः कैश्चिल्लग्नाद्द्वितीयस्थग्रहस्य व्याख्यातम्। तेषा-मभिमतं यथा उदयलग्नादनंतरं तदुदयस्य प्रत्यासन्नतयाभिलषंत्युदय-र्क्षमिति। अन्ये पुनर्लग्नाद्द्वादशस्थानस्य ग्रहस्योदयर्क्षाभिलाषं कथयन्ति। यस्मात्तद्विहायोदयराशिगमनं ग्रहः करोति। एवं लग्नाद्द्वादशस्थैः पापै-र्लग्ने यदि शुभदृष्टिं सौम्यग्रहदर्शनमयाते अप्राप्ते सौम्यग्रहैरदृश्यमाने स्त्री योषिद्गर्भिणी मरणमेति मृत्युं प्राप्नोति। अत्र च भगवान् गार्गिः। 'अशुभै-र्द्वादशर्क्षस्थैः शुभदृष्टिविवर्जितैः। आधानलग्ने मरणं योषितः प्रवदेद्बुधः॥' इति। योगांतरमाह। उदयराशिसहिते च यमे इत्यादि। यमे शनैश्चरे

उदयराशिसहिते लग्नस्थे तस्मिंश्च विगलितेनोडुपतिना नक्षत्रस्वामिना क्षीणचन्द्रेण भूसुतेनांगारकेण च दृष्टेऽवलोकिते स्त्री गर्भिणी मरणमेति ।। ६ ।।

भाषा– पापग्रह लग्न में जाने को उद्यत हो (अर्थात् अन्तिम अंश में द्वादशभाव में मार्गी हो) और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो गर्भवती स्त्री का मरण होता है। अथवा गर्भाधानलग्न में शनि हो और क्षीणचन्द्र तथा मङ्गल – इन दोनों से देखा जाता हो तो भी स्त्री का मरण होता है।। ६ ।।

अथ योगान्तरं वैतालीयेनाऽऽह–

पापद्वयमध्यसंस्थितौ लग्नेन्दू न च सौम्यवीक्षितौ ।
युगपत्पृथगेव वा वदेन्नारी गर्भयुता विपद्यते ।। ७ ।।

पापेति ।। लग्नमुदयराशिः। इन्दुश्चन्द्र एतौ लग्नेन्दू पापद्वयमध्य-संस्थितौ लग्नस्थे चन्द्रमसि यद्येकः पापग्रहो द्वादशस्थो भवति द्वितीयस्थो-ऽपरस्तदा लग्नेन्दू युगपत्तुल्यकालं पापद्वयमध्यगावुच्येते। अथ लग्नेन्दू विप्रकृष्टांशकान्वितौ भवतस्तत्र चैकः पापस्तावप्राप्य स्थितोऽपरस्तावति-क्रम्य स्थितस्तदापि लग्नेन्दू पापद्वयममध्यगावुच्येते। अथवा द्वादशस्थाने एकः पापाऽपरो द्वितीये तृतीये चन्द्रश्चतुर्थे च पापो भवति तदापि लग्नेन्दू पापद्वयमध्यगावुच्येते। एवं लग्नेन्दू यदि युगपत्पापद्वयमध्यगतौ न च सौम्यवीक्षितौ शुभग्रहावलोकितौ न भवतस्तदा नारी स्त्री गर्भयुता विपद्यते म्रियते। पृथगेवेति। अथवा पृथक्स्थौ लग्नेन्दू भवतस्तयोर्मध्या-देकतरोऽपि पापद्वयमध्यगतो भवति सौम्यग्रहादृष्टश्च तदा नारी गर्भ-युता विपद्यते। अथवा लग्नादेकादशे चन्द्रो द्वितीयतृतीयद्वादशगाः पापास्तथापि लग्नेन्दू पापद्वयमध्यगौ भवतः। युगपद्ग्रहणं पादपूरणार्थं विस्पष्टार्थं वा। तदर्थस्य पृथगेव सामर्थ्याल्लब्धत्वात्। अत्र योगकर्तृणां ग्रहाणां मध्याद्या बली तन्मासि गर्भिणीमरणं भवतीति सर्वत्र परिभाषा।७।

भाषा- लग्न और चन्द्रमा ये दोनों एक साथ ही या अलग-अलग पाप-ग्रहों के मध्य में हों और शुभग्रह से दृष्ट नहीं हो तो गर्भसहित स्त्री का मरण कहना चाहिए। अर्थात् यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है।७।

अथान्ययोगान्तराणि वैतालीयेनाऽऽह–

क्रूरे शशिनश्चतुर्थगे लग्नाद्वा निधनाश्रिते कुजे।
बन्ध्वन्त्यगयोः कुजार्कयोः क्षीणेन्दौ निधनाय पूर्ववत्।।८।।

क्रूर इति ।। शशिनश्चन्द्रात् क्रूरे पापग्रहे चतुर्थस्थानस्थे निधिनाश्रिते-ऽष्टमस्थानस्थे कुजे भौमे एको योगः। अथवा लग्नाच्चतुर्थे पापे अष्टमे भौमे

द्वितीयो योगः। बन्ध्वंत्यगयोः कुजार्कयोरिति। लग्नाद्बन्धुगे चतुर्थस्थे भौमेऽन्त्यगे द्वादशस्थानस्थेऽर्के सूर्ये यत्र तत्रस्ते क्षीणेन्दौ परिक्षीणे चन्द्रे तृतीयो योगः। एषामाधानकाले कतमस्य सम्भवे मरणाय पूर्ववन्नारी गर्भयुता विपद्यत इति॥ ८॥

भाषा– लग्न से वा चन्द्रमा से पापग्रह चतुर्थ में हो और मंगल अष्टम में हो या चतुर्थ भाव में मङ्गल और द्वादश में सूर्य हो और चन्द्रमा क्षीण हो तो ये योग पूर्ववत् (गर्भिणी स्त्री के) मरणकारक होते हैं॥ ८॥

अधुना मातुः शस्त्रनिमित्तं मरणयोगं गर्भस्रावं चाधानलग्नवशाद्वैतालीयेनाऽऽह–

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं वदेत्तथा।
मासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं स्रवणं समादिशेत्॥ ९॥

उदयास्तेति। निषेककाले कुजार्कयोर्भौमसूर्ययोर्यथासंख्यमुदयास्तगयोर्लग्नसप्तमस्थयोर्लग्ने भौमे सप्तमस्थेऽर्के गर्भयुतायाः स्त्रियः शस्त्रकृतं शस्त्रहेतुकं मरणं निधनं वदेद् ब्रूयात्। तथा तेनैव प्रकारेणेति। नारी गर्भयुता विपद्यत इत्यर्थः। मासाधिपताविति। गर्भमासेषु मासाधिपान्वक्ष्यति कललघनेत्यादिना। तत्र निषेककाले यो ग्रहो येन ग्रहेण युद्धे विजितो भवति केतुनावधूमित उल्कया चाभिहतः सोऽपि निपीडित इत्युच्यते तस्यापि निपीडितस्य ग्रहस्य यो भवति मासो यस्मिन्मासे मासाधिपत्यं तस्य भवति तत्कालं तस्मिन्काले गर्भस्रवणं च्युतिं समादिशेद्वदेत्॥ ९॥

भाषा– लग्न में मङ्गल, सप्तम में सूर्य हो तो शस्त्र के द्वारा गर्भिणी का मरण कहना और गर्भ के जिस महीने का स्वामी निपीड़ित (युद्ध में पराजित, केतु से अभिधूमित आदि) हो तो उस महीने में गर्भ का पतन कहना चाहिए॥ ९॥

अधुना गर्भपुष्टिज्ञानं वंशस्थेनाऽऽह–

शशाङ्कलग्नोपगतैः शुभग्रहैस्त्रिकोणजायाऽर्थसुखास्पदस्थितैः।
तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी तु गर्भो रविणा निरीक्षितः॥ १०

शशाङ्केति॥ यत्र राशौ शशाङ्कश्चन्द्रः स्थितस्तत्रैव शुभग्रहैर्व्यवस्थितैर्बुधगुरुसितैरित्यर्थः। अथवा लग्नस्थैः शुभग्रहैः लग्ने व्यवस्थितैः अथवा कैश्चिच्छशाङ्कोपगतैः कैश्चिल्लग्नोपगतैरेवं शशाङ्कोपगतैः शुभग्रहैरुदयोपगतैर्वा अथवा तैरेव शुभग्रहैः त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थितैः त्रिकोणं नवपञ्चमे जायास्थानं सप्तमम् अर्थस्थानं द्वितीयं सुखस्थानं

चतुर्थम् आस्पदस्थानं दशमम् एतेषु त्रिकोणजायार्थसुखास्पदेषु यथा-सम्भवं चन्द्राल्लग्नाद्वा द्वयोर्वा समवस्थितैस्तथा पापकैः क्रूरग्रहैश्चन्द्रा-ल्लग्नाद्वा तृतीयलाभर्क्षगतैःतृतीयैकादशस्थानस्थैर्यथासम्भवं द्वयोर्वा स्थितै रविणा सूर्येण यदि निरीक्षितो दृष्टः शशी लग्नं वा भवति यस्मादेवं योगः स च दृश्यते तदा गर्भस्थः सुखी पुष्टिमान्भवति। केचिद्गुरुणा निरीक्षित इति पठन्ति, तन्न युक्तम्। यस्मात्सारावल्या-मुक्तम् 'होरेंदुयुतैः सौम्यैस्त्रिकोणजायासुखांबरस्थैः। पापैस्त्रिला-भयातैः सुखी च गर्भो निरीक्षितो रविणा'।।१०।।

भाषा– चन्द्रमा या लग्न के साथ शुभग्रह हो या लग्न और चन्द्र से ५।६।७।२।४।१०- इन स्थानों में शुभ ग्रह और ३।११ स्थान में पापग्रह हो और लग्न वा चन्द्र पर रवि की दृष्टि हो तो गर्भ सुखी (पुष्ट) होता है।१०।

अथ निषिक्तस्य निषेककालाज्जातस्य जन्मकालादुभयोरपि प्रश्नकालाद्वा पुंस्त्रीविभागज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः
पुञ्जन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः।
गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं
द्व्यङ्गस्था बुधवीक्षणाच्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ।।११।।

ओजर्क्षे पुरुषांशकेष्विति।। लग्नमुदयलग्नम् अर्क आदित्यः गुरु-र्जीवः इन्दुश्चन्द्रःएतैर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिरोजर्क्षस्थैर्विषमराशिव्यवस्थितैर्न केवलं यावद्विषमराशिव्यवस्थितैर्विषमनवांशगतैर्बलिभिश्चि पुंसो जन्म वदेत्। नन्वत्र विषमनवांशग्रहणं नास्ति कथं व्याखातं विषमनवांश-कगैरिति। उच्यते पुरुषांशकेष्विति वचनात्पुरुषराशीनामंशकेष्वित्यर्थः। यतो य एव विषमराशयस्त एव पुरुषराशयः। समांशकगतैर्युग्मेष्विति। तैरेव लग्नार्कगुर्विन्दुभिर्युग्मेषु समराशिषु व्यवस्थितैर्न केवलं यावत्स-मांशकगतैर्युग्मराशिनवांशभिर्बलिर्भिश्च योषितः स्त्रिया जन्म वदेत्। अथैषां यथाभिहितानां लग्नग्रहाणामुभयविकल्पगानां बाहुल्या त्पुंस्त्री-निर्देशः। साम्ये बलाधिकत्वात्। गुर्वर्काविति। गुरुर्जीवः अर्क आदित्यः एतावुभावपि विषमे विषमराशौ गतौ यत्र तत्र नवांशकस्थौ नरं पुरुषं कुर्वतः। बलग्रहणमप्यत्रानुवर्तते। शशी चन्द्रः सितः शुक्रः वक्रोंऽगारक एते यदि सबलाः युग्मे समराशौ गता यत्र तत्र नवांशकस्था स्त्रियं जनयन्ति। द्व्यंगस्था इति। एत एव ग्रहा द्व्यंगस्था यत्र तत्र राशौ द्विशरीरनवांश-

कस्था बुधवीक्षणाच्च बुधदृष्ट्या यमलौ द्वौ स्वपक्षे कुर्वन्ति। स्वपक्षे आत्मीयपक्षे आत्मीयपुरुषनवांशके स्त्रीनवांशके चेत्यर्थः। एतदुक्तं भवति। चत्वारो द्विस्वभावा मिथुनकन्याधन्विमीनाः। तत्र मिथुनधन्विनौ पुरुषांशकौ।कन्यामीनौ स्वत्र्यंशकौ तेन यथासम्भवं मिथुनधन्व्यंशगतावादित्यजीवौ यदि बुधेन यत्र तत्रावस्थितेन दृश्येते तदा यमलौ द्वौ पुरुषौ वाच्यौ। एवं यथासम्भवं कन्यामीनांशकगताः शशिशुक्रभौमाः यत्र तत्रावस्थितेन बुधेन दृश्यन्ते तदा यमले द्वे कन्ये वाच्ये। अथ द्वावेव वर्गो यथा दर्शितस्थौ बुधः पश्यति तदैकः पुरुषो द्वितीया च कन्या। नन्वत्रांशकग्रहणं नास्ति तत्कथं व्याख्यातं द्विशरीरनवांशके स्थिता इति। अनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्।' 'बलिनौ विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिता यमलौ द्विशरीरांशेष्विंदुजदृष्ट्या स्वपक्षसमौ।। इति। अन्यथा पुनरुक्तता स्यात्। ओजर्क्षे पुरुषांशकेष्वित्यनेनैव गतार्थत्वात्। बलग्रहणमत्रानुवर्तनीयमिति।।११।।

भाषा– यदि लग्न, रवि, गुरु और चन्द्रमा– ये बली होकर विषमराशि, विषम नवांश में हो तो पुरुष का जन्म और यदि ये ही चारों सम राशि सम नवांश में हो तो स्त्री का जन्म कहना चाहिए। गुरु और रवि– ये दोनों विषम राशि में हों तो पुरुष का जन्म, तथा चन्द्रमा, शुक्र और मङ्गल– ये तीनों समराशि में हों तो स्त्री का जन्म समझना चाहिए। तथा ये ही चन्द्र, शुक्र, मङ्गल यदि द्विस्वभाव में हों और उस पर बुध की दृष्टि हो तो अपने पक्ष में यमल (जोड़ा) का जन्म देते हैं।।११।।

विशेष अर्थ– यमल के जन्म में यदि विषम द्विस्वभाव (मिथुन, धनु) में हो तो पुरुष का, यदि सम द्विस्वभाव (कन्या, मीन) में हो तो स्त्री का जोड़ा समझना चाहिए। यदि विषम और सम दोनों में हो तो एक पुरुष और एक स्त्री समझना चाहिए। बुध की दृष्टि होने पर ही यमल का जन्म होता है, अन्यथा नहीं।।११।।

अथ पुञ्जन्मयोगान्तरमुपेन्द्रवज्रयाऽऽह–

विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुञ्जन्मकरो विलग्नात्।
प्रोक्तग्रहाणामवलोक्य वीर्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽङ्गना वा।१२

विहाय लग्नमिति।। उक्तयोगाभावस्यावसरे नान्यथा आधानपृच्छाकालिकं सप्तमलग्नं विहाय त्यक्त्वा सौरः शनैश्चरो लग्नाद्विषमर्क्षगतस्तृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशस्थानानामन्यतमस्थः पुंजन्मकरः पुरुषजन्मकरो भवति। प्रोक्तग्रहाणामिति। प्रोक्तग्रहाणां कथितयोग

कर्तॄणां ग्रहाणां वीर्यं बलमवलोक्य विचार्य प्रसूतौ प्रसवकाले पुरुषो नरोऽगना स्त्री वा वक्तव्या। एतदुक्तं भवति। यत्र पुरुषजन्मयोग-सम्भवस्तत्र पुरुषो वाच्यः। यदा योगद्वयसम्भवो भवति तदा यो योगो बलवद्ग्रहाभिनिर्मितस्तद्वशात्पुंस्त्रीजन्म वक्तव्यम्।।१२।।

भाषा– लग्न से लग्न को छोड़कर अन्य विषम स्थान में शनि भी पुरुष का जन्मकारक होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त योगों के बलाबल देखकर यदि पुरुषकारक ग्रहबली हो तो पुरुष का, स्त्रीकारक ग्रह बली हो तो स्त्री का जन्म कहना चाहिए।।१२।।

अथ क्लीबजन्मयोगाञ्छार्दूलविक्रीडितनाऽऽह–

अन्योऽन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चंद्रोदयौ चेत्स्थितौ।
युग्मौजर्क्षगतावपींदुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ
पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः स्युः क्लीबयोगाश्च षट् ।।१३।।

अन्योऽन्यमिति। शशी चन्द्रः रविरादित्यः एतौ शशिरवी यथाक्रमं युग्मौजर्क्षगतौ समविषमराशिस्थावन्योन्यं परस्परं यदि पश्यतः सम-राशिगतमर्कं पश्यत्यर्कश्च शशिनं पश्यति तदा क्लीबजन्मयोग एकः। यद्यार्किसौम्यावपीति। आर्किः सौरः सौम्यो बुधः एतावार्किसौम्यौ यथाक्रमं युग्मौजर्क्षगतौ अन्योन्यं यदि पश्यतस्तदा द्वितीयो योगः। वक्रो वा समगमिति। वक्रोऽङ्गारको विषमर्क्षगः समगं समराशिस्थं दिनेशं सूर्यं पश्यति सूर्यश्चाङ्गारकं तदा तृतीयो योगः। असमे चन्द्रोदयौ चेदिति। चन्द्रः शशी उदयो लग्नमेतावसमविषमराशाववस्थितौ भूम्यात्मजेना-ङ्गारकेण समराशिगेनेक्षितौ दृष्टौ तदा चतुर्थो योगः। युग्मौजर्क्षगतावपीति। इन्दुश्चन्द्रः शशिजो बुधः एतौ यथासंख्यं युग्मौजर्क्षगतौ समविषमराशिगौ भूम्यात्मजेन भौमेन यत्र तत्रावस्थितेन वीक्षितौ दृष्टौ तदा पञ्चमो योगः। पुंभाग इति। सितः शुक्रः लग्नमुदयलग्नं शीतकिरणश्चन्द्रः एते सित-लग्नशीतकिरणाः यत्र तत्र राशौ पुंभागे विषमनवांशके व्यवस्थिता भवन्ति तदा क्लीबजन्मयोगः षष्ठः। तथा च बादरायणः।

अन्योऽन्यंरविशशिनौ विषमौ विषमर्क्षगौ निरीक्ष्येते।
इन्दुजरविपुत्रौ वा तथैव नपुंसकं कुरुतः।
वक्रो विषमे सूर्यः समगश्चैवं परस्परालोकात्।।
बुधचन्द्रौ कुजदृष्टौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ तथैवोक्तौ।
ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसितास्तथैवोक्ताः।।'

इति एते योगाः पूर्वयोगाभावे वक्तव्याः । तेषां योगानामेतेषां च संभवे तेषामेव बलवत्त्वम् ॥ १३ ॥

भाषा– यदि समराशि में चन्द्रमा तथा विषम में सूर्य हो और दोनों में परस्पर दृष्टि हो (१) वा विषम राशि में शनि तथा सम में बुध हो तथा इन दोनों में परस्पर दृष्टि हो (२) या विषम राशिस्थ मङ्गल यदि समराशिस्थ सूर्य को देखता हो (३) अथवा समराशि में चन्द्रमा और विषम राशि में लग्न हो और इन दोनों को मंगल देखता हो (४) वा सम राशि में चन्द्र और विषम राशिस्थित बुध दोनों को मंगल देखता हो (५) अथवा शुक्र, लग्न, चन्द्रमा– ये तीनों किसी राशि में विषम नवांश में हों (६) तो ये ६ प्रकार नपुंसक के जन्मकारक योग होते हैं॥१३॥

अधुना द्वित्रिगर्भसंभवयोगाञ्छार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

युग्मे चन्द्रसितौ तथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदया
लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः ।
कुर्युस्ते मिथुनं ग्रहोदयगतान्द्व्यङ्गांशकान् पश्यति
स्वांशे ज्ञे त्रितयं ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्वमिश्रैः समम् ॥१४॥

युग्मे चन्द्रसिताविति॥ चन्द्रसितौ श.शिशुक्रौ युग्मे समराशौ व्यवस्थितौ तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञारजीवोदयाः ज्ञो बुध आरोऽङ्गारकः जीवो बृहस्पतिः उदयो लग्नम् एते सर्वे एवौजभवने विषमराशौ स्युर्भवेयुः एवमेते मिथुनं कुर्युः दारिकां दारकञ्च। लग्नेंदू उदयचंद्रौ समगौ युग्मराशिव्यवस्थितौ नृनिरीक्षितौ नरग्रहेण येन केनचित् दृष्टौ भवतस्तथापि मिथुनं गर्भस्थं वाच्यम्। युग्मेषु वा प्राणिनः। त एव पूर्वोक्ता ज्ञारजीवोदयाः सर्व एव युग्मेषु समराशिषु स्थिताः प्राणिनो बलिनो भवंति तदापि मिथुनं कुर्युः। ग्रहोदयगतानित्यादि। ग्रहाः सर्व एव द्व्यङ्गांशकेषु द्विस्वभावनवांशकेषु गताः प्राप्ताः उदयो लग्नं च द्व्यंशांशकेषु गतः तान्ग्रहोदयगतान् द्व्यङ्गांशकान् स्वांशे स्वनवांशकस्थे ज्ञे बुधे पश्यति सति तदा त्रितयं वक्तव्यम्। तत्रायं विशेषः। ज्ञगांशकवशाद्युग्मंत्विति। ज्ञो बुधो गतो व्यवस्थितो यस्मिन्नवांशके तद्वशाद्युग्मम्। बुधो यस्मिन्नवांशके व्यवस्थितः स यल्लिंगांशकस्तल्लिंगं तत्र गर्भे युग्मं वक्तव्यम्। एकस्तद्विपरीतः। एतदुक्तं भवति। मिथुनांशकस्थो बुधो यदा ग्रहोदयगतान् द्व्यङ्गांशकान्पश्यति तथा गर्भे द्वारकद्वयं दारिका चैका वक्तव्या। अथो कन्यानवांशकस्थो बुधो द्व्यङ्गांशकव्यवस्थितान्ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे

दारिकाद्वयमेको दारकश्च वक्तव्यम्। अमिश्रैः सममिति। तैर्ग्रहोदय-बुधैरमिश्रस्थितैर्द्विस्वभावसमानलिंगस्थितैस्त्रितयं सममेकलिंगं वक्तव्यम्। एतदुक्तं भवति। मिथुननवांशकव्यवस्थितो बुधो मिथुनधन्विव्यंसक-व्यवस्थितान्ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे दारकत्रितयं वक्तव्यम्। अथ कन्यांशकव्यवस्थितो बुध कन्यामीनांशकव्यवस्थितान् ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे दारिकात्रितयं वाच्यमिति। तथा च सारावल्याम्। 'समराशौ शशिसितयोर्विषमे गुरुवक्रसौम्यलग्नेषु। योगे गर्भगतं तद्विद्भिर्मिथुनं तु वक्तव्यम्।। लग्नेन्दू वा समगौ पुंग्रहदृष्टौ च मिथुनजन्मकरौ। उदयज्ञ-वक्रगुरवो बलिनः समराशिगास्तथैवोक्ताः।। द्विशरीरांशकयुक्तान्ग्रहान् विलग्नं च पश्यतींदुसुते। कन्यांशे कन्ये द्वे पुरुषश्चैको निषिच्यते गर्भे।। मिथुनांशे कन्यैका द्वौ पुरुषौ त्रितयमेवं स्यात्। मिथुनधनुराशिगता-न्ग्रहान्विलग्नं च पश्यतीन्दुसुतः।। मिथुनांशस्थश्च यदा पुरुषत्रितयं तदा गर्भे। कन्यामीनांशस्थान्विहगानुदयश्चयुवतिभागगतः। पश्यति शीतगु-तनयः कन्यात्रितयं तदा गर्भे।'।।१४।।

भाषा– चन्द्रमा और शुक्र, दोनों सम राशि में हों और बुध, मंगल, गुरु और लग्न ये विषम राशि में हों या लग्न चन्द्रमा दोनों सम राशि और पुरुष ग्रह से देखे जाते हों, या बुध, मंगल, गुरु और लग्न– ये बली होकर सम राशि में हों तो मिथुन (गर्भ में दो सन्तान) उत्पन्न करते हैं। तथा सब ग्रह और लग्न द्विस्वभाव नवांश में हों और बुध अपने नवांश (मिथुन या कन्या के अंश) में होकर ग्रहगत वा लग्नगत द्विस्वभाव नवांश को देखता हो तो इस प्रकार के योग में ३ सन्तान कहना चाहिए। उनमें बुध के नवांश सजातीय हो कहना चाहिए। यदि नवांश सजातीय हो तो, तीनों समान (पुत्र या कन्या एकजातीय) ही सन्तान समझना चाहिए।

विशेष अर्थ- यदि बुध विषम (मिथुन) नवांश में हो और ग्रह लग्न सम (कन्या, मीन) नवांश में हो तो २ पुत्र, १ कन्या। तथा बुध यदि सम (कन्या) नवांश में हो और ग्रह लग्न विषम (मिथुन, धनु) में हो तो २ कन्या, एक पुत्र का जन्म समझना चाहिए। बुध और ग्रह लग्न विषम नवांश में ही हों तो तीनों पुत्र ही समझना। यदि सब सम नवांश में ही हों तो तीनों कन्या ही समझना चाहिए।।१४।।

अधुना त्र्यधिकगर्भसम्भवयोगज्ञानमुपजातिकयाऽऽह–

धनुर्धरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदंशोपगतैर्बलिष्ठः।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूताअपि कोशसंस्थाः।।१५।।

धनुरिति।। धन्विलग्ने धनुर्धरांशके वा लग्नमुपगते यत्र तत्र राशौ व्यवस्थितैः सर्वग्रहैर्धन्व्यंशोपगतैः बलिष्ठैर्वीर्यवद्भिश्च ज्ञेन बुधेन आर्किणा च शनैश्चरेण वीर्ययुतेन बलवता दृष्टेऽवलोकिते प्रभूता बहवः कोशसंस्था जरायुवेष्टितविग्रहा गर्भे सन्ति भवन्तीति पञ्च सप्त दश (१) यावत्।।१५।।

भाषा- अन्तिम नवांशगत धनु लग्न हो तो सब ग्रह धनुराशि के नवांश में हो एवं बलवान बुध और शनि लग्न को देखता हो तो गर्भ में बहुत (३ से भी अधिक) सन्तान है, ऐसा कहना चाहिए।।१५।।

पूर्वमुक्तं 'गर्भमासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं श्रवणं समादिशेत्।' इति तदधुना गर्भस्य मासाधिपान्कुटकेनाऽऽह—

कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनताः
सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः।
उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिता
भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम् ।।१६।।

कलल इति।। सिताद्या ग्रहा गर्भस्य प्रथममासात्प्रभृति कललादीनि भवन्ति वर्तयन्ति। तद्यथा। गर्भस्य प्रथमे मासि कललं भवति। शुक्र-शोणिते घने संमिश्रीभूते तत्र गर्भस्य तस्मिन्मासे सितः शुक्रोऽधिपतिः। द्वितीये घनता काठिन्यं भवति तत्र कुजोंऽगारकोऽधिपतिः। तृतीयें-ऽकुरोत्पत्तिर्हस्ताद्यवयवजन्म तत्र जीवो बृहस्पतिरधिपतिः। चतुर्थे-ऽस्थिसम्भवः तत्र सूर्यो रविरधिपतिः। पञ्चमे चर्मसम्भवस्तत्र चन्द्रो-ऽधिपतिः। षष्ठेऽङ्गजसम्भवो लोमजन्म तत्रार्किः सौरोऽधिपतिः। सप्तमे चेतनता सम्भवति चेतनता स्वभावः तत्र बुधोऽधिपतिः। बुध-मासात्परतोऽन्ये शेषा मासास्ते गर्भस्याशनोद्वेगप्रसवकरास्ते चोदय-पतिचन्द्रसूर्यनाथाः स्वामिनः क्रमशो गदिता उक्ता। तत्राष्टमे मासि गर्भस्थो जन्तुरशनं करोति मात्रा भुक्तं पीतं रसादि तस्य नाभिलग्ननालेन संक्रमते। तत्र गर्भाधानलग्नाधिपतिर्यो ग्रहः स मासाधिपतिः। नवमे गर्भस्थस्योद्वेगो भवति तत्र चन्द्रोऽधिपतिः। दशमे गर्भस्य प्रसवः प्रसूतिर्भवति तत्र सूर्यो रविरधिपतिः। तथा च स्वल्पजातके—

'कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः।
मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम्।
अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्।' *इति।*

(१) एतादृशस्य गर्भस्य पूर्णप्रसवासम्भवाद् यस्य मासस्याधिपतिर्निपीडितो निर्बलो वा तस्मिन् मासे पतनं स्यादिति ज्ञेयम्।

अत्र प्रथमद्वितीयमासाधिपयोर्यवनेश्वरेण सह मतभेदः। तथा तद्वाक्यम्।

'कुजास्फुजिज्जीवरवीन्दुसौरशशांकलग्नेन्दुदिवाकराणाम्।
मासाधिपत्यप्रभवो न चैषां जयोपघातैर्ग्रहवद्भवन्ति॥
आद्ये तु मासे कललं द्वितीये पेशिस्तृतीयेऽपि भवन्ति शाखाः।
अस्थीन्यथ स्नायुशिराश्चतुर्थे मज्जान्त्रचर्माण्यपि पञ्चमे तु॥
षष्ठे त्वसृग्रोमनखैर्यकृच्च चेतस्विता सप्तममासि चिन्त्या।
तृष्णाशनास्वादनमष्टमे स्यात् स्पर्शोपरोधो नव मे रतिश्च॥
स्रोतोभिरुद्घाटितपूर्णदेहो गर्भोऽर्कमासे दशमे प्रसूते।'

आचार्यस्य बहुमतमासानामभिमतमिति भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम्। गर्भस्थस्य मासाधिपतिसदृशं शुभमशुभम् फलम् भवति। एतदुक्तं भवति। आधानकाले यो ग्रहो निपीडितो भवति तन्मासि गर्भस्य पतनम्। कलुषे मन्दरश्मौ विवर्णे पीडनम्। निर्मलेंऽशुजालसम्पन्ने बलवति पुष्टिरिति। तथा च सूक्ष्मजातके। 'कलुषैः पीडा पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः।' इति। अथ चान्यैः शास्त्रकारैर्विशेष उक्तः। तत्किञ्चित्प्रदृश्यते। तथा च सारावल्याम्- 'तत्र शुभाशुभमिश्रैः कर्मभिरधिवासिता विषयवृत्तिः। गर्भावासे निपतति संयोगे शुक्रशोणितयोः॥ मिथुनस्य मनोभावो यादृङ्मदालस्यतो भवति। श्लेष्मादिभिश्च दोषैस्तत्तुल्यगुणो निषिक्तस्य॥ यादृक्पश्यति सौम्यस्तत्तुल्यगुणं सुतं समाधत्ते। पितृजननीसादृश्यं रवेः शशांकस्य बल-योगात्॥' सुबोधमेतत्॥ १६॥

भाषा– गर्भ के प्रथम मास में कलल (रज-वीर्य मिश्रण), दूसरे मास में घन (पिण्ड), तीसरे मास में अंकुर (अवयव), चतुर्थ मास में अस्थि (हड्डी) पञ्चम मास में चर्म, षष्ठ मास में अंगज (रोम) और सप्तम मास में चैतन्य होता है। इन सातों मास के अधिपति क्रम से शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि और बुध होते हैं। इसके बाद अष्टम, नवम, दशम मास के स्वामी क्रम से लग्नेश, चन्द्र और सूर्य होते हैं। मासों के अधिप के शुभाशुभत्व से गर्भ का शुभ या अशुभ फल होता है। अर्थात् जिस मास का स्वामी बली हो उस मास में गर्भवती को सुख, जिस मास का निर्बल हो उसमें क्लेश (दुःख) होता है॥ १६॥

विशेष अर्थ- अष्टम मास में गर्भस्थ बालक माता के खाये हुए रस को खाता है, नवें मास में गर्भ से निकलने (बाहर आने) का उद्वेग करता है और दसवें मास में प्रसव होता है। यथा लघुजातक में–(संस्कृत टीका में देखिये)

अधुनाधिकाङ्गमूकचिरलब्धगिरां सम्भवयोगान्वंशस्थेनाऽऽह—

त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्ततः परै-
र्मुखाङ्घ्रिहस्तद्विगुणस्तदा भवेत् ।
अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः
शुभेक्षितैश्चेत्कुरुते गिरं चिरात् ॥१७॥

त्रिकोणगे इति ।। ज्ञे बुधे त्रिकोणगे लग्नान्नवमस्थे पञ्चमस्थे वा ततः तस्माद्बुधादपरैरन्यैः सर्वैर्ग्रहैर्यत्र तत्रावस्थितैर्विबलैर्वीर्यरहितै-र्मुखांघ्रिहस्तद्विगुणो गर्भस्थो वाच्यः। द्विशिराश्चतुष्पाच्चतुर्भुज इत्यर्थः। त्रिकोणगे बुधे कन्यागतम् इत्याहुः। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः। 'बलहीनैर्ग्रहैः सर्वैर्नवपञ्चमगे बुधे। द्विगुणांघ्रिशिरोहस्तो भवत्येकोद-रस्तथा।।' अवागिति। गवि वृषे स्थिते इन्दौ चन्द्रेऽशुभैः पापैर्भसन्धिगैः। कर्कटवृश्चिकमीनानामन्त्यनवांशकस्थैर्यथासम्भव सर्वैरेवान्त्यनवांश-कस्थैः अवाङ् मूको गर्भस्थो वाच्यः। शुभेक्षित इति। चेच्छब्दो यद्यर्थे। एवंविधे योगे यदि शुभेक्षितः सौम्यग्रहदृष्टश्चन्द्रो भवति तदा जातस्य चिराद्बहुना कालेन गिरं वाच कुरुते अथदिवं पापवीक्षिते वाग्धीन इति। एवं योगे मिश्रग्रहवीक्षिता यदा सौम्या बलिनस्तदा चिरेण कालेन लब्ध-वाग्भवति। यदा पापा बलिनस्तदा नैवेति। अत्र च भगवान्गार्गिः। 'कुलीरालिझषांतस्थैः पापैश्चन्द्रे वृषोपगे। मूकः पापेक्षितैः सौम्यैश्चिरेण लभते गिरम्। मिश्रदृष्टैर्ग्रहैर्हीनैर्मूको वा लब्धवाक् चिरात्।। 'इति।१७।

भाषा— बुध लग्न से त्रिकोण में हो और शेष ग्रह निर्बल हो तो जातक २ मुख, ४ पैर, ४ हाथवाला होता है। यदि चन्द्रमा वृष में हो और पापग्रह राशि सन्धि (राशिगण्डान्त) में हो तो गूँगा होता है। यदि शुभ ग्रह की दृष्टि उन पर हो तो अधिक दिनों में बोलता है।। १७।।

अधुना सदन्तकुब्जजडजन्मयोगाः मंदाक्रान्तयाऽऽह—

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत्सदन्ताऽत्र जातः
कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे।
पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे
सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत्सौम्यदृष्टिः ॥१८॥

सौम्येति।। रविजः शनैश्चरः रुधिरोंऽगारकः यत्र तत्र राशौ शनै-श्चरांगारकौ सौम्यर्क्षांशे बुधनवांशके मिथुनांशके कन्यांशके वा भवतः

अथवा बुधर्क्षे मिथुनकन्ययोरन्यतमे राशौ स्थितौ भवतः चेच्छब्दो यद्यर्थे यद्येवं तदात्रास्मिन्योगे सदन्तो दन्तसहितो गर्भस्थो वाच्यः। केचित्सौम्यर्क्षांशे मिथुने मिथुनांशके कन्यायां कन्यांशके चेदिच्छन्ति ऋक्षांशयोर्युगपद्ग्रहणात्। अंशशब्देन केवलेनैव सिद्धिः स्यात्तदृक्ष-ग्रहणमतिरिच्यत इति। एवंविधे योगे गर्भस्थः सदन्तो भवति जातो वा कुब्ज। स्वर्क्षे इति। शशिनि चन्द्रे स्वर्क्षे आत्मीयराशौ कर्कटस्थिते तथाभूतो च तनुगते लग्नगते तथाभूते मन्दमाहेयदृष्टे मन्देन शनैश्चरेण माहेयेनाङ्गारकेण च दृष्टेऽवलोकिते चन्द्रे एवंभूते योगे गर्भस्थः कुब्जो वाच्यः। पङ्गुर्मीन इति। मीने लग्नसंस्थे यमशशिकुजैः यमः शनैश्चरः शशी चन्द्रः कुजो भौमः एतैर्वीक्षिते दृष्टे पङ्गुः पादविकलो गर्भस्थो वाच्यः। सन्धौ पाप इति। पापे रादित्यकुजसौराणामन्यतमे शशिनि च चन्द्रे सन्धौ कर्कटवृश्चिकमीनान्त्यनवांशगते यथासम्भवं गर्भस्थो जन्तुर्जडः श्रोत्रेन्द्रियहीनो वाच्यः। न चेत्सौम्यदृष्टिरिति। एते योग-कर्तारो ग्रहो यश्चादर्शिता न चेत् यदि सौम्यैः शुभग्रहैर्दृष्टा न भवन्ति तदैतद्योगचतुष्टयं पूर्ण वक्तव्यम्। सौम्यैर्बलिभिर्निरीक्षता योगा एव भवन्ति मध्यबलैर्हीनबलैर्वा दृष्टास्तदा असमग्रफला भवन्ति ॥ १८ ॥

भाषा– यदि शनि, मंगल, बुध की राशि और बुध के ही नवांश में हो तो जातक दन्तसहित उत्पन्न होता है। अपनी राशि (कर्क) का चन्द्रमा लग्न में हो और शनि मंगल से दृष्ट हो तो कुब्ज (कुबड़ा) होता है। मीन लग्न हो और शनि, चन्द्र, मंगल तीनों से दृष्ट हो तो पंगु (लंगड़ा) होता है। पापग्रह और चन्द्रमा राशि-सन्धि में हो तो जड़ (बहरा) होता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तभी इन योगों का फल समझना चाहिए। यदि शुभग्रह की दृष्टि हो तो ये उक्त फल नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

अधुना वामनहीनांगयोगौ दोधकेनाऽऽह–

सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने।
धीनवमोदयगैश्चदृकाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात् ॥ १९

सौरशशांकेति ॥ मकरान्त्यविलग्ने मकरराश्यंत्यनवांशके विलग्नस्थे नवमनवांशक उदयमानः स च मकरस्येत्यर्थः। तस्मिंश्च सौरशशांकदिवा-करदृष्टे सौरः शनैश्चरः शशांकश्चन्द्रः दिवाकरः सूर्यः एतैरवलोकिते वामनको गर्भस्थो वाच्यः। धीनवमोदयगैरिति। अत्रैके व्याचक्षते। यदा लग्ने द्वितीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा तस्य पंचमराशिसम्बन्धित्वा-

द्धीद्रेष्काण इत्याख्या। तस्मिन्द्वितीये द्रेष्काणे पापग्रहयुते उदयमनुप्राप्ते नवमे तस्मिन्सौरशशांकदिवाकरदृष्टे गर्भस्थोऽनुजो भुजहीनो वाच्यः। एवं यदा लग्ने तृतीयस्य द्रेष्काणस्य उदयो भवति तदा तस्य नवमराशिसंबंधित्वान्नवमदृकाण इत्याख्या। तस्मिन्नुदयगते पापयुते सौरशशांकदिवाकरदृष्टेऽनंघ्रिः पादहीनो गर्भस्थो वाच्यः। एवं प्रथमद्रेष्काणस्य लग्नसम्बन्धित्वादुदयद्रेष्काण इत्याख्या। तस्मिन्नुदयगते सौरशशांकदिवाकरदृष्टेऽशिराः शिरोहीनो गर्भस्थो वाच्यः। एतेषु योगेषु सौरशशांकदिवाकराणां दर्शनयोगात्पापयुक्त इति। केवलेनांगारकेण युक्ते योगो भवति अत्राप्यन्ये धीनवमोदयगैर्द्रेष्काणैः पापयुतैः केवलमेवाभुजांघ्रिशिरसां सम्भवं व्याचक्षते। सौरशशांकदिवाकरदृष्ट इत्यस्यानुवृत्तिं नेच्छन्ति। अन्ये विभुजादिसम्भवे यथासंख्यं त्यक्त्वा दृकाणत्रयेऽपि प्रतिदृकाणं तदुद्भवविकल्पमाहुः। विभुजो वानंघ्रिर्वा विशिरा वेति। अन्ये एवं व्याचक्षते। यथा लग्ने यदा प्रथमद्रेष्काणो यो भवति तदा पञ्चमेऽपि राशौ प्रथमद्रेष्काणो नवमेऽपि प्रथम एव। एतद्द्रेष्काणत्रयं इति पापयुतं भवति तदा भुजहीनो गर्भस्थो वाच्यः। अथ लग्ने द्वितीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा पञ्चमनवमयोरपि द्वितीय एव। एतद्द्रेष्काणत्रयं यदा पापयुतं भवति तदा पादहीनो गर्भस्थो वाच्यः। अथ लग्ने तृतीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा पञ्चमनवमयोरपि तृतीय एव। एतद्द्रेष्काणत्रयं यदि पापयुतं भवति तदा शिरोविहीनो गर्भस्थो वाच्यः। अत्राप्यन्ये यथासंख्यं त्यक्त्वा त्रिप्रकारेऽपि योगे भुजांघ्रिशिरोहीनानां विकल्पेन गर्भस्थस्य संभवमाहुः। वयं पुनर्ब्रूमः। निषेककाले पञ्चमराशौ यो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति। एवं नवमे स्थाने द्रेष्काणो नवमद्रेष्काणः तथा निषेककाले नवमराशौ यो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति तदा अनंघिर्भवति। तथा निषेककाले लग्नस्थो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति तदा अशिरा गर्भस्थो वाच्यः। एषैव व्याख्या साध्वी। यस्माद्भगवान्गार्गिः—

'लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कुर्याद्विशिरसं तद्वत्पंचमे बाहुवर्जितम्॥
विपदं नवमस्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः॥' *इति।*

तथा च सारावल्याम्– 'भौमयुता द्रेष्काणास्त्रिकोणलग्नेषु संदृष्टाः। विभुजांघ्रिमस्तकः स्याच्छनिरविचन्द्रैर्वदेद्गर्भः।।'।।१९।।

भाषा– यदि मकर अन्तिम द्रेष्काण से लग्न में हो और शनि, चन्द्र, सूर्य से दृष्ट हो तो जातक वामन (बौना) होता है। और पञ्चम, नवम तथा लग्न– इन भावों के द्रेष्काण पाप (मंगल) से युत हो और शनि, चन्द्र, सूर्य से दृष्ट हो तो जातक क्रम से भुजरहित, पैररहित (बिना पैर का) और मस्तकरहित अर्थात् बिना मस्तक का होता है। यदि शुभ ग्रह से युत-दृष्ट न हो तभी यह फल समझना चाहिए।। १९।।

विशेष अर्थ– यथा भगवान गार्गिः–

लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कार्याद्विशिरसं, तद्वत् पञ्चमे बाहुवर्जितम्।
विपदं नवमे स्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः।।१९।।

अथ विकलजन्मज्ञानार्थं हरिण्याऽऽह–

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षते
नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचनः।
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-
र्नशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः।।२०।।

रविशशियुते इति।। सिंहे लग्ने रविशशियुते अर्कचन्द्राभ्यां संयुते तथाभूते कुजार्किनिरीक्षिते भौमसौराभ्यां दृष्टे नयनरहितो नेत्ररहितोऽधो गर्भस्थो वाच्यः। अथदिवं केवले सिंहलग्नेऽर्केण युते सौरांगारकदृष्टे दक्षिणाक्षिकाणः। एवं सिंहलग्ने केवलेन चन्द्रेण युक्ते सौरांगारकदृष्टे वामाक्षिकाणः। सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचन इति। तस्मिन्नेव सिंहलग्नेऽर्कचन्द्राभ्यां युक्ते सौम्यासौम्यैः शुभपापग्रहैर्दृष्टे गर्भस्थः सबुद्बुदलोचनः पुष्पिताक्षो वाच्यः। अत्राप्यैकतमयुक्ते प्राग्वत् पुष्पिताक्षत्वं वाच्यम्। व्ययगृहगत इति। निषेककाललग्नाज्जन्मलग्नाद्वा यस्य चन्द्रमा व्ययगृहगतो द्वादशस्थो भवति तस्य वामं चक्षुर्हिनस्ति वामाक्षिकाणः स भवतीत्यर्थः। एवं रविरादित्यो लग्नाद्द्वादशोऽपरं दक्षिणं चक्षुर्हिनस्ति। न शुभगदिता योगा इति। एते योगाः प्रागभिहितास्त्रिकोणगे ज्ञ इत्यादिना ग्रन्थेन शुभाशुभफलदास्तेषां सर्वेषामेव योगानां यदा योगकर्तारो शुभग्रहैः सौम्यग्रहैर्दृष्टा भवन्ति तदा ते योगा याप्या भवन्ति पूर्णं यथोक्तं फलं न प्रयच्छन्ति किंतु किञ्चित्प्रयच्छतीत्यर्थः।।२०।।

भाषा— रवि-चन्द्रसहित सिंह लग्न हो और मंगल शनि से दृष्ट हो तो जातक अन्धा होता है। यदि शुभ और पापग्रह दोनों से दृष्ट हो तो आँख में फूलावाला होता है। यदि द्वादश भाव में चन्द्रमा हो तो वाम नेत्र का तथा सूर्य (रवि) द्वादश भाव में हो तो दाहिने नेत्र का नाशकारक होता है। इन कहे हुए अशुभ योगों में शुभग्रह की दृष्टि हो तो पूर्ण फल नहीं होता है।२०

अथ प्रश्नाधानकाले योगवशात्प्रसवकालज्ञानं वसंततिलकेनाऽऽह—

(१) तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको
यस्तत्तुल्यराशिसहिते पुरतः शशांके।
यावानुदेति दिनरात्रिसमानभागस्ताव-
द्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म ॥२१॥

तत्कालमिन्दुसहित इति। तत्काले प्रश्नकाले वा यस्मिन्राशौ चन्द्रमा वर्तते तत्र च यस्मिन्द्वादशभागे व्यवस्थितः स तत्कालमिंदुसहितो द्विरसांशकः। केचित्तु तत्कालिकेंदुसहितो द्विरसांशक इति पठन्ति। तत्कालिकेन्दुना यावत्संख्यो द्वादशभागः सहितः तत्तुल्यस्तावत्संख्यो मेषादौ गणनया यो राशिस्तत्रस्थे चन्द्रमसि पुरतोऽग्रतो दशमे मासि गर्भस्य प्रसवो वाच्य इति केचित्। तथा च सारावल्याम्—'यस्मिन्द्वादशभागे गर्भाधाने व्यवस्थितश्चन्द्रः। तत्तुल्यर्क्षे प्रसवं गर्भस्य समादिशेत्प्राज्ञः॥' अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते। आधानकाले यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तत्र यावत्संख्यो द्वादशभागो वर्तते तस्माद्द्वादशभागराशेस्तावत्संख्यो य एव पुरतो राशिस्तत्रस्थे चन्द्रमसि दशमे मासि प्रसवो वक्तव्यः। एषैव साध्वी व्याख्या। यस्याद्भगवन् गार्गि—'यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थितः। तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गते वदेत् (२)॥' अत्रापि नक्षत्रानयनेऽयमनुपातोपायः। यदि चन्द्रकांतद्वादशभागप्रमाणेन सकलचन्द्रराशिरष्टादशशतलिप्ताप्राणो लभ्यते तदानेन मुक्तद्वादशराशिप्रमाणेन किमिति लब्धं चन्द्रराशिमुक्तं लभ्यते ततोऽष्टशतलिप्ता परिकल्पनया नक्षत्रमूह्यम्।

(१) तत्काल इन्दुसहित इति 'तत्कालितेन्दुसहित इति च पीठान्तरे।'

(२) अत्र बालावबोधार्थमुदाहरणं प्रदर्श्यते-यथा वैशाखशुक्लपूर्णिमायां गुरौ रात्रिगतघटीषु ११।० एतावन्मितासु निषेकः। तत्कालिकस्पष्टचन्द्रो राश्यादिः ७।६।३०।१० अत्र चन्द्रमा वृश्चिकराशेश्चतुर्थद्वादशांशे वर्तते वृश्चिके चतुर्थद्वादशांशः कुम्भस्य भवति तेन कुम्भाच्चतुर्थवृषराशौ स्थिते चन्द्रमसि दशमे मासे फाल्गुने जन्म भविष्यतीति ज्ञेयमिति।

अत्रापि दिनरात्रिकालज्ञानमाह– यावानुदेतीति। दिनरात्रिसंज्ञाः पूर्वं व्याख्याताः। गोजाश्विकर्किमिथुना इत्यादि। आधानकाले प्रश्नकाले वा यल्लग्नं तस्य यः प्रविभागः दिनसंज्ञो रात्रिसंज्ञो वा यावानुदेति स्वमानाद्यावत्कालभागो गतस्तावत्येव दिननिशोः स्वमानाद्गते काले जन्म भविष्यतीति वाच्यम्। एवं दिनस्य रात्रेर्वा गतकालं बुद्ध्वा प्रसवकाले लग्नहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशभागत्रिंशांशका वाच्याः। अत्र ये प्रवदन्ति कथयन्ति तेषां तद्वाक्यं सारावल्याम्–

अथात्र वृषराशौ कृत्तिकानक्षत्रस्य चरणत्रयं रोहिणीनक्षत्रस्य चरणचतुष्टयं मृगशिरोनक्षत्रस्य पादद्वयञ्च वर्तते तत्र कस्य नक्षत्रस्य कस्मिन् चरणे जन्म भविष्यति

० । ॥

तदानयनं प्रदर्श्यते– चन्द्रस्य भुक्तकुम्भद्वादशांशमानम् = (६।३०।१०) –

० । ० : ॥ । ॥ ।

(७।३०) = (२।०।१०)=१२०-।१०-)=१२० स्वल्पान्तरात् 'अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यमिति नियमात्' ततोऽनुपातो यदि चन्द्रनिष्ठसम्पूर्ण-

० । ॥

द्वादशांशप्रमाणेनानेन २।३०-१५० राशिकला अष्टादशशतानि लभ्यन्ते तदा

।

चन्द्रभुक्तद्वादशांशमानेना १२०नेन का इति लब्धा राशिभुक्तकलाः= $\frac{\text{१८०० X १२०}}{\text{१५०}}$

=१२X१२०=१४४०। अथैकस्मिन् राशौ नवचरणास्तथैकस्मश्चरणे शतद्वयकला भवन्त्यतः शतद्वयेन भक्ता राशिभुक्तकलाः = $\frac{\text{१४४०}}{\text{२००}}$ = ७ + $\frac{\text{४०}}{\text{२००}}$ लब्धा वृषराशे भुक्ताः सप्त चरणा अतो वृषराशेष्टमे चरणेऽर्थात् मृगशिरोनक्षत्रस्य प्रथमचरणे जन्म भविष्यतीति ज्ञेयम्।

अथ दिनरात्रिगतेष्टकालप्रमाणानयनार्थमुदाहरणम्– अत्र निषेककालिकं लग्नम् ६।१०।२५।० तत्र चतुर्थो मेषनवमांशो वर्तते स च रात्रिबली तस्माद् रात्रिगतेष्ट-

० ।

कालानयनमनुपातेन यदि सम्पूर्णनवमांशप्रमाणेना (३।२०=२००) नेन गर्भाधान रात्रिमानम् २८।० लभ्यते तदा लग्नचतुर्थनवमांशभुक्तमानेना २५ नेन किमिति लब्धं रात्रिगतेष्टकालमानम्= $\frac{\text{२८ X २५}}{\text{२००}}$ =३।३० घट्यादिकम्। अतो रात्रि गतसार्धघटीत्रयेष्टसमये जन्म भविष्यतीति वाच्यम्। एवमेव सर्वत्र विचार्य-मिति दिक्।

'तत्कालं दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः।
यावानुदयस्तावान्वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा ॥
इत्याधाने प्रथमं प्रसूतिकालं सुनिश्चितं कृत्वा।
जातकविहितं च विधिं विचिन्तयेत्तत्र गणितज्ञः ॥२१॥

भाषा– गर्भाधान काल में चन्द्रमा जितने संख्यक द्वादशांश में हो उस राशि से उतने संख्यक राशि में, दशवें मास में जब चन्द्रमा जाता है, तब प्रसव होता है। अथवा दिन बली वा रात्रि बली गर्भाधानकालिक लग्न के जितने अंश उदित हों उतने ही दिन वा रात्रि बीतने पर जन्म कहना ॥२१॥

विशेष अर्थ- भगवान् गार्गि का वचन–

'यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थिते।
तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गते भवेत्' ॥

यथा सारावली–

'तत्काले दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः।
यावानुदयस्तावान् वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा ॥'

उदाहरण– मानो सं० १९९१ फाल्गुन शुक्ल ३ सोमवार रात्रिगत घटी ७।३० गर्भाधानकाल में लग्न राश्यादि ५।२३।१५।२० स्पष्ट चन्द्रमा ११।८।१४।२५ है तो यहाँ चन्द्रमा मीन राशि के चतुर्थ (मिथुन) के द्वादशांश में है, इसलिए मिथुन से चतुर्थ कन्याराशि में आधान मास से दशवें मास में जब चन्द्रमा जायगा तब जन्म होगा। तथा– चन्द्रमा की अंश कला समझने के लिए त्रैराशिक से ऐसा अनुपात है कि एक द्वादशांश २।३० की कला (१५०") में ३० अंश तो आधानकालिक गत द्वादशांश में क्या? इस प्रकार जन्मकालिक चन्द्रमा के लब्ध अंशादि=

$$\frac{\text{३०X गतद्वादशांशकला}}{\text{१५०}} = \frac{\text{गतद्वादशांशकला}}{\text{५}}$$

अर्थात् गत द्वादशांश की कला में ५ का भाग देने से अंशादि होते हैं। अतः आधानकालिक चन्द्रमा ११।८।१४।२५ के चतुर्थ द्वादशांश की गत कला ४४।२५ में ५ का भाग देने से लब्ध अंशादि ८।५३।० अर्थात् दशवें मास (अग्रहण) में कन्या राशि के ८ अंश ५३ कला में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा। यह निश्चित हुआ।

अतः जन्मकालिक चन्द्रमा ५।८।५३।० राश्यादि हुआ। इस पर से इष्टकाल भी समझ लेना चाहिए।

तथा आधानकालिक लग्न से जन्मकालिक दिनरात्रि गतेष्टकाल के आनयन का

उदाहरण– ऊपर सिद्ध हो चुका है कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के चतुर्थ चरण में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा।

वह संवत् १९९२ अग्रहण कृष्ण ११ गुरुवार में हुआ। तथा गर्भाधान लग्न कन्या दिनबली है। उसके गतांश २३।१५।२० से यह अनुपात हुआ कि ३० अंश में नियमित जन्मकालिक दिनमान तो गतांश में क्या?

$$= \frac{\text{दिनमान} \times \text{गतांश}}{३०} = \text{दिनगतेष्टकाल}$$

अर्थात् गतांश से दिनमान को गुणा कर ३० के भाग देने से इष्टकाल होता है। इसी प्रकार रात्रिबली लग्न में रात्रिमान से रात्रिगत इष्टकाल सिद्ध होता है। जैसे नियमित दिनमान २६।३० को लग्न के गतांश २३।१५।२० से गुणा कर ६१६।१६।२० इसमें ३० का भाग देने से लब्ध घट्यादि दिनगत इष्टकाल २०।३२ हुआ।।२१।।

अधुना धृतस्य गर्भस्य वर्षत्रयवर्षद्वादशज्ञानं मालिन्याऽऽह–

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेकः सूतिरब्दत्रयेण।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ।।२२।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
निषेकाध्यायश्चतुर्थः ।।४।।

उदयतीति।। मृदोः सौरस्य भांशे मृदुभांशे निषेककाले यस्य तस्य लग्नस्योदये मृदुभांशे शनैश्चरराशिनवांशके मृगांशके कुम्भांशके वोदयति तथाभूते यस्मादेव लग्नान्मन्दे शनैश्चरे तत्काले सप्तमस्थे द्यूनगते एवंविधे योगे यदि निषेक आधानं भवति तदा धृतस्य गर्भस्याब्दत्रयेण सूतिः प्रसवो वक्तव्यः। शशिनीति। एष एव विधिर्यदा शशिनि चन्द्रे भवति तदा द्वादशेऽब्दे द्वादशे वर्षे सूति प्रसवं कुर्यादित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। यस्य तस्य लग्नस्योदये यदा कर्कटांशकोदये भवति तस्माल्लग्ना-त्सप्तमश्चन्द्रो भवति तदा धृतस्य गर्भस्य द्वादशेऽब्दे प्रसवो वाच्यः। निगदितमिहेति। इहास्मिन्नाधानाध्याये आधानकालयोगवशाद्यथा हीना-धिकाङ्गादीनां गर्भसम्भवो भवति तथा प्रसूतिकालेऽपि तादृग्योग-वशात्तथाविधानामेव जन्म वक्तव्यम्। पितृमातृपितृव्यमातृष्वसॄणामपि शुभाशुभं जन्मकाललग्नवशात्तदनन्तरमपि वक्तव्यम्। युक्त्येति। यन्न सम्भवति तन्न वक्तव्यम्। यथा गर्भस्रावादि गर्भप्रसवकालनिर्देशादि

च। एवमाधानकालात्प्रसवकालाच्च यथैवोद्देशः कृतस्तथा प्रश्नकालादपि वक्तव्यः। उक्तं च जन्मन्याधाने प्रश्नकाले वेति॥२२॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ निषेकाध्यायश्चतुर्थः॥४॥

भाषा– लग्न में शनैश्चर की राशि (मकर वा कुम्भ) का नवांश हो और शनि सप्तम भाव में हो तो ऐसे योग में यदि गर्भाधान हो तो ३ वर्ष में प्रसव होता है। इस प्रकार यदि चन्द्रमा में हो (अर्थात् लग्न में कर्क का नवांश हो और चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो ऐसे योग में गर्भाधान होने पर १२ वर्ष में प्रसव होता है। इस अध्याय में कहे हुए फलों की युक्ति से जन्मकाल में भी विचार करना चाहिये॥२२॥

विशेष अर्थ– जैसे पितृ-मातृ आदि संज्ञक ग्रहों से जन्मकाल में भी पिता-माता आदि का शुभाशुभ विचार करना चाहिए॥२॥

अथ जन्मविधिर्नामाध्यायः॥५॥

अथातो जन्मविधिर्नामाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव पितुः सन्निधावसन्निधौ वा जात इत्यनुष्टुबाह–

पितुर्जातः परोक्षस्य (१) लग्नमिन्दावपश्यति।
विदेशस्थस्य चरभे मध्याद् भ्रष्टे दिवाकरे॥१॥

पितुर्जात इति जातः॥ इन्दौ चन्द्रे प्रसवलग्नमपश्यति सति पितुः परोक्षस्य जनकस्यासन्निधौ जातः। तत्र पितुरसन्निधाने स्वदेशपरदेशस्थितिज्ञानमाह– विदेशस्थस्येति। दिवाकरे सूर्ये चरभे चरराशिस्थिते

(१) अत्राचार्येण लग्नादिद्वादशभावानां संज्ञाः पठिताः। किन्तु किन्नाम लग्नं, के च भावाः, कथञ्च तत्साधनं भवतीति न कृतमतोऽत्र मया छात्रोपकारार्थं तदानयनं प्रदर्श्यते। तत्रापि तावदुपयोगित्वादयनांशाधानं प्रदर्श्यते–

एकद्विवेदसम्मितशकवर्षेऽयनांशाभाव एव प्राचीनाचार्यैरुपलब्धस्तदनन्तरमेकेन वर्षेण चतुः ⌣ पञ्चाशद्विकला अयनगतिरुपलब्धाः अतः इष्टशकवर्षादावयनांशज्ञानार्थमिष्टक एकद्विवेदोनः कार्यः शेषवर्षैरनुपातो यदि वर्षेणैकेन चतुः ⌣ पञ्चाशद्विकला अयनगतिर्लभ्यते तदा शेषवर्षैः किमित्यागता अभीष्टवर्षादावयनविकलास्ताः षष्टिवर्गभक्ता

जाता अयनांशाः $\frac{\text{५४ (इश—४२१)}}{\text{१} \times \text{३६००}} = \frac{\text{३ (इश—४२१)}}{\text{२००}}$ अतोऽत्र पद्यम्-

शकादेकद्विवेदोनात् त्रिनिघ्नाद्दशभाजितात्।
द्विशत्याप्तं फलं ज्ञेया वर्षादावयनांशकाः॥इति॥

मध्याद्दशमस्थानाद्भ्रष्टे पतिते एकादशद्वादशस्थे नवमाष्टमस्थानस्थे पितुर्विदिशस्थस्य अन्यदेशगतस्य जातः। चन्द्रमसि प्रसवलग्नमपश्यत्येष

अथेष्टार्कराशिसम्बन्ध्ययनांशानयनार्थमनुपातो यदि द्वादशभी रविभुक्तराशिभिश्चतुष्पञ्चाशदयनविकला लभ्यन्ते तदेष्टार्कराशिभिः किमित्यागतास्तत्सम्बन्ध्ययनविकलाः $\frac{५४ \times इररा}{१२} = \frac{९ \times इररा}{२}$ एभिः सहिता वर्षादिभवा अयनांशा अभीष्टमासादौ भवितुमर्हन्त्यतोऽत्रापि पद्यम्—

द्व्याप्ता नवघ्नार्कगतर्क्षसङ्ख्या लब्धाभिराभिर्विकलाभिराढ्याः।
वर्षादिजाता अयनांशकास्ते स्वाभीष्टमासप्रमुखे भवन्ति॥

ततो रविभुक्तांशसम्बन्ध्ययनविकलानयनार्थमनुपातो यदि चक्रांशैश्चतुष्पञ्चाशदयनविकला लभ्यन्ते तदा रविभुक्तांशैः किमिति लब्धाभिर्विकलाभिः सहिता मासादिभवा अयनांशा अभीष्टवासरे स्युरतोऽत्रापि पद्यम्—

त्रिघ्नानखाप्ता रविभुक्तभागा लब्धाभिरेवं विकलाभिराढ्याः।
मासादिजातायनभागकास्ते स्वाभीष्टवारे प्रभवन्ति नूनम् *॥इति॥*
एवमयनांशानयनं कार्यमिति दिक्।

अथ पञ्चाङ्गस्थग्रहेभ्योऽभीष्टकाले ग्रहानयनार्थमुपायः प्रदश्यते—

यस्मिन् दिनेऽभीष्टकाले ग्रहाः साध्यास्तस्मात् कालाद्यदि पृष्ठस्थिता पङ्क्तिरासन्ना स्यात् तदाऽभीष्टवारादेः पङ्क्तिवाराद्यं विशोध्य शेषं धनचालनं ज्ञेयम्। तेन ग्रहगतिकलाः सङ्गुण्य षष्ट्या विभज्य लब्धमंशाद्यं पञ्चाङ्गस्थग्रहे योज्यन्तदेष्टकाले ग्रहो भवेत्। यदि चाभीष्टकालादग्रस्थिता पङ्क्तिरासन्ना स्यात् तदा पङ्क्त्या इष्टं विशोध्य शेषमृणचालनं ज्ञेयं तेन ग्रहगतिं सङ्गुण्य षष्ट्यां विभज्य लब्धमंशाद्यं पङ्क्तिग्रहाद्विशोध्यं तदा स्वेष्टकाले ग्रहो भवितुमर्हति।

तथा च—

पङ्क्त्याः स्वेष्टो भवेदग्रे पङ्क्तिमिष्टाद्विशोधयेत्।
तच्चालनं धनं ज्ञेयं व्यत्ययात् व्यत्ययं तथा॥
धनर्णचालनेनैव गतिर्निघ्नी खषड् ६० हृता।
लब्धांशाद्यं क्रमाद्योज्य शोध्यमिष्टग्रहो भवेत्॥
विलोमगमनादत्र राहौ कुर्याद्विपर्ययम्।
तथा वक्रगतौ खेटे चालनस्य विधिस्त्वयम्॥

एवमभीष्टकाले सर्वे ग्रहाः प्रसाध्या इति।

अथ प्रथमलग्नसाधनार्थं पद्यानि—

सायनार्कस्य भुक्तांशा भोग्यांशा स्वोदयैर्हताः।
त्रिंशता विहृता लब्धपलानीष्टात् पलीकृतात्॥
विंशोध्यानि ततो भुक्त - भोग्यराश्युदयासवः।
शोध्यास्त्वेवं न यन्मानं शुध्येत्सोऽशुद्धसञ्ज्ञकः॥
शेषं त्रिंशद्गुणं भक्तमशुद्धभवनोदयैः।
लब्धमंशाद्यशुद्धर्क्षे शोध्यं योज्यं च शुद्धभे॥

योगो नान्यथेति। चन्द्रे प्रसवलग्नमपश्यति अर्के स्थिरराशिस्थे मध्याद् भ्रष्टे स्वदेशस्थस्यैव पितुः परोक्षे जातः। अस्मिन्नेव योगे द्विस्वभावस्थेऽर्के मध्याद् भ्रष्टे स्वदेशपरदेशयोर्मध्योपस्थितस्य परोक्षे जातः अर्था-

---

व्ययनाशंततस्तत् स्यात्फलार्थं लग्नमादृतम्।
लग्नं सूर्योदयादिष्टदण्डैर्भोग्यप्रकारतः॥
रात्रिशेषघटीभिस्तु साध्यं भुक्तप्रकारतः।
यामिनीगतदण्डैर्वा लग्नं षड्भयुताद्रवेः॥
भोग्यप्रकारतस्त्वेवं क्रियाया लघुता भवेत्।
इष्टाधिकानि सूर्यस्य भुक्तभोग्यपलानि चेत्॥
तदेष्टात्रिंशता निघ्नात् सूर्याक्रांतोदयैर्हृतात्।
लब्धांशै रहितो युक्तो रविरेव हि लग्नकम्॥
लग्नन्तूदयकाले स्याद्रविरेव हि सर्वदा।
अस्तकाले सषड्भार्कतुल्यं ज्ञेयं विपश्चिता॥
एवं दिवानताभावे रविरेव खलग्नकम्।
ज्ञेयं रात्रिनताभावे सषड्भरविणा समम्॥

दशमलग्नानयनं नतकालाद्भवत्यतस्तावदत्र नतकालसाधनोपायः प्रदर्श्यते-यदि दिनार्धादभीष्टघट्योऽल्पास्तदा दिनार्धादिष्टघटीपलप्रमाणं विशोध्य शेषं नतघटी प्रमाणम्। यदि चाभीष्टघटिका दिनार्धतोऽधिकास्तदाभीष्टघटीभ्य एवं दिनार्धं विशोध्य शेषं नतकालप्रमाणं ज्ञेयम्। एवं रात्रिगतेष्टरात्र्यर्धतोरात्रिगतनतकालः सुधिया स्वबुद्ध्या साध्य इति। ततो नतकालाल्लङ्कोदयैश्च दशमलग्नानयनं लग्नानयनकं कार्यम्। कथं दशमलग्नं लङ्कोदयैः साध्यते तदुच्यते स्वोर्ध्वयाम्योत्तरवृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पातरूपं दशमलग्नं निरक्षदेशीयानां स्वपूर्वपश्चिमस्वस्तिकनिवासिनां प्रथमलग्नं स्वयाम्योत्तरवृत्तस्य तत्क्षितिजत्वात्। अत एव दशमलग्नं निरक्षोदयैरेव साध्यम्। प्रथमलग्नन्तु स्वक्षितिजस्थं भवति तेन तत् स्वोदयैरेव साध्यते। लङ्कोदयस्वदेशोदयमानबोधकं पद्यमस्यैव ग्रन्थस्य प्रथमाध्याये १९ श्लोकस्य टिप्पण्यां विलोक्यम्।

अथ नतकाल-दशमलग्न-ससन्धिसर्वभावसाधनार्थम्मदुक्तपद्यानि-

पूर्वं नतं स्याद् द्युदलाल्पमिष्टं दिनार्धमानात् प्रविशोध्य शेषम्।
इष्टे दिनार्धादधिके विशोध्यं दिनार्धमिष्टादपरं नतं स्यात्॥१॥
एवं स्वबुद्ध्या सुधिया विधेयं रात्र्यर्धतो रात्रिगतं नतं च।
लङ्कोदयैः पूर्वनतात् प्रसाध्यं भुक्तप्रकारेण पुरोदितेन॥२॥
भोग्यप्रकारेण परान्नताद् यल्लग्नं भवेत्तद्दशमाभिधानम्।
भवेच्च तत् षड्भयुतं लग्नं सषड्भं च तथास्तसञ्ज्ञम्॥३॥
लग्नोनतुर्यरसभागयुता तनुस्तत्सन्धिर्भवेत्स रसभागयुतो द्वितीयः।
भावः स चोक्तरसभागयुतः स्वसन्धिरेवञ्च सोऽपि रसभागयुतस्तृतीयः॥४॥
भावोऽथ सोऽपि रसभागयुतः स्वसन्धिरेवन्तदुक्तरसभागविहीनितेन।
रूपेण तुर्यतनुरेव युता स्वसन्धिः साध्यावथैवमपि पञ्चमषष्ठभावौ॥५॥

देव चन्द्रे प्रसवलग्नमपश्यत्यर्के चरराशिस्थे वा द्विस्वभावराशिस्थे वा मध्याद् भ्रष्टेऽपि वा पितुः स्वदेशस्थस्यैव परोक्षे जात इति वक्तव्यम्। तथा सारावल्याम्–

वि.– एवमत्र सायनार्कस्वोदयाभ्यां लग्नादिभावसाधनं जन्मयात्राद्यदृष्ट-फलार्थं प्रत्यक्षमसंगतम्– तदर्थं मत्कृतो लग्नविवेको जन्मपत्रप्रबोधश्च विलोक्यौ।

'होरामनीक्ष्यमाणे पितरि न गेहस्थिते शशिनि जातः।
मेषूरणाच्च्युते वा चरगे भानौ विदेशगते' ॥१॥

भाषा- यदि चन्द्रमा द्वारा लग्नको नहीं देखा जाता हो तो पिताके परोक्ष में जन्म कहना चाहिए। इस योग में यदि सूर्य दशम स्थान से आगे हटा हुआ चर राशि में हो तो विदेशस्थ पिता के परोक्ष में जन्म कहना चाहिए।१।

विशेष अर्थ– सूर्य के चर राशि में रहने पर विदेशस्थ कहा गया है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि स्थिर राशि में सूर्य हो तो स्वदेशस्थ और द्विस्वभाव राशि में हो तो मार्गस्थ पिता के परोक्ष में जन्म समझना चाहिये। तथा यदि दशम स्थान से भ्रष्ट (हटे) सूर्य हो और चन्द्रमा लग्न को न देखे तभी यह योग समझना चाहिए। अर्थात् सूर्य दशमस्थान में हो तो योग नहीं होता है॥१॥

अथान्यानपि योगाननुष्टुबाह–

उदयस्थेऽपि वा मन्दे कुजे वास्तं समागते।
स्थिते वान्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ॥२॥

उदयस्थ इति॥ मन्दे सौरे उदयस्थे लग्नगते पितुः परोक्षस्य जातः, अथवा कुजे भौमे जन्मलग्नादस्तं सप्तमं समागते प्राप्ते पितुः परोक्षस्य जात इति। स्थिते वान्तरिति। क्षपानाथे चन्द्रे शशाङ्कसुतशुक्रयोर्मध्य-स्थे शशाङ्कसुतो बुधः शुक्रो भार्गवः, अनयोर्मध्यस्थिते चन्द्रादेको द्वादशे-ऽन्यो द्वितीये अथवैकस्मिन्राशौ मध्यभागेषु चन्द्रः स्थितः आद्यन्त-भागयोर्बुधशुक्रौ तथापि मध्यस्थः। एवंविधे योगे पितुः परोक्षस्य जातः। तथा च स्वल्पजातके–

'चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा सौम्यशुक्रयोश्चन्द्रे।
जन्म परोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे चास्ते॥'इति॥२॥

भाषा– यदि शनि लग्न में, अथवा मंगल सप्तम भाव में हो, या बुध-शुक्र के मध्य में चन्द्रमा हो तो पिता के परोक्ष में जन्म कहना चाहिए॥२॥

अधुना सर्पज्ञानं सर्पवेष्टितज्ञानं चानुष्टुबाह-

शशाङ्के पापलग्ने वा वृश्चिकेशत्रिभागगे।
शुभैः स्वायस्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितोऽपि वा ॥३॥

शशाङ्क इति ।। वृश्चिकेशो वृश्चिकस्वामी भौमः शशांके चन्द्रे वृश्चिकेशत्रिभागगे भौमद्रेष्काणस्थे तत्र भौमद्रेष्काणो मेषे प्रथमः कर्कटे द्वितीयः सिंहे तृतीयः, वृश्चिके प्रथमः धनुषि द्वितीयः मीने तृतीयः एषामन्यतमस्थस्य चन्द्रमसः शुभैः शुभग्रहैः स्वायस्थितैर्द्वितीयैकादशस्थितैः सर्प उरगो जात इति वक्तव्यम्। पापलग्ने वेति। एवं पापग्रहसम्बन्धिलग्नोदये यदा भौमद्रेष्काणो भवति तत्र पापलग्ने भौमद्रेष्काणः मेषे प्रथमः, कर्कटे द्वितीयः, सिंहे तृतीय; वृश्चिके प्रथमः धनुषि द्वितीयः मीने तृतीयः एषामन्यतमस्योदयो लग्नाद्यति शुभग्रहैर्द्व्येकादशस्थैस्तद्वेष्टितः सर्पवेष्टितो जन्तुर्जात इति वक्तव्यम्। अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते। चन्द्रे पापलग्ने वा भौमद्रेष्काणस्थे तस्मादेव शुभग्रहैः स्वायस्थितैः विकल्पेन सर्पो वा सर्पवेष्टितो वा जात इति वक्तव्यम्। अत्र पूर्वव्याख्या साध्वी। यस्माद्भगवान्गार्गिः। 'भौमद्रेष्काणगे चन्द्रे सौम्येरायधनस्थितैः। सर्पस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत्।' तथा च सारावल्याम्–

'भौमदृष्काणगतेंदौ लग्ने वा संस्थिते वदेज्ञातम्।
द्व्येकादशगैः सौम्यैरहिवेष्टितको भुजङ्गो वा'।।३।।

भाषा– चन्द्रमा यदि मंगल के द्रेष्काण में हो, या पाप से युत लग्न मंगल के द्रेष्काण में हो तो इन दोनों योग में शुभग्रह २।११ स्थान में हो तो सर्प का जन्म अथवा सर्प से वेष्टित मनुष्य का जन्म कहना चाहिए।।३।।

विशेष अर्थ– भगवान गार्गि का वचन–भौमद्रेष्काणे चन्द्रे सौम्येरायधनस्थितैः। सर्पस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत्।। इति स्पष्टार्थः।।३।।

अधुनैकजरायुवेष्टितयोजन्मज्ञानमनुष्टुबाह–

चतुष्पादगते भानौ शेषैर्वीर्यसमन्वितैः।
द्वितनुस्थैश्च यमलौ भवतः कोशवेष्टितौ ।।४।।

चतुष्पादेति। भानौ सूर्ये चतुष्पादराशिगते मेषवृषसिंहधन्विपरार्धमकरपूर्वार्धानामन्यतमस्थे शेषैरन्यैः सर्वग्रहैः द्वितनुस्थैर्द्विस्वभावराशिस्थितैः स्ववीर्यसमन्वितैः बलिभिश्च कोषवेष्टितौ एकजरायुवेष्टितौ यमलौ जायेते।। ४।।

भाषा– यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो, और शेषग्रह बलवान् होकर द्विस्वभाव राशि में हो तो एक जरायु में वेष्टित दो सन्तान (जोड़ा) का जन्म होता है।।४।।

अधुना नालवेष्टितजन्मज्ञानमनुष्टुबाह—

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे ।
राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ।। ५ ।।

छाग इति।। छागो मेषः सिंहः प्रसिद्धः वृषो वृषभः एतैः छागसिंहवृषैर्लग्नस्थितैः एषामन्यतमो यदि लग्नगतो भवति तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे तस्मिन् छागसिंहवृषाणामन्यतमे लग्नगते तत्स्थे तत्रस्थे सौरे शनैश्चरेऽथवा कुजे भौमे तत्रस्थे नालवेष्टितो जन्तुर्जायते। नालशादेन नाड्यो विधीयन्ते। कस्मिन्नङ्गे वेष्टित इत्याह— राश्यंशसदृशे गात्र इति। राशेरंशो राश्यंशः राशेः लग्नस्य यो नवांशकस्तत्कालमुदितः स च यद्राशिसम्बन्धी स च राशिर्यस्मिन्नंगे कालपुरुषस्य व्यवस्थितः कालाङ्गानीत्यादिना ग्रन्थेन निरूपितस्तत्सदृशे गात्रे तस्मिन्नेवांगे नालवेष्टित इति वक्तव्यम्। तथा च सारावल्याम्—

'सिंहाजगोभिरुदये सूते नालेन वेष्टितो जन्तुः ।
लग्ने कुजेऽथ सौरे राश्यंशसमानगात्रेषु' ।। ५ ।।

भाषा— मेष, सिंह या वृष लग्न हो, उसमें शनि वा मंगल हो तो लग्न में जिस राशि का नवांश हो उस राशि का जो अंग (कालाङ्गानि इत्यादि प्रकार) हो तो उस अंग में नाल से वेष्टित (लपेटा हुआ) जातक का जन्म होता है।। ५।।

अधुना जारजातं वंशस्थेनाह—

न लग्नमिन्दुं च गुरुर्निरीक्षते न
वा शशाङ्कं रविणा समागतम् ।
सपापकोऽर्केण युतोऽथ वा शशी
परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ।। ६ ।।

न लग्नमिति।। गुरुर्जीवो लग्नमुदयमिंदुं चन्द्रं च यदि न निरीक्षते न पश्यति लग्नचन्द्रावेकराशिस्थौ पृथगस्थौ वा यदोभावपि गुरुणा न दृश्येते तदा परेण जारेण जात इति निश्चयात्प्रवदंति कथयन्ति मुनयः। अत्र यदि लग्नचन्द्रौ जीवभागस्थौ जीवनवांशकस्थौ भवतः तदा न परजात इति वक्तव्यम्। यस्माद्यवनेश्वरः— 'अजीवभागेऽप्यनवीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा। जातं परोद्भूतमिति ब्रुवंति वाच्यो जनेनाथ बलावलोकात्' इति। न वा शशांकमिति। शशाङ्कं चन्द्रं रविणा सूर्येण समागतं संयुक्तं गुरुर्न निरीक्षते चन्द्रार्कावेकराशिस्थौ यदि च

बृहस्पतिना न दृश्येते तदा परेण जातः। अथवा शशी चन्द्रः सपापकः पापग्रहेण भौमेन सौरेण वा युक्तः तथाविधोऽर्केण सूर्येण यदि युक्तो भवति तथापि परेण जात इति। अत्राप्यन्ये जीवदृष्ट्यनुवर्ति व्याख्यानं कुर्वन्ति। तदयुक्तम्। यस्माच्चन्द्राकविकराशिगतो पापयुक्तौ वायुक्तौ वा जीवेन दृश्यमानावदृश्यमानौ वा जारजातजन्मकरौ तत्र चन्द्रार्कयोगः पापेन समेत्य किं कृतं भवति तस्माच्चन्द्राकविकराशिगतौ अपापौ जीवेना-दृश्यमानौ सपापौ जीवेन दृश्यमानौ वा जारजातजन्मकरौ निश्चयादवश्यं भवतः। अत्र चन्द्रमा यदि गुरुगृहे तद्द्रेष्काणतन्नवांशकद्वादशभाग-त्रिंशद्भागस्थो भवति,अन्यत्र वा राशौ गुरुणा युक्तस्तदा न जारजात इति। *यस्माद्भगवान्गार्गिः—*

'गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यराशिगे।
तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते' ॥६॥

भाषा— गुरु यदि लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखता हो, अथवा सूर्य से युक्त चन्द्रमा को बृहस्पति नहीं देखता हो, अथवा पापग्रह (शनि या मङ्गल) से युत चन्द्रमा यदि सूर्य से भी युक्त हो तो इन तीनों योग में परजात (दूसरे से उत्पन्न) का जन्म कहना चाहिए।।६।।

विशेष अर्थ— इन योगों में चन्द्रमा यदि गुरु की राशि वा द्रेष्काणादि में हो तो परजात नहीं समझना। यथा भगवान् गार्गि का वचन— 'गुरु-क्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वाऽन्यराशिगे। तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परेर्जात इष्यते।।' इति। स्पष्टार्थ।।६।।

अथ जातस्य पितृबन्धनयोगज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह—

क्रूरर्क्षगतावशोभनौ सूर्याद्द्यूननवात्मजस्थितौ।
बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशादथो पथि।।७।।

क्रूरर्क्षगताविति।। क्रूरर्क्षाणि क्रूरग्रहराशयः मेषसिंहवृश्चिक-मकरकुम्भाः कृष्णपक्षे क्षीणचन्द्रे कर्कटः पापयुक्ते बुधेऽपि कन्यामिथुने अशोभनौ पापौ शनिभौमौ क्रूरर्क्षगतौ पापक्षेत्रस्थितौ सूर्याद्रवेर्द्यूनन-वात्मजस्थितौ द्यूनं सप्तमं, नवमं प्रसिद्धं आत्मजस्थानं पञ्चममेषामन्य-तमस्थौ भवतस्तदा जातस्य पिता जनको बद्धो वाच्यः। तस्यादित्या-क्रान्तराशिवशाद्बन्धनदेशज्ञानमाह- स्वे वा राशिवशादथो पथीति। चर-राशिस्थेऽर्के परदेशे बद्धः स्थिरराशिस्थेऽर्के स्वदेशे, द्विस्वभावे पथि मार्गे एवं राशिवशात्स्थानपरिज्ञानम्। अथो इत्ययं निपातो विकल्पे। केचित् 'स्वे वा राशिवशात्तथा पथि' इति पठन्ति।।७।।

भाषा– दो पापग्रह यदि पापग्रह की राशि में स्थित होकर सूर्य से ७।६।५, इन स्थानों में हो तो जातक के पिता को बद्ध (जेल में बँधा हुआ) समझना चाहिए। सूर्य चरराशि में हो तो विदेश में, स्थिर राशि में हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव में हो तो मार्ग में पिता को बँधा हुआ समझना चाहिए।।७।।

अधुना पोतगताप्रसवज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

पूर्णे शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे ।
लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोतगता प्रसूयते ।।८।।

पूर्ण इति।। शशिनि चन्द्रे पूर्णे परिपूर्णमण्डले तस्मिंश्च स्वराशिगे कर्कटस्थिते तथा सौम्ये बुधे लग्नगते उदयस्थे शुभे जीवे उदयात् सुखे चतुर्थे पोतगता नौस्था प्रसूयते इति वक्तव्यम्। तत्रान्ये शुभः सुख इति पठन्ति। पठित्वा चैवं व्याचक्षते। शुभैरिति बहुवचनं न घटते। लग्ने बुध उक्तः शुक्रबृहस्पती शेषौ शुभाभ्यामित्येवं प्राप्नोति। यत्क्रियते शुभैरिति तस्मादेवमवसीयते। पूर्णश्चन्द्रमाः शुक्र बृहस्पतिभ्यां युक्तो भवति तदा शुभैरिति भवति। एतच्च मेषलग्ने तत्रस्थे बुधे पूर्णचन्द्रे शुक्रबृहस्पतिभ्यां समायुक्ते कर्कटव्यवस्थिते सर्वं युज्यत इति। अयं पाठो मद्व्याख्याने न युक्तः यस्मान्मकरावस्थितेऽर्के कर्कटस्थश्चन्द्रमाः पूर्णो भवति मकरव्यवस्थिते चार्के मकराच्चतुर्थभवने मेषे बुधस्य सम्भवो नास्ति। किं पुनर्मकरात्सप्तमराशौ कर्कटके शुक्रस्याप्यवस्थानमिति। तस्माच्छुभे इति सुखे इति सप्तम्येकवचनान्त एव पाठो न्याय्यः। शुभे सुख इति। तत्कथं जीवो व्याख्यातः? उच्यते। बुधो लग्नगतस्तस्माच्चतुर्थे शुक्रस्यावस्थानं न सम्भवति अतो जीव इति व्याख्यातम्। केचित्पूर्वशास्त्रानुसारेणेति शुक्र इच्छन्ति। अथ पोतगताप्रसवयोगो द्वितीयः। लग्ने जलज इति। लग्ने जलजे जलराशौ कर्कटमकरपश्चिमार्धमीनानामन्यतमे तस्मादस्तगे सप्तमस्थानस्थे चन्द्रे पूर्णे वापूर्णे च पोतगतैव प्रसूयत इति। वाशब्दः प्रकारार्थः।।८।।

भाषा– यदि पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो, बुध लग्न में हो, शुभग्रह चतुर्थ में हो तो नौका पर प्रसव होता है। अथवा जलचर राशि लग्न हो, तथा सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो भी नौका पर प्रसव समझना चाहिए।।८।।

अथोदकमध्यप्रसवज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः समवेक्षतेऽथवा ।
मेषूरणबन्धुलग्नगः स्यात्सूतिः सलिले न संशयः ।।९।।

आप्योदयमिति।। अप्यराशयोः मकरपश्चार्द्धकर्कमीनास्तेषामन्यतमस्योदय आप्योदयः। जलराशिलग्ने भवति शशी चन्द्रश्चाप्यगो जलराशिस्थस्तदा सूतिः प्रसवः सलिले जलसमीपे, न संशयः निश्चयाद्वाच्यः अथवा सम्पूर्णः शशी लग्नगमाप्योदयं समवेक्षते पश्यति तथापि सलिले प्रसूतिः। मेषूरणबन्धुलग्नग इति। अथवाप्यराशावुदयगते मेषूरणबन्धुलग्नगो मेषूरणे दशमे बन्धुस्थाने चतुर्थे लग्ने प्राग्लग्ने स्थितः स्याद्भवेत्तथापि सलिले प्रसूतिरिति वदेत्। तथा च सारावल्याम्-

'सलिलभलग्नं चन्द्रो जलचरराशौ तु वेक्षते पूर्णः।
प्रसवं सलिले विद्याद्बन्धूदयदशमगश्च यदा' ।।९।।

भाषा–पूर्ण चन्द्रमा जलचर राशि में हो और जलचर राशि लग्न को देखता हो तो जल में प्रसव होता है। तथा जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा, दशम, चतुर्थ वा लग्न भाव में हो तो भी जल में प्रसव कहना चाहिए।।९।।

अधुना बन्धनागारावटयोः प्रसवज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

उदयोडुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्यां पापनिरीक्षते यमे।
अलिकर्कियुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे ।।१०।।

उदयेति। उदयो लग्नमुडुपश्चन्द्रः तयोरुदयोडुपयोरेकराशिस्थयोर्यमे सौरे व्ययस्थिते द्वादशस्थे तस्मिंश्च पापनिरीक्षते गुप्त्यां बन्धनागारे प्रसूयत इति वक्तव्यम्। सौरे शनैश्चरे अलिकर्कियुते वृश्चिककुलीरयोरन्यतमस्थे तस्मिंश्च शीतकरेक्षिते चन्द्रदृष्टेऽवटे श्वभ्रे प्रसूतिर्वक्तव्या।१०।

भाषा– लग्न में चन्द्रमा हो, उससे १२ स्थान में शनि हो और पापग्रह से देखा जाता हो (दृष्ट हो) तो जेलखाने में जन्म कहना। तथा वृश्चिक या कर्क में स्थित शनि लग्न में हो और चन्द्रमा से दृष्ट हो तो अवट (गर्त=गढ़े) में जन्म समझना चाहिए।।१०।।

अथ क्रीडागृहदेवालयसोखरभूमिप्रदेशेषु प्रसवज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

मन्देऽब्जगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षते क्रमात्।
क्रीडाभवने सुरालये सोखरभूमिषु च प्रसूयते ।।११।।

मन्द इति।। मन्दे शनैश्चरेऽब्जगते जलराशिस्थे तथाभूते विलग्नगे प्राग्लग्नस्थे क्रमात्परिपाट्या बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रीडाभवने सुरालये सोखरभूमिषु च प्रसूयत इति वदेत्। एतदुक्तं भवति। शनैश्चरे जलराशिस्थे लग्नगते बुधनिरीक्षिते बुधदृष्टे क्रीडाभवने रतिगृहे प्रसूयते। एवं सूर्येणार्केण निरीक्षिते सुरालये देवगृहे, इन्दुना चन्द्रेण निरीक्षिते सोखरभूमिषु सवालुकास्यवनिषु प्रसूयत इति।।११।।

भाषा– शनि जलचर राशि में स्थित होकर लग्न में हो और बुध से दृष्ट हो तो क्रीड़ास्थान या क्रीड़ाभवन में, सूर्य से दृष्ट हो तो देवालय में और चन्द्र से दृष्ट हो तो ऊसर भूमि में प्रसव कहना चाहिए।। ११ ।।

अथ श्मशानरम्यप्रदेशाग्निशालानृपदेवगृहगोकुलशिल्पालयप्रसवज्ञानमुपजात्याऽऽह–

नृलग्नगं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे।
रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति।।१२।।

नृलग्नगमिति।। पूर्वश्लोकान्मन्द इत्यनुवर्तन्ते प्रत्यासन्नत्वात्। नृलग्नगं नरराशिलग्नस्थितं नरराशया मिथुनकन्यातुलाधन्विपूर्वार्ध-कुम्भाः तत्र गतं शनैश्चरं कुजोऽङ्गारकः प्रेक्ष्य दृष्ट्वा भौमो यदि पश्यति तदा श्मशाने प्रसवं जन्म करोति। केचिन्नृलग्नदर्शी क्षितिज इति पठति। नृलग्नगं पश्यति तच्छीलो नृलग्नदर्शी क्षितिजः। रम्ये सितेन्दू इति। नरराशिलग्नतं शनैश्चरयुक्तसितः इन्दुश्चन्द्रो वा पश्यति तथा रम्ये रमणीये प्रदेशे जन्म। एवंविधं सौरं गुरुर्जीवः पश्यति तथा अग्निहोत्रेऽग्निशालायाम्। एवंविधं सौरिं रविः पश्यति तदा नरेन्द्रा-मरगोकुलेषु नरेन्द्रगृहे राजवेश्मनि, अमरगृहे, वा गोकुले गोशाल्लायां वा प्रसूतिः। एवमेव बुधेन दृष्टे सौरे शिल्पालये शिल्पिगृहे चित्र-पुस्तककरवर्धकिप्रभृतीनां शिल्पिनामालये गृहे प्रसूतिरिति। तथा च सारावल्याम्- 'रविजे जलजविलग्ने क्रीडोद्याने बुधेक्षिते प्रसवः। रविणा देवागारे तथोखरे चैव चन्द्रेण।आरण्यभवनलग्ने गिरिवनदुर्गे तथा नरवि-लग्ने।रुधिरेक्षिते श्मशाने शिल्पिकनिलये च सौम्येन'। तथा च बादरायणः-

सूर्येक्षिते गोनृपदेववासे शुक्रेन्दुजाभ्यां रमणीयदेशे।
सुरेज्यदृष्टे द्विजवह्निहोत्रे नरोदये सम्प्रवदन्ति सूतिम्।१२।

भाषा–द्विपदराशि लग्न में स्थित शनि को मंगल देखे तो श्मशानभूमि में, शुक्र और चन्द्रमा– ये दोनों देखें तो रमणीय स्थान में, गुरु देखता हो तो अग्निशाला में, सूर्य देखता हो तो राजगृह में वा देवालय में अथवा गोशाला में और बुध देखता हो तो चित्रालय में प्रसव होता है।। १२ ।।

अथ प्रसवदेशज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

राश्यंशसमामगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे।
स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे बलयोगात्फलमंशकर्क्षयोः ।।१३।।

राश्यंशेति।। राशिश्च अंशश्च तद्राश्यंशं राशिर्लग्नराशिरंशो नवां-शकः लग्नराशेस्तन्नवांशकस्य वा यः समानः सदृशः स्वात्मीयगोचरो

विषयः स्वचराश्च सर्व इत्यनेन प्रदर्शितः। तत्र यस्मिन्प्रदेशे यो यो राशिरूपः प्राणी सञ्चरति तत्र यो मार्गः पन्थास्तस्मिञ्जन्म। यदि चरे लग्नराशिस्तन्नवांशको वा चरे भवति, अथ लग्नराशिस्तन्नवांशको वा स्थिरस्तदा राशिस्वरूपतुल्यस्य प्राणिनः यस्मिन्गृहे यत्र प्रसवे सति तत्स्थाने राशिस्वरूपतुल्यस्य प्राणिनो यद्गृहं समीपस्तत्र प्रसव इत्यर्थः। स्वक्षांशगत इति। चरस्य स्थिरस्य द्विस्वभावस्य वा राशेर्लग्नगतस्य स्वक्षांश आत्मीयनवांशकोदयो यदा भवति तदा स्वमन्दिरे आत्मीयगृहे एव जन्म वक्तव्यम्। तत्र राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म इत्यादि सामान्येनोक्तं तत्र ज्ञायते किं लग्नराशिसमानगोचरे किमंशसमानगोचरे प्रसवादेशः। क्रियतां तदर्थमयं निश्चयः। बलयोगादिति। अंशको नवांशकः ऋक्षं राशिः अनयोर्बलयोगात्फलं प्रसवस्थानज्ञानम्। एतदुक्तं भवति। नग्नराशेर्नवांशकराशेश्च यो बलवांस्तत्समानगोचरेषु मार्गगृहसमीपेषु प्रसवो वक्तव्यः। अत्र पूर्वोक्तयोगाभावे राश्यंशसमानगोचरमार्गादिषु प्रसवो वक्तव्यः। तेषां सम्भवे योगोक्तप्रदेशेष्वेव प्रसवो वक्तव्यः॥ १३॥

भाषा– लग्न की राशि वा नवांश के सदृश प्रदेश में जन्म कहना अर्थात् 'स्वचराश्च सर्वे' इस प्रकार से जिस राशि के जो स्थान हैं उस प्रकार के स्थान में प्रसव कहना। यदि लग्न या नवांश चर हो तो मार्ग में, स्थिर हो तो घर में जन्म कहना। यदि लग्न में अपने ही नवांश में हो तो अपने ही घर में जन्म कहना चाहिए। तथा लग्न और नवांश की राशियों में जो बली हो उसके सदृश स्थान में ही प्रसव समझना चाहिए॥ १३॥

अथ यस्मिन्योगे जातो मात्रा त्यज्यते, यस्मिंश्च योगे जातस्त्यक्तोऽपि मात्रा दीर्घायुः सुखी च भवति तद्योगद्वयं वैतालीयेनाऽऽह–

आरार्कजयोस्त्रिकोणगे चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया।
दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक्च स स्मृतः॥१४॥

आरार्केति। चन्द्रे शशिन्यारार्कजयोभौमसौरयोरेकराशिगतयोस्त्रिकोणगे नवमस्थे पञ्चमस्थे वाऽस्ते च सप्तमे स्थाने स्थिते जातोऽम्बया मात्रा विसृज्यते त्यज्यते। एवंविधे योगे चन्द्रमसि अमरराजमन्त्रिणा गुरुणा दृष्टे मात्रा त्यक्तोऽपि परहस्तगतोऽपि दीर्घायुः चिरजीवी सुखभाक्च भवति।१४

भाषा– मंगल और शनि दोनों एक राशि में हों, उससे त्रिकोण (९।५) वा सप्तम में शनि हो तो उस जातक का माता त्याग कर

देती है। किन्तु चन्द्रमा को गुरु देखता हो तो माता से त्यक्त होने पर दीर्घायु और सुखभागी होता है।। १४।।

अथ यस्मिन्योगे जातो मात्रा त्यक्तो विनश्यति तद्वसन्ततिलकेनाऽऽह-

पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते
त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथाये।
सौम्येऽपि पश्यति तथाविधहस्तमेति
सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः ।।१५।।

पापेक्षित इति।। तुहिनगौ चन्द्रे पापेक्षिते पापग्रहदृष्टे सौरेणार्केण वेत्यर्थः। तथाभूते उदये लग्ने स्थिते कुजे भौमे चास्ते सप्तमस्थाने जातो मात्रा त्यक्तो विनश्यति म्रियत इत्यर्थः। कुजार्कजयोरिति। तथा तेनैव प्रकारेण लग्नगते चन्द्रमसि पापेक्षिते सूर्यदृष्टे कुजार्कजयोर्भौमशनैश्चरयोराये लग्नादेकादशे स्थितयोर्जातो मात्रा त्यक्तोऽपि विनश्यति म्रियत इत्यर्थः। सौम्येऽपि पश्यति। पूर्वोक्तयोगस्थे चन्द्रमसि पापदृष्टे सौम्ये शुभग्रहेऽपि पश्यति सति जातो मात्रा त्यज्यते त्यक्तोऽपि यादृग्वर्णप्रभुणा सौम्यग्रहेण चन्द्रमसा दृष्टस्तथाविधस्य हस्तमेति, तादृग्वर्णस्य ब्राह्मणादेर्हस्तं गच्छति तेन धार्यते जीवति च। अथास्मिन्नेव योगे स्थितश्चन्द्रमाः पापेन कुजेन सौरेण वा दृश्यतेऽन्येन सौम्यग्रहेण च दृश्यते तदा जातस्तयोर्द्रष्टृग्रहयोर्यो बलवान्तादृग्वर्णस्य ब्राह्मणादेर्हस्तङ्गतोऽपि विनश्यति। यदुक्तम्- 'सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः' इति। ननु यथा योगस्थे चन्द्रमसि सौम्यैः पापैश्च दृश्यमाने मात्रा त्यक्तो विनश्यतीत्यभिहितं तत्र क्षत्रियवैश्यशूद्रवर्णसंकरादिषु हस्तगतः सर्व एव विनाशमाप्नोति। बह्वश्च मात्रा त्यक्ताः क्षत्रियादिवर्णसंकरगताश्च जीवमाना दृश्यन्ते तस्मात्पूर्वश्लोकात् 'दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक्च स स्मृतः' इत्येतदिह शेषभूतमवगन्तव्यम्। तस्माद् बुधेन शुक्रेण वा यथादर्शितयोगस्थश्चन्द्रमा दृश्यते जीवेन न दृश्यते तदा परहस्तगतोऽपि म्रियते। यदा पापेन सौम्येन वा दृश्यमानोऽपि जीवेन दृश्यते तदा द्रष्टृग्रहयोर्बलवशात्तद्वर्णस्य ब्राह्मण देर्हस्तगो जीवति। तथा च सारावल्याम्—

'म्रियते पापैर्दृष्टे शशिनि विलग्ने कुजेऽस्तगे त्यक्तः।
लग्नाच्च लाभगतयोर्वसुधासुतमन्दयोरेवम् ॥
पश्यति सौम्यो बलवान्याद्दृग्गृह्णाति तादृशो जातम् ।
शुभपापग्रहदृष्टे परैर्गृहीतोऽप्यसौ म्रियते ॥

सर्वेष्वेतेषु यदा योगेषु शशिसुरेज्यसन्दृष्टः।
भवति तथा दीर्घायुर्हस्तगतः सर्ववर्णेषु ॥१५॥

भाषा– पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा लग्न में हो और उससे ७वें मंगल हो तो वह जातक माता से त्यक्त होकर मर जाता है। तथा पापदृष्ट चन्द्रमा एक राशिगत शनि-मंगल से ११वें भाव में हो तो भी जातक माता से त्यक्त होकर मर जाता है। और यदि शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो वह शुभ ग्रह जिस वर्ण का स्वामी हो उसी वर्ण के पुरुष या स्त्री के हाथ में वह बालक जाता है। यदि चन्द्रमा सौम्यतर (पापग्रह) से दृष्ट हो और उसे बृहस्पति न देखता हो तो अन्य के हाथ में जाने पर भी जातक मर जाता है।१५।

अधुना प्रसवगृहज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह–

पितृमातृगृहेषु तद्बलात्तरुशालादिषु नीचगैः शुभैः।
यदि नैकगतैस्तु वीक्षितौ लग्नेन्दू विजने प्रसूयते ॥१६॥

पितृमातृगृहेष्विति॥ पितृमातृग्रहा दिवार्कशुक्रावित्यादीनोक्तास्तद्बलात्पितृमातृग्रहवीर्यात्पितृमातृगृहेषु प्रसूयत इति वदेत्। तत्रार्कशनैश्चरन्यतमे बलवति पितृगृहे पितृष्वसृपितृव्यादिसम्बन्धिगृहे प्रसूतिः। तरुशालादिषु नीचगैः शुभैरिति। बहुवचनात्सर्व एव शुभग्रहाः यदा नीचस्था भवन्ति तदा तरुषु वृक्षेषु शालासु प्रसवो वाच्यः। आदिग्रहणान्नदीकूपारामपर्वतादिदेशेष्वनावृतेषु इति। यदि नैकगतैरिति। नीचगैः शुभैरित्यनुवर्तते। सर्वे शुभग्रहाः नीचगतास्तैर्लग्नेन्दू उदयचन्द्रावुभावप्येकराशिगतैर्ग्रहैर्बहुवचनात्त्रिप्रभृतिभिर्यदा न दृश्येते तदा विजने जनरहिते स्थानेऽटव्यां प्रसूतिरिति। यदा पुनरेकस्थैर्बहुभिर्ग्रहैर्लग्नेन्दू दृश्येते तदा जनाकीर्णे प्रसूतिरिति। तथा च सारावल्याम्–

'पितृमातृग्रहवर्गे तत्स्वजनगृहेषु बलयोगात्।
प्राकारतरुनदीषु च सूतिर्नीचाश्रितैः सौम्यैः॥
नेक्षेते लग्नेन्दू यद्येकस्था ग्रहास्तदाटव्याम्' ॥१६॥

भाषा– (अध्याय ४ श्लोक ५ में 'दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ' इत्यादि जो ग्रह कहे गये हैं) उनमें जो ग्रह बली हो, तदनुसार पिता या माता आदि के घर में जन्म कहना। यदि सभी शुभ ग्रह नीचस्थ हों तो तरुशाला (वन, वाटिका आदि) में जातक का जन्म कहना। तथा सब शुभ ग्रह किसी एक स्थान में रहकर लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखते हों तो निर्जन स्थान में जन्म समझना चाहिए॥१६॥

अधुना दीपसम्भवासम्भवभूप्रदेशप्रसवज्ञानं गर्भमोक्षं मातुः सूतिकाले तन्निमित्तक्लेशज्ञानं च मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा
तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ ।
यद्वद्राशिर्व्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्
पापैश्चन्द्रस्मरसुखगतैः कलेशमाहुर्जनन्याः ।।१७।।

मन्दर्क्षांश इति।। शशिनि चन्द्रे यत्र यत्र राशौ मन्दर्क्षांशे शनैश्चरस्य नवभागे मकरकुम्भयोरन्यतमांशस्थे तमस्यन्धकारे सूतिकाशयनं वक्तव्यम्। हिबुके लग्नाच्चतुर्थस्थे चन्द्रेऽन्धकार एव शयनम्। यत्र तत्रावस्थिते चन्द्रे मन्देन दृष्टेऽन्धकार एव। अब्जगे वेति। अब्जराशी अत्र कर्कटमीनौ द्वौ विज्ञेयौ मकरकुम्भयोरुक्तत्वात्। मन्दर्क्षांश इत्यादिनेति। तेन यत्र यत्र राशौ कर्कटनवांशकस्थे चन्द्रे तमस्यन्धकार एव मीननवांशकस्थे वा तमस्यन्धकार एव। तद्युक्ते वेति। तदिति सौरः परामृश्यते। यत्र तत्रावस्थिते चन्द्रे सौरयुक्तेऽन्धकार एव निषेककाले नारीशयनमपि। सर्वेष्वेतेषु योगेषु यदार्कदृष्टश्चन्द्रमा भवति तदान्धकाराभावः। यस्माद्यवनेश्वरः। 'सौरांशकस्थे शशिनि प्रलग्ने जले जलाख्यांशकमाश्रिते वा। स्वांशस्थिते केन्द्रगतेऽर्कजे वा जातस्तमिस्रे यदि नार्कदृष्टः'। अन्येषां सूर्ये बलवति भौमेन दृष्टे सत्स्वपि योगेष्वन्धकाराभावः। तथा च सारावल्याम्- 'बलवति सूर्ये दृष्टे बहुप्रदीपा धरा कुपुत्रेण। अन्यैर्व्यपगतवीर्यैः सुतौ ज्योतिस्तृणैर्भवति।। सौरांशे जलजांशे चन्द्रेऽर्कयुतेऽथवा हिबुके। तद्दृष्टे वा कुर्यात्तमसि प्रसव न सन्देहः'। नीचसंस्थैश्च भूमाविति। शयनमित्यनुवर्तते। बहुवचनाद्यथासम्भवे त्रिप्रभृतिभिर्ग्रहैर्नीचस्थैर्भूमौ शयनं वाच्यम्। भूशब्देनात्र तृणास्तृता भूर्ज्ञेया। केचिल्लग्नस्थे चतुर्थस्थे वा नीचगते चन्द्रे भूशयनमिच्छन्ति। तथा च सारावल्याम्- 'नीचस्थे भूशयनं चन्द्रेऽप्यथवा सुखे विलग्ने वा"। यद्वदिति। प्रसवलग्नराशिर्यद्वद्येन प्रकारेण हरिजं व्रजत्युदयलेखां परित्यजति तद्वत्तेनैव प्रकारेण नार्या गर्भमोक्षो वाच्यः। यत्राकाशं भूम्या सह संसक्तं समन्ताद् दृश्यते तद्धरिजम्। उक्तं च– 'हरिजमिति गगनभवनौ सम्पृक्तमिव लक्ष्यते यथोक्तेषु' तद्यथा। शीर्षोदयेषु लग्नेषूत्तानास्योदरं दर्शयतो गर्भस्य मोक्षो वाच्यः। पृष्ठोदयेष्वधोमुखस्य पृष्ठं दर्शयतः। मीनोदये पार्श्वं दर्शयतः। तथा च

सारावल्याम्– 'शीर्षोदये विलग्ने मूर्ध्ना प्रसवोऽन्यथोदये चरणैः। उभयोदये च हस्तैः शुभदृष्टे शोभनोऽन्यथा कष्टः'। केचिदेवं व्याचक्षते– यथा लग्नाधिपो नवांशकाधिपो वा ग्रहो वक्री भवति तदा वैपरीत्येन गर्भमोक्षो भवति। तथा च मणित्थः– 'लग्नाधिपेंऽशकपतौ लग्नस्थे वक्रिते ग्रहेऽप्यथवा। विपरीतगतो मोक्षो वाच्यो गर्भस्य संक्लेशः'। पापैरिति। पापग्रहैश्चन्द्रगतैः शशिना सह व्यवस्थितैः स्मरगतैर्लग्नात्-सप्तमस्थैर्वा। सुखगतैर्लग्नाच्चतुर्थस्थैर्वा प्रसवकाले जनन्या मातुः क्लेश-माहुः कष्टं कथयन्ति सूरयः। तथा च सारावल्याम्–

'क्लेशो मातुः क्रूरैर्बन्धवस्तगतैः शशाङ्कयुक्तैर्वा'।।१७।।

भाषा– यदि चन्द्रमा शनि की राशि (मकर, कुम्भ) के नवांश में हो, या चतुर्थ स्थान में हो, शनि से देखा जा रहा हो या शनि से युक्त हो तो अन्धेरे स्थान में प्रसूति का शयन कहना। यदि ३ से अधिक ग्रह नीच में हों तो भूमि में प्रसूति का शयन समझना। और लग्नराशि जिस प्रकार क्षितिज में उदित होता है उसी प्रकार गर्भ का मोक्ष (गर्भस्थ बालक का जन्म) होता है। तथा चन्द्रमा से ७।४ स्थान में पापग्रह हो तो माता को प्रसवकाल में कष्ट होता है।।७।।

विशेष अर्थ– अन्धकार प्रसव योग में शनि को सूर्य देखता हो तो अन्धकार नहीं कहना। यथा–यवनाचार्य–

'सौरांशकरस्थे शशिनि प्रलग्ने जले जलाख्यांशकमाश्रिते वा।
स्वांशस्थिते केन्द्रगतेऽर्कजे वा जातस्तमिस्रे यदि नार्कदृष्टः।।

तथा– शीर्षोदय लग्न में जातक का भी प्रथम शीर्षोदय (अर्थात् गर्भ से प्रथम मस्तक का ही उदय) होता है। पृष्ठोदय में प्रथम पैर का उदय और उभयोदय में प्रथम हाथ का उदय होता है। यथा सारावली में–

'शीर्षोदयविलग्ने मूर्धा प्रसवोऽन्यथोदयेचरणैः।
उभयोदये च हस्तैः शुभदृष्टे शोभनोऽन्यथाकष्टम् ।इति।

अथ दीपगृहद्वारज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यः।
द्वारं च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्यसमन्वितैर्वा ।१८।

स्नेहः शशाङ्कादिति।। शशाङ्काच्चन्द्रात्स्नेहो वाच्यः। जन्मकाले पूर्णे चन्द्रे स्नेहेन पूर्णं दीपभाजनं वक्तव्यम्। क्षीणे क्षीणस्नेहाक्तमिति। तथा यद्येवं तदामावास्यायां सर्वेषामन्धकारे प्रसवो भवति। तस्मादयुक्त-मेतत्। तेन यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तत्र यदि राशिप्रारम्भे स्थितो

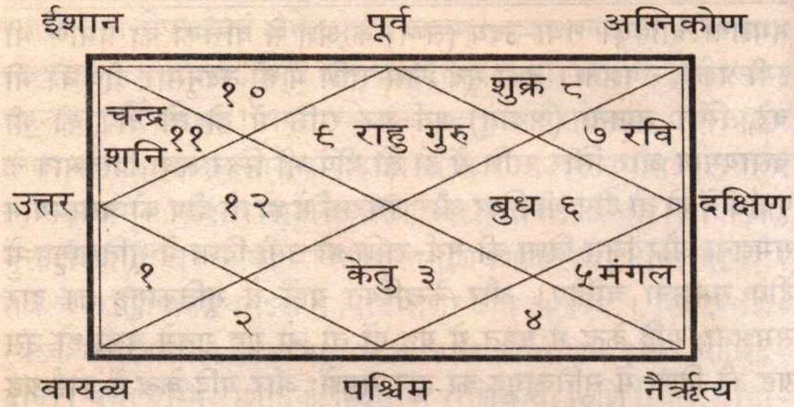
भवति तदा दीपभाजनं स्नेहेन पूर्णं वक्तव्यम्। यत्र राश्यवसाने स्थितस्तत्र स्नेहात्तम्। मध्यप्राप्तेऽर्धम्। अन्यत्रानुपातादिति। उदयाच्च वर्त्तिः उदयाल्लग्नाद्वर्त्तिरादेश्या। लग्नारम्भे तत्क्षणदत्ता वर्त्तिरादेश्या। मध्ये अर्द्धदग्धा वर्त्तिः। लग्नावसाने वर्त्तिदाहो वाच्यः। अन्तरेऽनुपातः। तथा च सारावल्याम्- 'यावल्लग्नादुदितं वर्तिर्दग्धा तु तावती भवति।' दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशादिति। अर्को रविस्तद्युक्तराशिवशाच्चराद्यो दीपो वाच्यः। तत्र चरराशिव्यवस्थितेऽर्के सञ्चार्यमाणो दीप आदेश्यः। स्थिरराशिस्थेऽर्के एकदेशस्थः। द्विस्वभावस्थेऽर्के चलितप्रतिष्ठित इति। केचिद्वदन्ति। यथा यस्मिन्राशावर्कः स्थितः स राशिर्यस्यां दिशि स्थितः प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्कर्कटेत्यादिना प्रदर्शितस्तस्यां दिशि दीप आदेश्यः। अन्ये एवं वदंति। यथा यस्यां दिशि अर्को भ्रमवशेनाष्टप्रहरकल्पनयाष्टा दिक्षु परिभ्रमति तेनैव क्रमेण यस्यां दिशि व्यवस्थितस्तस्यां दिशि गृहस्य दीपस्थानमिति। *तथा च सारावल्याम्*- 'द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ। दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले'। अत्र प्राच्यादिक्रमेण गृहं द्वादशधा विभज्य मेषादिगणनयाऽर्कराशिर्यत्र भवति तत्र दीपस्थानमिति। केचिल्लग्नस्य यादृशो वर्णस्तादृग्वर्णां दीपवर्तिमिच्छन्ति। तथा च मणित्थः- 'लग्नस्य योऽत्र वर्णो निर्दिष्टस्तेन वर्तिरादेश्या'। द्वारं च तद्वास्तुनीति। सूतिकागृहे लग्नात्केंद्रस्थैर्ग्रहैर्द्वारादेशः कार्यः। यस्य ग्रहस्य या दिक्प्राच्याद्या रविशुक्रलोहिततम इत्यादिनोक्ताः तद्दिगभिमुखं सूतिकागृहं वक्तव्यं बहुषु केंद्रेषु बलवद्ग्रहवशात्। शून्येषु केन्द्रेषु तल्लग्नराशिवशात् लग्नस्य या दिक्तदभिमुखम्। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्- 'द्वारं वास्तुनि केंद्रोपगताद्ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात्'। अन्ये वदन्ति। यथा— 'लग्नद्वादशभागराशिदिगभिमुखं सूतिकागृहद्वारम्'। तथा च मणित्थः— 'लग्ने यो द्विरसांशस्तदभिमुखं सूतिकागृहे द्वारम्'। एतच्च संवादेनापि दृष्टमिति। वीर्यसमन्वितादग्रहादगृहद्वारं वदेत्। *तथा च सारावल्याम्*— 'वासगृहोद्यानगतं द्वारं दिक्पालकादबलोपेतात्' इति॥ १८॥

भाषा— चन्द्रमा के अंशानुसार दीप में तेल का प्रमाण समझना चाहिए, अर्थात् चन्द्रमा राशि के प्रारम्भिक अंश में हो तो दीप में तेल भरा हुआ समझना। यदि चन्द्रमा राशि के अन्तिम अंश में हो तो तेल का भी अभाव समझना। बीच में जितने अंश हों उसी अनुपात से तेल का भी प्रमाण

समझना चाहिए। तथा उदय (लग्न) के अंश से वर्त्तिका का प्रमाण भी इसी प्रकार समझना। तथा सूर्य जिस राशि में हो तदनुसार दीप को भी चर, स्थिर जानना (अर्थात्) सूर्य चर राशि में हो तो दीप को भी चलायमान और स्थिर राशि में हो तो दीप भी स्थिर तथा द्विस्वभाव के पूर्वार्ध में हो तो दीप भी स्थिर और उत्तरार्ध में हो तो दीप को चलायमान समझना और जिस दिशा की सूर्य-राशि हो उसी दिशा में सूतिकागृह में दीप समझना चाहिए। और केन्द्रस्थित ग्रहों से सूतिकागृह का द्वार समझना; यदि केन्द्र में बहुत से ग्रह हों तो जो ग्रह सबसे बली हो उस ग्रह की दिशा में सूतिकागृह का द्वार समझें; और यदि केन्द्र में कोई ग्रह न हो तो लग्नराशि की दिशा में द्वार समझना चाहिए।।१८।।

विशेष अर्थ– जन्मलग्न कुण्डली में प्रथम लग्न पूर्व दिशा, दशम लग्न दक्षिण दिशा, सप्तम भाव पश्चिम दिशा और चतुर्थ लग्न को उत्तर दिशा समझना। जिस केन्द्र में ग्रह बली हो उस दिशा में सूतिकागृह का द्वार कहना। अनेकों केन्द्र में ग्रह बली हो तो अनेक दिशा में द्वार कहना। यदि केन्द्र में ग्रह न हो तो लग्न-राशि जिस दिशा की हो उस दिशा में प्रसूति के घर का द्वार कहना। बहुत से टीकाकारों का यह भी अभिप्राय है कि केन्द्र में जो ग्रह बली हो उस ग्रह की दिशा में सूतिकागृह का द्वार कहना चाहिए। यथा लघुजातक में 'द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद् ग्रहाद्वसति वा विलग्नर्क्षात्।' स्पष्टार्थ। द्वादश, लग्न और द्वितीय भाव (१२।१।२ ये) पूर्व में; ३,४,५, भाव उत्तर में; ६।७।८ भाव पश्चिम में; तथा ९,१०,११ भाव सर्वदा दक्षिण दिशा में रहते हैं। 'दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशात्' इसका अभिप्राय यह है कि लग्नादि द्वादश भाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में हो, उस दिशा में दीप समझना चाहिए। तथा– *प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्तयः'* इस वचन के अनुसार सूर्य की भावगति दिशा में जो राशि पड़े उस राशि के चर स्थिर आदि वश दीप को भी चर या स्थिर समझना चाहिए, न कि सूर्य जिस राशि में हो तदनुसार। क्योंकि सूर्य १ राशि में १ मास रहता है। उसके अनुसार तो संसार भर में एक मास तक दीप की स्थिति सर्वत्र एक ही होगी, जो प्रत्यक्षतः असम्भव है।

प्रसङ्गवश कुण्डली में विदिशा का विचार—लग्न कुण्डली देखने से मालूम पड़ता है कि दो-दो भाव दिशा में और एक-एक भाव विदिशा (कोण) में रहता है। जैसे द्वादशभाव का भोग्यांश (उत्तरार्ध), प्रथम भाव तथा द्वितीय भाव का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पूर्व दिशा में तथा द्वितीय भाव का उत्तरार्ध और तृतीय भाव का पूर्वार्ध (ये दोनों मिलकर १ भाव) ईशानकोण में एवं तृतीय भाव का उत्तरार्ध, चतुर्थ भाव सम्पूर्ण और पञ्चम भाव का पूर्वार्ध (ये मिलकर



२ भाव) उत्तर में। पंचम का उत्तरार्ध और षष्ठ का पूर्वार्ध (मिलकर १भाव) वायव्यकोण में। षष्ठम का उत्तरार्ध, सप्तम सम्पूर्ण और अष्टम का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पश्चिम में। अष्टम का उत्तरार्ध और नवम का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) नैर्ऋत्य में। नवम का उत्तरार्ध, दशम सम्पूर्ण और एकादश का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) दक्षिण में। एवं एकादश का उत्तरार्ध और द्वादश भाव का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) अग्निकोण में समझना चाहिए।। १८।।

इस प्रकार जन्मकाल में सूर्य जिस भाव में हो उस दिशा में दीपक समझना चाहिए।

यथा सारावली– *'द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ। दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले।।'*

जैसे– प्रथम तो इष्टकाल से दिन वा रात्रि का समय समझ कर दीप का विचार करना चाहिए। क्योंकि दिन में प्रायः दीपक नहीं जलाया जाता है। कदाचित् घर में अन्धकार रहता है तभी लोग दिन में दीपक जलाते हैं। यदि इष्टकाल नहीं मालूम हो तो कुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर लग्न हो तो दिन में; अन्यथा रात्रि में जन्म समझना चाहिये। यहाँ जन्मलग्नकुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर ही लग्न है, इसलिए दिन में ही जन्म हुआ। यदि दीपक का प्रश्न हो तो रवि एकादश भाव के पूर्वार्ध में हैं, इसलिए दक्षिण भाग में दीपक का स्थान सिद्ध होता है। तथा 'प्राच्यादिगृहे क्रियादयो' इत्यादि श्लोकानुसार एकादश भाव का पूर्वार्ध कुम्भ राशि है, वह स्थिर है; अतः दीप एक स्थान में स्थिर था। एवं चन्द्रमा = (१०।१३।२५।४३) कुम्भराशि के १४वाँ अंश में है; अतः आधा से कुछ कम तेल जल चुका था तथा लग्न (८।५।१०।१७) के केवल ५ हो तो अंश भुक्त हुए हैं; इसलिये दीपक में बत्ती का षष्ठांश मात्र जल चुका था, ऐसा समझना। तथा लग्न में बृहस्पति और दशम में बुध अपने-अपने राशिस्थ हैं। परञ्च बृहस्पति में 'दिक्षु बुधाङ्गिरसौ' इस वचन से दिक्बल भी

प्राप्त है। इसलिए इन दोनों में बृहस्पति बली है। अतः लग्न की दिशा पूर्व अथवा मतान्तर से बृहस्पति की दिशा (ईशान कोण=उत्तर) में प्रसूतिका गृह का द्वार सिद्ध होता है। मेरी समझ में जिस केन्द्र में बली ग्रह हो या अधिक ग्रह हों तो उसी दिशा में द्वार समझना; क्योंकि ग्रह तो कोण दिशा का भी अधिपति होता है। परञ्च कोण में द्वार बनाना व्यवहार नहीं है। एवं देश, काल और कुल के अनुसार दीप की स्थिति आदि भी समझना। क्योंकि जिस मकान में बिजली फिट की गई हो वहाँ तो दीप को स्थिर ही कहना चाहिए। इस प्रकार के विचार लग्न की शुद्धता के लिए ही किये जाते हैं॥ १८॥

अधुना सूतिकागृहस्वरूपज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते तन्नैकशिल्प्युद्भवम्।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत्॥१९॥

जीर्णं संस्कृतमिति। वीर्यसमन्वितादित्यमनुवर्तते। सर्वग्रहेभ्योऽर्कजे सौरे वीर्यवति सबले जीर्णमिति चिरन्तनं भूयः संस्कृतं सूतिकागृहं वक्तव्यम्। क्षितिसुते भौमे बलवत्यग्निना दग्धं शीतगौ चन्द्रे नवं शुक्लपक्षे उपलिप्तं वदेत्। यस्माद्यवनेश्वरः। 'संवर्धता चंद्रमसोपलिप्तम्' इति। काष्ठाढ्यं न दृढं रवाविति। रवावादित्ये काष्ठाढ्यं दारुबहुलं न दृढमसारं शशिसुते बुधे तद्गृहमनेकशिल्प्युद्भवं बहुविधशिल्पिरचितम्। रम्यं चित्रयुतमिति। भृगुजे शुक्रे रमणीयं मनोरमं च परं नवं नूतनं चित्रयुतं चित्रकर्मयुक्तम्। जीवे गुरौ दृढं चिरकालस्थायि। चक्रस्थैर्भचक्राधिरूढैर्गृहदातृग्रहसमीपस्थैरन्यैर्ग्रहैः सामंतपूर्वां समंतात्सर्वदिक्षु यथोपदिष्टां वदेद् ब्रूयात्। सामंतपूर्वां प्रतिवेश्मिकवेश्मनां समंतात्क्रमेणेत्यर्थः। यथा गृहदातृग्रहस्य पुरतः पश्चाद्वा पार्श्वयोर्वाऽन्ये ग्रहा व्यवस्थितास्तेनैव क्रमेण सूतिकागृहस्यान्यानि प्रतिवेश्मगृहाणि वाच्यानि। अन्ये सामन्तपूर्वामिति पठन्ति। समंताद्गृहपर्यन्तपूर्विकां रचनामिति। *यथा च सारावल्याम्—*
'भवनग्रहसंयोगैः प्रतिवेश्माश्विन्तनीयाश्च। देवालयांबुपावककोशविहाराद्यवस्करस्थानम्। निद्रागृहं च भास्करशशिकुजगुरुभार्गवार्किबुधयोगात्'। अत्राचार्येण भूमिकाप्रमाणं नोक्तं त्रिशालद्विशालज्ञानं च तदुच्यते। बृहस्पति कर्कटस्थे परमोच्चाद् भ्रष्टे लग्नाद्दशमगे द्विभूमिकमुच्चभागेष्वर्वाक्स्थिते त्रिभूमिकम्। उच्चभागस्थे चतुर्भूमिकं धनुषि सबले दशमस्थानस्थे गुरौ त्रिशालं तद्गृहम्। मिथुनकन्यामीनस्थे द्विशालम्। *उक्तं च स्वल्पजातके—*

'गुरुरुच्चे दशमस्थे द्वित्रिचतुर्भूमिकं करोति गृहम्।
धनुषि सबले त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु॥१६॥

भाषा– जन्मकाल में यदि सब ग्रहों की अपेक्षा शनैश्चर बलवान् हो तो संस्कार (मरम्मत) किया हुआ पुराना सूतिकागृह समझना चाहिए। मङ्गल बली हो तो जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नवीन, रवि बली हो तो बहुत कष्टों से युक्त होने पर भी कमजोर, बुध बली हो तो बहुत कारीगरों से बनाया हुआ, शुक्र बली हो तो सुन्दर चित्रों से सुसज्जित और नवीन तथा बृहस्पति बली हो तो बहुत दृढ़, सूतिका-घर कहना चाहिए। तथा जन्मलग्न कुण्डली में स्थित ग्रहों के अनुसार सूतिकागृह के चारों दिशाओं में आसपास के मकानों का स्वरूप कहना चाहिए॥ १६॥

विशेष अर्थ– अभिप्राय यह है कि जो ग्रह सबसे बली हो उस ग्रह के अनुसार उक्त प्रकार का सूतिकागृह का स्वरूप समझना। तथा उस गृह से जिस भाग में जो गृह हो उस भाग में उस गृह के सदृश उक्त रीति से अन्य भवनों का स्वरूप भी समझना चाहिए।

उदाहरण– जैसे उक्त कुण्डली में सबसे बली बृहस्पति है। अतः प्रसूतिक़ा घर खूब मजबूत है। तथा उसके बाएँ भाग (पिछवाड़े की ओर) शुक्र पड़ता है इसलिए उधर मनोहर चित्रों से युक्त नवीन भवन समझना। तथा बृहस्पति के बाएँ भाग में रवि, बुध और मङ्गल है अतः उधर एक मकान काष्ठों से युक्त किन्तु अदृढ़, दूसरा अनेक कारीगरों से बनाया हुआ तथा तीसरा कुछ जला हुआ मकान कहना। एवं गुरु से दाहिने भाग में चन्द्रमा और शनि है इसलिए सूतिकागृह के दाहिने भाग में १ नवीन और दूसरा मकान पुराना भी है, ऐसा कहना चाहिए।

विशेष ध्येय– अपने से सप्तम सम्मुख, दशम भाव वाम, चतुर्थ भाव दाहिने भाग में तथा साथ में रहने वाला ग्रह पृष्ठ भाग में समझा जाता है। इस प्रकार सबसे बली ग्रह से सूतिकागृह तथा उसके आगे-पीछे अन्य ग्रहों की स्थिति से अन्य गृहों का स्वरूप समझना चाहिए॥१६॥

अथ समस्तवास्तुनि क्व सूतिकागृहमिति तद्विज्ञानं दोधकेनाऽऽह–

मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु।
पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ॥२०॥

मेषेति॥ मेषः प्रसिद्धः कुलीरः कर्कटः तुला तुल एव अलिर्वृश्चिकः घटः कुम्भः एषामन्यतमे लग्ने वास्तुनि प्राग्भागे निवासः सूतिकास्थानं वक्तव्यम्। अंशे वा। उत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु गुरुगृहे धन्विमीनौ सौम्यगृहे मिथुनकन्ये एतेषु लग्नेषु तदंशकेषु चोत्तरतो वास्तुनि सूतिकागृहं वाच्यम्। वृषेण तदंशकेन च गृहपश्चिमभागे सूतिकागृहम्। मृगसिंहौ मकर-केसरिणौ दक्षिणभागकराविति। दक्षिणभागे सूतिकागृहं कुरुतः॥२०॥

भाषा— मेष, कर्क, तुला, वृश्चिक और कुम्भ लग्न हो तो घर के पूर्व भाग में सूतिका-निवास समझना चाहिए। धनु, मीन, कन्या या मिथुन लग्न हो तो उत्तर भाग में, वृष लग्न हो तो पश्चिम में और मकर या सिंह लग्न हो तो दक्षिण भाग में सूतिका का निवास समझना चाहिए।। २०।।

अथ सूतिकागृहे क्व शयनमिति तज्ज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह—

प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्तयः।
शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत्पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः ।।२१।।

प्राच्यादिगृह इति।। गृहे सूतिकावेश्मनि प्राच्यादि पूर्वाद्याः क्रियादयो मेषादयो राशयः द्वौ द्वौ चतसृषु दिक्षु, कोणगता विदिक्स्था द्विमूर्त्तयो द्विस्वभावाः। तद्यथा। मेषवृषयोर्लग्नयोर्गृहस्य प्राग्विभागे सूतिकाशयनं मिथुने आग्नेय्यां कर्कसिंहयोर्दक्षिणे कन्यायां नैर्ऋत्ये तुलावृश्चिकयोः पश्चिमे धनुषि वायव्ये मकरकुंभयोः उत्तरे मीने ऐशाने इति। एष एव विधिः शय्यास्वपि वक्तव्यः। अत उक्तं शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेदिति। किं त्वयं विशेषः। पादैः षट्त्रिनवांत्यसंस्थितैरिति। इह खट्वापादाः षट्त्रिनवांत्यराशयः लग्नात्षष्ठतृतीयनवमद्वादशराशयः पादाः परिकल्प्याः। तत्रैतज्ज्ञातं येन लग्नेन प्रसवस्तदुक्तदिशि शय्यायाः शिरस्तस्मादेव षट्त्रिनवांत्याः पादाः तत्र द्वादशतृतीयौ पूर्वपादौ। तत्रापि तृतीयो दक्षिणः पादो द्वादशो वामः। षष्ठनवमौ पश्चिमपादौ। तत्रापि षष्ठो दक्षिणो नवमो वामः। द्वितीयलग्नौ शीर्षभागः, चतुर्थपंचमौ दक्षिणमङ्गम्, सप्तमाष्टमौ पादांतभागः। दशमैकादशौ वामांगम्।' प्रयोजनम्— 'विनतत्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः' इति। यत्र द्विस्वभावराशयः स्थितास्तत्र विनतास्तत्र विनतत्वं यत्र पापास्तत्र तादृशो वोपघातः। एवं सदैवानुपपन्नखट्वांगप्रसंगः। यस्मादवश्यं क्वचिदपि यमलर्क्षेण पापग्रहैर्भवितव्यं तस्माद्यत्र यमलर्क्षं सौम्यग्रहस्वामियुतदृष्टं तत्र विनत्वम्। पापग्रहोऽपि स्वोच्चराशित्रिकोणमित्रक्षेत्रस्थः शुभफलकरो न भवतीति।। २१।।

भाषा— सूतिका-भवन में मेष और वृष पूर्व में रहता है, मिथुन ईशान कोण में, कर्क और सिंह उत्तर भाग में, कन्या वायव्य भाग में, तुला-वृश्चिक पश्चिम भाग में, धनु नैर्ऋत्यकोण में, मकर-कुम्भ दक्षिण में और मीन अग्निकोण में रहता है। अर्थात् इस प्रकार सूतिकागृह में राशियों के स्थान

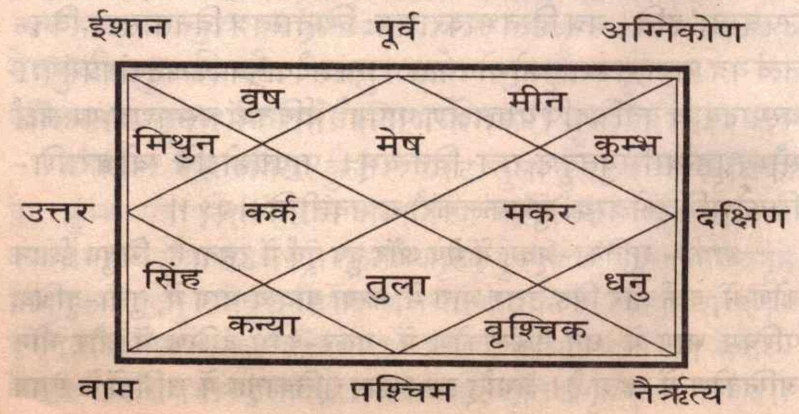
हैं। इसी प्रकार शय्या (सूतिका की खटिया) में भी लग्नादि द्वादश भाव के स्थान समझें; किन्तु वहाँ ६।३।६।१२ भाव खटिया के पाँवों में समझना चाहिए। अर्थात् खटिया के सिरहाने को पूर्वदिशा कल्पना करके लग्न और द्वितीय (१।२) भाव पूर्व (सिरहाने) में, ३ तृतीय भाव सिरहाने के बाएँ पावे में; ४।५ भाव उत्तर (बाएँ भाग) में, ६ षष्ठ भाव पिछले बाएँ पावे मे; ७, ८ भाव पश्चिम (पौथान) भाग में, ६ नवम भाव पौथाने के दाहिने पाव में; १०,११ भाव दक्षिण (दाहिने भाग) और १२ द्वादश भाव सिरहाने के दाहिने पाव में समझना चाहिए। इसका प्रयोजन शय्यादि के स्वरूप समझने में होता है। यथा आचार्य ने स्वयं लघुजातक में कहा है–

'षट्त्रिनवात्याः पदाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि ।
विनतत्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्यं उपघातः' ***॥इति॥***

भावार्थ यह है कि– लग्न से ६, ३, ६, १२ ये शय्या के पावे और १, २ आदि भाव सिरहाने आदि चारों भागों में रहते हैं। जिस स्थान में द्विस्वभाव राशि पड़ती है उस स्थान में नम्रता (झुकाव) और जिस स्थान की राशि पापग्रह से युक्त हो वहाँ शय्या के अंग में उपघात समझना चाहिए।।२१।।

विशेष अर्थ– यहाँ भट्टोत्पल ने वस्तुस्थिति से उल्टा ही अर्थ किया है कि– मेष, वृष पूर्व; मिथुन अग्निकोण; कर्क, सिंह दक्षिण और कन्या नैर्ऋत्य कोण, तुला, वृश्चिक पश्चिम, धनु वायुकोण, मकर, कुम्भ उत्तर और मीन ईशान कोण में। किन्तु इस प्रकार की कल्पना प्रत्यक्ष-विरुद्ध प्रतीत होती है। क्योंकि सृष्ट्यारम्भ से जो राशियों के स्थान थे, उसके अनुसार पूर्वकथित अर्थ ठीक ही है। तथा लग्नादि द्वादश भावों के स्थान भी पूर्वकथित अर्थानुसार ही रहते हैं। नीचे कुण्डली देखिये।

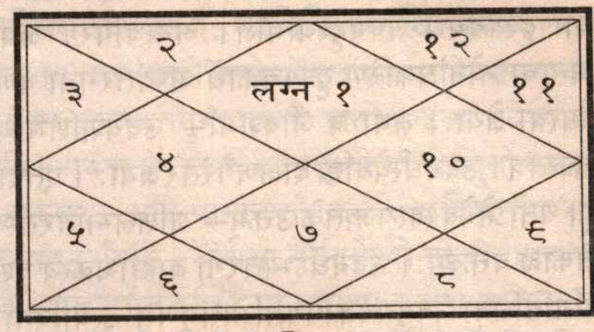
सृष्ट्यादि में राशि स्थिति



तात्कालिक भाव स्थिति

पाद पूर्व (शिर) पाद

उत्तर



दक्षिण

पाद पश्चिम पाद

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सृष्टिक्रम से मेष पूर्व, कर्क उत्तर, तुला पश्चिम और मकर दक्षिण दिशा में होता है। एवं लग्न पूर्व, चतुर्थ भाव उत्तर, सप्तम पश्चिम तथा दशम दक्षिण दिशा में पड़ता है। भट्टोत्पल के अर्थानुसार इसके विरुद्ध होता है। मेरा आग्रह यह नहीं है कि भट्टोत्पल का अर्थ असङ्गत ही है। मैंने तो अपना आशय प्रकट कर दिया है, क्योंकि यह आगम शास्त्र है जिस अर्थ के अनुसार फल घटित हो वही वास्तव मानना चाहिए। कहा भी है–

'ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ नयोग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये' ॥ *इति।२१।*

अधुनोपसूतिकासंख्यामनुष्टुभाह–

चन्द्रलग्नान्तरगतग्रहैः स्युरुपसूतिकाः।
बहिरन्तश्च चक्रार्धे दृश्यादृश्येऽन्यथापरे ॥२२॥

चंद्रलग्नेति। लग्नादारभ्य यत्र राशौ चंद्रमा व्यवस्थितस्तदंतरे तयोर्मध्ये यावंतो ग्रहा व्यवस्थितास्ते चंद्रलग्नांतरगता ग्रहास्तैरुपसूतिकाः स्युः। तावत्संख्या उपसूतिकाः समीपवर्तिन्यः स्त्रियः स्युर्भवेयुः। ताश्च ग्रहजातिवयोवर्णरूपाः। तथा च सारावल्याम्– 'शशिलग्नविवरयुक्ता ग्रहतुल्याः सूतिकाश्च विज्ञेयाः। अनुदितचक्रार्धयुतैरंतर्बहिरन्यथा वदंत्येके।। लक्षणरूपविभूषणयोगास्तासां शुभैर्योगात्। क्रूरैर्विरूपदेहा लक्षणहीनाश्च रौद्रमलिनाश्च।। मिश्रैर्मध्यमरूपा बलसहितैः सर्वमेतदवधार्यम्'। बहिरंतश्चेति। यत्र यावन्तो ग्रहा दृश्ये चक्रार्धे व्यवस्थितास्तावत्संख्या उपसूतिका गृहबाह्ये वक्तव्याः। यावन्तश्चादृश्ये चक्रार्धे

व्यवस्थितास्तावत्संख्या अभ्यंतरे वक्तव्याः। तत्र लग्नस्य यावंत उदिता भागास्तथा द्वादशैकादशदशमनवमाष्टमराशयस्तथा सप्तमराशेर्लग्नोदित-भागतुल्यांशा दृश्ययमर्धं शेषमदृश्यमिति। अन्यथापरे। अपरे अन्ये आचार्या अन्यथाऽन्येन प्रकारेण दृश्यचक्रार्धे अभ्यंतरगता वर्णयन्ति। अदृश्ये बाह्यस्था ज्ञेयाः। तथा च जीवशर्मा– 'उदयशशिमध्यस्थैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकास्तत्र। उदगर्धस्थैर्बाह्ये दक्षिणगैरंतरे ज्ञेयाः'। एतदाचार्यस्य नाभिमतम्। यतोऽनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्– 'शशिलग्नांतरसंस्था ग्रह-तुल्याः सूतिकाश्च वक्तव्याः। उदगर्धेऽभ्यंतरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्येऽर्धे'। अत्र चायुर्दायविधिना 'स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणम्' इत्यादिना द्वित्रि-गुणत्वं कृत्वा गृहस्थानवशादुपसूतिकानिश्चयः कार्यः। यदि बहुजन-प्रसूतियोगा न भवन्ति तथापि ग्रहसंख्याधिकसूतिकासंभवो यत्र भवति तत्र बहुजनप्रसूतियोगेन भवितव्यमिति।।

भाषा– लग्न से चन्द्रमा पर्यन्त जितने भी ग्रह हों उतनी उपसूतिका (सूतिका के समीप में रहनेवाली अन्य स्त्रियों) की संख्या समझनी चाहिए। दूसरा प्रकार कहते हैं कि– दृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी स्त्री सूतिकागृह के बाहर और अदृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी सूतिकागृह में अन्य स्त्रियों की संख्या समझे। अन्य आचार्य इसे अन्यथा कहते हैं अर्थात् जितने ग्रह दृश्य चक्रार्ध में हों उतनी घर में और जितने ग्रह अदृश्य चक्रार्ध में हों, उतनी उपसूतिका घर से बाहर समझे।। २२।।

विशेष अर्थ– यहाँ विशेषता यह है कि जो ग्रह अपने उच्च या मूल त्रिकोण में या वक्र हो उतनी संख्या को दो गुणा और जितने ग्रह स्वराशि, स्वनवांश, स्वद्रेष्काण में हो उतनी संख्या को दो गुणा करके उपसूतिका की संख्या बतावे। यथा आचार्य स्वयं आगे कहे हैं–'स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांशकमत्रिभागगैः।।' तथा उन-उन ग्रहों के वयस, रूप, स्वभाव, वर्ण आदि उपसूतिका के समझना। यथा–

'लक्षणरूपविभूषणयोगास्तासां शुभैर्योगात्।
क्रूरैर्विरूपदेहा लक्षणहीनाश्च रौद्रमलिनाश्च।।
मिश्रैर्मध्यमरूपाबलसहितैः सर्वमेतदवधार्यम्।।' *इत्यादि।*

तथा सप्तमभाव के भोग्यांश, ८, ९, १०, ११, १२ और लग्न-भुक्तांश, ये दृश्य तथा लग्नभोग्यांश २,३,४,५,६ भाव और सप्तम भाव 'भुक्तांश', ये अदृश्य चक्रार्ध हैं।। २२।।

अथ जातस्य स्वरूपादिज्ञानं दोधकेनाऽऽह—

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।
चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ॥२३॥

लग्नेति॥ जन्मकाले लग्ने यो नवांशक उदितस्तस्य यः स्वामी स लग्ननवांशपः तत्तुल्यतनुस्तदाकरो जातो वक्तव्यः। यथा मधुपिङ्गल-दृगित्यादि। अथवा जातकार्थे सर्वग्रहेभ्यो यो वीर्ययुतो बलवांस्तत्तुल्य-तनुर्वा वक्तव्यः। यदि लग्ननवांशकस्थो राशिर्बलवान्भवति तदा तदीशतुल्यतनुर्भवति। अन्यथा सर्वग्रहेभ्यो यो वीर्यवान्ग्रहस्तत्तुल्य-तनुरिति। चन्द्रसमेत इति। यो नवांशः चन्द्रेण शशिना समेतश्चन्द्रो यस्मिन्नवांशके स्थित इत्यर्थः। तस्य नवांशराशेर्योऽधिपतिः स चन्द्र-समेतनवांशपतिस्तस्य यो वर्णस्तद्वर्णो जातो भवति। अत्र च वर्णो 'रक्तः श्यामो भास्करो गौर' इति। अन्ये चन्द्राक्रान्तराशिवर्णमेवाहुः। यथा 'रक्तः श्वेतः शुकतनुनिभः' इत्यादि। अत्र शुकवर्णस्यासंभवाद-युक्तमेतत्। एतच्च वर्णादि जातिकुलदेशान्बुद्ध्वा वक्तव्यम्। उक्तं च— 'बलिनः सदृशी मूर्तिर्बुध्वा वा जातिकुलदेशान्' इति। कादिविलग्न-विभक्तभगात्र इति। आधानविधिना शीर्षादीनामवयवानां ह्रस्वदीर्घत्वं निरूपयति। कादिभिविलग्नभैर्लग्नराशिभिः विभक्तानि गात्राणि यस्य सः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः तत्र लग्नादयो राशयः कादिषु शिरःप्रभृतिगात्रेषु परिकल्प्याः। यथा कालाङ्गानि। तत्र लग्नं शिरो, द्वितीयो राशिर्वक्त्रं, तृतीय उरः, चतुर्थो हृत्, पञ्चमः क्रोडः, षष्ठः कटिः सप्तमोवस्तिः, अष्टमः शिश्नगुदे, नवमो वृषणौ, दशम ऊरू, एकादशो जानुनी, द्वादशो जंघापादौ। अत्र च राशीनां प्रमाणमुक्तं पूर्वार्द्धे विषयादय इति। तत्र यत्राङ्गस्थे दीर्घराशौ दीर्घराश्यधिपो ग्रहो व्यवस्थितो भवति तदङ्गं तस्य दीर्घं वक्तव्यम्। तथा च सत्यः—

'दीर्घाधिपतिर्दीर्घे ग्रहः स्थितोऽवयवदीर्घकृद्भवति'। अथदिवाल्प-प्रमाणराशावल्पराश्यधिपो ग्रहो व्यवस्थितस्तदङ्गाल्पकृद्भवति। 'दीर्घ-राश्यधिपोऽल्पराशिव्यवस्थितः स मध्यमकृत् अल्पराश्यधिपो दीर्घराशौ व्यवस्थितोऽङ्गमध्यमकृत्। यत्राङ्गराशौ बहवो व्यवस्थितास्तत्र बलवद्ग्रह-वशाद्वाच्यम्। यत्र न कश्चिद्व्यवस्थितः तत्र राशिप्रमाणत एवाङ्गं वाच्यम्।२३

भाषा— लग्न जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह के समान जातक का (ह्रस्व, मध्य या दीर्घ) आकार समझना चाहिए। अथवा नवांशपति

निर्बल हो तो जो ग्रह सबसे बली हो उसी के समान आकार समझना चाहिए। तथा चन्द्रमा जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह के समान (गौर, कृष्ण आदि) वर्ण कहना चाहिए। तथा आगे कहे हुए श्लोकानुसार मस्तकादि अङ्गों में लग्नादिराशियों द्वारा विभक्त अवयव जातक का समझकर फल कहना चाहिए।

विशेष अर्थ— यहाँ वर्ण, आकृति आदि का ज्ञान देश, कुल, जाति के अनुसार तारतम्य से समझकर बताना चाहिए। जैसे चन्द्रमा यदि शनि के नवमांश में हो तो शनि के समान जातक भी कृष्णवर्ण होना चाहिए। किन्तु यदि किसी यूरोपीय या भारतीय भी काश्मीर देश के ब्राह्मण या क्षत्रिय हों तो उसे कृष्ण (काला) वर्ण ही कहना चाहिए। यथा— आचार्य ने स्वयं भी लघुजातक में कहा है कि— *'बुद्ध्वा वा जातिकुलदेशान्।' इति॥२३॥*

अत्रैव सूतिकाध्याये जातस्य व्रणमशकादिनिरूपणार्थमङ्गप्रकरण-मारभ्यते। तत्र लग्नप्रथमद्वितीयतृतीयद्रेष्काणवशेन प्रथमद्वितीय-तृतीयशरीरभागपरिच्छेदः। तत्र शिरःप्रभृति यावद्वक्त्रं प्रथमोऽङ्ग-विभागः। शिरोऽधस्ताद्यावन्नाभिस्तावद्द्वितीयः। तदधस्तात्तृतीयः। तेषामङ्गविभागानां राशिविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

कन्दृक्छ्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादय-
स्ते कण्ठांसकबाहुपार्श्वहृदयक्रोडानि नाभिस्ततः।
वस्तिः शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरु ततो जानुनी
जङ्घाङ्घ्रीत्युभयत्र वाममुदितैर्द्रेष्काणभागैस्त्रिधा ॥२४॥

कंदृगिति॥ त्रिभिः प्रकारैस्त्रिधा त्रिभिर्द्रेष्काणभागैस्त्रिधा शरीर-प्रविभागः। तत्र लग्नस्य प्रथमद्रेष्काणे उदयति प्रथमो मूर्धाद्यङ्ग-विभागः। द्वितीयद्रेष्काणे उदयति कण्ठपूर्वको द्वितीयोऽङ्गविभागः। तृतीये द्रेष्काणे उदयति बस्तिपूर्वकस्तृतीयः— तत्राप्यङ्गविभागे वाम-दक्षिणवर्त्यवयवज्ञानं कथमित्याह— वाममुदितैरिति। राशिभिरुदितैः दृश्यभागावस्थितैर्वामोऽङ्गविभागः। लग्नस्योदितभागाः। तथा द्वादशै-कादशदशमनवमाष्टमाः। तथा सप्तमस्य राशेर्लग्नस्योदिततुल्यभागाः। एष भाग उदितः शेषोऽनुदितः अर्थादनुदितैरदृश्यैर्दक्षिण इति। तत्र लग्नानुदितभागास्तथा द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठाः। सप्तमराशे-र्लग्नोदिततुल्यभागः। एवं स्थिते लग्नप्रथमद्रेष्काणोदयो लग्नराशिः कंशिरः कल्पनीयम्। लग्नाद्द्वितीयद्वादशौ दृक्चक्षुषी। तत्र द्वितीयो

दक्षिणमक्षि, द्वादशो वामम्। तृतीयेकादशौ श्रोत्रे। तत्र तृतीयो दक्षिणं, एकादशो वामम्। चतुर्थदशमौ नासापुटे। चतुर्थो दक्षिणं, दशमो वामम्। पञ्चमनवमौ कपोलौ। पञ्चमो दक्षिणः, नवमो वामः। षष्ठाष्टमौ हनू षष्ठो दक्षिणं, अष्टमो वामम्। सप्तमो वक्त्रं मुखम्। एवं राश्याद्युपलक्षितः प्रथमोऽङ्गविभागः। ते कण्ठांशक इति। अथ द्वितीयद्रेष्काणोदयः कण्ठाद्ये द्वितीयेऽङ्गविभागे परिकल्प्यः। तद्यथा। लग्नं कण्ठो गलकः। द्वितीयद्वादशौ स्कन्धौ। तत्र द्वितीयो दक्षिणस्कन्धः द्वादशो वामः। तृतीयैकादशौ बाहू। तत्र तृतीयो दक्षिणः एकादशो वामः। चतुर्थदशमौ पार्श्वे। तत्र चतुर्थो दक्षिणं, दशमो वामम्। पञ्चमनवमौ हृद्भागौ। तत्र पञ्चमो दक्षिणः, नवमो वामः। षष्ठाष्टमौ क्रोड उदरभागौ। षष्ठो दक्षिणः, अष्टमो वामः। सप्तमो नाभिरिति। नाभिग्रहणमुदरोपलक्षणार्थम्। एवं द्वितीयोऽङ्ग-विभागः। वस्तिः शिश्नगुदे इति। लग्नद्रेष्काणे तृतीये उदयति त एव होरादयस्तृतीयेऽङ्गविभागे परिकल्प्याः। तद्यथा। लग्नं वस्तिः नाभि-लिङ्गयोर्मध्यभागः। द्वितीयो दक्षिणभागः, द्वादशो वामः। ततोऽनन्तरं तृतीयैकादशौ वृषणौ। तृतीयो दक्षिणः, एकादशो वामः। चतुर्थदशमौ ऊरू। चतुर्थो दक्षिणः, दशमो वामः। पञ्चमनवमौ जानुनी। पञ्चमो दक्षिणं, नवमो वामम्। षष्ठाष्टमौ जङ्घे। षष्ठो दक्षिणजङ्घा, अष्टमो वामजङ्घा। सप्तमः पादद्वयमिति।।२४।।

भाषा—लग्नगत द्रेष्काण से लग्नादि द्वादश भावों से मस्तकादि अङ्ग-विभाग तीन प्रकार के होते हैं। उनमें उदित (क्षितिजोर्ध्वगत=सप्तम भाव या भोग्यांश ८।९।१०।११।१२ और लग्न का भुक्तांश इन) भावों से वाम अङ्ग तथा अनुदित (क्षितिजोर्धस्थित—लग्न भोग्यांश २।३।४।५।६ और सप्तम भाव का भुक्तांश इन) इन भावों से दक्षिण अङ्ग समझना।।२४।।

जैसे लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न १ मस्तक, और २, १२, नेत्र ३, ११ कान, ४, १० नाक, ५, ९ गाल, ६, ८ हनु, (दोनों गालों के नीचे का भाग ठुड्डी) और सप्तम भाव सुख। एवं लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २, १२ कन्धा, ३, ११ बाहु, ४, १० बगल, (पार्श्व), ५, ९ दोनों तरफ के हृदय भाग, ६, ८ दोनों तरफ के पेट भाग और सप्तम भाव नाभि होता है। यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न वस्ति (नाभि और लिङ्ग का मध्य भाग, पेडू), २,१२ लिङ्ग, गुदा, ३, ११ दोनों अण्डकोष, ४, १० ऊरु, ५, ९ जानु, ६,८ घुटना और सप्तम भाव पैर समझना चाहिए।

स्पष्टार्थ—नराकार चक्र में लग्नादि राशियों का विन्यास करके समझिए।२४।

अथाङ्गज्ञानप्रयोजनं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

तस्मिन्पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत्
स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः।
मन्देश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः
सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ श्रृङ्ग्यब्जजोऽन्यैः शुभम् ॥२५॥

तस्मिन्पापयुत इति।। तत्र प्रथमद्रेष्काणे जातस्य शिरोंऽगविभागो द्वितीयद्रेष्काणे जातस्य कण्ठाद्यंगविभागः। तृतीयद्रेष्काणे जातस्य वस्त्याद्यंगविभागः। यत्र पापग्रहो व्यवस्थितस्तस्मिन्पापयुते व्रणो वाच्यः। तस्मिन्नेव पापयुतेंऽगराशौ शुभयुते दृष्टे सौम्यग्रहसंयुक्तेऽवलोकिते वा तद्राश्युपलक्षितेऽङ्गे लक्ष्मादिशेत् मशकादिचिह्नं वाच्यम्। स्वर्क्षांश इति। स एव ग्रहो व्रणमशकादिकर्ता स्वर्क्षे स्वराशौ स्वनवांशके वा स्थितो भवति, स्थिरराशौ स्थिरांशके वा स्थितस्तदा व्रणमशकादि सहजोत्पन्नं तस्य जन्तोर्भवति। अन्यथोक्तविपर्ययस्थे आगन्तुको जातस्योत्तरकाले केनचिन्निमित्तेन वक्ष्यमाणेन स्वदशाकाले एव वक्तव्यः। आगन्तुकस्य व्रणादेर्ग्रहवशेन निमित्तमाह— मन्देऽश्मानिलज इति। मन्दे शनैश्चरे व्रण-कर्तृत्वं प्राप्तेः स व्रणादिरश्मजः पाषाणहेतुकोऽनिलजो वातव्याधिहेतुको वा वक्तव्यः। भौमे व्रणकर्तृत्वे प्राप्तेऽग्निहेतुकः शस्त्रहेतुको विषहेतुको वा वक्तव्यः। बुधे भूभवः भूस्थितपातादुच्छ्रितपाताद्भूम्यधिपातहेतुको लोष्टप्रहारहेतुको वा। सूर्ये रवौ काष्ठप्रहारहेतुकश्चतुष्पदप्राणिहेतुको वा वक्तव्यः। हिमगौ चन्द्रे श्रृंग्यब्जजः सृङ्ग्यभिघातहेतुकः श्रृङ्गे विद्येते यस्य प्राणिनः स श्रृङ्गी, तज्जातोऽब्जजो वा जलप्राणिहेतुको वा वक्तव्यः। अन्यैः शुभम्। अन्ये ग्रहा यत्राङ्गदेशस्था भवंति तत्र शुभव्रणादिकरा भवन्ति। तत्रावशेषौ गुरुसितौ तत्कि बहुवचनम्। उच्यते। बुधः पाप-युक्तो व्रणकरः क्षीणश्चन्द्रमा नान्यथा। ततोऽन्यैः शुभमित्युक्तम्।। २५।।

भाषा— पूर्वरीति से विभक्त अङ्गविभागस्थ राशियों में— जिसमें केवल पापग्रह (पाप से युत बुध, क्षीणचन्द्र, रवि, मंगल वा शनि) हो उस अङ्ग में व्रण (घाव) कहना चाहिए। यदि वह पापग्रह शुभ से युक्त या दृष्ट हो तो उस अङ्ग में मशक, तिल आदि चिह्नमात्र कहना चाहिए। यदि वह पापग्रह अपनी राशि नवांश या स्थिर राशि नवांश में हों तो जन्म के साथ ही उस स्थान में व्रण या चिह्न कहना चाहिए। यदि अन्य राशि नवांश में हो तो उस ग्रह की दशा अन्तर्दशा काल में वर्ण आदि भावी कहना। जिस

अंग में शनैश्चर हो वहाँ पत्थर की चोट से अथवा वात रोग से व्रण कहना चाहिए। जिसमें मंगल हो वहाँ अग्नि, शस्त्र या विष से, जहाँ पापयुत बुध हो वहाँ पृथ्वी पर गिरने आदि से, जहाँ सूर्य हो वहाँ लकड़ी या पशुओं के आघात से और जहाँ क्षीण चन्द्रमा हो वहाँ सींगवाले जन्तु या जलचर जन्तु के आघात से व्रण कहना चाहिए। और अन्य अर्थात् शुभग्रह जहाँ हो उस अंग में शुभफल (पुष्ट वा मनोहरता आदि) कहना चाहिए।।२५।।

विशेष अर्थ– यहाँ केवल पापग्रह ही व्रणकारक कहा गया है। अतः बुध के स्थान में पापयुत बुध, चन्द्रमा के स्थान में क्षीण चन्द्रमा ही समझना चाहिए।।२५।।

अथ व्रणज्ञानं हरिण्याऽऽह—

समनुपतिता यस्मिन्भागे त्रयः सबुधा ग्रहा
भवति नियमात्तस्यावाप्तिः शुभेष्वशुभेषु वा।
व्रणकृदशुभः षष्ठे देहे तनोर्भसमाश्रिते
तिलकमशकृद्दृष्टः सौम्यैर्युतश्च स लक्ष्मवान्।।२६।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
जन्मविधिर्नामाध्यायः पञ्चमः ।। ५ ।।

समनुपतिता इति। यस्मिन् भागे वामे दक्षिणे वा त्रयः सबुधा ग्रहाः त्रयोऽन्ये ग्रहाश्चतुर्थेन बुधेन सहिताः समनुपतिताः समाश्रितास्तत्रांगे पूर्वप्रक्रान्तस्य व्रणादेर्नियमान्निश्चयादवश्यं प्राप्तिर्भवति। शुभेष्वशुभेषु वा। ते ग्रहाः सबुधाः शुभाः सौम्याः अशुभा पापा वा भवंति। तथापि तत्रांगे तस्य व्रणावाप्तिर्वक्तव्या। तेषां मध्ये यो बलीं स स्वदशायां करोति। व्रणकृदिति। लग्नात् षष्ठे स्थाने अशुभः पापो ग्रहो व्यवस्थितो देहे शरीरे व्रणकृद्भवति। कस्मिन्स्थाने। तनोभसमाश्रिते तनोर्लग्नात्स षष्ठस्थो राशिः कालांगानीत्यनेन दर्शितांगविभागे यस्मिन्भवति तस्मिन्भसमाश्रिते राशियुक्ते देहे शरीरे भवति। अत्रापि 'स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः' इत्यनुवर्तनीयम्। स एव षष्ठस्थानस्थः पापः सौम्येन शुभग्रहेण यदा दृष्टो भवति तदा तत्रांगे तिलकमशकृद्भवति। तिलकः कृष्णो बिन्दुः, मशकोऽर्बुदः। अथ शुभग्रहेण स एव पापो युतस्तदास लक्ष्मवान्भवति राश्युपलक्षितमंगं सचिह्नं भवति। अत्र स्थाने धनो लोमनिचयो लक्ष्मेति।।२६।।

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ जन्मविधिर्नामाऽध्यायः पञ्चमः ।। ५ ।।

भाषा- बुध के सहित और तीन ग्रह जिस अंग-विभाग में पड़ें वे पापग्रह वा शुभग्रह हों तो उस अंग में व्रण या चिह्न अवश्य होता है। और लग्न से षष्ठभाव में पापग्रह हो तो *'कालाङ्गानीत्यादि'* क्रम से वह राशि जिस अङ्ग में हो उस अंग में भी व्रण होता ही है। वह षष्ठस्थ पापग्रह यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो उस अङ्ग में तिल वा मसक (मांसवृद्धि) तथा शुभग्रह से युक्त हो तो केवल चिह्न कहना चाहिए॥ २६॥

अथाऽरिष्टाध्यायः॥ ६॥

अथारिष्टाध्यायौ व्याख्यायते। तत्र तावज्जातस्यारिष्टसम्भवे सत्यायुर्दायाष्टकवर्गादिशः कर्तव्यः। तस्मात्प्रथममरिष्टाध्यायं वक्ष्यति। तत्रारिष्टद्वयंविद्युन्मालया (१) ऽऽह-

सन्ध्यायां हिमदीधितिहोरा पापैर्भान्तगतैर्निधनाय।
प्रत्येकं शशिपापसमेतैः केन्द्रैर्वा स विनाशमुपैति॥ १॥

संध्यायामिति॥ संध्यालक्षणं संहितायामुक्तम्। 'अर्धास्तसमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजःपरिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयो यावत्' अस्मिन्सन्ध्याकाल इति। तत्र जन्मनि यस्य सन्ध्याकालो भवति तत्काललग्नगता हिमदीधितेश्चंद्रस्य होरा भवति यथासम्भवं पापैर्भान्तगतैः यत्र तत्र राशिस्थांत्यनवांशगताः पापा भवन्ति तदैष योगो जातस्य निधनाय भवति। प्रत्येकमिति। एकमेकमिति प्रत्येकं, शशी चन्द्रः पापास्त्रयश्चतुर्षु केंद्रेषु व्यवस्थिता भवन्ति। एतदुक्तं भवति। आदित्यचंद्रांगारकशनैश्चर्यथासम्भवं चत्वांर्यपि केंद्राण्याक्रांतानि भवन्ति तथापि यस्य जन्म भवति स विनाशमुपैति, म्रियत इत्यर्थः॥१॥

भाषा- सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा हो, और पापग्रह सब राशि के अंतिम नवांश में हो तो जातक के मरणकारक होते हैं। अथवा चारों केन्द्र में चन्द्रमा और पापग्रह हो तो भी वह जातक मर जाता है॥१॥

---

(१) नेदं वृत्तं विद्युन्मालाख्यम्। यतस्तल्लक्षणं कविकुलतिलकेन श्रीमत्कालिदासेन श्रुतबोधनाम्नि ग्रन्थे सुरक्षितम्-

'सर्वे वर्णाः दीर्घा यस्यां विश्रामः स्याद् वेदैर्वेदैः।
विद्वद्वृन्दैर्वीणावाणि! याख्याता सा विद्युन्माला'

एतेन महद्वैषम्यम्। मन्मतेन तु 'उपचित्रा' भवतीति छन्दोविद्भिरनुसन्धेयम्। तदुदाहरणमपि पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे-

'यच्चित्तं गुरुसक्तमुदारं विद्याभ्यासमहाव्यसनञ्च।
पृथ्वी तेभ्य गुणौरुपचित्रा चन्द्रमरीचिनिभर्भवतीयम्' इति।

अथान्यानरिष्टयोगानिन्द्रवज्रयाऽऽह—

चक्रस्य पूर्वापरभागगेषु क्रूरे सौम्येषु च कीटलग्ने।
क्षिप्रं विनाशं समुपैति जातः पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्च ॥२॥

चक्रस्येति।। यावन्तो भागा लग्नस्योदितास्तावन्त एव भागा लग्नचतुर्थराशेः परित्यज्य शेषभागमारभ्य पञ्चमषष्ठसप्ताष्टमनवमराशयो दशमराशिलग्नोदितभागतुल्यांशाश्चक्रपरार्द्धम्। शेषं पूर्वार्द्धम्। तत्र चक्रस्य पूर्वभागे क्रूराः पापाः, इतरभागे पश्चिमे सौम्याः शुभग्रहाः। कीटलग्ने वृश्चिकराशावुदये कर्कटे चोदयस्थिते जातः शिशुः क्षिप्रमवश्यमेव विनाशमुपैति मरणं प्राप्नोतीत्यर्थः। नन्वत्र पूर्वं वृश्चिकः कीटसंज्ञः उक्तः पुनरपि 'द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये' इत्यत्र कर्कटवृश्चिकमकरमीनानां कीटत्वमभ्युपगतम्। तदत्र वृश्चिककर्कटावेव कथं व्याख्याताविति त्यत्रोच्यते। मकरमीनयोर्जलत्वादपि सपक्षत्वात्कीटसंज्ञा नाभ्युपगम्यते। यस्माद्बादरायणः– 'पूर्वापरभागगतैः शुभाशुभैरलिनि कर्कटे लग्ने। जातस्य शिशोर्मरणं सद्यः कथयन्ति यवनेन्द्राः'।। पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्चेति। पापैः क्रूरग्रहैः विलग्नाभितः अस्तमयाभितश्च स्थितश्च सद्यो जातः क्षिप्रं शीघ्रमेव विनाशं समुपैति। अत्र केचिदेवं योगद्वयं व्याचक्षते। अभित उभतः लग्नात्पापैरुभयत इत्येको योगः। अस्तमयाच्चाभित इति द्वितीयः। तत्र लग्नद्वादशद्वितीयस्थयोः पापयोर्जातो म्रियते। तथा लग्नषष्ठाष्टमयोश्च पापयोर्जातो म्रियते। तथा लग्नसप्तमाच्च ये द्वादशद्वितीये तत्स्थयोश्च पापयोर्जातो म्रियते। अन्ये पुनरभिशब्द आभिमुख्ये वर्तत इत्यनुवर्णयन्ति। तत्र लग्नाद्यो द्वितीयराशौ ग्रहः स्थितः स उदयमभिलषति लग्नस्याभिमुखो भवति। यश्च लग्नादष्टमराशौ भवति सोऽस्तमयमभिलषतीत्यर्थः सप्तमराशिरभिमुखो भवति। तेनैतज्ञातम्। लग्नद्वितीयाष्टमगतैः सर्वैः पापैर्जातो म्रियते। वयं पुनरभिशब्द आभिमुख्यव्यावृत्ति ब्रूमः। 'पापेषु लग्नाभिमुखेषु सर्वेष्वेवाप्तवीर्येषु शुभर्क्षगेऽपि' किन्तु यो लग्नाद्द्वादशस्थाने स्थितः स उदयमभिलषति लग्नाभिमुखो भवति। यश्च षष्ठे स्थितः सोऽस्ताभिमुखो भवति, यस्माद्ग्रहाणां प्राङ्मुखी गतिः। उक्तं च– 'प्राग्गतयस्तुल्यजवाग्रहाश्च सर्वे स्वमण्डलगाः' इति। तत्र पूर्वाभिमुखं व्रजतो गच्छतो लग्नाद्द्वितीयस्थस्य न तदाभिमुख्यम्। तेनैतज्जातं लग्नाद्द्वादशषष्ठाश्रितैः

पापैर्यस्य जन्म स म्रियत इति। भगवता गार्ग्येण सर्वाण्येव व्याख्याता-न्याभिमुख्यानीति। तथा च तद्वाक्यम्- 'रिपुव्ययगतैः पापैर्यदि वा धनमृत्युगैः। लग्ने वा पापमध्यस्थे द्यूने वा मृत्युमाप्नुयात्' इति।।२।।

भाषा– चक्र के पूर्वार्ध में (दशम भाव राश्यादि से आगे चतुर्थ भाव राश्यादि पर्यन्त अर्थात् पूर्व कपाल में) पापग्रह हों, और चक्र के परार्ध (पश्चिम कपाल=चतुर्थ भाव से आगे दशमभाव पर्यन्त) शुभ ग्रह हों तो जातक शीघ्र मर जाता है। तथा लग्न से द्वितीय, द्वादश और सप्तम से द्वितीय द्वादश में पापग्रह हो तो भी जातक का मरण शीघ्र होता है।।२।।

विशेष अर्थ– भगवान् गर्ग का वचन– 'रिपुव्ययगतैः पापैर्यदि वा धनमृत्युगैः। लग्ने वा पापमध्यस्थे द्यूने वा मृत्युमाप्नुयात्'।। २।।

अथ योगान्तरमनुष्टुभाह–

पापावुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी।
दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युश्च भवेदचिरात् ।। ३।।

पापाविति। एकः पाप उदये लग्ने स्थितोऽन्योऽस्ते सप्तमे गतः, शशी चन्द्रमाः यत्र तत्रस्थः क्रूरेण पापेन युतो भवति स च सौम्यैः शुभग्रहैर्यदि न दृष्टस्तदा जातस्य मृत्युरचिराच्छीघ्रमेव भवेत्।। ३।।

भाषा– लग्न और सप्तम में पापग्रह हो, और चन्द्र भी पापग्रह से युक्त हो तथा शुभग्रह से दृष्ट न हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है।। ३।।

अथ योगान्तरमनुष्टुभाह–

क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत्क्षिप्रं निधनं प्रवदेत्।।४।।

क्षीणे हिमगाविति। हिमगौ चन्द्रे लग्नाद्व्ययगे द्वादशस्थे तथा पापैः क्रूरग्रहैरुदयाष्टमगैः लग्नस्थैरष्टमगतैश्च केन्द्रेषु कण्टकेषु चेद्यदि शुभा न भवन्ति तदा जातस्य क्षिप्रमाश्वेव निधनं मरणं प्रवदेद्ब्रूयात्। अत्र केचित्पापैरुदयाष्टमगैरिति नेच्छन्ति। तदयुक्तम्। यस्माद्भग-वान्गार्गिः– *'क्षीणे चन्द्रे व्ययगते पापैरष्टमलग्नगैः। केन्द्रवाह्यगतैः सौम्यैर्जातस्य निधनं वदेत्'* ।। ४।।

भाषा– यदि कलाहीन चन्द्रमा द्वादशभाव में हो और लग्न तथा अष्टम में पापग्रह हो और किसी केन्द्र में शुभ ग्रह नहीं हो तो शीघ्र मरण कहना चाहिए।।४।।

अथारिष्टान्तरमनुष्टुभाह–

क्रूरेण (१) सँय्युतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः।
कण्टकाद्बहिः शुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः ।।५।।

क्रूरेणेति। शशी चन्द्रः क्रूरेण पापग्रहेण संयुतस्तथाभूतः स्मरांत्यमृत्युलग्नगः सप्तमद्वादशाष्टमलग्नानामन्यतमस्थस्तथा शुभैः शुभग्रहैः कंटकबाह्यस्थैः केन्द्रवर्जमन्यस्थानस्थैः अवीक्षितः न दृष्टौ यदि भवति तदा जातस्य मृत्युदो मरणदो भवति। अर्थादिव सौम्यैः केन्द्रस्थैस्तदारिष्टाभावः। तथा च सारावल्याम्– 'व्ययाष्टसप्तोदयगे शशांके पापैः समेते शुभदृष्टिहीने। केन्द्रेषु सौम्यग्रहवर्जितेषु जातस्य सद्यः कुरुते प्रणाशम्'।।५।।

भाषा– पापग्रह से युक्त चन्द्रमा यदि ७, १२, ८, १ इन भावों में हो और केन्द्र से भिन्न स्थान में शुभग्रह हो और उन शुभग्रहों से दृष्ट न हो तो मृत्युप्रद होता है।।५।।

अथारिष्टातंराणि पृथ्व्याऽऽह–

शशिन्यरिविनाशगे निधनमाशु पापेक्षिते
शुभैरथ समाष्टकं दलमतश्च मिश्रैः स्थितिः।
असद्भिरवलोकिते बलिभिरत्र मासं शुभे
कलत्रसहिते च पापविजिते विलग्नाधिपे ।। ६ ।।

शशिनीति।। शशिनि चन्द्रे अरिविनाशगे लग्नात्षष्ठस्थानस्थेऽष्टमस्थे वा तत्र च पापानां क्रूराणामन्यतमेनेक्षिते दृष्टे सौम्यग्रहेणादृष्टे जातस्य निधनं मरणमाशु क्षिप्रमेव भवति। शुभैरिति। अत्र लग्नात्षष्ठाष्टमगे चन्द्रे सौम्यैर्ग्रहैर्दृष्टे पापेनादृश्यमाने जातस्य समाष्टकं वर्षाष्टकं स्थितिः, जीवितं वक्तव्यम्। ततोऽनन्तरं मरणमेति। समाशब्दो वर्षपर्यायः। दलमत इति। लग्नात्षष्ठाष्टमगे चन्द्रे मिश्रैः पापैः सौम्यैश्च दृष्टे अतोऽस्मात्समष्टिकाद्विषष्टिकाद्दलमर्द्धं वर्षचतुष्टयं स्थितिर्भवेत्ततो मरणमिति। अर्थादिव षष्ठाष्टमस्थैः चन्द्रमसि न केन-

(१) बहुषु पुस्तकेष्वेवमेव पाठो दृश्यते, किन्तु वृत्तेऽस्मिन्ननुष्टुब्लक्षणं नास्ति, उत्तरार्धे पञ्चदशवर्णत्वात्। तथा द्वितीयचतुर्थचरणावनुष्टुब्-भेद–नग–स्वरूपिणीवृत्तलक्षणोपेतौ प्रथमतृतीयचरणौ च तद्भिन्नलक्षणकावतोऽत्र–
'खलेन सँय्युतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः।
चतुष्टयाद्बहिः शुभौरवीक्षितश्च मृत्युदः' इति पाठः समुचितः।

चिद् दृश्यमानेऽरिष्टयोगाभावः। चन्द्रमा यदि षष्ठाष्टमस्थः सौम्यक्षेत्रगतः सौम्ययुक्तो भवति तदा न मरणप्रदः। यस्माद्यवनेश्वरः *लग्नाच्छशी नैधनगेऽशुभर्क्षे षष्ठोऽथवा पापनिरीक्षितश्च। सर्वायुराहन्ति शुभैर्विमिश्रैस्तदीक्षितोऽब्दाष्टकमर्धकं वा'* तथा यस्य कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्लपक्षे रात्रौ जन्मलग्नात्षष्ठाष्टमगः शशी शुभाशुभदृष्टोऽपि भवति तस्य न मरणप्रदः। यस्मान्मांडव्यः– 'पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां कृष्णेऽथवाहनि शुभाशुभदृश्यमानः। तच्चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्नादापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति'। असद्भिरिति। अत्रास्मिन्नेव षष्ठेऽष्टमे वा स्थाने शुभे सौम्यग्रहे बुधगुरुसितानामन्यतमे स्थिते तस्मिँश्चासद्भिः पापैः बलिभिर्वीर्ययुक्तैरवलोकिते दृष्टे जातस्य मासं स्थितिः जीवितं वक्तव्यम्। ततो मरणम्। अत्र निर्दिष्टयोगत्स्थे शुभग्रहे शुभदृष्टेऽरिष्टयोगाभावः। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्– 'शशिवत्सौम्याः पापैर्वक्रिभिरवलोकिता न शुभदृष्टाः। मासेन मरणदाः स्युः पापयुतो लग्नपश्चात्ते'। कलत्रसहित इति। विलग्नाधिपे जन्मलग्नपतौ कलत्रसहिते सप्तमस्थानस्थे वा पापविजिते क्रूरग्रहेण युद्धे संग्रामे विजिते। विजितलक्षणम्। 'दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः। अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः'। भौमादीनामाकाशे युद्धं भवति।। यः दक्षिणाशास्थः स ग्रहः जितः। कुसुतादीनां युद्धमित्युक्तत्वाच्चन्द्रदीपिकायां। परुषो रुक्षः वेपथुः कम्पमानः अन्यगृहमप्राप्य सन्निवृत्तः विपरीतगतिमापन्नः अणु सूक्ष्मः अधिरूढः अन्येनाक्रान्तः विकृतः विकारसहितः निष्प्रभो दीप्तिरहितः विवर्णः वर्णरहितः स जित इति। चशब्दान्मासं स्थितिस्ततो मरणमिति।६।

भाषा– चन्द्रमा ६।८ स्थान में पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण कहना चाहिए। यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक की स्थिति (जीवन) ८ वर्ष तक, यदि पाप, शुभ दो प्रकार के ग्रह से दृष्ट हो तो उसका आधा (४ वर्ष तक) स्थिति कहना चाहिए। यदि ६।८ में शुभग्रह हो और बलवान पापग्रह से दृष्ट हो तो १ मास मात्र तथा पापग्रह से पराजित लग्नेश यदि सप्तम भाव में हो तो भी १ मास स्थिति (जीवन) कहना चाहिए।।६।।

अथारिष्टान्तराणि मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

लग्ने क्षीणे शशिनि निधनं रन्ध्रकेन्द्रेषु पापैः
पापान्तःस्थे निधनहिबुकद्यूनयुक्ते च चन्द्रे।

एवं लग्ने भवति मदनच्छिद्रसंस्थैश्च पापै-
र्मात्रा सार्धं यदि च न शुभैर्वीक्षितः शक्तिभृद्भिः ।।७।।

लग्ने क्षीण इति।। क्षीणे शशिनि चन्द्रे लग्ने जन्मलग्नस्थिते तथा रन्ध्रकेन्द्रेषु पापैः क्रूरैः स्थितैर्यथासम्भवमेवंविधे योगे जातस्य निधनं मरणं वक्तव्यम्। तथा चन्द्रे शशिनि पापान्तःस्थे पापमध्यगते निधन-हिबुकद्यूनयुक्ते ऽष्टमचतुर्थसप्तमस्थानामन्यतमस्थे जातस्य मरणं वक्त-व्यम्। एवमिति। एवमनेनैव प्रकारेण लग्नगे पापान्तस्थेः शशिनि तथा मदनिच्छद्रसंस्थे सप्तमाष्टस्थानयोरन्यतमस्थे पापे क्रूरे यदि शुभैः सौम्यग्रहैः शक्तिभृद्भिः सबलैः चन्द्रमा न वीक्षितो न दृष्टो भवति तदा जातस्य मात्रा सार्द्धं जनन्या सह मरणं वदेत्। अथ निर्दिष्टयोगस्थश्चे-च्चन्द्रमाः शुभैर्दृश्यते बलिभिस्तदा जातस्यैव मरणं, न तन्मातुरिति।। ७।।

भाषा– यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह अष्टम तथा केन्द्रस्थान में हो तो जातक का मरण होता है। तथा चन्द्रमा यदि पापग्रहों के मध्य में होकर ८।४।७ इन स्थान में हो तो मरण कहना चाहिए। तथा यदि लग्न इस प्रकार पाप मध्य में हो और ७।८ में पापग्रह हो तो माता के सहित जातक का मरण होता है। यदि बलवान् शुभग्रह से दृष्ट न हो तभी मरण होता है अर्थात् बली शुभग्रह से दृष्ट हो तो उपरोक्त योग में मरण नहीं कहना चाहिए।।७।।

अथारिष्टान्तराणीन्द्रवज्रयाऽऽह–

राश्यन्तगे सद्भिरवीक्ष्यमाणे चन्द्र त्रिकोणोपगतैश्च पापैः।
प्राणैः प्रयात्याशु शिशुर्वियोगमस्ते च पापैस्तुहिनांशुलग्ने।८।

राश्यंतगे इति।। चन्द्रे शशिनि राश्यन्तगे यत्र तत्र राशौ नवम-नवांशगे तथाभूते सद्भिः शुभग्रहैरवीक्ष्यमाणे न संदृष्टे पापैः क्रूरैस्त्रि-कोणोपगतैः नवमपञ्चमस्थानस्थैः जातः शिशुर्बालकः आशु क्षिप्रमेव प्राणैरसुभिर्वियोगं प्रयाति गच्छति। म्रियत इत्यर्थः। अस्ते च पापैरिति। तुहिनांशौ चन्द्रे लग्नगे अस्ते सप्तमे सप्तमस्थानस्थितैः पापैश्च-शब्दाच्छिशुराश्वेव प्राणैर्वियोगं प्रयाति। अत्र तुहिनांशुलग्न इति कर्कटलग्ने कैश्चिद्व्याख्यातम्। तदयुक्तम्। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्– 'उदयगतो वा चन्द्रः सप्तमराशिस्थितः पापैः' ।।इति।।८।।

भाषा– यदि चन्द्रमा राशि के अन्तिम नवांश में हो और शुभग्रह से दृष्ट न हो तथा त्रिकोण में पापग्रह हो तो जातक शीघ्र ही मरण

प्राप्त करता है। तथा सप्तमभाव में पापग्रह और चन्द्रमा लग्न में हो तो भी शीघ्र ही मर जाता है॥८॥

अथारिष्टान्तराणि हरिण्याऽऽह—

अशुभसहिते ग्रस्ते चन्द्रे कुजे निधनाश्रिते
जननिसुतयोर्मृत्युर्लग्ने रवौ तु सशस्त्रजः।
उदयति रवौ शीतांशौ वा त्रिकोणविनाशगै-
र्निधनमशुभैर्वीर्योपेतैः शुभैर्न युतेक्षिते॥९॥

अशुभसहित इति॥ चन्द्रे शशिन्यशुभसहिते यद्यपि सामान्येनोक्तं तथाप्यशुभेन पापेन शनैश्चरेणैव युक्ते तथाभूते लग्नगते न केवलं यावत् लग्नगते ग्रस्ते सराहौ राशिगते लग्नाच्च कुजेऽगारके निधनाश्रिते-ऽष्टमस्थाने जननिसुतयोः मातृपुत्रयोः मृत्युर्भवति। रवौ तु सशस्त्रज इति। एवंविधे योगे रवावादित्ये स्थिते जननिसुतयोर्मृत्युः शस्त्रजः शस्त्रेणायुधेन जातो भवति। एतेनैतदुक्तंभवति। शनैश्चरेण बुधेन वा युक्तेऽर्के ग्रस्ते लग्नगते कुजे चाष्टमगे जातस्य मात्रा सह शस्त्रहेतुकं मरणं वाच्यम्। ननु अशुभ इति सामान्येनोक्तम्। तत्केवलेन शनैश्चरेण युक्ते चन्द्रे शशिनि इति किं व्याख्यातम्। शनैश्चरेण बुधेन वा युक्तेऽर्के इति नोक्तम्। अत्रोच्यते। असम्भवादेव पौर्णमास्यां चन्द्रग्रहणं भवति तत्र तावदर्कसहितेन चन्द्रमसा न भवितव्यम्। बुधेन चार्कसमीपवर्तिना सदैव भवितव्यम्। अष्टमस्थानत्वाद्भौमेनापि चन्द्रसहितेन न भवितव्यम्। शनैश्चरं विना व्यवस्थितेन बुधेन सौम्येनैव भवितव्यम्। तस्माच्चन्द्रग्रहणे इति व्याख्यातम्। अर्कग्रहणे पुनः बुधेन यदि युक्तोऽर्को भवति तदार्क-सहितत्वात्तस्य पापता भवतीत्यतोऽर्कस्य बुधसहितत्वमिति व्याख्यातम्। क्षीणेन्दुयोगादर्कस्य पापयोग एवायं गण्यते यस्मादवश्यममावास्या-न्तेऽर्कग्रहणेन भवितव्यम्। तत्र चावश्यमर्केण क्षीणचन्द्रसहितेन भवितव्यम्। तदार्कः क्षीणेन्दुना युक्तइति आचार्यस्याभिप्रेतं स्यात्तदा ग्रस्तेऽर्के निधनाश्रिते कुज इति केवलमकरिष्यत्। उदयति रवावादित्ये उदयति लग्नगते शीतांशौ चन्द्रे वा लग्नगते तथा अशुभैः पापैस्त्रि-कोणविनाशगैः नवपञ्चमाष्टमस्थैः सर्वैरेव यथासम्भवमेवंविधयोग-स्थे रवौ चन्द्रे वा शुभैः सौम्यग्रहैः वीर्योपेतैः बलवद्भिः न युक्तेक्षिते न संयुक्ते नापि दृष्टे जातस्य निधनं मरणं वदेत्। अर्थादिवोक्तयोगस्थे रवौ चन्द्रे वा बलिभिः शुभैर्युते दृष्टे चारिष्टयोगाभावः॥९॥

भाषा– यदि राहु से ग्रस्त और पापग्रह से युक्त चन्द्रमा लग्न में हो और मङ्गल ८ भाव में हो तो मातासहित जातक का मरण होता है। यदि इस प्रकार का योग सूर्य में हो (अर्थात् पापयुत और राहुग्रस्त सूर्य लग्न में हो और मङ्गल अष्टम में हो) तो उक्त मरण शस्त्र के द्वारा समझना चाहिए। सूर्य उदय (लग्न) में हो वा चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह ५।६।८ स्थान में हो तो मरण होता है। यदि बली शुभग्रह से युतदृष्ट न हो अर्थात् शुभग्रह से युतदृष्ट हो तो मरण नहीं होता है।। ९।।

अथारिष्टान्तरमपरवक्त्रेणाऽऽह–

असितरविशशांकभूमिजैर्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः।
भवति मरणमाशु देहिनां यदि बलिना गुरुणा न वीक्षिताः।१०।

असितेति।। असितः सौरः रविरादित्यः शशांकश्चन्द्रः भूमिजोंऽगारकः एतैर्यथाक्रमं व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः द्वादशनवमलग्नाष्टमस्थानस्थैः तत्रैतज्ञातं शनैश्चरे द्वादशे अर्के नवमे चन्द्रे लग्नगे भौमेऽष्टमस्थे एते सर्व एव योगकर्तारो ग्रहा यदि बलिना वीर्यवता गुरुणा जीवेन न वीक्षिताः न दृष्टास्तदा जातस्य जन्तोराश्वेव मरणं भवति वदेत्। अत्र यदा योगकर्तॄन्ग्रहान्बलवान्गुरुः कांश्चित्पश्यति कांश्चिन्न पश्यति अथवा बलहीनः सर्वानेव पश्यति तदा जातस्य मरणाय प्रवदेत्, किन्तु आशु शीघ्रं न वदेत्। अर्थादेवं सर्वानेव गुरुः पञ्चमगः पश्यति तदारिष्टयोगाभावः।।१०।।

भाषा– शनि, सूर्य, चन्द्र, मंगल ये क्रम से १२, ९, १, ८ में स्थित हो तो जातकों का शीघ्र मरण होता है; यदि बलवान् गुरु से दृष्ट न हो अर्थात् बलवान् गुरु से दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है।।१०।।

अथारिष्टान्तरं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुता मरणाय शीतरश्मिः।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा।११।

सुतेति।। शीतरश्मिश्चन्द्रः स च क्षीणः अशुभयुतः पापग्रहेण संयुक्तः सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेषु स्थितः पञ्चमसप्तमनवमद्वादशोदयाष्टमगतः। अथवा सुतमदननवांत्यरन्ध्रे स्थित इति पाठः। एतेषामन्यतमस्थानस्थः भृगुसुतेन शुक्रेण शशिपुत्रेण बुधेन देवपूज्येन बृहस्पतिना बलिभिर्वीर्यसंयुक्तैर्न युतो नाप्यवलोकितः एषां त्रयाणां मध्यादेकतमेनापि संयुतो न च दृष्टस्तदा जातस्य मरणाय भवति

अथदिवं भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यानामन्यतमेन बलवता दृष्टो युक्तो वा भवति तदारिष्टयोगाभावः। अत्र क्षीणचन्द्रग्रहणं नास्ति तत्कस्माद्व्याख्यातमित्यत्रोच्यते। आगमांतरदृष्टत्वात्। तथा च सारावल्याम्– 'निधनास्तव्ययलग्नत्रिकोणगाः क्षीणचन्द्रसंयुक्ताः। पापा बलिनः शुभदैरदृश्यमाना गतायुषां प्रायः'।। ११।।

भाषा– पापयुक्त चन्द्रमा ५, ७, ६,१२,१,८ स्थान में हो तो मरण होता है। यदि बली शुक्र, बुध या गुरु से युत वा दृष्ट न हो। यदि इनसे युत वा दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है।। ११।।

अथानुक्तमरणकालानामरिष्टयोगानां कालपरिज्ञानं भ्रमरविलसितेनाऽऽह–

योगे स्थानं गतवति बलिनचन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम्।१२।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातकेऽरिष्टाध्यायः।। ६।।

योगे स्थानमिति।। यस्मिन्नरिष्टयोगे जातस्य मरणकालावधिर्नोक्तस्तस्मिन्नरिष्टयोगे योगकर्तारो ये ये ग्रहास्तेषां मध्याद्यो बलवान्स यस्मिन्राशौ जन्मकाले व्यवस्थितः स राशिर्बलिनः स्थानम्। तत्र चारक्रमाच्चंद्रमसि प्राप्ते जातस्य मरणं वक्तव्यम्। अथवा चन्द्रे स्वमात्मीयस्थानं गते जन्मकाले यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तमेव राशिं पुनरपि चन्द्रे गते तत्र तस्य मरणं वक्तव्यम् तनुगृहमथवा तनुगृहलग्नं वा चारक्रमाद्गते चन्द्रमसि जातस्य मरणं वक्तव्यम्। कदेत्युच्यते। वर्षस्यान्तः संव्वत्सराभ्यन्तरे। एतदुक्तं भवति। 'अनुक्तकालरिष्टजातो वर्षं नातिक्रमति' इति। नन्वत्र प्रतिमासं चन्द्रमसा सर्वाण्येव स्थानानि गन्तव्यानि तत्किमित्युक्तं वर्षस्यान्तः। उच्यते। पापैर्दृष्टे बलवति। एषु निर्दिष्टस्थानेषु मध्याद्यत्र गतश्चन्द्रमा बलवान्भवति पापैश्च दृश्यते तदा जातस्य मरणं वक्तव्यम्। न केवलं गतमात्र एव चन्द्रे। किल मुनिगदितं किलेत्यागमसूचने मुनिगदितमिदमरिष्टलक्षणमित्यागमपारंपर्येण श्रूयते इति। अत्रान्यैराचार्यैररिष्टभङ्गा उक्तास्ते च सत्यरूपाः यतो बहवो जाता अपि सत्स्वपि योगेषु जीवन्तो दृश्यन्तेऽतोऽस्माभिः किञ्चिल्लिख्यते–

'सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो
लग्नस्थितः प्रशमयेत्सुरराजमंत्री।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरप्रणामः ।।१।।

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः केन्द्र-
स्थितैः शुभखगैरवलोक्यमानः ।
मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः
सार्धं गुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ॥२॥
लग्नादष्टमवर्त्यपि गुरुबुधशुक्रदृकाणगश्चन्द्रः ।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिक्षत्येव निर्व्याजम् ॥ ३ ॥
चन्द्रः संपूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः शुभेक्षितश्चापि ।
प्रकरोति रिष्टभंगं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥ ४ ॥
बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।
* यद्यत्क्रूरसहायः सद्योऽरिष्टस्य भङ्गाय ॥ ५ ॥
रिपुभवनगतोऽपि शशी गुरुसितचन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
अगद इव भोगिदष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥ ६ ॥
सौम्यद्वयान्तरगतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।
निःशेषरिष्टहन्ता भुजंगलोकस्य गरुड इव ॥ ७ ॥
शशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।
रिपुनिधनस्थेऽरिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ॥ ८ ॥
प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेते ।
सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ॥ ९ ॥
सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकसौम्यदृकाणस्थाः ।
गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः ॥१०॥
चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि ।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ॥११॥
पापा यदि शुभवर्गे सौम्यैर्दृष्टाः शुभांशवर्गस्थैः ।
निघ्नन्ति तदारिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ॥१२॥
राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षतः सम्यक् ।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसंघातम् ॥१३॥
शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ।
प्रकृतिस्थैश्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ॥१४॥
तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।
नाशयति सर्वरिष्टं मारुत इव पादपान्प्रबलः ॥१५॥
सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टश्चन्द्रो विनाशयति रिष्टम् ।
आपूर्यमाणमूर्तिर्यथा नृपः स्वं नयेद्द्वेषी ॥१६॥' *इति।१२।*

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ
षष्ठोऽरिष्टाध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

* *अत्र 'क्रूरसहायो यद्यपि' इति पाठः साधुः।*

भाषा– जिन योगों में मरण का काल नहीं कहा गया है उन योगों में वर्ष के भीतर जब चन्द्रमा बलवान् होकर अपने स्थान में वा किसी बली ग्रह के स्थान में या लग्नराशि में जाय और पापग्रहों से दृष्ट हो उस समय उस जातक का मरण मुनियों ने कहा है।। ११ ।।

अथायुर्दायाध्यायः ।।७।।

अथायुर्दायाध्यायो व्याख्यायते। तत्र पूर्वोक्तरिष्टाध्यायेऽरिष्टवर्जितस्यायुर्दायः कर्तव्यः। तत्रादावेव मययवनमणित्थपराशरमतेन प्रत्येकस्य ग्रहस्य परमायुःप्रमाणं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैर्दिवसकरादिषु वत्सराः प्रदिष्टाः।
नवतिथिविषयाश्विभूतरुद्रदश सहिता दशभिः स्वतुङ्गभेषु।१।

मययवनेति।। मयो मयनामा दानवः सूर्यलब्धवरप्रसादः। यवना म्लेच्छजातीया होताविदः। मणित्थ आचार्यः। पराशरः शक्तिः पूर्वा यस्य स शक्तिपूर्वः, पूर्वशब्देन पिता उच्यते। तैः मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैः दिवसकरादिष्वादित्यादिषु ग्रहेषु वत्सराः संवत्सरा परमायुः प्रमाणाब्दाः प्रदिष्टा उक्ताः। नवतिथिविषयाश्वीत्यादि। अत्र नवभिर्दशसहिता इति सर्वत्रैव शेषभूतं तेन नवभिः सहिताः दश एकोनविंशतिः परमायुः प्रमाणवत्सराः दिवसकरस्यादित्यस्य। तिथिभिः पञ्चदशभिः सहिता दश पञ्चविंशतिश्चन्द्रस्य। विषयैः पञ्चभिः सहिता दश पञ्चदश भौमस्य। अश्विभ्यां द्वाभ्यां सहिता दश द्वादश बुधस्य। भूतैः पञ्चभिः सहिता दश पञ्चदश गुरोः। रुद्रैरेकादशभिः सहिता दश एकविंशतिः शुक्रस्य। दशभिः सहिता दश विंशतिः सौरस्य। एतानि ग्रहाणां परमायुः प्रमाणवर्षाणि स्वरपरमोच्चांशस्थितेषु भवन्ति। तत्रेदृशाः परमोच्चस्थिता ग्रहा आदित्यादयो भवन्ति। तद्यथा– एवं विद्या ह्येते यथानिर्दिष्टवर्षाणि प्रयच्छति। १६।२५।१५। २१।२०। अंकेनापि एतान्यर्कादीनां परमायुः प्रमाणवर्षाणि।। १ ।।

भाषा– यदि सूर्यादि ग्रह अपने-अपने उच्च में हो तो क्रम से १६, २५, १५ २१, २० इतने वर्ष रव्यादि ग्रहों की आयु होती है। जैसे रवि अपने परम उच्च (मेष के १० अंश पर) में हो तो रविकृत आयु १६ वर्ष एवं सब ग्रहों के क्रम से समझना चाहिये।।१।।

अथ परमनीचावस्थितानामायुर्दयविज्ञानं मन्दाक्रान्तयाऽऽह—

नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रसति (१) हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो
होरा त्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः
सूर्योच्छिन्नद्युतिषु [२] च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ॥२॥

नीच इति। एत एव दिवसकरादयो नीचे परमनीचे अर्धं परमायुः-प्रमाणवर्षेभ्योऽपहरति। अत एवोक्तम्—नीचेऽतोऽस्मात्पूर्वोक्तात्परमायुषोऽर्धं दलं ह्रसति क्षीयते अथेदृशा रव्यादयः परमनीचस्था भवन्ति। परमनीचस्थास्त एव पूर्वोक्तायुषोऽर्धं दलं प्रयच्छन्ति। तद्यथा— रविः सार्धानि नव वर्षाणि प्रयच्छति। चन्द्रः सार्धानि द्वादश वर्षाणि प्रयच्छति। एवं भौमः सप्त सार्धानि। एवं बुधः षट्। एवं बृहस्पतिः सप्त सार्धानि। एवं शुक्रो दश सार्धानि। एवं शनैश्चरो दश। अर्केनापि रवेर्वर्षाणि ९ मासाः ६। चन्द्रस्य वर्षाणि १२ मासाः ६। भौमस्य वर्षाणि ७ मासाः ६। बुधस्य वर्षाणि ६। गुरोः वर्षाणि ७ मासाः ६। शुक्रस्य वर्षाणि १० मासाः ६। शनेः वर्षाणि १०। ततश्चांतरस्थेऽनुपात इति। ततः तस्मादुच्चान्नीचाच्चान्तरस्थे मध्यवर्तिनि ग्रहेऽनुपातः त्रैराशिकः कर्तव्यः। सर्वेषां नीचानि अंकतयैव लिख्यन्ते। तत्र तावत्सर्वस्यैव ग्रहस्य परमोच्चपरमनीचांतरालं राशिषट्कं भवति। तावदेव लिप्तापिण्डीकृत्य दश सहस्राण्यष्टौ च शतानि भवन्ति (१०८००)। तत्र स्वोच्चादधिकं ग्रहेण यदा भुक्तं भवति तदा तत्र स्वोच्चं विशोध्य शेषस्य लिप्तापिंडीकार्यम्। अथ स्वनीचोदधिकं ग्रहेण भुक्तं भवति तदा तत्र स्वनीचमपास्यावशेषं लिप्तापिंडीकार्यम्। तासां ग्रहभुक्तलिप्तागण इत्याख्या। तस्यैव ग्रहस्य परमनीचोक्तानि वर्षाणि मासयुतानि कार्याणि। कथमुच्यते, वर्षाणि द्वादशभिः संगुण्य तत्र मासान्योजयेत्तानि

(१) 'नवतिथिविषयाश्विभूतेत्यादि' ग्रहाणां परमायुः प्रमाणं यदुक्त तत्स्वोच्चराशौ। ततः क्रमापचयान्नीचे तदर्धमायुःप्रमाणमेव शिष्यते। अतो मध्येऽनुपातेनैवायुःप्रमाणं साध्यमिति सयुक्तिकम्। तद्यथा यदि भगणार्ध-कलातुल्येनोच्चग्रहान्तरेण पठितोच्चायुर्वषार्धं विनश्यति तदेष्टोच्चग्रहान्तरेण किमिति फलं पठितोच्चायुःप्रमाणाद्विशोध्यमवशिष्टग्रहस्य स्पष्टायुर्भवतीति।

(२)' सूर्याच्छिन्नद्युतिषु' इत्यपि पाठस्तत्र सूर्य्येणाच्छन्ना द्युतिर्येषान्ते सूर्याच्छिन्नद्युतयस्तेषु तथोक्तष्विति विग्रहः।

च मासीकृतान्यादित्यादीनां लिख्यन्ते। तद्यथा— चतुर्दशाधिकं शतं रवेः। प्राग्वद्विभज्य सार्धं शतं चन्द्रस्य। नवतिर्भौमस्य। द्विसप्ततिर्बुधस्य। नवतिर्जीवस्य। षड्विंशत्यधिकं शतं शुक्रस्य। विंशत्यधिकं शतं सौरस्य। अङ्केनापि ११४ सूर्यस्य। १५० चन्द्रस्य। ९० भौमस्य। ७२ बुधस्य। ९० जीवस्य। १२६ शुक्रस्य। १२० शनेः। तत्र त्रैराशिकं यदि भगणार्धलिप्ताभिः खखाष्टदिक्संख्याभिरेताः (१०८००) इष्टग्रहपरमनीचमासा लभ्यन्ते तदा तद्ग्रहभुक्तलिप्ताभिः कियन्त इति अत्रेदं सूत्रम्। 'त्रैराशिके प्रमाणं फलमिच्छाद्यन्तयोः सदृशराशी। इच्छा फलेन गुणिता प्रमाणभक्ता फलं भवति।' तदर्थं ग्रहपरमनीचमासैः संगुण्य भगणार्धलिप्ताभिर्विभज्यावाप्तं मासाः। मासशेषं त्रिंशद्गुणितं (३०) प्राग्वद्विभज्यावाप्तं दिवसाः। दिनशेषं षष्ट्या संगुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तं घटिकाः। घटिकाशेषं षष्ट्या संगुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तं विकलाः पलानि। एवं मासादिश्चषकान्तःकाल आगतः। मासानां द्वादशभिर्भागमपहृत्य चावाप्तं वर्षाणि लभ्यन्ते। तदैव शेषं मासाः। एवमागतं वर्षादिपरमोच्चायुर्दर्शितवर्षेभ्यः संशोध्यावशेषं ग्रहेण वर्षादिरायुषः कालोदत्तो भवति। एवमुच्चाद्विच्युतस्य नीचमप्राप्तस्य कर्त्तव्यं नीचाद्विच्युतस्योच्चमप्राप्तस्य प्राग्वत्कालमानीय तस्यैव ग्रहस्य परनीचायुषि संयोज्य ग्रहस्यायुषः कालो वर्षादिर्भवति। अथवा यदि राशिषट्कलिप्ताभिरर्धायुर्वर्षाण्यपचीयन्ते तदैताभिर्ग्रहभुक्तलिप्ताभिः किमित्यत्र मध्यमराशिसवर्णीकृत्य तेनांकेन ग्रहभुक्तलिप्ता गुणयेत्। ततः परिवर्त्य भागहारच्छेदांशैराच्छेदसंगुणश्छेदांशांशगुणा भाज्यस्य भागहारः सवर्णितयोरित्यत्र वर्षाणामेवम् स्वच्छेदादिकेन भगणार्धलिप्ताः संगुण्य खखषट् चन्द्रनयनलिप्ता भवन्ति (२१६००)। एताभिर्भागमपहृत्य वर्षाणि लभ्यन्ते। शेषं द्वादशभिः सविकलं संगुण्याधःस्थस्य सविकलस्य षष्ट्या भागमपहृत्योपरितनराशौ संयोज्य प्राग्वद्विभज्य मासा लभ्यन्ते। एवं शेषं सविकलं त्रिंशता षष्ट्या संगुण्य दिनघटिका विघटिकाश्चानयितव्याः। शेषं प्राग्वत्कर्म। अथ लघुनोपायेन पिण्डायुष आनयनं प्रदर्श्यते। तद्यथा— इष्टग्रहात् प्रागुक्तमुच्चध्रुवकं विशोध्यावशेषं कर्म भूमौ स्थापयेत्। अथोच्चध्रुवकं न शुध्यति तदा ग्रहे राशिद्वादशकं दत्त्वा तस्मादुच्चमपास्यावशेषं स्थापयेत्। ततस्तदवशेषं राशिषट्कादूनं

भवति तदा राशिद्वादशकादपास्य शेषं स्थाप्यम्। राशिषट्काधिकं भवति तदा तदेव ग्राह्यम्। तत्कर्म भूमौ राश्यादिकं विलिप्तान्तं स्वपरमायुर्वर्षैः संगुण्य स्वच्छेदैर्विभज्य लब्धमुपर्युपरि योजयेत्। अवशेषं स्थापयेत्। विलिप्तानां च षष्ट्या भागानां त्रिंशता राशीनां द्वादशभी राशिभ्यो लब्धं वर्षाणि। तदवशेषं मासाः। भागशेषं दिवसाः। लिप्ताशेषं घटिकाः। विलिप्ताशेष चषका इति। एतावतैव कर्मणा स्फुटं भवति। तथा च सारावल्याम्– 'स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भादूनो भमण्डलात्। स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः।। (१।१२।३०।६०।६०।) इति। होरा त्वंशप्रतिममिति। होरा लग्नम्। सा चांशप्रमाणानि वर्षाणि ददाति यावन्तो नवांशका लग्नेन भुक्तास्तावन्त्येव वर्षाणि ददाति। तत्करणं यथा– तात्कालिकस्य लग्नस्य राशीनपास्य शेषं लिप्तापिण्डीकार्यम्। तत्र शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्ता भुक्तनवांशकास्तावन्त्येव वर्षाणि लग्नमायुर्दायं प्रयच्छति। अवशेषेण सह त्रैराशिकं कृत्वा वर्षाणामधस्तान्मासाद्यं स्थापयितव्यम्। तद्यथा– यदि लिप्ताशतद्वयेन द्वादश मासा लभ्यन्ते तदावशेषलिप्ताभिः कियन्त इति। तेनावशेषलिप्ता द्वादशभिः संगुण्य शतद्वयेन विभज्यावाप्तं मासास्ते च वर्षाणामधः स्थाप्याः मासशेषं त्रिंशता संगुण्य शतद्वयेन प्राग्वद्विभज्यावाप्तं च दिवसाः ते मासानामधः स्थाप्याः। एवं लग्नायुर्दायः। अपरे राशितुल्यं वदन्ति। अपरेऽन्ये मणित्थादय आचार्याः लग्नस्य राशितुल्यमायुर्दायमिच्छन्ति। लग्नेन यावन्तो राशयो भुक्तास्तावन्त्येव वर्षाणि लग्नायुः। लग्नस्य भुक्तभागादिकं लिप्तापिण्डीकृत्य मासाद्यानयने त्रैराशिकं कर्तव्यम्। यद्यष्टादशभिर्लिप्ताशतैर्द्वादश मासा लभ्यन्ते तदैताभिर्लग्नभुक्तलिप्ताभिः कियन्त इति। प्राग्वद्वर्षाणामधस्तान्मासाद्यं निहितव्यम्। एवं केचिल्लग्नायुर्दायमिच्छन्ति। तथा च मणित्थः। 'लग्नराशिसमाश्चाब्दा मासाद्यमनुपाततः। लग्नायुर्दायमिच्छन्ति होराशास्त्रविशारदः।।' इति। तदेव मतं शोभनमित्यस्माकमभिप्रेतम्। अन्ये त्वेवमिच्छन्ति– यथा लग्नांशपतौ बलवति अंशतुल्यं राश्यधिपे बलवति च राशितुल्यमिति। तथा च सारावल्याम्– 'लग्नाद्दत्तोंऽशतुल्यः स्यादन्तरे चानुपाततः। तत्पतौ बलसंयुक्ते राशितुल्यं च भाधिपे।।' हित्वा वक्रमिति। येन ग्रहेण यावत्संख्यं आयुर्दायो दत्तस्तस्य स्वं भवति

तस्मात्स्वादायुषो भौमादिकस्य ग्रहस्य वक्रं विपरीतगतं हित्वा वर्जयित्वा यो ग्रहो रिपुगृहगतः शत्रुक्षेत्रावस्थितो भवति तेन स्वादायुषस्त्रिभागो हीयते स ग्रहस्त्रिभागमपहरतीत्यर्थः। वक्रितः पुनः शत्रुक्षेत्रगतोऽपि नापहरति। तथा च– 'वक्रचारं विना त्र्यंशं शत्रुराशौ हरेद्‍ग्रहः।' एतद्‍बहूनां मतम्। आचार्यस्य पुनरेष एव पक्षोऽभिप्रेतः। अन्यथा 'हित्वा भौमं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागम्' इत्येवावक्ष्यत्। वक्रं हित्वा यो ग्रहो रिपुराशिगत एव ज्ञायते यथा वक्रगो ग्रह आयुर्दायं सबलत्वात् त्रिगुणं ददाति तथाऽत्रापि नापहरतीति निश्चयः। अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते। यथा वक्रमङ्गारकं हित्वा यो ग्रहो रिपुराशिगस्तेन स्वादायुषस्त्रिभागा हीयते भौमः शत्रुक्षेत्रगतोऽपि नापहरति। अत्र च वादरायणः– 'भूम्याः पुत्रं वर्जयित्वाऽरिभस्था हन्युः स्वात्स्वादायुषस्ते त्रिभागम्।' इति। सूर्योच्छिन्नद्युतिषु सूर्येण रविणा उच्छिन्ना कर्तिता द्युतिर्येषां ते सूर्योच्छिन्नद्युतयः आदित्यमण्डले अस्तमितेषु ग्रहेषु दलमर्धं हीयते। किन्तु शुक्रार्कपुत्रौ सितशनैश्चरौ प्रोज्झ्य वर्जयित्वा। तावस्तङ्गतावपि नापहरतः। तथा च वादरायणः-'अस्तं याताः सर्व एवार्धहानिं कुर्युर्हित्वा दैत्यपूज्यार्कपुत्रौ'।२।

भाषा– ग्रह अपने परम नीच में हो तो उपरोक्त आयु का आधा नाश हो जाता है, अर्थात् आधा रहता है। इसलिए उच्च और नीच के मध्य में अनुपात से आयुर्दाय का मान समझना चाहिए। लग्न की आयु अंश (लग्न भुक्तनवांश) तुल्य वर्षादि ग्रह को छोड़कर शत्रुगृह में रहनेवाले ग्रहों को छोड़कर शत्रुगृह में रहनेवाले ग्रहों का गणितागत आयु का तृतीयांश नष्ट हो जाता है। एवं शुक्र और शनि को छोड़कर अन्य ग्रह यदि सूर्यसान्निध्यवश अस्त हो तो उसका आधा आयुर्दाय नष्ट हो जाता है॥ २॥

स्पष्टार्थ चक्र–

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	
उच्च	१६	२५	१५	१२	१५	२१	२०	वक्री
नीच	६ ६	१२ ६	७ ६	६ ०	७ ६	१० ६	१० ६	वक्र मंगल

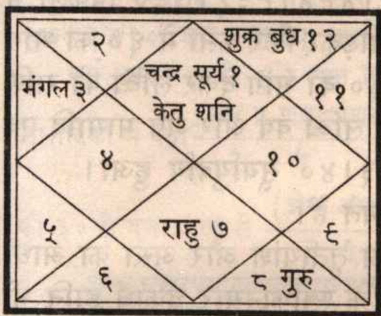
विशेष अर्थ– उच्च और नीच के मध्य में अनुपात इस प्रकार है 'यदि उच्च और नीच के अन्तर (६ राशि) में आधा नष्ट होता है तो ग्रह और उच्च के इष्ट अन्तर में क्या? इस प्रकार उच्च और ग्रह के अन्तर राश्यादि को पठित वर्ष के आधे मान से गुणा कर ६ के भाग देने से लब्धितुल्य वर्षादि या मासादि मान को पठित उच्चस्थ प्रमाण वर्ष में घटाने से उस ग्रह का आयुर्दाय होता है।

लग्नायु के विषय में– आचार्य का अभिप्राय है कि यदि लग्न की राशि बली हो तो राशितुल्य वर्षादि समझना।

वक्रीग्रह– शत्रुगृह में भी हो तो उसका तृतीयांश नष्ट नहीं होता है। क्योंकि वक्रीग्रह के आयुर्दाय की वृद्धि होती है। इसलिए यहाँ 'वक्र' शब्द से वक्रगति समझना चाहिए। किसी ने 'वक्र' शब्द से मङ्गल का ग्रहण किया है, वह असंगत होने के कारण बहुसम्मत नहीं है॥२॥

उदाहरण– सं० १९६६ वैशाखशुक्ल प्रतिपदा गुरुवार सूर्योदय से इष्ट घटी पल १।५९ समय में किसी का जन्म है। तो उस समय के स्पष्ट ग्रह और जन्म कुण्डली–

जन्मलग्न चक्र-



स्पष्टसूर्य-	०	६	४६	४०
चन्द्र-	०	१२	१५	५७
मङ्गल-	२	१३	२०	२७
बुध-	११	२४	१७	२५
गुरु-	७	१४	१०	२७
शुक्र-	११	१६	२०	७
शनि-	०	२८	०	५५
लग्न-	०	२१	२१	६

स्पष्ट सूर्य ०।६।४६।४० को उसके उच्च ०।१० के साथ अन्तर ०।३।१०।२० की कला १९०।२० को रवि परमायुर्दाय के आधे ९ वर्ष ६ मास अर्थात् ११४ मास से गुणा करके २१६९८।० इसमें चक्रार्धकला १०८००० का भाग देकर लब्ध ०।२०।१६।२० को उच्च गतवर्ष १९ में घटाने से १८।६।२९।४३।४० वर्षादि सूर्यायुर्दाय हुआ। इसी प्रकार चन्द्रायु-र्दाय २३।६।२१।४०। भौमायुर्दाय ९।४।१०।०। बुधायुर्दाय ६।३।२१। ३६।०। जीवायुर्दायु ९।७।१२।३०।०। शुक्रायुर्दाय २०।४।१६।२१।०। शनैश्चरायुर्दाय १०।५।१२।०।०। लग्नायु साधन-राश्यादि लग्न ०।२१।२१।१९ यहाँ लग्न की राशि मेष और तुला का नवमांश है। ये दोनों 'स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुत' नहीं होने के कारण निर्बल हैं। इसलिए लग्न भुक्त नवांश तुल्यवर्षादि लग्नायु होगी। लग्न के भुक्तांश २१।२१।१९ इसकी कला १२८१।१९ इसमें २०० का भाग देने से लब्धि मास ४ शेष को ३० से गुणा कर २०० के भाग देकर लब्ध दिन २६ एवं घटीपल २२।१२ इस प्रकार ६।४।२६।२२।१३ लग्नायु हुई।

ऊपर साधित आयुर्दाय जानने का दूसरा सरल प्रकार सारावली में इस प्रकार है, यथा–

'स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्राश्यूनो भमण्डलात्।
स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः॥

भाषा– ग्रह को अपने उच्च में घटाने से ६ राशि से कम हो जाए तो उसको १२ में घटा कर ग्रहण करें। और ६ राशि या उससे अधिक हो तो उसी को ग्रहण करके अपने पिण्ड (उच्चगत पठित वर्ष) संख्या से गुणा कर के राश्यादि में अपने-अपने मान से भाग देने (अर्थात् विकला और कला स्थान में ६० के, अंश स्थान में ३० के और राशि स्थान में १२ से भाग देने, से वर्षादि आयुमान होता है।

जैसे– सूर्य को अपने उच्च में घटाने से ०।३।१०।२० यह ६ राशि से कम है इसलिए १२ राशि में घटाकर ११।२६।४९।४० इसको सूर्य के पिण्ड १९ से गुणा करने से २०९।४९४।९३१।७६० विकला में ६० के भाग देकर लब्धि को कला में जोड़कर फिर कला में ६० का भाग देकर लब्धि को अंश में, पुनः अंश में ३० का भाग देकर लब्धि को राशि में, फिर राशि में १२ का भाग देने से लब्धि वर्ष और शेष मासादि एवं पूर्वतुल्य ही वर्षादि १८।९।२९।४३।४० सूर्यायुर्दाय हुआ।

इसी प्रकार सभी के आयुर्दाय बनते हैं।

अब जो ग्रह शत्रुगृह में हो उसका तृतीयांश और अस्त का आधा आयुनाशक कहा गया है। तथा आगे के श्लोकानुसार चक्रार्ध हानि भी कही गई है। इसलिए द्वादश भाव में बुध और शुक्र दो पड़े हैं और उनमें शुक्र उच्च होने के कारण बली है। इसलिये केवल शुक्र की ही चक्रार्ध हानि करने से पूर्वसाधित आयु का आधा १०।२।८।१०।३०।० वर्षादि इसमें शत्रुगृह में रहने के कारण से फिर इसका तृतीयांश ३।४।२२।४३।३० वर्षादि घटाने से ६।९।१५।२७।० यह शुक्र का स्पष्टायुर्दाय हुआ। एवं बुध शत्रु के गृह में है, अतः बुधायु के तृतीयांश २।१।७।१२ बुधायु में घटाने से बुध स्पष्टायुर्दाय ४।२।१४।२४।० हुआ। एवं गुरु अष्टमभाव में है, इसलिए जीवायु के दशमांश ०।११।१६।१५ को जीवायु में घटाने से ८।७।२६।१५।० गुरु का स्पष्टायुर्दाय हुआ। तथा चन्द्रमा सूर्यरश्मि से अस्त है इसलिए उसका पूर्वसाधित आयु का आधा ११।९।१०।५० स्पष्टायुर्दाय हुआ एवं सबका योग=७६।५।२५।१।५२ वर्षादि आयु हुई।

सूर्यायु	१८	९	२९	४३	४०
चन्द्रायु	११	९	१०	५०	०
भौमायु	९	४	१०	०	०
बुधायु	४	२	१४	२४	०
जीवायु	८	७	२६	१५	०
शुक्रायु	६	९	१५	२७	०
शनैश्चरायु	१०	५	१२	०	०
लग्नायु	६	४	२६	२२	१२
योग=	७६	५	२५	१	५२

बहुसम्मत राशितुल्य लग्नायुर्दाय साधन प्रकार—

'लग्नराशिसमाश्चाब्दाद्विघ्नांशाद्याः शरोद्धृताः ।
मासाः, शेषांशकाद्यास्तु, रसघ्ना दिवसादिकाः ।।

लग्न की जितनी भुक्तराशि संख्या हो उतने ही वर्ष और अंशादि को २से गुणा कर ५ के भाग देने से लब्धि तुल्य मास, फिर शेष अंशादि को ६ से गुणा करने से दिनादि होते हैं।

यथा लग्न राश्यादि १०।२६।२८।५ यहाँ राशितुल्य वर्ष १०, अंशादि २६।२८।५ को २ से गुणा कर ५२।५६।१० इसमें ५ के भाग देने से लब्धितुल्य १० मास शेष अंशादि को ६ से गुणा करने से दिनादि १७।३७।० एवं लग्नायु वर्षादि १०।१०।१७।३७।०।।

इस प्रकार इसकी युक्ति यह है कि— यदि ३० अंश में १२ मास तो शेष अंशादिकों में क्या? $\frac{१२ \times \text{शेष अंशादि}}{५}$ =लब्धिमास संख्या, शेष $\frac{(\text{शेष अंशादि})}{५}$ को ३० से गुणा करने से $\frac{(\text{शेष अंशादि})}{५}$ =शे. अं. X ६=दिनादि होते हैं।।२।।

अथ ग्रहाणां स्वादायुषश्चक्रपातेनापहानि प्रहर्षिण्याऽऽह—

सर्वार्द्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः
क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम् ।
सत्स्वर्द्धं ह्रसति तथैकराशिगानामे-
कोंऽशं हरति बली तथाह सत्यः ।।३।।

सर्वार्द्धेति।। असत्सु पापग्रहेषु व्ययभवनादारभ्य द्वादशस्थानात्प्रभृति सप्तमान्तं यावद्व्यवस्थितेषु वा व्युत्क्रमेण यथाक्रमं सर्वार्द्धादयो भागाः क्षीयन्ते। तत्र लग्नात् द्वादशस्थः पापग्रहः सर्वमायुरात्मीयमेवापहरति एकादशस्थोऽर्द्धं दशमस्थस्त्रिभागं नवमस्थश्चतुर्भागम् अष्टमस्थः पञ्चमभागं सप्तमस्थः षड्भागमिति। सत्स्वर्द्धमिति। एतेष्वेव व्ययादिषु स्थानेषु सत्सु शुभग्रहेषु व्यवस्थितेष्वशुभग्रहोक्तस्यार्द्धं क्षीयते। तत्र लग्नात् द्वादशस्थः शुभग्रहः स्वायुषोर्द्धमपहरति। एकादशस्थश्चतुर्भागं दशमस्थः षडभागं नवमस्थोऽष्टमभागम् अष्टमस्थो दशमभागं सप्तमस्थो द्वादशभागमिति। तथैकराशिगानामिति। उक्तस्थानेषु यदा ग्रहद्वयं भवति बहवो वास्युस्तदा तेषामेकसंस्थितानां मध्यादेक एव यो बली वीर्यवान्स एवैकोंऽशं भागं यथापठितमपहरति नान्ये तत्रस्था अपहरन्ति। एतत्सत्य आह सत्याचार्यः कथयति। अंशग्रहणं यथा-

सम्भवं भागप्रदर्शनार्थम्। तथा च सत्यः– 'एकादशोत्क्रमात्सप्तमादिति प्राह हरणकर्माणि। एकर्क्षगेषु वीर्याधिकः स्वभागं हरेदेकः।। अर्धं तृतीयभागं चतुर्थकं पञ्चमं च षष्ठं च। आयुःपिण्डात्पापा हरन्ति सौम्यास्तथार्धानि।। द्वादशस्थः पापः स्वन्दायं शोभनस्ततोऽर्द्धं तु। अपहरति सर्वमायुर्यथा च योगस्तमपि वक्ष्य इति।। एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण। क्षपयति यथोक्तमंशं स एव नान्योऽपि तत्रस्थः।।' इति। वराहमिहिरस्याप्येवं मतम्। इह सत्यमतोपन्यास आगमानुश्रुतिप्रदर्शनार्थः।। ३।।

भाषा– द्वादशभाव से उत्क्रम से सप्तमभाव पर्यन्त पापग्रह हों तो क्रम से गणितागत आयु का सब, आधा, तृतीयांश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश का नाश हो जाता है और यदि उन्हीं स्थानों में शुभग्रह हो तो पापग्रह की अपेक्षा आधा नाश होता है। जैसे द्वादशभाव में पापग्रह हो तो उसका सब भाग और शुभग्रह का आधा तथा एकादश में पापग्रह का आधा और शुभग्रह का चतुर्थांश, दशम में पाप का तृतीयांश और शुभग्रह का षष्ठांश, नवम में पाप का चतुर्थांश और शुभ का अष्टमांश, अष्टम में पाप का पञ्चमांश और शुभग्रह का दशमांश तथा सप्तमभाव में पाप का षष्ठांश और शुभग्रह का द्वादशांश आयुर्दाय का नाश होता है। यदि एक ही स्थान में २ या अधिक ग्रह हों तो उनमें जो सबसे बली हो तो केवल उसी ग्रह का अंश नष्ट होता है; सब ग्रहों का नहीं, ऐसा सत्याचार्य का मत है।। ३।।

उदाहरण– पूर्व श्लोक में देखिये।। ३।।

अथ लग्नस्थः पापश्चक्रपातवदायुषोंऽशमपहरति तस्यांशप्रमाणज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

साद्धोंदितोदितनवांशहतात्समस्ताद्भागो-
ऽष्टयुक्तशतसंख्यमुपैति (१) नाशम्।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति।। ४।।

साद्धोंदितेति।। उदिता ये नवांशास्ते उदितनवांशाः सहार्द्धोदितेन नवांशेन वर्तन्त इति साद्धोंदितोदितनवांशाः। एतदुक्तं भवति। तात्कालिकस्य स्फुटलग्नस्य ये भुक्ता भागाः तेषां लिप्ताः पिण्डीकृत्य शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्त तस्मिन्काले भचक्रस्य च यावन्तो नवांशका उदिताः

(१) *'शतसङ्ख्य उपैति नाशम्' इति पाठान्तरम्।*

पश्चादर्द्धोदितो नवांशकः स तत्र उदितनवांशसमूहे योज्यः। एवं कृते सार्द्धोदितोदितनवांशसमूहो भवति। तेन गणितागतं समस्तमेवायुः-पिण्डं गुणयेत्। एवं कृते सार्द्धोदितोद्गिनवांशहतः समस्त आयुःपिण्डो भवति। तस्मादष्टाधिकशतेन भागे हृते यदवाप्यते वर्षादि तन्नाश-मुपैति क्षयं गच्छति। किं सर्वेषां नेत्याह। क्रूरे विलग्नसहित इति। यदा विलग्नस्थः क्रूरः आदित्याङ्गारशनैश्चराणामन्यतमो भवति तदैव आगतं वर्षादि समस्तायुःपिण्डात्ससंशोध्यम्। एवं कृते तत्कालजातस्य जंतो-रायुर्वषादि स्फुटं भवति किन्तु प्रत्येकस्य ग्रहस्य तत्कर्म कर्तव्यं येनायुःसंशुद्धानि दशावर्षाणि सर्वेषां भवन्ति। विधिना त्वनेन सौम्ये-क्षित इति अनेन विधिना स एव लग्नस्थः क्रूरग्रहो यदा सौम्येक्षितः शुभग्रहेण दृश्यते तदा विधिना त्वनेन यत्फलमायुःपिंडात्सार्द्धो-दितोदितनवांशहतात्समस्तायुः पिंडादष्टोत्तरशतेन भागे हृते यत्फलं लब्धम् अतो दलमर्धं प्रलयं प्रयाति तदर्धीकृत्यायुः पिंडात्पातयेदेवं कृते आयुःप्रमाणं स्फुटं भवति। अन्ये एवं व्याचक्षते। तात्कालिकेन लग्नेन भुक्ता ये नवांशकास्ते सार्द्धोदितनवांशेन सह ग्राह्याः। अयमर्थः– तात्कालिकस्य लग्नस्य राशीनपास्य भागान् लिप्तापिंडीकृत्य शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तमुदितांशकास्तैः प्राग्वत्कार्यम्। एतदपि स्थूलम्। तेन लग्नभागांल्लिप्तीकृत्य ताभिः प्रत्येकग्रहदत्तवर्षादिका-युर्दायं संगुण्य स्वच्छेदैर्भागमपहृत्योपर्युपरि योजयेत्। वर्षभगण-कलाभिर्भागमपहरेल्लब्धं वर्षादि तस्य प्राग्वत्पातनं कार्यम्। तथा च सारावल्याम्– 'लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा। भाज्या मंडललिप्ताभि २१६०० र्लब्धं वर्षादि शोधयेत्॥ स्वायुषो लग्नगे क्रूरे सौम्यदृष्टे च तद्दलम्।' (१) इति। एतदेव शोभनमस्माकं प्रतिभाति।

(१) एतेन सारावलीवचनेन क्रूरे विलग्नगते सति $\frac{\text{लग्ननवांशकला X ग्रहायु}}{\text{२१६००}}$ एतन्मितं ग्रहायुः प्रमाणेभ्यः शोध्यं भवितुमर्हति। अथात्र लग्ननवांशकलाज्ञानार्थ-मनुपातो–यद्येकस्मिन्नवांशके कलाशतद्वयं भवति तदा लग्नभुक्तनवांशेषु कियत्य इति लब्धा लग्ननवांशकला $= \frac{\text{२०० X लग्ननवांशसं}}{\text{१}}$ अनेनेद (१) समुत्थाप्य जात शोध्य $\frac{\text{२०० X लग्ननवांशसं X ग्रहाय}}{\text{२१६००}} = \frac{\text{लग्ननवांशसं X ग्रहायुः}}{\text{१०८}}$ मायुः एतेन सार्द्धो-दितोदितनवांशहतादित्यादि सर्वमुपपन्नम्।

न केवलमत्र यावच्चक्रपातेऽप्येव विधिः लग्नादिष्टग्रहं विशोध्यावशेषं यदि षड्भाद्दूने तदा तस्य ग्रहस्य चक्रपातोऽस्ति नान्यथेति तेनावशेषेणायुःपिंडस्य भागमपहृत्य लब्धं प्राग्वदायुःपिंडं पातयेत् तेनायुश्चक्रेण शुद्धं भवति। अथ रूपादूनो भागहारो भवति तदा रूपाद्भागहारं संशोध्य शेषेणायुर्दायं संगुण्य रूपेण भागमपहृत्य लब्धमेवायुश्चक्रपातशुद्धं भवति। उक्तं च– 'लग्नं ग्रहोनकं षड्भादूनकं यद्यसौ हरः। आयुः पिंडं भजेत्तेन लब्धं वर्षादि शोधयेत्। रूपाद्यदोनो हारः स्याद्रूपाच्छुद्धेन ताडयेत्। रूपेण विभजेल्लब्धं तदेवायुः स्फुटं भवेत्।।' अस्मिन्साद्धोदिते कर्मणि लग्ने यदा पापसौम्यौ भवतस्तदा यो लग्नोदितांशकसमीपवर्ती स एव ग्राह्यो नेतर इति। अत्र क्रूरशब्देन क्षीणश्चंद्रमा न ग्राह्यः। तथा च बादरायणः– 'सूर्यांगरशनीनामेकस्मिँल्लँग्नगे भवति हानिः। विधिना त्वनेन सौम्येक्षिते दलं पातयेल्लब्धम्'।। ४।।

भाषा– लग्न में यदि पापग्रह हों तो लग्न के अर्धोदित (वर्तमान) नवांश सहित जितने गत नवांश हों उससे गणितागत समस्त आयुःप्रमाण (वर्षादि) को गुणा करके उसमें १०८ का भाग देकर जो वर्षादि लब्ध हो उतना नाश हो जाता है, अर्थात् उतने वर्षादि गणितागत आयु में से घटा देना चाहिए। यदि लग्नगत पापग्रह पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उक्तविधि से प्राप्त फल (वर्षादि) का मात्र आधा ही नाश होता है।। ४।।

विशेष अर्थ– यहाँ अर्धोदित पद का यह अभिप्राय है कि जो नवांश पूर्ण उदित नहीं हो गया हो अर्थात् वर्तमान नवांश की जितनी कला उदित हुई हो वह अर्धोदित नवांश कहलाता है। उसको लग्न के गत नवांश में जोड़ने से अर्धोदित नवांश सहित उदित नवांश होता है। यहाँ कोई लग्न राश्यादि की कला बनाकर उसमें २०० का भाग देकर लब्धि और शेष को नवांश संख्या मानते हैं। और कोई-कोई लग्न की राशि को छोड़कर केवल अंशादि की कला बनाकर उसमें २०० का भाग देकर जो शेष सहित लब्धि हो उसी को उक्त नवांश संख्या मानते हैं।

इस प्रकार नवांश संख्या बनाकर आयु को गुणा करके गुणनफल में १०८ का भाग देने से जितने वर्षादि हों, उतने ही लग्न की कला से आयु को गुणा करके उसमें २१६०० (भचक्र कला) को भाग देने से होते हैं। इसीलिए सारावली में-

'लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा। भाज्यामण्डललिप्ताभिर्लब्धं वर्षादि शोधयेत्। स्वायुषो लग्नगे क्रूरे, सौम्यदृष्टे च तद्दलम्।' ऐसा ही पाठ है।

लग्न में पापग्रह हो तो लग्न के भुक्तांश के अनुपात से आयुर्दाय का नाश होता है अर्थात् यदि लग्न प्रथम नवांशारम्भ में ही हो तो आयु का

ह्रास नहीं होता है। तथा समस्त राशियों का नवांश भुक्त कर चुका हो तो समस्त आयु का नाश हो जाता है। समस्त राशियों की नवांश संख्या १०८ है इसलिए त्रैराशिक से अनुपात हुआ कि– यदि १०८ भुक्तांश संख्या में समस्त आयु का नाश होता है तो लग्नभुक्त इष्ट नवांश संख्या में क्या?–

$$\text{इस प्रकार लब्ध आयु का ह्रासमान} = \frac{\text{समस्त आयु X लभुन}}{१०८} = \frac{\frac{\text{समस्त आयु}}{२१६००}}{२००}$$

$$\frac{\text{लग्न भुक्तनवांशफला}}{२००} = \frac{\text{समस्त आयु X लग्न भुक्त कला}}{२१६००}$$

इस प्रकार वराहमिहिर और सारावली दोनों के प्रकार उपपन्न होते हैं। यदि लग्न की राशि को छोड़कर भुक्तनवांश संख्या ली जाए तो इस प्रकार से अनुपात ही नहीं हो सकता। अतः राश्यादि लग्न की समस्त भुक्तनवांश अथवा कला ग्रहण करके उक्त क्रिया करनी चाहिए।। ४।।

उदाहरण– उपपत्ति से सिद्ध हो चुका है कि लग्न नवांश संख्या से आयु को गुणा कर १०८ का भाग देने से, तथा लग्न की नवांश कला से गुणा कर २१६०० के भाग देने से लब्ध तुल्य ही है। इसलिए सारावली प्रकार में भी 'लग्नांश' पद से सार्धोदितोदित नवांश ही समझना चाहिए। क्योंकि अंश पद से नवांश ही समझा जाता है। इसलिए सुविधा के लिए सारावली के अनुसार ही उदाहरण दिखलाता हूँ। यहाँ यह भी ध्यान में रख लेना चाहिए कि सब ग्रहों की आयु के योग को एक ही बार लग्न कला से गुणा करके २१६०० के भाग देकर जो फल होगा, वहीं प्रत्येक ग्रह की आयु को पृथक्-पृथक् गुणा करके २१६०० का भाग देकर पृथक् लब्धवर्षादि के योग करने से होगा। इसलिए प्रत्येक ग्रह की आयु पर से पृथक्-पृथक् फल साधनकर के अपनी-अपनी आयु में घटाकर स्पष्ट आयुर्दाय बनाना चाहिए, क्योंकि जिस ग्रह की जितनी आयु होगी उतनी ही उसकी दशा 'दशाक्रम' में लगानी पड़ती है। एवं यहाँ क्षीण चन्द्रमा को पापग्रह नहीं समझना चाहिए; क्योंकि बादरायण आदि पाप के स्थान में केवल रवि, मङ्गल, शनि ये तीन ही ग्रहण किये हैं। यथा– *'सूर्याङ्गारशनीनामेकतमे लग्ने भवति हानिः'* इति।

पूर्वकल्पित उदाहरण में– लग्न में पापग्रह है इसलिए इस श्लोक के अनुसार लग्न ०।२१।२१।१६ के गत और वर्तमान नवांश संख्या ७ से पूर्वबाधित समस्त आयुर्दाय ७६।५।२५।१।५२को गुणा करने से ५३५।४।२५।१३।४ इसमें १०८ के भाग देने से लब्धि वर्षादि ४।११।१४।४४।३ इसको सम्पूर्ण आयु में घटाने से शेष ७१।६।१०।१७।४६ यह जातक का मय आदि मत से वर्षादि स्पष्ट आयुर्दाय हुआ। अथवा इस प्रकार प्रत्येक ग्रह के आयुर्दाय को पृथक्-पृथक् गुणा कर १०८ के भाग देने से जो लब्ध हो वह अपने-अपने साधित आयु में घटाने से पृथक्-पृथक् स्पष्टायु होती है। सबके योग

करने से फिर तुल्य ही हो जाता है। यहाँ शुभग्रह की दृष्टि नहीं है, इसलिए १०८ वाँ भाग पूरा घटा दिया गया है। जहाँ लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि हो वहाँ लब्धि के आधे को ही घटाकर स्पष्टायु समझना चाहिए। कार्यक्षेत्र में वर्तमान नवांश थोड़ा भुक्त हुआ हो तब भी उसकी १ संख्या ग्रहण की जाती है। इसलिए यहाँ लग्न-नवांश संख्या ७ ही ली गई है।

जन्मलग्न कुण्डली



संगति-रव्यादिस्पष्टग्रह

रवि	०	६	४६	४०	ग.	५८	३१
चन्द्र	०	१२	१५	५७	ग.	७६०	४७
मंग.	२	१३	२०	२७	ग.	३२	४०
बुध	११	२४	१७	२५	ग.	३५	३५
गुरु	७	१४	१०	२७	ग.	४	१८
शुक्र	११	१६	२०	७	ग.	७३	१
शनि	०	२८	५	५५	ग.	७	५६
लग्न	०	२१	२१	१९	★	★	★

मयादि कथित पिण्डायुसाधन का उदाहरण (१९।२५।१५।२१।२०।) जो १४० पृष्ठ में दिया गया है, वहाँ चन्द्रादि ग्रहों के स्वल्पान्तर से घटी-पल में कुछ न्यूनाधिक ग्रहण किया गया है। तथा '*सार्धोदितोदितनवांशहतात्*' इस प्रकार से समस्त आयुर्दाय को गुणा कर हानि दिखलाई गई है। वहाँ '*स्वोच्चशुद्धो ग्रह*' इत्यादि रीति से ग्रहों के सूक्ष्म आयुर्दायमान को पृथक्-पृथक् '*सार्धोदितोदितनवांशहतात्*' इत्यादि क्रिया द्वारा वास्तव नवांश सख्या से स्पष्ट बनाकर दशाक्रम लिखने की रीति दिखलाई जाती है। द्वितीय श्लोक के उदाहरण में जिस प्रकार सूर्य का आयुर्दाय साधन किया गया है उसी प्रकार चन्द्रादि ग्रहों के सूक्ष्म वर्षादि आयुर्दाय चक्र नं० (१) देखिये।

(१) चक्र

सूआ०	१८	९	२९	४३	४०
चंआ०	२३	६	२१	३८	४५
मंआ०	९	४	९	५३	१५
बुआ०	६	३	२१	३९	०
गुआ०	९	७	१२	२३	१५
शुआ०	२०	४	१६	२	२७
शंआ०	१०	५	११	५८	३०

यहाँ चन्द्रमा के अस्त होने के कारण अर्धहीन, शुक्र के चक्रार्ध हानि के बाद शत्रुगृह में होने के कारण त्र्यंश हानि भी प्राप्त है। तथा बुध शत्रुगृह में है, अतः उसका त्र्यंशहानि एवं गुरु अष्टम भाव में है, अतः उसका दशांश हानि करके तथा शेष ग्रहों के यथागत आयुर्दाय द्वितीय चक्र में देखिये। अब यहाँ लग्न ग्रह में पापग्रह (शनि) है। अतः राश्यादि लग्न ०।२१।२१।१९ की कला १२८१०'। १९' में २०० के भाग देने से लब्धि ६ उदित नवांश संख्या हुई। वर्तमान सप्तम नवांश अर्धोदित है इसलिए शेष कला ८१'।१९' को ६० से गुणा कर २०० के भाग देकर लब्धि सप्तम नवांश का अवयव २४'।२४' अतः उदित नवांश सहित अर्धोदित

नवांशसंख्या ६।२४।२४ हुई।

अतः अनुपात हुआ कि १०८ नवांश्में सम्पूर्ण आयुकी हानि होती है। तो सार्धोदितोदित नवांश संख्या

लब्धि= (आयु X सार्धोदितनवांश सं.) / १०८

तुल्य हानि को आयुर्दाय में घटाने से स्पष्ट आयुर्दाय होगा। जैसे चक्रार्ध हानि और अस्त शत्रु-गृह हानि सिद्ध वर्षादि आयु ७६।५।२६।४२।२४ को दिनादि बनाकर २७।५।३६।४२।२४ इसकी सार्धोदितोदित (सावयव) नवांश संख्या (६।२४।२४) से गो-मूत्रिका क्रम से गुणा करने से गुणनफल १७६४१८।३०।२ में १०८के भाग देकर दिनादि १६३३।३०।१७ वर्षादि बनाने से ४।६।१३।३०।१७ इसको पूर्व शुद्ध वर्षादि आयु ७६।५।२६।४२।२४ में घटाने से शेष ७१।११।१३।१२।७ यह जातक का स्पष्ट आयुर्दाय यवनादि मत से हुआ।

(२) चक्र

अस्त-शत्रुगृहगत और चक्रार्ध हानि शुद्ध आयुर्दाय					
सूर्यायु	१८	६	२६	४३	४०
चन्द्रायु	११	६	१०	४६	२२
भौमायु	६	४	६	५३	१५
बुधायु	४	२	१४	२६	०
जीवायु	८	७	२८	८	५६
शुक्रायु	६	६	१५	२०	३६
सौरायु	१०	५	११	५८	२०
लग्नायु	६	४	२६	२२	१२
योग=	७६	५	२६	४२	२४
हानिमान=	४	६	१३	३०	७
स्पष्टायु	७१	११	१३	१२	१७

अथवा सार्धोदित नवांश संख्या से पृथक्-पृथक् ग्रह और लग्न के आयुर्दाय मान को १०८ के भाग देकर लब्धि को अलग-अलग आयु में घटाने से स्पष्टायु होती है। और सबके योग्य-तुल्य स्पष्टायु होती है। जैसे- सूर्य के आयुर्दाय वर्षादि १८।६।२६।४३।४० इसको दिनादि बनाने से ६७७६।४३।४० इसको सार्धोदितोदित नवांश संख्या ६।२४।२४। से गुणा करने से ४२४३५।२७।२१ इसमें १०८ के भाग देने से दिनादि ४०२।१०।४८ वर्षादि बनाने से १।१।१२।१०।४८ इसको सूर्य के आयुर्दाय १८।६।२६।४३।४०में घटाने से १७।८।१७।३२।५२ यह सूर्यका स्पष्टायुर्दाय हुआ। जिस ग्रह के जितने आयुर्दाय होते हैं, उसकी उतनी ही दशा भी समझी जाती है। जिसका क्रम आगे कहा है।पूर्व नवांश संख्या पूरा ७ मानकर क्रिया दिखलाई गई। जिससे स्पष्टायु में लगभग ५ मास का अन्तर होता है। इसलिए जहाँ तक हो सूक्ष्म मानकर ही ग्रहण करना चाहिए।४।

विशेष अर्थ– भाग क्रिया में अन्तिम शेष हर के आधे से अधिक हो तो अवयव में लब्धि १ अधिक ग्रहण करना चाहिए। आधा से अल्प हो तो त्याग कर देना चाहिए।।४।।

अथ पुरुषादीनां परमायुःप्रमाणज्ञानं शिखरिण्याऽऽह-

समाषष्टिर्द्विघ्नी मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः ।
विरूपा साऽप्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां
स्मृते छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ॥ ५ ॥

समाषष्टिर्द्विघ्नी इति ॥ समाशब्देन वर्षमुच्यते समानां वर्षाणां षष्टि-र्द्विघ्नी द्विगुणीकृता विंशत्यधिकं वर्षशतं भवति। एवं विंशत्यधिकं वर्षशतं पञ्च निशा पञ्च रात्रयोऽहोरात्राणीत्यर्थः। मनुजकरिणां मनुजानां मनुष्याणां करिणां हस्तिनां च परमायुः। हयानामश्वानां द्वात्रिंशद्वर्षाणि परमायुः। खरो गर्दभः करभ उष्ट्रः अनयोः पञ्चककृतिः पञ्चकस्य कृतिः पञ्चानां वर्गः पञ्चविंशतिः परमायुः। विरूपा साऽप्यायुरिति। सा पञ्चककृतिः विरूपा एकोना चतुर्विंशतिर्वर्षाणि वृषमहिषयोः वृषाणां महिषाणां च परमायुः। गोमहिष्योरित्यर्थः। शुनां सारमेयानां द्वादश वर्षाणि परमायुः। श्वग्रहणं सर्वेषां नखिनामुपलक्षणार्थे; तेन सिंह-मार्जारादीनामप्येतदेव स्मृतम्। छागादीनामिति दशकसहिताः षट् षोडश वर्षाणि परमायुः। छागादीनाम् आदिग्रहणान्मृगादीनामपि। परममिति सर्वेषां शेषभूतम्। किं परमायुर्दायप्रयोजनम्। अश्वादीनां जातानामायुःप्रमाणज्ञानार्थमिति। तद्यथा। अश्वादेर्जातस्य पुरुषवदायुः प्रमाणमानीय ततस्त्रैराशिकं कर्तव्यं यदि विंशत्यधिकवर्षशतं पञ्चदिना-धिकं पुरुषस्यायुः प्रमाणं तदा द्वात्रिंशद्वर्षायुः प्रमाणस्याश्वस्य किं स्यादिति। एवमागतमायुःप्रमाणमश्वस्य तत्कालजातस्य वाच्यम्। एवं सर्वेषामभि-हितप्राणिनां स्वायुषा परमेण त्रैराशिकं कृत्वा तत्कालजातस्यायुः प्रमाण-निर्देशः कार्यः। अन्ये एवं वदन्ति। यथापठितात्परमायुषः प्रमाणादधिकं नकश्चिज्जीवति। तदयुक्तम्। यस्माद्विंशत्यधिकाद्वर्षशतादधिकमप्यायुर्गणित-कर्मणा भवति तस्मात्परमायुःप्रमाणपठने त्रैराशिकमेव ज्ञातव्यमिति। ५

भाषा– १२० वर्ष ५ अहोरात्र भारतीय मनुष्य और हाथियों की परमायु कही गई है। घोड़ों की ३२ वर्ष, गदहे और ऊँटों की २५ वर्ष, गाय और भैंस की २४ वर्ष, कुत्तों की १२ वर्ष, बकरा, भेड़, हरिण आदि की १६ वर्ष परमायु कही गयी है, यह औसत मान है।। ५ ।।

विशेष– यहाँ सभी जानवरों की आयु कहने का प्रयोजन यह है कि– राजा महाराजाओं के यहाँ पालतू जानवर रहते हैं, उनके जन्म-समय से

शुभाऽशुभ फल और आयु जानने के लिए जन्मपत्र बनाया जाय तो उनकी आयु मनुष्य के समान ही उक्त रीति से साधन करे फिर अनुपात (त्रैराशिक) करे कि– यदि मनुष्य की परमायु (१२०) में इतनी आयु तो इष्ट जानवर की परमायु में कितनी? इस प्रकार गणितागत आयु को अपनी परमायु से गुणा कर १२० के भाग देने से लब्ध वर्षादि उस जानवर की स्पष्ट आयु होती है-

उदाहरण–मान लो कि उक्त उदाहरण के इष्टकाल ही में किसी घोड़े का जन्म हुआ, तो उक्त विधि से साधित आयुवर्षादि ७१।६।१०।१७।४६ को अश्व परमायु ३२ से गुणा करके गुणनफल में १२० का भाग देकर लब्ध वर्षादि १६।०। २६।४४।४३ यह उस घोड़े की स्पष्ट आयु हुई। यहाँ मनुष्य आदि के परमायु प्रमाण जो कहे गये हैं इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इससे अधिक मनुष्यादि जन्तु जी नहीं सकते। यहाँ तो ग्रहों की स्थितिवश गणितागत आयु १२० के आसन्न आते हैं और भारता में प्रायः अधिकतर उससे अधिक नहीं जीते। इसलिए आचार्यों ने मध्यम मान से परमायु का प्रमाण गणितागत मध्यम मान से कहा है क्योंकि विशेष योग और जातक के पुण्य-पाप कर्मवश गणितागत आयु से अधिक और न्यून भी हो जाते हैं। जो आचार्य ने स्वयं आगे– *'अमितमिहायुरनुक्रमाद् विना स्यात्'* ऐसा कहा है। अथवा तिब्बत में २४० वर्ष तक भी बहुत लोग जीते हैं। अतः शून्य ० से २४० वर्ष के औसतमान १२० वर्ष कहे गये हैं।।५।।

अथ यस्मिन्योगे जातस्य परमायुर्भवति तद्योगज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

अनिमिषपरमांशके विलग्ने शशितनये गवि पञ्चवर्गलिप्ते।
भवति हि परमायुषः प्रमाणं यदि सकलाः सहिताः स्वतुंगभेषु।६।

अनिमिषपरमांशक इति।। अनिमिषो मीनः तस्य परमांशको नवमनवांशकः तस्मिन्ननिमिषपरमांशके विलग्ने, शशितनये बुधे गवि वृषे च पञ्चवर्गलिप्ते स्थिते लिप्ताः पञ्चविंशतिं भुक्त्वा बुधो वृषे स्थितः सकलाः समस्ता अन्ये ग्रहाः सर्व एव यदि स्वतुंगभेषु स्थिताः परमोच्चगता भवंति तदा जातस्य परमायुः प्रमाणं विंशत्यधिकं वर्षशतं पञ्च-दिनाधिकमायुर्भवति। तत्र च कर्म तद्यथा आदित्यादयो ग्रहाः सलग्ना ईदृशाः अत्रादित्यादीनां बुधवर्जितानां यथा पठितानि परमायुः प्रमाण वर्षाणि भवन्ति। बुधस्य पुनः क्रियते। तत्र तावद्बुधो नीचान्मीना-द्विच्युतः तस्मात्तात्कालिका-दस्माद्बुधात् १।०।२५।१ बुधपरमनीचध्रुवकमिदं ११। १५।०संशोध्य जातम् १।१५। २५।० एतल्लिप्तापिण्डीकृतं

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
०	२	९	१	३	११	६	११
६	२	२७	०	४	२६	१६	२६
०	०	०	२५	०	०	०	५६
०	०	०	०	०	०	०	०

२७२५ एताभिस्त्रैराशिकं यदि भगणार्धलिप्तानामेतासां १०८०० बुधपरमनीचवर्षाणि षट् भवन्ति तदाऽऽसां नीचाक्रान्तलिप्तानां २७२५

लग्नम् ११।२०



किं स्यादिति। अत्र प्राग्वत्फलं वर्षादि १।६।५।० एतद्बुधपरमनीचवर्षेष्वेतेषु ६ दत्त्वा जातं ७।६।५ एतद् बुधस्य परमायुः। तत्र लग्नादेकादशस्थानस्थत्वाद्भौमस्य चक्रपातात्परमायुःप्रमाणवर्षपंचदशकादर्धं पातयित्वा सार्धानि सप्त (७।६) वर्षाणि। सौरस्याष्टमस्थानस्थत्वात्परमायुःप्रमाणाद्वर्षविंशतेः*(१)* पंचमभागं चत्वारि वर्षाणि पातयित्वा जातानि षोडश वर्षाणि (१६) आदित्यचन्द्रबृहस्पतिशुक्राणां परमायुः। लग्नस्य नवमनवांशकस्थत्वान्नव वर्षाणि भवन्ति। सर्वेषां स्थापनम्। सूर्यवर्षाणि १९। चन्द्रवर्षाणि २५। भौमवर्षाणि ७ मासाः ६। बुधवर्षाणि ७ मासाः ६ दिनानि ५। जीववर्षाणि १५। शुक्रवर्षाणि २१। शनिवर्षाणि १६। लग्नवर्षाणि ९। सर्वेषां योगः वर्षाणि १२० दिनानि ५। अत्र चादित्ये मेषस्थे कन्यास्थत्वं बुधस्य न सम्भवति तेन षड्भिर्ग्रहैरुच्चस्थैर्बुधे च वृषस्थे योगोऽयं प्रदर्शितः। अत्र च परमोच्चगते सूर्ये बुधस्य वृषस्थभागचतुष्टयं भुक्त्वा स्थितिर्भवति नास्मादधिकं यतो मध्यमार्कोदयराशिस्थाने शून्यं भागाः षट्पंचाशल्लिप्ता ६।५० भवति तदा तस्य स्फुटस्य परमोच्चता भवति। एष एव सूर्यो मध्यमबुधः। अत्र च यदा परमार्कफलं परमं च शीघ्रफलं धनगतं भवति तदा बुधो वृषे भागचतुष्के स्फुटो भवति तत्र यथादर्शितलग्ने यथावस्थितग्रहसंस्थायां वृषे चतुर्थभागे ईदृशो बुधो भवति १।४ अस्मान्नीचध्रुवकमिदं ११।१५ संशोध्य जातम् १।१९ एतल्लिप्तापिण्डीकृतम् २९४० एताभिस्त्रैराशिकं यदि भगणार्धलिप्तानामेतासां १०८०० षड् वर्षाणि तदैताभिः २९४० कानीति लब्धं वर्ष १ मासाः ७ दिनानि १८ एतद्बुधपरमनीचवर्षेषु दत्त्वाजातानि वर्षाणि ७ मासाः ७ दिनानि १८ एतदाद्येषु यथादर्शितवर्षेषु संयोज्य जातं

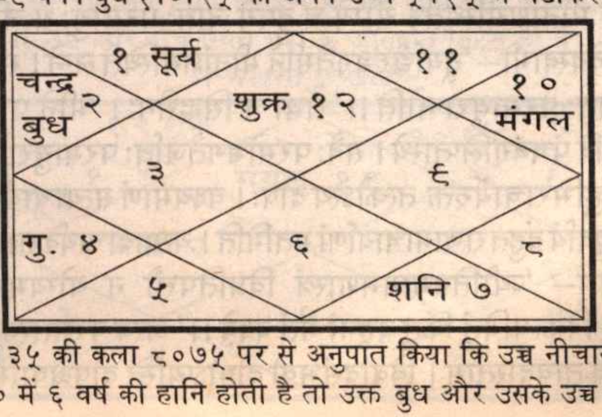
(१) अत्र जातकक्रोडकृता 'सौरस्याष्टमस्थानगतत्वात्परमायुष्प्रमाणादेकविंशतिमितादित्यादि'.... 'यदुक्तं तदयुक्तम्। यतो 'नवतिथिविषयाश्वि-भूतरुद्रैर्दशसहिता वशभिः स्वतुङ्गभेषु' इंति वचनेन सौरस्य परमायुष्प्रमाणं विंशतिरेवातो भट्टोत्पलोक्तमेव तथ्यमिति विचिन्तनीयं विपश्चितेति।

वर्षाणांविंशत्यधिकं शतं (१२०) मासः १ दिनानि १७ एतद्दर्शितपर-मायुःप्रमाणादधिकमप्यायुः संभवति इति। तस्मात्परमायुःप्रमाणपठनं त्रैराशिकार्थमेव व्याख्यातम्। अन्ये पुनः। अनिमिषपरमांशके विलग्ने योगमेवामुं व्याचक्षते। यथा मीने वर्गोत्तमगते लग्ने वृषभस्थेन बुधेन पंचविंशतिलिप्ता भुक्ता भवन्त्यन्ये च ग्रहाः स्वोच्चराशिषु परमोच्च-भागव्यतिरेकेणापि यदि स्थितास्तदा योगशक्त्यैव परमायुः प्रमाणं जातो जीवति। अथ बुधस्य परमनीचध्रुवकमिदं ११।१४ पूर्वदर्शितं सांप्रतं कर्मकाले कथमिदं प्रदर्शितमित्यत्रोच्यते। चतुर्दश भागान्भुक्त्वा पंचदशे पठिते परमनीचभागे व्यवस्थितो भवति अतश्चतुर्दश भागाः परमनीचस्थस्य प्रदर्शिताः। तत्रस्थस्य परमनीचप्रदर्शितमायुर्भवति तस्मा-द्यावत्पंचदशो भागो न भुक्तो बुधेन तावत्त्रैराशिकोत्पत्तिर्न कर्तव्येत्यतः कर्मकाले पंचदश भागाः प्रदर्शिताः। इत्येतत्सर्वेषामेव ग्रहाणां त्रैराशिककाले पठितैर्भागै-र्भुक्तिः प्रदर्शयितव्यानि तत्र त्रैराशिकार्थमुच्चध्रुवकाः, तथा त्रैराशिकार्थं परमनीचध्रुवकाः एतैः कर्म कर्तव्यमिति।६।

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
०	१	६	५	३	११	६	११
६	२	२७	१४	४	२६	१६	२६५६

भाषा– यदि मीन का अन्तिमांश लग्न हो और बुध वृषराशि की २५वीं कला पर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने परमोच्च में हो तो उक्तविधि से गणित द्वारा परम आयुर्दाय का प्रमाण होता है।

उदाहरण– राश्यादि लग्न=११।२६।५६।५६॥ रवि=०।१०।०॥ चं.=१।३।०॥ मं=६।२८।००॥ बु=१।०।२५।०॥ गु०=३।५।०॥ शु=११।२७।०॥ श=६।२०॥ यहाँ लग्न नवम नवांश में है इसलिये लग्नायु =६ वर्ष। बुध १।०।२५ को अपने उच्च ५।१५ में घटाकर राश्यादि



४।१४।३५ की कला ८०७५ पर से अनुपात किया कि उच्च नीचान्तर कला १०८०० में ६ वर्ष की हानि होती है तो उक्त बुध और उसके उच्च के अन्तर

८०७० में क्या? इस प्रकार उच्च बुधान्तर ८६७५ को ६ गुणा कर, १०८०० का भाग देने से लब्धवर्षादि ४।५।२५ को बुध की पठित उच्चायु १२ में घटाने से बुध की स्पष्टायुवर्षादि ७।६।५।। मङ्गल उच्च में है किन्तु एकादश भाव में पड़ने के कारण उच्चस्थ १५ वर्ष का आधा ७।६ सात वर्ष ६ मास मङ्गल की स्पष्टायु। एवं शनि सप्तम भाव में पड़ा है इसलिए उसके उच्चगत आयु में पञ्चमांश घटाने से १६ वर्ष शनि की स्पष्टायु। शेष सभी ग्रह के उच्चगत होने के कारण पठित उच्चायु क्रम से रवि (सूर्य) १९, चन्द्र की २५, गुरु की १५, शुक्र की २१ वर्ष। इस प्रकार सबका योग १२० वर्ष ५ दिन होता है।

इस प्रकार रवि को अपने उच्च में होने पर बुध कदाचित् भी अपने उच्च में नहीं हो सकते हैं। यदि बुध अपने उच्च में हो तो रवि और शुक्र कभी भी अपने उच्च में नहीं हो सकते हैं। इसलिए लग्न की परमायु प्राप्ति के लिये मीन का अन्तिम अंश लग्न कल्पना की गई है। तथा रवि को अपने उच्च (मेष में १० अंश पर) रहने से बुध अपने उच्च के परम समीप वृष के ४ अंश तक जा सकता है। क्योंकि रवि का परम फल ऋण और बुध का परम फल धन हो तो रवि से बुध २४ अंश आगे रहेगा। इस प्रकार यदि रवि परमोच्च में हो तो कदाचित् परमान्तरित होकर बुध की आयु ७ वर्ष ७ मास १८ दिन अर्थात् पूर्व साधित आयु से १ मास १३ दिन अधिक होती है। इस प्रकार गणितागत आयु १२० वर्ष १ मास १८ दिन तक आती है। किन्तु आर्षोक्त परमायु प्रमाण १२० वर्ष ५ दिन है। वह बुध को वृष के २५ कला पर ही मानने से सिद्ध होता है।।६।।

अथास्यापरमतायुर्दायस्य दूषणार्थं शालिन्याऽऽह—

आयुर्दायं विष्णुगुप्तोऽपि चैवं देवस्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे।
दोषश्चैषां जायतेऽष्टावरिष्टं हित्वा नायुर्विंशतेः स्यादधस्तात्।७।

आयुर्दायमिति।। एतदायुर्दायं न केवलं मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैरुक्तं यावद्विष्णुगुप्तेनापि चाणक्यापरनाम्नैवमुक्तम्। आचार्यदेवस्वामी तथा सिद्धसेनश्चैवं चक्रे कृतवानित्यर्थः। तथा च विष्णुगुप्तः- 'परमोच्चगतैः सर्वैर्मीने मीनांशसंस्थिते। सौम्ये च वृषगे जातः परमायुः स जीवति।।' तथा च देवस्वामी— 'सूर्याद्यैरुच्चगतैर्मीने मीनांशसंस्थिते लग्ने। सौम्ये वृषगे याते जातः परमायुराप्नोति।।' तथा च सिद्धसेनः। 'मीने परमांशगते सौम्ये गवि पंचवर्गलिप्तास्थे। सर्वैः परमोच्चगतैर्जातः परमायुराप्नोति।।' यद्येवं बहुभिराचार्यैरुक्तं तत्कोऽस्य दोषः। वक्ष्यमाणं सत्याचार्यमते प्रदर्शितमायुर्दायं बहुतराणामाचार्याणां मतमिति। यस्मादाचार्यवराहमिहिरस्य प्रतिज्ञेयम्— 'ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्। स्वयमेव विकल्पयितुं किंतु बहूनां मतं वक्ष्ये।।' अस्य परमतस्य बहुतरविरुद्धत्वं तावदास्ताम्। विवादसंभवो दोषोऽप्यस्ति दोषश्चैषामित्यादि।

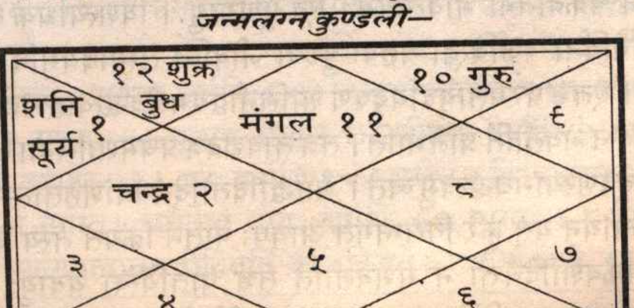
एषामाचार्याणां मते दोषो जायते। कीदृश इत्याह। अष्टावरिष्टमित्यादि। वर्षाष्टकं यावज्जातानामरिष्टमुक्तं वर्षाष्टकं हित्वा त्यक्त्वा वर्षविंशतेर-धस्ताद्दर्शितप्रकारेणायुर्न स्यान्नागच्छति। एवं वर्षाष्टकादूर्ध्वमरिष्टं नास्ति तस्माद्वर्षाष्टकादूर्ध्वं वर्षविंशतेरर्धस्तान्न कस्यचिन्मरणमापद्यते। यावच्च म्रियंतो दृश्यन्ते अयं तेषां प्रत्यक्षो दोषः॥७॥

भाषा– इसी (मय-यवनादि कथित) प्रकार से विष्णुगुप्त, देवस्वामी और सिद्धसेन नामक आचार्यों ने भी आयुर्दाय साधन किया है। परञ्च उनके इस मत से प्रत्यक्ष दोष है कि इस प्रकार से साधित आयु २० वर्ष से कम नहीं होती। परञ्च ८ वर्ष पर्यन्त जो जातक का अरिष्ट कहा गया है उसको छोड़कर भी २० वर्ष से पूर्व मरते हुए देखे जाते हैं॥७॥

विशेष– आचार्य यहाँ पर यह दोष दिखलाते हैं कि जैसे सब ग्रहों को उच्च में और बुध को अपने उच्च के आसन्न रवि से परम फलान्तरित मानने से परमायु १२० वर्ष ५ दिन होती है। और इसी प्रकार यदि बुध को वृश्चिक के २५ कला पर और लग्न को प्रथम अंश पर तथा शेष ग्रहों को अपने-अपने नीच में कल्पना कर आयुर्दाय बनाया जाय तो २० वर्ष से कम आयु नहीं होती है। अतः २० वर्ष से कम में किसी का मरण नहीं होना चाहिए। कहो कि 'वह अरिष्ट योग पड़ने पर मरता है' तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि बालारिष्ट ८ वर्ष तक ही कहे गये हैं। फिर आठ वर्ष के ऊपर और २० वर्ष के भीतर भी कितने ही मरते हैं। यह प्रत्यक्ष दोष है।

भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं कि– 'यह श्लोक असङ्गत है,' इससे मालूम होता है यह वराहमिहिर का पद्य नहीं है, किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है। क्योंकि उक्त प्रकार से २० वर्ष से कम भी आयुर्दाय का मान आता है। जैसे उदाहरण-लग्न राश्यादि १०।०।१॥ रवि ०।१०॥ चन्द्र १।३॥ शुक्र ११।२७॥ बुध ११।१५।०॥ गुरु ६।५०॥ शनि ०।२०।०॥ मं० १०। २८।०॥ अब यहाँ पूर्व विधि से लग्न के अंश शून्य होने के कारण लग्नायु वर्षादि ०॥ उच्च और नीच स्थित ग्रहों के आयुर्दाय पठित ही हैं। मङ्गल की

जन्मलग्न कुण्डली–



आयु जानने के लिये स्पष्ट मङ्गल के उच्च ६।२८ का अन्तर १ राशि की कला १८०० को ६० मास से गुणा करके १०८०० के भाग देकर लब्ध १५ मास अर्थात् १ वर्ष ३ मास, इसको भौम परमोच्च पठित वर्ष १५ में घटाने से १३ वर्ष ६ मास, यह मंगल की आयु हुई। गुरु के 'नीच में रहने से' वर्षादि आयु ७।६ किन्तु द्वादश भाव में पड़ने के कारण 'व्ययभवनादसत्सु वामं सत्स्वर्ध' इत्यादि वचनानुसार चक्रार्धपात से ३।६ वर्षादि आयु हुई। तथा सूर्यायु १६, चन्द्रायु २५, बुधायु ६, शुक्रायु २१, शनि की आयु १० वर्ष, सबका योग ९८ वर्ष ६ मास। फिर लग्न में पाप (मंगल) के होने के कारण लग्न के भुक्तनवांश ९० वर्तमान कुम्भ के अर्धोदितोदित नवांश संख्या ९१ से समस्त आयुर्दाय को गुणा कर ८९६३।६ इसमें १०८ के भाग देने से लब्ध वर्षादि ८२।११।२८।२० इसको समस्त आयु में घटाने से शेष स्पष्टायु वर्षादि १५।६।१।४० यह आठ से अधिक और २० से कम प्रत्यक्ष आता है। इसलिये 'नायुर्विंशते स्यादधस्तात्' यह कहना अयुक्त हुआ।' परञ्च इस प्रकार असंगति होने पर 'यह वराहमिहिर का पद्य ही नहीं है?' ऐसा मानना भी असंगत ही है, क्योंकि प्रमाद मनुष्यमात्र से हो सकता है।।७।।

अधुना तेषामेवाचार्याणां मते आयुर्दायदूषणान्तरं शालिन्याऽऽह—

यस्मिन्योगे पूर्णमायुः प्रदिष्टं तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यैः।
प्रत्यक्षोऽयं तेषु दोषः परोऽपि जीवन्त्यायुः पूर्णमर्थैर्विनापि।८।

यस्मिन्योग इति।। अनिमिषपरमांशके विलग्न इत्यस्मिन्योगे विंशत्यधिकं वर्षशशं सपंचदिनं परमायुः पूर्णं प्रदिष्टं तस्मिन्योगे षड्ग्रहाः परमोच्चगता भवंति। षड्भिश्च परमोच्चगतैश्चक्रवर्तित्वं भवतीति प्रोक्तमभिहितमन्यैराचार्यैः। तथा च बादरायणः- 'षड्भिः स्याच्चक्रवर्ती त्रिभुवनमखिलं शास्ति सर्वैर्ग्रहेन्द्रैः।' इति। यवनेश्वरश्च— 'षड्राजराजर्द्धिबलोपकर्षप्रदानमानेष्वभिजातशक्तिः।' तत्र परमोच्चगता यावंतः षड् ग्रहा न भवन्ति तावत्परमोच्चायुर्न प्राप्नोति। यदा परमोच्चगता भवन्ति तदा जातेन चक्रवर्तिना भवितव्यम्। एवं पूर्णमायुः। विंशत्यधिकं वर्षशतमर्थैर्धनैर्विना वर्जयित्वा बहवः पुरुषा जीवन्ति तस्मादयमपि तेष्वपरो दोषः। एतच्च परमतायुर्दायदूषणं शालिनीद्वयमसंबंद्धत्वाद्वराहमिहिरकृतमेव न भवतीति प्रतिभाति। तत्र तावद्यदत्र प्रथमशालिन्या दूषणमुक्तं तस्य दूषणस्यासंबद्धत्वमुच्यते। 'सार्द्धोदितोदितनवांशहतात्समस्तात्' इति न्यायेन यत् क्रूरे विलग्नगत आयुषः पातनं क्रियते तस्य प्रतिलग्नं प्रत्यंशकवशादियत्ता न संभवतीति तच्च पातयित्वा यदायुः शिष्यते तस्यापीयत्ता नास्तीति। तस्माद्यदुक्तं नायुर्विंशतेः स्यादधस्तात्तदयुक्तम्।

अत्रोदाहरणम्। यथा कुम्भलग्नस्याद्यंशकोदये आदित्यचंद्रशुक्राः परमोच्चे बुधजीवशनैश्चराः परमनीचे। भौमश्च कुंभस्याप्यष्टाविंशतितमं भागं भुक्त्वा स्थितस्तदा तात्कालिका ग्रहाः सलग्नाः *(१)* अत्र लग्नं न किंचिद्भुक्तमिति लग्नायुर्दायो नास्ति। परमोच्चगतानां च ज्ञात एव। भौमस्य क्रियते तात्कालिकाद्भौमादस्मात् १०।२८ भौमस्य परमोच्चध्रुवकमिदं ६।२८। संशोध्य जातम् १।० एतल्लिप्तापिंडीकृतम् १८००।

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
०	१	१०	११	१०	११	०	१०
६	२	२८	१४	४	१४	१६	०
०	०	०	०	०	०	७	१

अथ त्रैराशिकं यदि भगणार्द्धलिप्तानामेतासां १०८०० भौमनीचमासाःनवति-(९०)-र्भवन्ति तदैतासां कियन्त इति लब्धा मासाः १५ एतैर्वर्षं सत्रिमासं जातं वर्ष१ मासाः ३ एतद्भौमपरमोच्चवर्षेष्वेतेषु १५ संशोध्य जातं वर्षाणि १३ मासाः ९ एष भौमायुर्दायः। लग्नाद्द्वादशस्थत्वाच्चक्रपातेनार्द्धं पातयित्वा जातो जीवायुर्दायः वर्षाणि ३ मासाः ९ परमोच्चगतानां परमनीचगतानां च शत्रुक्षेत्रस्थत्वात् त्र्यंशमस्तं गतानामर्द्धं च न पात्यते यस्मादनिमिषपरमांशके विलग्ने इत्यत्र योगे चंद्रमसी वृषस्थत्वाद्यद्यायुषः त्रिभागः पात्यते तदा पूर्णमायुर्न भवतीति यस्मादन्याचार्यमतमिति तात्कालिकमित्रामित्रमेवंविधावुक्तम्— 'मूलत्रिकोणाद्धनधर्मबंधुपुत्रव्ययस्थानगता ग्रहेंद्राः। तात्कालिकाः स्युः सुहृदो ग्रहस्य स्वोच्चे च यो यस्य विकृष्टवीर्यः। जामित्रषष्ठाष्टमशत्रुमूर्तिद्यूनत्रिकोणैकगृहे निविष्टाः। तत्कालमेते रिपवो भवंति ह्येतानि मित्राणि रिपूश्च वक्ष्ये॥' अनेनापि शुक्रश्चंद्रमसः तात्कालिकं मित्रं न भवति। तस्मान्मीनस्थे शुक्रे वृषस्थश्चंद्रमाः शत्रुगृहगो भवति। तस्य च शत्रुक्षेत्रस्थत्वाद्यद्यायुषस्त्रिभागः पात्यते तदा अनिमिषपरमांशक इत्यत्र योगे पूर्णमायुर्न प्राप्नोतीति। तच्चाचार्येण श्रृंगग्राहिकयैव प्रदर्शितम्। तेनैतज्ज्ञापयति। परमोच्चगतानां परमनीचगतानां च शत्रुक्षेत्रे त्र्यंशमस्तं गतानां चार्द्धं न पात्यते तेन च यथादर्शितयोगं पृथक्पृथग्ग्रहायुर्दायवर्षाणि लिख्यंते। सूर्यस्य वर्षाणि १९। चन्द्रस्य वर्षाणि २५। भौमस्य वर्षाणि १३ मासाः ९। बुधस्य वर्षाणि ६। जीवस्य वर्षाणि ३ मासाः ९। शुक्रस्य वर्षाणि २१। शनेः वर्षाणि १०। लग्नेन न किंचिद्भुक्तमिति लग्नायुर्दायो नास्ति। अथैतेषां योगः वर्षाणि ९८ मासाः ६। अथाङ्गारकस्य लग्नगतत्वात्सार्द्धोदितेति कर्म क्रियते। तत्र च लग्ने कुम्भा-

(१) चक्रे द्रष्टव्य

रम्भत्वान्नवति-(९०)- र्नवांशका भुक्ता भवन्ति। ते च नवांशकाश्च-क्रस्योदिता उदयगत एकनवतिसमाः (९१) तेनैकनवत्या सर्वायुःपिण्डमिदं वर्षाणि ९८ मासाः ६ संगुण्य जातं ८९६३।६। अस्याष्टाधिकशतेन भागमपहृत्यावाप्तवर्षाणि ८२ मासाः ११ दिनानि २८ घटिकाः २० एतानि वर्षाणि अस्मात् ९८।६ संशोध्य जातं वर्षाणि १५ मासाः ६ दिनं १ कलाः ४० एवमष्टभ्य ऊर्ध्वं विंशतेरधस्तादायुरुत्पन्नमिति। तस्माद-युक्तम्। नायुर्विंशतेः स्यादधस्तादिति वदन्ति। यथा क्रूरहीनं मीनलग्नं हृदि कृत्वैतद्वराहमिहिरेणोक्तम्। अनिमिषपरमांशके विलग्ने इति अने-नापि प्रकारेण न वक्तव्यम्। यथा नायुर्विंशतेः स्यादधस्तादित्यत्र धन्विलग्ने क्षीणे चन्द्रे विंशतितमेभागे बुधस्तत्रास्तमितः सर्वेष्वन्येषु यस्य जन्म भवति तस्य चक्रपातेनैवायुर्दायो बहुः पततीति। तस्यैव ताव-त्प्रदर्श्यते। तत्र तात्कालिका ग्रहाः सलग्नाः। रविः ६।६ चन्द्रः ७।२ भौमः ३।२७ बुधः ५।२० गुरुः ६।४ शुक्रः ५।२६ शनिः ०।१६ लग्नं ८।० तत्र बुधस्योच्चध्रुवकं ५।१५ बुधः ५।२० अस्मात्पातयित्वा शेषं ०।५ लिप्तापिण्डीकृतं ३०० ततस्त्रैराशिकेन तदन्तरं परमनीचमासैः ७२ गुणितं भगणार्धलिप्ताभिः १०८०० भक्तं लब्धं वर्षं ० मासौ २ एतत्परमायुषः निपात्य जातं वर्षाणि ११ मासाः १० अन्येषां परम-नीचस्थत्वाज्ज्ञायते। लग्ने न किञ्चिद्भुक्तमिति तस्यायुर्दायो नास्ति। चन्द्रस्य क्षीणस्य पापत्वाल्लग्नाद्द्वादशस्थत्वाच्च चक्रपातेन सर्वं पतति तदायुर्दायो नास्ति। आदित्यस्य लग्नैकादशस्थत्वाच्चक्रपातेनार्द्धं पात-यित्वा जातं वर्षाणि ४ मासाः ९। बुधस्यात्मितत्वादर्धं पातयित्वा जातानि वर्षाणि ५ मासाः ११। दशभस्थत्वाच्छुक्रः स्वादायुषस्तृतीय-मंशमपहरति इति सौम्यत्वात्तदधर्मस्मात्षड्भागाद्वर्षमेकं नव मासान्पात-यित्वा जातान्यष्टौ वर्षाणि नव मासाश्च शुक्रस्य। भौमस्य लग्नाष्टमस्थ-त्वात्पञ्चमभागं सार्द्धं वर्षं पातयित्वा जातानि वर्षाणि षट् इति। एवं सर्वेषां वर्षाणि। वर्षाणि ४ मासाः ९ सूर्यस्य। वर्षाणि ० मासाः ० चन्द्रस्य। वर्षाणि ६ मासाः० भौमस्य। वर्षाणि ५ मासाः ११ बुधस्य। वर्षाणि ७ मासाः ६ जीवस्य। वर्षाणि ८ मासाः ९ शुक्रस्य। वर्षाणि १० मासाः ० शनैश्चरस्य। वर्षाणि० मासाः० लग्नस्य। सर्वेषां योगः वर्षाणि ४२ मासाः ११। अत्रासम्भवेऽप्यभिगम्यापि ब्रूमः। एवंविध आयुर्दायः सर्वेऽप्यस्तङ्गता यदि भवन्ति तथापि सूर्योच्छिन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्राविति कृत्वा तथापि पञ्चत्रिंशद्वर्षाणि मासोनानि यतो

बुधस्य पूर्वमेवार्द्धं पातितम्। एवं च द्विचत्वारिंशतोऽधस्तादायुर्नागच्छ-तीति तथापि विंशतेरधस्तादित्यसम्बद्धम्। अत्राप्यन्ये एवं वदन्ति। क्रूरहीने विलग्ने जाता अष्टाभ्य ऊर्ध्वं विंशतेः अधस्तान्म्रियमाणा दृश्यन्ते तेनान्याचार्यमतमसम्बद्धम्। अत्रोच्यते– अन्याचार्यमतं पूर्वापर्येण विचार्यैतद्वदन्ति यैरेवाचार्यैरनेन मार्गेणायुर्दायः प्रदर्शितः तैरेवायं मृत्यु-योगोऽभिहितः। स चेह लिख्यते। तथा च बादरायणः– 'षष्ठाष्टमस्थो रिपुदृष्टमूर्तिः पापग्रहः पापगृहे यदि स्यात्। स्वांतर्दशायां मरणाय जन्तोर्ज्ञेयः स युद्धे विजितो यदान्यैः।' तथा च यवनेश्वरः– 'षष्ठाष्ट-मस्थोऽशुभदस्त्वरौद्रः पापैः सुहृत्स्थानगतश्च दृष्टः। स्वान्तर्दशायां प्रकरोति मृत्युं पाशाध्वबन्धादिपरिक्षयाद्वा।' तथा च सारावल्याम्– 'क्रूरदशायां क्रूरः प्रविश्य चान्तर्दशां यदा कुरुते। पुंसां स्यात्सन्देहस्तदारियोगा हि सदैव महान्॥ रवितनयस्य दशायां क्षितिजस्यांतर्दशा यदा भवति। बहुकालजीविनामपि मरणं निःसंशयं पुंसाम्॥ क्रूरराशौ स्थितः पापः षष्ठे वा निधनेऽपि वा। तत्स्थेन वारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः॥ यो लग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नस्यान्तर्दशां गतः। करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यः प्रभाषते।' एवं क्रूरहीने लग्ने ये जातास्तेषां वर्षाष्टकादूर्ध्वं दर्शित-कालादधस्तान्मरणं सम्भवत्येव। ते चापि मृत्युयोगेनानेन मृता इति ज्ञेयाः। यस्मात्तस्यांतर्दशा दर्शितग्रहसम्बन्धिनी कदा भवतीत्यत्रायं नियमः। तस्मादन्याचार्यमतेनैवाष्टाभ्य ऊर्ध्वं दर्शितकालादधस्तान्मरणं सम्भवत्येव तस्मादेतद्दूषणमसम्बद्धं प्रथमम्। अथ द्वितीयस्य दूषण-स्यासम्बद्धत्वमुच्यते। अत्र चक्रवर्तित्वयोगं विनापि दीर्घमायुः सम्भवति। अत्रोदाहरणम्– यत्र तात्कालिका ग्रहाः सलग्नाः वृषेऽर्को दश भागा-न्भुक्त्वा स्थितः एवं मिथुने चंद्रमास्त्रीन्भागान् कुंभे भौमोऽष्टाविंशति-भागान् मेषे बुधः पञ्चदश भागान् सिंहे जीवः पञ्च भागान् मेषे सप्तविंशति सत्रिभागाञ्छुकः कुम्भे विंशतिभागान्सौरः धन्विलग्न-मन्त्येंऽशे। तद्यथा। ईदृशा ग्रहा अत्र पूर्वप्रदर्शितकर्मणागतानि ग्रहा-युर्दायवर्षाणि लिख्यन्ते। वर्षाणि १७ मासाः ५ सूर्यस्य। वर्षाणि २२ मासाः ११ चन्द्रस्य। वर्षाणि १३ मासाः ९ भौमस्य। वर्षाणि ७ मासाः ० बुधस्य। वर्षाणि १३ मासाः ६ जीवस्य। वर्षाणि १ मासाः २ दिनानि २६ घट्यः ३० शुक्रस्य। वर्षाणि १३ मासाः ४

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
१ १०	२ ३	१० २८	० १५	४ ५	० २७ २०	१० २०	८ २९ ५०

शनेः। वर्षाणि ६ मासाः ० लग्नस्य। अथ बृहस्पतेर्वर्षाणां चक्रपातादष्टमभागमपास्य जातानि वर्षाणि १३ मासाः ० दिनानि ११ घट्यः १५। चन्द्रस्य षड्भागमपास्य जातानि वर्षाणि १६ मासाः १ दिनानि ५। रवेः गुरुर्मित्रमतोऽन्यथान्य इति शुक्रः शत्रुः स चार्कमूलत्रिकोणात्सिंहान्नवमेस्थाने स्थितः न तस्मात्तात्कालिकं मित्रीभूतः तेन वृषस्थः समक्षेत्रस्थितस्तेन तस्यायुर्दायः न किञ्चित्पतति चन्द्रश्च मिथुने मित्रक्षेत्रे स्थितः। तस्यापि यथादर्शितान्येवायुर्दायवर्षाणि यस्मादुक्तम्। 'इन्दोर्बुधं देवगुरुं च विद्यात्' अङ्गारकः कुम्भे शत्रुक्षेत्रे स्थितः। यस्मादुक्तम्– 'भौमस्य शुक्रः शशिजश्च मित्रम्' इति। शेषान् रिपून् शेषत्वाच्छनैश्चरस्तस्य शत्रुस्तात्कालिकश्चैकगृहे निविष्टत्वाच्छनैश्चरोऽधिशत्रुः किं त्वङ्गारकस्य शत्रुक्षेत्रस्थस्यापि न पतति। यस्मादुक्तम्– 'हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभाग' इति। तस्मादङ्गारकस्य यथागतमेवायुः। 'चान्द्रेरनर्का' इति वचनाद्भौमो बुधस्य मित्रम्। तेन तस्य मेषस्थत्वाद्यथागतमेवायुर्बुधस्य। बृहस्पतेरप्यादित्यो मित्रम्। यस्मादुक्तम्– 'गुरोश्च भौमं परिहृत्य सर्वे' इति तस्मात्सिंहस्थस्य बृहस्पतेः यथागतमेवायुः। शुक्रस्य मेषे स च मित्रक्षेत्रे। यस्मादुक्तम्– 'भृगुनन्दनस्य त्वर्केन्दुवर्ज्याः सुहृदः प्रदिष्टाः।' तस्मात्तस्यापि यथागतमेवायुः। शनैश्चरस्यापि कुम्भे स्वक्षेत्रे स्थितत्वाद्यथागतमेवायुः। लग्नस्य पातचारहीनत्वात् यथागतमेवायुः। एवमायुर्दायवर्षाणि पृथक्पृथग्लिख्यन्ते। वर्षाणि १७ मासाः ५ सूर्यस्य। वर्षाणि १६ मासाः १ दिनानि ५ चन्द्रस्य। वर्षाणि १३ मासाः ६ भौमस्य। वर्षाणि ७ मासाः ० बुधस्य। वर्षाणि १२ मासाः० दिनानि ११ घट्यः १५ गुरोः। वर्षाणि १६ मासौ २ दिनानि २६ घट्यः ३० शुक्रस्य। वर्षाणि १३ मासाः ४ शनेः। वर्षाणि ६ मासाः ० लग्नस्य। एवंविधे योगे दशाधिकं वर्षशतमप्यायुः। वर्षादि ११०।१०।१२।४५ सम्भवति ११३ मासाः ११। यदा चन्द्रवर्षाणि २२ मासाः ६ तदा सर्वेषां योगः वर्षादिः ११४।८।७।४५। एवंविधे योगे चतुर्दशाधिकं वर्षशतमप्यायुः सम्भवति। केमद्रुमाख्यश्चायं योगः। यस्माद्वक्ष्यति– 'हित्वाऽर्कं सुनफानफादुरुधरा स्वांत्योभयस्थैर्ग्रहैः शीतांशोः कथितोऽन्यथात्र बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ।' तस्मादेवंविधे योगे जातो दीर्घमायुः प्राप्नोति। केमद्रुमत्वाच्च दरिद्रो भवति। वक्ष्यति च 'केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वाः प्रेष्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः।' केवलं दरिद्राः दीर्घायुषो दृश्यन्ते। न केनचित्कस्यचिद्दरिद्रस्यायुःप्रमाणं ज्ञातम्।

यथायं दरिद्रो विंशत्यधिकेन वर्षशतेन सपञ्चदिनेन मृतः तस्मात्क्षौद्रमेव दूषणं ज्ञातव्यम्। एवमस्य दूषणस्यासम्बद्धत्वं प्रदर्शितमिति। असम्भाव्यत्वाद्वराहमिहिरकृतमेतच्छालिनीद्वयं न सम्भाव्यते यच्च दर्शिताचार्यमतेनायुर्दायं त्यक्त्वा सत्यमतायुर्दायमङ्गीकरिष्यत्याचार्यस्तत्र च सत्यमतस्य बहुतराणामाचार्याणां मताङ्गीकरणमेव प्रयोजनम्। यत्मात्पूर्वमेवाचार्यमतेनायुःप्रतिज्ञा व्याख्याता। 'ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्। स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये।।' अथ कश्चिदाह। ननु योऽयं योगस्त्वया प्रदर्शितः स केमद्रुम एव न भवति। यदाचार्य एव वक्ष्यति– 'केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते' इति। लग्नात्सप्तमस्थः केन्द्रस्थश्चन्द्रमास्तस्मादयं केमद्रुमो न भवति। अत्र च ब्रूमः। अत्र चन्द्रमा न गण्यते यस्माच्चन्द्रमसः सकाशाद्ग्रहेणान्येन योगः कर्त्तव्य इति। यद्येवं तल्लग्नात्केन्द्रस्थः कथं करोतीत्यत्रोच्यते। चन्द्रलग्नयोस्तुल्यत्वात्। तथा च यवनेश्वरः– 'मूर्तिञ्च होरां शशिनं च विद्यात्।' अत्र च गार्गिः– 'व्ययार्थकेन्द्रगश्चन्द्राद्विना भानुं न चेद्ग्रहः। कश्चित्स्याद्वा विना चन्द्र लग्नात्केन्द्रगतोऽथवा। योगः केमद्रुमो नाम तदा स्यात्तत्र गर्हितः। भवन्ति निन्दिताचारा दारिद्र्यामयसंयुताः।।' इति। तस्माल्लग्नात्सप्तमस्थे चन्द्रमसस्य योगस्य केमद्रुमता सिद्धैवेति।। ८।।'

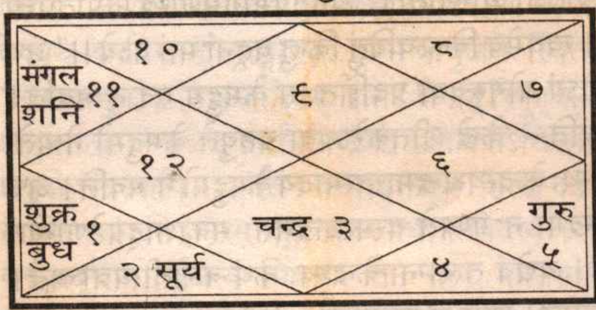
भाषा– जिस योग में पूर्णायु प्रमाण कहा गया है उस योग में ६ ग्रहों के उच्च में होने के कारण अन्य आचार्यों ने चक्रवर्तित्व (राजाधिराजत्व) योग माना है। किन्तु उनके इस मत में तो और भी प्रत्यक्ष दोष है कि बिल्कुल धनहीन आदमी भी पूर्ण आयुर्दाय से जीवित रहता है।। ८।।

विशेष अर्थ– इस श्लोक का भावार्थ यह है कि– जब ग्रहों के उच्चगत रहने पर ही पूर्ण आयुर्दाय कहा गया है तो उसमें चक्रवर्तित्व योग भी होता है, तब जो दीर्घायु हो वह चक्रवर्ती राजा या पूर्ण धनवान् भी हो। किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है। बहुत से दीर्घायु निर्धन भी होते ही हैं। इसलिए मययवनादि का आयुर्दाय साधन असङ्गत है। यहाँ भट्टोत्पल कहते हैं कि– 'पूर्वोक्त मय-यवनादि के मत 'नीचेऽतोर्ध्वं' इत्यादि से उच्च से भिन्न स्थान में भी दीर्घायु (पूर्णायु) योग होता है, जिसमें केमद्रुम (दारिद्र्य) योग भी होता है अतः पूर्णायु होकर भी दरिद्र हो सकता है। इसलिए मालूम होता है कि यह वराहमिहिर का पद्यन नहीं है, किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है।'

जैसे उदाहरण– राश्यादि रवि १।१०।०।। चन्द्र २।३।०।। मंगल १०।२८।०।। बुध ०।१५।०।। गुरु ४।५।०।। शुक्र ०।२७।२०।। शनि १०।२०।०। लग्नम् ८।२६।५६।५६ यहाँ 'नीचेऽतोऽर्धं ह्रसति' इत्यादि प्रकार से वर्षादि स्पष्ट सूर्यायु १७।५।। चन्द्रायु १६।१।५।। भौमायु

१३।६।। बुधायु ७।०।। जीवायु १२।०।११।१५।। शुक्रायु १६।२।२६।३०।। शनैश्चरायु १३।४।०।। लग्नायु ६।०।। सबका योग ११०।१०।१२।४५ वर्षादि आयुर्दाय सिद्ध होता है। तथा 'हित्वाऽर्के सुनफाऽनफा' इत्यादि चन्द्रयोगाध्याय ३ श्लोक के अनुसार केमद्रुम योग भी है। अत: दारिद्र्ययोग में भी पूर्णायु प्राप्त हुआ।

जन्म लग्नकुण्डली



इसलिए मय आदि के आयुर्दाय साधन प्रकार में यह दोष देना भी असंगत सिद्ध होता है।।८।।

अथ जीवशर्ममतेन सत्याचार्यमतेन चायुर्दायमौपच्छंदसिकेनाऽऽह—

स्वमतेन किलाह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुष: स्वरांशम्।
ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्।९।

स्वमतेनेति।। जीवशर्मा नामाचार्य: स्वमतेनात्मीयमतेन परमायुषो विंशत्यधिकस्य वर्षशतस्य सपञ्चदिनस्य स्वरांशं सप्तमभागं प्रत्येकस्य ग्रहस्यायुर्दायमाह कथयति। किलशब्दस्तथा नामप्रदर्शनार्थ:। तद्यथा—परमायु: १२०।०।५ अस्य सप्तभिर्भागमपहृत्यावाप्तं वर्षादि १७।१।२२।८।३४। यथान्याचार्यैर्नवतिथिविषयेत्येवमादीनि परमोच्चगता-नामादित्यादीनां वर्षाणि पठितानि तथैतानि परमायु:स्वरांशवर्षाण्ये-कैकस्य जीवशर्मपठितानि। 'नीचतोऽर्द्धं ह्रसति' इत्यत्रापि स्थितमेव तत्रार्द्धमेतत् ८।६।२६।४।१७। एतानि परमनीचस्थस्यैकैकस्य ग्रहस्य एतै: प्राग्वदेव त्रैराशिकं कृत्वैकैकस्य ग्रहस्यायुर्दाय: कर्तव्य:। अत्रापि वक्रं विना शत्रुक्षेत्रस्थस्य ग्रहस्य त्र्यंशापहानि:। शुक्रशनैश्चरौ विना भौमं विनास्तंगतस्यार्द्धोपहानि:। सर्वार्द्धत्रिचरणेत्यादिका चात्र पातापहानि:। क्रूरे विलग्ने सार्द्धोदितोदितेति हानि:। एतत्सर्वं जीवशर्मणोऽप्यन्याचार्यै: समानम्। तथा च जीवशर्मा—'सप्तदशै- (१७) को (१) द्वियमौ (२२) वसवो (८) वेदाग्नयो (३४) ग्रहेंद्राणाम्। वर्षाण्युच्चस्थानां नीचस्थानामतो-ऽर्द्धं स्यात्। मध्येऽनुपातत: स्यादानयनं शेषमत्र यत्किंचित्। पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञै:।।' इति। अत्रानयनं सुखोपायेन प्रदर्श्यते।

'स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भादूनो भमंडलात्। तद्भागाः क्वब्धिषड्भोगि (८६४१) हता वेदाभ्रसायकैः (५०४)॥ भक्ता दिनानि यल्लब्धं तदायुर्जीवशर्मजम्। दिनैस्तु त्रिंशता मासा मासेभ्यो रविभिः समाः॥' न केवलं ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशमेतत्। तेनोक्तम्— यावत्स्वमतेनेति। अनेनैवं प्रतिपादयति। यथैतन्मया ऋषिकृतेष्वाचार्यकृतेषु वा न केषुचिद्दृष्टमिति। तस्मादस्यायुर्दायस्य जीवशर्मणः स्वमतकरणमेष दोषः। एवं च्छास्त्रेषु सर्वाचार्यमतेनायुर्दायो व्याख्यातः। अत्राचार्येण परमतमेवोपन्यस्तम्। मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैरिति। न च यवनेश्वर-कृते शास्त्रे तथाविध आयुर्दायो दृष्टः। यस्माद्यवनेश्वरेणोक्तम्— 'आयूंषि राश्यंशराशियोगात्' इति। अत्रोच्यते, यवनेश्वरेण स्फुजिध्वंजेनान्ये-च्छास्त्रं कृतम्। तथा च स्फुजिध्वजः— 'गतेन साभ्यर्धशतेन युक्ताऽप्यंकेन केषां न गताब्दसंख्या। कालः शका-१०४४ नां स विशोध्य तस्माद-तीतवर्षाद्यगवर्षजातम्॥' एवं स्फुजिध्वजकृतं शककालस्यार्वाग्ज्ञायते। अन्यच्च यवनाचार्यैः पूर्वैः कृतमिति तदर्थं स्फुजिध्वजोऽप्याह— 'यवना ऊचुः। ये संग्रहे दिग्जनजातिभेदाः प्रोक्ताः पुराणैः क्रमशो ग्रहस्य।' तदेतज्ज्ञायते यथा वराहमिहिरेण पूर्वयवनाचार्यमतमेवोपन्यस्तम् अस्मा-भिस्तन्न दृष्टम्। स्फुजिध्वजकृतमेव दृष्ट्वा पराशरस्यापीयमेव वार्ता। पाराशरीया संहिता केवलमस्माभिर्दृष्टा न जातकम्। श्रूयते स्कंधत्रयमिति पाराशरस्येति तदर्थं वराहमिहिरः शक्तिपूर्वैरित्याह— 'चित्रं प्रोज्झ्य परा-शरः कथयते दौर्भाग्यदं योषिताम्, इत्येवमादिः मयमणित्थयोर्होराशास्त्रे विद्येते। तथा च मयः— 'एकोनविंशतिः सूर्यश्चंद्रमाः पंचविंशतिः। तिथि-संख्यः कुजः सौम्यो द्वादशोच्चगतो गुरुः॥ कुजवद्दैत्यपूज्यस्य वर्षाणा-मेकविंशतिः। एकोना सूर्यपुत्रस्य परमोच्चगतस्य च॥ आयुर्दायमिदं प्रोक्त-धर्मं नीचगतस्य तु। अंतरे त्वनुपाताच्च कारयेदायसंग्रहम्॥' तथा च मणित्थः— 'नवरूपाः शरयमलास्तिथयोऽर्काः पंचरूपकाः क्रमशः। रूपयमा-कृतिसंख्याः सूर्यादीनां स्वतुंगभेष्वब्दाः॥ नीचेष्वस्मादब्दाद्दलमन्यत्रानु-पाततः कार्यम्। आयुर्दायविधानं होराभुक्तांशराशितुल्यमपि॥'

अथ वराहमिहिरस्य स्वमतायुर्दायो यवनेश्वरसत्यमतानुसारी व्याख्यायते। ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यमिति। यत्र तत्र राशौ यस्मिन्न-वांशके ग्रहो व्यवस्थितः स च नवांशको मेषादेरारभ्य यावत्संख्यस्य राशेः सम्बन्धी भवति तावंति वर्षाणि ग्रहः स्वायुर्दायं प्रयच्छति। एतदुक्तं

भवति। मेषादेरारभ्य यावतां राशीनां सम्बन्धिनो नवांशका ग्रहेण भुक्ता भवन्ति तावंति वर्षाणि ग्रहः प्रयच्छतीति। एवं ग्रहभुक्तनवांशराशि-तुल्यं भवति। यस्मिन्नवांशके वर्तते तस्माद्यद्भुक्तं ग्रहेण तेन सह त्रैरा-शिकं कृत्वा मासाद्यानयितव्यम्। त्रैराशिककरणं च वक्ष्यति। एवमायुर्दा-यानयनं च सत्याचार्येणोक्तम्। तथा च तद्वाक्यम्– 'राश्यंशकसंयोगा-दायुरिह समासतो ग्रहा दद्युः।' एतच्च सत्यवाक्यं बहुसाम्यं समुपैति बहूनामाचार्याणां सम्मतम्। तथा च यवनेश्वरः– 'आयूंषि राश्यंशक-चारयोगात्' इति। अत्र तावत्सत्ययवनेश्वरवाक्यव्याख्याने किंचि-द्विप्रतिपन्नं राशेरंशकचारयोगादिति व्याचक्षते। यथा यस्मिन्राशौ ग्रहो वर्तते तत्र तेन यावंतो नवांशका भुक्तास्तावंत्येव वर्षाण्यायुः स ग्रहो ददाति। अत्र च व्याख्याने परमग्रहदायसाध्यमानेन वर्षाणि भवंति। एतच्च व्याख्यानं बादरायणादिभिरंगीकृतम्। तथा च बादरायणः– 'राश्यंशकला गुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः द्वादशहृतावशेषे-ऽब्दमासदिननाडिकाः क्रमशः॥' इदमाचार्यवराहमिहिरेणाविनष्ट एवं स्वल्पजातकेऽभिहितमेतदनुसारेण सत्ययवनेश्वरयोर्व्याख्यानं क्रियते। आयूंषि राश्यंशकरचारयोगादिति राशीनामंशकाः राश्यंशकाः। तेषु चारयोगादिति। यत्र यत्र राशौ मेषांशकस्थो ग्रहो वर्षमेकं प्रयच्छति वृषनवांशकस्थो ग्रहो वर्षद्वयं प्रयच्छति। एवमुत्तरांशकवृद्ध्या वर्ष-वृद्धिर्यावन्मीनांते द्वादश इति। पूर्वव्याख्यानेन यवनेश्वरसत्यवाक्ययोः राशिग्रहणमनर्थकं भवति। अवश्यमेव राश्यंशकैर्भवितव्यमिति॥९॥

भाषा– जीवशर्मा आचार्य ने अपने मत से– उच्चस्थान में सब ग्रहों के आयु परमायु (१२० वर्ष ५ दिन) के सप्तमांश (१७ वर्ष १ मास २२ दिन ८ घड़ी ३४ पल) तुल्य ही कहा है। किन्तु यह सर्वसम्मत नहीं है। इसलिए-'ग्रह जितने नवांश भोग कर चुके हों– उतनी राशि तुल्य वर्ष ग्रहायुर्दाय होता है'– इस प्रकार सत्याचार्य का कथन बहुत से आचार्य मानते हैं॥ ९॥

विशेष अर्थ– अभिप्राय यह है कि– जीवशर्मा ने अनुभव किया कि अपने-अपने उच्च में सब ग्रहों का आयुर्दाय तुल्य होना चाहिए, इसलिए परमायुर्दाय के सप्तमांश तुल्य वर्षादि उच्च में, और नीच में उसका आधा ८।६।२६।४।१७ इसपर से पूर्ववत् मध्य में त्रैराशिक से अनुपात द्वारा आयु साधन करके जो ग्रह चक्रार्ध में हो उसकी *'सर्वाऽर्धत्रिचरण'* इत्यादि एवं शत्रु-राशिस्थित, अस्तङ्गत ग्रहों की तथा लग्न में क्रूर ग्रह हो तो– *'सार्धोदितोदित' इत्यादि हानि क्रिया करके स्पष्टायु साधन करना चाहिए। जैसे जीवशर्मा का वाक्य*

'सप्तदशैको द्वियमो बसवो वेदाग्नयो ग्रहेन्द्राणाम्। वर्षाद्युच्चस्थानां नीचस्थानामतोऽर्धं स्यात्।। मध्येऽनुपाततः स्यादानयनं शेषमत्र यत्। पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञैः।।

तथा सत्याचार्य का कथन है कि– जो ग्रह जितने नवांश भोग कर चुके हों उतनी राशि संख्या समझकर १२ से अधिक हों तो १२ के भाग देकर शेष तुल्य उस ग्रह का आयुर्दाय होता है। ग्रह भुक्त नवांश जानने का उपाय यह है कि ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें २०० का भाग देने से भुक्त नवांश संख्या होगी क्योंकि २०० कला १ नवांश होता है। इस प्रकार जितनी संख्या हो उसमें १२ के भाग देकर शेष तुल्य वर्ष समझना चाहिए तथा शेष कला को १२ से गुणा कर २०० के भाग देने से लब्धि मास, फिर शेष को ३० से गुणा कर २०० के भाग देने से लब्धि दिन एवं ६० से गुणा कर घटी और पल साधन करना चाहिए, जो आचार्य स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं।। ९।।

जीवशर्मा के आयुर्दाय का सोपपत्ति उदाहरण– परमायु १२० वर्ष ५ दिन। इसके दिन बनाने से ४३२०५, इसका सातवाँ भाग $\frac{४३२०५}{७}$ उच्चस्थ ग्रह का आयु प्रमाण दिनात्मक हुआ। इस पर से त्रैराशिक (अनुपात) हुआ कि यदि स्वोच्च ग्रहान्तर=० अर्थात् १२ राशि अथवा ३६० अंश में $\frac{४३२०५}{७}$ इतना आयुर्दाय तो इष्ट उच्चग्रहान्तरांश में क्या?– लब्धि= $\frac{४३२०५}{७} \times \frac{\text{उच्चग्रहान्तरांश}}{३६०}$

$\frac{८६४१ \times \text{उच्चग्रहान्तरांश}}{५०४}$ = दिनादि ग्रहायुर्दाय। यहाँ उच्च ग्रहान्तर ६ गति राशि से अधिक हो तो उस प्रकार ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि-नीच से ज्यों-ज्यों ग्रह आगे बढ़ता है त्यों-त्यों आयु की वृद्धि होकर उच्च में पूर्ण होता है। इससे यह सूत्र (श्लोक) उत्पन्न हुआ कि–

'स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्राश्यूनो भमण्डलात् ।
तद्भागाः क्वब्धिषड्भोगिहता वेदाभ्रसायकैः ॥
भक्ता दिनादि यल्लब्धं तदायुर्जीवशर्मजम् ।

अर्थ– ग्रह और उच्च के अन्तर ६ से अधिक हो तो उसी के, यदि ६ राशि से कम हो तो उसको १२ राशि में घटाकर शेष राश्यादि के अंश बनाकर उसको ८६४१ से गुणा करके ५०४ का भाग देने से दिनादि ग्रह का आयुर्दाय होता है।

जैसे– पूर्व उदाहरण में स्पष्ट सूर्य ०।६।४९।४० को सूर्य के उच्च ०।१० में घटाने से राश्यादि अन्तर ०।३।१०।२० यह ६ राशि से अल्प है इसलिए इसको ११ राशि में घटाकर ११।२६।४९।४० इसके अंश ३५६।४९।४० इसको ८६४१ से गुणा करने से ३०८३३४८।४९।४० इसमें ५०४ का भाग

देने से लब्धि दिनादि ६११७।४५।२० इसको वर्षादि बनाने से १६।११। २७।४५।२० यह सूर्य का आयुर्दाय हुआ। इसी प्रकार चन्द्रमा को सूर्य के साथ अस्त होने के कारण १६। १।१६।४४।१३ के आधा ८।०।२८।२२।। मंगल का १०।८।८।२६।१६ तथा बुध के शत्रुगृह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से ६।०।३।३४।४।। गुरु के १०।११।२७।२८। अष्टमस्थान में रहने के कारण दशांश घटाकर ६। १०।२१।४३।३०।। शुक्र के १६।७। १६।१७।२ द्वादश भाव तथा शत्रुगृह में होने के कारण आधा करके फिर तृतीयांश घटाने से ५।६।१६। २५।४।। तथा शनि का ८।११।१४।५५।१४ एवं लग्न का पूर्वोक्त रीति से अंशायु ६।४। २६।२२।१२ यह जीवशर्मा के मत से जातक का आयुर्दाय हुआ।।९।।

अथानेनैव व्याख्यानानुसारेणाचार्यः स एवायुर्दायानयनमार्ययाऽऽह-

सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वा शतद्वयेनाप्तम्।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः(१) ।।१०।।

सत्योक्ते इति। सत्योक्ते सत्यमतायुर्दायकरणे तात्कालिकमिष्टमभिप्रेतं ग्रहं लिप्तीकृत्य लिप्तापिंडं कृत्वा तस्य शतद्वयेन भागमपहृत्य यदवाप्तं तदवाप्ताख्यं स्थाप्यम्। अवशेषमधः स्थाप्यम्। अवाप्ते मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः। मण्डलभागशब्देन द्वादशभाग उच्यन्ते तेनावाप्तस्य द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तं त्याज्यम्। यदवशिष्यते तेऽब्दाः स्युस्तावंति वर्षाणि तेन ग्रहेणायुषो दत्तानि भवंति। शेषात्तु मासाद्याः यदवशेषं स्थापितं तस्माद्द्वादशगुणितात्तेनैवच्छेदेन विभक्तान्मासा लभ्यंते। तच्छेषात्रिंशद्गुणिताद्दिनानि। तच्छेषात्षष्ट्याद्गुणिताद्घटिकाः। पुनरपि षष्टिघ्नात्प्राग्वत् भक्ताच्च विकला लभ्यंते इति। एवमागतं ग्रहस्यायुर्दायो भवति।

---

(१) अत्र युक्ति–'ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्' इति वचनेन यत्र कुत्रापि राशौ मेषनवांशकस्थस्य ग्रहस्यायुःप्रमाणं वर्षमेकम्। वृषनवांशकस्थस्य वर्षद्वयम्। मिथुननवांशस्थस्य वर्षत्रयं,.....' एवं मीननवांशस्थस्य द्वादशवर्षमितमायुर्भवति। अथ ग्रहनिष्ठनवांशज्ञानार्थमिष्टं ग्रहं लिप्तीकृत्वाऽनुपातो यदि कलाशतद्वयेनैको नवमांशो लभ्यते तदेष्टग्रहकलाभिः किमिति फलं ग्रहभुक्तनवमांश प्रमाणम् $= \frac{\text{ग्रह} \times १}{२००}$ *अत्र लब्धौ द्वादशतोऽधिकस्य प्रयोजनाभावाद्द्वादशभिर्भागमपहृत्यावशेषं वर्षप्रमाणं स्यात्। तथा च शतद्वयोद्धृतावशेषान्मासाद्याः साध्या यथा वर्षावशेषं द्वादशभिः सङ्गुण्य स्वच्छेदेन विभज्य फलं मासाः। एवं मासावशेषं त्रिंशता सङ्गुण्य स्वच्छेदेनैव विभज्य फलं दिनानि। दिनावशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य स्वच्छेदेन विभज्य फलं घट्यः। एवं पलान्यपि साध्यानि। एतम् ∴ उपपन्नम्।*

तत्रोदाहरणम्, तात्कालिको ग्रहः १ । ८ । ४५ । ० लिप्तापिंडीकृतः २३२५ अस्य शतद्वयेन (२००) भागमपहृत्यावाप्तं ११ जातं अवशेषम् १२५। अवाप्तस्यास्य ११ द्वादशभिर्भागं न प्रयच्छति इति एतदेवावशेषं तस्माद्ग्रहेणैकादशवर्षाणि दत्तानि भवंति। अवशेषं १२५ द्वादशभिर्गुणितं जातम् १५०० अस्य शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तं ७ जातमेवं सप्त मासाः। अथ मासशेषं १०० त्रिंशता (३०) गुणितं जातम् ३००० अस्य शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तं १५ दिवसाः पंचदश इति। शेषस्याभावात् घटिकाभावः। एवमागतमेवंविधाद्ग्रहाद्वर्षादि। वर्षाणि ११ मासाः ७ दिनानि १५ घटिका०। अथ तदेव राश्यंशकलागुणितादितिन्यायेन प्रदर्श्यते। तद्यथा—राश्यादिग्रहः १ । ८ । ४५ अस्य राशिभागलिप्ताः पृथक्पृथग्द्वादशहताः १२ । ९६ । ५४० अथ भूयो नवाहताः १०८ । ८६४ । ४८६० अत्र लिप्तानामेतासां ४८६० षष्ट्या भागे हृते लब्धम् ८१ अवशेषं ० लब्धमिदं घटिकाख्यं ८१ भागेषु ८६४ संयोज्यं जातम् ९४५ अस्य त्रिंशता भागे हृते लब्धम् ३१ अवशेषम् १५ एते दिवसाः। अथ लब्धमिदं ३१ राशिष्वेतेषु १०८ संयोज्यं जातम् १३९ अस्य द्वादशभिभर्गि हृते लब्धं ११ शेषम् ७ एते मासाः। लब्धस्यास्य ११ द्वादशभिर्भागं न प्रयच्छतीत्यत एतदेवात्र शेषम् ११ एतानि ग्रहायुर्दायवर्षाणि ११ मासाः ७ दिनानि १५ घट्यः ०। एतत्पूर्वकृतायुदयि संविहितमिति। एवं यवनेश्वरसत्याचार्यबादरायणबराहमिहिरैरायुर्दायः प्रदर्शित इति।१०

भाषा—सत्याचार्य के मत से प्रत्येक ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें २०० के भाग देने से लब्धनवांश संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर जो शेष बचे उतने वर्ष और शेष कला पर से मासादिक साधन करे। इस प्रकार उस ग्रह का वर्षादि आयुर्दाय होता है।।१०।।

इसकी उपपत्ति (युक्ति) यह है कि १ राशि की कला १८०० का नवांश २०० कला १ नवमांश प्रमाण है। इससे अनुपात हुआ कि यदि २०० कला से १ नवांश हो तो इष्ट ग्रह की कला में कितने? इस प्रकार भुक्त नवांश संख्या=$\frac{\text{कलात्मक ग्रह,}}{\text{२००}}$ नवांश संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित कर लेना चाहिए, क्योंकि भुक्त नवांश राशितुल्य वर्ष होता है। राशियाँ १२ ही हैं। शेष कला से अनुपात हुआ कि २०० कला में १२ मास तो शेष कला में क्या? इस प्रकार शेष कला को १२ से गुणा कर २०० के भाग देने से लब्धि मास, पुनः

शेष को ३० से गुणा कर २०० के भाग देकर लब्धि दिन, फिर शेष को ६० से गुणा कर २०० के भाग देने से लब्धि घटी समझना चाहिए, उदाहरण आगे (१२) श्लोक में देखिये।।१०।।

एवमागतस्यायुर्दायस्य सत्याचार्यमतेनैव कर्मविशेषार्थं वंशस्थेनाऽऽह—

स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैः।
इयान्विशेषस्तु भदत्तभाषिते समानमन्यत्प्रथमेऽप्युदीरितम्।।११।।

स्वतुंगवक्रेति। स्वतुंगस्थैः स्वोच्चगतैर्ग्रहैः वक्रोपगतैः विपरीतगत्या स्थितश्च यत्स्वदत्तमायुस्तत्त्रिसंगुणं कार्यम्। द्विरुत्तमेति। उत्तमांशोपगतैः वर्गोत्तमांशस्थितैः स्वांशकस्थितैः स्वनवमभागगतैः स्वभस्थैः स्वराश्युपगतैः स्वरत्रिभागगैः स्वद्रेष्काणस्थैः एतैः यद्दत्तमायुः तद्द्विसंगुणं कार्यम्। इयान्विशेष इति। भदत्तशब्देन सत्याचार्योऽभिधीयते यस्मात्तन्मतमिह प्रमाणीक्रियते। पूर्वोक्तविधिना मययवनमणित्थादिमतेनायुर्दायः कृतः। यस्माद्भदत्तभाषिते सत्याचार्यकृते इयानेतावान्विशेषः। यदेतत्स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणमिति तत्सत्योक्तमेव समानमन्यदिति। अन्यद्यच्छेषं तत्प्रथमेऽप्युदीरितम्। प्रथमे मययवनादिमते यदुदीरितमुक्तं तत्समानमत्रापि तत्तुल्यम्। एतदुक्तं भवति। सत्याचार्यमतेनायुर्दायं कृत्वा वक्रवर्ज्यं शत्रुक्षेत्रगतस्य त्र्यंशं पातनीयं शुक्रसौरिवर्ज्यम् अस्तगतस्यार्द्धं पातनीयं सर्वार्धत्रिचरणेत्यादिचक्रपातापहानिः कार्या।।११।।

भाषा— सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय का साधन करके, जो ग्रह अपने उच्च में हो या वक्र हो उसके आयुर्दाय को त्रिगुणित कर देना चाहिए, जो अपने वर्गोत्तम नवांश में या अपने द्रेष्काण में हो उसके आयुर्दाय को द्विगुणित कर देना चाहिए। इतनी क्रिया सत्याचार्य के मत में अन्य आचार्यों से विशेषता है। और अन्य क्रिया (शत्रुगृहगत का तृतीयांश घटाना, अस्तङ्गत का आधा घटाना, एवं चक्रार्ध हानि, जो कही गई है वे सब क्रिया) समान ही हैं अर्थात् भदत्त (सत्याचार्य) के मत में भी समान ही समझना चाहिए।।११।।

एवं सत्याचार्यमतेन ग्रहायुर्दायमुक्त्वाऽधुना लग्नायुर्दायकरणं क्रूरोदये पापहानिः प्राप्ता तदपवादार्थमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

किन्त्वत्र भांशप्रतिमं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा।
क्रूरोदये योपचयः स नात्र कार्यं च नाब्दैः प्रथमोपदिष्टैः।।१२

किमिति।। अत्रास्मिन्सत्यमतायुर्दाये होरा लग्नं भांशप्रतिमं ददाति। एतदुक्तं भवति। मेषादेरारभ्य यावत्संख्योऽस्य राशेः सम्बन्धी नवांशको

लग्नेन भुक्तस्तावंति संख्यानि वर्षाणि लग्नायुर्दायो भवति। शेषाद्भागादिकान्नवांशकात् त्रैराशिकेन मासाद्यानयितव्यम्। एतदुक्तं भवति। सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वेत्येवं लग्नायुर्दायः कर्तव्यः। एवं कृत्वा यदि वीर्यान्विता होरा भवति। तदा राशिसमानानि राशितुल्यानि वर्षाणि प्रयच्छतीति। 'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैः' इति न्यायेन यदि वीर्यान्विता बलवती होरा लग्नं भवति तदा राशिसमं ददाति तत्तुल्यानि वर्षाणि प्रयच्छति। भागादिकात्त्रैराशिकेन मासाद्यानयितव्यं कथमुच्यते। भागाश्च लिप्तापिंडीकृत्य द्वादशभिः संगुण्याष्टादशभिः शतैः भागमपहृत्यावाप्तं मासाः। अवशेषं त्रिंशता संगुण्य तेनैवच्छेदन भागमपहृत्यावाप्तं दिवसाः। तदेव शेषं षष्ट्या संगुण्य तथैव घटिकाः। पुनरपि शेषं षष्ट्या संगुण्य तथैव चषकाः। लब्धं मासादि तत्रैव योजयेदेवं लग्नायुर्दायो भवति। वीर्यान्वितस्य लग्नस्य यत्कर्म तद्वीर्यवर्जितस्य च न कर्तव्यम्। अत्र च बादरायणः– 'होरादायोऽप्येवं बलयुक्तान्यानि राशितुल्यानि। वर्षाणि संप्रयच्छत्यनुपाताच्चांशकादि फलम्।।' एतच्चाचार्यवराहमिहिरेण स्वल्पजातकेऽविनष्ट्यैवाभिहितम्। क्रूरोदय इति। मययवनादिमतायुर्दाये क्रूरोदये क्रूरे लग्नगते 'सार्द्धोदितोदितनवांशहतात्समस्तात्' इति न्यायेन यदायुषोपचयः क्रियते तदत्रास्मिन्सत्यमतायुर्दाये न कर्तव्यम् अन्यत्सर्वं कर्तव्यम्। कार्यं च नाब्दैरिति प्रथमोपदिष्टैः पूर्वकथितैरब्दैः नवतिथिविषयेति येऽब्दा यवनबादरायणाचार्यमतेन पठिता जीवशर्ममतेन च ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशमिति तैरब्दैस्त्रैराशिकमुक्तं तदिह न सम्भवति। यथाऽऽदित्यस्य द्वादशकानामंशकानामेकोनविंशत्यब्दा भवन्ति तदैकस्मिन्नंशके किमिति सत्यायुर्दाये न कर्तव्यम्।। १२।।

भाषा- सत्याचार्य के मत से लग्न में जितनी राशि के नवांश भुक्त हुए हों उतने वर्ष की आयु होती है किन्तु यदि लग्न बलवान हो अर्थात् स्वामी या बुध गुरु से युतदृष्ट हो तो भुक्त राशि के तुल्य वर्षादि आयु और भी देती है। तथा लग्न में पापग्रह होने से जो अन्य (मय आदि) आचार्य के मत में अपचय (सार्धोदितोदित इत्यादि विधि से ह्रास) कहा गया है वह सत्याचार्य के मत में नहीं करना। तथा प्रथम कहे हुए (नव तिथि या परमायुर्दाय के सप्तमांश ग्रह पिण्ड) वर्षों से भी लग्नायुर्दाय नहीं करना, इतना सत्याचार्य के मत में विशेष (दूसरे आचार्यों के मत से भेद) है।। १२।।

उदाहरण– पूर्वलिखित स्पष्ट सूर्य ०।६।४६।४० की कला ४०६।४० में २०० के भाग देने से लब्धि २, बारह से कम है इसलिए ये ही वर्ष २ हुए। शेष ६।४० को १२ से गुणा करके ११६।० इसमें २०० के भाग देने से लब्धि ० मास। फिर शेष ११६ को ३० से गुणा करके २०० के भाग देकर लब्धि १७ दिन, फिर दिन शेष ८० को ६० से गुणा कर २०० से भाग देकर लब्धि २४ घटी। इस प्रकार सूर्य का वर्षादि आयुर्दाय २।०।१७।२४ हुआ। एवं चन्द्रमा के अस्तङ्गत होने के कारण ३।८।४।४२।३६ के आधा १।१०।२।२१।१८। मंगल का १०।०। ०।४८।३६। बुध का त्र्यंशोन करने से ६।१०।८।५४।०। गुरु का दशमांशोन ६।६।६।४३।४५। शुक्र का द्वादश स्थान में होने के कारण आयुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६ के आधा ३।११।१२।६।१८ करके इसमें शत्रुगृह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से २।७।१८। ४।१२ पुनः शुक्र स्वोच्च में है इसलिये त्रिगुणित करने से शुक्र का स्पष्टायुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६ तथा शनि का ८।५।४।३६।० और लग्न का ६।४।२६।२२।१२ गुरु वर्गोत्तम नवांश (गुरु राशि में वृश्चिक का नवांश) में है अतः उसकी आयु को दूना करने से स्पष्टायु १३।०।१६।२७।३० तथा सूर्य स्वोच्च में है अतः उसके साधित आयु को त्रिगुणित करने से ६।१।१२।१२ यह स्पष्टायुर्दाय हुआ। इस प्रकार सत्याचार्य के मत से लग्नसहित ग्रहों के आयुर्दाय का योग जातक का आयुर्दाय ६२।५।२१।१८।३०।

ग्रह-प्रदत्त-अंशायुर्दाय चक्र–

	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न	योग
वर्ष	६	३	१०	६	१३	७	८	६	६२
मास	१	८	०	१०	०	१०	५	४	५
दिन	२१	४	०	८	१६	२४	४	२६	२१
घटी	१२	४२	४८	५४	२७	१२	३६	२२	१८
पल	०	३६	३६	०	३०	३६	०	१२	३०

इस प्रकार अंशायु आनयन में सरल प्रकार यह हो सकता है कि– यदि १२ राशि में १०८ नवांश होते हैं तो ग्रह के भुक्त राश्यादि में क्या?

इस प्रकार त्रैराशिक से नवांश संख्या $= \frac{\text{राश्यादिग्रह} \times १०८}{१२}$ इससे सिद्ध हुआ कि राश्यादिग्रह को १०८ से गुणा करके तथा विकलादि सवर्णन करके राशि स्थान में १२ के भाग देने से लब्धितुल्य वर्ष, यदि १२ से अधिक लब्धि हो तो उसे १२ से तष्टित कर शेष को वर्ष समझें और शेष राश्यादि को क्रम से मासादिक जानना चाहिए। इसलिए यही प्रकार लघुजातक में आचार्य ने स्वयं भी कहा है। यथा–

'राश्यंशकलागुणिताद्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः ॥' *स्पष्टार्थ।*

अथवा उपरिदर्शित अनुपात से यह भी सिद्ध होता है कि राश्यादि ग्रह को केवल ९ से गुणा करके विकलादि को सवर्णन कर राशिस्थान में १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित करके शेष तुल्य वर्ष और शेष अंशादि को २ से गुणा कर ५ के भाग देने से लब्धि मास, पुनः शेष को ६ से गुणा करने से दिनादि होते हैं।

यथा:– स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।६।४६।४० इसको १०८ से गुणा करने से ०।६४८।५२६२।४३२० से सवर्णन करने से २४।१७। २४।० राशि के स्थान में १२ के भाग देने से लब्धि २ वर्ष। शेष ०।१७।२४ मासादि पूर्व तुल्य ही हुआ। दूसरे प्रकार से राश्यादि सूर्य को केवल ९ से गुणा करने से ०।५४।४४१।३६० सवर्णन करने से राश्यादि २।१।२७।० राशितुल्य वर्ष =२। शेष अंशादि को २ से गुणा कर २।५४ इसमें ५ से भाग देने से लब्धि ० मास, फिर शेष को ६ से गुणा करने से दिनादि १७।२४ पूर्व तुल्य हुआ।। १२।।

अथ मयादिमतमुपन्यस्य जीवशर्ममतं चोपन्यस्य
सत्यमतस्यैवाङ्गीकरणमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।
आचार्यकत्वं च बहुघ्नतायामेकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्।१३।

सत्योपदेश इति।। अत्रास्मिन्मतत्रये सत्योपदेशो वरं श्रेष्ठं इत्यर्थः। किन्तु तदप्यन्ते बहुवर्गणाभिः बह्वीभिः गुणनाभिरयोग्यं कुर्वन्ति विनाशयन्ति। कास्ताः गुणनाः। स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणमित्यादिकाः। तत्र यदि स्वगृहे ग्रहो भवति तदा द्विगुणमायुः कुर्वन्ति। स एव स्वगृहांशके यदि भवति तदा भूयोऽपि द्विगुणं कुर्वन्ति। स एव स्वद्रेष्काणे यदा भवति तदा भूयोऽपि द्विगुणं वर्गोत्तमांशे स एव वक्री यदि भवति तदा भूयस्त्रिगुणं कुर्वन्ति। स एव स्वोच्चस्थो भवति तदा भूयोऽपि त्रिगुणं कुर्वन्ति। एवमनवस्था। अनेनानवस्थाप्रसङ्गेन सत्योक्तमप्यायुर्दायमयुक्तं बहुवर्गणाभिः कुर्वन्ति। तथा च मयः– 'वर्गोत्तमे स्वराशौ द्रेष्काणे स्वे नवांशके द्विगुणम्। वक्रोच्चगते त्रिगुणं द्विगुणं कार्यं यथासंख्यम्।।' तथा च सारावल्याम्– 'बहुताडनसम्प्राप्तौ यां करोत्येकवर्गणाम्। वराहमिहिराचार्यः सा न दृष्टा चिरन्तनैः' इति। एतदप्ययुक्तम्। तदाऽत्र किं कार्यमित्याह– 'आचार्यकत्वं तु बहुघ्नतायाम्' इति। एतदाचार्यकत्वमत्रागमः। बहुघ्नतायां प्राप्तायामेकं तु यद्भूरि बहुतरं गुणनं तदेव कार्यमिति। बहुषु गुणनाभु प्राप्तास्वेकैव क्रियते इति। बहुवारं यत्र द्विगुणं प्राप्तं तत्र सकृदेव द्विगुणमायुः कर्तव्यम्। यत्र द्विगुणत्वं त्रिगुणत्वं च प्राप्तं तत्र सकृदेव त्रिगुणं कर्तव्यम्। यत्र वारद्वयं त्रिगुणत्वं तत्र सकृदेव त्रिगुणं कर्तव्यम्। 'एकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्' इति वचनात्। स्वल्पजातके-

ऽप्युक्तमाचार्येण– 'वर्गोत्तमे स्वद्रेष्काणे स्वनवांशके सकृद्द्विगुणम्। वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुणम्।।' इति। चक्रपातं वर्जयित्वा बहुवर्गणान्यायेनैतदेव कर्म शत्रुक्षेत्रस्थो नीचस्थश्च यदा ग्रहो भवति अस्तं गतो वा तदा सकृदेवापहानिः कार्या। नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रसतीत्यत्रापि अनुवर्तनीयम्। उक्तं च स्वल्पजातके– 'शत्रुक्षेत्रे त्र्यंशं नीचेऽर्द्धं सूर्यलुप्तकिरणाश्च। क्षपयन्ति स्वाद्दायान्नास्तं यातौ रविज-शुक्रौ।।' इति। एवं कृतस्य सत्याचार्यमतस्य स्पष्टता भवतीत्याचार्यस्य मतम्। यत्रापहानिः प्राप्ता तत्र सकृदेवापहानिं कृत्वा सकृदपि गुणना कार्या। किं त्वपहानौ कर्तव्यायां चक्रपातापहानिं कृत्वा ततः शत्रुक्षेत्र-स्थस्यापहानिः सकृदेव कर्तव्या ततः सकृदेव गुणना कार्या। अत्र च भगवान्गार्गिः– 'राशितुल्यांशसंख्यानि ग्रहोऽब्दानि प्रयच्छति। लग्नश्च सबलोऽन्यानि भुक्तराशिसमानि तु।। मासाद्यानयनं कार्यमनुपातादतः परम्। सर्वार्द्धत्रिचतुर्थांशान्वामं पञ्च चतुःसमित्।। हरन्ति पापाः स्वाद्दायात्तदर्धमितरे ग्रहाः। व्ययाच्चक्रापहानिस्तु कथितेयं तथा ध्रुवम्। एकस्त्वेकर्क्षगेष्वेव करोति बलवान्ग्रहः। शत्रुक्षेत्रगतस्त्र्यंशं नीचेऽर्द्धं सूर्यगस्तथा।। हन्ति स्वाद्दायाद्रविगौ न सितादित्यनन्दनौ। न चावनि-सुतश्चांशं शत्रुक्षेत्रगतस्तथा। धुवापहानिः कर्तव्या ततोऽन्यासु बहुष्वपि। प्राप्तास्वेकैव कर्तव्या या स्यात्तासु महत्तरा।। ततोऽपि गुणना कार्या-ऽप्येकैव महती सकृत्। द्वाभ्यां वर्गोत्तमे स्वांशे स्वद्रेष्काणे स्वके ग्रहे।। त्रिभिर्वक्रगरस्थाथ स्वोच्चराशिगतस्य च। ग्रहदायो भवत्येवं शोध्यक्षेप-कृतस्तु यः।।' अत्र यद्यप्याचार्येणांशायुः प्रमाणीकृतं तथापि लग्नो यदि सम्यग्बली भवति तदांशायुः कर्तव्यम्। अथार्को बलवांस्तदा पिण्डायुः। तथा च मणित्थः–'विलग्नेऽतिबलोपेते शुभदृष्टेंऽशसम्भवः। रवौ पिण्डो-द्भवं कुर्यादिति ब्रूयुश्चिरन्तनाः।।' तथा च सारावल्याम्– 'अंशोद्भवं विलग्नात्पिण्ड्यं भानोर्निसर्गजं चन्द्रात्' इति।। अन्येऽप्येवमाहुः। यथा अंशायुःपिण्डायुषी द्वे अपि कार्ये द्वाभ्यामपि दशान्तर्दशा-विभागपरिकल्पना कार्या। तत्र यदल्पं तस्यान्तिममन्तर्दशा सैव यद्यधिकस्य तत्कालं वर्तते तदाधिकमायुर्जीवति। शत्रुदशा चेत्तदा तत्रैव मरणं मित्रदशा चेत्तदापि जीवति मध्यमदशा चेत्तदा पीडा भवति ततोऽपि जीवति। अस्माकं सत्याचार्यमतमभिमतमिति।। १३।।

भाषा– इन (मयादि, जीवशर्मा और सत्याचार्य) तीनों के मत में सत्याचार्य का ही मत कुछ अच्छा है। परञ्च सत्याचार्य के मत में भी

लोग बहुवर्गणा ('स्वतुङ्गवक्रोपगतैः' इत्यादि जो-जो गणना प्राप्त होती है उन सब क्रिया) को करके अयोग्य (अनुचित) कर डालते हैं। आचार्यता (पांडित्य) तो यह है कि-बहुवर्गणा प्राप्त हो तो जो बड़ी गणना हो वह एक हो और एक बार ही करना चाहिए।। १३।।

विशेष अर्थ– अभिप्राय यह है कि सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय साधन करके जो ग्रह वक्र हो और उच्च में भी हो, उसकी आयु को लोग दो बार त्रिगुणित करते हैं, वह अयुक्त है। वहाँ एक ही बार त्रिगुण करना चाहिए। एवं जहाँ द्विगुणत्व और त्रिगुणत्व दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल त्रिगुण ही करना चाहिए। एवं जहाँ त्र्यंश और अर्ध हानि दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल अर्ध हानि करना चाहिए; दोनों नहीं। यह वराहमिहिर का मत है।। १३।।

अथ यस्मिन्योगे जातस्यायुःप्रमाणं न ज्ञायते तद्योगज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते।
भवरिपुसहजोपगैश्च शेषैरमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात्।१४

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके आयुर्दायाध्यायः सप्तमः (१)॥ ७॥

गुर्विति।। कुलीरलग्ने कर्कटोदये गुरुशशिसहिते जीवचन्द्रयुक्ते तथा शशितनये बुधे भृगुजे च शुक्रे केंद्रयाते कंटकगते शेषैः परिशिष्टैः रविभौमसौरेः भवरिपुसहजोपगतैः भवस्थानमेकादशं रिपुस्थानं षष्ठं सहजस्थानं तृतीयमेतेषु भवरिपुसहजेषु उपगतैः स्थितैः इहास्मिन्योगे जातस्यानुक्रमाद्विना गणितकर्मांतरेणापि विनाऽमितमपरिमितायुः स्याद्भवेत्। एतदुक्तं भवति। यदा कर्कलग्नं भवति तत्रैव चंद्रजीवौ व्यवस्थितौ भवतः बुधशुक्रौ सहितौ पृथक्स्थौ वा लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानामन्यतमे यथासंभवं भवतः। परिशेषाः आदित्यांगारकशनैश्चराः पृथक्सहिता वा यथासंभवमेकादशषष्ठतृतीयगाः भवंति तदा ईदृग्योगे यो जातः तस्यामितप्रमाणमायुर्भवति। अनुक्रमाद्गणितागतं विनैव अयमर्थः।

---

(१) अत्र विशेषः– 'नक्षत्रायुः कलौ युगेः' इति प्राचीनवचनान्नक्षत्रायुषः प्राधान्यात्सुजनोपकारार्थं संक्षेपेण नक्षत्रायुरानयनं प्रदर्श्यतेः–

नक्षत्रस्य प्रथमचरणादौ जातानां विंशत्यधिकशतं परमायुर्भवति। तथा द्वितीयचरणादौ समुत्पन्नानां वर्षशतमायुर्भवति। एवं तृतीयचरणादौ जन्मवतामशीतिवर्षमितमायुर्भवति। चतुर्थचरणादौ जातानाञ्च षष्टिवर्षमितमायुर्भवति। तथा च गौरीजातकोक्तं पद्यम्-

'प्रथमांशकजातानां परमायुः प्रकीर्तितम्।
द्वितीयांशकजातानां शतञ्च परिकीर्तितम्।।
समानीतिस्तृतीयांशे वर्षषष्टिश्चतुर्थके।।' इति।।

एवंविधे योगे दृष्टे आयुर्दायगणना न कर्तव्या यस्मात्तस्यासंभव इति। अतोऽन्यथाजातस्य यथागतेनायुषाऽवश्यमेव भवितव्यम्। नायुपिण्डस्यार्वाक्तस्य मृत्युर्भवति न चायुःपिण्डमनतिक्रम्य तेन जीवितव्यमिति। यस्मिन्योगे जातस्यानाचारस्येवायुषो ध्वंसो भवति इति। तथा च स्मृतिषूक्तम्। पारदारमनायुष्यमित्येवमादिकैर्दोषैर्न जीवति। एतद्योगे जातस्यायुर्वेदोक्तैर्विधिसेवितैः रसायनैः प्रयोगैर्यथाभिहितैर्दीर्घायुरवाप्नोतीति।१४

इतिश्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतावायुर्दायाध्यायः सप्तमः॥७॥

भाषा– चन्द्रमा और गुरु से युक्त कर्क लग्न हो, बुध-शुक्र दोनों केन्द्र स्थान में हो और शेष ग्रह (शनि, रवि, मङ्गल) लग्न से ११।६।३ इन स्थान में एक साथ या पृथक्-पृथक् भी हो तो गणितक्रम को छोड़कर उस जातक का आयुर्दाय प्रमाणरहित समझना चाहिए।। १४।।

विशेष अर्थ– भाव यह है कि इस प्रकार के सुयोग में जन्म लेनेवाला सुकर्म करने-वाला होता है, इसलिए उसका आयुर्दाय बढ़ जाता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इससे विपरीत योग में उत्पन्न जातक कुकर्मरत (पापी) होता है, उससे आयु की हानि भी होती है। कहा भी है कि-'पुण्याचारादायुषो वृद्धिरेवं पापाचारात् तस्य हानिर्ध्रुवं स्यात्'।।१४।।

एवं प्रथमचरणादेर्द्वितीयचरणादौ परमायुःषडंशसमोऽपचयो दृश्यते। तावानेव द्वितीयचरणादेस्तृतीयचरणादौ। तथा तृतीयचरणादेश्चतुर्थचरणादावपि। परमायुःषडंशतुल्य एवापचयः स्यादतो मध्ये भयातप्रमाणतोऽनुपातेनेष्टायुः साध्यम्। तत्र च भभोगमानं स्थूलं षष्टिमितं प्रकल्प्यानुपातो– यदि पञ्चदशघटीमितेन भयातप्रमाणेन परमायुःषडंशतुल्योपचयो भवति तदेष्टभयातघटीप्रमाणेन कियानिति $\frac{१२० \times भया}{६ \times १५} = \frac{१२० \times भया}{९०}$ लब्धमपचयमानम्। एतेन हीनं परमायुःप्रमाणमवशिष्टमिष्टस्पष्टमायुः स्यादतोऽत्रगौरीजातकोक्तपद्ये–

'परमायुःप्रमाणेन गुणयेद् गतनाडिकाः ।
नक्षत्रस्य हरेद्भागं नवत्याप्तं विशोधयेत् ॥
परमायुषि पुंसश्च शेषमायुः स्फुटं भवेत् ।
अतोऽनुपाततः कार्या ग्रहस्य च दशास्तथा ॥'इति॥

अस्यार्थः– नक्षत्रस्य (जन्मनक्षत्रस्य) गतनाडिकाः (भयातघटिकाः) परमायुःप्रमाणेन (विंशत्यधिकशतेन) गणयेत् (गणक, इति शेषः) नवत्या भागं हरेत्, आप्तं (लब्धं) परमायुषि (विंशत्यधिकशतमिते) विशोधयेत्, शेषं पुंसः (पुरुषस्य) स्फुटमायुर्भवेत्। तथाऽस्मादनुपाततो ग्रहस्य दशाः कार्या (गणकेनेति शेषः)।

अत्रोदाहरणम्– कस्यचिज्जन्मसमये भयातघटीप्रमाणम्=२०।१५। तत उपरोक्तपद्यानुसारेण परमायुःप्रमाणम्=१२०, भयातघटीभिर्गुणितम् २४००। १८००। सवर्णिते जातम्=२४३०।० नवत्या विभाजिते लब्धं वर्षप्रमाणम् २७।० इदं परमायुःप्रमाणाद्विशोध्य जातम् १२०–२७=९३ इष्टायुर्वर्षमानम् इति।

अथ दशान्तर्दशाध्यायः ॥८॥

अथातो दशांतर्दशाध्यायो व्याख्यायते। परिज्ञातसमस्तायुषः पुरुषस्य जीविताभ्यन्तरे स्थितयोः सुखदुःखयोः परिच्छेदः क्रियते। तत्र च शोध्य-क्षेपविशुद्धमायुर्यावत्प्रमाणं येन ग्रहेण दतं तावत्प्रमाणैव तस्य संबंधिनी दशा भवति। तत्र दशाक्रमो न ज्ञायते तज्ज्ञानं मालिन्याऽऽह-

उदयरविशशाङ्कप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः
प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्युः फलानि।
न हि न फलविपाकः केन्द्रसंस्थाद्यभावे
भवति हि फलपक्तिः पूर्वमापोक्लिमेऽपि ॥ १ ॥

उदयेति॥ उदयो लग्नं तनुः रविरादित्य आत्मा शशाङ्कश्चन्द्रो मनः एषामुदयरविशशाङ्कानां मध्याद्यः प्राणी बलवांस्तद्बलवशात्तस्य सम्बन्धिनी प्रथमा दशा भवति प्राधान्याद्देहवताम्। तथा च यवनेश्वरः— 'निशाकरादित्यविलग्नमध्ये तत्कालयोगादधिकं बलं यः। विभर्ति तस्यादिदशेष्यते सा शेषास्ततः शेषबलक्रमेण॥' इति। उदयश्च रविश्च शशांकश्चोदयरविशशांकाः उदयरविशशांकानां प्राणी उदयरविशशांक-प्राणी उदयरविशशांकप्राणी च केन्द्रादिसंस्थाश्चोदयरविशशांकप्राणि-केन्द्रादिसंस्थाः एवमेषां मध्याद्येन प्रथमा दशा दत्ता तस्यैव केन्द्रादिसंस्थाः केन्द्रपणफरापोक्लिमेषु स्थिता ग्रहाः वीर्योपचयक्रमेण दशा दद्युः। एवं लग्नार्कशशांकानां मध्यादेकस्य बलवतो दशा आदौ परिकल्प्या। ततस्तस्य केन्द्रस्थास्तेषां दशाः परिकल्प्याः। तैः केन्द्रस्थैः प्रथमवयसि फलं दत्तं भवति। यदुक्तम्— 'प्रथमवयसि मध्येंऽत्ये च दद्यः फलानि' इति। तथा च यवनेश्वरः— 'पूर्वे तु केन्द्रोपगताः फलन्ति मध्ये वयः पणफरं निविष्टाः। आपोक्लिमस्थाः फलदा वयोंऽत्ये यथाबलं स्वं समुपैति पूर्वम्॥' अथ यदि केन्द्रस्था ग्रहा न भवंति तदा कः प्रथमे वयसि फलं प्रयच्छतीत्याह— न हि न फलविपाक इत्यादि। केन्द्रस्थाद्यभावे केन्द्र-स्थानां ग्रहणामभावे असंभवे सति प्रथमे वयसि यः फलविपाकः स न हि न। यतो द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः। पणफरस्थानामप्यभावे मध्य वयसि फलविपाको न हि न। आपोक्लिस्थानामभावेंऽत्ये वयसि फलविपाको न हि न। एतदुक्तं भवति— यदा केन्द्रस्था ग्रहा न भवन्ति तदा पणफरस्थाः पूर्वफलं प्रयच्छन्ति तत आपोक्लिमस्थाः। अथ केन्द्र-स्थाः पणफरस्थाश्च न भवंति तदा सर्वस्मिन्नेव वयसि आपोक्लिमस्थाः

फलं प्रयच्छंति। यत उक्तम्– 'भवति हि फलंपक्तिः पूर्वमापोक्लिमेऽपि' इति। एवमापोक्लिमस्थानामभावे प्रथमं केन्द्रस्थाः फलं प्रयच्छन्ति ततः पणफरस्थाः। यदा आपोक्लिमस्था न भवन्ति न च पणफरस्थास्तदा सर्वस्मिन्नेव वयसि केन्द्रस्थाः फलं प्रयच्छन्ति। एतदुक्तं भवति– 'लग्नार्कशशांकानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत्प्रथमा'। प्रथमां दशां कल्पयित्वा ततस्तत्केन्द्रगानां सर्वेषां कल्पनीयाः। तेषां परिकल्प्य पणफरस्थानां परिकल्पनीयास्ततः परमापोक्लिमस्थानां केन्द्रस्थानामभावे प्रथमं दशापतेरनंतरं पणफरस्थानां कल्पनीयास्ततः आपोक्लिमस्थानां केन्द्रस्थानामभावे पणफरस्थानामभावे आपोक्लिमस्थानामेव कल्पनीयाः। अथ केन्द्रस्था भवंति पणफरस्था न भवंति आपोक्लिमस्था एव भवंति तदा केन्द्रस्थानां कल्पयित्वा आपोक्लिमस्थानामेव कल्पनीयाः। अथ केन्द्रस्था एव केवलं भवन्ति तदा तेषामेव कल्पनीयाः। अथ पणफरस्था एव भवंति तदा पणफरस्थानामेव कल्पनीयाः। अथापोक्लिमस्था भवंति तदा तेषामेव कल्पनीयाः। तथा च स्वल्पजातके उक्तम्-

'लग्नार्कशशांकानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत् प्रथमा।
तत्केन्द्रपणफरापोक्लिमोपगानां बलाच्छेषाः।।'।।१।।

भाषा–लग्न, रवि और चन्द्रमा–इन तीनों में जो अधिक बली हो आरम्भ में प्रथम उसी की दशा होती है। फिर उससे केन्द्रस्थित ग्रहों की दशा होती है। उसके बाद मध्यकाल में प्रथम दशाप्रद से फणकर स्थान में स्थित ग्रहों की दशा होती है। उसके बाद अन्त समय में प्रथम दशाप्रद से आपोक्लिम स्थान स्थित ग्रहों की दशा होती है। अगर केन्द्र या पणफर में ग्रह नहीं हो तो 'प्रथम और मध्य समय में फल नहीं होगा' ऐसा नहीं समझना चाहिए अर्थात् उस हालत में मध्य और अन्त वयस (समय) में आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थान में ग्रहों की दशा होती है।१।

अथ दशाकालप्रमाणं केन्द्रस्थानानामपि दशाक्रमज्ञानमिंद्रवज्रयाऽऽह–

आयुः कृतं येन हि यत्तदेव कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वम्।
साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य।२।

आयुः कृतमिति।। शोध्यक्षेपविशुद्धमायुर्यावद्वर्षप्रमाणं येन ग्रहेण दत्तं तदेव तस्य ग्रहस्य संबंधिनी दशा कल्प्या परिकल्पनीया। तत्र लग्नार्कशशांकानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत्प्रथमेति न्यायेन तद्दशां प्रथमं कल्पयित्वा ततस्तत्केन्द्रगानां मध्यात्सैव दशा प्रबलस्यातिबलस्य पूर्वं प्रथमं कल्प्या। अनंतरं यस्मादूनबलस्य एवं क्रमेण यथा ऊनबला भवंति तथा पश्चात्तदीयदशाः कल्पनीयाः। एवं केन्द्रस्थानां दशाः परिकल्प्या

पणफरस्थानाम्। पणफरस्थानाम् अनेनैव क्रमेण परिकल्प्याः। तत आपोक्लिमस्थानाम् अनेनैव क्रमेणेति। साम्ये बहूनामिति। केन्द्रस्थानां बहूनां ग्रहाणां बलसाम्ये सति बहुवर्षदस्य बहूनि वर्षाणि येन दत्तानि तस्य प्रथमं दशा परिकल्प्या। नन्वत्र कथं ग्रहाणां बलसाम्यं भवति। यदि द्वावपि सुहृत्त्रिकोणोच्चगतौ भवतस्तदा नैसर्गिकेण बलेन योऽधिकः स एव बली स्यात्। अस्त्वेतत्; किन्तु स्थानदिक्चेष्टाकालबलग्रहदर्शनादिबलानि यावद्गणितविधिनैकीक्रियंते तावद्बलसाम्यं भवति। ग्रहाणां यथा सामान्येनोदाहरणम्। यदि शनैश्चरो बलत्रयेण संयुक्तो भवति भौमो बलद्वयेन तदा तत्र भौमस्य निसर्गबलत्वाद्बलसाम्यं भवति। एवं सर्वेषामपि ज्ञेयम्। तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्येति। तेषां वर्षाणां साम्ये वर्षमानतुल्येऽपि प्रथमोदितस्य दशा परिकल्प्या। प्रथममादावर्कमंडलाद्य उदित उद्गतस्तस्य यदा बलसाम्यं भवति तदा बहूवर्षदेऽपि ग्रहे स्थिते वलाधिकस्यैव पूर्वं दशा परिकल्प्या। तेषां च बलसाम्ये प्रथमोदितस्येत्यत्र द्विविध उदयः। प्रत्यहं चक्रभ्रमवशादेकः आदित्यविप्रकर्षेणापरः। तत्रेहादित्यविप्रकर्षेण उदयो गणितस्कंधोक्तकालांशकवशाज्ज्ञेयः। अत्र च भगवान् गार्गिः–

'बली लग्नेन्दुसूर्याणां दशामाद्यां प्रयच्छति।
तस्मात्ततः प्रयच्छन्ति केन्द्रादिस्थाः क्रमेण तु।
तत्रापि बलिनः पूर्वं तत्साम्ये बहुदायकः।
तत्साम्येऽपि प्रयच्छन्ति ये पूर्वं रविविच्युताः॥'॥२॥

भाषा– पूर्वविधि से जिस ग्रह की जितनी आयु (वर्षादि) हो उतनी ही उस ग्रह की दशा समझनी चाहिए। वह दशा भी बलक्रम से अर्थात् बली ग्रह की प्रथम दशा होती है। यदि २ या अधिक ग्रह में बल की समता हो तो उनमें जिसके अधिक वर्ष हों प्रथम उसी की दशा समझनी चाहिए। यदि वर्ष में भी तुल्यता हो तो सूर्य सान्निध्यवश से अस्त के बाद जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी पहले दशा होती है।।२।।

विशेष अर्थ – यहाँ यह कहा गया है कि बल में और वर्ष में समता हो तो रवि सान्निध्यवश जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी प्रथम दशा समझनी चाहिये। किन्तु यदि रवि सान्निध्य से उदय में भी समता हो तब उन दोनों में प्रथम दशा किसकी होगी? इसका निर्णय नहीं कहा गया है। इसलिए वहाँ नीलकण्ठोक्त निर्णय ('अल्पगतेस्तु पूर्वा' जिसकी अल्पगति हो अर्थात् जिसकी ऊपर कक्षा हो उसकी दशा प्रथम होती है) इसके अनुसार दशा समझनी चाहिए। क्योंकि कक्षा में तुल्यता नहीं हो सकती है।।२।।

उदाहरण क्रम पूर्व दिखलाया गया है। स्पष्टार्थ अंशायुर्दाय चक्र–

दशेश	रवि	चन्द्र	लग्न	शनि	गुरु	शुक्र	मङ्गल	बुध
	६	३	६	८	१३	७	१०	६
दशावर्षादि	१	८	४	५	०	१०	०	१०
	२२	४	२६	४	१६	२४	०	८
	१२	४२	२२	३६	२७	१२	४८	५४
	०	३६	१२	०	३०	३६	३६	०
संवत्	१६७५	१६७८	१६८५	१६६३	२००६	२०१४	२०२४	२०३१
	१	१०	३	८	८	७	७	५
राश्यादि सूर्य	२६	३	०	४	२४	१८	१६	२८
	१	४४	६	४५	१२	२५	१४	५
	४०	१६	२८	२८	५८	३४	१०	१०

एवं दशाव्यवस्थायां प्राप्तायामंतर्दशापाकग्रहज्ञानं वसंततिलकेनाऽऽह–

एकर्क्षगोऽर्द्धमपहृत्य ददाति तु स्वं
त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः स्मरगःस्वरांशम् ।
पादं फलस्य चतुरस्रगतः सहोरा-
स्त्वेवं परस्परगताः परिपाचयन्ति ।।३।।

एकर्क्षगोऽर्द्धमिति।। दशापतिना सहैकर्क्षगो ग्रहः एकस्मिन्राशौ व्यवस्थितः दशापतिदत्तान्तर्दशाकालस्य यदर्द्धं तदपहृत्य स्वैरात्मीयैर्दशागुणैः परिपाचयति त्र्यंशमिति। त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः दशापतेस्त्रिकाणगृहगो नवपंचमस्थानयोरन्यतमस्थितो दशापतिदत्तांतर्दशाकालात्त्र्यंशं तृतीयभागमपहृत्य स्वैरात्मीयैर्दशागुणैः परिपाचयति। स्मरगः स्वरांशमिति। दशापतेः स्मरगः सप्तमस्थानस्थः दशापतिदत्तांतर्दशाकालात्स्वरांशं सप्तमभागमपहृत्य स्वैर्दशागुणैः परिपाचयति। पादं फलस्येति। चतुरस्रगोऽष्टमचतुर्थस्थानस्थो दशापतिदत्तांतर्दशाकालात्पादं चतुर्थभागमपहृत्य स्वैर्दशागुणैः परिपाचयति। सहोरा, होरा लग्नं तया सहिताः परस्परमन्योन्यमनेन प्रकारेण व्यवस्थिताः स्वैः स्वैर्दशागुणैः परिपाचयन्ति। एतदुक्तं भवति - यथा दशापतेः सकाशादेकर्क्षादिस्थो ग्रहो यथास्वं पठितमंशं परिपाचयति। तथा लग्नमपि पाचयति। अत्र दशापतेः प्रथममंशपरिकल्पनां कृत्वा पश्चादेकर्क्षादिस्थितानां कर्तव्याः। यस्माद्दशापतेर्यो भाग आगच्छति तदनुसारेणार्द्धादयो भागाः परिशेषाणां भवंति।

अथैकस्मिंस्थाने यदा बहवो ग्रहा भवंति तदा तेषां मध्ये यो बलवान्स एवैकः परिपाचयति; नान्ये। कथमेतदवगम्यते। उच्यते, एकवचननिर्देशात् 'एकर्क्षगोऽर्धमपहृत्य ददाति तु स्वम्' इत्याद्येकवचनात्। न केवलं मिहिराचार्येणैकवचननिर्देशः कृतो यावत्स्वल्पजातकेऽपि तथा चोक्तम्— 'एकर्क्षगोऽर्द्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तांशम्। चतुरस्रयोस्तु पादं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः' इति। न केवलं यावद्गर्गादीनामप्येकवचन-निर्देशोऽस्ति। तथा च भगवान्गार्गिः- 'एकर्क्षेऽवस्थितश्चार्द्धं त्रिभागं तु त्रिकोणगः। सप्तमस्थः स्वरांशं तु पादं तु चतुरष्टगः।। लग्नेन सहिताः सर्वे ह्यन्योन्यफलदायकाः।' यवनेश्वरश्चाप्येवम्— 'कालोऽर्धभागैकगृहाश्रि-तस्य तदर्धभागं लभते चतुर्थे। त्रिभागभागी च त्रिकोणसंस्थस्तदर्ध-भाक्स्याच्च पृथक् त्रिकोणे। स्यात्सप्तमे सप्तमभागभागी स्थितो ग्रहश्चार-वशाद्ग्रहस्य।' एवं सर्वत्रैकवचननिर्देशः। तस्मादेवं ज्ञायते। यत एक एवांशहारो भवति न सर्व इति। तथा च सत्यः— अर्धं तृतीयमर्धात्तथार्द्धं स्वाच्च सप्तमं भागम्। एकर्क्षनवपंचमचतुर्थनिधनाद्यसप्तानाम्।। दद्युर्ग्रहा ग्रहाणां स्वदशास्वंतर्दशाख्यानाम्। फलकानान्मिश्रविविधं कर्मेण भेद्याश्च तेऽप्येवम्। एकर्क्षगेषु बलवान्भागहरो मित्रतो रिपोर्वापि। मित्रे च पुष्ट-फलं तस्मिन्काले रिपुर्नैवम्।।' तथा च यमः— 'एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण। एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः।।' इति। लग्नेऽपि यत्रांशापहारित्वं प्राप्तं तत्र च लग्ने यदा ग्रहः स्थितो भवति तदा लग्नग्रहयोर्यो बलवान्स एवैकः पठितमंशमपहरति नेतर इति अन्ये सर्वेषामेकादिराशिगानामंतर्दशाभागमिच्छन्ति। अन्ये पुनः एकमेव भागं गृहीत्वा तद्भागस्यैकर्क्षगानां भागीकृत्य तद्भागमिच्छन्ति।। ३।।

भाषा— (सम्पूर्ण आयु का मालिक दशापति होता है इसलिए उसका भाग पूरा है) दशापति के साथ में जो ग्रह हो उनमें सबसे बली केवल एक ग्रह आधा १।२ का पाचक (अन्तर्दशाधिप) होता है। एवं त्रिकोण (९।५) में रहनेवाले में बली एक ग्रह तृतीयांश १।३ का अन्तर्दशाधिप होता है। दशापति से सप्तम स्थान में स्थित एक ग्रह सप्तमांश १।७ का पाचक होता है। एवं चतुरस्र (४।८) स्थान में स्थित ग्रहों में केवल एक बली ग्रह चतुर्थांश १।४ का पाचक होता है। इस प्रकार लग्न सहित सब ग्रह परस्पर इन स्थानों में पड़ने से अपने-अपने गुणानुसार अन्तर्दशापति होकर फल देते हैं।। ३।।

विशेष अर्थ— यहाँ साथ में या त्रिकोण आदि में स्थित ग्रहों में केवल एक ही ग्रह पाचक होता है, ऐसा अर्थ एकवचन निर्देश से किया गया है। तथा अन्य आचार्यों का वाक्य भी स्पष्ट है कि—

'एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण ।
एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः ।।'

अर्थात्– एक स्थान में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो सबसे बली हो केवल वही एक ग्रह अपने अंश का अपहरणकारक (पाचक) होता है, सब नहीं। इससे सिद्ध होता है कि– यदि दशापति से १।५।६।४।८।७ इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं हो तो उस ग्रह की दशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होगी। अर्थात् स्वयं दशापति और अन्तर्दशापति भी होगा।। ३।।

उदाहरण– जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशा विचार करना है तो सूर्य के साथ लग्न चन्द्रमा, शनि ये तीन हैं, इनमें चन्द्रमा बली है इसलिए चन्द्रमा आधा १।२ का पाचक हुआ। तथा सूर्य से त्रिकोण वा सप्तम में ग्रह नहीं है, केवल अष्टम में गुरु है अतः वह चतुर्थांश १।४ का पाचक हुआ। इस प्रकार सूर्य की दशा में सूर्य १।१, चं० १।२ गु० १।४ अन्तर्दशा पाचक हुए।। ३।।

अथ दशापरिकल्पनाज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

स्थानान्यथैतानि सवर्णयित्वा सर्वाण्यधश्छेदविवर्जितानि।
दशाब्दपिण्डे गुणका यथांशं छेदस्तदैक्येन दशाप्रभेदः(१)।४।

स्थानानीति।। अर्द्धादिका भागाः स्थानशब्देनोच्यन्ते। तेषामर्द्धादिकानां भागानां सवर्णना कार्या। सदृशच्छेदेन सादृश्यमुत्पाद्य ततस्तानि सर्वाणि स्थानानि अधश्छेदैः विवर्जितानि कार्याणि। छेदानपास्य इत्यर्थः। उपरिस्थिता राशयो यथासंभवं प्रत्यंशं गुणकारा भवन्ति। छेदस्तदैक्येन तेषां राशीनामैक्येन संयोगेन छेदो भागहारो भवति। कस्मिन् गुणकारा भागहारा इत्याह– दशाब्दपिण्डे दशावर्षसमूहे। तेनैतदुक्तं भवति– दशाब्दान् पृथक्पृथग्गुणकारैः संगुण्य छेदेन विभज्यावाप्तं वर्षाद्यन्तर्दशा भवति। तद्यथोदाहरणम्। दशापतिनैव केवलं कश्चिद्ग्रहः स्थितः अन्यस्थानेषु न कश्चित् स्थितस्तदा स एवापहारी। तत्र दशापतेः रूपस्यैकस्यैवाधोरूपमेकं न्यसेत्। एवमर्द्धहारस्य रूपस्याधोरूपद्वयं

(१) अत्रोपपत्तिः– 'एकर्क्षगोर्द्धमपहृत्य ददाति तु स्वम्' इत्यादि पद्यानुसारेण दशापतिना सहैकर्क्षगो ग्रहो दशापतिदत्तान्तर्दशाकालस्यार्द्धपाचको भवति। तथा दशापतेस्त्रिकोणगतो ग्रहस्तद्दत्तान्तर्दशाकालस्य तृतीयांशपाचको भवति। एवं चतुरस्रगतग्रहश्चतुर्थांशपाचको भवति। सप्तमस्थस्तु सप्तमांशपाचको भवति। तत्र प्रथमं दशापतेरंशपरिकल्पनां कृत्वाऽनन्तरमेकर्क्षादिस्थितानां ग्रहाणां कार्याः। यतो दशापतेर्यो भागः समागच्छति तदनुसारेणैवार्द्धादयो विभागा एकर्क्षगादीनां भवन्ति। अतः सर्वेषामंशानां योगं कृत्वाऽनुपातेन पृथक्-पृथक् ग्रहाणामन्तर्दशामानानि साध्यानि; तद्यथा–यदि सर्वांशयोगेन मूलदशापतिवर्षप्रमाणं लभ्यते तदा पृथक् पृथगंशेन किमिति पृथक्-पृथग् ग्रहाणामन्तर्दशामानानि स्युः।

न्यास $\frac{१}{१}$ | $\frac{१}{२}$ परस्परच्छेदगुणावेतौ राशौ कर्त्तव्यौ कृत्तौ $\frac{२}{२}$ | $\frac{१}{२}$ एतौ समच्छेदीभूतौ छेदहीनौ २। १ एतौ गुणकारौ, अनयोर्योगः जातः ३ एष भागहारः। अत्र दशापतिदत्तायुर्दायः ३।०।०।० एतद्द्वाभ्यां संगुण्य त्रिभिर्विभज्यावाप्तं फलम् २ इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। अथ पुनरेव, मूलदशापतिवर्षादि ३ वर्षाणि ० मासाः, ० दिनानि, ० घट्यः एकेन संगुण्य त्रिभिर्विभज्यावाप्तं फलं वर्षादि १ वर्षाणि ० मासाः० दिनानि ०घट्यः इयं दशापतिना सहैकराशिव्यवस्थितस्यांतर्दशा। एवं मूलदशापतिदत्तांतर्दशाकाल एकराशिगेन ग्रहेणार्द्धं पाचितो भवति। अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगो वर्षादिः ३।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। अथ दशापतेः नवपञ्चमस्थानयोरेकस्मिन्स्थाने कश्चिद्ग्रहः स्थितो भवति न द्वितीये न च दशापतिना सह न चतुरस्रयोः न च सप्तमे तदा न्यासः $\frac{१}{१}$ | $\frac{१}{३}$ एतौ परस्परच्छेदहतौ $\frac{३}{३}$ | $\frac{१}{३}$ छेदेन हीनौ ३। १ एतो गुणकारौ ४ एष भागहारः। मूलदशापतेरायुर्दायः ४।०।०।० अस्य त्रिगुणस्थचतुर्भिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।०।० अयं मूलदशापतेरन्तर्दशाकालः। अथ मूलदशापतिदायस्यास्य ४।०।०।० एकगुणस्य चतुर्भिर्भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० एषा त्रिकोणस्थस्यांतर्दशेति। एवं मूलदशापतिदत्तांतर्दशाकाल त्रिकोणस्थेन ग्रहेण त्रिभागमपहृत्य पाचितं भवति। अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः जातः ४।०।०।० सैव मूलदशेति। अथ दशापतेश्चतुर्थाष्टमयोरेकस्मिन्स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति, न द्वितीये न च दशापतिना सह न त्रिकोणयोः न सप्तमे तदा न्यासः $\frac{१}{१}$ | $\frac{१}{४}$

अत्र 'योगोऽन्तरं तुल्यहरांशकानाम्' इति पाटीगणितनियमात् सर्वेषां सच्छेदांशानां सवर्णनं कृत्वैव योगोऽन्तरं वा भवति। तत्र च कृते सवर्णने सर्वेषामंशानामधस्तुल्यो हरो जायते तथा तद्योगे कृतेऽपि सर्वांशयोगस्याधः स एव हरो भवति। यथा कृते समच्छेदे पृथक्-पृथक् सच्छेदांशाः $\frac{\text{अं अं}^{१}\text{ अं}^{३}}{\text{ह ह ह}}$ *एषां योगः =* $\frac{\text{सर्वांशयो}}{\text{ह}}$ *एतेन योगेन यदि मूलदशामानं लभ्यते तदा* $\frac{\text{अं}}{\text{'ह'}}$ *अनेन किमिति लब्धं तत्सम्बन्धिदशामानस्वरूपं* $\frac{\text{मू. दशा} \times \text{अं}}{\text{सर्वांशयो ह}} = \frac{\text{मू. दशा} \times \text{अं}}{\text{सर्वांशयो}}$ *गुणकभाजकाधाःस्थतुल्यहरणयोर्नाशात्। एवमन्यांशपाचकसम्बन्ध्यापि दशामानं साध्यम्। यतोऽत्र त्रैराशिकविधिना दशामानसाधने गुणकभाजकाधःस्थछेदयोर्नाशो भवत्येवातः पूर्वमेव सवर्णनं कृत्वाऽधस्स्थाश्छेदास्त्यक्ता इति सर्वमुपपन्नम्।*

परस्परच्छेदहतौ ४/४ | १/४ छेदहीनौ ४ । १ एतौ गुणकारौ एकीकृतौ ५ एष भागहारः मूलदशापतेः दायः ५ । ० । ० । ० अस्य चतुर्गुणस्य २० । ० । ० । ० पञ्चभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४ । ० । ० । ० अयं मूलदशापतेरन्तर्दशाकालः। अथ मूलदशापतिदायस्यास्य ५ । ० । ० । ० एकगुणस्य पञ्चभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् १ । ० । ० । ० एषा चतुरस्रस्थांतर्दशेति। एवं मूलदशापतिदत्तांतर्दशाकालाच्चतुरस्रस्थेन पादमपहृतं भवति। अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः ५ । ० । ० । ० जाता सैव मूलदशेति। अथ दशापत्तेः सप्तमे स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति न दशापतिना सह न त्रिकोणे न चतुरस्रयोस्तदा न्यासः १/१ | १/७ परस्परच्छेदहतावेतौ ७/७ | १/७ छेदहीनौ ७ । १ एतौ गुणकारौ एकीकृतौ ८ एष भागहारः। दशापतेः दायः ८ । ० । ० । ० अस्य सप्तगुणस्या-(५६)-ष्टभिः भागमपहृत्यावाप्तं वर्षादि ७ । ० । ० । ० इयं मूलदशापतेरंतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतेः दायः ८ । ० । ० । ० अस्यैकगुणस्याष्टभिः भागमपहृत्यावाप्तम् १ । ० । ० । ० इयं मूलदशापतेः सप्तम स्थानस्थस्यांतर्दशा। एवं मूलदशापत्यंतर्दशाकालात्सप्तमो भागः सप्तमस्थेन ग्रहेण पाचितो भवति। अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः ८ । ० । ० । ० जाता सैव मूलदशेति। एवमेकस्मिन् दशाविकल्पाः। अत्रादौ मूलदशापतेरन्तर्दशा भवति तदनन्तरमंशहरस्य। अथ दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद्ग्रहो भवत्यपरश्च नवमपञ्चमयोर्मध्यादेकस्मिन्भवति न द्वितीये, नान्येषु स्थानेषु, न चतुरस्रयोः, न सप्तमे तदा न्यासः १/१ | १/२ | १/३ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः ६/६ | ३/६ | २/६ छेदहीनाः ६ । ३ । २ एते गुणकाराः एकीकृताः ११ एष भागहारः। अथ दशापतिदायः ११ । ० । ० । ० अस्य षड्गुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ६ । ० । ० । ० एवं मूलदशापतेरंतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य ११ । ० । ० । ० त्रिगुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ३ । ० । ० । ० इयमर्द्धपावकस्यांतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य ११ । ० । ० । ० द्विगुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् २ । ० । ० । ० इयं त्रिकोणावस्थितस्यांर्दशा। अत्र दशापतेः यदर्द्धं तदेकगृहावस्थितः पाचयति त्रिभागं च त्रिकोणगः। अन्तर्दशात्रयस्यास्य योगः ११ । ० । ० । ० जाता सैव मूलदशेति। अथ दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद्भवत्यपरश्चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन्न द्वितीये न चान्येषु स्थानेषु न त्रिकोणयोः न सप्तमे तदा न्यासः १/१ | १/२ | १/४ एते परस्परच्छेदहता जाताः ८/८ | ४/८ | २/८ छेद-

हीनाः ८।४।२ एते गुणकाराः एकीकृताः १४ एष भागहारः। अथ दशापतिदायस्यास्य १४।०।०।० अष्टगुणस्य चतुर्दशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ८।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य १४।०।०।० चतुर्गुणस्य चतुर्दशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।०।० इयमर्द्धपाचकस्यांतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य १४।०।०।० द्विगुणस्य चतुर्दशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् २।०।०।० इयं चतुर्थभागपाचकस्यांतर्दशा। अत्र दशापतेः यदर्द्धं तदेकगृहावस्थितः पाचयति। चतुर्भागं चतुरस्रगतः। अन्तर्दशात्रयस्यास्य योगः १४।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद्भवत्यपरश्च सप्तमे नान्येषु स्थानेषु तदा न्यासः $\frac{१}{१}$ | $\frac{१}{२}$ | $\frac{१}{७}$ एते परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{१४}{१४}$ | $\frac{७}{१४}$ | $\frac{२}{१४}$ छेदहीनाः १४।७।२ एते गुणकाराः एकीकृताः २३ एष भागहारः। अथ दशापतिदायस्यास्य २३।०।०।० चतुर्दशगुणस्य त्रयोविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् १४।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य २३।०।०।० सप्तगुणस्य त्रयोविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ७।०।०।० इयं पाचकस्थेन सहावस्थस्यांतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य २३।०।०।० द्विगुणस्य त्रयोविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् २।०।०।० इयं सप्तमभागपाचकस्यांतर्दशा। अस्यांतर्दशात्रयस्य योगो जाता २३।०।०।० सैव मूलदशेति। अथ दशापतेस्त्रिकोणयोरपि ग्रहो व्यवस्थितः नान्येषु स्थानेषु तदा न्यासः $\frac{१}{३}$ | $\frac{१}{३}$ | $\frac{१}{३}$ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाता $\frac{९}{९}$ | $\frac{३}{९}$ | $\frac{३}{९}$ छेदहीनाः ९।३।३ एते गुणकाराः एकीकृताः १५ एष भागहारः। दशापतिदायस्यास्य ५।०।०।० नवगुणस्य पञ्चदशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ।३।०।०।० इयं मूलदशापतेरंतर्दशा। पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य ५।०।०।० त्रिगुणस्य १५।०।०।० पञ्चदशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० इयं त्रिकोणस्थस्यांतर्दशा। द्वितीयस्यैषैव। अस्यांतर्दशात्रयस्य योगः ५।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। अथ दशापतेस्त्रिकोणयोः मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्ग्रहो व्यवस्थितः चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन्नपि नान्येषु स्थानेषु तदा न्यासः $\frac{१}{१}$ | $\frac{१}{३}$ | $\frac{१}{४}$ एते परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{१२}{१२}$ | $\frac{४}{१२}$ | $\frac{३}{१२}$ छेदहीनाः १२।४।३ एते गुणकाराः एकीकृताः १९ एष भागहारः। अथ दशापतिदायस्यास्य १९।०।०।० द्वादशगुण-

स्यैकोनविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् १२।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि दशापतिदायस्यास्य १६।०।०।० चतुर्गुणस्यैकोनविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।०।० इयं त्रिकोणभागपाचकस्यान्तर्दशा। पुनरपि दशापतिदायस्यास्य १६।०।०।० त्रिगुणस्यैकोनविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।०।० इयं चतुर्भागपाचकस्यान्तर्दशा। अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः १६।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतेस्त्रिकोणयोर्मध्यादेकस्मिन्स्थाने कश्चिद्ग्रहोऽन्यः सप्तमे तदा न्यासः १/१ | १/३ | २/७ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः २१/२१ | ७/२१ | ३/२१ छेदहीनाः २१।७।३ एते गुणकाराः एकीकृताः ३१ एष भागहारः। दशापतिदायस्यास्य ३१।०।० एकविंशत्या संगुणितस्यैकात्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् २१।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि दशावर्षाणि ३१।०।०।० सप्तभिः सङ्गुण्यैकत्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ७।०।०।० इयं त्रिभागपाचकस्यान्तर्दशा। पुनरपि दशावर्षाणि ३१।०।०।० त्रिभिः सङ्गुण्यैकत्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।०।० इयं सप्तमभागपाचकस्यान्तर्दशा। अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ३१।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। यत्र दशापतेः चतुरस्रयोः द्वयोरेव ग्रहौ स्थितौ नान्यत्र तदा न्यासः १/१ | १/४ | १/४ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः १६/१६ | ४/१६ | ४/१६ छेदहीनाः १६।४।४ एते गुणकाराः एकीकृताः २४ एष भागहारः। मूलदशापतिवर्षाण्येतानि ६।०।०।० षोडशभिः सङ्गुण्य ९६।०।०।० चतुर्विंशत्या(२४) भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि दशापतेः दायस्यास्य ६।०।०।० चतुर्गुणस्य चतुर्विंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० इयं चतुर्थभागपाचकस्यान्तर्दशा द्वितीयस्याप्येषैव। अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ६।०।०।० सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतेश्चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्ग्रहो भवति सप्तमेऽन्यस्तदा न्यासः १/१ | १/४ | १/७ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः २८/२८ | ७/२८ | ४/२८ छेदहीनाः २८। ७।४ एते गुणकाराः एकीकृताः ३९ एष भागहारः। अथ मूलदशापतिवर्षाणि ३६।०।०।० एतान्यष्टाविंशत्या सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम्। २५।१०।४।३६ इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा। पुनरपि दशावर्षाणि ३६ सप्तभिः सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ६।५।१६।९ इयं चतुर्भागपाचकस्यान्तर्दशा। पुनरपि दशावर्षाणि ३६ चतुर्भिः

सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ३। ८। १५ इयं सप्तमभागपाचकस्यान्तर्दशा, अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ३६। ०। ०। ० जाता सैव मूलदशेति। एवं त्रिविकल्पा। अथ यत्र दशापतिना सहैकराशौ कश्चिद्व्यवस्थितो द्वयोरपि त्रिकोणयोः तदा न्यासः $\frac{१}{१}$|$\frac{१}{२}$|$\frac{१}{३}$|$\frac{१}{३}$ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{१८}{१८}$|$\frac{६}{१८}$|$\frac{६}{१८}$|$\frac{६}{१८}$ छेदहीनाः १८। ६। ६। ६ एते गुणकाराः एकीकृताः ३६ एष भागहारः। अथ मूलदशापतिवर्षाणि १३। ०। ०। ० अतः प्राग्वदन्तर्दशान्यासः अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः १३। ०। ०। ० जाता सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतिना सहैकराशौ

६	३	२	२
०	०	०	०
०	०	०	०
०	०	०	०

कश्चिद्व्यवस्थितः त्रिकोण योर्मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्व्यवस्थितश्चतुरस्रयोर्मध्यादेकस्मिन्नेव नान्यत्र तदा न्यासः $\frac{१}{१}$|$\frac{१}{२}$|$\frac{१}{३}$|$\frac{४}{४}$ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{२४}{२४}$|$\frac{१२}{२४}$|$\frac{८}{२४}$|$\frac{६}{२४}$ छेदहीनाः २४। १२। ८। ६ एते गुणकाराः एकीकृताः ५० भागहारः। मूलदशा ३६। ०। ०। ० अतः प्रागवच्चतस्रोऽन्तर्दशाः १७। ३। १०। ४८। ८। ७। २०। २४। ५। ६। ३। ३६। ४। ३। २५। १२ अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य (१) योगः ३६। ०। ०। ० जाता सैव मूलदशेति। अथ दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद्व्यवस्थितस्त्रिकोणयोः मध्यादेकस्मिन्नन्यः सप्तमे व्यवस्थितो नान्यत्र तदा न्यासः $\frac{१}{१}$|$\frac{१}{२}$|$\frac{१}{३}$|$\frac{१}{७}$ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{४२}{४२}$|$\frac{१२}{४२}$|$\frac{१४}{४२}$|$\frac{६}{४२}$ छेदहीनाः ४२। २१। १४। ६ एते गुणकाराः एकीकृताः ८३ एष भागहारः। मूलदशावर्षाणि १६। ०। ०। ० अतः प्राग्वच्चतस्रोऽन्तर्दशा आनीताः। अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः १६। ०। ०। ० जाता सैव मूलदशेति। अथ

८	४	२	१
१	०	८	३
४	१७	११	२३
४२	२१	३४	२६

दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद् व्यवस्थितः अन्यौ द्वयोश्चतुरस्रयोस्तत्र न्यासः $\frac{१}{१}$|$\frac{१}{२}$|$\frac{१}{४}$|$\frac{१}{४}$ एते परस्परच्छेदहताः $\frac{३२}{३२}$|$\frac{१६}{३२}$|$\frac{१८}{३२}$|$\frac{८}{३२}$ छेदहीनाः ३२। १६। ८। ८ एते गुणकाराः एकीकृताः ६४ एष भागहारः। मूलदशा ३६। ०। ०। ० अतः प्राग्वच्चतस्रोऽतर्दशाः अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः ३६। ०। ०। ० जाता सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतिना सहैकस्मिन्राशौ कश्चिद्व्यव

१८	६	४	४
०	०	०	०
०	०	६	६
०	०	०	०

स्थितोऽन्यश्चतुरस्रयोःमध्यादेकस्मिन्नन्यःसप्तमेतदा न्यासः $\frac{१}{१}$।$\frac{१}{२}$।$\frac{१}{४}$।$\frac{१}{७}$ एते परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{५६}{५६}$|$\frac{२८}{५६}$|$\frac{१४}{५६}$|$\frac{८}{५६}$ छेदहीनाः ५६। २८। १४। ८ एते गुणाकाराः एकीकृताः

(१) अत्र बालवबोधार्थं दशाचतुष्टयस्य योगज्ञापकचक्रम्-

१०६ एष भागहारः। मूलदशा ३६।०।०। अतः प्राग्वच्चतस्रोऽन्तर्दशाः १६।०।६।४८।६।६।३।२४।४।६।१।४२।२।८।१८।६। अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः जाता सैव मूलदशेति ३६।०।०।० अथ यत्र त्रिकोणयोः कश्चिद्ग्रहः स्थितः चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिंस्तदा न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}$ एते परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{३६}{३६}|\frac{१२}{३६}|\frac{१२}{३६}|\frac{६}{३६}$ छेदहीनाः ३६। १२।१२।६ एते गुणकाराः एकीकृताः ६६ एष भागहारः। मूलदशा २३।०।०।० अतः प्रागवच्चतस्रोऽन्तर्दशाः १२।०।०।०।४।०।०।०।४।०। ०।०।३।०।०।० अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगो जाता २३।०।०।० सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतेस्त्रिकोणयोर्मध्यादेकस्मिन्स्थितः कश्चिद्द्वयोश्चतुरस्रयोश्च तदा न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}$ एते परस्परच्छेदहताः $\frac{४८}{४८}|\frac{१६}{४८}|\frac{१२}{४८}|\frac{१२}{४८}$ छेदहीनाः४८।१६।१२।१२ एते गुणकाराः एकीकृताः ८८ एष भागहारः। मूलदशा २२।०।०।० अतः प्राग्वच्चतस्रोऽन्तर्दशा १२।०।०।०।४।०।०।०।३।०।०।०।३।०।०।० अस्यांतर्दशाचतुष्टयस्य योगः जातः सैव २२।०।०।० मूलदशेति। अथ यत्रदशापतेस्त्रिकोणयोर्मध्या-देकस्मिन्कश्चित्स्थितः चतुरस्रयोरप्येकस्मिन्सप्तमे च कश्चित्स्थितस्तदा न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}$ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः $\frac{८४}{८४}|\frac{२८}{८४}|\frac{२१}{८४}|\frac{१२}{८४}$ छेदहीनाः ८४।२८।२१।१२ एते गुणकाराः एकीकृताः १४५

२०	६	५	२
१०	११	२	११
७	१२	१६	२२
५१	३८	५८	३३

एष भागहारः। मूलदशा ३६।०।०।० अतः प्राग्वच्चत-स्रोऽन्तर्दशाः अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः ३६।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। अथ यत्र दशापतेश्चतुरस्रयोः

दशानाम	वर्ष	मास	दिन	द०
प्रथम दशामान	१७	३	१०	४८
द्वितीय दशामान	८	७	२०	२४
तृतीय दशामान	५	६	३	३६
चतुर्थ दशामान	४	३	२५	११
दशामान वर्ष	३६	..	..	..

अत्रोपर्युपरिस्थितानामेककोष्ठगतानां (सजातीयानां) योगश्चेत्तन्मानादधिकस्तदा स योगस्तन्मानेन तष्टितो लब्धिश्च पूर्वकोष्ठगतयोगे क्षेप्या भवेत्। एवं सर्वत्र कोष्ठयोगे ज्ञेयम्। टीकाकारेण तु ग्रन्थगौरवभयात्तेषां चतुर्णां दशामानानां योग एव षट्त्रिंशत्परिमितः सुखार्थं रक्षित इति।

द्वयोरपि ग्रहः स्थितः सप्तमे च तदा न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$एते परस्परच्छेद-हता जाताः$\frac{११२}{११२}|\frac{२८}{११२}|\frac{२८}{११२}|\frac{१६}{११२}$छेदहीनाः ११२।२८।२८।१६ एते गुणकाराः एकीकृताः १८४ एष भागहारः। मूलदशा ३६।०।०।० अतः प्राग्वच्चतस्त्रोऽन्तर्दशा २१।१०।२८।४२॥५।५।२२।१०।५।५। २२।१०॥३।१।१६।८ अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः ३६।०।०।० जाता सैव मूलदशेति। एवं चतुर्विकल्पाः। अथ पञ्चविकल्पेषु न्यासादेव ग्रहावस्थानं बोद्धव्यम्। न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}$छेदेनानेन २४ हताः गुण-काराः २४।१२।८।८।६ भागहारः ५८।न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{७}$ छेदेनानेन ४२ गुणकाराः ४२।२१।१४।१४।६ भागहारः ६७।न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}$ छेदेनानेन २४ गुणकाराः १४।१२।८६।६ भागहारः ५६। न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$छेदेनानेन ५ गुणकाराः ५६।२८।१४।१४।८ भागहारः१२०। न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$छेदेनानेन ८४ गुणकाराः ८४।२८ ।२८।२१।१२ भागहारः १८७। न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}$छेदेनानेन ८४ गुणकाराः ८४।२८।२८।२१।१२ भागहारः १७३ एवं पञ्चविकल्पाः। अथ षड्विकल्पाः। न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$छेदेनानेन २५२ गुणकाराः २५२।१२६।८४।८४।६३।३६भागहारः ६४५।न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$ छेदेनानेन १६८ गुणकाराः १६८।८४।५६।४२।४२।२४ भागहारः ४१६।न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}$ छेदेनानेन ६६ गुणकाराः ६६।४८। ३२।३२।२४।२४ भागहारः २५६।न्यासः$\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}$ छेदेनानेन ६६ गुणकाराः६६।४८।३२।३२।२४।२४ भागहारः २५६। न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$ छेदेनानेन ८४ गुणकाराः ८४।२८।२८।२१।२१ ।१२ भागहरः १६४।इति जाताः षड्विकल्पाश्चत्वारः। अथ सप्त विकल्पाः। न्यासः $\frac{१}{१}|\frac{१}{२}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{३}|\frac{१}{४}|\frac{१}{४}|\frac{१}{७}$ छेदेनानेन १६८ गुणकाराः १६८।८४।५६।५६। ४२।४२।२४ भागहारः ४७०। एवं यावंतो दायहारा भवन्ति तावदेव तत्कर्म उपपद्यते। यावन्तोन भवन्ति तावत्कर्म नोपपद्यत इति। एवविकल्पो नास्ति। द्विविकल्पाश्चत्वारः ४। त्रिविकल्पाः सप्त ७। चतुर्विकल्पा नव ९। पञ्चविकल्पाः सप्त ७। षड्विकल्पाश्चत्वारः ४।सप्तविकल्पः एकः। एवं द्वात्रिंशद्विकल्पाः ३२। यत्र बहवः पाचका भवन्ति तत्र प्रथमं मूलदशापतिरेवान्तर्दशापाचको भवति। ततः परं य एव दशाविभागक्रमः स एवान्तर्दशाविभागक्रमः, यस्यादौ दशापाचकत्वं तस्यैवान्तर्दशापाचकत्वम्। यस्य पश्चात्तस्य पश्चादिति। दशाक्रम-

पाचने यस्यान्तर्दशापाचकत्वं न प्राप्तं तस्य न वक्तव्यम्। तदनन्तरं यस्य प्राप्तं तस्यैव वक्तव्यम्। अत्रान्ये मूलदशापतेरन्तर्दशां दत्त्वा ततः परमेकर्क्षगस्य ददाति। ततस्त्रिकोणगतस्य ततः सप्तमस्य। त्रिकोणचतुरस्रयोर्यदा ग्रहौ तदा द्वौ तयोर्बलाधिको यस्तस्यादौ, तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः– 'आदावन्तर्दशापाको भवत्येव दशापतेः। ततः परं तु वक्तव्यं दशापाकक्रमेण तु।।'।। ४।।

भाषा– पूर्वश्लोकानुसार जितने अन्तर्दशा पाचक का स्थान (अर्ध भाग) प्राप्त हो उन सब भागों का 'अन्योन्यहराभिहतौ हरांशौ' इत्यादि विधि से समच्छेद करके नीचे छेदों को त्याग कर देना, तथा ऊपर जो अंश पृथक्-पृथक् हों उन सबों को दशावर्ष के गुणक समझे, तथा सब अंशों के योग को भाजक कल्पना करके अन्तर्दशा साधन करे। अर्थात् पृथक्-पृथक् अंशों से दशावर्ष को गुणा कर भाजक (अंश-योग) से भाग देकर लब्धि-वर्षादि अन्तर्दशा होगी।। ४।।

उदाहरण– जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशापाचक इनका परस्पर हर में अंश को गुणा करने से समच्छेद हुआ। अब यहाँ नीचे छेदों को त्याग कर देने से अं. ४।२,१ इनको गुणक और इन अंशों के योग ७ को भाजक मानो। सूर्य दशावर्ष ६।१।२२।१२।० को सूर्य के गुणक (४) से गुणा करके २४।६।

	सूर्य	चन्द्र	गुरु
अंश	१	१	१
छेद	१	२	४

	सूर्य	चन्द्र	गुरु
अंश	४	२	१
छेद	४	४	४

२८।४८।० इसमें भाजक (७) के भाग देकर लब्धि वर्षादि सूर्य की अन्तर्दशा ३।६।४।६।५१ इतनी हुई। फिर सूर्यदशा वर्ष को २ से गुणाकर ७ से भाग देकर लब्धि वर्षादि १।६।२।१३।२६ यह सूर्यदशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हुई। इसी प्रकार दशावर्ष को गुरु के गुणक १ से गुणा कर उसमें ७ के भाग देने से लब्धि वर्षादि ०।१०।१६।१।४३ यह गुरु की अन्तर्दशा हुई। इस प्रकार अन्तर्दशा एवं चन्द्रमा में अन्तर्दशा पाचक क्रम से इस पर से पूर्ववत् समच्छेदादि करके अन्तर्दशा समझना चाहिए। एक लग्न की दशा में अन्तर्दशा पाचक क्रम से ल. र. गु.। तथा शुक्र की दशा में अन्तर्दशा क्रम से इनका समच्छेद करने से शुक्र की दशा के गुणक क्रम से १२।६।४।३ तथा इन सबों का योग २५ यह भाजक हुआ, इनसे शुक्र की दशावर्षादि को गुणा-भाग द्वारा अन्तर्दशा जानना। इस प्रकार अन्य ग्रहों की भी अन्तर्दशा समझनी चाहिए। इस उदाहरण की कुण्डली देखिये। मंगल के साथ में या त्रिकोण, चतुरस्र और सप्तम में कोई ग्रह नहीं है, इसलिये मंगल की समस्त दशा में मंगल ही अन्तर्दशापति भी होगा। इत्यादि श्लोकानुसार पुनः अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा भी समझना चाहिये।। ४।।

चक्र

दशेश	सूर्य	चन्द्र	गुरु
वर्ष	३	१	०
मास	६	९	१०
दिन	४	२	१६
घटी	६	३	१
पल	५१	२६	४३
संवत्	१९७२	१९७४	१९७५
सूर्य राहु	६	३	१
अंश	१०	१२	२९
कला	५६	५९	१
विकला	३१	५७	४०

चन्द्र	रवि	गुरु
१	१	१
१	२	४

शुक्र	बुध	गुरु	मंगल
१	१	१	१
१	२	३	४

शुक्र	बुध	गुरु	मंगल
१२	६	४	३
१२	१२	१२	१२

इसकी उत्पत्ति यह है कि- यदि सब अंश योग में समस्त दशा प्रमाण तो अलग-अलग अंश में क्या? इस प्रकार त्रैराशिक से अलग-अलग अन्तर्दशा प्रमाण $= \frac{\text{दशा प्रमाण} \times \text{पृ अं}}{\text{अंशयो}}$ उपपन्न होता है।।४।।

एवं दशान्तर्दशाविभागे ज्ञाते कस्य सम्बन्धिनो दशान्तर्दशा वा शुभफला भवति कस्याशुभफलेत्येतन्न ज्ञायते। तदर्थं दशादेः स्वफलानुरूपाः संज्ञा वैतालीयेनाऽऽह–

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयानिष्टफला दशा प्रसूतौ।५।

सम्यग्बलिन इति।। प्रसूतौ पुरुषस्य जन्मकाले यो ग्रहः सम्यग्बलवान् भवति पूर्वोक्तैर्बलैः सर्वैर्युक्तो भवति तत्सम्बन्धिनी सम्पूर्णा नाम्नी दशा भवति। न केवलं यावत्स्वतुङ्गभागेऽवस्थितस्य परमोच्चभागगतस्यैव सम्पूर्णा नाम्नी दशा भवति। सम्यग्बलिन इत्युक्त्वा पुनः स्वतुंगभागे इत्यनेनैतज्ज्ञापयति। तथा परमोच्चगतो ग्रहोऽन्यैः बलकारणैर्युक्तो न भवति तथापि तस्य सम्बन्धिनी दशा सम्पूर्णेव। सम्पूर्णायां दशायामन्तर्दशायां च काले शरीरारोग्यधनवृद्धिभिः पुरुषोऽभिवर्द्धते। अथ समस्तबलैर्युक्तो न भवति किञ्चिदूनबलस्तदा तस्य सम्पूर्णनाम्नी दशा भवति। अथ परमोच्चगतो न भवति केवलमेवोच्चराशिगतो भवति तदा तस्य दशा पूर्णेव भवति। पूर्णायां च दशायां काले धनलाभमवाप्नोति। तत्रारोग्यम्। बलवर्जितस्य ग्रहस्य रिक्तानाम्नी दशा भवति। यश्च नीचराशौ स्थितस्तस्य रिक्तै व रिक्ता-

दशाकालेऽन्तर्दशाकाले धनहानिमिहाप्नोति। नीचांशगतस्येति। नीचांशे नीचराशिनवभागे यो ग्रहो गतः स्थितो भवति यश्च शत्रुभागे शत्रुनवांशे च स्थितस्तस्य दशानिष्टफला ज्ञेया ज्ञातव्या। अनिष्टफलदशान्तर्दशाकाले धनहानिमनारोग्यं च प्राप्नोति। अत्र च भगवान्गार्गिः— 'सर्वैर्बलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च। सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्यविवर्धिनी।। सर्वैर्बलैर्विहीनस्य नीचराशिगतस्य च। रिक्ता नाम दशा ज्ञेया धनारोग्यविनाशिनी।। स्वोच्चराशिगतस्याथ किञ्चिद्बलयुतस्य च। पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा।। यः स्यात्परमनीचस्था चारिनवांशके। तस्यानिष्टफला नाम व्याध्यनर्थविवर्धिनी'।।५।।

भाषा— जन्म-समय में जो ग्रह स्थानादि सब बलों से युक्त हो तथा अपने परमोच्च में हो उस ग्रह की सम्पूर्णा नाम की दशा होती है। जिसमें सब प्रकार से शुभ फल होता है। तथा जो ग्रह स्थानादि सब बलों से हीन हो, अपने परम नीच में हो या शत्रुनवांश में हो उस ग्रह की दशा रिक्ता नाम की होती है वह सब प्रकार से अशुभ फल देती है।। ५ ।।

विशेष अर्थ— ग्रहों के मुख्यतया ४ प्रकार (स्थान, चेष्टा, काल और दिशा सम्बन्धी) बल होते हैं। इन चारों प्रकार के बल से युक्त होने पर सम्यग् बली कहलाता है। और चारों बल से रहित निर्बल (कमजोर) कहलाता है। इससे सिद्ध होता है कि यदि चारों बल से युक्त होकर परमोच्च में हो तो सम्पूर्ण शुभ फल, ३ बल से युक्त हो तो ३ चरण, २ बल से युक्त हो तो २ चरण (आधा १।२) और १ बल से युक्त हो तो १ चरण शुभ फल होता है। जैसे गार्गि का वचन संस्कृत टीका में देखिए।

अथ दशान्तर्दशासंज्ञाः पुनरपीन्द्रवज्रयाऽऽह—

भ्रष्टस्य तुङ्गादवरोहिसञ्ज्ञा मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे।
आरोहिणो निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा।६।

भ्रष्टस्येति। तुङ्गात्परमोच्चाद्भ्रष्टस्य च्युतस्यावरोहिसंज्ञा। अवरोहिणी नाम्नी दशा ज्ञेया। दशापरमोच्चभागादारभ्य यावत्परमनीचभागादि अत्रान्तरे यद्राशिषट्कं तत्रावस्थितेन ग्रहेण या दत्ता दशांतर्दशाद्या सावरोहिणी संज्ञा भवति। यस्मात्परमोच्चात् भ्रष्टः प्रत्यहमधोऽवतरतीति विकल्प्यते। यावत्परमनीचमिति। अवरोहिसंज्ञा दशाऽधमफला भवति। यस्माद्वक्ष्यति— 'संज्ञानुरूपाणि फलान्यथैषाम्' इति। ''मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे' इति। सैवावरोहिणी यत्र तत्र राशौ व्यवस्थितेन सुहृद्भागगेन मित्रांशकस्थेन दत्ता दशा मध्या नाम्न्येव

भवति। एवं यत्र तत्र राशौ अर्थादिव स्वांशकस्थेन दशा मध्यैव। एवं यत्र तत्र राशौ स्वोच्चनवांशकस्थेन दशा मध्यैव। आरोहिणीनाम्नी दशा भवति। परमनीचान्तर्भागादारभ्य यावत्परमोच्चभागादिरत्रान्तरे यद्राशिषट्कं तत्रावस्थितेन ग्रहेण या दत्ता दशान्तर्दशा वा सा रोहिणी नाम्नी दशा भवति। यस्मात्परमनीचादिष्टः प्रत्यहं तावदारोहतीति ग्रहः परिकल्प्यते। यावत्परमोच्चमिति। आरोहिणी श्रेष्ठफला भवति। नीचारिभांश इति। सैवारोहिणी यत्र तत्र राशौ स्वनीचराश्यंशोपगतेन दत्ताधमा नाम्नी दशा भवति। एवं यत्र तत्र राशावरिभांशकस्थेन शत्रुनवांशकस्थेन दत्ताधमैव दशा भवति। पूर्वं शत्रुनवांशकस्थेन दत्ता-निष्टफलेत्युक्तमधुना सैवाधमेति। तत्किमेतदित्यत्रोच्यते। अव-रोहिणी शत्रुनवांशकस्थेन दत्तापि अनिष्टफला ज्ञेया। आरोहिण्यधमा। अनयोः कः फलभेदः? अत्रोच्यते। अनिष्टफला फलमशुभं प्रयच्छति। अधमाशुभमेवाल्पमिति। एवमेव रोहिणी संज्ञा यदाधमसंज्ञा भवति तदा सैवानिष्टफलसंज्ञां लभते। आरोहिणी यदा मध्यसंज्ञा भवति तदा सैव पूर्णेति संज्ञा ज्ञेया। अत्र च, भगवान्गार्गिः—

उच्चनीचान्तरस्थस्य दशा स्यादवरोहिणी।
तस्यामल्पत्वमवाप्नोति फलं क्लेशाच्छुभं नरः॥
मित्रोच्चात्मांशकस्थस्य मध्या मध्यफला तु सा।
नीचोच्चमध्यगस्योक्ता श्रेष्ठा चारोहिणी दशा॥
सैवाधमाख्या भवति नीचराश्यंशगस्य तु।
अवरोहिणी चेदधमा भवेत्कष्टफला तदा॥
आरोहिणी मध्यफला सम्पूर्णा परिकीर्त्तिता' *इति*॥ ६॥

भाषा— जो ग्रह अपने परमोच्च भाग से आगे और नीच से पीछे हो उस ग्रह की दशा अवरोहिणी कहलाती है। वह नीचाभिमुख गति होने के कारण अशुभ होती है। किन्तु ग्रह यदि मित्र राशिनवांश में हो वा अपनी उच्चराशि के नवांश में हो तो अवरोहिणी दशा भी मध्य फल देनेवाली होती है। तथा जो ग्रह अपने परम नीच से आगे और उच्च से पीछे हो उसकी दशा आरोहिणी कहलाती है, वह उच्चाभिमुखगति होने के कारण शुभ होती है। किन्तु यदि नीच राशि के नवांश में वा शत्रुराशि नवांश में ग्रह हो तो आरोहिणी दशा भी अशुभ फल देती है। इससे सिद्ध होता है कि यदि ग्रह अपनी नवांश या उच्चराशि के नवांश में हो तो आरोहिणी दशा विशेष शुभप्रदा होती है॥ ६॥

अथ दशान्तर्दशासंज्ञाः पुनरप्युजातिकयाऽऽह—

नीचारिभांशे समवस्थितस्य शस्ते गृहे मिश्रफला प्रदिष्टा।
सञ्ज्ञानुरूपाणि फलान्यथैषां दशासु वक्ष्यामि यथोपयोगम्।७।

नीचेति। शस्तानि गृहाणि स्वोच्चमूलत्रिकोणात्मक्षेत्रमित्रक्षेत्राणि तेष्ववस्थिते नीचराश्यंशके समवस्थितेन वा ग्रहेण दत्ता या दशान्तर्दशा वा सा मिश्रफलानाम्न्येव। मिश्रफला शुभमशुभं च फलं प्रयच्छति। व्याधिसमेतमर्थागममेवमादिशेत्। अर्थादिवाशस्तराशिगेन अशस्ताः शत्रुनीचराशयः तत्स्थेन स्वोच्चमित्रमूलत्रिकोणात्मवर्गोत्तमनवांशकस्थेनापि दत्ता मिश्रफलैव भवति। संज्ञानुरूपाणि स्वनामसदृशानि फलानि स्वान्तर्दशासु च ज्ञेयानी। तद्यथा— सम्पूर्णात्यन्तश्रेष्ठफलप्रदा पूर्णा श्रेष्ठफलप्रदा अधमा शुभाल्पफलदा रिक्तार्थापहारिणी अनिष्टफलदात्यन्तमशुभकारिणी मिश्रफला शुभमशुभं च फलं प्रयच्छति। अथैषां दशास्थितिः। अथ शब्द आनन्तर्ये। एषामादित्यपूर्वाणां ग्रहाणां दशासु यथोपयोगमुत्तरत्र वक्ष्यामि। यया येनैव प्रकारेणैव युज्यते तथा तत्कथयिष्यामि। कस्यान्तर्दशायां किं फलमुपयुज्यते इति ।।७।।

भाषा— जो ग्रह प्रशस्त (उच्च आदि) राशि में और नीच या शत्रुराशि के नवांश में हो तो उसका मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों प्रकार का) फल होता है। अब आगे इसी प्रकार इन (लग्नसहित ग्रहों) के फल अपनी-अपनी दशा में संज्ञासदृश होते हैं, वे यथोपयुक्त कहते हैं।।७।।

विशेष अर्थ— भावार्थ यह है कि-राशि और नवांश दोनों की स्थिति से ग्रहों की दशा शुभ, मध्य या अशुभ समझकर फल कहना चाहिए। जैसे भगवान् गार्गि का वचन— छठे श्लोक की संस्कृत टीका में देखिये।।७।।

अथ लग्नदशायां शुभाशुभज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह—

उभयेऽधममध्यपूजिता द्रेष्काणैश्चरमेषु चोत्क्रमात्।
अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमाद्धोरायः परिकल्पिता दशा ।।८।।

उभय इति।। उभये द्विस्वभावे राशौ लग्नगते द्रेष्काणक्रमेणाधममध्यपूजिता दशा ज्ञेयाः। प्रथमद्रेष्काणे जातस्याधमाऽशोभनाभिष्टफला। द्वितीये द्रेष्काणे मध्यमा मिश्रफला। तृतीये द्रेष्काणे पूजिता श्रेष्ठफला। चरभे चरराशावुत्क्रमेण वैपरीत्येन तेन प्रथमद्रेष्काणे जातस्य पूजिता, द्वितीये मध्यमा, तृतीयेऽधमानिष्टफला। अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमादिति। स्थिरे स्थिरराशौ प्रथमद्रेष्काणे

शुभा। द्वितीये द्रेष्काणे इष्टा श्रेष्ठा। तृतीये द्रेष्काणे समा मध्यफला। एवं होरायाः लग्नस्य दशा परिकल्पिता उक्ता इति।। ८।।

भाषा- द्विस्वभावराशि लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण हो तो मध्यम, तृतीय द्रेष्काण हो तो शुभ फल देनेवाली लग्न की दशा होती है। चर लग्न में इसका उल्टा अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में शुभ, द्वितीय में मध्यम, तृतीय द्रेष्काण में अशुभ फलप्रद लग्न की दशा होती है। स्थिर लग्न में प्रथम द्रेष्काण में अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण में श्रेष्ठ, तृतीय द्रेष्काण में मध्यम फल देनेवाली लग्नदशा समझनी चाहिए।।८।।

अथ नैसर्गिकाणां ग्रहाणां दशाकालं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

एकं द्वौ नवविंशतिर्धृतिकृती पञ्चाशदेषांक्रमा-
च्चन्द्रारेन्दुजशुक्रजीवदिनकृद्दैवाकरीणां समाः।
स्वैः स्वैः पुष्टफला निसर्गजनितैः पक्तिर्दशायाःक्रमा-
दन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तथा।९।

एकमिति।। एकाद्याः समाः एकादीनि वर्षाणि चन्द्रादीनां यथाभिहितानी नैसर्गिकाणि। तद्यथा— जन्मसमयादारभ्यैकाद्याः समाः संवत्सराः। एकश्चन्द्रस्य ततः परं द्वावारस्याङ्गारकस्य। एवं त्रयः। ततः परं नवेन्दुजस्य बुधस्य। एवं द्वादश। ततः परं विंशतिः शुक्रस्य। एवं द्वात्रिंशत्। ततः परं धृतयोऽष्टादश जीवस्य गुरोः। एवं पञ्चाशत्। ततः परं कृतिसंख्या विंशतिः दिनकृतः सूर्यस्य। एवं सप्ततिः। ततः परं पञ्चाशत् दैवाकरेः सौरस्य। एवं विंशत्यधिकं वर्षशतम् (१२०)। एतेषु निसर्गदशाधिपेषु ग्रहेषु बलवत्सूपचयस्थितेषु च तद्दशासु शोभनानि दशाफलानि भवन्ति। हीनबलेष्वनुपचयस्थेष्वशोभनानि। एतच्च सर्वदा चिन्त्यं, यतो निसर्गदशास्विति संवाद इति। तथा च यवनेश्वरः— 'स्तन्योपभोगः शशिनो वयः स्वं भौमस्य विद्याद्दशनानुजन्म। बोधं तु शिक्षाप्रदकालमाहुरामैथुनेच्छाकुलितप्रवृत्तिः।। शोकं युवत्वं विधिपूर्वदृष्टमामध्यमाद्देवगुरो वदन्ति। रवेर्वयोऽर्द्धात्परमन्यदस्मात्सौरेर्जरा दुर्भगकालमाहुः।।' इति। नैसर्गिकस्य दशाकालस्य प्रयोजनमाह— स्वैः स्वैरिति। तत्र यस्य ग्रहस्य सम्बन्धिनी पूर्वविधिना कृता दशान्तर्दशा वा सा यदि नैसर्गिकसमाभिः निसर्गकथितवर्षैः स्वैः स्वैः आत्मीयैः युज्यते, स्वदशाकालेन समकालं भवति तदा यावत्कालं तस्य दशा युक्ता भवति निसर्गवर्षसमयं यदि प्राप्नोतीत्यर्थः। कालद्वय-

स्यैक्यमुद्वहति तदा यावत्कालं तस्य सम्बन्धिनो दशान्तर्दशा भवति। तस्याः पुष्टफला पक्तिः भवति। तस्याः पुष्टा परिपूर्णफला पक्तिः पाको भवति। क्रमात्परिपाट्या यावद्वर्तते तावच्छुभ फलेत्यर्थः। अत्र केचिद्वदन्ति। पूर्वविधिना जाता शुभा तदा शुभफलमत्यर्थं प्रयच्छत्यन्यथाशुभा तदाशुभमत्यर्थमिति। एतच्चायुक्तम्। यस्माद्यवनेश्वरः। 'श्रेष्ठा दशा स्वे वयसि ग्रहस्य' इति। तथा च सत्यः। 'एकाब्दिकः शशी त्र्यब्दिकः कुजो द्वादशाब्दिकः सौम्यः। द्वात्रिंशद्भृगुपुत्रो गुरुस्तु कथितः शतस्यार्द्धम् (५०)।। सप्तत्यब्धः सूर्यो विंशत्यधिकः शनैश्चरोऽब्दशतः। वयसोंऽतराणि चैषां स्वदशानैसर्गिकः कालः।। स्वं स्वं वयसः सदृशं ग्रहः समासाद्य देहिनां कालम्। रक्षणपोषणचेष्टास्वभावदाः स्युर्यथासंख्यम्।।' अथ लग्नदशानैसर्गिककालं पुराणयवनमतेनाह— अन्ते लग्नदशेति। विंशत्यधिकाद्वर्षशतादूर्ध्वं यदि कस्यचिदायुषः कालो भवति तदा स कालः सर्व एव लग्नस्य नैसर्गिको भवति। तस्मिन्काले पुराणयवनानां मतेन लग्नदशा शोभना भवति। विंशत्यधिकाद्वर्षशतादूर्ध्वमित्येतकुतोऽवगम्यते। उच्यते, तदर्वाकालस्यान्यग्रहपरिगृहीतत्वात् लग्नस्यानवकाशादेव। अथान्यः कश्चिदाह। यथा ननु विंशत्यधिकाद्वर्षशतादधिकं यस्यायुर्नास्ति तस्य लग्ननैसर्गिको दशाकालो नास्ति? उच्यते, नास्त्येव न केवलं यावद्वर्षसप्ततेरभ्यधिकं यस्यायुर्नास्ति तस्य शनैश्चरसम्बन्धी नैसर्गिको नास्ति। यस्य पञ्चाशतोऽधिकं नास्ति तस्यादित्यस्य किमपि नास्ति। एवमन्येषामपि योज्यम्। ननु विंशत्यधिकं वर्षशतं परमायुरत ऊर्ध्वं जीविताभावात्को लग्नस्य नैसर्गिको दशाकालः। उच्यते, पूर्वमेव व्याख्यातम्। यथाविंशत्यधिकं वर्षशतं परमायुः त्रैराशिकार्थमश्वादीनामायुर्ज्ञानार्थं प्रदर्शितम्। ततः तावत्प्रमाणादायुषः परं सम्भवतीति। तथा च। यथा मीनलग्ने बलवति मीनांशकान्ते च कश्चिज्जातो भवति, सर्वे च ग्रहाः यत्र तत्र राशौ मीनांशकावस्थिता भवन्ति केचिदुच्चगताः, केचिच्च वक्रितास्तदा मीनलग्नो द्वादशवर्षाणि ददाति। स एव बलयुतस्तदान्यानि द्वादशवर्षाणि ग्रहश्चैकैको मीनांशकान्तस्थत्वाद्द्वादश वर्षाणि ददाति। तानि च वक्रोच्चस्थत्वात्त्रिगुणानि षट्त्रिंशद्भवति। आदित्यवर्ज्यम्। आदित्यस्य मेषमध्यमांशकस्थितस्य सप्तविंशतिवर्षाणि भवन्ति। एवं चन्द्रादीनां षण्णां शतद्वयं षोडशाधिकं

भवति। आदित्यस्य सप्तविंशतिः, लग्नस्य चतुर्विंशतिः एवमेकीकृतं शतद्वयं सप्तषष्ट्यधिकं भवति। नन्वेतावत्प्रमाणं कालं कश्चिज्जीवमानो न दृश्यते योगस्यातिदुर्लभत्वात्। उच्यते, कश्चित् दृश्यत एव जन्त्वादिकः। नेच्छन्ति केचित्तथेति। तां लग्नदशामन्ते केचिदाचार्याः श्रुतकीर्तिप्रभृतयः तथा तेनैव प्रकारेण शुभमिति नेच्छन्ति। नोवाञ्छन्तीत्यर्थः। यस्मादबलत्वे लग्नस्य वयोंऽते तद्दशा भवति सा शुभा। आचार्येण लग्नदशायां शुभाशुभत्वं बलवशान्नोक्तम्। द्रेष्काणवशादुक्तम्। उभयेऽधममध्यमपूजिता इति। यस्माद्बलहीनस्यापि लग्नस्य वयोंऽते दशा द्रेष्काणवशाच्छुभा भवति तस्माद्ये आचार्या अन्ते लग्नदशां नेच्छन्ति ते निष्कारणमेव नेच्छन्ति। ननु किमागमग्रन्थानांकारणेन। उच्यते। य एवाचार्या अन्ते लग्नदशां नेच्छन्ति त एवागमांस्त्यक्त्वा यथादर्शितकारणमुपन्यस्य नेच्छन्ति। तेन कारणेन दोष उक्तः। तथा च श्रुतकीर्तिः। 'अन्तेलग्नदशा शुभेति यवना नैतद्बहूनां मतं। तस्मिन्हीनबले यतोंऽत्यसमये सा स्यादतो नेष्यते।' एतत् श्रुतकीर्तिना कारणमुपन्यस्तं तच्च दृष्टमते नैसर्गिकि लग्नदशाकालेऽन्तर्दशा शुभेवेत्यवगन्तव्यम्।।९।।

भाषा– जन्म-समय से आरम्भ होकर १ वर्ष तक चन्द्रमा का, उसके बाद २ वर्ष मंगल का, उसके बाद ९ वर्ष तक बुध का, उसके बाद २० वर्ष तक शुक्र का, उसके बाद १८ वर्ष तक बृहस्पति का, उसके बाद २० वर्ष तक सूर्य का, उसके बाद ५० वर्ष तक शनि का दायकाल होता है। इस प्रकार सातों ग्रहों की १२० वर्ष पर्यन्त नैसर्गिक दशा होती है। इससे अधिक जिसकी आयु होती है उसके लिए शनि के बाद जीवनपर्यन्त अन्त में लग्न की दशा होती है। वह शुभ होती है, ऐसा यवनों का कथन है। किन्तु अन्य आचार्य का मत है कि अन्त में जो लग्न की दशा होती है वह सदा शुभ ही नहीं होती, अर्थात् द्रेष्काणवश शुभ-अशुभ दोनों हो सकती है।।९।।

विशेष अर्थ– कोई कहते हैं कि 'जब परमायु १२० वर्ष तक ही कही गई है तो, उसके बाद लग्न की दशा कैसे प्राप्त हो सकती है' परञ्च ऐसा कहना असङ्गत है, क्योंकि सत्याचार्य आदि के मत से ग्रहस्थितिवश २०० से भी अधिक आयु हो सकती है। १२०वर्ष से अधिक कितने ही मनुष्य जीते देखे गये हैं। तथा कितने जन्तु २०० वर्ष से भी अधिक जीते हैं। उनकी नैसर्गिक दशा अन्त में लग्न की होगी। मान लिया जाय कि किस मनुष्य का जन्म मीन लग्न के अन्तिम नवांश में हो और ग्रह भी अपने-अपने उच्च में अथवा वक्र होकर किसी राशि के मीन नवांश में हो। किन्तु सूर्य न वक्र हो सकता है और न उच्च

में मीन के नवांश में जा सकता है। इसलिए वह मेष के अन्तिम नवांश में हो, तथा सब ग्रह चक्र पूर्वार्ध में ही हो, और लग्न अपने स्वामी और गुरु बुध से वीक्षितयुत हो तो इस हालत में सत्याचार्य के मत से सूर्य का आयुर्दाय त्रिगुणित करने से २७ वर्ष और ग्रहों के वक्र होने तथा उच्च में रहने के कारण १२, १२ वर्ष के त्रिगुणित ३६, ३६ वर्ष आयुर्दाय होंगे। तथा लग्न मीन के नवांश में होने के कारण १२ वर्ष तथा बलयुत होने के कारण और राशितुल्य १२ वर्ष एवं लग्नायु २४ वर्ष, सबका योग=सूर्य २७+चन्द्र ३६+मङ्गल ३६+ बुध ३६+गुरु ३६+शुक्र ३६+शनि ३६+लग्न २७=३६७ वर्ष आयुर्दाय हुआ। इसलिए 'अन्ते लग्नदशा' यह कहना सङ्गत ही है॥ ९॥

अथ दशान्तर्दशाशुभाशुभज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गेऽस्य सौम्येऽपि वा
प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्लाभेषु वापाकपे।
मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थितश्चन्द्रः
सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा ।१०।

पाकस्वामिनीति॥ सौर - सावन - चान्द्र - नाक्षत्राणि चत्वारि मानानि। तत्र सौरमानं रविभगणभोगः। यावता कालेनार्कोंऽशमेकं भुंक्ते तत्सौरं दिनम्। यावता कालेन राशिद्वादशकं भुङ्क्ते तत्सौरं वर्षम्। तच्च पञ्चषष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैः दिनानां घटिकापञ्चदशकेन सार्द्धेन भवति। सावनमुदयादुदयः। अर्कोदयात्पुनरेवार्कोदयः सावन-महोरात्रम्। तच्च षष्टिघटिकमहोरात्रम्। अहोरात्रस्त्रिंशन्मासः। मासा द्वादश वर्षम्। एवं षष्ट्यधिकैस्त्रिभिःशतैः दिनानां सावनं वर्षं चान्द्रं तिथिभोगः। तच्च स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं भवति। सावनेन मीयमानं शतत्रयं चतुःपञ्चाशदधिकं दिनानां तच्च वर्षं भवति। एवं सौरसावनचान्द्राणि त्रीणि मानानि प्रत्येकं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं भवति। नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रभोगः। तच्च दिनानां सप्तविंशत्या मासो भवति। शतत्रयेण चतुर्विंशत्यधिकेन दिनानां वर्षमुक्तम्। 'रव्यंशभोगोऽहोरात्रः सौरश्चान्द्रमसस्तिथिः। चन्द्रनक्षत्रभोगस्तु नाक्षत्रः परिकीर्तितः॥ स सावनो ग्रहर्क्षाणामुदयादुदयावधि। नाक्षत्रमाने मासः स्यात्सप्तविंशतिवासराः॥ शेषमानेषु निर्दिष्टा मासस्त्रिंश-द्दिनात्मकः।' इति तस्मात्सावनमानेनायुर्दायगणना कार्या। यस्माच्छो-ध्यक्षेपविशुद्धमायुः कर्तव्यम्। तच्च सावनमानम्। सौरमानेन संक्रा-

त्यवधिको मासः। सावनस्त्रिंशद्रात्रः। चान्द्रोऽमावास्यान्तिकः। नाक्षत्रो रेवत्यन्तिकः। सौरमधिमासयुतं चान्द्रं भवति। चान्द्रमूनरात्रोनं सावनं भवति। चान्द्रशब्देन नाक्षत्रम्। उक्तं च– 'युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रम्। अवमविहीनं सावनमैन्दवमब्दान्वितं वर्षम्।।' इति। एवं शोध्यक्षेपविशुद्धं सावनमानेनायुर्दायविधिः। तथा च मयूरचित्रकै भगवान्गार्गिः– 'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रियां तथा। सावनेनैव कर्तव्या सत्राणामप्युपासनम्।'(१) नन्वर्कोदयादारभ्यार्कोदयं यावदहोरात्रं तत्पुलिशतन्त्रे सौरमहोरात्रं पठ्यते– 'वसुसप्तरूपनवमुनिनगतिथयः शतगुणाश्च सौरेण।' इति। एतच्च पुलिश एव जानाति। यस्मात्पुलिशतन्त्रं वर्जयित्वा सर्वसिद्धान्तेषु तन्त्रेषु सौरमानमधिमासयुक्तं चान्द्रं भवति। चान्द्रमवमरात्रोनं सावनं भवति। एवं शोध्यक्षेपविशुद्धं सावनमानं सर्वसंहितासु चार्कोदयादारभ्यार्कोदयं यावदहोरात्रं तत्सावनमहोरात्रमिति संज्ञा। तथा च भगवान्पराशरः– 'सावनमहोरात्रम्।' गार्गिश्च– 'सावनेन स्मृतोमासस्त्रिंशदुष्णकरोदयः।' तथा च श्रीभट्टब्रह्मगुप्तः– 'सावनमुदयादुदयः' इति। एवं पुरुषस्य जन्मसमये सावनमहर्गणं कृत्वा तस्मात्तिथिनक्षत्रच्छेदं तात्कालिकं ग्रहलग्नादिकं कृत्वा तथा दशान्तर्दशाः कर्तव्याः। तत आगामिदशाफलं वक्तव्यम्। तत्र प्रथमजन्मनि अहर्गणं तात्कालिकं कृत्वा ततस्तत्रान्तर्दशाकालं वर्षादिकं दिनीकृत्य योजयेद्वर्षाणि द्वादशभिः संगुण्य तेषु मासान्संयोज्य त्रिंशता पुनः संगुण्य तेषु दिनानि क्षिपेत्। एवं कृते दशाकालो दिनरूपो भवति। तच्च तात्कालिके जन्माहर्गणे सविकले सविकलं संयोज्याहर्गणो भवति। तत्राद्यो यद्घटिकादिः कालो भवति तस्यातीतार्द्धरात्रात्परतो गणना कार्या। तस्मादिष्टदिनमानमानयेदनेनाचार्यसूत्रेण। 'द्युगणोऽधो भवगुणितो द्विनवरसाप्तावमाधिकाश्चान्द्रः। चान्द्रोऽधरर्तुं वेदा नागाप्ता अधिमासदिनैर्हीनाः।।' इति। एतत्खण्डखाद्यकरणेनैव भवति। कोऽसौ रविद्युगण इत्याह– 'शाकोऽगवसुशरोनोऽर्कगुणश्चैत्रादिमाससंयुक्तः। त्रिंशद्गुणस्तिथियुतः'

---

(१) श्रीमद्भास्कराचार्यैरपि सिद्धान्तशिरोमणौ:–

'यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यन्तत्सावनात्ः इत्युक्तम्।

श्रीपतिरपि– प्रायश्चित्तं सूतकाद्यं चिकित्सा यज्ञाद्येवं कर्म वारादिकं च।
शास्त्रे त्वस्मिन् खेचराणां च चारा विज्ञातव्या, सावनाद्भास्करीयात्।।'

।। इति ।।

इति। अस्य षष्ट्यधिकेन शतत्रयेण भागमपहृत्यावाप्तं करणाब्दाः। शेषास्त्रिंशद्भक्ताश्चैत्रसिताद्या मासाः। शेषा वर्तमानमासे सिताद्यास्तिथयः। करणाब्देष्वगवसुशरान्संयोज्यातीतः शककालो भवति। तस्मिंश्छाके तस्मिन्मासे तस्मिन्दिने सोऽहर्गण इति। तत्रैव दशाप्रवेशः पुनरप्यन्यमन्तर्दशाकालं दिनीकृत्य तस्मिन्योजयेत्। एवं यावत्योंऽशेनैव प्रकारेण योजनीयाः। ततो ग्रहान् लग्नं च गणयेत्। अथवान्येन प्रकारेण कालानयनम्। आदित्ये क्रियमाणे यावन्तो गतभगणा भवन्ति तावन्तः करणप्रारम्भादारभ्य गताब्दाः तेषु करणपरिणतशककालं संयोज्येष्टशककालो भवति। वर्तमाने वर्षे यावन्तो राशयः स्फुटार्केण भवति तावन्तो मासाः सूर्यभोगातीताः। शुक्लपक्षं कृष्णपक्षं वा तिथिनक्षत्रं चन्द्रार्काभ्यां ज्ञायत एव। पाकस्वामिनीत्यादि। यस्य ग्रहस्यान्तर्दशाप्रवेशः स पाकस्वामी। तावच्चासौ पाकस्वामी यावत्तस्यान्तर्दशा। स च पाकस्वाम्यन्तर्दशाप्रवेशकाले लग्नगो यदि भवति तदा तस्य सम्बन्धिन्यन्तर्दशा प्रारब्धा शुभदा शोभनफलदा भवति। अथवास्य दशापतेः पूर्वं व्याख्यातो यो वर्गः तस्मिन्नपि लग्नगे शोभना अथवा तत्कालं पाकस्वामिनो यत्सुहृन्मित्रं तस्मिन्नपि दशाप्रवेशकाले लग्नगे शोभना दशा वक्तव्या। अथवान्यस्मिन्सौम्ये शुभग्रहे तत्काललग्नगे प्रारब्धा शोभनैव। अथवा पाकपे दशाधिपतौ ग्रहे तात्कालिकलग्नात् त्रिदशषड्लाभेषु तृतीयषड्दशैकादशस्थानानामन्यतमस्थे शोभनैव दशा वक्तव्या। यद्यप्यत्र सामान्येनोक्तं प्रारब्धा शुभदा दशा तथापि 'शत्र्वधिशत्रुदशायां प्राप्तानिष्टफलप्रदा। अधिमित्रोऽपि मित्रस्य दशां प्राप्नोति शोभनः॥ समः समदशामेत्य यथोक्तफलदा हि सः।' एतदपि चिन्तनीयम्। अनेन प्रकारेण यदि शुभफलदान्तर्दशायां किमप्यनवरतमेव सर्वकालं शुभफलावाप्तिर्भवति। किं वा कस्मिंश्चित्कस्मिंश्चिद् दिवसे एवमशुभायामन्तर्दशायामशुभफलावाप्तिरित्युभयत्र सन्देहनिरासार्थमाह— मित्राद्योपचयेत्यादि। पाकेश्वरस्य दशापतेः प्रतिराशौ सञ्चरतः तत्काले यो ग्रहो मित्रं तत्क्षेत्रस्थितश्चन्द्रमा यदा भवति तदा सत्फलबोधनानि कुरुते शुभफलानि प्रकटीकरोति। अत्र यस्मिन्नहनि यस्मिन्गृहे चारवशाच्चन्द्रमा भवति तस्य गृहस्य योऽधिपतिर्भवति स चेत्तस्मिन्न-हनि पाकपतेस्तात्कालिकं मित्रं भवति तदा चन्द्रमाः पाकपतेर्मित्रक्षेत्रस्थो

ज्ञेयः। तथा पाकपतेः स्वोच्चस्वराशिस्थः सत्फलबोधनानि कुरुते। न केवलं यावत्पाकपतेरुपचयस्थानगतोऽपि त्रिषडेकादशदशमस्थानानामन्यतमस्थानस्थस्त्रिकोणगोऽपि नवपञ्चमस्थानगतोऽपि तथा मदनस्थः सप्तमे च स्थितः एतेषु निर्दिष्टस्थानेष्वन्यतमस्थानस्थश्चन्द्रमाः शुभफलायां दशायां सत्फलबोधनानि कुरुते। न ज्ञायते तेषां फलानामित्यत्रोच्यते– मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदनेऽस्मिन्स्थाने पाकेश्वरश्चन्द्रमाः स्थितः स राशिः जन्मनि यो भाव आसीत्तदुद्भूतं सत्फलं बोधयति। विशेषेण तथा दशापठितमिति। अतोऽस्मादुक्तप्रकारादन्यथा पाकपतेस्तत्कालं शत्रुगृहे नीचराशौ वा दशापतिना सहैकराशौ स्थितस्तथा द्वितीयचतुर्थाष्टमद्वादशस्थानानामन्यतमस्थानस्थो भवति तथा शुभफलायां दशायां पापानि फलानि प्रकटीकरोति। अनिष्टमप्यष्टवर्गोद्भूतं च मिश्रदशायां मित्रोच्चोपचयादिषु सत्फलबोधनानि कुरुते। शत्रुनीचादिषु अशुभफलानामिति। तथा च भगवान्गार्गिः- 'यद्राशिसंस्थः शीतांशुः शुभकृत्परिकीर्तितः। स राशिर्जन्मकाले तु यो भावस्तत्कृतं च तत्। शरीरादिकृतं सौख्यं वक्तव्यं बलयोगतः। अनिष्टराशिसंस्थस्तु तद्भावानामशोभनः।।' इति।१०।

भाषा– पाकस्वामी (दशापति) यदि लग्न में हो अथवा दशापति के मित्र लग्न में हों, अथवा पाकपति के या उसके मित्र के वर्ग (राशि होरादि) या शुभ वा शुभ ग्रह के वर्ग (राशि होरादि) लग्न में हो, अथवा शुभमित्र के वर्ग में दशापति हो तथा लग्न से ३, ६, १०, ११ स्थान में दशापति हो तो ऐसे समय (लग्न) में आरम्भ हुई दशा शुभफल देनेवाली होती है। इसके अन्यथा स्थानादिवश मध्य फल वा अशुभ फल देनेवाली दशा होती है। चन्द्रमा प्रतिक्षण सञ्चारवश जब-जब दशापति के मित्र राशि, उच्चराशि या दशापति से उपचय (३।६।१०।११) स्थान में जाता है तब-तब शुभ फल देता है। अन्यथा (अर्थात् जब दशापति के शत्रु नीच राशि में तथा उपचय से भिन्न स्थान में चन्द्रमा जाता है तब) अशुभ फल करता है।।१०।।

विशेष अर्थ– जिस समय दशा आरम्भ हो उस समय में स्पष्ट ग्रह और लग्न साधन करके इस प्रकार दशा का शुभाशुभ फल समझना चाहिए। दशारम्भ समय जानने का सयुक्तिक प्रकार और स्पष्ट उदाहरण–केशवीय जातक पद्धति की मेरी टीका (सर्वमनोरमा) में देखिये। दशावर्षादि सावन मान से ग्रहण किया जाता है। यथा भगवान् गार्गि का वचन–

'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रियास्तथा ।
सावनेनैव कर्तव्या सत्राणामप्युपासनम् ।' *स्पष्टार्थ।।*

प्रथम दशापति की दशा जन्म समय से ही आरम्भ होती है। इसलिए जन्मकालिक ग्रह और लग्नादि भाव ही दशारम्भकालिक भी होते हैं। उसके बाद अन्य ग्रहों के दशान्तर्दशारम्भ समय जान करके ही उक्त रूप से फल विचार करना चाहिए। जैसे दर्शित उदाहरण में प्रथम सूर्य की दशा है। जन्मकालिक लग्न ही दशारम्भकालिक लग्न हुआ। अब सूर्य की दशा कैसी होगी? यह विचार करना है तो, जन्मकुण्डली देखिये। यहाँ दशापति सूर्य अपने मित्र राशि में पड़ा है इसलिए 'पाकस्वामिनी लग्नगे' इसके अनुसार सूर्य की दशा जातक के लिये अत्यन्त शुभ फल देनेवाली सिद्ध हुई। अर्थात् जन्म समय से सूर्य की दशा (६।१।२२।१२) पर्यन्त जातक को सब प्रकार से सुख की प्राप्ति होगी, ऐसा सिद्ध होता है। तथा चन्द्रमा जन्म समय दशापति के उच्च में है अतः यह (जन्म का) समय जातक के लिए अत्यन्त शुभप्रद हुआ। इस प्रकार आगे भी चन्द्रमा जिस समय सूर्य के मित्र राशि, उच्च राशि या उपचय स्थान में प्राप्त होगा उस समय में विशेष रूप से सुख लाभ समझना चाहिए। वहाँ चन्द्रमा जिस राशि में हो वह जन्म समय जिस भाव में पड़ा हो उस भाव सम्बन्धी शुभ फल कहना चाहिए। जिस समय चन्द्रमा सूर्य से अशुभ स्थान में पड़े वह चन्द्र स्थान जन्म समय जिस भाव में हो उस भाव सम्बन्धी अशुभ फल उस समय जातक का समझना चाहिए।।१०।।

अथान्तर्दशाकाले चन्द्राक्रान्तराशिवशेन शुभज्ञानं
शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

प्रारब्धा हिमगौ दशा स्वगृहगे मानार्थसौख्यावहा
कौजे दूषयति स्त्रियं बुधगृहे विद्यासुहृद्वित्तदा।
दुर्गारण्यपथालये कृषिकरी सिंहे सितर्क्षेऽन्नदा
कुस्त्रीदा मृगकुम्भयोर्गुरुगृहे मानार्थसौख्यावहा ।।११।।

प्रारब्धा हिमगाविति।। यस्य तस्य ग्रहस्यान्तर्दशाप्रवेशसमये (१) हिमगौ चन्द्रे स्वगृहे आत्मीयक्षेत्रस्थे, कर्कटगे प्रारब्धा प्रविष्टा तदा सौख्यार्थमानावहा भवतीति सौख्यं सुखभावः, अर्थो धनं, मानं पूजा-

(१) दशान्तर्दशाप्रवेशकालिकार्कतदासन्नपङ्क्त्यर्कयोरन्तरकलाः षष्ट्या सङ्गुण्य पङ्क्त्यर्कगतिकलाभिर्विभज्य लब्धघट्यादिभिः पङ्क्तिस्थदिनादिकालः संस्कृतः (पंक्त्यर्कादशाप्रवेशकालिकार्केऽधिके युक्तः, अल्पे हीनः सन्) दशान्तर्दशाप्रवेश-समयः स्फुटो भवति। तत्र सलग्नान् ग्रहान् प्रसाध्य फलं वाच्यम्।

मावहति करोति। कौजे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकयोरन्यतमे व्यवस्थिते चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा स्त्रियं दूषयति। परपुरुषकृतं स्त्रीदोषमुत्पादयति। बुधगृहे मिथुनकन्ययोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा विद्यासुहृद्वित्तदा विद्या शास्त्रानुरतिः, सुहृदो मित्राणि, वित्तं धनं ददाति। सिंहस्थे चन्द्रे दुर्गेष्व-रण्येषु, पथि च मार्गे, आलये च गृहसमीपे एतेषु स्थलेषु कृषिं करोति। सितर्क्षे शुक्रराशौ वृषतुलयोरन्यतमस्थे चन्द्रेऽन्नदा मिष्टभोज्यप्रदा भवति। मृगकुम्भयोर्मकरघटयोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा कुस्त्रीदा कुत्सितां स्त्रियं ददाति। गुरुगृहे जीवक्षेत्रे धन्विमीनयोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा मानार्थसौख्यावहा मानं पूजा, अर्थो धनं, सौख्यं सुखभावः, एतान्यावहति ददाति। एवं शुभदशा शुभकालप्रवृत्ता शुभतरा भवति। एवं शुभाशुभकालप्रवृत्ता मध्या। अशुभा शुभकालप्रवृत्ता मध्या। अशुभाऽशुभकालप्रवृत्ता अशुभतरा। मध्या शुभकालप्रवृत्ता शोभना। मध्या अशुभकालप्रवृत्ता अशोभना। एवं शुभाशुभत्वकरणानि यान्युक्तानि तानि विख्यातांतर्दशानां शुभाशुभं व्यामिश्रफलत्वं परिकल्पनीयमिति॥११॥

भाषा– दशारम्भ काल में चन्द्रमा कर्क में हो तो उसमें मान (आदर), धन और सब प्रकार के सुख होते हैं। मङ्गल के घर (मेष या वृश्चिक) में चन्द्रमा हो तो स्त्री में दोष (क्लेश या अपवाद) होता है। मिथुन या कन्या में चन्द्रमा हो तो विद्या, मित्र और धन का लाभ होता है। सिंह में चन्द्रमा हो तो उस दशा-समय में दुर्ग, जंगल, मार्ग और घर के समीप में भी खेती करने से लाभ होता है। शुक्र की राशि (वृष, तुला) में चन्द्रमा हो तो अन्न (सुभोजन आदि) का लाभ होता है। मकर या कुम्भ में चन्द्रमा हो तो दुष्ट स्त्री से संग होता है और गुरु राशि (धनु, मीन) में चन्द्रमा हो तो प्रारम्भ हुई दशा में मान, धन और सुखलाभ होता है॥११॥

अथार्कदशायां शुभाशुभफलप्रदर्शनं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

सौर्यां स्वन्नखदन्तचर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवै-
स्तैक्ष्ण्यं धैर्यमजस्त्रमुद्यमरतिः ख्यातिः प्रतापोन्नतिः।
भार्यापुत्रधनारिशस्त्रहुतभुग्भूपोद्भवा व्यापद-
स्त्यागी पापरतिः स्वभृत्यकलहो हृत्क्रोडपीडामयाः॥१२॥

सौर्यामिति॥ सूर्यस्येयं दशा सौरी तस्यां दशायामन्तर्दशायां वा नखदन्तचर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवैः कारणभूतैः स्वं धनं प्राप्नोति। नखं सुगन्धिद्रव्यं प्राणिकरजं वा दन्तो हस्तिदन्तादिः चर्मव्याघ्रादीनां

कनकं सुवर्णं क्रौर्यं क्रूरता अध्वा मार्गः भूपो राजा आहवः संग्रामः एतैर्धनं प्राप्नोति। तैक्ष्ण्यमुग्रस्वभावता धैर्यं शुभाशुभफलप्राप्तौ हर्ष-विषादैरनभिभवः अजस्रमनवरतमुद्यमरतिः उद्योगपरत्वं ख्यातिः कीर्तिः प्रतापोन्नतिः प्रतापेन शौर्येणोन्नतिः शत्रूणामन्यशत्रुनिग्रह-जनिता भीतिः। एतान्यादित्यशुभदशायां पुरुषस्य भवन्ति। अथा-शुभदशायां भार्या जाया, पुत्राः सुताः, धनं वित्तमरिः शत्रुः, शस्त्र-मायुधादि, हुतभुगग्निः, भूपो राजा एभ्य उद्भूता उत्पन्ना व्यापदो विशेषेणापदो भवन्ति। त्यागी त्यागशीलता भवति। शुभदशायां शुभस्थाने त्यागी। अशुभदशायां चाशुभत्वादशुभस्थाने त्यागी भवति। पापरतिः पापासक्तश्च भवति। स्वभृत्यकलहः आत्मीयैर्भृत्यैः सह कलहो भवति। हृत्क्रोडपीडने भवतः हृत् हृदयं, क्रोडमुदरं हृदयोदरपीडा। आमयाः रोगाश्चास्य भवन्ति। मिश्रायामुभयमपि। इति सूर्यदशान्तर्दशाफलम्॥१२॥

भाषा– शुभ स्थानस्थित सूर्य की दशा अन्तर्दशा में नख (सुगन्धि द्रव्य वा व्याघ्र नख), हाथी के दाँत, मृग-व्याघ्रादि चर्म, सोना, क्रूरकर्म, मार्ग (राजमार्ग बनवाने का अधिकार), राजा और संग्राम से धन का लाभ होता है। तथा हृदय में कठोरता, धैर्य, सतत उद्योग में प्रेम, कीर्ति और प्रताप की वृद्धि होती है। अशुभ स्थान में सूर्य हो तो स्त्री, पुत्र, धन, शत्रु, शस्त्र, अग्नि और राजा से अनेक प्रकार की आपत्ति होती है। एवं त्याग (अधिक खर्च), पाप से प्रेम, अपने नौकरों से कलह और हृदय, पेट में पीड़ा और रोग होता है। अर्थात् जब सूर्य मध्यम स्थान में हो तो उसकी दशा में (अर्थात् मिश्र दशा में) मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के) फल होते हैं॥१२॥

जैसे दर्शित उदाहरण में-सूर्य और शुक्र उच्च हैं तथा ये दोनों अपने-अपने उच्चांश से पीछे हैं इसलिए आरोहिणी दशा हुई; अतः दोनों की दशा अत्युत्तम फल देनेवाली होगी। एवं मंगल अपने उच्च से आगे और नीच से पीछे है; अतः अवरोहिणी नाम की दशा हुई तथा मंगल सम के स्थान में है इसलिए मंगल की दशा साधारण रूप से अशुभ फल को ही देगी। इसी प्रकार और ग्रहों का विचार करना चाहिए॥१२॥

अथ चन्द्रदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

इन्दोः प्राप्य दशां फलानि लभतेमन्त्रद्विजात्युद्भवा-
नीक्षुक्षीरविकारवस्त्रकुसुमक्रीडातिलान्नश्रमैः ।

निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिः स्त्रीजन्म मेधाविता
कीर्त्यर्थोपचयक्षयौ च बलिभिर्वैरं स्वपक्षेण च ॥१३॥

इन्दोरिति ॥ इन्दोश्चन्द्रमसो दशां वयोऽवस्थां प्राप्य लब्ध्वा मन्त्रद्विजात्युद्भवानि फलानि लभते। मन्त्रः शैववैष्णवादिश्चाणक्यविहितो वा वैदिको वा द्विजातयो ब्राह्मणाः एभ्य उद्भूतानि उत्पन्नानि न केवलं यावदिक्षुविकाराद्गुडादिकात्क्षीरविकाराद्दध्यादिकाद्वस्त्रेभ्योऽम्बरेभ्यः, कुसुमेभ्यः पुष्पेभ्यः, क्रीडायाः क्रीडाभ्यः, तिलेभ्यः अन्नाच्छ्रमाच्च व्यायामात्, एतैः शुभदशायां शुभानि फलानि प्राप्नोति। अथाऽशुभायामशुभदशायां निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिरिति। निद्रायामालस्ये च रतिरासक्तिर्भवति। मृदुद्विजामररतिर्भवति मृदुः क्षमावान्, द्विजानां ब्राह्मणानाममराणां देवानां चाराधने रतिरासक्तिर्भवति। स्त्रीजन्म कन्याप्रसूतिः, मेधाविता बुद्धिवृद्धिः, कीर्तिः यशः, अर्थानां धनानामुपचयक्षयौ। शुभदशायामुपचयः प्राप्तिरशुभायां क्षयः नाशः। अशुभायां बलवद्भिर्वीर्यवद्भिः स्वपक्षेणात्मीयबन्धुवर्गेण च सह वैरं भवति। मिश्रायामुभयमपि। इति चन्द्रदशान्तर्दशाफलम् ॥ १३ ॥

भाषा– चन्द्रमा की दशा-अन्तर्दशा समय में मन्त्र (आगम और निगमोक्त) द्वारा तथा ब्राह्मणों के द्वारा फल-लाभ, तथा गुड़, चीनी, दूध, दही, घृत, वस्त्र, पुष्परस, जूआ आदि खेल, तिल अन्न और श्रम से भी शुभ-अशुभ फल मिलता है। निद्रा, आलस्य, दया, देव, ब्राह्मणों में प्रेम, कन्या का जन्म, बुद्धि में वृद्धि, कीर्ति और धन का उपचय (वृद्धि) तथा क्षय, बलवान् शत्रु और आत्मीय जनों से भी शत्रुता होती है॥१३॥

विशेष अर्थ– इसमें जो शुभफल कहे गये हैं वे शुभ स्थानस्थित बली चन्द्रमा की दशा में, और जितने अशुभ फल कहे गये हैं वे अनिष्ट स्थानस्थित क्षीण चन्द्रमा की दशा में समझना चाहिये॥ १३ ॥

अथ भौमदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

भौमस्यारिविमर्दभूपसहजक्षित्याविकाजैर्धनं
प्रद्वेषः सुतमित्रदारसहजैर्विद्वद्गुरुद्वेष्टृता।
तृष्णासृग्ज्वरपित्तभङ्गजनिता रोगाः परस्त्रीकृताः
प्रीतिः पापरतैरधर्मनिरतिः पारुष्यतैक्ष्ण्यानि च ॥१४॥

भौमस्येति ॥ भौमस्य क्षितिजस्य दशायां कैर्धनं भवति, अरविमर्दनेन शत्रुप्रमथनेन। भूपो राजा सहजाः भ्रातरः क्षितिः भूः अवि-

काजैः ऊर्णाविकारसम्भूतैः, आजैश्छागसम्भूतैः एतैः अरविमर्दादिभिः धनं प्राप्नोति एतच्छुभदशायाम्। अथाशुभायां दशायां सुताः पुत्राः, मित्राणि सुहृदः, दाराः कलत्रं, सहजाः भ्रातरः, एतैः सह प्रद्वेषः वैरम्। विद्वद्भिः पंडितैः, गुरुभिः गौरवसहितैश्च सह द्वेष्टृता अप्रीतिः। तृष्णा तृट्, असृग्रुधिरं, ज्वरः प्रसिद्धो रोगः, पित्तं धातुप्रसिद्धं, भंगः अवयवादेः स्फोटनम् एतैः जनिता उत्पादिता रोगा भवन्ति परस्त्रीणामिष्टता बाल्लभ्यम्। अन्ये रोगाः परस्त्रीप्रसङ्गेन प्रहारादिकाः अतिप्रसङ्गाद्धातुक्षयकृता वा। अथवा तत्कृतमूलकर्मोद्भवा भवन्ति। तथा पापरतैः अघसक्तैः सह प्रीतिर्भवति। अधर्मे निरतिः आसक्तिर्भवति। पारुष्यं वचनपरुषता कर्कशता, तैक्ष्ण्यमुग्रस्वभावता। मिश्रयामुभयमपि। इति भौमदशान्तर्दशाफलम्॥ १४॥

भाषा– मङ्गल की शुभ दशा से शत्रुओं को पराजित करके, तथा राजा, सहोदर, भूमि, भेड़, बकरे आदि से धन मिलता है। अशुभ मङ्गल की दशा में पुत्र, मित्र, स्त्री, सहोदर से द्वेष, विद्वान् और गुरुजनों में अभक्ति, तृष्णा, शोणितविकार, ज्वर, पित्त, अंग-भंग आदि अन्य रोग, परस्त्री से मैत्री, पापियों से प्रेम, अधर्म में प्रवृत्ति, कठोरता और उग्रता होती है। मध्यम स्थानस्थित मंगल की दशा में मध्यम (दोनों प्रकार का) फल समझना चाहिए॥ १४॥

अथ बुधदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

बौध्यां दौत्यसुहृद्गुरुद्विजधनं विद्वत्प्रशंसा यशो
युक्तिद्रव्यसुवर्णवेसरमहीसौभाग्यसौख्याप्तयः ।
हास्योपासनकौशलं मतिचयो धर्मक्रियासिद्धयः
पारुष्यं श्रमबन्धमानसशुचः पीडा च धातुत्रयात् ॥१५॥

बौध्यामिति॥ बुधस्येयं दशा बौधी, तस्यां दौत्येन दूतत्वेन, सुहृद्भ्यो मित्रेभ्यः, गुरुभ्यः पूजार्हेभ्यः, द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः धनं प्राप्नोति। विद्वद्भ्यः पण्डितेभ्यः, प्रशंसा स्तुतिः, यशश्च कीर्तिर्भवति। युक्तिद्रव्यं रीतिकांस्यादि। सुवर्णं कनकम्। वेसरः अश्वविशेषः। महीभूः। सौभाग्यं सर्वजनबाल्लभ्यम्। सौख्यं सुखभावः। एषामाप्तयो लाभा भवन्ति। हास्यं परोपहासः, उपासना सेवा अनयोः कौशलं तज्ज्ञता। मतिचयः बुद्धिवृद्धिः। धर्मक्रियासिद्धयः धर्मयुक्तानां क्रियाणां सिद्धयो भवन्ति। एतच्छुभदशायाम्। अथाशुभदशायां

पारुष्यमित्यादि। पारुष्यं वचनपरुषता। श्रमः खेदः। बन्धः बन्धनम्। मानसशुचः। शोकश्चित्तदौस्थ्यमेते भवन्ति। धातुत्रयात्पीडा वातपित्तश्लेष्माणां त्रयाणां दोषाणां प्रकोपात्पीडा व्याधिश्च जायते मिश्रायामुभयमपि। इति बुधदशान्तर्दशाफलम्॥ १५॥

भाषा– शुभस्थानस्थ बुध दशा में दूतक्रिया से, मित्र, गुरुजन और ब्राह्मणों के द्वारा धनलाभ, विद्वानोंके द्वारा प्रशंसा, सुयश, कांसा, पीत-लादि द्रव्य, सुवर्ण, घोड़े, पृथ्वी, सौभाग्यवृद्धि और सब प्रकार के सुखकी प्राप्ति होती है। दूसरों के मनोरंजन और उपासना (सेवा) में कुशलता, बुद्धि की वृद्धि और धर्मकार्य में सिद्धि होती है। अशुभस्थानस्थ बुधदशामें कठोरता, परिश्रम, बन्धन, मानसशोक और कफ, पित्त, वातजन्य पीड़ा होती है।१५।

अथ जीवदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

जैव्यां मानगुणोदयो मतिचयः कान्तिप्रतापोन्नति-
र्माहात्म्योद्यममन्त्रनीतिनृपतिस्वाध्यायमन्त्रैर्धनम्।
हेमाश्वात्मजकुञ्जराम्बरचयः प्रीतिश्च सद्भूमिपैः
सूक्ष्मोहागहनाश्रमः श्रवणरुग्वैरं विधर्माश्रितैः ॥१६॥

जैव्यामिति॥ जीवस्येयं दशा जैवी, तस्यां जैव्यां मानगुणोदयः मानः पूजा, गुणाः विद्याशौर्यादयः एषामुदयः प्रादुर्भावः। मतिचयः बुद्धिविवृद्धिः। कान्तिः कमनीयता। प्रतापोन्नतिः प्रतापेन पुरुषार्थेन उन्नतिः। प्रभावः शत्रूणां भीतिः। माहात्म्यं परोपकारशीलता। केचिद्गर्वमाहुः। उद्यमः उत्थानशीलता। मन्त्रैर्वैदिकैरन्यैर्वा। नीतिनृपतिस्वाध्यायमन्त्रैर्धनम्। नीत्या चाणक्योक्तयाऽन्येन नीतिशास्त्रेण वा। नृपती राजा तदाराधनेन स्वाध्यायेन पाठेन। मन्त्रेण मन्त्रजाप्येन। एतैः धनं वित्तं प्राप्नोति। हेम सुवर्णम्। अश्वस्तुरगः। आत्मजाः पुत्राः, कुंजरः हस्ती, अंबराणि वस्त्राणि एषां चयो बाहुल्यम्। सद्भूमिपैः गुणवद्भिः नृपैः सह प्रीतिः स्नेहं प्राप्नोति। एतच्छुभदशायाम्। अथाशुभायां सूक्ष्मोहेत्यादि। सूक्ष्मं वस्तु गहनात्मकं चोहयतस्तर्कयतः श्रमः खेदो भवति। यत्सूक्ष्ममतिखेदसहं गहनं गूढ़ं तदूहयत इत्यर्थः। श्रवणरुक्कर्णरोगः। वैरं विधर्माश्रितैः धर्मबाह्यैः पुरुषैः सह वैरम्। मिश्रायामुभयमपि। इति गुरोर्दशान्तर्दशाफलम्॥१६॥

भाषा– शुभस्थानस्थित गुरु की दशा में लोक में सम्मान और गुणों की वृद्धि, बुद्धि में वृद्धि, कान्ति, पराक्रम से उन्नति, परोपकार, उद्योग,

मन्त्र (सद्विचार), नीति, राजा, पाठ और मन्त्र-जप के द्वारा धनलाभ होता है। सुवर्ण, वस्त्र, घोड़ा, हाथी और पुत्र इन सबों की वृद्धि, राजा से प्रीति होती है। अशुभ गुरु की दशा में सूक्ष्म विषयों के विचार में तर्क करने से परिश्रम, कर्ण रोग और अधर्मियों से प्रीति होती है।।१६।।

अथ शुक्रदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

शौक्र्यां गीतरतिप्रमोदसुरभिद्रव्यान्नपानाम्बर-
स्त्रीरत्नद्युतिमन्मथोपकरणज्ञानेष्टमित्रागमः ।
कौशल्यं क्रयविक्रये कृषिनिधिप्राप्तिर्धनस्यागमो
वृन्दोर्वीशनिषादधर्मरहितैर्वैरं शुचः स्नेहतः ।।१७।।

शौक्र्यामिति।। शुक्रस्येयं दशा शौक्री, तस्यां शौक्र्याम्। गीतरतेः गीतासक्तेः, प्रमोदस्य हर्षस्य, सुरभिद्रव्याणां सुगंधद्रव्याणामन्नस्य भोजनस्य पानस्यासवस्यांबराणां वस्त्राणां स्त्रीणां योषितां रत्नानां मणीनां द्युतेः कान्तेः मन्मथोपकरणानां कामोपभोग्यानां शय्यादीनां विज्ञानस्य योगशास्त्रस्येष्टानां प्रियाणां मित्राणां सुहृदामागमा लब्धयो भवंति। कुशलः शिक्षितः कुशलस्य भावः कौशल्यं कुशलः श्रेयतो वा कौशल्यमभीष्टक्रियासु श्रेष्ठत्वम्। क्रयंविक्रये क्रयो यदिच्छति क्रेतुं तत्क्रयः विक्रयो यदिच्छति विक्रेतुं तद्विक्रयः। कृषिः कर्षणम्। निधिः निधानं परैर्यद्वित्तं भूमावधः स्थाप्यते स निधि-स्तत्प्राप्तिर्लाभः। एते भवन्ति एतच्छुभदशायाम्। अथाऽशुभदशायां वृन्दोर्वीशेति। वृन्देन बहुभिः सह उर्वीशेन राज्ञा निषादानामन्याजीविनां प्राणिघातिनां धर्मरहितैः पापासक्तैः एतैः सह वैरं प्राप्नोति। शुचः स्नेहतः स्नेहाच्छुचः शोका भवंति। यत्र स्नेहस्तदुद्भवान् शोकान्प्रा-प्नोति। मिश्रायामुभयमपि। इति शुक्रदशांतर्दशाफलमिति।।१७।।

भाषा— शुभस्थानस्थित शुक्र की दशा में गीत में आसक्ति होने से हर्ष, सुगन्धित द्रव्य, सुभोजन, पान (पेय पदार्थ), वस्त्र, स्त्री, रत्न, कान्ति (सौन्दर्य), सुरतोपभोग्य (शय्यादि), ज्ञान और इष्ट मित्रों के समागम होते हैं। क्रय-विक्रय में पटुता, खेती से लाभ, निधि (भूमिस्थ द्रव्य) की प्राप्ति, अन्य प्रकार से भी धन का लाभ होता है। और अशुभ स्थान स्थित शुक्र की दशा में जनसमूह, राजा, निषाद (अन्त्यज, चाण्डाल जाति) और अधर्मियों के साथ वैर तथा स्नेह करने के पश्चात् उससे शोक होता है।।१७।।

अथ शनैश्चरदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

सौरीं प्राप्य खरोष्ट्रपक्षिमहिषीवृद्धाङ्गनावाप्तयः
श्रेणीग्रामपुराधिकारजनिता पूजा कुधान्यागमः।
श्लेष्मेर्ष्यानिलकोपमोहमलिनव्यापत्तितन्द्राश्रमा-
न्भृत्यापत्यकलत्रभर्त्सनमपि प्राप्नोति चव्यङ्गताम् ॥१८॥

सौरीमिति॥ सौरीं शनैश्चरदशां प्राप्य खराः गर्दभाः, उष्ट्राः करभाः, पक्षिणः श्येनादयः, महिषी प्रसिद्धा वृद्धाङ्गना वृद्धा स्त्री एषा -माप्तयः लाभा भवंति। बहुसमानजातीयानां संगः श्रेणी तस्या अधिकारे नियुज्यते। ग्रामे पुरे वा श्रेणीग्रामपुराधिकारजनितां तदुत्पन्नां मानतां प्राप्नोति। कुधान्यानां कोद्रवादीनामागमः लाभः। एतच्छुभदशायाम्। अथाशुभदशायां श्लेष्मेर्ष्येति। श्लेष्मणा कफेन। ईर्ष्यया मत्सरत्वेन। अनिलेन वायुना। कोपेन क्रोधेन, मोहेन चित्तभ्रमेण। मलिनतया मलीमसत्वेन व्यापत्तिः विपत् तंद्रा निद्रालस्ययोरंतरे वर्त्तते। तस्या लक्षणम्— 'हृदये व्याकुलीभावो वाचश्चेन्द्रियगौरवम्। मनोबुद्ध्यप्रसादश्च तन्द्राया लक्षणं विदुः॥' श्रमः खेदः एतान्प्राप्नोति। भृत्येभ्यः कर्मकरेभ्यः। अपत्येभ्यः पुत्रदुहितृभ्यः। कलत्रेभ्यो भार्याभ्यः भर्त्सनं तर्जनं प्राप्नोति। व्यंगतामङ्गच्छेदं व्याधिना तद्वारणं वा। मिश्रायामुभयमपि। इति शनिदशांतर्दशाफलम्।१८।

भाषा- शुभस्थानस्थित शनि की दशा में गदहा, ऊँट, पक्षी, भैंस, वृद्धा स्त्री का संग, जन समाज, गाँव, नगर (शहर) के अधिकार से आदर और कोदो, मडुआ, बजरा आदि कुधान्य की प्राप्ति होती है। अशुभ शनि की दशा में कफ, ईर्ष्या, वायु, प्रकोप, मोह, मलिनता से विपत्ति, तन्द्रा, श्रम तथा नौकर, सन्तान और स्त्री से भी अनादर तथा अंगभङ्गता की प्राप्ति होती है॥ १८॥

अथैकस्मिन्वृत्ते दशासु शुभान्यशुभानि च फलान्युक्तानि तेषां विभागं लग्नदशाफलं चोपजातिकयाऽऽह—

दशासु शस्तासु शुभानि कुर्वन्त्य-
निष्टसञ्ज्ञास्वशुभानिचैवम् ।
मिश्रासु मिश्राणि दशाफलानि
होराफलं लग्नपतेः समानम् ॥१९॥

दशास्विति ।। शुभाशुभं व्यामिश्रत्वं दशासु पूर्वमेवोक्तम् । तथा जन्मकाले उपचयराशिस्था निर्मलमूर्तयः । स्पष्टगतयश्च ये ग्रहास्तेषामपि दशाः शुभाः । ये चापचयस्था हता रूक्षाः स्वल्पमूर्तयस्तेषामपि दशा अशुभाः । तथा च यवनेश्वरः– 'निशाकरादित्यविलग्नभानां तत्कालयोगादधिकं बलं यः । विभर्ति तस्यादिदशेष्यते सा शेषास्ततः शेषबलक्रमेण । वयोऽधिको यः प्रथमोदितो वा ग्रहः स पूर्वं पठितो दशेशः । बलाधिकश्चेद्यदि केन्द्रसंस्थः पूर्वं सशेषास्तु यथा प्रदिष्टाः ।। श्रेष्ठा दशा स्वे वयसि ग्रहस्य स्वोच्चाश्रिता कालबलाश्रिता च । मूलत्रिकोणात्स्वगृहाच्च मध्या मित्राश्रिता जन्मगृहाश्रिता वा । नीचारिभांशोपगताञ्जिताद्वा गृहात्परिध्वस्तविवर्णरूक्षात् । जन्मेशशत्रोर्निधनारिभेशाद्या पठ्यते सा बहुदोषदा स्यात् ।।' एवं शस्तासु शोभनासु दशासु ग्रहाः शुभान्येव फलानि कुर्वन्ति । दशाफलप्रवृत्ते यानि शुभान्यशुभान्यभिहितानि तान्येव भवन्ति । नेतराणि अनिष्टसंज्ञास्वशुभदशासु अशुभान्यनिष्टानि एव भवन्ति । मिश्रासु दशासु मिश्राण्येव दशाफलानि भवन्ति । एतच्च प्रतिसूत्रमस्माभिश्च व्याख्यातम् । तथा च सत्यः– 'जन्मन्युपचयभवनेषु संस्थिताः सव्यगाः सुमूर्तिधराः । श्रेष्ठं फलं विदध्युर्ग्रहाः क्रमास्त्वां दशां प्राप्य ।। अन्यैर्निहिता रूक्षाल्पमूर्तयो ह्यपचयर्क्षसंस्थाश्च । स्वदशाभिहितं नेष्टं ग्रहाः प्रयच्छन्ति लोकेषु । होराफलं लग्नपतेः लग्नाधिपस्य समानं तुल्यं वक्तव्यम् । यथा मेषलग्नजातस्य भौमदशाफलं वृषलग्नजातस्य शुक्रदशाफलम् । एवमन्येष्वपि वक्तव्यम्; किन्तु द्रेष्काणवशाच्छुभायां लग्नदशायां शुभफलमशुभायामशुभम् । मिश्रायामुभयमपि । अथ ये पूर्वं दशारिष्टा उक्तास्तेषामिमे भङ्गाः प्रोक्ताः । तथा च सारावल्याम्– 'प्रवेशे बलवान्खेटः शुभैर्वा सन्निरीक्षितः । सौम्याधिमित्रवर्गस्थो मृत्युकृन्न भवेत्तदा ।। अन्तर्दशाधिनाथस्य विबलस्य दशा यदा । विबला स्यात्तदा भङ्गो न बाध्या तस्य च ध्रुवम् ।। युद्धे च विजयी तस्मिन्ग्रहयोगे शुभो यदि । दशायां न भवेत्कष्टं स्वोच्चादिषु च संस्थिते ।'इति ।।१६।।

भाषा– ऊपर ग्रहों के शुभाशुभ दशाफल जो कहे गये हैं, उनमें ग्रह अपनी शुभदशा में शुभफल, अशुभ दशा में अशुभ फल देते हैं। मध्यम दशा में मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के) फल देते हैं। क्योंकि दशा में संज्ञानुसार ही फल होते हैं। और लग्नदशा का फल लग्नेश

के स्थितिवश समझना चाहिए। अर्थात् लग्न शुभ स्थान में हो तो शुभ, अशुभ स्थान में हो तो अशुभ फल होता है॥१९॥

अथान्येषामपि फलानां दशास्वतिदेशार्थं शालिन्याऽऽह-

सञ्ज्ञाध्याये यस्य यद्द्रव्यमुक्तं
कर्माजीवो यश्च यस्योपदिष्टः।
भावस्थानालोकयोगोद्भवं च तत्-
त्सर्वं तस्य योज्यं दशायाम् ॥२०॥

संज्ञाध्याय इति॥ यस्य ग्रहस्य संज्ञाध्याये यद्द्रव्यं ताम्रं स्यान्मणिहेमेत्यादिना ग्रन्थेनोक्तं कथितं तस्य तद्द्रव्यस्य शुभदशायां प्राप्तिः योज्या। अशुभदशायां हानिः। तथा यश्च कर्माजीवो यस्य ग्रहोपदिष्टो जातकेऽभिहितः। अर्थाप्तिः पितृपितृपत्नीत्यादि। तस्य ग्रहदत्तस्य कर्माजीवस्य तदन्तर्दशायामेवाप्तिर्भवति। भावफलं वक्ष्यति। शूरः स्तब्ध इत्यादि। तथा प्रथितश्चतुरोऽटन इत्यादि। तथा मेषे सस्वस्तिमिरनयन इत्यादि। अवलोकनफलं दृष्टिफलम्। चन्द्रे भूपबुधौ इत्यादि। योगोद्भवं नाभसयोगान्मुक्त्वा सर्वयोगेषु योगकर्तृभ्यो ग्रहेभ्यो मध्याद्यो बलीयान्स स्वदशायामेव फलं ददाति। नाभसयोगाः सकलदशास्वपि फलप्रदाः॥ वक्ष्यति च- 'इति निगदिता योगाः सार्द्धं फलैरिह नाभसा नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि।' इति। एवमादि यद्यदुक्तं तत्सर्वं निरवशेषम्। तस्य ग्रहस्य दशायां योज्यमिति।२०

भाषा– पूर्व संज्ञाध्याय में जिस ग्रह के जो-जो द्रव्यादि कहे गये हैं तथा जिस ग्रह के जो कर्माजीव आगे कहे जायेंगे, एवं जिस ग्रह के भाव और स्थान-सम्बन्धी दृष्ट और योग के फल जो कुछ कहे जायेंगे वे सब ग्रह की दशा में ही समझना चाहिए अर्थात् जब ग्रह की शुभ दशा होती है तब उन द्रव्यादि और जीविका आदि का लाभ तथा अशुभ दशा में उसकी हानि होती है॥२०॥

अथ यस्य जातस्य जातकमप्यगणितं तस्य शरीरच्छायां दृष्ट्वा ग्रहदशाज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽ-
भिव्यञ्जयन्ति स्वदशामवाप्य।
क्ष्वम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणांश्च
नासास्यदृक्त्वक्छ्रवणानुमेयान् ॥२१॥

छायां महाभूतकृतामिति ।। पूर्वमुक्तं शिखिभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेणेति। तत्रादित्यचन्द्रौ वह्न्यम्बुप्रसिद्धावेव। यः कश्चिद्ग्रहः स्वदशामात्मीयदशामवाप्य महाभूतकृतां छायामभिव्यञ्जयति प्रकटीकरोति। छायाशब्देन शरीरशोभाऽभिधीयते। शरीरकांतिरित्यर्थः। तथा च सच्छायोऽयं विच्छायोऽयं वर्तत इत्यभिधीयते। एवमात्मीयदशायां पृथिव्यादिमहाभूतकृतां शरीरच्छायां व्यंजयति प्रकटीकरोति। सा च कुम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणान्कुः पृथिवी, अम्बुर्वरुणः, अग्निर्हुताशनः, वायुः अनिलः, अंबरमाकाशमेभ्यो जातोत्पन्ना सा छाया तद्गुणान्करोति। तांश्च यथासंख्यं नासास्यदृक्त्वक्छ्रवणानुमेयान् पार्थिवं गुणं गंधमभिव्यंजयति। नासानुमेयं घ्राणेनोपलभ्यते। अथाप्यं गुणं रसमभिव्यञ्जयति। तच्चास्यानुमेयम्। आस्यशब्देनेह जिह्वा ज्ञेया। तथा रसस्योपलब्धेः आस्यग्रहणं चात्र वृत्तानुरोधात्कृतम्। आग्नेयी आग्नेयं गुणं रूपमभिव्यञ्जयति। दृष्ट्याऽनुमेयम्। वायवी वायव्यं स्पर्शगुणमभिव्यञ्जयति। त्वगनुमेयं स्पर्शेनोपलभ्यते। नाभसी नाभसं गुणं शब्दमभिव्यञ्जयति। श्रवणानुमेयं कर्णोपलभ्यम्। एतदुक्तं भवति। यदा शुभगन्धः पुरुषो भवति तदास्य बुधकृता पार्थिवी छाया ज्ञेया। यदा मिष्टरसभोजी भवति तदाऽस्य चन्द्रशुक्रकृता छाया ज्ञेया। यदाऽतीव रूपवान्सुकान्तः पुरुषो भवति तदा सूर्यभौमकृता आग्नेयी छाया ज्ञेया। यदा स्पर्शेन मृदुर्भवति तदा शनैश्चरकृता वायवी छाया ज्ञेया। यदाऽस्य वचनं कर्णयोः सुखकरं भवति तदा जीवकृता नाभसी छाया। विशेषलक्षणमाचार्येण संहितायामभिहितम्। तथा च— 'छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः। तेजोगुणान्बहिरपि प्रविकाशयन्ती दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितेव।। स्निग्धद्विजत्वङ्नखरोमकेशा छाया सुगन्धा च महीसमुत्था। तुष्ट्यर्थलाभाभ्युदयान्करोति धर्मस्य चाहन्यहनि प्रवृद्धिम्।। स्निग्धा सिता च हरिता नयनाभिरामा सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान्करोति। सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया फलं तनुभृतां शुभमाददाति। चण्डा धृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्तं तेजो विक्रमैः सप्रतापैः। आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वांछितार्थस्य धत्ते।। मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था जनयति बधबन्धं व्याध्यनर्थार्थनाशम्। स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्ताऽत्युदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा।।'।।२१।।

भाषा– सब ग्रह अपनी-अपनी दशा में अपने-अपने महाभूत (तत्त्व) सम्बन्धिनी छाया (मुखादि शारीरिक कान्ति) को प्रकट करते हैं। तथा– नाक, मुख, दृष्टि और कान के द्वारा ग्राह्य क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के गुण (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द) को भी अपनी-अपनी दशा में प्रकट करते हैं।।२१।।

विशेष अर्थ– भाव यह है कि संज्ञाध्याय में जिन ग्रहों के 'शिखिभूख-पयोमरुद्' इत्यादि जो महाभूत (तत्त्व) कहे गये हैं उनकी छाया (तत्तदङ्ग शोभा) को और उन तत्त्वों के गुणों को भी अपनी-अपनी दशा में प्राप्त करते हैं। जैसे रवि और मङ्गल का महाभूत अग्नि है, और अग्नि की छाया नेत्र है तथा उसका गुण रूप है। इसलिए शुभद रवि या मंगल की दशा-अन्तर्दशाकाल में नेत्र में नीरोगता और अच्छे-अच्छे रूप के दर्शनों से सुख होते हैं। एवं बुध का तत्त्व पृथ्वी है, उसकी छाया नाक की शोभा है तथा गुण गन्ध है, इसलिए बुध की शुभदशा में नाक की शोभा, नीरोगता रहती है तथा अच्छे सुगन्धि द्रव्य के लाभ से सुख होता है। और गुरु का तत्त्व आकाश है उसकी छाया कान की कान्ति है और गुण शब्द है इसलिये गुरु की शुभ दशा में कान नीरोग और अच्छे-अच्छे शब्द सुनने से सुख; अशुभ दशा में कान में रोग और दुःशब्द से क्लेश होता है। एवं शुक्र और चन्द्र का महाभूत जल है, उसकी छाया (मुख जिह्वा) है और गुण रस है, अतः शुक्र और चन्द्र की शुभदशा में मुख में स्वच्छता और अनेक प्रकार के सुरस भोजन से सुख होता है। अशुभ दशा में मुख में रोग और कुरस भोजन से क्लेश होता है। तथा शनि का महाभूत वायु है, उसका गुण स्पर्श है तथा छाया (त्वचा की कान्ति) है, अतः शनि की दशा-अन्तर्दशा समय में त्वचा की शोभा बढ़ती है और उत्तम स्पर्श (माला, दुकूलवस्त्र, भूषण, युवती इत्यादि) से सुख होता है। अशुभ दशा में चर्मरोग और दुःस्पर्श (शस्त्रादि घात) से दुःख होता है। इसलिए जिनकी जन्मकुण्डली हो उनकी ग्रह दशा समझकर तत्तत् काल में उक्त फल कहना चाहिए और जिनका जन्म समय अज्ञात हो उनकी उक्तफल की प्राप्ति तात्कालिक ग्रहदशा का अनुमान करना। जो स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं।२१।

अत्र च वायवीं छायां वर्जयित्वा सर्वास्वेव छायासु शुभमशुभं फलमुक्तं तत्कथम्? शुभफलेयमशुभफलेयमिति यद्वशाज्ज्ञायते तज्ज्ञानार्थमन्तरात्मनः स्वरूपं मालिन्याऽऽह–

शुभफलददशायां तादृगेवान्तरात्मा
बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागमं च।
कथितफलविपाकैस्तर्कयेद्वर्त्तमानां
परिणमति फलोक्तिः स्वप्नचिन्तास्ववीर्यैः ।।२२।।

शुभफलदेति।। शुभफलं ददाति यः स शुभफलदः शुभफलदस्य ग्रहस्य या दशा तस्यामन्तरात्मा स्वदेहस्थः परमात्मा चित्स्वरूपः तादृगेव शुभो भवति। पुरुषस्य तस्य च छाया दर्शितग्रहदशाकाले बहुविधमनेकप्रकारं सौख्यं सुखभावमर्थागमं धनलाभं च जनयत्युत्पादयति। अर्थादिवाशुभदशायां पुरुषस्यान्तरात्माऽप्यशुभो भवति। तत्र छाया दर्शितग्रहजाता तादृगेव फलदा सा चासौख्यमनर्थागमं च बहुप्रकारं जनयति। मिश्रायां मिश्रं च। यात्रायां च वक्ष्यति– 'निमित्तानुचरं सूक्ष्मं देहेन्द्रियमहत्तरम्। तेजो ह्येतच्छरीरस्थं त्रिकालफलविन्नृणाम्।। प्रीतये न मनो नाथे नासिद्धावभिनन्दति। तस्मात्सर्वात्मना यातुरनुमेयं यथा मनः। शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः। एकतश्च मनःशुद्धिस्तद्विशुद्धिर्जयावहा।।' इति। कथितफलविपाकैरिति। ग्रहाणां दशासु यानि फलानि शुभान्यशुभानि वा कथितान्युक्तानि तानि यः पुरुषो भुङ्क्ते तस्य पुरुषस्य तद्ग्रहदशा वर्तते इति ज्ञेयम्। एतदुक्तं भवति– यादृशं फलं शुभमशुभं वा पुरुषस्योपलभ्यते। तच्च यस्य ग्रहस्य दशायां पठितम्। सा तस्य दशा नरस्य वर्तत इति ज्ञेयम्। एवं वर्तमानां दशां तर्कयेल्लक्षयेदित्यर्थः। एवं छायावशनान्तरात्मवशेन फलपक्तिवशेन वा गणितस्य जातकस्य वर्तमानां दशां वदेत्। अथ सौरदशायामशुभायां व्यङ्गत्वमुक्तं न च शुभायाम्। अशुभायामप्यनेकेषां व्यङ्गत्वं दृष्टम्। शुक्रदशायां शुभायां निधिप्राप्तिरुक्ता न च साऽपि दृष्टा तदर्थमाह– परिणमति फलोक्तिरिति। अवीर्यैः बलहीनैः ग्रहैः फलानि यानि शुभान्यशुभानि वा दत्तानि तत्फलोक्तिः फलप्राप्तिः स्वप्ने स्वप्नावस्थायां परिणमत्यनुभूयते। चिंतायां मनोरथेन वेति केचिच्च–'शुभफलदशायां तादृगेवांतराख्या'-इति पठन्ति। पठित्वेवं व्याचक्षते– यथा शुभायां दशायामंतराख्यान्तर्दशा शुभा यदि भवति तदा बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागममिति। अर्थादिवाशुभाय दशायामशुभांतर्दशासौख्यमनर्थागमं च बहुजनयति। अनेन व्याख्यानेन शुभायामशुभायां च शुभाशुभानि भवंति मिश्रफलं प्रयच्छति न वैतदुच्यते। यस्मादुक्तम्– 'एकर्क्षगोऽर्द्धमपहृत्यांतर्दशापतिरेव स्वं फलं ददातीति ज्ञेयम्। अन्यथाऽपहृत्येति निरर्थकं तस्मात्पूर्वपाठः श्रेयान् द्वितीयः प्रमादपाठः। प्रथमपाठेन विना छायां शुभाशुभत्वमनुमातुन्न शक्यत इति।। २२।।

भाषा– शुभप्रद ग्रह की दशा में अन्तरात्मा (स्वहृदयस्थ ईश्वर) भी उसी प्रकार (शुभ होकर) मनुष्यों को सब प्रकार के सुख और धनलाभ कराते हैं। 'अब जिसका जन्म-समय अज्ञात हो उसकी दशा समझने की रीति कहते हैं।'-जिस ग्रह के जो फल कहे गये हैं, उन फलों से ग्रह की वर्तमान दशा का अनुमान करना चाहिए। तथा जो ग्रह निर्बल रहता है उसका दशाफल (शुभ वा अशुभ) स्वप्न में अथवा चिन्ता (मनोरथ करने) में प्राप्त होता है।।२२।।

जैसे किसी को वर्तमान समय में नित्य अच्छे भोजन मिल रहे हैं? तो यहाँ अनुमान करना चाहिए कि रस जल का गुण है और जल शुक्र का तत्त्व है इसलिए इस समय शुक्र की दशा वर्तमान है, इत्यादि। एवं मान लो कि किसी को शत्रुस्थान स्थित पापग्रह की अवरोहिणी दशा है वह ग्रह प्रबल है तो उसे सर्वथा हानि और क्लेश होगा। यदि अच्छे स्थान स्थित ग्रह की आरोहिणी नामक शुभ अन्तर्दशा प्राप्त हो जाय तो उसे उस निर्बल ग्रहकृत शुभ दशा फल स्वप्न में या मनोरथ करने ही में मिल जायगा। जैसे दृष्टान्त है कि एक आदमी को प्रबल अशुभ ग्रह की दशा भी इसलिए यत्न करने पर भी उसे धन या सुख नहीं मिलता था। एक समय किसी निर्बल शुभग्रह की १ महीने की अन्तर्दशा आ गई, बस किसी महाजन ने उसे ८ आने रोज पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रतिदिन एक घड़ा घृत पहुँचाने का काम दे दिया, उसने बड़ी प्रसन्नता से काम आरम्भ किया और घृत का घड़ा उठाकर पहुँचाने चला, रास्ते में सोचने लगा कि– आठ आने मजदूरी मिलेगी, उसमें ४ आने के चावल, दाल, सब्जी वगैरह खरीद कर पेट भर खाऊँगा। और चार आने रोज बचाऊँगा। ऐसे एक महीने तक साढ़े सात रुपये बचेंगे, फिर यदि मजदूरी छूट भी जायगी तो उसी रुपये से कोई व्यापार करूँगा; क्योंकि सुनते हैं कि लोग एक रुपये के व्यापार से लखपति बन जाते हैं। तो क्या हम ७ सात रुपये से हजारपति भी न बनेंगे। तब उससे भी अधिक रुपये जमा कर मैं एक घोड़ा खरीदूँगा और उस पर जीन देकर यों चढ़ूँगा' बस इतना सोचते ही वह उछल पड़ा, उसके मत्थे पर से घृत का घड़ा ही गिर पड़ा। उसे एक दिन की मजदूरी से भी हाथ धोना पड़ा। क्योंकि अन्तर्दशापति निर्बल था, दशापति प्रबल था, इसलिए उसे प्रत्यक्ष सुख या धन नहीं होने दिया। निर्बल शुभग्रह की अन्तर्दशा तक मन में ही सुख और धनलाभ का अनुभव कर लिया।।२२।।

अथैकग्रहदत्तयोः फलयोः सदृशयोर्नाशो भवति भिन्नदत्तानां बहूनामपि पक्तिरेव भवतीत्येतद्वसन्ततिलकेनाऽऽह—

एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे
नाशं वदेद्यदधिकं परिपच्यते तत्।
नान्यो ग्रहः सदृशमन्यफलं हिनस्ति
स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः ॥२३॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके दशाऽन्तर्दशा (१) ध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

एकग्रहस्येति। सर्वाण्येव फलानि नाभसवर्ज्यं स्वदशायां ग्रहः प्रयच्छतीत्युक्तं तत्रैकेन ग्रहेण यदाऽसदृशं विरुद्धे फलद्वयं दत्तं भवति तस्मिन्सदृशे तुल्ये द्वयोः फलविरोधे सति नाशो भवति। तस्य फल-द्वयस्य वदेद् ब्रूयात्। कीदृशं तद्विरुद्धमित्यत्रोच्यते। यथा कश्चिद्-ग्रहः कयाऽपि युक्त्या दशाफलादिना सुवर्णदो भवति स एवान्यया युक्त्या अष्टवर्गफलयोगफलदृष्टिफलभावफलानामन्यतमेन सुवर्णा-पहारी भवति तदा फलद्वयेऽपि सुवर्णसम्बन्धोऽस्तीति सादृश्यं स्वर्ण-दानापहारिणाविति विरोधः। एवमेकस्य ग्रहस्य सदृशफलयोः विरोधे नाशं वदेत्। न सुवर्णलाभो न चापहानिरिति। यदधिकं परिपच्यते तत्। एकेनापि ग्रहेण फलद्वयं दत्तमन्यरूपं तयोर्मध्यादधिकं तत्परि-पच्यते भवति। यथा कश्चिद्ग्रहो निर्दिष्टकारद्वयेन सुवर्णदः, स एव प्रकारेणैकेन सुवर्णापहारी, तदा द्वयोरधिकत्वात्तद्दानस्य सुवर्णं ददात्येव नापहरति। अथवा प्रकारद्वयेन सुवर्णापहारी प्रकारेणैकेन सुवर्णदः तदाऽपहरणस्याधिकत्वादपहरत्येव अथवा सुवर्णापहारी रूप्यदश्च तथापि द्वे असदृशे असदृशत्वादधिकं परिपच्यते। सुवर्णापहारी रूप्यदश्च भवति इति केचित्। नान्यो ग्रह इति। अन्येन ग्रहेण दत्तं सदृशं विरोध्यपि फलं नान्यो ग्रहोऽपि हिनस्त्यपहरति। यथा कश्चिद्-ग्रहः सुवर्णदो भवत्यन्यश्च सुवर्णापहारी तदा तत्र सुवर्णदः स्वदशायां सुवर्णं ददाति। स्वदशायां सुवर्णापहारी चापहरति। अनेनैतदुक्तं भवति—यथैकग्रहस्य सदृशफलयोः विरोधे समग्रजन्मान्तरेऽपि फलनाशं वदेत्। अन्यत्र विरुद्धयोरपि फलयोः नाशं न वदेत्। यतः सुवर्णदो ग्रहः स्वामात्मीयां दशामुपगतः प्राप्तः सुवर्णलाभं करोति, सुवर्णापहारी

(१) दशान्तर्दशादीनां वैशद्यमग्रे (ग्रन्थान्ते) स्पष्टं विलोक्यम्।

स्वदशामुपगतः प्राप्तः सुवर्णमपहरति। एतदष्टकवर्गफलं विनाशयतस्तत्र कस्य ग्रहस्य फलसदृशयोरपि तुल्यसंख्ययोः फलयोर्नाशो भविष्यति। यथा भविष्यति तथा तत्रैव प्रतिपादयिष्याम इति।।२३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ
दशान्तर्दशाध्यायोऽष्टमः ।। ८ ।।

भाषा– यदि किसी एक ग्रह में शुभ और अशुभ बल तुल्य होने से शुभ और अशुभ फल तुल्य हो तो दोनों का नाश हो जाता है, अर्थात् उस ग्रह का न तो शुभ फल और न ही अशुभ फल होता है। यदि फल.में न्यूनाधिकता हो तो जो अधिक हो वही फल मिलता है। किन्तु अन्य ग्रह किसी दूसरे ग्रह के तुल्य विरुद्ध फल को नाश नहीं करता बल्कि अपनी-अपनी दशा में अपने-अपने फल को देता ही है।।२३।।

विशेष– इसका भावार्थ हुआ कि कोई एक ही ग्रह षड्वर्ग विचार से ३ शुभवर्ग में और ३ पापवर्ग में पड़ा हो तो दोनों शुभ-अशुभ तुल्य होने से नष्ट हो जायगा। यदि ४ शुभवर्ग हो और २ पापवर्ग हो तो अधिक होने के कारण शुभ फल ही देगा, किन्तु पूर्णफल का तृतीयांश शुभ फल देगा ऐसा समझना चाहिए। जिसके केवल शुभ ही के षड्वर्ग हों वह पूर्ण पाप फल ही देगा। किन्तु यदि किसी भी कुण्डली में ३ ग्रह शुभफल देनेवाले और ३ अशुभ फल देनेवाले हों तो तुल्य होने से फल का नाश नहीं होगा। सब अपनी-अपनी दशा में अपना-अपना फल देंगे– ऐसा समझना चाहिए।२३।

अथाष्टवर्गाध्यायः ।।९।।

अथाष्टवर्गाध्यायो व्याख्यायते। तत्रान्तर्दशाफलमिति पूर्वमेवोक्तं तत्प्रदर्श्याधुना स्थिरस्याष्टकवर्गफलस्यावसरः। लग्नाष्टमाः सर्वे एव ग्रहास्तेभ्यः सकाशादेकैकस्य ग्रहस्य चारवशाद्राशौ विचरतः शुभाशुभं फलमष्टकवर्गे निरूप्यते। तत्रादावेवार्काष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

स्वादर्कः प्रथमायबन्धुनिधनद्व्याज्ञातपोद्यूनगो
वक्रात्स्वादिव तद्वदेवरविजाच्छुक्रात्स्मराकान्त्यारिषु।
जीवाद्धर्मसुतायशत्रुषु दशत्र्यायारिगः शीतगो-
रेष्वेवांन्त्यतपः सुतषु च बुधाल्लग्नात्सबन्ध्वन्त्यगः ।।१।।

स्वादर्क इति।। यत्र राशौ जन्मसमये पुरुषस्यादित्यः स्थितः स एव तस्य स्वस्थानमुच्यते। एवमन्येषामपि ग्रहाणां ज्ञेयम्। यो यत्र व्यवस्थितः स एव तस्य स्वस्थानं तस्मात्स्वादर्कः प्रथमायबन्धु-निधनद्व्याज्ञातपोद्यूनगः प्रथमैकादशचतुर्थाष्टमद्वितीयदशमनवम-

सप्तमेषु १।११।४।८।२।१०।६।७ एतेषां स्थानानां संज्ञाः प्रागेव व्याख्याताः। अतः पुनर्नोच्यन्ते। एषामङ्कन्यास एव व्याख्यानमिति सर्वत्र ज्ञेयम्। एतेषु स्थानेषु गतः स्वात्स्थानादर्कः सूर्यः शुभः इष्टफलदः अर्थादिवान्यस्थानेष्वशुभ अनिष्टफलदः। यतो वक्ष्यति– 'इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यत्' इत्येवं सर्वत्र ज्ञेयम्। वक्रात्स्वादिव वक्रादङ्गारकात्स्वादात्मीयस्थानादिव शुभः। येष्वेव स्वस्थानात्तेष्वेवाङ्गारकात् १।११।४।८।२।१०।६।७ एतेष्वर्को भौमाच्छुभः। तद्वदेव रविजात् रविजात्सूर्यपुत्रात्तद्वदेव। येष्वेव स्थानेषु स्वाच्छुभस्तेष्वेव सौरात् १।११।४।८।२।१०।६।७ एतेषु सौरादर्कः शुभ इति शुभ सर्वत्रानुवर्तते। शुक्रात्स्मरात्यारिषु स एवार्कः सप्तमद्वादशषष्ठेषु शुक्राच्छुभः ७।१२।६ जीवार्द्धमसुतायशत्रुषु जीवाद्बृहस्पतिस्थानात् धर्मसुताय शत्रुषु नवपञ्चमेकादशषष्ठेषु शुभः ९।५।११।६ दशत्र्यारिगः शीतगोः शीतगोश्चन्द्राद्दशत्र्यायारिगः दशमतृतीयैकादशषष्ठगः शुभः १०।३।११।६ एतेष्वेवान्त्यतपः सुतेषु च बुधाच्छुभः। एष्वेव प्रागुक्तेषु चन्द्रस्थानेषु दशत्र्यायारिषु चशब्दात्तथान्त्यतपःसुतेषु बुधाच्छुभः १०।३।११।६।१२।९।५ लग्नात्सबन्ध्यन्त्यगः सहशब्देन प्रागुक्तानि चन्द्रस्थानान्यनुकृष्यन्ते तेनान्त्यतपःसुतस्थानानीति सर्वत्र परिभाषा। तेनैतेषु चन्द्रस्थानेषु दशत्र्यायारिषु सबन्ध्यंत्येषु चतुर्थद्वादशसहितेषु गतो लग्नादुदयाच्छुभः १०।३।११।६।४।१२ तथा च सत्यः– 'स्वात्स्थानाद्दिवसकरस्तृतीयषष्ठान्त्यभत्रिकोणानि।' हित्वेष्टः इत्यनुवर्तते ३।६।५।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरदर्शितानि स्थानानि जातानि १।११।४।८।२।१०।९।७ सौरस्य तु सहजारिसुतान्त्यसंज्ञानि। हित्वेष्ट इत्यनुवर्तते ३।६।५।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरदर्शितानि स्थानानि जातानि १।११।४।८।२।१०।९।७ चन्द्राद्दशमैकादशतृतीयषष्ठापगः शुभः सूर्य १०।११।३।६ जीवात्त्रिकोणयोः षष्ठस्तथैकादशश्रेष्टः ९।५।६।११ प्रथमद्वितीयसप्तमचतुर्थनिधनगतान्विना राशीन्साम्यादिष्टः सूर्यः १।२।७।४।८ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरप्रदर्शितानि स्थानानि जातानि १०।३।११।६।१२।९।५ कुजस्तु सदृशोऽर्कपुत्रेण १।११।४।८।२।१०।७ दशमैकादशषष्ठतृतीयगोऽत्यश्चतुर्थगो लग्नात् १०।११।६।३।१२।४ शुक्रस्थानाद्रविः षट्-

सप्तमद्वादशेषु भवतीष्टः ६।७।१२ तथा च सूक्ष्मजातके– 'केन्द्रायाष्टद्विनवस्वर्कः स्वादार्किभौमयोश्च शुभाः। षट्सप्तान्त्येषु सितात्षडायधीधर्मगो जीवात् उपचयगोऽर्कश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीयुतः सौम्यात्। लग्नादुपचयबन्धुव्यवस्थितः शोभनः प्रोक्तः॥' इति आदित्याष्टकवर्गः।१

भाषा– जन्म लग्न कुण्डली में सूर्य जिस स्थान में हो वहाँ से १।११। ४।८।२।१०।९।७। इन स्थानों में शुभ है। अर्थात् ये स्थान शुभ होते हैं। इनसे अन्य स्थान अशुभ होते हैं। मंगल से भी इन्हीं १।११।४। ८।२।१०।९।७ में और शनि से भी ९।५ में सूर्य शुभ होता है। शुक्र से ७।१२।६ इन स्थानों में सूर्य शुभ होता है। गुरु से भी १।६ इन स्थानों में, चन्द्र से १०।३।११।६ में शुभ होता है। बुध से१०।३। ११। ६।१२।९।५ में और लग्न से १०।३।११।६। ४।१२ में सूर्य शुभ होता है। अर्थात् उक्त १ स्थान से अन्य स्थान में अशुभ फल होता है॥१॥

अथ चन्द्राष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

लग्नात्पट्त्रिदशायगः सधनधीधर्मेषु चाराच्छशी
स्वात्सास्तादिषु साष्टसप्तसु रवेःषट्त्र्यायधीस्थो यमात्।
धीत्र्यायाष्टमकण्टकेषु शशिजाज्जीवाद्व्ययायाष्टगः
केन्द्रस्थश्च सितात्तु धर्मसुखधीत्र्यायास्पदानंगगः।२।

लग्नात्षडिति। लग्नात्षट्त्रिदशाभगः शशी चन्द्रः लग्नादुदयात्षट्त्रिदशायगः षष्ठतृतीयदशमैकादशेषु स्थानेषु शुभः ६।३।१०।११ सधनधीधर्मेषु चाराच्छशी। सहशब्देन प्रागुक्तान्येव स्थानान्यनुक्षिप्यन्ते। द्वितीयपञ्चमनवमयुक्तेषु शुभः ६।१।१०।११।२।५।९ स्वात्सास्तादिषु आत्मीयस्थानादेष्वेव षट्त्रिदशायेषु सास्तादिषु सप्तमप्रथमसहितेषु शुभः। शशी ६।३।१०।११।७।१ साष्टसप्तसु रवेरादित्यादेष्वेव स्थानेषु साष्टसप्तसु अष्टमसप्तमसंयुक्तेषु ६।३।१०।११।८।७ शुभः। षट्त्र्यायधीस्थो यमात् यमात्सौरात् षट्त्र्यायधीस्थः षष्ठतृतीयैकादशपञ्चमस्थानस्थः शुभः ६।३।११।५ धीत्र्यायाष्टमकण्टकेषु शशिजात् शशिजाद्बुधाद् बुधस्थानाद्धीत्र्यायाष्टमकण्टकेषु पञ्चमतृतीयैकादशाष्टमकेन्द्रेषु शुभः। शशी ५।३।११।८।१।४। ७।१० जीवाद्व्ययायाष्टगः केन्द्रस्थश्च जीवाद्गुरुस्थानाद्व्ययायाष्टगः केन्द्रस्थश्च द्वादशैकादशाष्टमकेन्द्रस्थश्च शुभश्चन्द्र १२।११।८।१।४। ७।१० सितात्तु धर्मसुखधीत्र्यायास्पदानङ्गगः सिताच्छुक्राद्धर्मसुख-

धीत्र्यायास्पदानङ्गेषु नवमचतुर्थपञ्चमतृतीयैकादशदशमसप्तमेषु शुभः ९।४।५।३।११।१०।७ तथा च सत्यः– 'षष्ठैकादशसप्तमतृतीय-दशमादिसंस्थितश्चन्द्रः'। स्वादिष्टः ६।११।७।३।१०।१। सौरम्य तु सहजारिसुतायसंस्थितश्च शुभः ६।६।५।११। रिपुनिधनसहज-सप्तमदशमैकादशसंस्थितः सूर्यात् ६।८।३।७।१०।११ लग्नात्तृतीय-दशमारिलाभसंस्थितः शुभश्चन्द्रः ३।१०।६।११।भ्रातृसुतकर्मधन-लाभधर्मरिषूराशिगः कुजादिष्टः ३।५।१०।२।११।९।६। जीवा-त्तृतीयषष्ठद्विनवमसुतवर्जितेष्विष्टः ३।६।२।९।५ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १२।११।८।१। ४।७।१०। प्रथमद्वितीयषष्ठाष्टमांत्यवर्ज्येषु भार्गवादिष्टः १।२। ६।८।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि ३।४।५।७।९।१०।११। षष्ठधनपञ्चमनवमपश्चिमवर्ज्येषु बुधात्प्रशस्तश्च ६।२।५।९।१। एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराह-मिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।३।४।७।८।१०।११ तथा च सूक्ष्मजातके–'शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनिः स्वात्कुजात्सनवधोस्थः। सूर्यात्साष्टस्मरगस्त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात्।। ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टमगो गुरोर्व्ययभवाष्टकेन्द्रेषु। त्रिचतुःसुतनवदशसप्तमायगश्चन्द्रमाः शुभः शुक्रात्'। इति चन्द्राष्टकवर्गः।। २।।

भाषा– लग्न से ६।३।१०।११। इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है। मङ्गल से ६।३।१०।११।२।५।९ इन स्थानों में शुभ होता है। अपने अधिष्ठित स्थान से ३।६।१०।११।७।१ इनमें, सूर्य से ६।३।१०।११।८।७ में, शनि से ६।३।११।५ में, बुध से ५।३। ८।१।४।७।१० में, गुरु से १२।११।८।१।४।७।१० इन स्थानों में और शुक्र से ९।४।५।३।११।१०।७ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है। उक्त स्थानों से भिन्न स्थानों में अशुभ फल होता है।।२।।

अथ भौमाष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

वक्रस्तूपचयेष्विनात्सतनयेष्वाद्याधिकेषूदया-
च्चन्द्राद्दिग्विफलेषु केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः।
धर्मायाष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयाज्ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः
शुक्रात्षड्व्ययलाभमृत्युषु गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु ।।३।।

वक्रस्तूपचयेष्विनादिति।। वक्रोंऽगारकः इनादादित्यादुपचयेषु त्रिषडेकादशदशमेषु सतनयेषु पञ्चमस्थानसहितेषु शुभः ३।६।११। १०।५, आद्याधिकेषूदयाद्वक्रः। उदयाल्लग्नादेष्वेवोपचयेष्वाद्याधिकेषु प्रथमस्थानयुक्तेषु शुभः ३।६।११।१०।१। चन्द्राद्दिग्विफलेषु चन्द्र-स्थानादेष्वेवोपचयेषु दिग्विफलेषु दशमस्थानवर्जितेषु तेन दशम-स्थानेन शुभं नाप्यशुभं फलं करोतीत्यर्थः। ३।६।११ एतेषु शुभः। केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः स्वादात्मीयस्थानात्केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः केन्द्राष्टमैकादशद्वितीयगः शुभः १।४।७।१०।८।११।२। धर्मायाष्टम-केन्द्रगोऽर्कतनयात् सौराद्धर्मायाष्टमकेन्द्रगः नवमैकादशाष्टमकेन्द्र-गतः शुभः ९।११।८।१।४।७।१०। ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः ज्ञाद्बुधात्षट्-त्रिधीलाभगः षष्ठतृतीयपञ्चमैकादशगतः शुभः ६।३।५।११। शुक्रात् षड्व्ययलाभमृत्युषु शुक्रस्थानात् षष्ठद्वादशैकादशाष्टमेषु शुभः ६।१२।११।८। गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु गुरोः जीवाद्दशमद्वादशैका-दशषष्ठेषु शुभः १०।१२।११।६। तथा च सत्यः— 'द्वादशपञ्चमनवम-तृतीयषष्ठान्विना कुजरित्वष्टः।' स्वस्थानात् १२।५।९।३।६ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।४। ७।१०।८।११।२। सौरस्य तु नवमाभ्यधिकेषु अनर्थेषु एष्वेव द्वितीय-स्थानं विना नवमाभ्यधिकेषु ११।८।९।१।४।१०। भौमस्तृतीय-पञ्चमदशमैकादशरिपुस्थितः सूर्यात्। इष्टः ५।१०।११।६ चन्द्रा-न्मध्यमदशमषष्ठसहजलाभेषु १०।३।६।११ दशमैकादशषष्ठान्त्यगः कुजो भूमिजः पूजितो गुरुस्थानात् १०।११।६।१२।शशी चन्द्रः आराद्भौमादेष्वेव षट्त्रिदशायेषु धनधीधर्मसहितेषु षष्ठैकादश-पञ्चमतृतीयगः शुभः सौम्यात् ६।११।५।३ अन्त्यायाष्टमषष्ठगः कुजः पूजितः शुक्रात् १२।११।८।६ प्रथमैकादशदशरिपुसहजोपगतश्च होरायाः१।११।१०।६।३ तथा च स्वल्पजातके— 'भौमः स्वादाय-स्वाष्टकेन्द्रगस्त्र्यायषट्सुतेषु बुधात्। जीवाद्दशायशत्रुव्ययेष्विनादुप-चयसुतेषु।। उदयादुपचयतनुषु त्रिषडायेष्विदुतः समो दशमः। चन्द्र-स्थानादुपचयेषु दशमवर्जितेषु शुभः।।" दशमे सुभोऽपि न भवति। ३।६।११ भृगुतोंऽत्यषडष्टायेषु १२।६।८।११। असितात्केन्द्रायन-ववसुषु १।४।७।१०।११।९।८। इति भौमाष्टकवर्गः।।३।।

भाषा— मंगल, सूर्य से ३।६।११।१०।५ स्थानों में शुभ होता है। लग्न से ३।६।१०।११।१ स्थानों में; चन्द्रमा से ३।६।११ में; अपने अधिष्ठित स्थान से १।४।७।१०।८।११।२ में; शनि से ९।११।८।१।४।७।१० में; बुध से ६।३।५।११ में; शुक्र से ६।१२।११।८ में और गुरु से १०।१२।११।६ स्थानों में शुभ है। शेष स्थानों में अशुभ है।।३।।

अथ बुधस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषु भृगुजात्सत्र्यात्मजेष्विन्दुजः
साज्ञास्तेषु यमारयोर्व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः।
धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः स्वात्साद्यकर्मत्रिगः
षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोः साद्येषु लग्नाच्छुभः ।।४।।

द्व्याद्यायाष्टतप इति।। इन्दुजो बुधः भृगुजाच्छुक्रात् द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषु द्वितीयप्रथमैकादशाष्टमनवमचतुर्थेषु तृतीयपञ्चमयुक्तेषु शुभः २।१।११।८।९।४।३।५। साज्ञास्तेषु यमारयोः एष्वेव द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषुसाज्ञास्तेषु दशमसप्तमसहितेषु यमारयोः शनैश्चराङ्गारकयोः यमात् २।१।११।८।९।४।१०।७ आराच्च शुभः २।१।११।८।९।४।१०।७ व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः। वाक्पतेः जीवात् द्वादशषष्ठैकादशाष्टमगतः शुभः १२।६।११।८। धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः सूर्यान्नवमैकादशषष्ठपञ्चमद्वादशेषु शुभः ९।११।६।५।१२। स्वात्साद्यकर्मत्रिगः। स्वादात्मीयस्थानादेष्वेव धर्मादिषु स्थानेषु साद्यकर्मत्रिकेषु प्रथमदशमतृतीयसहितेषु गतः शुभः ९।११।६।५।१२।१।१०।४। षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोश्चन्द्रात् षष्ठद्वितीयैकादशाष्टमचतुर्थदशमेषु शुभः ६।२।११।८।४।१० साद्येषु प्रथमस्थानसहितेषु लग्नाच्छुभः ६।२।११।८।४।१०।१ तथा च सत्यः। 'स्वात्स्थानाच्छशितनयो द्वितीयसप्तमचतुर्थनिधनानि हित्वेष्टः'। २।७।४।८। एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।३।५।६।९।१०।११।१२। सूर्यस्य तु लाभारिसुतान्त्यनवमस्थः ११।६।५।१२।९। सुतसहजषष्ठपश्चिमवर्जितेषु मण्डलेषु बुधस्त्विष्टः। सौराराभ्यां स्थानादाकल्पाच्छास्त्रनियमेन ५।३।६।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।११।४।२।८।९।१० लग्नाच्छुक्रो येषु प्रशस्यते तेषु

चन्द्रजस्तस्य। येषु स्थानेषु लग्नाच्छुक्रः शुभस्तेष्वेव स्थानेषु शुभस्थानाद्-बुधः शुभो भवति। शुक्राष्टवर्गः पठ्यते। लग्नादिष्टः शुक्रो रिपु-सप्तमदशमपश्चिमान् हित्वा ६।७।१०।१२। एतानि स्थानानि वर्ज-यित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।२।३। ४।५।८।९।११। एतेषु स्थानेषु शुक्रस्थानाच्छुभो बुधः। अन्त्यो-पान्त्याष्टमशत्रुभेषु जीवाद्बुधः श्रेष्ठः १२।११।८।६। दशमस्वलाभ-षष्ठाष्टभेषु चन्द्राद्बुधश्चतुर्थे च १०।२।११।६।८।४ लग्नाच्चेष्टो द्यूनान्त्यनवमसुतसहजवर्ज्येषु ७।१२।९।५।३ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि २।६।१०।११।८। ४।१। एतेषु लग्नाच्छुभः। तथा च स्वल्पजातके – 'सौम्योऽन्त्यषण्न-वायात्मजेष्विना-(१२।६।९। ११।५) त्वात्त्रितनु (३।१) दशयुतेषु (१०)। चन्द्राद्द्विरिपुदशायाष्टसुखगतः (५।६।१०।११।८।४।१) सादिषु विलग्नात्॥ प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु। १।४।११।२।८।९ सितात्त्रिधीसमेतेषु (३।५)। साशास्मरेषु (१०,७) सौरारयोर्व्य-यायरिपुवसुषु (१२।११।६।८) गुरोः॥' इति बुधस्याष्टकवर्गः॥४॥

भाषा– शुक्र से ३।५।२।१।११।८।४ इन स्थानों में बुध शुभ फल देता है। शनि और मंगल से १०।७।२।१।११।८।४ में, गुरु से १२।६।११।७में, सूर्य से ९।११।६।५।१२ में, अपने आश्रित स्थान से १।१०।३।९।११।६।५।१२ में, चन्द्रमा से ६।२।११।८।४।१० में और लग्न से १।६।२।११।८।४।१० में बुध शुभ है। अन्य स्थानों में अशुभ है॥४॥

अथ जीवस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजात्वात्सत्रिकेष्वङ्गिराः
सूर्यात्सत्रिनवेषु धीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात्।
जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दात्त्रिषड्धीव्यये
दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञात्सस्मरश्चोदयात्॥५॥

दिगिति॥ दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजादङ्गिरा इति। अङ्गिरा जीवः कुजादङ्गारकाद्दशमद्वितीयप्रथमाष्टमसप्तमैकादशचतुर्थेषु शुभः १०।२।१।८।७।११।४। स्वात्सत्रिकेष्वङ्गिराः स्वादात्मीयस्थाना-दङ्गिराः गुरुः पूर्वोक्तेषु दिक्स्वाद्यादिषु सत्रिकेषु तृतीयस्थानसहितेषु शुभः १०।२।१।८।७।११।४।३ सूर्यात्सत्रिनवेषु गुरुः शुभः।

सूर्यादादित्यादेष्वेव स्थानेषु प्रागुक्तेषु सतपस्तृतीयेषु तृतीयनवमस्थानाधिकेषु शुभः १०।२।१।८।७।११।४।३।९। धीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात्। भार्गवाच्छुक्रात्पञ्चमद्वितीयनवमदशमैकादशषष्ठेषु शुभः ५।२।९।१०।११।६।जायार्थनवात्मजेषु हिमगोः। हिमगोश्चन्द्रात्सप्तमैकादशद्वितीयनवमपंचमेषु शुभः ७।११।२।९।५। मन्दात्त्रिषड्धीव्यये मन्दात्सौरात्तृतीयषष्ठपञ्चमद्वादशेषु शुभः ३।६।५।१२। दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञाद्बुधाद्दशमपञ्चमषष्ठद्वितीयचतुर्थैकादशप्रथमनवमेषु शुभः१०।५।६।२।४।११।१।९। सस्मरश्चोदयात्। उदयाल्लग्नादेष्वेव स्थानेषु सस्मरेषु सप्तमस्थानसहितेषु शुभः १०।५।६।२।४।११।१।९।७। तथा च सत्यः– 'येषु बुधस्य शशाङ्कस्तेषु गुरुः पुष्कलः स्वकात्स्थानात्'। चन्द्राष्टकवर्गः पठ्यते। षष्ठधननवमपश्चिमवर्ज्येषु बुधात्प्रशस्तश्च ६।२।९।१२। एतानि स्थानानि वर्जयित्वा जातानि १।३।४।५।७।८।१०।११। अत्र पञ्चमद्वितीययोः स्थानयोः वराहमिहिरेण सह भेदः। अत्र च वराहमिहिरेण यवनेश्वरमतमङ्गीकृत्य द्वितीयस्थानस्य शुभत्वमङ्गीकृतम्। तथा च यवनेश्वरः– 'स्वस्थानतः स्थानसुतार्थमानप्राप्तिं द्वितीये च गुरुः करोति।' एवं द्वितीये च शुभो विवाददैन्याध्वगदस्त्रिकोणे तस्मात्पञ्चमे न शुभः।एष्वेवार्कादिष्टो नवमाभ्यधिकेषु भवनेषु १।३।४।५।७।८।९।१०।११ अत्रापि पञ्चमद्वितीययोः वराहमिहिरेण यवनेश्वरमतमङ्गीकृतम्। तथा च यवनेश्वरः– 'स्थाने रवेर्बुद्धिसुहृद्धनाप्तिं करोति जीवो धनदो द्वितीये।' शुभत्वाद्वराहमिहिरेणाङ्गीकृतम्। रुग्राजपीडाध्वकृदिंद्रसूरिः स्यात्पञ्चमे तस्मात्पञ्चमे न शुभः। आत्मसदृशेषु सहजभवनं बिना कुजाच्च गुरुरिष्टः १।४।५।७।१०।११ अत्रापि पञ्चमद्वितीययोः वराहमिहिरेण सह भेदः। अत्रापि यवनेश्वरः– 'गुरुः कुजस्थानगतोऽरिहंता द्वितीयगस्तु द्युतिहर्षदाता।' तस्माद्वराहमिहिरेण द्वितीयस्थानमङ्गीकृतम्। जामित्रगो व्याध्यरिशोककारी। एवं सप्तमस्थानं नाङ्गीकृतम्। द्वादशरिपुपञ्चमतृतीयसंज्ञे शुभः सौरात् १२।६।५।३ दशमैकादशनवमद्वितीयषट्पञ्चमेषु भृगोः। इष्टः(१०।११।९।२।६।५) चन्द्राज्जामित्रनवमसुतलाभकोशर्क्षेषु गुरुः शुभः (७।९।५।११।२) प्रथमद्वितीयपञ्चमचतुर्थधर्मारिलाभदशमस्थः सौम्याद्गुरुरिष्टः (१।२।५।

४।६।६।११।१०)। जीवो लग्नादेवमिष्टः सजामित्रः १।२।५। ४।६।६।११।१०।७। तथा च स्वल्पजातके– 'जीवो भौमाद्-द्व्यायाष्टकेन्द्रगोऽ (२।११।८।१।४।७।१०)– कर्त्तसधर्मसहजेषु २।११।८।१।४।७।१०।६।३ स्वात्सत्रिकेषु २।११।८। १।४। ७।१०।३ शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ६।१०।११।२।५।६। शशिनः स्मरत्रिकोणार्थलाभग-(७।६।५।२।११)- स्त्रिरिपुधीव्ययेषु यमात् (३।६।५।१२) नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात्-(६।१०।४।१।५।२।११।६) सक्रामगो लग्नात् ६।१०।४। १। ५।२।११।६।७।।' इति जीवाष्टकवर्गः।।५।।

भाषा– बृहस्पति जन्मकुण्डली-स्थित मंगल से १०।२। १।८।७।११।४ में शुभ होता है। अपने आश्रित स्थान से १०।२। १।८।७।११।४।३ में, सूर्य से १०।२।१।८।११।४।३।६। स्थानों में, शुक्र से ५।२।६।१०।११।६। में, चन्द्रमा से ७।११।२। ६।५ में, शनि से ३।६।५।१२ में, बुध से १०।५।६।२।४। ११।१।६ में, लग्न से १०।५।६।२।४।११।१।६ स्थानों में गुरु शुभ है। शेष स्थानों में अशुभ समझना चाहिए।।५।।

अथ शुक्रस्याष्टकवर्गः शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः सान्त्यः शशाङ्कात्सितः
स्वात्साज्ञेषु सुखत्रिधीनवदशच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात् ।
रन्ध्रायव्ययगो रवेर्नवदशप्राप्त्यष्टधीस्थो गुरो-
र्ज्ञाद्धीत्र्यायनवारिगस्त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः कुजात् ।६।

लग्नादिति।। सितः शुक्रः लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः शुभः। लग्नात्प्रभृति सुतस्थानं पञ्चमं यावत्तथा लाभरन्ध्रनवगः सितः शुभः। तेषु प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमैकादशाष्टनवमेषु लग्नाच्छुक्रः शुभः। (१।२।३।४।५।११।८।६)सांत्यः शशांकाच्चंद्रादेव स्थानेषु सान्त्येषु सव्ययेषु द्वादशस्थानाधिकेषु शुभः (१।२।३।४।५। ११।८।६।१२)। स्वात्साज्ञेषु स्वात्मीयस्थानादेष्वेव स्थानेषु साज्ञेषु, दशमस्थानाधिकेषु शुभः (१।२।३।४।५।११।८।६।१०)। सुखत्रिधीनवदशच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात्। सौराच्चतुर्थतृतीयपञ्चमनवमदशमाष्टमैकादशेषु शुभः (४।३।५।६।१०।८।११)। रन्ध्रायव्ययगो रवेः। रवेरादित्यादष्टमैकादशद्वादशेषु शुभः (८।११।१२)। नवदशप्राप्त्यष्टधीस्थो गुरोः।

(६।१०।११।८।५) ज्ञाद्धीत्र्यायनवारिगः। ज्ञाद्बुधात्पञ्चमतृतीयै-कादशनवमषष्ठेषु शुभः (५।३। ११।६।६)। त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः कुजात्। कुजाद्भौमात्तृतीयनवमषष्ठपञ्चमैकादशेषु सान्त्येषु अन्त्येन द्वादशेन सहितेषु स्थानेषु शुक्रः शुभः (३।६।६।५।११।१२)। तथा च सत्यः-'स्वस्थानाद्भृगुतनयः षट्सप्तमपश्चिमेतरेष्विटः (६।७।१२)' एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।२।३।४।५।८।६।१०।११। 'रिपुपतिकर्मवर्ज्येषु सितश्चन्द्रात्तु पुष्कलो नृणाम् ६।७।१०।' एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिर-पठितानि जातानि १।२।३।४।५।६।८।११।१२। 'अन्त्योपान्त्या-ष्टमगः सूर्यादिष्टस्तु भार्गवः कथितः १२।११।८। भौमादन्त्योपान्त्य-तृतीयनवमसुतशत्रुगश्चैवम् (१२।११।३।६।५।६)। दशमै-कादशनिधनत्रिकोणसंस्थो भृगुर्जीवात् (१०।११।८।५।६)। सौम्यात् सुतधर्मलाभसहजारिसंज्ञेषु (५।६।११।३।६)।। लग्नादिष्टः शुक्रो रिपुसप्तमदशमपश्चिमान् हित्वा (६।७।१०।१२)'' एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।२।३।४।५। ८।६।११। 'आद्यद्वितीयरिपुसप्तमान्त्यवर्ज्येषु सौराच्च (१।२। ६।७।१२)' एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि (३।४।५।८।६।१०।११) तथा च स्वल्पजातके 'शुक्रो लग्नादासुतनाष्टवलाभेषु (१।२।३।४।५।६।८।११) सव्य-यश्चन्द्रात्। स्वात्साज्ञेषु रविसुतात्त्रिधीसुखात्तिनवकर्मरन्ध्रेषु।। वस्व-न्त्यायेष्वर्क्रान्नवदिग्लाभाष्टधीस्थितो जीवात्। ज्ञात्त्रिसुतनवाया-रिष्वासुतापोक्लिमेषु कुजात्।।' इति शुक्राष्टकवर्गः।। ६।।

भाषा– शुक्र लग्न से १।२।३।४।५।११।८।६ स्थान में शुभ होता है। चन्द्रमा से १।२।३।४।५।११।८।६।१२ में, अपने आश्रित स्थान से १।२।३।४।५।११।८।६।१० स्थानों में, शनि से ४।३।५। ६।१०।८।११ में, रवि से ८।११।१२ में, गुरु से ६।१०। ११।८।५ में, बुध से ५।३।११।६।६ में और मंगल से ३।६।६। ५।११।१२। स्थानों में शुक्र शुभ होता है। अन्य स्थानों में अशुभ होता है।६।

अथ सौरस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

मन्दः स्वात्त्रिसुतायशत्रुषु शुभः साज्ञान्त्यगो भूमिजात्
केन्द्रायाष्टधनेष्विनादुपचयेष्वाद्ये सुखेचोदयात्।

धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु बुधाच्चन्द्रान्त्रिषड्लाभगः
षष्ठायान्त्यगतः सितात्सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुषु ॥ ७ ॥

मन्दः स्वात्त्रिसुतायशत्रुषु शुभ इति ॥ मन्दः सौरः स्वादात्मीय-स्थानात्तृतीयपञ्चमैकादशषष्ठस्थानेषु शुभः । साज्ञान्त्यगो भूमिजात् । भूमिजाद्भौमादेष्वेव प्रागुक्तेषु साज्ञान्तेषु गतः दशमद्वादशसहितेषु शुभः ३।५।११।६।१०।१२ केन्द्रायाष्टधनेष्विनात् । इनात्सूर्यात् केन्द्रैकादशाष्टमद्वितीयेषु शुभः (१।४।७।१०।११।८।२)। उपचये-ष्वाद्ये सुखे चोदयात् । उदयाल्लग्नात्तृतीयषष्ठदशमैकादशप्रथम-चतुर्थेषु शुभः (३।६।१०।११।१४) धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु बुधात् । बुधाद्बुधस्थानान्नवमैकादशषष्ठदशाष्टमेषु शुभः(९।११।६।१०।८) चन्द्रात्त्रिषड्लाभगः । चन्द्रस्थानात्तृतीयषष्ठैकादशेषु शुभः (३।६।११) षष्ठायान्त्यगतः सितात् । शुक्रस्थानात् षष्ठद्वादशैकादशेषु शुभः (६।१२।११)। सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुषु सुरगुरोः जीवादेकादश-द्वादशपञ्चमषष्ठेषु शुभः (११।१२।५।६) तथा च सत्यः– 'एकादश-पञ्चमषष्ठगोऽर्कजः स्वाच्छुभस्तृतीये च (११।५।६।३)। स्थाना-न्निशाकरस्य तु पञ्चमवर्ज्येष्वथैष्वेव (११।३।६)॥ येष्वात्मनो रवि-स्तेषु भास्करस्तादृशो रविस्थानात् ।' आदित्याष्टकवर्गः पठ्यते– 'स्वात्स्थानाद्दिवसकरस्तृतीयषष्ठान्त्यभत्रिकोणानि । हित्वेष्टः (३।६। १०।५।९)' एतानि हित्वा जातानि १।२।४।९।१०।११।८। अत्र वराहमिहिरादभ्यधिकं नवमं स्थानं तच्च यवनेश्वरविरोधित्वाद्वराह-मिहिरेण नोक्तम् । तथा च यवनेश्वरः– 'पापप्रवृत्तिं नवमे विधत्ते' इति जीवादिष्टः । षट्पञ्चमपश्चिमैकादशस्थश्च (६।५।१२।११) 'भ्रातृ-सुतविजयलाभान्त्यकर्मगः पुष्कलो नृणाम् । भौमस्थानात्सौरिः (३।५। ६।११।१२।१०) षष्ठान्त्योपान्त्यगः शुक्रात् (६।१२।११)। दशमै-कादशषष्ठाष्टमान्त्यनवमोऽर्कजः सौम्यात् (१०।११।६।८।१२।९)। स्थानादिष्टो लग्नाच्छुभस्तु लग्नोद्यथा सूर्यः ॥' आदित्याष्टकवर्गः पठ्यते– 'दशमैकादशषष्ठतृतीयगो लग्नगश्चतुर्थगश्च लग्नात् (१०। ११।६।३।१।४)। तथा च स्वल्पजातके–'स्वात्सौरस्त्रिसुतायारिगः (३।५।११।६) कुजादन्त्यकर्मसहितेषु (३।५। ११।६।१२।१०)। स्वायाष्टकेन्द्रगोर्कोऽ (२।११।८।१।४।७।१०)-च्छुक्रात्षष्ठान्त्यलाभेषु (६।१२।११)॥ त्रिषडायगः शशाङ्का-(३।६।११)- दुदयात्स-

सुखाद्यकर्मगोऽ-(३।६।११।४।१।१०)-थगुरोः। सुतषड्व्ययायगो (५।६।१२।११) ज्ञाद्‌व्ययायरिपुदिङ्नवाष्टस्थः (१२।११।६।१०।६।८)।।' इति सौरस्याष्टकवर्गः।।७।।

भाषा— शनि अपने आश्रित स्थान से ३।५।११।६ स्थान में शुभ होता है। मंगल से ३।५।११।६।१०।१२ में, सूर्य से १।४।७।१०।११।८।२ में, लग्न से ३।६।१०।११।१।४ में, बुध से ६।११।६।१०।१२।८ में, चन्द्रमा से ३।६।११ में, शुक्र से ६।११।१२ में और बृहस्पति से ११।१२।५।६ स्थानों में शनि शुभ होता है और शेष स्थानों में अशुभदायक होता है।।७।।

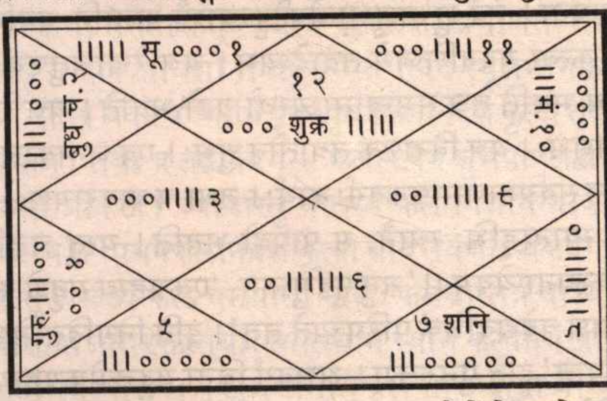
अथाष्टकवर्गफलनिरूपणार्थं मालिन्याऽऽह—

इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषा-
दधिकफलविपाकं जन्मभात्तत्र दद्युः।
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं-
त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातकेऽष्टकवर्गाध्यायो नवमः ।। ९ ।।

इति निगदितमिति।। इत्यनेनोक्तेन प्रकारेण यन्निगदितमुक्तं तदिष्टं नेष्टमन्यत्। यदन्यं न गदितं तत्सर्वमनिष्टशोभनम्। एतदुक्तं भवति। 'स्वादर्कः प्रथमायबंधुनिधन' इत्यनेन पाठेन यान्युक्तानि स्थानानि तेषां श्रेष्ठं फलम्। विशेषादधिकफलविपाकमेवमिष्टानिष्टयोः फलयोः विशेषात्संशोधनादधिकमिष्यते। तत्फलविपाकं भवति एत-ज्जन्मभात् जन्मकाले यत्र स्थाने ग्रहाः स्थिताः तस्मात्स्थानाच्छुभाशुभानि फलानि प्रयच्छन्ति, न तथा तत्कालाक्रान्तराशितः। एतदुक्तं भवति। यानि शुभस्थानान्याचार्येण पठितानि तानि बिन्दूपलक्षितानि कार्याणि। यान्यशुभानि तानि रेखोपलक्षितानि कार्याणि। तदिष्टानिष्टयोः विशेषमन्तरं कृत्वाऽवशिष्टस्य फलस्य पक्तिरिति। यत्र विंदवष्टकं जातं तत्र शुभफलं संपूर्णम्। यत्र च षड् बिंदवस्तत्र पादोनफलम्। यत्र च बिंदुचतुष्टयं तत्रार्द्धं फलम्। यत्र बिन्दू द्वौ तत्र पादफलम्। अशुभ-फलस्यैव रेखाभिः कल्पना कार्या। तत्र चानिमिषपरमांशके विलग्न इत्यत्र प्रयोगे जातस्याङ्गारकस्याष्टकवर्ग उदाहृते। तत्राचार्यपठितानि स्थानानि बिन्दूपलक्षितानि कार्याणि। अपठितानि अशुभानि स्थानानि रेखोपलक्षितानि कार्याणि। तद्यथा ग्रहसंस्था। मीनलग्नगतः शुक्रः

मेषे। द्वितीयस्थानस्थोऽर्कः। तृतीये वृषे चन्द्रबुधौ। पञ्चमस्थाने कर्कटस्थो जीवः। अष्टमे तुलायां शनैश्चरः। एकादशे मकरस्थो भौमः अनया ग्रहसंस्थया प्रदर्श्यते न्यासः– 'वक्रस्तूपचयेष्विनात्सतनयेष्वाद्याधिकेषूदयाच्चन्द्राद्दिग्विफलेषु केन्द्रनिधनप्रात्यर्थगः स्वाच्छुभः। धर्मायाष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयाज्ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः शुक्रात् षड्व्ययलाभमृत्युषु गुरोः कर्मांत्यलाभारिषु।।' अष्टकुण्डलिकान्यासः। अथ शुभाशुभफलविशेषः क्रियते। यत्र मेषे रेखापञ्चकं, बिन्दुत्रयं च जातम्। रेखात्रयं बिंदुत्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते। तस्मादेवंविधे योगे जातस्य सदैव चारवशान्मेषस्थोऽङ्गारकोऽष्टभागद्वयेनाशुभः वृषे रेखापञ्चकं



विन्दुत्रयं जातम्। रेखात्रयं विन्दुत्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते। तस्माद्वृषस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेनाशुभो भवति। मिथुने रेखापञ्चकं बिन्दुत्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते। तस्मान्मिथुनस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेनाशुभो भवति। कर्कटे बिन्दुचतुष्टयं रेखांचतुष्टयं च जातम्; तत्र न किञ्चिदवशिष्यते। तेन तत्स्थानं न शुभं नाप्यशुभम्। समत्वान्मध्यमः। सिंहे बिन्दुपञ्चकं, रेखात्रयं च जातम्। रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य बिन्दुद्वयं जातम्। तस्मात्तस्य सदैव सिंहस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेन शुभो भवति। कन्यायां रेखाषट्कं बिन्दुद्वयं च जातम्। बिन्दुद्वयं रेखाद्वयं चापास्य रेखाचतुष्टयं जातम्। तस्मात्कन्यास्थो भौमोऽष्टभागचतुष्टयेनाशुभः। तुलायां रेखात्रयं बिन्दुपञ्चकं च जातम्। तत्र रेखात्रयबिन्दुत्रयं चापास्य बिन्दुद्वयं जातम्। तेन तुलास्थो भौमोऽष्टभागद्वयेन सदैव शुभः। वृश्चिके रेखासप्तकं, एको बिन्दुर्जातस्तत्र बिन्दुं रेखाञ्चापास्य रेखाषट्कं जातम्। तस्मादवृश्चिकस्थो भौमोऽष्टभागषट्केनाशुभः।

धनुषि रेखाषट्कं बिन्दुद्वयं च जातम्। तत्र रेखाद्वयं बिन्दुद्वयं चापास्य रेखाचतुष्टयं च जातम्। एवमष्टचतुष्टयेन धन्विस्थो भौमो सदैवाशुभः। मकरे रेखात्रयं बिन्दुपञ्चकं च जातम्। तत्र रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य बिन्दुद्वयं जातम्। तेन मकरस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेन शुभः। कुम्भे रेखाचतुष्टयं बिन्दुत्रयं च जातम्। अत्र चन्द्रस्थानात् दशमस्थानं भौमस्य समत्वादष्टमो बिन्दुर्न जातस्तस्माद्रेखात्रयं बिन्दु-त्रयं चापास्य एका रेखा जाता। तस्मात्कुम्भस्थोऽष्टमभागेनैकेनाशुभः। मीने रेखापञ्चकं बिन्दुत्रयं च जातम्। रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य रेखाद्वयं च जातम्। तस्मान्मीनस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेनाशुभः। आस्यतो शुद्धौ स्थापना। एवं शुभाशुभान्येकीकृत्याष्टौ फलानि भवन्ति तेषां संशोधनं कृत्वा यदवशिष्यसे तदादेश्यम्। यत्र रेखाचतुष्टयं बिन्दु-चतुष्टयं च भवति तत्र समन्वान्मध्यस्थो ग्रहो भवति। यत्र रेखाष्टकं तत्रातीवाशुभः। यत्र विन्द्वष्टकं तत्रातीव शुभः। एवं जन्मकालाक्रांत-राशिवशेन सर्वग्रहाणामष्टकवर्गः कार्यः। तथा च बादरायणः— 'एकेन यः शुभः स्यात्षड्भिः स्थानैः स पापदो भवति। यस्तु चतुभिर्नेष्टः सर्वफले कल्पनाप्येवम्।।' ननु पूर्वमुक्तम्, 'एकग्रहस्य सदृशे फलयो-र्विरोधे नाशं वदेद्यदधिकं परिपच्यते तत्'। इति निगदितमिष्टं नेष्ट-मन्यद्विशेषात्' इति पुनरुक्तम्। अष्टवर्गं बिना यदुक्तमेकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोध इति तत्र सदृशयोः फलयोर्विरोधे नाशो विज्ञेयः। यथा स एव ग्रहः कयापि युक्त्या सुवर्णदो भवति स एव युक्त्यन्तरेण सुवर्णापहारी। तदा न सुवर्णदो भवति, न सुवर्णापहारी चेति। यदधिकं परिपच्यते तत् तत्रापि यदि कारणद्वयेन सुवर्णापहारी भवति, कारणेनैकेन सुवर्णदस्तथापि सुवर्णापहारी भवति; न सुवर्णदः। अथ कारणद्वयेन सुवर्णदः कारणेनैकेन सुवर्णापहारी। तथापि कारण-द्वयस्याधिक्यात्सुवर्णद एव। एवं तत्र सदृशे फलद्वयोर्विरोधे नाशं वदेन्मासदृशयोः। इह तु पुनः सदृशेऽपि फलयोर्विरोधे नाश एवेति। तद्यथा। बादरायणयवनेश्वरादिभिरष्टकवर्गेऽभिहितम्। अस्य ग्रहस्य स्थानादयं ग्रहः स्वस्मिन्स्थानं तिष्ठमान इमानि शुभान्यशुभानि फलानि प्रयच्छतीति। तत्रासदृशान्यपि यदि तानि फलानि भवन्ति तथापि तेषां शुभाशुभविरोधादेव नाशं वदेत्। विशेषादधिकफलविपाकं जन्मभात्तत्र दद्युरिति। यथा कश्चिद्ग्रहः केनचित्कारणेन सुवर्णदो

भवत्यपरेण रूप्यापहारी च तथाप्यसदृशयोरपि फलयोर्विरोधे दान-हरणात्मके न शुभो नाप्यशुभ इति कल्पनीयः। एवं स्थानाष्टकाद्यत्र स्थाने बहुभिः शुभो भवत्यल्पेनाशुभः तत्र शुभाशुभफलविशेषं कृत्वा शुभमेकं कल्पनीयम्। अनेनैव प्रकारेण स्थानसंज्ञामात्रेण स्थानशुभाशुभत्वमेवोक्तं न पृथक्फलनिर्देशो यवनेश्वरादिवत् यद्येवं चाष्टवर्गं प्रधानं तत्संहितायां गोचरफले चन्द्रस्थानात् किमिति पृथक्फल-निर्देशो वराहमिहिरेण कृतः। जन्मन्यायासदोऽर्क इत्येवमादि। अत्रोच्यते। तस्मादष्टकवर्गफलविशेषाद्यदतिरिच्यते तदेव वक्तव्यमिति। तदेव पूर्वं प्रत्ययनार्थमतिप्रसिद्धत्वाद्गोचरस्यान्यमतमेवाङ्गीकृत्वोक्तम्। तथा च यात्रायां तेनैवोक्तम्– 'यस्य गोचरफलप्रमाणता तस्य वेध-फलमिष्यते न वा। प्रायशो न बहुसम्मतं त्विदं स्थूलमार्गफलदो हि गोचरः।।' इति। यवनेश्वरेणापि पृथक्पृथक्फलनिर्देशं कृत्वा तदेवाष्टक-वर्गमङ्गीकृतम्। तथा च तद्वाक्यम्– 'फलाष्टवर्गे शुभपापलक्षे समान-कल्पावफलौ प्रदिष्टौ। ज्यायांस्तु यस्तस्य फलं विधाय यात्राविधाने च समुद्भवे च।।' पृथक्फलनिर्देशं कृत्वा बादरायणोऽप्यष्टवर्गमेवाह– 'कष्टश्रेष्ठे तुल्यसंख्ये फले चेत्स्यातां नाशः फलयोस्तत्र वाच्यः *(१)*। वाच्या पक्तिर्योऽतिरिक्तस्तयोः स्यात्स्थाने स्थाने कल्पनेयं प्रदिष्टा।।' उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टमिति। लग्नाचन्द्राद्वा यान्युपचय-स्थानानि तथा मित्रक्षेत्राणि स्वोच्चं च एतानि शुभस्थानानि शुभ-स्थानोपलक्षणानि। उपलक्षणत्वात्स्वक्षेत्रं मूलत्रिकोणं च गृह्यते। तत्र लग्नाचंद्राद्वोपचयगतो ग्रहः स्वक्षेत्रस्थो मूलत्रिकोणस्थश्च तदा शुभं फलं प्रयच्छति। अत्र च श्रीदेवकीर्तिः– 'लग्नादुपचयसंस्थश्चन्द्राद्वा स्वगृहमूलतुङ्गस्थः। मित्रक्षेत्रगतो वा फलमतिशयितः शुभं दद्यात्।।' लग्नाच्चन्द्राद्वा यान्युपचयस्थानानि तथा शत्रुक्षेत्रनीचानि च तान्य-शुभानि। तेषु स्थितो ग्रहो यदा शुभफलं प्रयच्छति तदप्यतिनिकृष्ट-मिति। अथदिवं शुभगृहस्थः शुभं फलं प्रयच्छति, अशुभगृहस्थश्च शुभमल्पम्। किमेवंविधेषु स्थानेषु ग्रहस्य जन्मकाले स्थितिरन्वेष्या किं वा चारवशात्फलकल्पनेति। उच्यते। जन्मकालिकमेव तत्। तत्रान्त-र्दर्शनतः। तथा च देवकीर्तिः– 'उपचयराशौ नीचे शत्रुक्षेत्रे च जन्म-

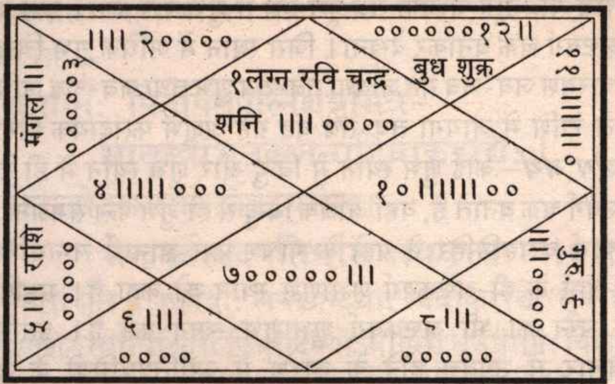
(१) इह द्वितीयपदे पञ्चमाक्षरस्य ह्रस्वत्वदोषात्–
'स्यातां नाशस्तत्र वाच्यस्तयोर्हि' इति पाठः साधुः।

काले स्यात्। यस्तु स दद्यात्पापं फलमतिशयितो यथाकालम्॥' यवनेश्वरश्च– 'यस्तु स्वनीचारिगृहोपगोऽन्यर्जितोऽरिदृष्टोऽल्पतनुर्विवर्णः। सूतावभूज्जन्मपतौ बलस्थे स जन्मगो बन्ध्यफलो निरुक्तः॥ ईषत्सुहृत्स्वोच्चभृदिष्टदृष्टो मित्रर्क्षजन्मोपचये बलीयान्। यो जातकेऽभूत्स तु जन्मसंस्थो दद्याच्छुभं न त्वशुभोऽप्यनिष्टम्॥' तथा च सत्यः– 'जन्मन्युपचयभवने एको ग्रहो ह्युपचयेषु पुष्टफलः। अपचयभवनोपेताः पीडास्थाने ह्यपचयाय॥' फलकाले तु पुनश्चन्द्रवर्ज्यमन्यो ग्रहो बलवानेव शुभमशुभं वा पुष्टं फलं प्रयच्छतीति। चन्द्रः शुभोऽपि बलरहितः पापफलो भवति। अत्र च श्रीदेवकीर्तिः- 'पुष्टमपुष्ट स्वफलं दद्यात्सबलो बलेन हीनस्तु। ग्रह इव सर्वश्चन्द्रः कष्टफलो बलविहीनश्च॥' तथा च सत्यः– 'स्नेहवपुरंशुबलैर्विवर्जितः शत्रुभेऽरिसंदृष्टः। ग्रह इव फलमनुदद्याच्चान्द्रस्तु यदीदृशः कष्टः॥' वराहमिहिरोऽप्यबलानां ग्रहाणां फलदाने असमर्थानां यात्रायामाह– 'नीचस्था ग्रहविजिता व्यभिभूता विरश्मयो ह्रस्वाः। भुजगा इव मन्त्रहता भवन्ति कार्याक्षमा लग्ने॥' यात्रायां यवनेश्वरोऽपि– 'स्ववर्गसंस्था बलिनो विशेषाद्ग्रहा यथोद्दिष्टफलप्रदाः स्युः। नीचे जिताश्चारिगृहेऽल्पवीर्यास्ते घ्नंत्यनिष्टेष्टफलप्रवृत्तिम्॥' तत्र शास्त्रेषु यानि वाक्यान्युच्चादिसंस्थानां शुभाशुभफलप्रवृत्तिप्रदर्शकानि नीचारिस्थानामशुभफलप्रदर्शकानि तानि जन्मसमये ज्ञेयानि। यानि च शुभानामशुभानां वा फलानि ग्रहवशेनैव पुष्टिप्रदर्शकानि तानि चारवशात्फलदानकाले ग्रहस्य ज्ञेयानीति॥ ८॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतावष्टकवर्गाध्यायो नवमः समाप्तः॥ ९॥

भाषा– इस प्रकार जिस ग्रह के लिए जहाँ-जहाँ से जो स्थान कहे गये हैं वे स्थान शुभ और उनसे भिन्न स्थान अशुभ समझना चाहिए। इस प्रकार जन्मकुण्डली में जो ग्रह जहाँ हो वहाँ से शुभ और अशुभ स्थान में चिह्न लगाकर शुभ और अशुभ दोनों में जो अधिक हो वही फल उस स्थान में ग्रह चारवश जाने पर देते हैं। यदि वह स्थान जातक के जन्मराशि से उपचय (३।६।१०।११), अथवा वह अथवा उच्च का गृह, अथवा मित्र का गृह हो तो शुभ फल की वृद्धि होती है और अशुभ फल की हानि होती है। यदि चारवश नीच या शत्रु का गृह हो तो अशुभ फल की वृद्धि और शुभ फल की हानि समझनी चाहिए।

उदाहरण— जन्मकुण्डली देखिये। सूर्य मेष में है, इसलिए 'स्वादर्कः' इत्यादि



श्लोक के अनुसार सूर्य से १।११।४।८।२।१०।६।७ ये स्थान शुभ हैं। इसलिए इनमें शुभ चिह्न रेखा (।) और अन्य स्थान में अशुभ चिह्न (०) लगायें। फिर चन्द्रमा से ३।६।१०।११ में शुभ चिह्न रेखा, शेष स्थान में अशुभ चिह्न बिन्दु एवं मङ्गल से १।२।४।७।८।६।१०।११. इनमें शुभ स्थान में रेखा, शेष स्थान में बिन्दु। फिर बुध से ३।५।६।६।१०।११।१२ स्थान में रेखा, शेष स्थान में बिन्दु, गुरु से ६।७।१२।५।८।६।११ इन शुभ स्थान में रेखा, शेष में बिन्दु, शुक्र से ६।७।१२ इन शुभ स्थान में रेखा, शेष में बिन्दु। शनि से १।२।४।७।८।६।१०।११ इन शुभ स्थान में रेखा और शेष स्थान में बिन्दु। लग्न से ३।४।६।१०।११।१२ इनमें शुभं चिह्न रेखा और शेष स्थान में बिन्दु चिह्न करने से सूर्याष्टकवर्गचक्र बन गया। यहाँ प्रत्येक स्थान में रेखा और बिन्दु दोनों मिलकर आठ-आठ चिन्ह हैं। इनमें शुभबोधक रेखा और अशुभबोधक बिन्दु चिह्न है। जिनमें अधिक रेखा पड़ी है वे शुभ-फलद हैं। जिनमें अधिक बिन्दु पड़े हैं वे अशुभ फल-स्थान हुए। जैसे यहाँ-सूर्य के अष्टवर्ग में रेखाबिन्दु लगाने से मेष और वृष में ४ रेखा और चार बिन्दु पड़े हैं, इसलिये शुभ और अशुभ दोनों के अन्तर शून्य होने के कारण दोनों स्थान मध्यम हुए अर्थात् उसमें जब चारवश सूर्य जायगा तो मध्यम फल देगा या शुभ और अशुभ कुछ भी फल नहीं देगा। मिथुन में ५ बिन्दु और ३ रेखा है इसलिये दोनों के अन्तर करने से २ बिन्दु (अशुभ) बचते हैं। इसलिए जब-जब मिथुन में जायगा तब-तब अष्टमांश अर्थात् १ चरण अशुभ फल मात्र देगा। एवं कर्क में ५ रेखा और तीन बिन्दु है, दोनों के अन्तर करने से २ रेखा (शुभ) बचती है, इसलिए चारवश जब-जब सूर्य कर्क में जायगा तब-तब शुभ फलदायक होगा। किन्तु मिथुन जन्मराशि से उपचय स्थान है इसलिए अशुभ फल होने पर भी अल्प अशुभ होगा। और कर्क अपचय स्थान है इसलिए वहाँ शुभप्रद होने पर भी शुभ फल में अल्पता होगी। इसी प्रकार अष्टम स्थान में अधिक बिन्दु (अशुभ) है और अपचय स्थान है अतः उस राशि में सूर्य के जाने पर अधिक अशुभ फल होगा।

एवं मकर और कुम्भ में अधिक शुभ है, ये दोनों उपचय स्थान हैं इसलिए इन दोनों में जब-जब सूर्य जायगा तब पूर्ण रूप से शुभ फल देगा। इसी प्रकार सब ग्रहों के अष्टवर्ग चक्र बनाकर देखना। जिस स्थान में अधिक शुभ चिह्न पड़े उस स्थान में चारवश जब-जब ग्रह जायगा तब-तब शुभ तथा जब-जब अधिक अशुभ चिह्न वाले राशि में जायगा तब-तब वह ग्रह अशुभ फलदायक होगा॥ ८॥

विशेष अर्थ– कोई शुभ स्थान में बिन्दु और शुभ स्थान में ही रेखा चिह्न करके अष्टवर्ग चक्र बनाते हैं, वहाँ अधिक बिन्दु से ही शुभ फल समझना चाहिए।

आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहों के गोचर फल-ज्ञानार्थ लग्नसहित-अष्टक में केवल ग्रहों के ही अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान को कहा है। महर्षि पराशर आदि ने लग्न का भी अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान कहे हैं। इसलिए आयु आदि विचार में उपयुक्त होने के कारण मैं ज्यौतिषप्रेमियों के उपकारार्थ यहाँ लग्न का अष्टकवर्ग लिख देता हूँ। बृहत् पराशर अष्टकवर्गाध्याय श्लोक ६६। ६८ देखिंये। उसी के अनुसार॥ ८॥

लग्नाष्टकवर्गशुभस्थान–

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
३	३	१	१	१	१	१	३
४	६	३	३	२	२	३	६
६	१०	६	४	४	३	४	१०
१०	११	१०	६	५	४	६	१२
११	१२	११	८	६	५	१०	०
१२	०	०	१०	७	८	११	०
०	०	०	११	९	९	०	०
०	०	०	०	१०	०	०	०
०	०	०	०	११	०	०	०

अथ कर्माजीवाध्यायः ॥१०॥

अथातः कर्माजीवाध्यायो व्याख्यायते। अनेन पुरुषेण कथं धनमर्जयितव्यमित्यध्यायेऽस्मिन्निरूप्यते। अत्र च प्रकारद्वयेन धनदाता ग्रहो भवति लग्नाच्चन्द्रभाच्च, यो दशमस्थो ग्रहः स धनदाता भवति। अथ लग्नचन्द्रयोर्दशमस्थाने शून्ये भवतस्तदा लग्नचन्द्रादित्यानां ये ये दशमराशयस्तेषां येऽधिपतयस्ते येषु नवांशकेषु पुरुषस्य जन्मकाले स्थितास्तेषां नवांशकानां ये ग्रहा अधिपतयस्ते ग्रहाः धनदातारो भवन्ति। किन्तु लग्नाच्चन्द्राच्च ये दशमा ग्रहाः ते अनेन प्रकारेण धनदातारो भवन्ति। किंतु भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथा अनेन प्रकारेणेति।

तत्रादावेव लग्नाच्चन्द्राच्च दशमस्थो ग्रहो येन प्रकारेण धनं ददाति तथा भेंद्वर्कास्पदपतिगांशनाथा येन प्रकारेण धनप्रदास्तत्प्रकारद्वयप्रदर्शनं प्रहर्षिण्याऽऽह–

अर्थाप्तिः पितृपितृपत्निशत्रुमित्र-
भ्रातृस्त्रीभृतकजनाद्दिवाकराद्यैः ।
होरेन्द्वोर्दशमगतैर्विकल्पनीया-
भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या ।।१।।

अर्थाप्तिरिति॥ होरेंद्वोः लग्नचन्द्रयोः दिवाकराद्यैः सूर्याद्यैः ग्रहैः दशमगतैः दशमस्थानाश्रितैः पित्रादिभ्योऽर्थाप्तिः धनप्राप्तिः विकल्पनीया विचिन्त्या। तत्र पुरुषस्य जन्मसमये लग्नाच्चन्द्राद्वा यद्यादित्यो दशमस्थो भवति तदा पितृतोऽर्थाप्तिर्भवति। एवं चन्द्रे लग्नाद्दशमगते पितृपत्नितः मातुः सकाशात्। भौमे लग्नचन्द्रयोर्दशमे सति शत्रुतः रिपुतः। बुधे मित्रात् सुहृदः। गुरौ भ्रातृतः सहजात्। शुक्रे स्त्रीः योषितः। सौरे भृतकजनात्कर्मकारात् सेवकादित्यर्थः। अथ कश्चिल्लग्नाद्दशमे भवत्यपरश्चन्द्रात्तदा स्वस्यां स्वस्यामन्तर्दशायां द्वावपि स्वाभिहितफलप्रदौ भवतः। न केवलम् यावच्चन्द्राल्लग्नाच्च बहवोऽपि यदि दशमस्था भवन्ति तदा सर्व एव स्वस्यां स्वस्यामन्तर्दशायां स्वस्वप्रकारेण धनप्रदा भवन्ति। अथ लग्नाच्चन्द्राद्वा न कश्चिद्दशमो भवति तदा कोऽर्थप्रदो भवति?अत उक्तम्। भेंद्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या। भंलग्नम्, इंदुश्चन्द्रः, अर्कः आदित्यः, भं चेंदुश्चार्कश्च भेंद्वर्काः तेभ्यः प्रत्येक स्यास्पदाख्यो यो राशिः दशमः इत्यर्थः। तस्य योऽधिपतिः ग्रहः सः यस्मिन्नवांशके गतः स्थितस्तस्य यो नाथः स्वामी तस्य या वक्ष्यमाणा वृत्तिः तया वृत्त्या तस्य धनप्रदो भवति एवं लग्नाच्चन्द्राच्च यदा दशमस्था ग्रहा भवन्ति तदा लग्नचन्द्रयोर्यो बलवांस्तस्य यो दशमः स एवार्थप्रदो भवति। भेंद्वर्काणां यो बली तस्यास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या एक एवार्थप्रदो भवतीति। तदयुक्तम्; यस्मादत्र बलग्रहणं नास्ति तस्मादेवं ज्ञायते सर्वेभ्य एव भवति। पुरुषस्य बहुप्रकारधनागमदर्शनादिति। तथा च भगवान्गार्गिः– 'उदयाच्छशिनो वापि ये ग्रहा दशमस्थिताः। ते सर्वेऽर्थप्रदा ज्ञेयाः स्वदशासु यथोदिताः।। लग्नार्करात्रिनाथेभ्यो दशमाधिपतिग्रहः। यस्मिन्नवांशे तत्कालं वर्तते तस्य यः पतिः।। तद्वृत्त्या प्रवदेद्वित्तं जातस्य बहवो यदा। भवन्ति वित्तदास्तेऽपि स्वदशासु विनिश्चितम्।।' इति।। १ ।।

भाषा— यदि लग्न या चन्द्रमा अथवा दोनों से दशम स्थान में जो ग्रह हो उनके अनुसार धन-लाभ समझना चाहिए। जैसे— दशम में सूर्य हो तो पिता से, चन्द्रमा हो तो माता से, मंगल हो तो शत्रु से, बुध हो तो मित्र से, गुरु हो तो भाई से, शुक्र हो तो स्त्री से और शनि दशम स्थान में हो तो नौकरों के द्वारा धन-लाभ कहना चाहिए। यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तो लग्न, चन्द्रमा और रवि— इन तीनों स्थान से दशम भाव के स्वामी जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह की वृत्ति (व्यापार) से धन-लाभ समझना चाहिए। जो आगे श्लोक में कहते हैं।१।

उदाहरण— जैसे बतलाये हुए उदाहरण में लग्न और रवि तथा चन्द्रमा एक ही स्थान में हैं, अतः तीनों से दशम स्थान (मकर) में कोई ग्रह नहीं है, अतः इन तीनों से दशम भाव (मकर) का स्वामी स्पष्ट शनि (०।२८।५।५५) ये धन के नवांश में हैं, अतः नवांशपति गुरु हुआ। इसलिए आगे कहे हुए– ('जीवांशे द्विजविबुधाकरादिधर्मैः इत्यादि) के अनुसार ब्राह्मण और देवों की कृपा, खनिज पदार्थ, सुवर्णादिद्रव्य द्वारा, आदि पद से अनेकों स्थल-जल सम्बन्धी व्यापार और धर्मानुष्ठान से धन का लाभ समझना चाहिए॥ १ ॥

'भेंद्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या' इति यदुक्तमधुना तां वृत्तिं प्रहर्षिणीद्वयेनाऽऽह–

अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजाद्यै-
श्चन्द्रांशे कृषिजलजाङ्गनाश्रयाच्च ।
धात्वग्निप्रहरणसाहसैः कुजांशे
सौम्यांशे लिपिगणितादिकाव्यशिल्पैः ॥ २ ॥

अर्कांश इति ॥ भेंद्वर्कास्पदपतिगांशनाथोऽर्कः यदा भवति तदा तृणैः सुगन्धैः, कनकेन सुवर्णेन च ऊर्णया आविकलोम्ना, भेषजेन औषधेन आदिशब्दाद्भिषक्क्रियया रोगिणां परिचर्यया च धनमाप्नोति। अथ चन्द्रांशो भवति तदा कृष्या कर्षणेन, जलजैः शंखशुक्ताप्रवालादिभिः, अङ्गनाभिः स्त्रीभिः। जलजानां क्रयविक्रयः। अङ्गनानां समाश्रयणैरेतैः धनमाप्नोति। अथ कुजांशो भौमनवांशो यदा भवति तदा धातुभिः मृत्तिकादिभिः पक्वाभिः सुवर्णरूप्यताम्रादीनि भवन्ति ताभिः प्राप्नोति। अथवा धातुभिः मनःशिलाहरितालहिंगुलकाञ्चनप्रभृतिभिः, अग्निना-ऽग्निक्रियया, प्रहरणैः खड्गचक्रकुन्तचापतोमराद्यैः, साहसैः असमीक्षित-कार्यकरणैरथवा स्ववशक्रियारम्भैः धनमाप्नोति। अथ सौम्यांशो बुधनवांशको यदा भवति तदा लिपिगणितादिकाव्यशिल्पैः धनमाप्नोति। लिप्यक्षरविन्यासेन गणितेन आदिग्रहणाद्व्याख्यानेन यन्त्रादिप्रयोगैः

काव्यक्रियया शिल्पैः चित्रपुस्तकपत्रच्छेदबाणमाल्यरचनागन्ध-युक्तिप्रभृतिभिः धनमाप्नोति ।। २ ।।

भाषा— पूर्वकथित लग्न चन्द्र वा सूर्य से दशम भाव का स्वामी यदि सूर्य के नवमांश में हो तो तृण (घास, सुगन्धि आदि) सोना, ऊन, ऊनी कपड़े, औषध आदि से धन-लाभ होता है। दशमेश यदि चन्द्र के नवांश में हो तो खेती, जलोत्पन्न वस्तु (शंख, मोती आदि) के व्यापार और स्त्रियों के आश्रय से धन-लाभ होता है। मंगल के नवांश में हो तो धातु (ताँबा, पीतल, सुवर्ण आदि अथवा हरिताल आदि) से अग्निकर्म, प्रहरण, (अस्त्र, बाण, खड्ग आदि के प्रहार) द्वारा और साहस (दुष्कर कार्य में प्रवृत्त होने) से धन का लाभ होता है। बुध के नवांश में हो तो लेख, गणना, कविता, चित्रकारी आदि कर्म से धन की प्राप्ति होती है।। २।।

अथ जीवांशे द्वितीयप्रहर्षिण्याऽऽह—

जीवांशे द्विजविबुधाकरादिधर्मैः
काव्यांशे मणिरजतादिगोमहिष्यैः (१)
सौरांशे श्रमवधभारनीचशिल्पैः
कर्मेशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धिः ।। ३ ।।

जीवांश इति।। जीवांशे द्विजविबुधाकरादिधर्मैरिति। अथ जीवांशको यदा भवति तदा द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः, विबुधेभ्यो देवेभ्यः पण्डितेभ्यो वा, आकरेभ्यः सुवर्णादीनां लवणादीनां अञ्जनादीनां गजादीनां च समुत्पत्तिस्थानेभ्यः। आदिग्रहणात्क्रियावादेन। धर्मैः यज्ञदानोपवासतीर्थगुरुसेवनादिभिः धनमाप्नोति। अथ शुक्रनवांशको यदा भवति तदा मणिभिः वज्रमरकतपद्मरागेन्द्रनीलप्रभृतिभिः, रजतेन रूप्येण आदिग्रहणात्सर्वैर्लोहैः गोभिः तथा महिषकर्मणि महिषेभ्यो वा साधुः महिष्यै श्रेष्ठमहिष्यैः धनमाप्नोति। अथ सौरांशको यदा भवति तदा श्रमेण अध्वगमनादिकेन बधेन च वध्य-घाततया अथवा स्वशरीरताडनाद्येन भारवाहनेन नीचशिल्पैः स्वकुलानुचितैः कर्मभिः धनमाप्नोति। एवं जातककालवशात्पुरुषस्य धनागमं ज्ञात्वा कालानुकालं कर्मेशचारवशात् कर्मसिद्धिमाह— कर्मेशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धिरिति। कर्मणि ईशः कर्मेशः लग्नाद्दशम-राशिः तदधिपः कर्मेशः स चारवशाद्यस्मिन्नवांशके अध्युषितो भवति

(१) 'ललायैः' इति पाठः साधुः।

व्यवस्थितो भवति तस्य यः स्वामी तस्य यानि कर्माणि अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजाद्यैरित्यादीनि तत्समानानां सिद्धिर्भवति। तानि प्रारब्धानि सिद्ध्यन्तीति। अत्र केचित्कर्मेशाध्युषितसमानकर्मसिद्धिरिति पठन्ति। अत्र च नवांशग्रहणं नास्ति प्रकृतत्वात्प्रागनुवृत्तः। नवांशको व्याख्यायते। तथा च भगवान्गार्गिः— 'लग्नकर्माधिपो यस्मिन्नवांशे वर्तते ग्रहः। चारक्रमेण तत्तुल्यां कर्मणां सिद्धिमादिशेत्॥' ज्ञातजातकस्येदं क्रियाश्रयं कर्म कर्मेशाध्युषितनवांशकपतिकर्मणां यथादर्शितानां प्रारब्धानां कालानुकालं सिद्धिर्वक्तव्या नान्येषामिति॥३॥

भाषा— यदि दशमेश गुरु के नवांश में हो तो ब्राह्मण, देवता वा पण्डितों के द्वारा तथा आकर (सुवर्ण, लवण, कोयला आदि खान की वस्तु), आदि शब्द से हाथी, घोड़े, यज्ञ, दानादि क्रिया से धन-लाभ होता है। शुक्र के नवांश में हो तो मणि (मरकत पद्मराग आदि रत्न), चाँदी आदि द्रव्य और गाय, भैंस से, शनि के नवांश में हो तो परिश्रम, हिंसाकर्म, भार ढोने, नीच कर्म, अपने कुल से निन्दित कर्म के द्वारा धन-लाभ होता है। ऊपर कथित तीनों (लग्न, चन्द्र, रवि) से दशमेश में कर्मेश के (लग्न से जो दशमेश हो उसके) आश्रित नवांशोक्त कर्म में विशेषकर सिद्धि होती है॥३॥

अथ धनागमज्ञानं प्रहर्षिण्याऽऽह—

मित्रारिस्वगृहगतैर्ग्रहैस्ततोऽर्थं तुङ्गस्थे
बलिनि च भास्करे स्ववीर्यात्।
आयस्थैरुदयधनाश्रितैश्च सौम्यैः
सञ्चिन्त्यं बलसहितैरनेकधा स्वम्॥४॥

मित्रारिस्वगृहगतैरिति॥ चन्द्रलग्नयोः ये दशमगा ग्रहस्तदभावे च ये भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथाः ते च यदि जन्मकाले मित्रगृहस्थिता भवन्ति तदा स्वान्तर्दशाकाले मित्रगृहे स्थिता भवन्ति ततस्तस्मादेव मित्रात् मित्रतः फलप्रदा भवन्ति। अथारिगृहस्थाः शत्रुगृहगा भवन्ति तदारित एव। अथ स्वगृहस्थास्तदा स्वगृहादेव धनप्रदा भवन्ति। तुङ्गस्थे बलिनीति। यस्य पूर्वविधिना भास्करः सूर्यो धनप्रदो ज्ञातः तस्मिंस्तुङ्गस्थे उच्चगे मेषप्राप्ते तत्कालीनैर्बलैः कालबलाद्यैर्युक्तैस्तदा स पुरुषः स्ववीर्याद्धनमर्जयति। स्वविक्रमार्जितधनो भवतीत्यर्थः आयस्थैरिति। सौम्यः शुभग्रहः जन्मन्यायसंस्थैरेकादशस्थानगतैः उदयधनाश्रितैश्च लग्नगैः द्वितीयस्थानगतैर्वा तैश्च बलसहितैः वीर्यवद्भिः

जातः अनेकधा बहुभिः प्रकारैः स्वं धनं प्राप्नोतीति। सञ्चिन्त्यं निश्चयः कार्यः येन येन प्रकारेण धनार्जनमाकांक्षते तेन तेन प्रकारेणा-यत्नादेवाप्नोतीत्यर्थः। तथा च भगवान्गार्गिः– "धनदा– जन्मसमये मित्रारिस्वगृहोपगाः। यस्य तस्य धनं दद्युर्मित्रारिस्वगृहोद्भवम्।। धनदो भास्करो भस्य तुङ्गे बलसमन्वितः। भवेज्जन्मनि यस्य स्याद्वि-त्तमात्मोद्यमार्जितम्।। लाभार्थलग्नगैः सौम्यैर्येन येनैव कर्मणा। धनार्जनं प्रार्थयते तेनायत्नात्समश्नुते।।'इति।। ४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
कर्माजीवाध्यायो दशमः।। १०।।

भाषा– पूर्वोक्त लग्न, चन्द्र और सूर्य से दशम भाव के स्वामी यदि मित्र के घर में हो तो मित्र के द्वारा, शत्रु के घर में हो तो शत्रु के द्वारा, अपने घर में हो तो अपने ही द्वारा धन का लाभ होता है। यदि बलवान् सूर्य अपने उच्च (मेष) में हो तो स्वबाहु-बल से धन-लाभ होता है तथा बलवान् शुभग्रह यदि एकादश, लग्न या धनभाव में हो तो अनेकों प्रकार से उसे धन-लाभ होता है। यथा भगवान् गार्गि का वचन संस्कृत टीका में देखिये।। ४।।

अथ राजयोगाध्यायः।।११।।

अथातो राजयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव यवनानां
जीवशर्मणश्च मतं वैतालीयेनाऽऽह–

प्राहुर्यवनाः स्वतुङ्गगैः क्रूरैः क्रूरमतिर्महीपतिः।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते।।१।।

प्राहुरिति।। "त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः।" इति सर्वजातकेषु प्रसिद्धं तत्रैतावद्यवनानां मतभेदः। यस्य जन्मसमये क्रूरैः पापग्रहैः स्वतुङ्गगैः स्वोच्चस्थैर्जातो महीपती राजा भवति। किंतु क्रूरमतिः पापबुद्धिरिति प्राहुः कथयन्ति। अर्थादेवं सौम्यैरुच्चगतै-र्मिश्रस्वभावो राजा इति। एष एवार्थो मणित्थेनाभिहितः। तथा च तद्वाक्यम्– "पापैः पापमतिः स्वोच्चगतैर्धर्मवांस्तथा सौम्यैः। व्यामिश्रै-र्मिश्रमतिः पृथ्वीशो जायते मनुजः।।' क्रूरैस्त्विवति। जीवशर्मणः पक्षे तन्मते क्रूरैस्तूच्चगतैः क्षित्यधिपो न राजा प्रजायते। किंतु राजा तुल्यो धनवान् भवति। तथा च तद्वाक्यम्– "पापैरुच्चगतैर्जाता न भवन्ति नृपा नराः। किंतु वित्तान्वितास्ते स्युः क्रोधिनः कलहप्रियाः।।" इति।

वराहमिहिरस्य यवनेश्वरमतमभिप्रेतम्। सामान्येनैव स्वल्पजातकेऽभिहितम्। "त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः। पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत्त्रिकोणगतैः॥" इति १॥

भाषा– यदि सम पापग्रह उच्च स्थान में हो तो क्रूर बुद्धिवाला राजा होता है, ऐसा यवनाचार्यों का कहना है। किन्तु पापग्रहों के उच्च में होने पर भी राजा नहीं होता है, ऐसा जीवशर्मा का कथन है॥१॥

विशेष अर्थ - यवनों का मत है कि पापग्रह भी यदि ३ से अधिक स्वोच्च में हो तो राजा होता है। परञ्च क्रूर बुद्धिवाला अर्थात् शुभग्रह अधिक स्वोच्च में हो तो सुबुद्धि राजा और मिश्रग्रह २ से अधिक उच्चगत हो तो मिश्र बुद्धिवाला राजा होता है। किन्तु जीवशर्मा का मत है कि पापग्रह के उच्च में होने से केवल धनवान् होता है, राजा नहीं होता॥१॥

अथ द्वात्रिंशद्राजयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह–

(imp) **वक्रार्कजार्कगुरुभिःसकलैस्त्रिभिश्च**
स्वोच्चेषु षोडश नृपाःकथितैकलग्ने।
द्व्येकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने
स्वक्षेत्रे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः॥२॥

वक्रार्कजेति॥ वक्रोंऽगारकः, अर्कजः सौरः, अर्कः सूर्यः, गुरुर्जीवः एतैः वक्रार्कजार्कगुरुभिः भौमशनिसूर्यजीवैः सकलैः सर्वैश्चतुर्भिरपि स्वोच्चेषु स्थितैः कथितैकलग्ने एषां कथितग्रहाणां चतुर्णां मध्यादेकैकस्मिंल्लग्नगते चत्वारा राजयोगा भवन्ति। तथा त्रिभिश्च एषामेव मध्यात् त्रिभिः स्वोच्चगतैः तेषु मध्यादेकैकस्मिन् लग्नगे कथितैकलग्ने द्वादश राजयोगा भवन्ति। एवं षोडश। द्व्येकाश्रितेष्विति। एतेषां मध्याद्द्वाभ्यामुच्चगताभ्यामनयोर्मध्यादेकस्मिंल्लग्नगते शशिनि चन्द्रे स्वक्षेत्रगे कर्कटस्थे तेषामेव वक्रार्कजार्कगुरूणां मध्याद् ग्रहद्वये स्वोच्चाश्रिते तदेकतमे विलग्नगे द्वादश राजयोगा भवन्ति। एकाश्रितेषु च तेषामेव मध्यादेकस्मिन्नुच्चाश्रिते तस्मिन्नेव विलग्नगे स्वक्षेत्रगते चन्द्रमसि चत्वारो राजयोगा भवन्ति। एवं षोडश, श्लोकपूर्वोक्तैः सह द्वात्रिंशत्। तद्यथा–

मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, तुले सौरः, मकरे कुजः, शेषा यथेष्टम्। ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां मेषलग्नगते एको योगः। कर्कटे द्वितीयः, तुले तृतीयः, मकरे चतुर्थः। एवं वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैः स्वोच्चेषु तदेकतमे लग्ने चत्वारो राजयोगाः।

अथ त्रिभिः तद्यथा-मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, तुले सौरः, शेषा यथेष्टम्। ईदृश्यामपि ग्रहसंस्थायां मेषलग्ने एको योगः। कर्कटे द्वितीयः, तुले तृतीयः पूर्वैः सह सप्त। अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम्। ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां मेषलग्ने एको योगः, कर्कटे द्वितीयः, मकरे तृतीयः पूर्वैः सह दश। अथ मेषेऽर्कः, तुले सौरः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम्। ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां मेषलने एको योगः, तुले द्वितीयः, मकरे तृतीयः– एवं त्रयोदश। अथ कर्कटे जीवः, तुले सौरः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम्। ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां कर्कटे एकः, तुले द्वितीयः, मकरे तृतीयः एवं षोडश राजयोगाः। चतुर्भिः त्रिभिः स्वोच्चगतैः तदेकतमे विलग्ने इति गतम्।

द्व्येकाश्रितेष्वित्यादियोगेषु यावत्कर्कटे चन्द्रमा न भवति तावद्योगा एव न भवन्ति। तद्यथा– द्व्याश्रितेषु स्वक्षेत्रगते च चन्द्रे द्वादश राजयोगा व्याख्यायन्ते। तद्यको योगः। कर्कटे द्वितीयः। अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे चन्द्रः, तुले सौरः, शेषा यथेष्टम्। तदा मेषे तृतीयः। तुले चतुर्थः। अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे चन्द्रः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम्। तदा मेषे पञ्चमः। मकरे षष्ठः। अथ कर्कटे चन्द्रजीवौ, तुले सौरः, शेषा यथेष्टम्। तदा कर्कटे सप्तमः। तुलेऽष्टमः। अथ कर्कटस्थौ चन्द्र-जीवौ मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम्। तदा कर्कटे नवमः। मकरे दशमः। अथ तुले सौरः, मकरे भौमः, कर्कटे चन्द्रः, शेषा यथेष्टम्। तदा तुले एकादश। मकरे द्वादश। द्व्याश्रितेष्विति गतम्। अथैकाश्रितेषु कर्कट-स्थे चन्द्रे मेषस्थेऽर्के मेषलग्ने एकः। कर्कलग्ने तद्गतयोश्चन्द्रजीवयोः द्वितीयः कर्कटस्थे चन्द्रे तुलास्थे सौरे तस्मिन्नेव लग्ने तृतीयः। कर्कटस्थे चंद्रे मकरस्थे भौमे ततस्तस्मिन्नेव लग्ने चतुर्थः। एवं पूर्वैर्द्वादशभिः सह षोडश। श्लोकपूर्वोक्तैः षोडशभिः सह द्वात्रिंशद्राजयोगा व्याख्याताः।२।

भाषा– मंगल, शनि, रवि और गुरु-ये चारों या इनमें ३ अपने-अपने उच्च में हों तथा इन्हीं में एक लग्न में हो तो १६ प्रकार के राजयोग होते हैं। तथा इनमें दो या १ उच्च में हो और १ लग्नगत हो एवं चन्द्रमा अपनी राशि (कर्क) में हो तो १६ प्रकार के राजयोग होते हैं।।२।।

अथ चतुश्चत्वारिंशद्राजयोगाननुष्टुभाह–

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वाचन्द्रवर्जितैः।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाशिंसतिः स्मृताः ।। ३ ।।

वर्गोत्तमगते लग्न इति।। लग्ने जन्मकालिके लग्ने वर्गोत्तमगते स्वनवांशकस्थ इत्यर्थः। तस्मिंश्चंद्रवर्जितैरन्यग्रहैश्चतुराद्यैः दृष्टे चतुर्भिः पंचभिः षड्भिर्वावलोकिते द्वाविंशतिराजयोगाः स्मृताः उक्ताः। अत्र लग्ने चंद्रेण दृश्यमाने न योगभंगः किंतु पश्यतां मध्ये न गण्यते। स तु पश्यतु मा वा पश्यतु अन्यैश्चतुरादिभिर्ग्रहैर्दृष्टे राजयोगा भवन्ति। एवं वर्गोत्तमगते लग्ने द्वाविंशतियोगाः। एवं चंद्रे वर्गोत्तमांशस्थे चतुराद्यैर्ग्रहैः दृष्टे द्वाविंशतियोगा भवंति। एवं चतुश्चत्वारिंशत्। अत्र लग्ने चंद्रे वा चतुर्भिर्दृश्यमाने पंचदश विकल्पा भवंति। पंचभिः दृश्यमाने षट्, षड्भिरेकः; एवं द्वाविंशतिः। तद्यथा– लग्ने चंद्रे वा रविभौमबुधगुरुभिः दृश्यमाने एको योगः। रविभौमबुधसितैः द्वितीयः। रविभौमबुधसौरैः तृतीयः। रविभौमजीवसितैश्चतुर्थः। रविभौमजीवसौरैः पंचमः। रविबुधशुक्रसौरैः षष्ठः। रविबुधजीव-शुक्रैः सप्तमः। रविबुधजीवसौरैरष्टमः। रविभौमशुक्रसौरैर्दशमः। भौमबुधजीवशुक्रैरेकादशः। भौम-बुधजीवसौरैर्द्वादशः। भौमबुधशुक्र-सौरैस्त्रयोदशः भौमजीवशुक्रसौरैः चतुर्दशः। एवं चतुर्भिरपि विकल्पैः पंचदश। अथ पंच विकल्पाः। रवि-भौमबुधजीवशुक्रैरेकः। रविभौम-बुधजीवसौरैर्द्वितीयः। रविभौमबुध-शुक्रसौरैश्चतुर्थः। रविबुधजीवशुक्र-सौरैः पंचमः। भौमबुधजीवशुक्रसौरैः षष्ठः। एवं पंचविकल्पैः षट्पूर्वोक्तैः पंचदशभिः सहैकविंशतिः, रविभौम-बुधजीवशुक्रसौरैः षड्भिरेकः एवं द्वा-विंशतिः। लग्नाच्चंद्राच्चैवमेवं चतुश्च-त्वारिंशत्। परमार्थेनैतद्योगद्वयमेव। तद्यथा। वर्गोत्तमगते। चंद्रे चतुराद्यैर्दृष्टे एकः। लग्ने द्वितीयः। संख्याप्रदर्शनं गणितप्रदर्शनार्थम्। अत्रैव चंद्रमसो यदि राशौ वर्गोत्तमावस्थितिं निरूप्य

उदाहरण चक्र में देखिये–

	स्वोच्चस्थ लग्न में	स्वोच्च में
१	मंगल	शनि, रवि, गुरु
२	शनि	मंगल, रवि, गुरु
३	रवि	शनि, मंगल, गुरु
४	गुरु	मंगल, शनि, रवि
५	मंगल	शनि, रवि
६	मंगल	शनि, बुध
७	मंगल	रवि, गुरु
८	शनि	मंगल, रवि
९	शनि	मंगल, गुरु
१०	शनि	रवि, गुरु
११	रवि	मंगल, शनि
१२	रवि	मंगल, गुरु
१३	रवि	शनि, गुरु
१४	गुरु	रवि, शनि
१५	गुरु	रवि, मंगल
१६	गुरु	मंगल, शनि

गणितं क्रियते तदैतेषामेव योगानां चतुःषष्ट्यधिकं शतद्वयं सम्भवति। एवं प्रत्येकमस्मिन् लग्ने वर्गोत्तमस्थे चतुःषष्ट्यधिकमेव योगशतद्वयम्। एवं चंद्रलग्नयोर्योगानामेकीकृतानां पंचशतान्यष्टाविंशत्यधिकानि भवंति। तथा च मांडव्यः— 'विलग्नभवनं गते बलयुते च वर्गोत्तमे चतुःप्रभृतिभि-र्ग्रहैः शशिनि वा समालोकिते। स संभवति पार्थिवः खलु कृपाणपाणी रणे कदाचिदपि वीक्षते रिपुजनो न यस्याननम्'॥ ३॥

भाषा— यदि लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो एवं उस पर चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ४ या ५ या ६ ग्रहों की दृष्टि हो तो दोनों स्थिति में २२, २२ राजयोग के भेद होते हैं॥ ३॥

चक्र देखिये। ४ ग्रहों की दृष्टि से १५ भेद, ५ ग्रहों की दृष्टि से ६ भेद और ६ ओं ग्रह की दृष्टि से १ ही भेद, इस प्रकार २२ भेद हुए। एवं चन्द्रमा पर दृष्टि से २२, दोनों मिलकर ४४ राजयोग होते हैं॥ ३॥

कर्कस्थ चन्द्र में १६ योग यथा—वर्गोत्तमगत लग्न पर ग्रहदृष्टि से २२ भेद—

१	मंगल	रवि
२	मंगल	शनि
३	मंगल	गुरु
४	शनि	रवि
५	शनि	मंगल
६	शनि	गुरु
७	रवि	मंगल
८	रवि	शनि
९	रवि	गुरु
१०	गुरु	रवि
११	गुरु	मंगल
१२	गुरु	शनि
१३	मंगल	X
१४	शनि	X
१५	रवि	X
१६	गुरु	X

१	रवि मंगल बुध गुरु
२	रवि मंगल बुध शुक्र
३	रवि मंगल बुध शनि
४	रवि मंगल गुरु शुक्र
५	रवि मंगल गुरु शनि
६	रवि मंगल शुक्र शनि
७	रवि मंगल गुरु शुक्र
८	रवि मंगल गुरु शनि
९	रवि बुध गुरु शुक्र
१०	रवि बुध गुरु शनि
११	रवि बुध शुक्र शनि
१२	मंगल बुध गुरु शुक्र
१३	मंगल बुध गुरु शनि
१४	मंगल बुध शुक्र शनि
१५	बुध गुरु शुक्र शनि
१६	रवि मंगल बुध गुरु शुक्र
१७	रवि मंगल बुध गुरु शनि
१८	रवि मंगल बुध गुरु शनि
१९	रवि मंगल गुरु शुक्र शनि
२०	रवि बुध गुरु शुक्र शनि
२१	मंगल बुध गुरु शुक्र शनि
२२	रवि मंगल बुध गुरु शुक्र शनि

अथ शिखरिण्या पंचयोगानाह–

यमे कुम्भेर्केऽजे गवि शशिनि तैरेव तनुगै-
र्नृयुक्सिंहालिस्थैः शशिजगुरुवक्रैर्नृपतयः ।
यमेन्दू तुङ्गेऽङ्गे सवितृशशिजौ षष्ठभवने
तुलाजेन्दुक्षेत्रैः ससितकुजजीवैश्च नरपौ ।।४।।

यम इति।। यमे सौरे कुंभस्थे अर्के सूर्येऽजे मेषस्थे सति शशिनि चंद्रे गवि वृषस्थिते तैरेव तनुगैः तेषां ग्रहाणामेकतमे तनुगे लग्नस्थे न केवलं यावच्छशिजगुरुवक्रैः बुधजीवभौमैः नृयुक्सिंहालिस्थैः जाता नृपतयो राजनो भवन्ति। चकारोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः तत्रैतज्ञातम्। सौरः कुम्भे रविर्मेषे चंद्रो वृषे बुधो मिथुने जीवः सिंहे भौमो वृश्चिके ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां कुंभलग्ने एको योगः मेषे द्वितीयः वृषे तृतीयः। यमेंदू इति। सौरचन्द्रौ तुंगे उच्चे न केवलं यावदंगे तनौ लग्ने इत्यर्थः। सवितृशशिजौ सूर्यबुधौ षष्ठभवने कन्यायां तुलाजेंदुक्षेत्रैः तुला प्रसिद्धः अजो मेषः इंदुक्षेत्रं कर्कटः एतैः यथासंख्यं ससितकुज-जीवैः शुक्रभौमगुरुयुक्तैः नरपौ द्वौ राजयोगाविति तत्रैतज्ञातम्। तुले सौरः वृषे चंद्रः कन्यायामर्कबुधौ तुले शुक्रः मेषे भौमः कर्कटे जीवः ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां तुलालग्ने एको योगः। वृषे द्वितीयः। पूर्वैस्त्रिभिः सह पंच। अत्र षष्ठभवने षष्ठराशौ लग्नात्केचिदिच्छंति। एतदयुक्तम्। यस्मात्तलस्थे शुक्रे मीनस्थस्यार्कस्यासंभवः। तथा च बादरायणः– 'तुललग्ने सितसौरौ मेषे भौमो गुरुः कुलीरगतः। कन्यायां रविशशि-जौ जातो नृपतिर्वृषे सचंद्रे वा।।'।।४।।

भाषा- कुम्भ में शनि, मेष में रवि, वृष में चन्द्रमा हो तो इन तीन में से कोई एक लग्न में हो तथा मिथुन में बुध, गुरु सिंह में, मङ्गल वृश्चिक में हो तो इन तीनों लग्न से ३ प्रकार के राजयोग होते हैं। एवं शनि और चन्द्रमा अपने-अपने उच्च में और इन्हीं दोनों में से कोई एक लग्न में हो और षष्ठ भाव में रवि, बुध हो, शुक्र तुला में, मंगल मेष और गुरु कर्क में हो तो इन दोनों लग्न में २ प्रकार के राजयोग होते हैं।।४।।

अथान्यद्राजयोगत्रयं शिखरिण्याऽऽह–

कुजे तुङ्गेऽर्केन्द्वोर्द्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः
पतिर्भूमेश्चान्यः क्षितिसुतविलग्ने सशशिनि ।
सचन्द्रे सौरेऽस्ते सुरपतिगुरौ चापधरगे
स्वतुङ्गस्थे भानावुदयमुपयाते क्षितिपतिः ।।५।।

कुजे तुंगेऽर्केन्द्वोरिति।। कुजे भौमे तुङ्गस्थे उच्चस्थे मकरगते इत्यर्थः।। अर्केंद्वोः सूर्यशशिनोः धनुषि चापे स्थितयोः समलग्ने यत्र तत्र राशौ लग्ने शनैश्चरे लग्नगते मकरस्थ इत्यर्थः। एवंविधे योगे जातः कुपतिः भूमीशः नृपती राजा भवति। यमलग्ने इति। मकर-कुंभयोः अन्यतमे लग्ने इति व्याख्यातम्। यमस्य लग्ने यमलग्न इति। कैश्चित् यत्र तत्र राशावस्थिते सौरे लग्नगे इति व्याख्यातम्। तच्चायुक्तम्। यस्माद्बादरायणः– 'लग्ने सौरस्तुगे भौमश्चंद्रादित्यौ चापं प्राप्तौ' इति। अस्माकं प्रथमा व्याख्या साध्वी प्रतिभाति। यस्मान्मांडव्यः– 'आदित्यश्च निशाकरश्च भवतो वागीशराशौ यदा सार्द्धं भास्करिणा स्ववीर्यसहितः प्राप्तो मृगे मंगलः। प्राप्नोति प्रभवं तदा सुकृती क्ष्मापालचूडामणिस्त्रस्यंति प्रतिपन्थिनो रणमुखे यस्मात्कृतांतादिव।' पतिर्भूमेश्चान्य इति। अस्मिन्नेव योगे क्षितिसुतोंऽगारकः तस्मिन्स्वोच्च-स्थे शशिना चन्द्रमसा युक्तेऽर्के धनुर्धरस्थे राजयोगः। तत्रैतज्ञातम्। मकरलग्ने चन्द्रांगारकयुते धनुर्धरगतेऽर्केऽन्यो द्वितीयो भूमेः पतिर्भवति, राजा इत्यर्थः। अत्र च बादरायणः– 'भानुश्चापे सेंदुर्भौमस्तुंगप्राप्तो लग्ने वा स्यात्।' सचन्द्रे सौरेऽस्ते इति। सौरे शनैश्चरे सचंद्रे शशियुक्ते तथाभूतेऽस्ते सप्तमस्थानगते तथा सुरपतिगुरौ जीवे चापधरगे धनुर्धरस्थे भानौ आदित्ये स्वतुंगस्थे स्वोच्चे मेषप्राप्ते उदयं लग्नमुपयाते प्राप्ते जातः क्षितिपती राजा भवति तत्रैतज्ज्ञातम्। मेषे लग्ने तत्रैवार्कः धन्विनि जीवः तुलागतौ शशिसौरौ एवंविधे योगे जातो राजा भवत्येवं राजयोगास्त्रयः।५।

भाषा– यदि शनैश्चर के साथ लग्न में अपने उच्च (मकर) का मंगल हो और रवि-गुरु दोनों धनु में हो तो ऐसे योग में जातक राजा होता है। तथा मकर लग्न में, चन्द्रमा के साथ मंगल हो तब भी राजा होता है। और अपने उच्च (मेष) गत-रवि लग्न में हो तो चन्द्रमा के साथ शनि सप्तम भाव में हो तथा गुरु धनु में हो तब भी जातक राजा होता है।।५।।

अथ शिखरिण्या राजयोगद्वयमाह–

वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः
सुहृज्जायाखस्थैर्भवति नियमान्मानवपतिः।
मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्मव्ययगतैः
शशाङ्काद्यैः ख्यातः पृथुगुणयशाः पुङ्गलपतिः।।६।।

वृषे सेंदौ लग्न इति।। वृषे गवि सेंदौ चंद्रयुक्ते लग्ने स्थिते सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः सूर्यजीवसौरैः यथासंख्यं सुहृज्ज्ञायाखस्थैः चतुर्थसप्तमदशमस्थितैः नियमान्निश्चयान्मानवपतिः राजा भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। वृषो लग्ननान्त्रैव चन्द्रः। सिंहेऽर्को वृश्चिके जीवः कुंभे सौरः एवंविधे योगे जातोऽवश्यं राजा भवति। मृगे मंद इति। मृगे मकरे लग्ने तत्रस्थे मन्दे सौरे। सहजरिपुधर्मव्ययगतैः तृतीय-षष्ठनवमद्वादशस्थैः शशांकाद्यैः चंद्रांगारकबुधजीवैः एवंविधे योगे जातः ख्यातः सर्वत्र विदितः। पृथुगुणयशा गुणाः शौर्यादयः विस्तीर्ण-गुणकीर्तिः पुंगलपतिः मनुष्यनाथो भवति। ननु शशांकाद्यैरित्युक्तं शुक्रः क्व गच्छतु। उच्यते। यथासंख्यात्पंचमस्थानस्थाविद्यमानत्वात्। शुक्रस्यादित्यपंचमत्वादनवकाशः। तत्रैतज्ज्ञातम्। मकरो लग्ने तत्रैव सौरः मीने चन्द्रः मिथुने भौमः कन्यायां बुधः धन्विनि जीवः शुक्रार्कौ यत्रतत्रस्थौ एवंविधे योगे जातो राजा भवति। पृथुगुणयशाः। एवमत्र राजयोगौ द्वौ। तथा च मांडव्यः– 'मृगे लग्ने सौरस्तिमियुगगतः शीत-किरणः कुजो युग्मे नार्यां शशधरसुतश्चापधरगः। गुरुर्दैत्येज्यार्कावि-भिमतगतौ चारवशतः प्रसूतौ यस्यासौ भवति नरपः शक्रसदृशः'।।६।।

भाषा– वृष लग्न में चन्द्रमा हो, चतुर्थ भाव (सिंह) में रवि, सप्तम स्थान में गुरु, दशम स्थान (कुम्भ) में शनि हो तो वह जातक निश्चय ही राजा होता है तथा मकर लग्न में शनि, तृतीय स्थान (मीन) में चन्द्रमा, षष्ठम स्थान में मङ्गल, नवम में बुध, द्वादश में गुरु हो, रवि और शुक्र जिस किसी स्थान में हो, तो ऐसे योग में भी जातक अत्यन्त गुणवान् और यशस्वी होता है।।६।।

अथ शिखरिण्या राजयोगत्रयमाह–

हये सेन्दौ जीवे मृगमुखगते भूमितनये
स्वतुंगस्थौ लग्ने भृगुजशशिजावत्र नृपती।
सुतस्थौ वक्रार्की गुरुशशिसिताश्चापि हिबुके
बुधे कन्यालग्ने भवति हि नृपोऽन्योऽपि गुणवान्।।७।।

हये सेंदाविति।। हये धनुषि जीवे गुरौ सेंदौ सचन्द्रेस्थिते भूमि-तनयेंऽगारके मृगमुखगते मकरस्थे 'मृगार्द्धपूर्वो मकरो मृगार्द्धः' इति वचनात्। भृगुजशशिजौ शुक्रबुधौ स्वतुंगस्थौ स्वोच्चप्राप्तौ यदि लग्ने भवतस्तदात्रास्मिन्योगद्वये जातौ राजानौ भवतः। राजयोगद्वयमेतत्।

तत्रैतज्ज्ञातम्। बृहस्पतौ सचन्द्रे धन्विगते मकरगते भौमे एवंविधायां ग्रहसंस्थायां मीनलग्ने सशुक्रे एको योगः। कन्यालग्ने सबुधे द्वितीयो योगः। सुतस्थाविति। वक्रार्की भौमसौरौ सुतस्थौ पंचमस्थानगतौ तथा गुरुशशिसिताः जीवचन्द्रशुक्रा हिबुके चतुर्थे स्थाने बुधे कन्यागते लग्ने जातोऽन्यो परोऽपि नृपो राजा गुणवान्भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। कन्या लग्नं तत्रैव बुधः मकरस्थौ शनिभौमौ धनुर्धरस्था जीवचन्द्रशुक्राः यदा भवन्ति तदा जातो राजा गुणवांश्च भवति। एवं राजयोगास्त्रयः।७।

भाषा—यदि चन्द्रमा और गुरु धनु-लग्न में हो, मकर में यदि मंगल हो और शुक्र या बुध अपने-अपने उच्च (मीन और कन्या) में होकर लग्न में हो तो इन दोनों योग में जातक राजा होता है। तथा कन्या लग्न में बुध हो, पञ्चम भाव (मकर) में मंगल और शनि हो, चतुर्थभाव (धनु) में गुरु, शुक्र और चन्द्र हो तो इस योग में गुणवान् राजा होता है।।७।।

अथ शिखरिण्या राजयोगत्रयमाह—

झषें सेन्दौ लग्ने घटमृगमृगेन्द्रेषु सहितै-
र्यमारार्कैर्योऽभूत्स खलु मनुजः शास्ति वसुधाम्।
अजे सारे मूर्तौ शशिगृहगते चामरगुरौ
सुरेज्ये वा लग्ने धरणिपतिरन्योऽपि गुणवान्॥८॥

झषे सेंदाविति।। झषे मीने सेंदौ सचन्द्रे लग्ने मीनलग्ने सचन्द्रे घटमृगमृगेन्द्रेषु सहितैर्यमारार्कैः घटः कुंभः मृगो मकरः मृगेन्द्रः सिंहः तेषु यथासंख्यं यमारार्कैः स्थितैः। तत्रैतज्ज्ञातम्। मीनो लग्नन्तत्रैव चन्द्रः स्थितः कुम्भे सौरः मकरे भौमः सिंहेऽर्कः एवंविधे योगे जातः यः उत्पन्नः स मनुजो मनुष्यः वसुधां शास्ति भूमिं परिपालयति, राजा भवतीत्यर्थः। खलु शब्दो वाक्यालंकारः। अजे सार इति। अजे मेषे सारे सभौमे मूर्तौ लग्नस्थिते तथा चामरगुरौ जीवे शशिगृहगते कर्कटस्थे जातो नृपो राजा गुणवान्भवति। अथवा सुरज्ये बृहस्पतौ मेषस्थे जातोऽन्यः परो राजा गुणवांश्च भवति। एवमत्र राजयोगास्त्रयः।।८।।

भाषा— चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, कुम्भ में शनि, मकर में मंगल, सिंह में सूर्य हो तो ऐसे योग में जो जन्म लेता है वह निश्चित रूप से पृथ्वी का पालन करता है। तथा मेष का मंगल लग्न में हो और कर्क में गुरु हो, अथवा कर्क का गुरु ही लग्न में और मेष में मंगल हो तो इन दोनों लग्नों में उत्पन्न मनुष्य गुणवान् राजा होता है।।८।।

अथ राजयोगं विद्युन्मालयाऽऽह—

कर्किणि लग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञैरायप्राप्तैः ।
मेषगतेऽर्के जातं विन्द्याद्विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथम् ।। ९ ।।

कर्किणीति ।। कर्किणि लग्ने कर्कटके लग्ने तत्स्थे तत्रैव व्यवस्थिते जीवे गुरौ चन्द्रसितज्ञैः शशिशुक्रबुधैः आयप्राप्तैरेकादशस्थानस्थैः मेषगतेऽर्के आदित्ये मेषस्थे जातं संभूतं पृथ्वीनाथं भूमिपतिं विक्रमयुक्तं प्रतापसहितं विन्द्याज्जानीयात् ।। ९ ।।

भाषा— यदि कर्क लग्न में गुरु हो, तथा चन्द्रमा, शुक्र, बुध ये— एकादश स्थान (वृष) में हों और मेष में रवि हो तो बड़ा ही प्रतापी राजा समझना चाहिए।। ९ ।।

अथ द्रुतविलंबितेन राजयोगमाह—

मृगमुखेऽर्कतनयस्तनुसंस्थः
क्रियकुलीरहरयोऽधिपयुक्ताः ।
मिथुनतौलिसहितौ बुधशुक्रौ
यदि तदा पृथुयशाः पृथिवीशः ।।१०।।

मृगमुखेति ।। अर्कतनयः सौरः मृगमुखे मकरगतः स च तनुसंस्थःलग्नस्थो प्राप्तः तथा क्रियकुलीरहरयः मेषकर्किसिंहाः अधिपैः स्वनाथैः युक्ताः सहिताः तथा मेषे भौमः, कर्कटे चन्द्रः, सिंहे सूर्य इत्यर्थः। तथा बुधशुक्रौ ज्ञसितौ यथासंख्यं मिथुनतौलिसहितौ। तथा मिथुने बुधः तुले शुक्रः एवंविधो यदि योगो भवति तदा जातः पृथुयशाः विस्तीर्णकीर्तिः पृथिवीशो राजा भवति। तत्रैतज्ञातम्। मकरो लग्नन्तत्रैव सौरः मेषे भौमः कर्कटे चन्द्रः सिंहेऽर्कः मिथुने बुधः तुले शुक्रः एवंविधायां ग्रहसंस्थायां यत्र तत्रस्ते जीवे यदि जातो भवति तदा पृथिवीशः पृथुयशा भवति ।। १० ।।

भाषा— यदि मकर स्थित शनि लग्न में हो, मेष, कर्क, सिंह ये अपने-अपने स्वामी से संयुक्त हों, मिथुन में बुध, तुला में शुक्र हो तो अतियशस्वी राजा होता है।।१०।।

अथ राजयोगमनुष्टुभाह—

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते ।
सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मंदारयोः सुते ।।११।।

स्वोच्चेति ।। बुधे स्वोच्चसंस्थे कन्यागते लग्नगे भृगौ शुक्रे मेषूरणाश्रिते दशमस्थानस्थिते निशानाथे चन्द्रे सजीवे बृहस्पतिसंयुक्तेऽस्ते

सप्तमस्थानगते मंदारयोः शनिभौमयोः सुते पंचमे स्थितयोः जातो राजा भवति। तत्रैतज्ञातम्। कन्या लग्ने स बुधे मिथुनगते शुक्रे गुरौ सचन्द्रे मीन-स्थे मकरस्थयोःशनिभौमयोः जातो राजा भवति। एते राजयोगाः प्रोक्ताः।११

भाषा– कन्या के १५वें अंश पर बुध लग्न में हो, उससे दशवें स्थान में शुक्र, सातवें में चन्द्रमा और गुरु, पञ्चम भाव में शनि, मंगल हो तो जातक राजा होता है।।११।।

एष्वराजवंशतोऽपि जातो राजा भवति वक्ष्यमाणेषु तु राजवंशज एव राजा भवति। तत्र मालिन्याऽऽह–

अपि खलकुलजाता मानवा राज्यभाजः
किमुत ! नृपकुलोत्थाः प्रोक्तभूपालयोगैः ।
नृपतिकुलसमुत्थाः पार्थिवा वक्ष्यमाणै-
र्भवति नृपतितुल्यस्तेष्वभूपालपुत्रः ।।१२।।

अपीति।। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। प्रोक्तभूपालयोगैः कथित-राजयोगैः खलकुलजाता नीचवंशोद्भवा अपि मानवाः पुरुषाः राज्यभाजः नृपाः भवंति किमुत किंपुनः नृपकुलोत्थाः राजवंशसंभूतास्तेऽवश्यं राजानो भवंति। वक्ष्यमाणैः पुनः योगैः नृपतिकुलसमुत्थाः राजवंशजाः पार्थिवाः राजानो भवन्ति। तेषु वक्ष्यमाणेषु अभूपालवंशजः अराजपुत्रः नृपतुल्यो भवति। राजसम इत्यर्थः। न राजा। किमुत संभावनायाम्।१२।

भाषा– पूर्व में कहे हुए योगों में नीच दरिद्र कुल में उत्पन्न मनुष्य भी राजा होता है, फिर राजकुलोत्पन्न की बात ही क्या है? तथा आगे कहे हुए योगों में केवल राजवंश में ही जन्म लेनेवाला राजा हो सकता है, अन्य वंशोत्पन्न मनुष्य राजा के समान होता है, किन्तु राजा (शासक) नहीं होता।।१२।।

अथ राजयोगमौपच्छंदसिकेनाऽऽह–

उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः ।
पञ्चादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपालाः ।।१३।।

उच्चस्वत्रिकोणगैरिति। त्र्याद्यैः त्र्यादिभिर्ग्रहैः स्वोच्चगतैः स्वत्रिकोणगतैः बलस्थैः कालादिबलोपेतैः जाताः भूपतिवंशजाः नृप-कुलजाता नरेन्द्रा राजानो भवन्ति। आदिग्रहणाच्चतुर्भिरपि पंचादि-भिरन्यवंशजाता इति। पंचादिभिः ग्रहैः स्वोच्चस्थैः मूलत्रिकोणगैर्वा अन्यवंशजाता हीनकुलजा अपि राजानो भवन्ति। आदिग्रहणात्षड्भिः सप्तभिरपि। हीनैर्वित्तयुता इति त्रिभिरुच्चस्थैः मूलत्रिकोणस्थैर्वा हीनबलैः कालादिबलरहितैः राजकुलजा अपि राजानो न भवन्ति।

किंतु राज्यतुल्या भवंति। एतैर्यथोक्तं हीनैः वित्तयुताः सधना भवंति, न भूमिपालाः राजानः। एतदुक्तं भवति। एकेन ग्रहेण द्वाभ्यां वा स्वोच्चगाभ्यां मूलत्रिकोणस्थाभ्यां वा राजकुलजोऽपि राजा न भवंति किंतु धनवान्। एवं त्रिभिश्चतुर्भिर्वाऽन्यवंशजाता वित्तयुता भवंति, न राजानः। अत्र यदि ग्रहाः यथासंख्या उच्चस्थाः न भवंति स्वोच्चगा मूलत्रिकोणस्थैः सह संख्यां संपादयंति तथापि यथोक्तफलदा भवंति। अथवोच्चगताः केवलं स्वत्रिकोणगता वा तथापि।। १३।।

भाषा– यदि ३ या ४ ग्रह बल (कालबल-दिग्बल) से युक्त होकर अपने उच्च या मूलत्रिकोण में हों तो राजवंशोत्पन्न राजा होता है। अन्य वंशोत्पन्न धनवान् मात्र होता है। यदि ५ या ६ ग्रह उच्च त्रिकोण में हों तो ऐसे योग में अन्य वंशोत्पन्न भी राजा होता है। अल्प (२ वा १) ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण में हो तो केवल धनवान् होता है, राजा नहीं होता।१३।

अथान्यराजयोगं विद्युन्मालयाह–

लेखास्थेऽर्केजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे।
चापप्राप्ते जीवे राज्ञः पत्रं विन्द्यात्पृथ्वीनाथम्।।१४।।

लेखास्थ इति।। लेखायां तिष्ठतीति लेखास्थः तस्मिन् लेखा-शब्देनोदय उच्यते। अर्के सूर्ये तत्स्थे लेखास्थे भूवृत्तादर्धोदिते न केवलं यावदजे मेषस्थे तत्रैव मेषलग्ने इंदौ चंद्रे स्थिते भौमे कुजे स्वोच्चे मकरस्थे मंदे सौरे कुंभस्थे जीवे गुरौ चापप्राप्ते धनुर्धरगते एवंविधे योगे जातो राज्ञः पुत्रो नृपसुतो यदि भवति तदा तं भूमेर्नाथं विन्द्याज्ञानीयात्। अन्यकुलजो धनवान्। अत्र केचिल्लग्नस्थेऽर्केऽजेंदौ लग्ने इति पठन्ति। आदित्ये लेखास्थे सति सिंहगते सूर्ये चंद्रे मेषस्थे लग्ने तदपि न कश्चिद्विरोधो राजयोग एव भवति।। १४।।

भाषा– उदयक्षितिज में सूर्य हो, मेषगत चन्द्रमा लग्न में, मङ्गल स्वोच्च (मकर) में, शनि कुम्भ में, गुरु धनु में हो तो राजा के पुत्र को इस योग में राजा समझना चाहिये।। १४।।

विशेष अर्थ– कोई यहाँ 'लेखा' शब्द से 'सिंहराशि' अर्थ कहते हैं। उस अर्थ से भी राजयोग हो सकता है। परञ्च वहाँ 'लेखस्थेऽजेन्दौ लग्ने' ऐसा पाठ होना चाहिए।। १४।।

अन्यराजयोगं विद्युन्मालयाऽऽह–

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे।
दुश्चिक्याङ्गप्राप्तिप्राप्तैः शेषैर्जातः स्वामी भूमेः।।१५।।

स्वर्क्षे इति ।। स्वर्क्षे सिते आत्मीयराशौ स्थिते वृषतुलयोरन्यतमस्थे न केवलं यावत्पातालस्थे लग्नाच्चतुर्थे धर्मस्थानं प्राप्ते नवमगते शेषैरन्य-ग्रहैः रविभौमबुधगुरुसौरैः दुश्चिक्यांगप्राप्तिप्राप्तैः तृतीयलग्नैकादशस्थान-स्थैः जातो भूमे पृथिव्याः स्वाम्यधिपतिर्भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। कुम्भे लग्ने वृषे शुक्रः तुले चंद्रः शेषा ग्रहा यथासंभवं मेषकुम्भधन्विस्थाः। एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवति। अन्यकुलजो धनवान्। अथवा कर्कटो लग्नम्, तुले शुक्रः, मीने चंद्रः, शेषाः ग्रहा यथासम्भवं कन्याकर्कटवृषस्थाः एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान्।। १५।।

भाषा– शुक्र वृष या तुला में होकर चतुर्थ भाव में हो, चन्द्रमा नवम स्थान में हो, शेष सब ग्रह ३, १, ११ भाव में हो तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य भूमिपति (राजा) होता है।।१५।।

अथान्यराजयोगं नवमालिकयाऽऽह–

सौम्ये वीर्ययुते तनुयुक्ते वीर्याढ्ये च शुभे शुभयाते ।
धर्मार्थोपचयेष्ववशेषैर्धर्मात्मा नृपजः पृथिवीशः ।।१६।।

सौम्य इति।। सौम्ये बुधे वीर्ययुक्ते कालादिबलैः युक्ते तथाभूते तनुयुक्ते लग्नस्थे शुभे शुभयाते शुभे शुभग्रहे गुरुसितयोरन्यतमे यथा-सम्भवं वीर्याढ्ये च सबले शुभयाते धर्मस्थानगते नवमगत इत्यर्थः। शुभे सुखयात इति केचित् पठन्ति। चतुर्थस्थानस्थ इत्यर्थः। अवशेषैः परिशिष्टग्रहैः यथासम्भवं धर्मार्थोपचयेषु नवमद्वितीयत्रिषडेकादश-दशमानामन्यतमस्थानस्थितैः एवंविधे योगे जातो नृपजो राजपुत्रो राजा भवति। धर्मात्मा च। अन्यकुलजो धनवान्।। १६।।

भाषा– बुध बली होकर लग्न में हो और अन्य शुभग्रह (गुरु या शुक्र या पूर्ण चन्द्र) बली होकर नवम भाव में हो, शेष ग्रह ६।२।३।६।१०।११। में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का बालक ही धर्मात्मा राजा होता है।।१६।।

अथान्यद्राजयोगद्वयं वंशस्थेनाऽऽह-

वृषोदये मूर्तिधनारिलाभगैः
शशाङ्कजीवार्कसुतापरैर्नृपः ।
सुखे गुरौ खे शशितीक्ष्णदीधिती
यमोदये लाभगतैर्नृपोऽपरैः ।। १७।।

वृषोदय इति।। वृषोदये वृषलग्ने तथा शशांकजीवार्कसुतापरैः चन्द्रगुरुसौरैरपरैश्च रविकुजबुधसितैः यथासंख्यं मूर्तिधनारिलाभगैः

लग्नद्वितीयषष्ठैकादशस्थैः जातो नृपो राजा भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। वृषलग्ने सचन्द्रे मिथुनस्थे जीवे तुलास्थे सौरे मीनस्थैः रविकुजबुधसितैः जातो राजपुत्रो राजा भवति। अन्यकुलजो धनवान्। सुखे गुराविति। गुरौ जीवे सुखे चतुर्थस्थानस्थे खे दशमे शशितीक्ष्णदीधिती चन्द्रार्कौ यमोदये शनैश्चरे लग्नगते अपरैरन्यैर्भौमबुधशुक्रैः लाभगतैरेकादशस्थैः जातो नृपो राजा भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। शनैश्चरो लग्ने चतुर्थे जीवः दशमे सूर्यचन्द्रौ भौमबुधशुक्रा एकादशे एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवति। अन्यकुलजो धनवान्भवति॥ १७॥

भाषा– वृष लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा, द्वितीय भाव में गुरु, षष्ठ भाव में शनि और शेष ग्रह (रवि, मंगल, बुध, शुक्र) एकादश भाव में हों तो बालक (राजपुत्र) राजा होता है। तथा चतुर्थभाव में गुरु हो, दशमभाव में चन्द्र, रवि हो, लग्न में शनि और शेष ग्रह एकादश भाव में हों तो राजा होता है॥ १७॥

अथान्यराजयोगद्वयं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

मेषूरणायतनुगाः शशिमन्दजीवा
ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्रम्।
वक्रासितौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्या
होरासुखास्तशुभखाप्तिगताः प्रजेशम्॥१८॥

मेषूरणायतनुगा इति॥ शशिमन्दजीवाः चन्द्रसौरगुरवः यथासंख्यं मेषूरणायतनुगा दशमैकादशलग्नस्थाः ज्ञारौ बुधभौमौ धने द्वितीयस्थाने सितरवी शुक्रार्कौ हिबुके चतुर्थे एवंविधे योगे जातो नरेन्द्रो नृपो भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। दशमे चन्द्रः एकादशे सौरः लग्ने जीवः द्वितीये बुधभौमौ चतुर्थे शुक्रार्कौ एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान्। वक्रासिताविति। वक्रासितौ भौमसौरौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्याः चन्द्रगुरुशुक्रसूर्यबुधाः यथासंख्यं होरासुखास्तशुभखाप्तिगताः लग्नचतुर्थसप्तमनवमदशैकादशस्थाः भवन्ति तदा जातः प्रजेशो राजा भवति। तत्रैतज्ज्ञातम्। भौमसौरौ लग्नगतौ चतुर्थे चन्द्रः सप्तमे जीवः नवमे शुक्रः दशमे सूर्यः एकादशे बुधः एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान्॥ १८॥

भाषा—दशमभाव में चन्द्रमा, एकादश में शनि, लग्न में गुरु, द्वितीय भाव में बुध, मंगल और चतुर्थ भाव में शुक्र-रवि हो तो इस योग में जातक राजा होता है। तथा मंगल-शनि लग्न में, चन्द्रमा चतुर्थ में, गुरु सप्तम में, शुक्र नवम भाव में, रवि दशम भाव में और बुध एकादश भाव में हो तो जातक भूपति (राजा) होता है॥ १८॥

अथ राजयोगजातस्य कस्मिन्काले राज्यावाप्तिर्भविष्यति तज्ज्ञानं स्वागतयाऽऽह-

कर्मलग्नयुतपाकदशायां राज्यलब्धिरथवा प्रबलस्य ।
शत्रुनीचगृहयातदशायां छिद्रसंश्रयदशा परिकल्प्या ।१६।

कर्मलग्नयुतपाकदशायामिति।। राजकर्तॄणां ग्रहाणां मध्याद्यो ग्रहः कर्मणि लग्नाद्दशमे स्थितः यश्च राजयोगकर्तॄणां ग्रहाणां मध्याद्यो ग्रहः लग्नयुतो जन्मलग्नस्थः तत्पाकदशायां तस्य सम्बन्धिनी या पाकदशान्तर्दशा वा भवति तत्र तस्य राज्यलब्धिर्भवति। अथ लग्न-दशमयोः द्वयोरपि ग्रहौ भवतः तदा तयोर्यो बलवांस्तस्य दशाया-मन्तर्दशाकाले राज्यलब्धिः। अथ तत्र बहवो यदा भवन्ति तदा प्रबलस्य सर्वोत्तमबलस्यान्तर्दशाकाले अथवा प्रबलस्येति। अथ लग्नदशमौ यदा शून्यौ भवतस्तदा जन्मनि यः प्रबलः सर्वोत्तम-बलस्तस्यान्तर्दशाकाले एव राज्यदः स्यात्। बहुष्वन्तर्दशासु यस्मिन्न-न्तर्दशाकाले चारवशादतिबलवत्त्वं सम्भवति तस्यामेवान्तर्दशायां राज्यप्रदो भवति। शत्रुनीचगृहेति। लब्धराज्यस्यापि जन्मकाले शत्रुक्षेत्रस्थेन वा ग्रहेण यान्तर्दशा दत्ता तस्यां तस्मिन्बलवति राज्यहरणं वाच्यम्। यतः सा छिद्रदशा विबलेऽपि तस्मिन्नापद्भवति। सा च संश्रयदशा परिकल्प्या। तस्मामन्तर्दशायां संश्रयं कार्यम्। दैवयुक्तनृपसंश्रयगुणात्तन्मोक्षोऽपि। वक्ष्यति च यात्रायाम्– 'अरि-कोपहतदशायां जन्मोदयानाथशत्रुपाके च। स्वदशेशकारकदशाः संश्रयणीयो नरेन्द्र इति।।' अत्र च भगवान्गार्गिः–

'लग्नगः कर्मगो वा स्यादथवा प्रबलोऽपि यः ।
सः स्यात्स्वान्तर्दशाकाले राज्यदः प्रबलो यदा ।।
नीचारिगृहसंस्थस्य दशायां प्रबलस्य च ।
च्युतिर्बलविहीनस्य तन्मोक्षः परसंश्रयात् ।।' *इति।।१६।।*

भाषा–जन्म-समय में दशम भाव या लग्न में जो ग्रह हो उसकी दशा में राज्य की प्राप्ति होती है। दशम या लग्न में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो अधिक बलवान् हो उसकी दशा-अन्तर्दशा में, यदि दशम स्थान या लग्न में कोई ग्रह नहीं हो तो सब ग्रहों में जो बलवान् हो उसकी दशा में राज्यलाभ समझना चाहिए। यदि दशम या लग्नगत ग्रह शत्रु राशि या नीच राशि का हो तो उसकी दशा-अन्तर्दशा में राज्य की हानि, अन्य राजाओं के संश्रय से राज्यप्राप्ति आदि कल्पना कर समझना चाहिए।। १६।।

विशेष अर्थ— लग्नेश और दशमेश में अथवा दशमेश नवमेश में परस्पर सहयोग-दृष्टि आदि सम्बन्ध हो तो उसकी दशा में अवश्य राज्यलाभ होता है। स्पष्टार्थ लघुपाराशरी देखिए॥ १९॥

अथ भोगिनां शबरदस्युस्वामिनां च जन्मज्ञानं मालिन्याऽऽह—

गुरुसितबुधलग्ने सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे वियति -दशम
दिवसनाथे भोगिनां जन्म विन्द्यात्।
शुभबलयुतकेन्द्रैः क्रूरमस्थैश्च पापैर्व्रजति
शबरदस्युस्वामितामर्थभाक्च ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके राजयोगाध्याय एकादशः॥११॥

गुरुसितबुधलग्ने इति॥ गुरुसितबुधाः जीवशुक्रसौम्याः एषामन्यतमे लग्नगते अर्कपुत्रे सौरे सप्तमस्थे दिवसनाथे सूर्ये वियति दशमस्थानगते एवंविधे योगे भोगिनां जन्म भोगवतां विंद्याज्ञातः सदैव भोगवान्भवति। तस्यार्थविहीनस्यापि यतः कुतश्चिद्भोगावाप्तिर्भवति। रविबुधसितलग्ने इत्यत्र कैश्चित् रविबुधसितानां सम्बन्धिलग्न इति व्याख्यातम्। सिंहवृषतुलामिथुनकन्यालग्नेष्विति। यतो दशमस्थेऽर्के लग्ने बुधसितयोरवस्थानं न सम्भवति। आचार्येण वराहमिहिरेण पूर्वशास्त्रानुसारेणायं योगः कृतः। अत्र च भगवान्गार्गिः— 'जीवज्ञमार्गवैर्लग्ने सप्तमस्थेऽर्कनन्दने। दशमस्थे रवौ जातो भोगवान्पुरुषो भवेत्॥' शुभबलयुतकेन्द्रैरिति। शुभग्रहसम्बन्धिनो राशयः ते च सबला यस्य केन्द्रगता भवन्ति तैस्तथाभूतैस्तथा पापैः क्रूरग्रहैः क्रूरभस्थैः पापराश्याश्रितैः यस्य जन्म भवति स शबराणां पुलिन्दानां दस्यूनां चौराणां स्वामित्वं व्रजति गच्छति। अर्थभाग् भाग्यवान् धनवांश्च भवति। शुभबलयुतकेन्द्रैरिति। अत्र शुभग्रहैः बलयुतैः केन्द्रगतैरिति कैश्चिद्व्याख्यातम्। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः—

'पापक्षेत्रगतैः पापैः केन्द्रस्थैः सौम्यराशिभिः।
सबलैर्यस्य जन्म स्वात्स्यादसौ दस्युनायकः॥' *इति॥२॥*

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ राजयोगाध्यायः एकादशः॥११॥

भाषा— किसी भी लग्न में बुध, गुरु और शुक्र हो, सप्तम स्थान में शनि, दशम स्थान में रवि हों तो ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य भोगी (सुख भोगनेवाला) होता है। तथा शुभ राशिगत शुभ ग्रह केन्द्र में हो और पाप ग्रह क्रूर राशियों में जिस किसी स्थान में हो तो ऐसे योग में जन्म लेने वाला चोर, डाकू आदि का सरदार होता है तथा धनी भी होता है॥२०॥

अथ नाभसयोगाध्यायः ॥१२॥

अथातो नाभसयोगाध्यायो व्याख्यायते। नाभसयोगानां चत्वारो विकल्पः। तत्राकृतियोगा एको विकल्पः। आकृतियोगाः संख्यायोगा आश्रययोगाश्च विकल्पत्रयम्। आकृतियोगाः सङ्ख्यायोगा आश्रययोगा दलयोगौ चेति विकल्पचतुष्टयम्। तत्र विंशतिराकृतियोगाः। सप्तसंख्यायोगाः। त्रय आश्रययोगाः। द्वौ दलयोगौ। तत्र द्वित्रिचतुर्विकल्पजानां योगानां संख्याज्ञानमौपच्छन्दसिकेनाऽऽह—

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता
द्वित्रिचतुर्विकल्पजाः स्युः।
यवनैस्त्रिगुणा हि षट्शती सा
कथिता विस्तरतोऽत्र तत्समासः ॥१॥

नवदिगिति॥ नव प्रसिद्धाः दिक्छब्देन दश उच्यते वसवोऽष्टौ एते यथासंख्यं त्रिकाग्निवेदैः गुणिताः त्रिकशब्देन त्रय एव उच्यते अग्निशब्देन त्रयः वेदाश्चत्वारः एतैर्गुणिताः। तद्यथा। नवदिग्वसवः (९।१०।८) एते यथासंख्यं त्रिकाग्निवेदैः (३।३।४।) एतैर्गुणिता जाताः (२७।३०।३२) एते यथासंख्यं द्वित्रिचतुर्विकल्पजा भवन्ति। एतदुक्तं भवति। आकृतियोगा विंशतिः संख्या योगाः सप्त एवमाकृति-संख्याविकल्पद्वयेन सप्तविंशतियोगाः भवन्ति। आश्रययोगास्त्रयः। आकृतिसंख्या आश्रयकृतेन विकल्पत्रयेण त्रिंशत् (३०) दलयोगौ द्वौ। आकृतिसंख्या आश्रयदलयोगकृतेन विकल्पचतुष्केण द्वात्रिंशत् (३२) एवं द्वित्रिचतुर्विकल्पजा योगाः स्युः भवेयुरिति। यवनैस्त्रिगुणाहीति। पुराणयवनैः त्रिगुणा हि षट्शती कथिता। षण्णां शतानामां समाहारः षट्शती सा च त्रिगुणा अष्टादशयोगशतान्यभिहितानीत्यर्थः (८००)। ननु स्फुजिध्वजेन किमुक्तम्। उच्यते। नाभसंयोगानामानन्त्यम्। तथा च तद्वाक्यम्— "संस्थानसादृश्यमनन्तकं स्याद्द्रव्याणि नानाप्रकृतीनि दृष्ट्वा।" इति कथं पुराणयवनैरष्टादशशतान्यभिहितानि। उच्यन्ते। आकृतियोगास्त्रयोविंशतिस्तैरभिहिताः संख्यायोगानां सप्तविंशत्यधिकं शतं भवति। एवं सार्द्ध शतं भवन्ति। तच्चैकैकं राशिं लग्नगत-मधिकृत्योक्तम्। तस्माल्लग्नद्वादशकेनाष्टादशयोगशतानि भवन्ति। यस्मात्सार्द्धं शतं द्वादशहतमष्टादशशतानि भवन्ति। एतेषामुत्पत्ति-

मध्यायान्ते प्रदर्शयिष्यामः। विदिताध्यायार्थस्य सुखावबोधत्वात्। एवं यवनैस्त्रिगुणा षट्शती विस्तरतः कथितोक्ता। अत्रास्मिञ्छास्त्रे तत्समासः तत्संक्षेपः क्रियते। विस्तरस्य समासोऽभिधीयत इति। पूर्वप्रदर्शिता द्वात्रिंशदेवाभिधीयन्ते। तत्फलेष्वन्यफलानां समानत्वात्। द्वात्रिंशत्स्वेव योगेष्वष्टादशयोगशतान्यन्तर्भवन्तीति।१।

भाषा– (इस द्वादश अध्याय में योगों के जो चार (४) विकल्प हैं उनमें) २ विकल्प मिलकर ३x९=२७ सत्ताइस। तीन विकल्प मिलकर ३x१०=३० तीस, चारों विकल्प मिलाकर ८x४=३२ बत्तीस योग मात्र कहे गये हैं। पुराण यवनों ने तो इसके १८०० भेद कहे हैं। हमने यहाँ उन्हीं को संक्षेप में कह दिया है।।१।।

विशेष अर्थ– आकृतियोग २०, संख्यायोग ७, आश्रययोग ३ और दलयोग २; इनमें दो विकल्प मिलकर २७, तीन मिलकर ३० एवं चारों मिलाकर ३२ बत्तीस होते हैं, जो आगे कहे गये हैं।।

पुराण-यवनाचार्यों के आकृतियोग २३ और ७ ग्रहों से एकद्वित्र्यादि विकल्प से 'एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः। परः पूर्वेण संगुण्य तत्परस्तेन तेन च।।' इत्यादि पाटीगणित रीति से, अथवा 'पूर्वेण- पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनाऽन्ये प्रवदन्ति संख्याम्। इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः' इत्यादि वराहसंहितोक्तभेदानयन विधि से एकादि सप्तपर्यन्त कुल भेद १२७ होते हैं। एवं संख्यायोग और आकृतियोग दोनों मिलाकर १५० भेद हुए। एक लग्न में यदि १५० तो १२ लग्न में कितने? इस अनुपात से १५०x१२= १८०० योग के भेद होते हैं। किन्तु सबों का अन्तर्भाव वराहमिहिरकथित ३२ योगों में ही हो जाता है। इसलिए आचार्य यहाँ केवल मुख्य ३२ योग कहे हैं।

आकाशस्थ द्वादश राशि चक्र में (लग्नादि द्वादश भाव में) ग्रहों की स्थिति से जैसी जिसकी आकृति होती है उसी प्रकार का उसका फल भी होता है। इसलिए तदनुसार २० योग आकृति नाम से कहे गये हैं।

एवं चर, स्थिर और द्विस्वभाव के आश्रय से बनने के कारण ३ योग आश्रय नाम से कहे गये हैं। तथा केन्द्र में शुभ और पापग्रह की स्थिति से २ योग बनते हैं। इसलिए इन दोनों में प्रत्येक दल (अर्धयोग) कहे गये हैं। तथा ग्रहों की १ आदि राशि संख्या में स्थिति से ७ योग संख्या नाम से व्यवहृत है।

नोट– ग्रन्थ-विस्तार भय से सब योगों की आकृति न दिखलाकर कुछ योगों की आकृति ही यथास्थान दिखलाई गयी है।।१।।

अथाश्रययोगत्रयं दलयोगद्वयं चौपच्छन्दसिकेनाऽऽह–

रज्जुर्मुशलं नलश्चराद्यैः सत्यश्चाश्रयजाञ्जगाद योगान्।
केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यौ स्रक्सर्पौ कथितौ पराशरेण ।।२।।

रज्जुर्मुशलमिति ।। चराद्यैः चरस्थिरद्विस्वभावराशिग्रहसंयुक्तैः यथासंख्यं रज्जुर्मुशलं नलश्चेति योगत्रयं भवति। तद्यथैकस्मिंश्चरराशौ चरराशिद्वये चरराशित्रये चरराशिचतुष्के वा यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति स्थिरराशयो द्विस्वभावराशयश्च सर्वे शून्या भवन्ति तदा रज्जुर्नामयोगो भवति। एवमेकस्मिन्स्थिरराशौ राशिद्वये राशित्रये राशिचतुष्के वा यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति चरराशयो द्विस्वभावराशयश्च शून्या भवन्ति तदा मुशलं नाम योगो भवति। एवमेकस्मिन्द्विस्वभावराशौ राशिद्वये राशित्रये राशिचतुष्के वा यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति चरराशयः स्थिर-राशयश्च शून्या भवन्ति तदा नलाख्यो योगो भवति। एतानाश्रयजां-स्त्रीन्योगान्सत्याचार्यो जगाद उक्तवान्। केचित्सत्यस्त्वाश्रयजानिहाह योगानिति पठन्ति। इहास्मिन्प्रकरणे आहोक्तवानिति। तथा च सत्यः– 'सर्वे चरेषु, राशिषु यदा स्थिता योगमाह तं रज्जुम्। अनय-प्रियस्य सततं विदेशवासार्थयुक्तस्य।। सर्वे स्थिरेषु राशिषु यदा मुशलमाहत योगम्। जन्मनि कर्मकराणां युक्तानामर्थमानाभ्याम् ।। द्विशरीरेषु नेल इति योगो हीनातिरिक्तदेहानाम्। निपुणानां पुरुषाणां धनसंचयभोगिनां भवति।।' अत्र कैश्चिद्व्याख्यातम्। चर-राशिचतुष्के सदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा रज्जुः स्थिरराशिचतुष्के मुशलं द्विःस्वभावराशिचतुष्के नल इति। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः– 'एको द्वौ वा त्रयः सर्वे चरा युक्ता यदा ग्रहैः। चरयोगस्तदा रज्जुः शीर्ष्याणां जन्मदो भवेत्।। स्थिराश्चेन्मुशलं नाम मानिनां जन्मकृन्नृणाम्। द्विस्वभावो नलाख्यस्तु धनिनां परिकीर्तितः।।' एवमाश्रययोगत्रयं व्याख्यातं सत्त्यमतेन। तथा च सत्यः– 'चरराशिगैर्ग्रहेन्द्रैः स्थिर-राशिगतैस्तथा मुशलम्। द्विशरीरगतैर्योगो नलसंज्ञो मुनिभिरुद्दिष्टः।' अथ दलयोगद्वयमुच्यते। केन्द्रैः सदसद्युतैरिति केन्द्रैः यथासंख्यं सदसद्युतैः सद्ग्रहैः सौम्यैर्युतैः दलाख्यो दलयोगः स्रग्माला नाम भवति। तथा केन्द्रैरक्षद्ग्रहैः पापग्रहयुक्तैः दलयोगः सर्पो नाम योगो भवति। एतदुक्तं भवति। येषु तेषु त्रिषु केन्द्रेषु सौम्यग्रहाः बुध-गुरुशुक्राः यदा भवन्ति न कस्मिन्कश्चित्केन्द्रे पापो भवति तदा खड्नाम योगो भवति। अथ येषु तेषु केन्द्रेषु पापाः सूर्यभौमसौराः भवन्ति न कश्चित्केन्द्रे भवति सौम्यग्रहः तदा सर्पो नाम योगो भवति। नन्वत्र योगद्वये केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यावित्युक्त्या त्रिषु किमिति व्याख्यातम्।

यस्माच्छुक्लपक्षकृष्णपक्षयोश्चन्द्रस्य सौम्यत्वं पापत्वं च सम्भवति एवं-स्थिते तदा सौम्याक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु क्षीणश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति अथवा पापाक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु क्षीणश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति तदापि स्रक्सर्पौ योगौ भवतः। तच्चतुर्षु केन्द्रेषु किमिति न व्याख्यातम्। उच्यते नैवम्। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्– 'केन्द्र-त्रयगैः पापतरैर्दलाख्या बहिश्च माला च।' अत्र सौम्याख्यः पापास्त्रय इति कथं ज्ञायन्ते। यथानयोर्द्वयोर्मध्ये चन्द्रमास्तृतीयो न भवति। उच्यते। भगवता गार्गिणोक्तम्- 'त्रिकेन्द्रगैर्यमारार्कैः सर्पो दुःखितजन्मदः। भोगिजन्मप्रदा माला तद्वज्जीवसितेन्दुजैः।।' स्रग्योगः पापवर्जितकेन्द्रेषु सर्पः सौम्यवर्जितेष्विति कथं ज्ञायते। उच्यते। बादरायणेनोक्तम्- 'केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्। सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ।।' एतौ दलयोगौ। द्वौ स्रक्सर्पौ कथितौ पराशरेनोक्तौ। न त्वन्यैरप्युक्तौ। उच्यते अन्यैर्नोक्तौ पराशरेणोक्ताविति स्वशास्त्रे वराहमिहिरेणोक्तौ। तथा च मणित्थः– 'केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञितौ। द्वौ योगौ सर्पमालाख्यौ विन-ष्टेष्टफलप्रदौ।।' एवमाश्रययोगत्रयमपि अन्यैरुक्तमन्यैर्नोक्तम्। अन्यैरुक्त-त्वाद्वराहमिहिरेण शास्त्रे संगृहीतम्। एवं दलयोगद्वयं व्याख्यातम्।।२।।

भाषा– सब ग्रह चर राशि में हों तो रज्जुयोग, सब स्थिर राशि में हों तो मुसल योग और यदि सब द्विस्वभाव राशि में हों तो नलयोग होता है। इन तीनों को सत्याचार्य आश्रययोग कहे हैं। एवं यदि शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, ये तीनों) ३ केन्द्र में हो तो ये दो प्रकार के दलयोग होते हैं। इन दलयोग को पराशर क्रम से माला और सर्प नाम से कहे हैं। अर्थात् शुभग्रह से युत केन्द्र हो तो माला और पापग्रह से युत हो तो सर्प।। २।।

विशेष अर्थ– यहाँ चर आदि के स्थान में किसी ने चारों चर, चारों स्थिर, चारों द्विस्वभाव के ऐसा अर्थ किया। परञ्च वह मुनिवचनों के विरुद्ध है। *यथा भगवान् गार्गि*– एको द्वौ वा त्रयः सर्वे, चरा युक्ता ग्रहैर्यदा।
चरयोगस्तदा रज्जुः शीर्ष्याणां जन्मदो भवेत्।।' इत्यादि।

तथा दलयोग में चन्द्रमा को शुभ और अशुभ दोनों से भिन्न समझकर छोड़ दिया गया है; क्योंकि चन्द्रमा में स्वाभाविक शुभत्व सर्वदा नहीं रहता है। पाप-साहचर्य से पापत्व आता है। यथा भगवान् गार्गि का वचन है–

'त्रिकेन्द्रगैर्यमारार्कैः सर्पो दुःखितजन्मदः।
भोगिजन्मप्रदा माला तद्वजीवसितेन्दुजैः'। इति।।

यथा बादरायण– यहाँ भी केन्द्र में केवल शुभ या केवल पापग्रह से ही दलयोग होता है।

'केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्र-
त्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमाऽऽर-सूर्यैर्योगा-
विमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ।'॥२॥

अथान्यैराचार्यैर्येन प्रकारणेनाश्रययोगत्रयं दलयोगद्वयं च व्याख्यातं तत्कारणमुपजातिकयाऽऽह–

योगा व्रजन्त्याश्रयजाः समत्वं
यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैः ।
केन्द्रापगैः प्रोक्तफलौ दलाख्या-
वित्याहुरन्ये न पृथक्फलौ तौ ॥३॥

योगा व्रजन्तीति॥ आश्रयजा योगा रज्जुर्मुशलनलाख्या आकृतियोगैः यवाब्जवज्रांडजगोलकाद्यैः यवपद्मवज्रविहङ्गगोलकैः आदिग्रहणाद्-गदाशकटाभ्यां च तथा संख्यायोगैः गोलकाद्यैः गोलकयुगशूलकेदारैः संख्यायोगैः आश्रयजा योगास्तुल्यतां समत्वं व्रजन्तीत्यतोऽन्यैर्नोक्ताः। तद्व्यतिरेकेणाप्याश्रययोगानामवकाशोऽस्तीति वराहामिहिरेणोक्ताः यैश्च योगैः समतां यास्यन्ति। यत्र चैतेषामनवकाशस्तदध्यायान्ते व्याख्यास्यामः। केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलाविति। दलाख्यौ दलयोगौ द्वौ केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलौ कथितफलौ केन्द्रोपगतैः ग्रहैः प्राक्ते फले ययोः। केन्द्रत्रयगः केन्द्रस्थानां शुभग्रहाणां शुभं फलमुक्तमशुभानामशुभ-मिति। अत एवेमौ प्रोक्तफलौ कथितफलौ। उक्तं च वराहमिहिरेण– 'केन्द्रत्रिकोणेषु शुभाः प्रशस्तास्तेष्वेव पापा न शुभप्रदाः स्युः।' केन्द्र-त्रिकोणगैः शुभैः शुभं फलं भवतीति माला नोक्ता। एवं केन्द्रत्रयगैः पापैः पापफलं भवतीति सर्पो नोक्तः। एवमन्ये अपरे आहुः कथयन्ति। तथा तौ न पृथक्फलावुक्तार्थत्वात्। यद्येवं तर्हि किमर्थं वराहमिहिरे-णोक्तावित्यत्रोच्यते। नाभसयोगान्तर्भूतत्वात्समस्तदशास्वपि फलदौ भवतः। यदा केन्द्रोपगानां योगं बिना फलमङ्गीक्रियते तदा स्वदशास्वेव फलं प्रयच्छन्ति। एतच्च पराशरादीनां मतम्। तेषां मत यथा नाभस-योगावेतौ समस्तदशास्वपि फलप्रदौ अतो न वराहमिहिरेणोक्तौ। ३।

भाषा– ये तीनों आश्रययोग-यव, कमल, वज्र, विहग, गोल इत्यादि योग जो आगे कहे जायेंगे, उन्हीं के सदृश(अर्थात् उन्हीं लक्षणों से युक्त

होने के कारण उन्हीं योगों के अन्तर्गत) होते हैं। तथा केन्द्रों में शुभाशुभ ग्रह होने से जो दो दलयोग कहे गये हैं वे भी यवादि योग से पृथक् फल देनेवाले नहीं हैं, ऐसा अन्य आचार्यों ने कहा है।। ३।।

विशेष अर्थ— जब अन्य कितने आचार्यों ने आश्रय और दलयोग नहीं कहे तो फिर वराहमिहिर ने क्यों कहे? इसका कारण स्वयं आगे कहेंगे।। ३।।

अथाकृतियोगान्पञ्च गदाशकटविहङ्गशृङ्गाटकहलाख्यान्वसन्ततिलकेनाऽऽह—

आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैर्गदाख्यस्तन्व-
स्तगेषु शकटं विहगः खबन्ध्वोः।
शृगाटकं नवमपञ्चमलग्नसंस्थै-
र्लग्नान्यगैर्हलमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४॥

आसन्नेति।। आसन्ने निकटवर्त्तिनि। केन्द्रभवनद्वये कण्टकराशियुग्मे यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा गदाख्यो योगो भवति। स च चतुः प्रकारः। लग्नचतुर्थस्थैः सर्वग्रहैरेकः। चतुर्थसप्तमस्थैर्द्वितीयः। सप्तम दशमस्थैस्तृतीयः। दशमलग्नस्थैश्चतुर्थः। तन्वस्तगेष्विति। तन्वस्तगेषु लग्नसप्तमगेषु सर्वग्रहेषु शकटं भवति। खबन्ध्वोः दशमचतुर्थयोः स्थितेषु सर्वग्रहेषु विहगाख्यो योगः। नवमपञ्चमलग्नस्थैः सर्वग्रहैः शृङ्गाटकाख्यो योगो भवति। लग्नान्यगैर्हलमिति। लग्नं वर्जयित्वा यथासम्भवमन्ये सर्वे ग्रहाः परस्परं त्रिकोणगता भवन्ति तदा हलमिति योगः तज्ज्ञाः होराशास्त्रपण्डिताः प्रवदन्ति कथयन्ति। स च त्रिप्रकारः। द्वितीयषड्दशमस्थैः सर्वग्रहैरेकः। तृतीयसप्तमैकादशस्थै-र्द्वितीयः प्रकारः। चतुर्थाष्टमद्वादशस्थैस्तृतीयः प्रकार इति।। ४।।

भाषा— समीपस्थ दो-दो केन्द्र (यथा लग्न चतुर्थ, चतुर्थ सप्तम, सप्तम दशम, दशम लग्न) में सब ग्रह पड़े तो गदा नामक योग होता है। तथा लग्न सप्तम में सब ग्रह हो तो शकट, और दशम चतुर्थ में सब ग्रह हो तो विहग (पक्षी) योग होता है। तथा लग्न पञ्चम और नवम (इन त्रिकोण) में सब ग्रह हो तो शृङ्गाटक योग होता है। इस प्रकार लग्न से भिन्न (२, ३, इनमें किसी) स्थान से यदि परस्पर त्रिकोण में सब ग्रह पड़े तो हल नामक योग होता है।। ४।।

विशेष अर्थ—समीप के दो-दो केन्द्र में ग्रहों के होने से पुराण यवनाचार्यों ने ४ नाम के चार योग कहे हैं। जैसे-(१) लग्न चतुर्थ में गदा। चतुर्थ सप्तम में शंख, सप्तम दशम में वभ्रु, दशम लग्न में सब ग्रह हो तो ध्वज नामक योग होता है। इसलिए उनके मत में आकृति योग २३ होते हैं। वराहमिहिर ने इन चारों का नाम 'गदा' ही रक्खा है, इसलिए इनके मत में २० आकृति योग हैं।। ४।।

अथ वज्रयवकमलवापीसंज्ञं योगचतुष्टयं वैतालीयेनाऽऽह—

शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः।
कमलं तु विमिश्रसंस्थितैर्वापी तद्यदि केन्द्रबाह्यतः ॥५॥

शकटाण्डजेति॥ शकटवच्छुभैः व्यवस्थितैरण्डजवदशुभैश्च वज्रं भवति। एतदुक्तं भवति। लग्नसप्तमयोः सौम्याश्चतुर्थदशमयोश्च पापा भवन्ति। नान्यत्र केचित्तदा वज्राख्यो योगो भवति तद्विपरीतगैर्यवः। त एव ग्रहा यदि विपरीतगता भवन्ति तदा यवाख्यो योगो भवति। शकटवदशुभाः अण्डजवच्छुभाः। एतदुक्तं भवति। लग्नसप्तमयोः पापाः स्थिताः चतुर्थदशमयोश्च शुभाः स्थितास्तदा यवाख्यो योगो भवति। कमलं त्विति। एतैरेव सौम्यपापैः विमिश्रसंस्थितैश्चतुर्ष्वपि केन्द्रेषु समवस्थितैः कमलाख्यो योगो भवति। तदेव कमलं यदि केन्द्रोबाह्यतो भवति तदा वापीसंज्ञा योगः। एतदुक्तं भवति। सर्वैरेव केन्द्रबाह्यतः स्थितैः केन्द्राणि वर्जयित्वान्यत्र पणफरापोक्लिमेषु स्थितैस्तदेव कमलं वापीसंज्ञं भवति योगः। पणफरेषु चतुर्ष्वापोक्लिमेषु चतुर्ष्विति।५।

भाषा—यहाँ वराहमिहिर का आशय है कि— सब शुभ ग्रह शकटवत् (लग्न और सप्तम में) हो तथा सब पाप ग्रह विहगवत् (दशम चतुर्थ में) हो तो वज्र योग होता है। इससे विपरीत अर्थात् सब पाप ग्रह लग्न सप्तम में और सब शुभ ग्रह दशम चतुर्थ में हो तो यव योग होता है। और पाप शुभ ग्रह, दोनों मिलकर ही केन्द्र में हों तो कमलयोग और मिश्रित सर्व ग्रह यदि केन्द्र से भिन्न स्थान में (अर्थात् सब पणफर या आपोक्लिम में) हो तो दोनों ही दशा में वापी नामक योग होता है॥५॥

विशेष अर्थ— इस प्रकार वराहमिहिराचार्य का आशय असङ्गत है। जो स्वयं आगे श्लोक में प्रकट करते हैं। इसलिए यहाँ वैकल्पिक अर्थ किया जाय तो प्राचीन आचार्य और वराहमिहिर के वाक्य सङ्गत हो जाते हैं। यथा—

सं०— 'शकटाण्डजवच्छुभाशुभैः (शकटवच्छुभैः, अण्डजवदशुभैर्वा-स्थितैर्वज्रं वज्रयोगः) तद्विपरीतस्थितैर्यवो भवति। इति।

भाषा— शकटवत् (लग्न सप्तम में सब शुभ ग्रह अथवा दशम चतुर्थ में सब पाप ग्रह हो तो वज्रयोग) और इससे विपरीत अर्थात् लग्न सप्तम में सब पाप अथवा दशम चतुर्थ में सब शुभ ग्रह हो तो यव योग होता है। इस प्रकार अर्थ निर्दिष्ट होता है।

(१) इसकी उपत्ति-संक्षेप में यह कि वज्रयोग में पूर्व और पश्चिम (१।७) केन्द्र में सब शुभ ग्रह पड़ते हैं। इसलिए आदि (पूर्व वयस) और अन्त

(पश्चिम वयस) में अपना शुभ फल देते हैं। इन्द्र के वज्र की आकृति ऐसी है कि उसके दोनों फल (मूल और अग्र) में समान शक्ति रहती है। इसलिए आदि और अन्त में फल देने के कारण ही इसका नाम वज्र रक्खा गया।

(२) तथा मध्य केन्द्र (१०।४) में सब शुभ ग्रह के रहने से मध्य वयस में ही शुभ फल होता है; आदि-अन्त में नहीं। इसलिए इसका नाम यव रखा गया है ; क्योंकि यव का मध्य भाग ही पुष्ट होता है। दोनों योगों के आचार्योक्त फलों के आगे १४वें श्लोक में देखिए॥५॥

अथ वज्रयवयोः सम्भवोऽत्र न भवति तौ च मया पूर्वशास्त्रा-नुसारेण कृतावित्येतदनुष्टुभाह—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञसितौ [१] भवतः कथम्? ॥६॥

पूर्वशास्त्रानुसारेणेति। पूर्वशास्त्रानुसारेण पूर्वाचार्यैः मययवनादिभिः वज्राख्यो योगः कृत यवाख्यश्च। तस्मान्मयापि कृतः। वज्रादय इति बहुवचननिर्देशोऽन्येषामेवम्प्रकाराणां प्रदर्शनार्थः। वज्रादयो योगा यद्यपि सम्भवति तथापि पूर्वशास्त्रानुसारेण मया कृता। तान्यनुसृत्य दृष्ट्वेत्यर्थः। यतः सूर्यादादित्याच्चतुर्थे भवने चतुर्थराशौ पूर्वेण पश्चिमेन वा

[१] 'तन्वस्तगेषु शकटं विहगः खबन्ध्वोः' इति पूर्वोक्तवचनेन यदि सर्वे ग्रहाः लग्नसप्तमस्थितास्तदा शकटो नाम योगः। यदा च सर्वे चतुर्थदशमस्थास्तदा विहगो नाम योगः स्यात्। तथा च 'शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः'। एतेन वचनेन यदि शुभग्रहा लग्नसप्तमयोः स्थितास्तथा चतुर्थदशमयोः पापग्रहाः स्युस्तदा वज्रनामा योगः स्यात्। एवं लग्नसप्तमस्थेषु सर्वेषु पापग्रहेषु यदि सर्वे शुभग्रहाश्चतुर्थ- दशमस्थितास्तदा यवो नाम योगोऽभिहितः प्राचीनाचार्यैः। परञ्चैतादृशानां योगानाम न सम्भवत्वम्। यतो लग्नस्थे सूर्ये, चतुर्थेऽपि वा दशमे बुधशुक्रौ न भवितुमर्हतः। एवं चतुर्थस्थे सूर्ये लग्नसप्तमयोर्बुधशुक्रौ कथञ्चिदपि नैव भवितुमर्हतः। यतो मध्यबुधशुक्रौ मध्यमार्कतुल्यावेव। तथा स्पष्टबुधसूर्ययोः स्पष्टशुक्रसूर्ययोर्वा परमान्तरमेकराशितोऽधिकं नैव भवितुमर्हति। यदि रविपरममान्दफलमृणं बुधशुक्रयोः परमफलद्वयं धनं, यदि वा रवेः परमफलं धनं बुधशुक्रयोश्च फलद्वयं परमृणं तदा तदन्तरस्य परमत्वं स्यात्। तच्च गणितरीत्या रवेः परममन्दफलमंशादिकम् २।१।३१। तथा बुधपरमफलद्वययोगः २७।३३।३७। रविपरमफलेन सहितः २९।४४।०८ एकाराशितोऽल्प एव। अतः स्पष्टसूर्यादग्रतः पृष्ठतो वा किञ्चिदल्पेनैवैकराशिनान्तरितो बुधो भवितुमर्हति। एवं शुक्रस्यापि ज्ञेयम् तस्मात् सूर्याच्चतुर्थभवने बुधशुक्रयोरसम्भवत्वाद्वज्रयवयोगयोरप्यसम्भवत्वमिति सयुक्तिकम्।

ज्ञसितौ बुधशुक्रौ कथं भवतः। न कदाचिदर्कोदयेऽस्तमये वा मध्याह्नार्द्धरात्रयोः बुधशुक्रौ भवतः। आदित्ये मध्याह्नस्थेऽर्धरात्रस्थे वा तयोरुदयोऽस्तमयो वा न भवत्येव।। ६।।

भाषा– मय, यवन, मणित्थ आदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ में देखकर मैंने भी वज्र आदि योग के लक्षण कहे हैं। वास्तव में-वज्र और यव योग में तो सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र पड़ते हैं, यह किस प्रकार हो सकता है। अर्थात् इस प्रकार का योग कभी हो ही नहीं सकता।। ६।।

विशेष अर्थ– वराहमिहिराचार्य ने-'लग्नास्तगतैः सौम्यैः' इत्यादि पूर्वाचार्योक्त वज्र, यवयोग के लक्षण में विकल्प नहीं समझकर मनमाना अर्थ किया कि-लग्न सप्तम में बुध, गुरु, शुक्र और चतुर्थ दशम में शनि, रवि, मंगल हो तो वज्र योग होता है। इस प्रकार उनके मन में फिर आशंका हुई कि– 'यह योग किस प्रकार हो सकता है? ' क्योंकि इसमें तो सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र पड़ता है जो सिद्धान्त गणित से सर्वथा असम्भव हैं। अतः सूर्य से बुध और शुक्र का परम अन्तर २ राशि से अल्प ही सदा रहता है। इसी आशंका से इस विषय को यहाँ कहकर अपने दोष को पूर्वाचार्यों के मत्थे मढ़ दिया। वराहमिहिर के समय में उनसे बढ़कर कोई ज्योतिषी नहीं था, इसलिए इस बात को सबने मान लिया। उसके बाद भी भट्टोत्पल आदि टीकाकारों ने भी इस पर ध्यान न देकर, वराहमिहिर के ही अर्थ का समर्थन कर दिया।। ६।।

अथ यूपेषु शक्तिदण्डाख्यं योगचतुष्टयमनुष्टुबभाह–

कण्टकादिप्रवृत्तैस्तु चतुर्गृहगतैर्ग्रहैः।
यूपेषु शक्तिदण्डाख्या होराद्यैः कण्टकैः क्रमात्।। ७।।

कंटकादीति।। होरा लग्नं तदाद्यैः केन्द्रैः क्रमात्परिपाट्या लग्नकेन्द्रमादितः कृत्वा चतुर्षु गृहेषु यथासम्भवं सर्वग्रहाणामवस्थानं भवति तदा यूपेषुशक्तिदण्डाख्याश्चत्वारो योगा भवन्ति। तद्यथा। लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थेषु चतुर्ष्वपि यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा यूपाख्यो योगो भवति। अथ चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमेषु चतुर्षु सर्वे एवं ग्रहा भवन्ति तदेषुः शराख्यो योगः। अथ सप्तमाष्टमनवमदशमेषु चतुर्षु सर्वे एव ग्रहा भवन्ति तदा शक्तियोगः। अथ दशमैकादशद्वादशलग्नेषु चतुर्षु सर्वे एव भवन्ति तदा दण्डयोग इति।। ७।।

भाषा– यदि लग्न से प्रारम्भ कर चतुर्थ-पर्यन्त चारों स्थान में सब ग्रह हो तो यूपयोग होता है, चतुर्थ से सप्तम-पर्यन्त चारों राशि में सब ग्रह हो तो शर योग, सप्तम से दशम-पर्यन्त चारों घर में सब ग्रह हो तो शक्ति योग और दशम से लग्न-पर्यन्त चारों भाव में सब ग्रह हो तो दण्ड नामक योग होता है।। ७।।

अथ नौकूटच्छत्रचापार्द्धचन्द्राख्यं योगपञ्चकमनुष्टुभाह—

नौकूटच्छत्रचापानि तद्वत्सप्तर्क्षसंस्थितैः ।
अर्द्धचन्द्रस्तु नावाद्यैः प्रोक्तस्त्वन्यर्क्षसंस्थितैः ॥८॥

नौकूटच्छत्रेति ॥ तद्वत्तेनैव प्रागुक्तेन प्रकारेण लग्नकेन्द्रादारभ्यैकस्मात्केन्द्रात्सप्तभिर्ग्रहैः सप्तर्क्षसंस्थितैः नौकूटच्छत्रचापसंज्ञयोगचतुष्टयं भवति। तद्यथा। लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमेषु यदा सर्वे ग्रहास्तदा नौर्नाम योगो भवति। एवं चतुर्थपंचमषष्ठसप्ताष्टम नवमदशमेषु यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा कूटाख्यो योगो भवति। अथ सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशलग्नेषु सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा छत्राख्यो योगः। अथ दशमैकादशद्वादशलग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा चापं चापाख्यो योगः। अर्द्धचन्द्र इति। नावाद्यैरेव योगैरन्यर्क्षसंस्थितैः अपरराशिव्यवस्थितैरर्धचन्द्राख्यो योगो भवति। नावाद्याः कण्टकेषूक्ताः तैश्चान्यर्क्षसंस्थितैः अपरराशिगतैः तेन पणफरेभ्यः आरभ्य निरन्तरं सप्तसु गृहेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्त्यापोक्लिमेभ्यो वा तदार्द्धचन्द्राख्यः स चाष्टप्रकारः। तद्यथा। द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमेषु सप्तसु सर्वे ग्रहा यदा भवन्ति तदैकः। एवं तृतीयादिनवमान्तेषु द्वितीयः। पञ्चमादिष्वेकादशान्तेषु तृतीयः। षष्ठादिषु द्वादशान्तेषु चतुर्थः। अष्टमादिषु द्वितीयान्तेषु पञ्चमः। नवमादिषु तृतीयान्तेषु षष्ठः। एकादशादिषु पञ्चमान्तेषु सप्तमः। द्वादशादिषु षष्ठान्तेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदाऽष्टम इति।८।

भाषा— पूर्वोक्त -रीति से लग्न से आरम्भ कर सप्तम-पर्यन्त सातों स्थान में सातों ग्रह हो तो नौका योग होता है, चतुर्थ से दशम-पर्यन्त सातों स्थान में यदि सब ग्रह हो तो कूट योग, सप्तम से लग्न-पर्यन्त सातों स्थान में सब ग्रह हो तो छत्र योग होता है और दशम से चतुर्थ-पर्यन्त सातों स्थान में सब ग्रह हो तो चाप योग होता है। तथा केन्द्र से भिन्न (पणफर या आपोक्लिम) स्थान से आरम्भ होकर ७ स्थान-पर्यन्त प्रति स्थान में सब ग्रह हो तो अर्धचन्द्र नामक योग होता है॥ ८॥

अथ समुद्रचक्राख्यौ द्वौ योगावनुष्टुभाह—

एकान्तरगतैरर्थात्समुद्रः षड्गृहाश्रितैः ।
विलग्नादिस्थितैश्चक्रमित्याकृतिजसंग्रहः ॥९॥

एकान्तरेति॥ अर्थाद्द्वितीयस्थानादारभ्यैकान्तरगतैर्ग्रहैः षड्गृहाश्रितैः षड्राशिषु व्यवस्थितैः सप्तभिर्ग्रहैः समुद्राख्यो योगो भवति।

तद्यथा। द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशेषु षट्सु यदा सप्त ग्रहा भवन्ति तदा समुद्राख्यो योगः। विलग्नादिस्थितैरिति। अनेनैव प्रकारेण विलग्नाल्लग्नात्प्रभृत्येकान्तरस्थैः षड्गृहेषु सप्तभिर्ग्रहैः स्थितैः चक्राख्यो योगो भवति। तद्यथा। लग्नतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशेषु षड्गृहेषु यदा सर्वे ग्रहाः भवंति तदा चक्राख्यो योगो भवति। इत्येवं प्रकारेण आकृतिजानामाकारवशादुत्पन्नानां संग्रहो व्याख्यातः।। ९।।

भाषा– द्वितीय भाव से आरम्भ एक अन्तर करके छहों समभाव (२।४।६।८।१०।१२) में यदि सब ग्रह हो तो समुद्र योग होता है। एवं लग्न से आरम्भ कर एकान्तर से छहों विषम (१।३।५। ७।९।११) भाव में सब ग्रह प्रतिस्थान में हो तो चक्र योग होता है। इस प्रकार आकृति योग का संग्रह यहाँ किया गया है।। ९।।

विशेष अर्थ– आकृति (आकार) के अनुसार जिस योग का जो नाम रक्खा गया वह आकृति योग कहलाता है। यहाँ गदा से लेकर चक्र तक २० प्रकार के आकृति योग कहे गये हैं।। ९।।

अथ संख्यायोगसप्तकं शालिन्याऽऽह–

सङ्ख्यायोगाः स्युः सप्त सप्तर्क्षसंस्थै-
रेकापायाद्वल्लकी दामिनी च।
पाशः केदारः शूलयोगो युगं
च गोलश्चान्यान्पूर्वमुक्तान्विहाय ।।१०।।

संख्यायोगा इति। सप्तभिर्ग्रहैः सप्तर्क्षसंस्थैः सप्तसु राशिषु गतै-रेकापायादेकापगमात्क्रमात्सप्त संख्या योगाः स्युः भवेयुः। ते च वल्लक्यादयो गोलान्ताः। तद्यथा। येषु तेषु सप्तसु गृहेषु यदा सर्वे ग्रहा भवंति तदा वल्लकीनाम योगो भवति। यदा षट्सु गृहेषु सप्त ग्रहा भवंति तदा दामिनीनाम योगो भवति। एवं पञ्चसु सप्त ग्रहाः पाशः पाशो योगः। चतुर्षु केदारः केदारो योगः। त्रिषु शूलः शूलो योगः। द्वयोर्युग युगनाम योगः। एकस्मिन्राशौ सप्त ग्रहा यदा भवन्ति तदा गोलः गोलनामा योगः। अन्यान्पूर्वमुक्तान्विहाय पूर्वो-क्तानन्यान्योगान्विहाय वर्जयित्वा एते योगाः भवन्ति। एतदुक्तं भवति। यथोक्तानां योगानां मध्याद्यदि संख्यायोगस्य सादृश्यं भवति तदा संख्यायोगो नांगीकार्यः। स एव योगो ग्राह्य इति।। १०।।

भाषा– यदि सात स्थानों में सातों ग्रह हो तो वल्लकी (वीणा) योग, तथा ६ स्थान में सातों ग्रह हो तो दाम योग, पाँच स्थान में सब ग्रह

हो तो पाश योग, ४ स्थान में सब ग्रह हो तो केदार योग, ३ स्थान में सब ग्रह हो तो शूल, २ स्थान में सब ग्रह हो तो युग नामक योग और एक ही स्थान में सब ग्रह हो तो गोल नामक योग होता है। तथा इसी प्रकार ७ प्रकार के संख्या योग कहे गये हैं। किन्तु इस संख्या योग में यदि पूर्वकथित यूप, इष आदि वा नौकूट आदि योगों का लक्षण हो तो वहाँ संख्या योग नहीं समझकर पूर्वोक्त लक्षणवाला नौकूट आदि नामक आकृति योग ही समझना चाहिए।।१०।।

विशेष अर्थ – लग्न से सप्तम-पर्यन्त सातों स्थान में ग्रह हो तो वहाँ संख्या योग वल्लकी नामक होता है। तथा नौका नामक आकृति योग का लक्षण भी प्राप्त होता है, अतः इस स्थिति से नौका योग ही समझना, वल्लकी नहीं; इत्यादि अन्यत्र भी समझना चाहिए।।१०।।

आश्रय योगत्रयजातानां दलयोगद्वयजातानां च फलं वसंततिलकेनाऽऽह–

ईर्ष्युर्विदेशनिरतोऽध्वरुचिश्च रज्ज्वां
मानी धनी च मुशले बहुकृत्यसक्तः।
व्यङ्गः स्थिराढ्यनिपुणो नलजः स्रगुत्थो
भोगान्वितो भुजगतो बहुदुःखभाक्स्यात् ।।११।।

ईर्ष्युरिति।। ईर्ष्युः समत्सरः परर्द्धिमत्सरी, विदेशनिरतः परदेशाध्यासनशीलः, अध्वरुचिः सततमटनः। ननु विदेशनिरत एवाध्वरुचिः। तत्किमत्र द्वयोर्ग्रहणम्। उच्यते। विदेशेऽप्यनेकप्रदेशाध्यासनशीलो भवति सततमटनो न भवति। एवंविधो रज्ज्वां रज्ज्वाख्ये योगे जातो भवति। मानी गर्वितः, धनी वित्तवान्, बहुषु कृत्येषु कार्येष्वासक्तः बहुकर्मारम्भशीलः एवंविधो मुशलाख्ये योगे जातो भवति। व्यंगोंऽगहीनः विगतमंगं यस्य, स्थिरो दृढनिश्चयः, आढ्यो धनवान्। निपुणः कार्येषु सूक्ष्मदृष्टिः। एवंविधो नलजो नलाख्ये योगे जातो भवति। एवमाश्रययोगत्रयजातानां फलं व्याख्यातम्। स्रगुत्थो भोगान्वित इति।। स्रगुत्थः स्रग्योगे जातो भोगान्विता भवति। भुजगजो भुजगाख्ये सर्पयोगे जातो बहुदुःखभाक् स्यात् नानाप्रकाराणां दुःखानां भोक्ता भवति। केचिदत्र बहुवचनं पठन्ति– 'व्यंगाः स्थिराढ्यनिपुणा नलजाः स्रगुत्था भोगान्विता भुजगजा बहुदुःखभाजः' इति न कश्चिद्दोषः। एवं दलयोगद्वयजातानां फलं व्याख्यातम्।। ११ ।।

भाषा– रज्जु योग में जन्म लेने वाला ईर्ष्यावान्, विदेश में रहने वाला, भ्रमण-शील होता है। मुसलयोग में मानी, धनवान् और अनेक

कार्य को आरम्भ करने वाला होता है। नल योग में अङ्गहीन, दृढ़ निश्चय और सब कार्यों में निपुण होता है। मालायोग में भोगी और सर्पयोग में उत्पन्न मनुष्य दुःखभागी होता है।।११।।

अथान्योयोग आश्रययोगश्च यदा समकालं यत्र दृश्यते
तत्राश्रययोगस्य निराकरणार्थमनुष्टुभाह–

आश्रयोक्तास्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिताः ।
मिश्रा यैस्ते फलं दद्युरमिश्राः स्वफलप्रदाः ।।१२।।

आश्रयोक्तास्त्विति।। यत्रान्यो योग आश्रययोगश्च भवति तत्राश्रययोगोऽन्येन यवादिना मिश्रो भवति मिश्रितत्वाच्चाफलो भवति। स्वं फलं न प्रयच्छति। एवमन्यैरपरैः विमिश्रिता निष्फला भवन्ति। यैश्च मिश्राः सादृश्यं गतास्ते तत्र फलं दद्युः। केचिन्मिश्रा यैस्ते फलं तेषामिति पठंति। अमिश्राश्चान्यैः यदा भवन्ति तदा स्वफलप्रदा आत्मीयं फलं ददति। तत्र चरराशौ लग्नगते स्थिरद्विस्वभावस्थिरमिश्राः। स्थिरलग्ने चरद्विस्वभावगतैरमिश्राः।द्विस्वभावलग्ने चरस्थिरगतैरमिश्रा इति।१२।

भाषा– 'आश्रय (रज्जु, मुसल और नल) योग में यदि अन्य (आकृति आदि) योगों का लक्षण प्राप्त हो तो आश्रय योग का फल नहीं होता है, जिस अन्य योग के लक्षण से युक्त होता है उसी योग का फल होता है। यदि अन्य लक्षणों से युक्त नहीं होता है तभी आश्रय योग अपना फल देता है।।१२।।

विशेष अर्थ– जैसे चारों चर में सब ग्रह हो और चर लग्न भी हो तो रज्जु का भी लक्षण प्राप्त होता है तथा कमलयोग का भी लक्षण प्राप्त होता है। इसलिए यहाँ कमल का ही फल होगा, रज्जु का नहीं। यदि चर में सब ग्रह हो और स्थिर या द्विस्वभाव लग्न हो तो उस हालत में रज्जु का फल होगा।। १२।।

अथ गदाशकटविहगशृंगाटकहलाख्येषु योगेषु जातानां
स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

यज्वार्थभाक्सततमर्थरुचिर्गदायां
तद्वृत्तिभुक्छकटजः सरुजः कुदारः ।
दूतोऽटनः कलहकृद्विहगे प्रदिष्टः
शृंगाटके चिरसुखी कृषिकृद्धलाख्ये ।।१३।।

यज्वार्थभागिति।। यज्वा यजनशीलः, अर्थभाग्धनानां भाजनं, सततं सर्वकालमर्थरुचिः अर्थार्जनोद्यमशीलः एवंविधो गदाख्ये योगे जातो भवति। तद्वृत्तिभुगिति। तदिति शकटपरामर्शः। तद्वृत्तिभुक् शकटवृत्तिं भुंक्ते। शकटाजीवी भवतीत्यर्थः। सरुजो व्याध्यर्दितः

कुदारः कुत्सितभार्यः एवंविधः शकटजः शकटयोगे जातो भवति। दूतोऽटन इति। दूतः परसंदेशप्रापणार्थं परसकाशगामी, अटनः परिभ्रमणशीलः। ननु दूतेनाप्यवश्यमटनेन भवितव्यम्। उच्यते। परेच्छया गमनशीलो दूतः अयं पुनः स्वेच्छयाटनः तदुभयभाग्भवति। कलहकृत् कलहशीलः एवंविधो विहगाख्ये योगे जातो भवति। प्रदिष्टः उक्तः। चिरेण सुखी चिरसुखी, वयोऽन्ते सुखीत्यर्थः। एवंविधोः शृङ्गाटकाख्ये योगे भवति। अन्यैश्चिरंसुखी चिरसुखी शृङ्गाटके व्याख्यातः। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः– 'लग्नपञ्चमधर्मस्थैर्योगः शृङ्गाटकमतः। वयोंऽते सुखिनां जन्म तत्र स्यात्स्वादुभाषिणाम्।।' कृषिकृद्धलाख्ये होलाख्ये योगे जातः कृषिकृद्भवति, कृषिं करोतीत्यर्थः।। १ ३ ।।

भाषा– गदायोग में उत्पन्न मनुष्य यज्ञ करनेवाला, धनवान्, सर्वदा धनोपार्जन में तत्पर होता है। शकटयोग में उत्पन्न मनुष्य शकट (गाड़ी) से आजीविका करनेवाला, रोगी, दुष्ट स्त्री वाला होता है। विहग योग में दूत, भ्रमणशील और कलहकारक होता है। शृङ्गाटक योग में वयस के अन्त में सुखी होता है। और हलयोग में उत्पन्न मनुष्य खेती करनेवाला होता है।।१३।।

अथ वज्रयवपद्मवापीजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

वज्रेन्त्यपूर्वसुखिनः[1] सुभगोऽतिशूरो
वीर्यान्वितोऽप्यथ यवे सुखितो वयोऽन्तः।
विख्यातकीर्त्यमितसौख्यगुणश्च पद्मे
वाप्यां तनुस्थिरसुखो निधिकृन्न दाता ।।१४।।

वज्रेंऽत्यपूर्वसुखिन इति।। अन्त्ये वयोऽन्त्ये सुखिनः पूर्वे सुखिनश्च बाल्ये सुखी यौवने दुःखितो वृद्धत्वे पुनरेव सुखी भवतीत्यर्थः। सुभगः सर्वजनवल्लभः अतिशूरोऽतीवसंग्रामधीरः एवंविधो वज्राख्ये योगे जातो भवति। वीर्यान्वितः पराक्रमयुक्तः। अथशब्दः पादपूरणे। वयोऽन्तः वयोमध्ये सुखी। अन्तःशब्दोऽत्र मध्यपर्यायः। एवंविधो यवाख्ये योगे जातो भवति। विख्यातकीर्त्तिः सर्वजनप्रसिद्धकीर्त्तिः। सा न तु किमत्र विख्यातकीर्तिरस्ति। उच्यते। अस्ति क्वचिच्च सा। यथा कीर्तिप्रापककर्मभिः शतैरपि परं प्रख्यातकीर्तिं न प्राप्नोति। अमितसौख्यगुणः अपरिमितसौख्योऽपरिमितगुणश्च। गुणाः विद्याशौर्यादय, एवंविधःपद्माख्ये योगे जातो भवति। तनुस्थिरसुखं तनु स्वल्पं स्थिरं चिरकालस्थायि

(१)....... सुखिनः' इति पाठः साधुः सर्वत्रैवैकवचननिर्देशात्।

सुखं यस्य स्वल्पसुखं बहुकालं भवतीत्यर्थः। निधिकृत् भूमावर्थस्थापनशीलः न दाता कदर्यः एवंविधो वापीसंज्ञे योगे जातो भवति।१४

भाषा– वज्र योग में जन्म लेनेवाला जातक अन्त्य आदि वयस में सुखी होता है, अर्थात् युवावस्था में दुःखी रहता है, किन्तु सुन्दर, शूर और बलवान् होता है। यव योग में उत्पन्न मनुष्य वयस के मध्य में सुखी होता है। कमल योग में जन्म लेनेवाला ख्यातकीर्ति, अतिशय सुख और बहुत गुणों से युक्तहोता है। वापी योग में जन्म लेने वाला थोड़ा किन्तु स्थिर सुख से युक्त, धन को गाड़ कर रखनेवाला हो, किन्तु किसी को एक पैसा देने वाला नहीं होता है।। १४।।

अथ यूपशरशक्तिदंडाख्ये योगचतुष्टये जातानां स्वरूपं वसंततिलकेनाऽऽह–

त्यागात्मवान्क्रतुवरैर्यजते च यूपे
हिंस्रोऽथ गुप्त्यधिकृतःशरकृच्छराख्ये।
नोचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च शक्तौ
दण्डे प्रियैर्विरहितः पुरुषोऽन्त्यवृत्तिः ॥१५॥

त्यागात्मवानिति ।। त्यागी दाता आत्मवानप्रमादी क्रतुवरैर्यज्ञश्रेष्ठैर्यज्ञैर्यजते एवंविधो यूपाख्ये योगे जातो भवति। हिंस्रेति। हिंस्रो वधरुचिः, गुप्त्यधिकृतः बन्धनपालः, शरकृत् शरकारः एवंविधश्च शराख्ये योगे जातो भवति। नीच इति। नीचः अधमानामकुलोचितानां कर्मणां कर्ता, अलसः क्रियास्वपटुः, सुखधनैर्वियुतो भोगवित्तविवर्जितः, निःसुखो निर्धनश्च एवंविधः शक्तौ योगे जातो भवति। प्रियैः पुत्रादिभिः विरहितः वर्जितः, अन्त्यवृत्तिः दासवृत्तिः, शूद्रवृत्तिरित्यर्थः। एवंविधो दंडाख्ये योगे जातः पुरुषो भवति।। १५ ।।

भाषा– यूप योग में उत्पन्न होनेवाला दानी, स्थिर बुद्धि और उत्तम २ यज्ञ करनेवाला होता है। शर योग में जन्म लेनेवाला हिंसक, जेलखाना का मालिक और शर बनानेवाला होता है। शक्ति योग में उत्पन्न जातक नीच, आलसी, सुख, धन से हीन होता है और दण्डयोग में उत्पन्न होनेवाला अपने प्रियजनों से हीन और नौकरी करनेवाला होता है।।१५।।

अथ नौकूटच्छत्रकार्मुकजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

कीर्त्त्या युतश्चलसुखः कृपणश्च नौजः
कूटेऽनृतप्लवनबन्धनपश्च जातः।
छत्रोद्भवः स्वजनसौख्यकरोऽन्त्यसौख्यः
शूरश्च कार्मुकभवः प्रथमान्त्यसौख्यः ॥१६॥

कीर्त्त्या युतश्चलसुख इति।। कीर्त्त्या युतः ख्यातयशाः, चलसुखः कदाचित्सुखी कदाचिद्दुःखी, कृपणः अदाता च शब्दोऽत्र समुच्चयार्थे। एवंविधो नौजः नावाख्ये योगे जातः प्राणी भवति। कूटेऽनृत इति। अनृते प्लवना मतिर्यस्यासावनृतप्लवनः असत्याभिधायी असत्याभिभाषी च। बन्धनपः केचित्कूटेऽनृतकृपणबन्धनपश्च जात इति पठन्ति। एवंविधः कूटाख्ये योगे जातो भवति। इति कूटयोगः। छत्रोद्भव इति। स्वजनसौख्यकरः स्वजनेषु सुखं करोतीति स्वजनसौख्यकरः अन्त्यसौख्यो वृद्धत्वे सुखितः एवंविधः छत्राख्ये योगे जातो भवति। इति छत्रयोगः। कार्मुकभवः शूरश्च संग्रामप्रियः, प्रथमांत्यसौख्यः प्रथमे बाल्ये सुखी अन्त्ये वृद्धत्वे सुखी च एवंविधः कार्मुकभवः चापाख्ये योगे जातो भवति। इति चापयोगः।। १६।।

भाषा– नौका योग में जन्म लेनेवाला कीर्ति से युक्त, चल सुखवाला (अर्थात् कभी सुख, कभी दुःख) और कृपण होता है। कूट योग में उत्पन्न होने वाला मिथ्याभाषी और कारागार का मालिक होता है। छत्रयोग में जातक अपने परिवार को सुख देनेवाला और अन्त वयस में सुख पानेवाला होता है और चाप (धनुष) योग में जातक शूर और बाल्य तथा वार्धक्य वयस में सुखी होता है। अर्थात् मध्य वयस में दुःखी होता है।।१६।।

अथार्द्धचन्द्रसमुद्रचक्रवल्लकीजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

अर्धेन्दुजः सुभगकान्तवपुः प्रधान-
स्तोयालये नरपतिप्रतिमस्तु भोगी।
चक्रे नरेन्द्रमुकुटद्युतिरञ्जितांघ्रिर्वीणो-
द्भवश्च निपुणः प्रियगीतनृत्यः ।।१७।।

अर्धेन्दुज इति।। सुभगः सर्वजनप्रियः कान्तवपुः प्रदर्शनीयः प्रधानः सर्वजनपूज्यः एवंविधोऽर्धेन्दुजोऽर्द्धचन्द्राख्ये योगे जातो भवति। नरपतिप्रतिमः राज्ञा तुल्यः भोगी भोगवान् एवंविधस्तोयालये समुद्राख्ये योगे जातो भवति। चक्रेति। नरेन्द्रा राजानः तेषां मुकुटाः किरीटाः चूडामणिरत्नानि तेषां द्युतिः कान्तिः तया रञ्जितौ छुरितावंघ्री पादौ यस्य, राजानस्तस्य पादयोः पतन्ति महाराजाधिराजो भवतीत्यर्थः। तपोज्ञानादियोगाद्राज्ञां पूजनीयो वा एवंविधश्चक्राख्ये योगे जातो भवति। आकृतियोगविंशतिजातानां फलं व्याख्यातम्। अत्रैव भूपालसंख्यायोगानां फलं व्याख्यायते। वीणोद्भवश्चेति। निपुणः

सूक्ष्मदृष्टिः, प्रियगीतनृत्यः गीतप्रियो नृत्यप्रियश्च एवंविधो वीणोद्भवो वीणाख्ये योगे जातो भवति।। १७।।

भाषा— अर्धचन्द्र योग में जन्म लेनेवाला मनुष्य सर्वजनप्रिय, सुन्दर, कान्तियुक्त और प्रधान (सर्वमान्य) होता है। समुद्रयोग में उत्पन्न दरिद्र-कुल का भी मनुष्य राजा के समान और भोगी होता है। चक्रयोग में उत्पन्न मनुष्य राजाओं से वन्दनीय (चक्रवर्ती राजा अथवा विशिष्ट ज्ञानयुक्त होकर राजाओं का गुरु) होता है। वीणा योग में उत्पन्न मनुष्य सूक्ष्मबुद्धि और गानविद्या एवं नृत्य में प्रीति करनेवाला होता है।। १७।।

अथ दामिनीपाशकेदारशूलजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

दातान्यकार्यनिरतः पशुपश्चदाम्नि
पाशे धनार्जनविशीलसभृत्यबन्धुः।
केदारजः कृषिकरः सुबहूपयोज्यः शूरः
क्षतो धनरुचिर्विधनश्च शूले ।।१८।।

दातान्यकार्येति।। दाता उदारः, अन्यकार्यनिरतः परोपकारसक्तः, पशुपः पशुरक्षिता बहुपशुभाग्भवति। अथवा बहुपाठे बहूनां पालयिता रक्षयिता। ग्रामाधिपतिरित्यर्थः। एवंविधो दाम्नि योगे जातो भवति। पाश इति। धनार्जने विशीलः धनार्जनविशीलः धनार्जनविशीलश्चासौ सभृत्यबन्धुश्च धनार्जनविशीलसभृत्यबन्धुः स्वयमेव धनार्जने विशीलः असन्मार्गेण धनार्जनं करोति। तथाभूता अस्य भृत्याः कर्मकरा बान्धवाश्च भवन्ति। एवंविधः पाशाख्ये योगे जातो भवति। केदारज इति। कृषिकरः कृषिं करोति सूबहूपयोज्यः सुष्ठ शोभनं कृत्वा बहूनानुपयुक्ष्यते उप-करोति एवविधः केदारजः केदाराख्ये योगे जातो भवति। शूरः समरधीरः, क्षतः प्रहारितः, धनरुचिः अर्थप्रियः। केचिद्वधरुचिरिति पठन्ति। विधनः दरिद्रश्च एवंविधः शूलाख्ये योगे जातो भवति।। १८।।

भाषा— दामयोग में उत्पन्न होनेवाला दाता, परोपकारी और पशुओं का पालन करनेवाला होता है। पाश योगोत्पन्न नौकर और बन्धुवर्ग सहित धन संग्रह करने में शीलरहित होता है अर्थात् वह लज्जा को त्याग करके अनीति से धन-लाभ करता है। केदार-योगोत्पन्न कृषि करनेवाला और बहुतों का उपकारी होता है और शूल योग में उत्पन्न मनुष्य युद्धप्रिय, शस्त्र द्वारा क्षत शरीरवाला, धन की इच्छा करने वाला, परञ्च सदा धनहीन होता है।। १८।।

अथ युगगोलयोर्जातस्य स्वरूपं सर्वेषां च नाभसयोगानां समस्तदशासु फलप्रदर्शनं हरिण्याऽऽह—

धनविरहितः पाखण्डी वा युगे त्वथ गोलके
विधनमलिनोऽज्ञानोपेतः कुशिल्प्यलसोऽटनः।
इति निगदिता योगाः सार्द्धं फलैरिह नाभसा
नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि ॥१६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके नाभसयोगाध्यायो द्वादशः ॥१२॥

धनविरहित इति॥ धनविरहितः अर्थहीनः, पाखण्डी त्रयीमार्गव्यपेतः एवंविधो युगाख्ये योगे जातो भवति। वाशब्दोऽत्र चार्थे। अर्थहीनः पाखण्डी च। अथशब्द आनन्तर्ये। विधनोऽर्थहीनः, मलिनो मलोपेतशरीरः मलिनवासा वा, अज्ञानोपेतः मूर्खः, कुशिल्पी लोके निंद्यशिल्पकर्ता, अलसः क्रियास्वसमर्थः, अटनो भ्रमणशीलः। नन्वत्रालसोऽटनश्चेति विरुद्धम्। उच्यते। स्वरूपेणालसः तथाप्यतिदारिद्र्याद् भोजनक्रियामटनं विना सम्पादयितुमशक्यत्वादटनः एवंविधो गोलाख्ये योगे जातो भवति। एवं सप्तसु संख्यायोगेषु शुभफलं व्याख्यातम्। इति निगदिता योगा इति। इत्येवम्प्रकारा नाभसयोगाः फलैः सार्द्धं सह निगदिता उक्ताः। इहास्मिन्नध्याये एते समस्तदशास्वपि नियतफलदाः सर्वकालफलप्रदाः चिन्त्या विज्ञातव्याः। ननु वज्रादिष्वाद्यन्तसुखिता प्रदर्शिता तत्कथं समस्तदशास्वित्युक्तम्। उच्यते। तेषां वचनाद्यथादर्शितकालः सुखदुःखयोर्भविष्यति। येषां कालविभागो नोक्तस्तेषां समस्तदशास्वपि यथादर्शितसुखदुःखप्रदा भविष्यन्ति। ननु कस्यचित्समस्तं जन्म सुखेन दुःखेन चैकरूपेण गच्छति ये च भोगिनः तेऽपि मानसैर्दुःखैरभिभूता भवन्ति येऽपि भिक्षाशिनस्तेऽपि कदाचिद्धर्माभितप्ता भवन्ति। शीतलासुद्रुमच्छायासु सुखितमित्यात्मानं मन्यते। तस्मादेवमादिसुखं दुखं सर्वेण संसारिजातेन विपर्ययेणानुभूयते तत्कथं समस्तदशास्वपि योगाः फलप्रदा भवन्ति। उच्यते। नैते योगा दशाष्टकवर्गफलहन्तारः। शुभमशुभं वा फलं दशापतिर्ददात्यष्टकवर्गाश्रितमपि फलं च। अतो यथाकालं अपि समग्रजन्मनि फलं ददत्येवं मिश्रफलानुभावो भोगिनां दरिद्राणां च सम्भवत्येव। एवं तावन्नाभसयोगाध्यायो व्याख्यातः। अस्मिन्नध्याये यद्वक्तव्यं पूर्वं प्रतिज्ञातं तदुच्यते। दलयोगाकृतियोगयोः समकालमुपस्थानं नास्ति तथा दलयोगैः सहा-

श्रययोगानां तुल्यकालमुपस्थानं नास्त्येव। अथ दलयोगैः सह संख्यायोगा युज्यन्ते तदा दलयोगैर्युज्यन्ते तदा दलयोगफलमेव भवति। अथाकृतियोगाः संख्यायोगैर्युज्यन्ते तदाप्याकृतियोगफलं भवति यस्मात्संख्यायोगानामपवादः। अन्यान्पूर्वमुक्तान्विहाय आश्रययोगानामप्यपवादः। आश्रययोगास्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिता इति। तस्मात्संख्यायोगा आश्रयोगाश्चाभिभूयन्ते। अथाश्रययोगेन सह संख्यायोगस्यावस्थानं भवति तदा आश्रययोग एव भवति। नन्वाश्रययोगसंख्यायोगानां तुल्ये अपवादे आश्रययोगेन संख्यायोगः कथमभिभूयते। उच्यते। यदि संख्यायोगेनाश्रययोगस्यावस्थानं भवति संख्यायोगो भवति। तत्र यदि आश्रययोगेन भवति तदा आश्रययोगस्यावकाश एव सम्भवति। आश्रययोगेन संख्यायोगस्थाने कृते अस्त्येवान्योऽवकाशः संख्यायोगस्य। किन्तु एकस्मिन्राशौ यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा आश्रययोगेन संख्यायोगोऽभिभूयते तदा गोलकस्यानवकाशः, अवकाश एव न स्यात्। परिभाषा चेयम्। निरवकाशा हि विधयः सावकाशान्विधीन्बाधन्ते इति। अथैकैकं राशिलग्नगतमधिकृत्य पुराणयवनमतेन यत्सार्द्धं योगशतमुक्तं तदधुना प्रदर्श्यते। तेषां तावत्त्रयोविंशतिराकृतियोगाः, विंशतिरेव वराहमिहिरेणाभिहिताः। किन्तु तेषां मध्याद्गदायोगेन चत्वारो योगा अभिहिताः। लग्नचतुर्थयोः यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा गदायोगः। चतुर्थसप्तमयोः शंखः। सप्तमदशमयोः बभ्रुकः। दशमलग्नयोः ध्वजः। तत्र पूर्वोक्ता विंशतिः शंखबभ्रुध्वजैः सह त्रयोविंशतिः भवन्ति। संख्यायोगानां सप्तविंशत्यधिकं शतमेव सोर्द्धं शतं (१५०) राशिद्वादशकेनाष्टादशशतानि भवन्ति (१८००) तत्र सप्तविंशत्यधिकस्य संख्यायोगशतस्योत्पत्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथैषां विकल्पाः सप्त तत्रैकविकल्पाः सप्त। द्विविकल्पा एकविंशतिः। त्रिविकल्पाः पञ्चत्रिंशत् (३५)। चतुर्विकल्पाः पञ्चाग्निः (३५)। पञ्चविकल्पा एकविंशतिः (२१)। षड्विकल्पाः सप्त। सप्तविकल्पा एकः। एतदेकीकृतं सप्तविंशत्यधिकं शतं भवति (१२७)। एतदेव वराहमिहिरेण विवाहपटले उक्तम्– 'द्वित्र्यादियोगान्परिगृह्य कस्मान्नोक्तं शतं सत्रिगुणं विलग्ने।' अथ विकल्पगणितं प्रदर्श्यते। तत्राचार्येण विकल्पगणितं संहितायामुक्तम्– 'पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्ये प्रवदन्ति संख्याम्। इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय

नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ।।' इति। अत्र यावत्संख्यानां विकल्पाः क्रियन्ते तदन्तानेकाद्यानुपर्युपरि स्थापयेत्। तद्यथात्र सप्तग्रहैः एकाद्यानां सप्तान्तानां न्यासः ७।६।५।४।३।२।१ अत्र पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्यमिति। पूर्वश्चासौ गतश्च पूर्वगतः, तेन पूर्वेण गतेन युक्त-मन्त्यमुपरिस्थं स्थानं विना तद्वर्जयित्वेत्यर्थः। प्रथममेकमधः स्थितं तयोर्द्वयोरुपरिस्थयोः क्षिपेत्। एवं तत्र त्रीणि रूपाणि जातानि तानि च स्वोपरि त्रिषु क्षिपेत्। एवं षड् जातानि स्वोपरि चतुर्षु क्षिपेत्। एवं तत्र दश रूपाणि जातानि तानि स्वोपरि पञ्चसु क्षिपेत्। तत्र पञ्चदश जातानि तानि स्वोपरि षट्सु क्षिपेत्। तत्रैकविंशतिर्जातानि अतः परं च कर्मणोऽभावा त्तदुपरि सप्तैव स्थिताः। तदुक्तं स्थानं विनान्त्यं पुनरप्यधः प्रभृत्येवं कृत्वा पञ्चमे स्थाने पञ्चत्रिंशज्ञाताः पुनरपि चतुर्थे पञ्चत्रिंशत्। पुनस्तृतीये एकविंशतिः। पुनः द्वितीये सप्त। प्रथमे एकैव ७।२१।३५।३५।२१।११।१ अथवान्येन प्रकारेण संख्यानयनम्। 'प्रतिलोमं निक्षिप्य चानुलोममधः क्षिपेत्। अनुलोमं समाहन्यादधःस्थेन विभाजयेत्।।' न्यासः। अत्र सप्तानामधोरूपं छेदः। अनेन भागमपहृत्य लब्धं सप्त (७) एतैः द्वितीये स्थाने षट् संगुण्याधःस्थिताभ्यां द्वाभ्यां भागमपहरेत्। लब्धमेकविंशतिः (२१)। एतैस्तृतीयस्थपञ्च संगुण्य त्रिभिः भजेल्लब्धं पञ्चत्रिंशत् (३५)। एतैश्चतुर्थस्थानस्थचत्वारि सङ्गुण्य चतुर्भिः भजेल्लब्धं पञ्चत्रिंशत् (३५)। एभिः संगुण्य पञ्चभिः विभज्यावाप्तमेकविंशतिः (२१)। एभिः द्वे सङ्गुण्य षड्भिः विभज्यावाप्तं सप्त। एभिरेकं संगुण्य सप्तभिः विभज्यावाप्तमेक एव। एवमेकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तविकल्पाः। एवं विकल्पगणितं कृत्वा यथेष्टसंख्यानां व्याख्येयम्। अथैतेषां विकल्पानां लोष्टकप्रस्तारेणोद्धारः कर्तव्यः। 'इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः।' इति। यथेष्टसंख्यानां विकल्पानामाद्याक्षराणि लिखेत्। तत्रैकविकल्पेष्वेकैकंलोष्टचिह्नं कृत्वा विकल्पानुत्पादयेत्। द्विविकल्पेष्वाद्यं स्थिरं लोष्टचिह्नं कृत्वा द्वितीयेन लोष्टचिह्नितेन सह विकल्पानुत्पादयेत्। एवं त्र्यादिषु विकल्पेष्वाद्य स्थिरं लोष्टचिह्नितं कृत्वान्यः चरलोष्टचिह्नितैः सहान्यान्विकल्पानुत्पादयेत्। एवं कृत्वा प्रथमस्यापासनं कार्यम्। नीते निवृत्तिरिति वचनात्। तृतीयोऽन्यचिह्न कृत्वा न्यसेत्। पुनरन्यनीतिरितिवचनात्। उक्तं च भट्टश्रीशङ्करेण— 'वर्णसंख्याककोष्ठाख्यां क्षेपपङ्क्तौ ज्ञेयसंख्यकः। ज्ञेयोक्त्यान्यत्र तत्पूर्व-

स्तत्पूर्वश्चाप्यनुक्रमात् ।। नयेद्वामाद्यमन्यर्क्षाद्ये पूर्वे तां निरन्तरम्। ज्ञेयोऽन्त्यः पुनराद्याश्च कोष्ठनिष्ठावधिर्विधिः ।। ' इति। तद्यथैकविकल्पाः। रविः। चन्द्रः। भौमः। बुधः। गुरुः। शुक्रः। शनिः। एवमेकविकल्पाः सप्त (७) अथ द्विविकल्पाः। रविचन्द्रौ। रविभौमौ। रविबुधौ। रविजीवौ। रविशुक्रौ। रविसौरौ। एवमादित्येन सह षट् (६) शशिभौमौ। शशिबुधौ। शशिजीवौ। शशिशुक्रौ। शशिसौरौ। एवं चन्द्रेण सह पञ्च (५) भौमबुधौ। भौमजीवौ। भौमशुक्रौ। भौमसौरौ। एवं भौमेन सह चत्वारः (४) बुधजीवौ, बुधशुक्रौ, बुधसौरौ। एवं बुधेन सह त्रयः (३) जीवशुक्रौ। जीवसौरौ। एवं जीवेन सह द्वौ (२) शुक्रसौरौ। एवं शुक्रेण सह एकः (१) एवं द्विविकल्पाः एकविंशतिः। अथ त्रिविकल्पाः। रविचन्द्रभौमाः। रविचन्द्रबुधाः। रविचन्द्रजीवाः। रविचन्द्रशुक्राः। रविचन्द्रसौराः। एवमादित्यचन्द्रयोः पञ्च (५) रविभौमबुधाः। रविभौमजीवाः। रविभौमशुक्राः। रविभौमसौराः। एवमादित्याङ्गारकयोश्चत्वारः (४) रविबुधजीवाः। रविबुधशुक्राः। रविबुधसौराः। एवमादित्य बुधयोस्त्रयः (३) रविजीवशुक्राः। रविजीवसौराः। एवं द्वौ (२) रविशुक्रसौराः। एवमेकः (१) एवमादित्येन सह त्रिविकल्पाः पञ्चदश (१५)। चन्द्रभौमबुधाः। चन्द्रभौमजीवाः। चन्द्रभौमशुक्राः। चन्द्रभौमसौराः। एवं चन्द्रभौमयोश्चत्वारः (४) चन्द्रबुधजीवाः। चन्द्रबुधशुक्राः। चन्द्रबुधसौराः, एवं त्रयः (३) चन्द्रजीवशुक्राः। चन्द्रजीवसौराः। एवं द्वौ (२) चन्द्रशुक्रसौराः। एवमेकः (१) एवं चन्द्रेण सह दश (१०)। भौमबुधजीवाः। भौमबुधशुक्राः। भौमबुध सौराः। एवं त्रयः भौमजीवशुक्राः। भौमजीवसौराः। एवं द्वौ (२) भौमशुक्रसौराः। एवं भौमेन सह षट् (६) बुधजीवशुक्राः। बुधजीवसौराः। एवं द्वौ (२) बुधशुक्रसौराः। जीवशुक्र सौराः एकः (१) एवं त्रिविकल्पाः पञ्चत्रिंशत् (३५)। अथ चतुर्विकल्पाः। रविचन्द्रभौमबुधाः। रविचन्द्रभौमजीवाः। रविचन्द्रभौमशुक्राः। रविचन्द्रभौमसौराः। एवं चत्वारः (४) रविचन्द्रबुधजीवाः। रविचन्द्रबुधशुक्राः। रविचन्द्रबुधसौराः। एवं त्रयः (३) रविचन्द्रजीवशुक्राः। रविचन्द्रजीव सौराः। एवं द्वौ (२) रविचन्द्रशुक्रसौराः। एवमेकः (१) रविभौमबुधजीवाः रविभौमबुधशुक्राः। रविभौमबुधसौराः। एवं त्रयः (३) रविभौमजीवशुक्राः रविभौमजीवसौराः। एवं द्वौ (२) रविभौमशुक्रसौराः। एवमेकः (१) रविबुधजीवसौराः। एवं द्वौ (२) रविबुधशुक्रसौराः। रविजीवशुक्रसौराः। एवमादित्येन सह विंशतिः (२०) चन्द्रभौमबुधजीवाः। चन्द्रभौमबुधशुक्राः। चन्द्रभौमबुधसौराः। एवं त्रयः

(३) चन्द्रभौमजीवशुक्राः। चन्द्रभौमजीवसौराः। एवं द्वौ (२) चन्द्रभौमशुक्रसौराः। एकः (१) चन्द्रबुधजीवशुक्राः। चन्द्रबुधजीवसौराः। चन्द्रबुधशुक्रसौराः। चन्द्रजीवशुक्रसौराः। एवं चन्द्रेण सह दश (१०) भौमबुधजीवशुक्राः। भौमबुधजीवसौराः। भौमबुधशुक्रसौराः। भौमजीवशुक्रसौराः। एवं भौमेन सह चत्वारः। (४) बुधजीवशुक्रसौराः। बुधेन सह एकः (१) एवं चतुर्विकल्पाः पञ्चत्रिंशत् (३५) अथ पञ्चविकल्पाः। रविचन्द्रभौमबुधजीवाः। रविचन्द्रभौमबुधशुक्राः। रविचन्द्रभौमबुधसौराः। एवं त्रयः (३) रविचन्द्रभौमजीवशुक्राः। रविचन्द्रभौमजीवसौराः। एवं द्वौ (२) रविचन्द्रभौमशुक्रसौराः। रविचन्द्रबुधजीवसौराः। रविचन्द्रबुधशुक्रसौराः। रविचन्द्रजीवशुक्रसौराः। रविभौमबुधजीवशुक्राः। रविभौमबुधजीवसौराः। एवमादित्येन सह पञ्चदश (१५) चन्द्रभौमबुधजीवशुक्राः। चन्द्रभौमबुधजीवसौराः। चन्द्रभौमबुधशुक्रसौराः। चन्द्रभौमजीवशुक्रसौराः। चन्द्रबुधजीवशुक्रसौराः। एवं चन्द्रमसा सह पञ्च। भौमबुधजीवशुक्रसौराः। एवं पञ्च विकल्पाः एकविंशतिः (२१) अथ षड्विकल्पाः। आदित्यचन्द्रभौमबुधजीवशुक्राः। रविचन्द्रभौमबुधशुक्रसौराः। रविभौमबुधगुरुशुक्रसौराः। चन्द्रभौमबुधजीवशुक्रसौराः। रविचन्द्रभौमगुरुशुक्रसौराः। एवं षड्विकल्पाः। अथ सप्तविकल्पाः। रविचन्द्रभौमबुधजीवशुक्रसौराः। सप्तविकल्पा एक एव (१)। एवं सप्तविंशत्यधिकं विकल्पशतम् (१२७) व्याख्यातम्॥१९॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ नाभसयोगाध्यायो द्वादशः।

भाषा– युगयोग में धनहीन और वेदशास्त्रनिन्दक होता है। और गोल योग में जन्म लेनेवाला निर्धन, मलिन शरीर, अज्ञानी, निन्दायुक्त कर्म करनेवाला, आलसी, (कार्य करने में अक्षम) और व्यर्थ घूमनेवाला होता है। इस अध्याय में फलसहित जो नाभसयोग ३२ कहे गये हैं, वे समस्त दशा में (अर्थात् सर्वदा जीवन-भर) निश्चितरूप से फलप्रद होते हैं।१९।

विशेष अर्थ–यहाँ कहा गया है कि ये नाभसयोग समस्त दशा में फलप्रद होते हैं। किन्तु वज्रयोग का फल कहा गया है कि 'पूर्व और अन्तिम वयस में सुखी होता है। एवं यव योग में मात्र मध्य वयस में सुखी होता है।' तो फिर समस्त दशा में नियत फलप्रद कैसे हुआ? इसका समाधान यह है कि जिस योग के लिए जो समय कहा गया है उस समय में उसका फल होता है। जिस योग का समय नहीं कहा गया है उसका फल सर्वदा होता है। क्योंकि ये योग सब ग्रहों के संबन्ध से होते हैं इसलिए सब ग्रहों की दशा में इन योगों का फल होना सम्भव है। जैसे माला योग में भोगी का जन्म लिखा है तो वह जीवन-भर दरिद्र होकर भी भोग करनेवाला होता है। तथा सर्पयोगोत्पन्न धनी भी हो तो सर्वदा क्लेशभागी बना रहता है। इत्यादि विचार कर समझना चाहिए॥१९॥

अथ चन्द्रयोगाध्यायः ॥१३॥

अथातश्चन्द्रयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवार्कात्केंद्रपणफरापोक्लिमस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपज्ञानं मालिन्याऽऽह—

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि।
अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान्स्यात्सुखी च ॥१॥

अधमसमवरिष्ठानीति ॥ विनयो नीतिः सुशीलता, वित्तं धनं, ज्ञानं विज्ञानं शास्त्रावबोधः, धीः बुद्धि नैपुण्यं कार्येषु सूक्ष्मदर्शित्वम् अर्कादादित्यात्केन्द्रादिसंस्थे केन्द्रपणफरापोक्लिमसंस्थे शशिनि चन्द्रे जातस्य विनयवित्तज्ञानधीनैपुणान्यधमसमवरिष्ठानि निकृष्टमध्यमोत्तमानि भवंति। एतदुक्तं भवति। यस्यादित्याज्जन्मनि केन्द्रस्थश्चंद्रमा भवति तस्यैतानि विनयादीन्यधमानि भवंति। अधमत्वमेतेषामभावः यस्माद्यवनेश्वरः— 'मूर्खान्दरिद्रांश्चपलान्विशीलाश्चंद्रः प्रसूतेऽर्कचतुष्टयस्थः।' यस्य जन्मसमये पणफरस्थश्चंद्रः सूर्याद्भवति तस्यैतानि मध्यमानि भवंति। न चातिभवतीत्यर्थः। यस्य जन्मनि आपोक्लिमस्थश्चंद्रो भवति तस्य विनयादीनि वरिष्ठानि भवंति। तथा च यवनेश्वरः— 'कुर्याद्द्वितीये धनिनां प्रसूतिमापोक्लिमस्थे कुलजाग्रजानाम्।' इति। अहनीत्यादि। चन्द्रे शशिनि स्वेऽधिमित्रांशकस्थे अहनि निशि च यथासंख्यं सुरगुरुसितदृष्टे जीवशुक्राभ्यामवलोकिते जातो वित्तवान् धनी सुखी भोगवांश्च स्याद्भवेत्। एतदुक्तं भवति। यस्याहनि दिवा जन्म भवति चन्द्रश्च यस्मिंस्तस्मिन्राशौ स्वनवांशकस्थो भवति स्वस्याधिमित्रांशके स्थितो वा सुरगुरुणा जीवेन दृष्टः तदा स पुरुषो वित्तवान्सुखी च भवति। अथ यस्य निशि रात्रौ जन्म भवति चन्द्रमाः स्वनवांशकस्थोऽधिमित्रनवांशकस्थो वा भवति शुक्रेण दृश्यते तदा जातो वित्तवान्सुखी च भवति। अत्राहनि निशि च चन्द्रे स्वाधिमित्रांशके वा स्थिते यथासंख्यं सुरुगुरुसितदृष्टे केचिद्व्याचक्षते। अयुक्तमेतत्। यस्माद्भगवान्गार्गिः— 'स्वांशेऽधिमित्रस्यांशे वा संस्थितो दिवसे शशी। गुरुणा दृश्यते तत्र जातो वित्तसुखान्वितः॥ निश्येवं भृगुणा दृष्टः शशी जन्मनि शस्यते। विपर्ययस्थे शीतांशौ जायंतेऽल्पधना नराः॥' इति। तथा च यवनेश्वरः- 'स्वांशे शशी भार्गवदृष्टमूर्तिर्निशीश्वरोत्पत्तिकरः प्रदिष्टः। तदुत्तमोद्भूतिकरः स तु स्याद्दृष्टो दिवा देवपुरोहितेन'। १

भाषा– चन्द्रमा यदि सूर्य से केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान में हो तो शील, धन, शास्त्रज्ञान, बुद्धि और कार्य-निपुणता ये सब निकृष्ट=अधम (अल्प) होते हैं। यदि पणफर (२।५।८।११) स्थान में सूर्य हो तो उपरोक्त विनय, धन आदि मध्यम मान से होते हैं। यदि सूर्य से आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थान में चन्द्रमा हो तो जातक के उपरोक्त शील, धन आदि उत्तम होते हैं। तथा चन्द्रमा अपने नवांश या अधिमित्र के नवांश में हो तथा दिन में गुरु से और रात्रि में शुक्र से दृष्ट हो तो जन्म लेनेवाला धनवान् और सुखी होता है।।१।।

अथाधियोगाख्यं योगं सफलं वसंततिलकेनाऽऽह–

सौम्यैः स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दो-
स्तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म ।
सम्पन्नसौख्यविभवा हतशत्रवश्च
दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाताः ।।२।।

सौम्यैरिति।। इन्दोश्चन्द्रात्सौम्यैः बुधगुरुसितैः स्मरारिनिधनेषु सप्तमषष्ठाष्टमेषु त्रिषु स्थानेषु द्वयोर्वा स्थानयोरेकस्मिन्वा स्थाने सर्व एव भवंति तदाधियोगाख्यो योगो व्याख्यातो भवति। अत्र कैश्चि-त्षष्ठसप्तमाष्टमानां स्थानानां सौम्यग्रहत्रयस्यावस्थानादशून्यतायामधि-योगो व्याख्यातः। तच्चायुक्तम्। यस्माच्छ्रुतकीर्तिः– 'निधनं द्यूनं षष्ठं चंद्रस्थानाद्यदा शुभैर्युक्तम्। अधियोगः स प्रोक्तो व्यासकृतौ सप्तधा पूर्वैः।।' व्यासकृतौ विस्तरकृतौ पूर्वैराचार्यैश्चिरन्तनैः च सप्तधा सप्त-प्रकारः प्रोक्तः कथितः। तद्यथा। षष्ठे राशौ यदा सर्वे सौम्यग्रहाः भवन्ति तदैकः। सप्तमे द्वितीयः। अष्टमे तृतीयः। षष्ठसप्तमयोश्चतुर्थः। षष्ठाष्टमयोः पंचमः। सप्तमाष्टमयोः षष्ठः। षष्ठसप्तमाष्टमेषु सप्तम इति। एवमेवंस्थितेषु सौम्येष्वधियोगः। अर्थादेवैवमवस्थितेषु पापैः पापः। मिश्रैर्मिश्रः। तथा च श्रुतकीर्तिः– 'षट्सप्तमाष्टसंस्थै-श्चन्द्रात्सौम्यैः शुभोऽधियोगः स्यात्। पापः पापैरेवं मिश्रैर्मिश्रस्तथै-वोक्तः।।' अधियोगजातानां फलमाह। तस्मिंश्चमूपसचिवक्षिति-पालजन्मेति। तस्मिन्नधियोगे जातश्चमूपः सेनापतिर्भवति। सचिवो मंत्री वा भवति। क्षितिपालो नृपालो राजा वा भवति। तेषां युगपद-संभवात्पृथक्त्वे व्याख्यातम्। तथा च बादरायणः– 'शशिनः सौम्याः षष्ठे द्यूने वा निधनसंस्थिता वा स्युः। जातो नृपतिर्ज्ञेयो मंत्री वा

सैन्यनायको वापि।।' तेनैतदुक्तं भवति। बुधगुरुसितैरुत्कृष्टवीर्यैः नृपो मध्यमवीर्यैः सचिवः हीनवीर्यैः सेनापतिः। एषामन्यतमा अपि। संपन्नसौख्यविभवाः अतिसौख्यैश्वर्यसंपन्नाः हतशत्रवः नष्टपरिपवः, दीर्घायुषः चिरजीविनः, विगतरोगभयाः स्वस्थदेहा निर्भयाश्च एवंविधे योगे जाता भवंति। केषांचिन्मते राजयोग एव। तथा च सारावल्याम्– 'द्यूनं षष्टमथाष्टमं शिशिरगोः प्राप्ताः समस्ताः शुभाः क्रूराणां यदि गोचरे न पतिताः सूर्यालयाद्दूरतः। भूपालः प्रभवेत्स यस्य जलधेर्वेलावनांतोद्भवैः सेना मत्तकरींद्रदानसलिलं भृंगेर्मुहुः पीयते।।' तथा च मांडव्यः– 'अमित्रं यामित्रं निधनमथवा शीतरुचितो गताः सर्वे सौम्यास्तमिह जनयेयुर्नरपतिम्। घृतेनैवासेकं गतवति विषादाश्रुपयसा प्रतापाग्निर्यस्य ज्वलति हृदये शत्रुषु भृशम्।।' ।।२।।

भाषा– चन्द्रमा से ६, ७, ८ इन स्थानों में सब शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) हो तो सेनापति या मंत्री अथवा राजा का जन्म होता है। अर्थात् शुभ ग्रह निर्बल हो तो सेनापति, मध्य बल हो तो मंत्री, पूर्ण बली हो तो राजा का ही जन्म होता है। तथा इस योग में जन्म लेनेवाला सुख और वैभव से सम्पन्न, शत्रुओं से रहित, दीर्घायु और नीरोग शरीरवाला होता है।।२।।

विशेष अर्थ– यहाँ किसी टीकाकार का मत है कि ६।७।८। तीनों स्थान में तीनों ग्रह हो तभी अधियोग होता है किन्तु ऐसा अर्थ करने से अन्य आचार्यों के मत से विरोध होता है। यथा श्रुतकीर्ति आदि–

षट्सप्तमाष्टसंस्थैश्चन्द्रात्सौम्यैः शुभोऽधियोगः स्यात्।
पापः पापैरेवं मिश्रैर्मिश्रस्तथैवोक्तः॥२॥

अथ सुनफानफादुरुधुराकेमद्रुमाख्यं योगचतुष्टयं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

हित्वार्कं सुनफानफादुरुधुराः स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः
शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ ।
केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते
केचित्केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते (१)।।३।।

हित्वार्कमिति।। अथार्कमादित्यं हित्वा त्यक्त्वा यदान्यः कश्चिद्ग्रहो भौमादिकः शीतांशोश्चन्द्रात्स्वांत्योभयस्थो भवति द्वितीयद्वादशस्थौ वा द्वौ भवतस्तदा सुनफा-अनफा-दुरुधुराख्यं योगत्रयं भवति। एतदुक्तं भवति। अर्कं हित्वा यदाऽन्यो ग्रहः कश्चिचंद्राद्द्वितीयस्थाने भवति तदा

(१) *'वदन्त्युक्तिः प्रसिद्धा न सा' इति पाठः समुचितः।*

सुनफानाम योगो भवति। यदार्कं वर्जयित्वा चन्द्रात् द्वादशे कश्चिद्ग्रहो भवति तदा अनफानाम योगो भवति। एवमर्कं वर्जयित्वा चन्द्रात् द्वितीयद्वादशगौ ग्रहौ भवतस्तदा दुरुधुरानाम योगो भवति। अत्र योग-त्रयेऽप्यादित्यो द्वितीये द्वादशे वा स्थाने भवति तदा न योगभंगकृद्भवति। किन्तु योगकर्तृणां मध्ये न गण्यते। एतदुक्तं भवति। आदित्यो द्वितीये द्वादशे वा स्थाने भवतु, मा भवतु वा भौमादिस्तत्रस्थो यथादर्शितयोगकर्ता भवति। एते योगा बहुभिराचार्यैः पठिताः अन्यथा केमद्रुम उक्तः। अस्माद्योगत्रयाद्यद्येकोऽपि योगो न भवति तदा केमद्रुमाख्यो योगो भवति। एतदुक्तं भवति। भौमादीनां केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते। अन्येषां गर्गादीनामेव मतम्। केन्द्रे जन्मलग्ने केन्द्रे शीतकरे चन्द्रे वा भौमादिग्रहयुते भौमादिग्रहविरहितयोरपि चन्द्राद्-द्वितीयद्वादशस्थानयोः केमद्रुमो न भवति। केन्द्रे ग्रहयुत इत्यत्र कैश्चिच्चंद्र-केंद्रमेव केवलं व्याख्यातं तच्चायुक्तम्। चन्द्रकेन्द्रे ग्रहयुते चन्द्रमसोऽपि योगोऽन्तर्भवति शीतकरे ग्रहयुते इत्येतदपार्थकं स्यात्। अत्र च भग-वान्गार्गिः— 'व्ययार्थकेन्द्रगश्चन्द्राद्विना भानुं न चेद्ग्रहः। कश्चित्स्याद्वा विना चन्द्रं लग्नात्केन्द्रगतोऽथवा।। योगः केमद्रुमो नाम तदा स्यात्तत्र गर्हितः। भवन्ति निन्दिताचारा दारिद्र्यापत्तिसंयुताः।' तथा सारावल्याम्— 'सुनफानफादुरुधुराः क्रमेण योगा भवन्ति रविरहितैः। वित्तान्त्योभयसंस्थैः कैरवनबान्धवाद्विहगैः।। एतेन यदा योगाः केन्द्रग्रहवर्जितः शशांकश्च। केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि च सर्वग्रहादृष्टे।।' एवं 'केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते।।' अन्ये आचार्या नेच्छन्ति। वराहमिहिरस्तु पुनरिच्छत्येव। यस्मिन्नर्थे तस्यैव तद्वाक्यम्। अन्यथा केमद्रुम इत्येवमुक्त्वा परमतमुक्तम्। अन्यैरसौ एवं 'केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते।' स्वल्पजातकेऽपि तेन सुनफानफादुरुधुराभावे केमद्रुम उक्तः। तथा च— 'रविवर्ज्यंद्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगैः सुनफा उभयस्थितै-र्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः।।' सत्यस्यापि। 'सुनफानफादुरुधुराभावे केमद्रुमः।' तथा च— 'सुनफात्वनफायोगौ दौरुधुरश्चन्द्रसंस्थितः क्षेत्रात्। प्राक्पृष्ठतो ग्रहेन्द्रैरुभयगतैस्तेषु रविवर्ज्यम्।। केमद्रुमोऽत्र योगोऽन्यथा भवेद्यत्र गर्हितं जन्म।' केचित्केन्द्रनवांशकेष्विति। केचिदाचार्याः केन्द्रेषु केचिच्च नवांशकेष्वेतद्योगत्रयं वदन्ति। तथा चन्द्राद्द्वितीयद्वादशोभय-स्थैर्ग्रहैः सुनफाद्या योगा व्याख्यातः। तथा कैश्चिच्छ्रुतकीर्तिजीवशर्मप्रभृ-

तिभिः केन्द्रवशान्नवांशकवशाच्च व्याख्याताः। एतदुक्तं भवति। ताराग्रहैश्चन्द्राच्चतुर्थस्थानस्थैः सुनफा। दशमस्थानस्थैरनफा। चतुर्थदशमस्थितैः दुरुधुरा अतोऽन्यथा केमद्रुमः। तथा च श्रुतकीर्तिः– 'चन्द्राच्चतुर्थैः सुनफा दशमस्थितैः कीर्तितोऽनफा विहगैः। उभयस्थितैर्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः॥' केचित्केन्द्रनवांशकेषु तु वदन्ति। यत्र तत्र राशौ यद्राशिसंबन्धिनवांशके चन्द्रमा भवति तस्माद्राशेर्यो द्वितीयो राशिः तत्र यदि ताराग्रहो भवति तदा सुनफा। अथ चन्द्रनवांशकराशेः द्वादशे ताराग्रहो यदा भवति तदानफा। अथ चन्द्रनवांशकराशेः द्वितीये द्वादशे च यदा ग्रहौ भवतस्तदा दुरुधुरा। अतोऽन्यथा केमद्रुमः। तथा च चन्द्रनवांशकराशितो द्विद्वादशराशी यदि ग्रहरहितौ भवतः तदा केमद्रुमः। तथा च जीवशर्मा– 'यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः। तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यो प्रकीर्तितः॥ द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विर्द्वादशस्थितैः। प्रोक्तो दुरुधुरायोगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः॥ 'उक्तिः प्रसिद्धा न ते येषामेवं विधं मतम्। तेषामुक्तिर्लोके न प्रसिद्धा तन्मतं वृद्धज्योतिषिकैर्नाङ्गीकृतमित्यर्थः।३

भाषा– सूर्य को छोड़कर कोई भी ग्रह यदि चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में हो तो सुनफा, यदि द्वादश स्थान में हो तो अनफा, यदि दोनों (द्वितीय और द्वादश) में हो तो दुरुधुरा नामक योग होता है। अन्यथा (अर्थात् द्वितीय वा द्वादश में कोई ग्रह नहीं हो तो) केमद्रुम योग होता है, ऐसा बहुतों का मत है। तथा कितने (श्रुतिकीर्ति, जीवशर्मा आदि) आचार्यों का मत है कि यदि लग्न से केन्द्र में या चन्द्रमा के साथ कुजादि ग्रहों में से कोई भी ग्रह हो तो केमद्रुम नहीं माना जाता है, अर्थात् केमद्रुम योग का भङ्ग हो जाता है। तथा कितने आचार्यों का मत है कि जिस प्रकार द्वितीय द्वादश स्थान में ग्रहवश सुनफादि योग होते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा से केन्द्र (४।१०) स्थान में ग्रह के होने से सुनफादि योग होता है। और कोई चन्द्र नवांश (चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में हो उस राशि) से द्वितीय द्वादश स्थान में ग्रहों से सुनफादि योग मानते हैं। परञ्च उन लोगों का मत प्रसिद्ध (सर्वमान्य) नहीं है॥ ३॥

यथा श्रुतिकीर्ति, जीवशर्मा आदि–

'चन्द्राच्चतुर्थैः सुनफा दशमास्थितः कीर्तितोऽनफा विहगैः।
उभयस्थितैर्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः॥'

'यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः।
तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः॥

द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विर्द्वादशस्थितैः।
प्रोक्तो दुरुधुरायोगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः॥'

अथ सुनफानफादुरुधुराख्यं प्रकारज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

त्रिंशत्सरूपा सुनफानफाख्याः षष्टित्रयं दौरुधरे प्रभेदाः।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः।४।

त्रिंशत्सरूपा इति।। सरूपा त्रिंशदेकत्रिंशत्। एकत्रिंशत्सुनफाख्या योगाः। षष्टित्रयमशीत्यधिकं शतं दुरुधुराप्रभेदानामेषां पूर्ववद्विकल्पगणितम्। इच्छाविकल्पैरित्यादि। एतच्छ्लोके लोष्टुकप्रस्तारं पूर्वमेव नाभसयोगाध्याये व्याख्यातम्। इच्छाविकल्पैः क्रमशः परिपाट्यान्यत्र लोष्टुकमभिनीय नीते निवृत्तिः कार्या। पुनः भूयोऽन्यगीतिरित्यत्र स्थानान्तरे चालनम्। अथ सुनफादयो भौमबुधगुरुसितासितैः पञ्चभिर्निष्पाद्यंते। तस्मादिच्छाविकल्पाः पंच तेषां न्यासः। अत्र प्राग्वत्पूर्वेण पूर्वेण गणितेन युक्तस्थानं विनान्त्यं प्रवदन्ति संख्यामिति कृत्वा जातम् ५।४।३।२।१। अथवा प्राग्वत्संस्थः स्वसंख्या जाताः $\frac{५}{१}|\frac{४}{२}|\frac{३}{३}|\frac{२}{४}|\frac{१}{५}$ एवमेकविकल्पाः ५ द्विविकल्पाः १० त्रिविकल्पाः दश चतुर्विकल्पाः पंच पंचविकल्पा एकः। एवमेकत्रिंशत् ।५।१०।१०।५।१। तद्यथा। द्वितीये चन्द्राद्भौमःबुधःबृहस्पतिः शुक्रः सौरः। एवमेकविकल्पाः पंच। अथ द्विविकल्पाः। भौमबुधौ १ भौमजीवौ २ भौमशुक्रौ ३ भौमसौरौ ४ बुधजीवौ ५ बुधशुक्रौ ६ बुधसौरौ ७ जीवशुक्रौ ८ जीवसौरौ ९ शुक्रसौरौ १०। एवं द्विविकल्पाःदश। अथ त्रिविकल्पाः।भौमबुधजीवाः १ भौमबुधशुक्राः २ भौमबुधसौराः ३ भौमजीवशुक्राः ४ भौमजीवसौराः ५ भौमशुक्रसौराः ६ बुधजीवशुक्राः ७ बुधजीवसौराः ८ बुधशुक्रसौराः ९ जीवशुक्रसौराः १०। एवं त्रिविकल्पा दश। अथ चतुर्विकल्पाः। भौमबुधजीवशुक्राः १ भौमबुधजीवसौराः २भौमजीवशुक्रसौराः ३ भौमबुधशुक्रसौराः ४ बुधजीवशुक्रसौराः ५ एवं चतुर्विकल्पाः पंच। अथ पंचविकल्पाः। भौमबुधजीवशुकसौराः। एवं पंचविकल्पा एकः। एवमेकत्रिंशत् सुनफायोगाः उत्पादिताः। अनेनैव प्रकारेण द्वादशस्थैः अनफाभेदाः एकत्रिंशत्। अथ दुरुधुराविकल्पाः। एषां लोष्टुकप्रस्ताराभावात्स्वबुद्ध्येच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीयेति न्यायेन व्युत्पत्तिः। एको द्वितीये। द्वितीयो द्वादशे। एको द्वादशे। द्वितीयो द्वितीये। तद्यथा। भौमबुधौ १ बुधभौमौ २ भौमजीवौ ३ जीवभौमौ ४ भौमशुक्रौ ५ शुक्रभौमौ

६ भौमसौरौ ७ सौरभौमौ ८ बुधजीवौ ९ जीवबुधौ १० बुधशुक्रौ ११ शुक्रबुधौ १२ बुधसौरौ १३ सौरबुधौ १४ जीवशुक्रौ १५ शुक्रजीवौ १६ जीवसौरौ १७ सौरजीवौ १८ शुक्रसौरौ १९ सौरशुक्रौ २०। अथैको द्वितीये। द्वादशे द्वौ। द्वितीये द्वौ। द्वादशे चैकः। तद्यथा। भौमः बुध-जीवौ १ बुधः जीवभौमौ २ जीवः शुक्रबुधौ ३ बुधः शुक्रभौमौ ४ भौमः बुधसौरौ ५ बुधः सौरभौमौ ६ भौमः जीवशुक्रौ ७ जीवः शुक्रभौमौ ८ भौमः जीवसौरौ ९ जीवः सौरभौमौ १० भौमः शुक्रसौरौ ११ शुक्रः सौरभौमौ १२ बुधः भौमजीवौ १३ जीवः भौमबुधौ १४ बुधः भौम-शुक्रौ १५ भौमः शुक्रबुधौ १६ बुधः भौमसौरौ १७ भौमः सौरबुधौ १८ बुधः जीवशुक्रौ १९ जीवः शुक्रबुधौ २० बुधः जीवसौरौ २१ जीवः सौरबुधौ २२ बुधः शुक्रसौरौ २३ शुक्रः सौरबुधौ २४ जीवः भौमबुधौ २५ भौमः बुधजीवौ २६ जीवः भौमशुक्रौ २७ भौमः शुक्रजीवौ २८ जीवः भौमसौरौ २९ भौमः सौरजीवौ ३० जीवः बुधशुक्रौ ३१ बुधजीवौ ३२ जीवः बुधसौरौ ३३ बुधः सौरजीवौ ३४ जीवः शुक्र-सौरौ ३५ शुक्रः सौरजीवौ ३६ शुक्रः भौमबुधौ ३७ भौमः बुधशुक्रौ ३८ शुक्रः भौमजीवौ ३९ भौमः जीवशुक्रौ ४० शुक्रः भौमसौरौ ४१ भौमः सौरशुक्रौ ४२ शुक्रः बुधजीवौ ४३ बुधः जीवशुक्रौ ४४ शुक्रः बुधसौरौ ४५ बुधः सौरशुक्रौ ४६ शुक्रः जीवसौरौ ४७ जीवः सौरशुक्रौ ४८ सौरः भौमबुधौ ४९ भौमः बुधसौरौ ५० सौरः भौमजीवौ ५१ भौमः जीवसौरौ ५२ सौरः भौमशुक्रौ ५३ भौमः शुक्रसौरौ ५४ सौरः बुधजीवौ ५५ बुधः जीवसौरौ ५६ सौरः बुधशुक्रौ ५७ बुधः शुक्रसौरौ ५८ सौरः जीवशुक्रौ ५९ जीवः शुक्रसौरौ ६०। एवमेकत्र जाताः ८०। अथैको द्वितीये। द्वादश त्रयः। तद्यथा। भौमः बुधजीवशुक्राः १ बुधजीवशुक्राः भौमः २ भौमः बुधजीवसौराः ३ बुधजीवसौराः भौमः ४ भौमः बुधशुक्रसौराः ५ बुधशुक्रसौराः भौमः ६ भौमः जीवशुक्र-सौराः ७ जीवशुक्रसौराः भौमः ८ बुधः भौमजीवशुक्राः ९ भौमजीव-शुक्राः बुधः १० बुधः भौमजीवसौराः ११ भौमजीवसौराः बुधः १२ बुधः भौमशुक्रसौराः १३ भौमशुक्रसौराः बुधः १४ बुधः जीवशुक्रसौराः १५ जीवशुक्रसौराः बुधः १६ जीवः भौमबुधशुक्राः १७ भौमबुधशुक्राः जीवः १८ जीवः भौमबुधसौराः १९ भौमबुधसौराः जीवः २० एवमेकत्र १००। जीवः भौमशुक्रसौराः १ भौमशुक्रसौराः जीवः

२ जीवः बुध-शुक्रसौराः ३ बुधशुक्रसौराः जीवः ४ शुक्रः भौमबुधजीवाः ५ भौमबुध-जीवाः शुक्रः ६ शुक्रः भौमबुधसौराः ७ भौमबुधसौराः शुक्रः ८ शुक्रः भौमजीवसौराः ९ भौमजीवसौराः शुक्रः १० शुक्रः बुधजीवसौराः ११ बुधजीवशुक्राः सौरः १२ सौरः भौमबुधजीवाः १३ भौमबुधजीवाः सौरः १४ सौरः भौमबुधशुक्राः १५ भौमबुधशुक्राः सौरः १६ सौरः भौम-जीवशुक्राः १७ भौमजीवशुक्राः सौरः १८ सौरः बुधजीवशुक्राः १९ बुधजीवशुक्राः सौरः २०। एवमेकत्र १२०। अयं द्वितीये एको द्वादशे चत्वारः। चत्वारो द्वितीये द्वादशे चैकः। तद्यथा। भौमः बुधजीव-शुक्रसौराः १ बुधजीवशुक्रसौराः भौमः २ बुधः भौमजीवशुक्रसौराः ३ भौमजीवशुक्रसौराः बुधः ४ जीवः भौमबुधजीवशुक्रसौराः ५ भौमबुधशुक्रसौराः जीवः ६ शुक्रः भौमबुधजीवसौराः ७ भौम-बुधजीवसौराः शुक्रः ८ सौरः भौमजीवशुक्राः ९ भौमबुधजीवशुक्राः सौरः १०। एवमेकत्र १३०। अयं द्वौ द्वादशे द्वावेव द्वितीये। तद्यथा। भौमबुधौ जीवशुक्रौ १ जीवशुक्रौ भौमबुधौ २ भौमबुधौ जीवसौरौ ३ जीवसौरौ भौमबुधौ ४ भौमबुधौ शुक्रसौरौ ५ शुक्रसौरौ भौमबुधौ ६ भौमजीवौ शुक्रबुधौ ७ शुक्रबुधौ भौमजीवौ ८ भौमजीवौ बुधसौरौ ९ बुधसौरौ भौमजीवौ १० भौमजीवौ शुक्रसौरौ ११ शुक्रसौरौ भौमजीवौ १२ भौमशुक्रौ बुधजीवौ १३ बुधजीवौ भौमशुक्रौ १४ भौमशुक्रौ बुधसौरौ १५ बुधसौरौ भौमशुक्रौ १६ भौमशुक्रौ जीवसौरौ १७ जीवसौरौ भौमशुक्रौ १८ बुधजीवौ भौमसौरौ १९ भौमसौरौ बुधजीवौ २०। एकमेकत्र १५०। भौमसौरौ बुधशुक्रौ १ बुधशुक्रौ भौमसौरौ २ भौमसौरौ जीवशुक्रौ ३ जीवशुक्रौ भौमसौरौ ४ बुधजीवौ शुक्रसौरौ ५ शुक्रसौरौ बुधजीवौ ६ बुधशुक्रौ जीवसौरौ ७ जीवसौरौ बुधशुक्रौ ८ जीवशुक्रौ बुधसौरौ ९ बुधसौरौ जीवशुक्रौ १०। एवमेकत्र १६०। द्वौ द्वितीये त्रयो द्वादशे द्वादशे द्वौ त्रयो द्वितीये च। तद्यथा। भौमबुधौ जीवशुक्रसौराः १ जीवशुक्रसौराः भौमबुधौ २ भौमजीवौ बुधशुक्रसौराः ३ बुधशुक्रसौराः भौमजीवौ ४ भौमशुक्रौ बुधजीवसौराः ५ बुधजीवसौराः भौमशुक्रौ ६ भौमसौरौ बुधजीवशुक्राः ७ बुधजीव-शुक्राः भौमसौरौ ८ बुधजीवौ भौमशुक्रसौराः ९ भौमशुक्रसौराः बुध-जीवौ १०। एवमेकत्र १७०। बुधशुक्रौ भौमजीवसौराः १ भौमजीव-सौराः बुधशुक्रौ २ बुधसौरौ भौमजीवशुक्राः ३ भौमजीवशुक्राः

बुधसौरौ ४ जीवशुक्रौ भौमबुधसौराः ५ भौमबुधसौराः जीवशुक्रौ ६ जीवसौरौ भौमबुधशुक्राः ७ भौमबुधशुक्राः जीवसौरौ ८ शुक्रसौरौ भौमबुधजीवाः ९ भौमबुधजीवाः शुक्रसौरौ १०। एवमेकत्र १८०। एवं दुरुधुरायोग-भेदः शतमशीत्यधिकं प्रदर्शितः ॥४॥

भाषा– पूर्वोक्त सुनफा और अनफा योग के ३१, ३१ भेद होते हैं। और दुरुधुरा के ६० x ३=१८० भेद होते हैं। इनको समझने के लिए लोष्टुक प्रस्तार के द्वारा इष्टविकल्प से इष्टभेद समझकर, फिर उसको छोड़कर क्रम से अन्य भेद का आनयन कर सब भेद समझना चाहिए ॥४॥

विशेष अर्थ– ग्रहों की स्थिति के अनुसार भेद समझने के लिए ज्यौतिषशास्त्र के दो प्रसिद्ध प्रकार हैं। एक वराहमिहिर का और दूसरा भास्कराचार्य का। ***यथा वराहमिहिर–***

'पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तः स्थानं विनाऽन्त्यं प्रवदन्ति संख्याम्।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥'

अर्थ– जितने ग्रह या जितनी वस्तुओं के एक-द्वित्र्यादि योग से भेद की संख्या जाननी हो तो उतने स्थानों में १ आदि अंक लिखे। उसमें अन्तिम अङ्कतुल्य एक ग्रह से भेद होता है। फिर (नीचे) दूसरी पंक्ति में ऊपर लिखित अंकों को पूर्व, पूर्व को अग्रिम में जोड़कर लिखें, किन्तु अन्तिम अंक को छोड़कर अर्थात् अन्तिम अंक में पूर्व अंक न जोड़े, इसी प्रकार फिर उसके नीचे तीसरी पंक्ति बनावें एवं चौथी इत्यादि तब तक बनावे जब तक अन्तिम पंक्ति में केवल १ आ जावे। इसी प्रकार छन्दःशास्त्र में छन्दों के भेद और एकद्व्यादिलगक्रिया जानने के लिए चक्र बनाते हैं, वह पताके की आकृति होने के कारण 'पताका' कहलाती है। इनमें अन्तिम अंक एकद्वित्र्यादि भेद और सबका योग सम्पूर्ण भेद की संख्या होती है।

उदाहरण– जैसे सुनफादि योग में 'रविचन्द्र को छोड़कर' केवल कुजादि ५ ग्रहों की एकद्व्यादि संयोगस्थिति से भेद जानना है, तो यहाँ १ से क्रम से ५ तक संख्या प्रथम पंक्ति में लिखी, इनमें अन्तिम (५) अंक एक ग्रह से बने भेद की संख्या हुई। दूसरी पंक्ति में ऊपरवाले अंकों को ही पूर्व, पूर्व

१	२	३	४	५	एक ग्रह से
१	३	६	१०	....	दो ग्रहों से
१	४	१०	....	....	तीन ग्रहों से
१	५	....	....	....	चार ग्रहों से
१	....	....	....	....	पाँच ग्रहों से

को अग्रिम में जोड़कर (४ स्थान तक अर्थात् अन्तिम को छोड़कर) रखने से अन्त में १० हुए। यह २ ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। फिर तृतीय पंक्ति

में द्वितीय पंक्तिवाले अंकों को ही पूर्व-पूर्व को अग्रिम में जोड़ने से अन्त में १०। यह ३ ग्रहों के योग से भेदसंख्या हुई। फिर चतुर्थ पंक्तिमें इसी प्रकार (तृतीय पंक्तिवाले २ स्थान तक) के अङ्कों को पूर्व को अग्रिम में जोड़कर रखने से अन्तिम अङ्क ५। यह चार ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। इसी प्रकार पञ्चम पंक्ति में ऊपरवाली (चतुर्थ) पंक्ति के अन्तिम अङ्क को छोड़कर पूर्वाङ्क १ ही बचा। यह पाँचों ग्रह के योग से भेद संख्या हुई। तथा सब अन्तिमांको का योग ५+१०+ १०+५+१=३१ समस्त भेद हुए। इस प्रकार सुनफा और अनफा के भेद ३१ उपपन्न होते हैं। यही छन्दःशास्त्र में 'खण्डमेरु' भी कहलाता है। इसी प्रकार को भास्कराचार्य ने अपनी पाटीगणित से और सरल कर दिया है। यथा–

'एकाद्येकोत्तरा अङ्का न्यस्ता भाज्याः क्रम स्थितैः।
परः पूर्वेण सद्गुण्यस्तत्परस्तेन तेन च॥
एकद्वित्र्यादिभेदाः स्युरिदं साधारणं स्मृतम्।' *॥इति॥*

अर्थात् जितनी वस्तुओं के एकद्वित्र्यादियोगजनित भेद समझना हो तो उतने स्थान तक १ से आरम्भ कर व्यस्त (बाई तरफ बढ़ाकर) एकोत्तर संख्या लिखकर उनमें क्रम से एकादि एकोत्तर संख्या से भाग देना, फिर पूर्व, पूर्व से अग्रिम को गुणाकर नीचे पंक्तिमें क्रम से पृथक्-पृथक् रखने से एकद्वित्र्यादि भेदों की संख्या होती है। उन सबों का योग समस्त भेद की संख्या होती है।

उदाहरण– जैसे ५ ग्रहों से एकद्वित्र्यादि भेद संख्या जानने के लिये १ से ५ तक उत्क्रम से संख्या लिखकर उनमें १ से ५ तक अङ्कों के क्रम से भाग दिया अर्थात् सबके नीचे क्रम से १ आदि अङ्कों को भाजक (हर) रूप में लिखा। इनमें

$\frac{५}{१}$	$\frac{४}{२}$	$\frac{३}{३}$	$\frac{२}{४}$	$\frac{१}{५}$
५	१०	१०	५	१

प्रथम $\frac{५}{१}$= ५ यह एक ग्रह से उत्पन्न भेद संख्या हुई। फिर से अगले कों गुणा करने (५ × $\frac{४}{२}$=१० यह) दो ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इस १० से अग्रिम को गुणा करने से (१०× $\frac{३}{३}$=१०) यह तीन ग्रहों से संख्या भेद हुई। फिर इससे अग्रिम अंक को गुणा करने से (१०× $\frac{२}{४}$=५) यह चार ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इससे अग्रिम अंक को गुणा करने से (५× $\frac{१}{५}$=५) यह चार ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इससे अग्रिम अंक को गुणा करने से (५× $\frac{१}{५}$ = १) यह पाँचों ग्रह के योग से भेद संख्या हुई। सबका योग = ५+१०+१०+५+१=३१) पूर्व समान ही हुआ।

अब दुरुधुरा योग के १८० भेद की उपपत्ति दिखलाते हैं। यथा– दुरुधुरा भी मंगलादि ५ ग्रहों से ही होती है। उनमें इतनी विशेषता है कि द्वितीय और द्वादश दोनों स्थानों में ग्रह की स्थिति रहती है इसलिए एक स्थान में किसी एक ग्रह को रख कर दूसरे स्थानों में शेष चार ग्रह को कुल भेद पूर्व रीति से चार ग्रह से भेद संख्या चक्र (४+६+४+१=१५)

४/१	३/२	२/३	१/४	
४	६	४	१	भेद योग १५

पन्द्रह होते हैं। अतः अनुपात हुआ कि एक ग्रह के साथ १५ भेद तो ५ ग्रहों से कितने?-१५ x ५=७५ ये एक स्थान से भेद हुए। इतने ही फिर द्वितीय स्थान से ७५। अतः दोनों मिलकर ७५+ ७५=१५० एवं एक स्थान में २ और द्वितीय में ३ तथा दोनों में २,२ ग्रहों से ३० कुल ६० x ३=१८०भेद हुए। इससे *'षष्टित्रयं दौरुधरे प्रभेदाः'* यह उपपन्न हुआ।।४।।

अथ सुनफाऽनफययोगजातस्य स्वरूपविज्ञानं मालिन्याह—

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा
भवति हि सुनफायां धीधनख्यातिमांश्च।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान्ख्यातकीर्ति-
र्विषयसुखसुवेषो निर्वृतश्चानफायाम् ।।५।।

स्वयमिति।। स्वयमात्मनाधिगतमर्जितं वित्तं येन स्वबाह्वर्जितधनः पार्थिवो राजा भवति। तत्समो वा। यदि राजा न भवति तदा राज-तुल्यः। धीधनख्यातिमान् बुद्धिवित्तकीर्तिभिर्युक्त : एवंविधः सुनफायां योगे जातो भवति। प्रभुरिति। प्रभुरप्रतिहताज्ञः, अगदशरीरो नीरुजदेहः अविद्यमाना गदा रोगा यस्य, शीलवान् दमविनयादि-भिर्गुणैर्युक्तः, ख्यातकीर्तिः प्रथितयशाः जनविदितसद्गुणः, विषय-सुखः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः विषयाः तत्सुखैर्युक्तः। ननु किं विषय-व्यतिरिक्तसुखमस्ति? उच्यते। अस्ति। यद्योगिनां मनःसुखं सुवेषः अनुलेपनालंकारमाल्यसद्वस्त्रधारणशीलः निर्वृतः मनोदुःखविनि-र्मुक्तः एवंविधोऽनफायां योगे जातो भवति।।५।।

भाषा– सुनफायोग में जन्म लेनेवाला स्वबाहुबल से धन प्राप्ति करनेवाला, राजा वा राजा के तुल्य, बुद्धि, धन और सुयश से युक्त होता है। अनफायोग में उत्पन्न मनुष्य लोगों को वश में रखनेवाला, रोगरहित, सुशील, विख्यात यश, विषय-सुखों से युक्त, सुन्दर रूपयुक्त और मानस चिन्ता से रहित होता है।।५।।

अथ दुरधुराकेमद्रुमयोगे जातयोः स्वरूपं वसंततिलकेनाऽऽह-

उत्पन्नभोगसुखभुग्धनवाहनाढ्यस्त्या-
गान्वितो दुरुधुराप्रभवः सुभृत्यः।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वाः
प्रेष्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः ।।६।।

उत्पन्नभोगसुखभुगिति ।। यत्र तत्र यथा तथोत्पन्नभोगैः सुखानि भुङ्क्ते धनेन वित्तेन वाहनैरश्वादिभिराढ्यः, त्यागान्वितो दाता, सुभृत्यः शोभनभृत्य एवंविधो दुरुधुरायोगे जातो भवति। केमद्रुम इति। मलिनः मलिनवासाः, स्नानालसश्च दुःखितः शरीराद्यैः दुःखैरन्वितः, नीचः स्वकुलानुचिताधर्मकर्मकरः, निःस्वः दरिद्रः, प्रेष्यः दासकर्मकरः, खलः दुर्जनस्वभावः– एषामुक्तार्थानामन्यतमेन युक्तो यदि नृपतेः राज्ञोऽपि वंशे कुले जातः तथाप्येवंविधः केमद्रुमजातो भवति। केचिदत्रैकवचनं पठंति– 'केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वः प्रेष्यः खलश्चनृपतेरपि वंशजातः।' तथापि न कश्चिद्दोषः।।६।।

भाषा– दुरुधुरा योग में उत्पन्न मनुष्य उपस्थित भोग और सुख को भोगनेवाला, धन, वाहनों से युक्त, दानी और ईमानदार नौकरों को रखनेवाला होता है और केमद्रुम योग में राजवंश में भी उत्पन्न मनुष्य मलिन, दुःखी, नीच, निर्धन और दूसरों की सेवा करनेवाला होता है।।६।।

एवं तावत्सुनफादिसामान्येन फलमभिधायेदानीं
ग्रहवशाद्विशेषफलं वसंततिलकेनाऽऽह–

उत्साहशौर्यधनसाहसवान्महीजः
सौम्यः पटुः सुवचनो निपुणः कलासु ।
जीवोऽर्थधर्मसुखभाङ्नृपपूजितश्च
कामी भृगुर्बहुधनी विषयोपभोक्ता ।।७।।

उत्साहेति ।। उत्साहवान् बली नित्योद्यमशीलः, शौर्यवान् रणप्रियः, धनवान् वित्तान्वितः, साहसवानसमीक्षितकार्यकारी यद्यत्कार्यं यदा काले त्वविचार्य करोति यः स साहसिकः एवंविधो महीजोऽगारको यदि योगकर्ता भवति तदा जातो भवति। पटुः दक्षः, सुवचनः शोभनवाक्, कलासु निपुणः गीतवाद्यनृत्यचित्रपुस्तककर्मादिषु सूक्ष्मदृष्टिः यदि सौम्यो बुधो योगकर्त्ता तदैवंविधो जातो भवति। अर्थभाक् धनानां भाजनः, धर्मभाक् धर्मक्रियास्वनुरतः, सुखभाक् नित्यसुखितः, नृपपूजितः राज्ञां मान्यः, यदि जीवो बृहस्पतिः योगकरः तदैवंविधो जातो भवति। कामी कामुकः स्त्रीलोलः बहुधनः प्रभूतार्थः, विषयोपभोक्ता विषयाणामिंद्रियार्थानामुपभोक्ता उपभोगशीलः तत्सुखान्वितः यदि भृगुः शुक्रो योगकरस्तदैवंविधो जातो भवति।। ७ ।।

भाषा– सुनफा, अनफा वा दुरुधुरा योग-कारक यदि मंगल हो तो जातक उत्साह, पराक्रम, धन और साहस से युक्त होता है। बुध

हो तो पंडित, मृदुभाषी, कलाओं में कुशल होता है। बृहस्पति हो तो धनी, धर्मात्मा, सुखी और राजमान्य होता है। शुक्र हो तो कामी, अत्यधिक धनों से युक्त और विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धजन्य) सुख को भोगनेवाला होता है॥७॥

अथ शनैश्चरे योगकर्तरि पुरुषस्य स्वरूपं चन्द्रमसि च दृश्यादृश्ये जातस्य स्वरूपज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽऽह—

परविभवपरिच्छोपभोक्ता रवि-
तनयो बहुकार्यकृद्गणेशः।
अशुभकृतदुडुपोऽह्नि दृश्यमूर्ति-
र्गतितनुश्च शुभोऽन्यथान्यदूह्यम् ॥८॥

परविभेति॥ परर्जितानां विभवानामैश्वर्याणां परिच्छदानां गृह-वस्त्रवाहनपरिकराणामुपभोक्ता भवति बहुकार्यकृन्नानाविधानां कार्याणां कर्त्ता, गणेशः बहुगणस्वामी, गणाः, संघाः तेषां प्रभुः एवंविधो रवितनयः शनैश्चरो योगकरो यदि भवति तदा जातो भवति। अत्र योग-त्रये सुनफानफादुरुधुराख्ये एकैकस्य ग्रहस्य फलमुक्तं द्व्यादिसंभवे फलं द्व्यादिकं वाच्यम्। अशुभकृदिति। उडुपश्चंद्रोऽह्नि दिने दृश्यमूर्तिः दृश्य-मानशरीरः अशुभकृदनिष्टफलकर्ता एतदुक्तं भवति। दिवा जन्मनि चन्द्रमा दृश्ये चक्रार्द्धे स्थितः अशुभं फलं करोति। स पुरुषो दारिद्र्यादि-युक्तो भवतीत्यर्थः। गलिततनुरदृश्यमूर्तिः शुभः। एतदुक्तं भवत्यदृश्ये चक्रार्द्धे स्थितः शुभकृज्जातः ऐश्वर्यादियुक्तो भवति। अन्यथान्यदूह्यम्। उक्तप्रकारादन्यथास्थे चन्द्रमसि लमन्यदूह्यं स्वबुद्धया विकल्पनीयम्। एतदुक्तं भवति। रात्रौ जन्मन्यदृश्ये चक्रार्द्धे यस्य चन्द्रो भवति तस्याशुभं जन्म। यस्य दृश्ये चक्रार्द्धे चन्द्रो भवति तस्य शुभं जन्म भवतीत्यर्थः।८

भाषा— यदि शनि सुनफादियोगकारक हो तो दूसरों के धन, गृह, वस्त्रादि का भोग करनेवाला, बहुत कार्य करनेवाला और बहुतों का मालिक होता है। अब चन्द्रमा का फल कहते हैं— यदि दिन में जन्म हो और चन्द्रमा दृश्य चक्रार्ध (सप्तभोग्यांश, ८, ६, १०, ११, १२ भाव और लग्न के भुक्तांश) में हो तो अशुभ फलकारक होता है। यदि अदृश्य चक्रार्ध (लग्न के भोग्यांश २।३। ४।५।६ और सप्तम भाव के भुक्तांश) में हो तो शुभ होता है। रात्रि में इससे भिन्न फल समझना। जैसे— रात्रि में दृश्यचक्रार्ध हो तो शुभ, अदृश्य चक्रार्ध में हो तो अशुभ होता है॥८॥

अथ लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्योपचये सौम्यग्रहा भवन्ति तस्य फलं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

लग्नादतीव वसुमान्वसुमाञ्छशाङ्का-
त्सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैः समस्तैः।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदूनताया-
मन्येष्वसत्स्वपि फलेष्विदमुत्कटेन ॥९॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

लग्नादिति॥ यस्य जन्मनि लग्नात्सौम्यग्रहाः बुधजीवसिता उपचयगता भवन्ति सर्व एव स पुरुषोऽतीव वसुमानत्यर्थं। धनवान्भवति। यस्य शशांकाच्चन्द्रादप्युपचये सर्व एव सौम्यग्रहाः भवन्ति सोऽपि धनवान् भवति। एवं समस्तैः त्रिभिरेतत्फलम्। द्वाभ्यां समः। यस्य लग्नाच्चन्द्राद्वा द्वौ ग्रहौ सौम्यावुपचयगतौ भवतः स समो मध्यधनो भवति। नातिबहुधनो भवतीत्यर्थः। तदूनतायां लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्यैकः सौम्यग्रहः उपचयगतो भवति सोऽल्पवसुमान्किञ्चिद्ध-नान्वितो भवति। अर्थादिवं लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्योपचये न कश्चित्सौम्य-ग्रहो भवति स दरिद्रो भवति। यस्य लग्नचन्द्रयोर्द्वयोरपि सौम्यग्रहा उपचयस्थाः कयापि युक्त्या भवन्ति सोऽप्यतीव वसुमान्भवति। अन्येष्वसत्स्वपि फलेष्विति। अन्येष्वपरेष्वसत्स्वशोभनेष्वपि फलेषु सत्स्विदं फलमुत्कटेन बाहुल्येन भवति। यस्य लग्नाच्चन्द्राद्वा उपचयस्थाः सौम्यग्रहा भवन्ति तस्यान्ययोगमशुभमपि केमद्रुमादिफलमभिभूयेदं शुभमेव फलमुत्कटत्वेन प्राबल्येन भवतीति॥ ९॥

इति भट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

भाषा— लग्न से अथवा चन्द्रमा से यदि सब शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) उपचय स्थान में हो तो अत्यन्त धनवान् होता है, यदि दो शुभग्रह उपचय में हो तो मध्यम प्रकार का धनवान् होता है। यदि कोई एक ही शुभग्रह उपचय स्थान (३।६।१०।११) में हो तो अल्प धनयुक्त होता है। यह योग अशुभ (केमद्रुम आदि) योगों के रहने पर भी विशेष प्रबल होता है, अर्थात् उपचयस्थ शुभ ग्रह के रहने पर भी दारिद्र्य योग का नाश हो जाता है। यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों से उपचय स्थान में शुभ पड़े तो और भी प्रबल योग होता है॥ ९॥

विशेष अर्थ— उपरिकथित सुनफादि शुभयोग में जितने ग्रहों से योग होता है उन सब ग्रहों के जो पृथक् फल कहे गये हैं, वे सब फल प्राप्त होते हैं॥ ९॥

अथ द्विग्रहयोगाध्यायः ॥१४॥

अथ द्विग्रहयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादित्ये चन्द्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

तिग्मांशुर्जनयत्युषेशसहितो यन्त्राश्मकारं नरं
भौमेनाधरतं बुधेन निपुणं धीकीर्तिसौख्यान्वितम् ।
क्रूरं वाक्पतिनान्यकार्यनिरतं शुक्रेण रङ्गायुधै-
र्लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेषु वा ॥१॥

तिग्मांशुरिति॥ तिग्मांशुरादित्यः उषेशेन चन्द्रमसा सहितो युक्तः उषा रात्रिः उषाया ईशः उषेशः रात्रिनाथः नरं मनुष्यं यन्त्राश्मकारं जनयति। यन्त्राणि सहस्त्रयातिप्रभृतीन्यश्मानः पाषाणः तत्क्रियासु तत्कर्मसु निरतं सक्तं तं करोति। एवं भौमेन सहैकराशिगतोऽर्कोऽघ-रतं पापासक्तं जनयति। बुधेन क्रियासु निपुणं सूक्ष्मदृष्टिं धीकीर्ति-सौख्यान्वितं धीर्बुद्धिः, कीर्तिः यशः, सौख्यं सुखं सुखभावः एतै-रन्वितं संयुक्तं, वाक्पतिना गुरुणा क्रूरं विषमस्वभावमन्यकार्यनिरतं परकर्मतत्परं जनयति। शुक्रेण रङ्गायुधैः रङ्गावतरणक्रियया मल्लादि-कयाऽयुधैः खड्गादिभिश्च लब्धस्वं प्राप्तार्थं जनयति। रविजेन शनै-श्चरेण धातुषु ताम्राद्युत्पत्तिमृत्तिकासु गैरिकाद्यासु वा धातुषु कुशलं निपुणं भाण्डप्रकारेषु समुद्गादयस्तेषु कुशलं वा॥१॥

भाषा— यदि जन्म समय में सूर्य, चन्द्रमा से युत हो तो वह यन्त्र और पत्थर के काम करनेवाला होता है, मंगल से युत सूर्य हो तो जातक पापी होता है। बुध से युत हो तो सब कार्य में निपुण और ज्ञान, यश, सुखों से युत होता है। गुरु से युत रवि हो तो क्रूर स्वभाव वाला और दूसरे का कार्य करनेवाला होता है। शुक्र से युत सूर्य हो तो नृत्यगीत (फिल्म कम्पनी) या रणक्षेत्र तथा अस्त्रों से धन प्राप्त करनेवाला होता है। यदि शनि से युत रवि हो तो धातु (ताँबा आदि) तथा आभूषणादिक कर्म में निपुण होता है॥१॥

अथ भौमादियुक्ते चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

कूटस्त्र्यासवकुम्भपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशी
सञ्ज्ञः [1]प्रसृतवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यान्वितम् ।

---

[1] अत्र च्छन्दोभङ्गदोषत्वात् 'प्रश्रितवाक्य' मिति पाठः समीचीनः। प्रश्रितवाक्यं विनीतवचनं— 'निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः' इत्यमरः॥

विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं सांगिराः
वस्त्राणांससितः क्रियादिकुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम् ॥२॥

कूट इति ॥ कूटं पण्यद्रव्याणां प्रतिरूपक्रियासक्तं स्त्रीपण्यं नारीविक्रयकम्, आसवपण्यं पानविक्रयं, कुम्भपण्यं घटविक्रयकम्, अशिवमश्रेयस्करम् मातुः जनन्याः एवंविधः शशी चन्द्रमाः सवक्रो वक्रेणाङ्गारकेण युक्तो नरं जनयति। संज्ञ इति। प्रसृतवाक्यं प्रियंवदम्, अर्थनिपुणमर्थेषु सूक्ष्मदृष्टिं, सौभाग्येन सर्वजनवल्लभेन कीर्त्या यशसान्वितं संयुक्तं संज्ञो बुधसहितः शशी नरं जनयति। विक्रान्तं शत्रुजेतारं, कुलमुख्यं वंशप्रधानम् अस्थिरमतिं चपलं, वित्तेश्वरं धनस्वामिनं, साङ्गिराः अङ्गिरसा गुरुणा संयुक्तः शशी नरं जनयति। वस्त्राणां क्रियादिकुशलं तन्तुवायकम् आदिग्रहणात्सीवनरञ्जनक्रयविक्रयेष्वपि कुशलं ससितः शुक्रेण संयुक्तः शशी नरं जनयति। क्रियादिकुशलं सर्वक्रियासु निपुणं सार्किः आर्किणा शनैश्चरेण युक्तः द्विःसंस्कृता पुनर्भूः तस्याः सुतं पुत्रं शशी नरं जनयति। पूनर्भूलक्षणम्। 'परिणीता पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्। अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः'॥२॥

भाषा– यदि चन्द्रमा मंगल से युत हो तो नकली द्रव्य, स्त्री, मदिरा और घड़ा का विक्रय करनेवाला होता है और माता को कष्ट देने वाला होता है। बुध से युत चन्द्रमा हो तो कोमल वचन बोलनेवाला, धनोपार्जन में चतुर, सौभाग्य और सुयश से युक्त होता है। गुरु से युत चन्द्रमा हो तो पराक्रमी, कुल में श्रेष्ठ, चञ्चल बुद्धि और पूर्ण धनवान् होता है। शुक्र से युत चन्द्रमा हो तो वस्त्रों की क्रिया (सूत कातना, कपड़ा बुनना आदि) में चतुर और शनि से युत हो तो पुनर्भू (दूसरा पति करनेवाली स्त्री) का पुत्र होता है॥२॥

अथाङ्गारके बुधादियुक्ते जातस्य स्वरूपं स्रग्धरयाऽऽह–

मूलादिस्नेहकूटैर्व्यवहरति वणिग्बाहुयोद्धा ससौम्ये
पुर्यध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिः प्राप्तवित्तो द्विजो वा।
गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरतो द्यूतकृत्सासुरेज्ये
दुःखार्तोऽसत्यसन्धः ससवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च।३।

मूलादिति॥ ससौम्ये भूमिजे बुधयुक्तेऽङ्गारके जातो वणिग्भवति। स च वणिङ्मूलादिभिः व्यवहरति मूलादीनि मूलपुष्पवल्कलसारफलानि, स्नेहास्तैलादयः एतैर्व्यवहरति। कूटैश्च द्रव्यप्रतिरूपैः

कृत्रिमैर्व्यवहरति। बाहुयोद्धा नियुद्धकुशलश्च भवति। एवंविधः ससौम्ये सौम्येन बुधेन युक्ते भूमिजे जातो भवति। पुर्यध्यक्षः नगराधिकृतः पुरि अध्यक्षः स्वामी अथवा नरपतिः राजा भवति। अथवा द्विजो ब्राह्मणः प्राप्तवित्तो लब्धधनः। केचित्प्राप्तविद्य इति पठन्ति। सजीवे गुरुसंयुक्ते भौमे जातो भवति। गोपः गोपालकः, मल्लः बाहुयोद्धा। अथशब्दः पादपूरणे। दक्षः चतुरः, परयुवतिरतः परस्त्रीसक्तः, द्यूतकृत्कितवः, सासुरेज्ये असुरैरीज्यः, असुरेज्यः, तेन असुरेज्येन शुक्रेण युक्ते भूमिजे जातः एवंविधो भवति। दुःखार्तः दुःखपीडितः, असत्यसन्धः असत्यैव सन्धा प्रतिज्ञा यस्य अनृतभाषी, निन्दितः कुत्सितोऽसूयया युक्तः ससवितृतनये सवितृतनयेन सौरेण युक्ते भूमिजे जातो भवति॥ ३॥

भाषा– यदि मंगल, बुध से युत हो तो जातक फल-मूल, तैल, घृत, कृत्रिम द्रव्यों से व्यवहार करनेवाला बनिया, मल्ल होता है। गुरु से युत हो तो ग्राम का स्वामी, राजा अथवा धनवान् ब्राह्मण होता है। शुक्र से युत हो तो गो पालन करनेवाला, पहलवान, चतुर, परस्त्रीगामी और जुआड़ी होता है। शनि से युत हो तो दुःखी, मिथ्यावादी और लोक में निन्दित होता है॥ ३॥

अथ बुधे जीवादियुक्ते जीवे च शुक्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

सौम्ये रङ्गचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यवि-
द्वाग्मी भूगणपः सितेन मृदुना मायापटुर्लङ्घकः।
सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ
ज्ञेयः श्मश्रुकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽन्नकारोऽपि वा॥४॥

सौम्ये रङ्गचर इति॥ रङ्गचरो मल्लादिकः, गीतप्रियः गीतवल्लभः, नृत्यविन्नृत्यज्ञः एवंविधो सौम्ये बुधे बृहस्पतिना युक्ते जातो भवति। प्रशस्ता वाग्यस्य स वाग्मी वचनक्रियया परप्रत्यायनसमर्थः, भूगणपः भुवश्च गणानां संघानामधिपतिः एवंविधो बुधे सितेन शुक्रेण सहिते जातो भवति। मायापटुः परवञ्चनदक्षः, लंघकः गुरुवचनातिक्रामी एवंविधो मृदुना शनैश्चरेण सहिते बुधे जातो भवति। सद्विद्य इति। सद्विद्यः शोभनविद्यः, धनदारवान् वित्तकलत्रसंयुक्तः, बहुगुणः प्रभूतगुणैः शौर्यादिभिर्युक्तः एवंविधो गुरौ जीवे शुक्रेण युक्ते जातो भवति। श्मश्रुकरो नापितः अथवा घटकृत्कुम्भकारः अथवान्नकारः सूपकारः एवंविधोऽसितेन सौरेण युक्तेगुरौ जातो ज्ञेयो विज्ञातव्यः॥ ४॥

भाषा– बुध यदि गुरु से युत हो तो रणप्रिय, गीतप्रिय, नृत्य जाननेवाला होता है। यदि शुक्र से युत हो तो बोलने में चतुर, पृथ्वीपति या जनसमूह का मालिक (नेता) होता है। शनि से युक्तहो तो दूसरों को ठगनेवाला (खुफिया), गुरुजनों की आज्ञा को न माननेवाला होता है। यदि गुरु शुक्र से युत हो तो उत्तम विद्वान्, धन, स्त्री और गुणों से युक्त होता है। शनि से युक्त गुरु हो तो नाई, कुम्भकार या रसोइयाँदार होता है।४।

अथ शुक्रे शनैश्चरयुक्ते जातस्य स्वरूपं द्विग्रहयोगफलं च पुष्पिताग्रयाऽऽह–

असितसितसमागमेऽल्पचक्षुर्युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः।
भवति च लिपिपुस्तचित्रवेत्ता कथितफलैः परतो विकल्पनीयाः।५

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके द्विग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

असितेति ।। अल्पचक्षुरल्पदृष्टिः युवतिसमाश्रयेण स्त्रीसंश्रयणेन सम्यक् प्रवृद्धं वित्तं धनं यस्य स युवतिसमाश्रयसंप्रवृद्धवित्तः लिपिरक्षरविन्यासः,- पुस्तकलेखकर्म, चित्रमालेख्यम् एषां वेत्ता तज्ज्ञः एवंविधः असितसितसमागमे शनैश्चरस्य शुक्रेण संयोगे जातः पुरुषः एवंविधो भवति। यदि राशिद्वये द्वौ ग्रहयोगौ भवतः तच्च द्विग्रहयोगद्वयस्यापि फलं वक्तव्यम्। अथ राशित्रये द्विग्रहयोगत्रयं भवति तदा द्विग्रहयोगत्रयस्यापि फलं वाच्यम्। कथितफलैरिति। द्वाभ्यां परतोऽपरेऽन्ये त्रयो ग्रहा यदैकगता भवन्ति तदा कथितफलैरुक्तफलैरेव विकल्पनीयाः तदा द्विग्रहयोगत्रयस्य फलं वाच्यम्। यद्यर्कचन्द्रभौमा एकराशिस्था भवन्ति तदार्कचन्द्रयोगे यत्फलमुक्तं यच्चादित्याङ्गारकयोगे फलं यच्च चन्द्राङ्गारकयोगे फलं तत्फलत्रयमपि वाच्यम्। एवं यथासम्भवमन्यत्रापि ग्रहत्रयस्यैकराशिगतस्य फलं वक्तव्यम्। यद्येकराशौ त्रिग्रहयोगोऽन्यत्र त्रिग्रहयोगो वा भवतस्तदा सर्वाणि फलानि वाच्यानीति।५।

इति श्रीभटटोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ द्विग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

भाषा– शनि और शुक्र के योग से जातक अल्प नेत्रवाला, स्त्री का आश्रय पाकर धनवृद्धि करनेवाला, लेख, पुस्तक और चित्रकारी जाननेवाला होता है। इस प्रकार जो दो ग्रहों के फल कहे गये हैं, उनके अनुसार ३।४।५।६ या ७ सातों ग्रहों के योग से सब फलों को समझना चाहिए।। ५ ।।

उदाहरण- जैसे सूर्य, चन्द्र और बुध तीनों ग्रहों का योग हो तो सूर्य-चन्द्र के योगफल और सूर्य-बुध के योगफल तथा बुध-चन्द्र के योगफल भी समझना चाहिए। एवं चार, पाँच आदि योग में भी विचार करना चाहिए।। ५ ।।

अथ प्रव्रज्यायोगाध्यायः ॥१५॥

अथातः प्रव्रज्यायोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव चतुरादिभिरेकस्थैः ग्रहैः जातस्य प्रव्रज्यायोगं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः
शाक्याजीविकभिक्षुवृद्धचरको निर्ग्रन्थवन्याशनाः।
माहेयज्ञगुरुक्षपाकरसितप्राभाकरोनैः क्रमात्
प्रव्रज्या बलिभिः समाः परजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिः।१

एकस्थैरिति।। एकस्मिन्यत्र तत्र राशौ चतुरादयो ग्रहा भवन्ति चत्वारः पञ्च षट् सप्त वा भवन्ति तैरेकस्थैश्चतुरादिभिः बलयुतैः वीर्यवद्भिः माहेयादिभिः जाताः सम्भूताः शाक्यादिकाः प्रव्राजकाः भवन्ति। किन्तु चतुरादिभिः बलयुतैरेका प्रव्रज्या भवति। तदर्थमाह। पृथग्वीर्यगैः तैश्च बलिभिः वीर्यगैः सबलैः पृथक्-पृथक् प्रव्रज्या भवति। एतदुक्तं भवति। चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यद्येको बलवान् भवति तदा जातस्यैकैव प्रव्रज्या भवति। अथ चतुरादीनामेकस्थानां मध्यान्न कश्चिद्बली भवति तदा जातस्य प्रव्रज्या न भवति। अथ द्वौ बलिनौ भवतस्तदा जातस्य प्रव्रज्याद्वयमेव भवति। यदा बहवो बलिनस्तदा बह्व्यः प्रव्रज्या भवन्ति। एवमेकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैः जाताः प्रव्रज्याभाजो भवन्ति। यस्मादुक्तम्। प्रव्रज्या बलिभिः समाः। ताश्च पृथग्वीर्यगैः माहेयादिभिः भौमाद्यैः शाक्याद्या भवन्ति। तद्यथा। चतुरादीनामेकस्थानां माहयाद्यदा माहेयो भौमो बलवान्भवति तदा जातः शाक्यो रक्तपटो भवति। एव ज्ञे बुधे बलवति आजीविको भवति आजीविकश्चैकदण्डी। गुरौ बलवति भिक्षुः यतिर्भवति। क्षपाकरश्चन्द्रो यदा बलवांस्तदा वृद्धः वृद्धश्रावकः कापालिकः वृत्तभंगभयाच्छ्रावकशब्दोऽत्रलुप्तो द्रष्टव्यः। सिते शुक्रे बलवति चरकः चक्रधरः प्रभाकरिः सौरः तस्मिन्बलवति निर्ग्रन्थः नग्नः क्षपणकः प्रावरणरहित इत्यर्थः। इने आदित्ये बलवति वन्याशनः मूलफलाशनस्तपस्वी भवति। एवं क्रमात्क्रमशः परिपाट्या एते प्रवज्यापर्यायाः। एते एवं कालक्रमाद्व्याख्याताः। तथा च वङ्कालकाचार्यः— 'ताबसिओ दिणणाहे चन्दे काबालिओ तहा भणिओ। रत्तवडो भूमिसुवे सोमसुवे एअदण्डीआ। देवगुरु शुक्क कोण क्कमेर्ण जईं चरअ खबैणाई।' अस्यार्थः। ताबासिओ तापसिकः, दिणणाहे दिननाथे सूर्ये, चन्दे चन्द्रे, काबालिओ कापालिकः, तहा भणिओ तथा भणितः, रत्तवडो रक्तपटः

भूमिसुवे भूमिसुते, सोमसुवे सोमसुते बुधे, एअदण्डिआ एकदण्डी, देवगुरु बृहस्पतिः, शुक्क शुक्रः, कोणः शनैश्चरः, क्कमेण क्रमेण, जई यतिंः, चरअ चरकः, खवणाई, क्षपणकः। अथ वृद्धश्रावकग्रहणं माहेश्वराश्रितानां प्रव्रज्यानामुपलक्षणार्थम्। आजीविकग्रहणं नारायणाश्रितानाम्। तथा च वंकालके संहितान्तरे पठ्यते– 'जलण हर सुगअ केसव सूई बह्मण्ण णग्ग मग्गेसु। दिक्खाणं णाअव्वा सूराइग्गहा क्कमेण णाहगआ॥' जलण ज्वलनः साग्निक इत्यर्थः। हर ईश्वरभक्तः भट्टारकः, सुगअ सुगतः, बौद्ध इत्यर्थः। केसव केशवभक्तः, भागवत इत्यर्थः। सूई श्रुतिमार्गगतः मीमांसकः। ब्रह्मभक्तः वानप्रस्थः। णग्ग नग्नः क्षपणकः। मग्गेसु मार्गेषु। दिक्खाणं दीक्षाणाम्। णाअव्वा ज्ञातव्याः। सूराइग्गहा सूर्यादिग्रहाः। क्कमेण क्रमेण। णाहगआ नाथगताः। एवं चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यावन्तो बलिनः तावन्त्य एव प्रव्रज्या भवन्ति। तत्रापि प्रथमा वीर्याधिकस्य सम्बन्धिनी प्रव्रज्या भवति। यस्मात्स्वल्पजातके उक्तम्– 'चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां स्वां ग्रहः करोति बली। बहुवीर्यैस्तावद्भ्यः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव॥' तापसवृद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणां निर्ग्रन्थानां चेति। वीर्योपचयक्रमेणान्यासां क्रमः। एवं बलिभिः समाः प्रव्रज्याः बलिनो ग्रहस्य यादृश्येव तद्बलानुसारेण प्राप्नोति परिपालयति ऊनबलस्य मनाङ् नाप्नोति पालयति। पराजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिरिति। शाक्यादिप्रव्रज्यास्वाभिर्ग्रहैः पराजितैरन्यैर्ग्रहैः युद्धे विजितैः प्रच्युतिः प्रव्रज्यात्यागः। तत्प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति। एतदुक्तं भवति। चतुरादीनां मध्याद्यद्येको बलवान्भवति स च ग्रहयुद्धे अन्येन ग्रहेण जातक काले पराजितस्तदा प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति त्यक्त्वा च प्रव्रज्यामनाश्रित्यैव तिष्ठति। अथ चतुरादीनां मध्याद्द्वौ बहवो वा बलिनो भवन्ति ते च पराजितास्तदा तस्यावश्यमेव सर्वाभ्यः प्रव्रज्याभ्यः च्युतिर्भवति। यस्माद्बलवद्ग्रहसंख्यास्तेन प्रव्रज्याः कर्तव्याः। अन्त्यप्रव्रज्याधिपतिर्यद्यन्येन ग्रहेण जितो न भवति तदा तामेव प्रव्रज्यामाश्रितो म्रियते। अथ प्रव्रज्यादायको ग्रह एक एव जितो न भवति तदा यावज्जीवं तामेव प्रव्रज्यामाश्रयति। अथ द्वौ ग्रहौ प्रव्रज्यादायकौ तौ चापराजितौ तदा प्रथमप्रवज्यादायकान्तर्दशायां प्रथमां प्रव्रज्यां गृहीत्वा तामेवाश्रित्य तावत्तिष्ठति यावद्द्वितीयप्रवज्यादायकग्रहान्तर्दशाप्रवेशः। तत्र प्रथमां त्यक्त्वा द्वितीयामाश्रयति। एवं बहुप्रव्रज्यासु सम्भवे योज्यम्। अत्र च सत्याचार्यः– 'तेष्वधिकबली जीवस्त्रिदण्डिनं भार्गवश्चरकमुख्यम्। नग्न-

श्रमणं सौरो बुधस्तदा जीविकाचार्यम्।। वृद्धश्रावकमिन्दुर्दिवाकरस्तापसं तपोयुक्तम्। वक्रः शाक्यः श्रवणं क्षेत्राश्रयजं गुणांश्चैतान्।। वीर्योपेतेऽल्पतनावदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम्। अन्यैः पराजितश्चेत्प्रव्रज्याप्रच्युतिं कुर्यात्।। यावन्तो वीर्ययुताः प्रव्रज्या भवन्तिता- वन्त्यः। एकर्क्षगेषु नियमात्तेषामाद्या बलोपेतात्।।'।।१।।

भाषा– यदि जन्मकुण्डली में एक राशि में बलयुक्त ४ (चार) या उससे अधिक ग्रह हो तो प्रव्रज्या (वैराग्य) योग होता है अर्थात् वह मनुष्य प्रव्राजक (गृहस्वामी) होता है। उन ग्रहों में जितने ग्रह बली हों उतनी प्रव्रज्या होती है, उनमें भी प्रथम प्रव्रज्या सबसे अधिक बली ग्रह की होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि सब ग्रह निर्बल हों तो प्रव्रज्या नहीं होती है। जैसे मंगल बली हो तो शाक्य (पीला वस्त्र 'चीवर' धारण करनेवाला बौद्ध सन्यासी), बुध बली हो तो आजीविक (लोकायत सम्प्रदाय का अनुयायी), बृहस्पति बली हो तो भिक्षु (यती), चन्द्रमा बली हो तो वृद्धश्रावक (कपाली), शुक्र बली हो तो चरक (कृष्ण यजुर्वेद की शाखा का प्रचार करनेवाला), शनि बली हो तो निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैनी) और रवि बली हो तो वन्याशन (कन्द-मूल-फल से निर्वाह करनेवाला) तपस्वी होता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे ग्रह से पराजित हो तो उस प्रव्रज्या को ग्रहण करके फिर त्याग देता है।।१।।

विशेष अर्थ– एक राशि में जब भौमादि दो ग्रहों के अंश और कला तुल्य हों तो युद्ध कहलाता है। उनमें जो उत्तर दिशा में रहता है वह जयी और दक्षिण दिशावाला पराजित समझा जाता है। युद्ध में शुक्र दक्षिण में भी हो तो वही विजयी होता है। उत्तर और दक्षिण दिशा का ज्ञान ग्रहों के शर जानने से होता है। शर-ज्ञान का प्रकार ग्रहलाघव या सिद्धान्त ग्रन्थों में देखिए।। १ ।।

अथास्तमितान्यजितान्यदृष्टानां ग्रहाणामपवादं वैतालीयेनाऽऽह–

रविलुप्तकरैरदीक्षिता बलिभिस्तद्गतभक्तयो नराः।
अभियाचितमात्रदीक्षिता निहतैरन्यनिरीक्षितैरपि।।२।।

रविलुप्तकरैरिति।। चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यावन्तो ग्रहा बलिनस्तावन्तः स्वप्रव्रज्यादायकास्तत्रापि बलिनां मध्ये यावन्तो रविलुप्तकराः सूर्यमण्डलगा अस्तमिता भवन्ति तैरदीक्षिता जाता भवन्ति। तावन्तः स्वकीयाः प्रव्रज्या न प्रयच्छतीत्यर्थः। किंतु जाता नराः तद्गतभक्तयस्तद्गतानां तत्प्रव्रज्याप्रविष्टानां मध्ये भक्ता भवन्ति। अत्र रविलुप्तकरत्वमुदयास्तमयं गणयित्वाऽन्वेष्यम्। शुक्रगुरुज्ञार्किकुजाः कालांशैरुत्तरोत्तरैः नवभिर्दृश्यादृश्या दृक्कर्मणा रवेः द्वादशभिरिंदु-

रित्येवमादिकर्मणि कृते कदाचिदादित्येन सहैकराशिगतैरपि नास्तमितो भवति। कदाचित् द्वितीयराशिस्थोऽप्यस्तमितो भवति। एवमुदयास्तमयमन्वेष्यास्तमितफलं वाच्यम्। अभियाचितमात्रदीक्षिता इति। बलिभिरित्यनुवर्तते। बलिर्भिनिहतैः ग्रहयुद्धेऽन्यग्रहविजितैरन्यैश्च ग्रहैर्निरीक्षितैर्दृष्टैः अभियाचितमात्रदीक्षिताः दीक्षाप्रार्थनपरा भवन्ति। न च तां प्राप्नुवन्ति। पूर्वमुक्तं पराजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिरित्यस्यायमपवादः। तेनैतदुक्तंभवति। बलिग्रहो ग्रहयुद्धेऽन्येन विजितो भवति। न केनचिद् दृश्यते तदा तत्प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति। अथ बली ग्रहः समागमनेन ग्रहेण विजितो भवत्यन्येन च दृश्यते तदा प्रव्रज्यां प्रार्थ्यमानोऽपि न प्राप्नोति। यस्य च प्रव्रज्याप्रच्युतिः जाता तस्य तदवसाने बहुष्वन्तर्दशासु चारवशाद्यस्मिन्नन्तर्दशाकाले बलवान् भविष्यति तस्मिन्काले प्रव्रज्यां दास्यति। तदा चोक्तम्– 'दीक्षादानसमर्थो यो भवति तदा बलेन संयुक्तः। तस्यैव दशाकाले दीक्षां लभते नरोऽवश्यम्।। यस्य च दीक्षाच्यवनं तस्यैव दशावसाने स्यात्। एवं जातककाले सञ्चिन्त्य बलाबलं वाच्यम्।।'।।२।।

भाषा–पूर्वोक्त प्रव्रज्याकारक ग्रह अन्य प्रकार (उच्चादि) बल से युक्त होकर भी यदि सूर्य के किरण सान्निध्यवश अस्त हो तो वह जातक परिव्राजक (गृहत्यागी) होकर भी दीक्षा नहीं प्राप्त करता है। परञ्च उस प्रव्रज्या में उसकी पूरी भक्ति रहती है। एवं यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे ग्रहों से पराजित हो अथवा दृष्ट हो तो प्रार्थना करने पर भी दीक्षित नहीं होता है। अर्थात् उस आश्रम में रहता हुआ शिष्य बनने की इच्छा करता हुआ भी शिष्य नहीं बनाया जाता है।। २।।

विशेष अर्थ– सूर्य सान्निध्य से अस्त होने का ज्ञान ग्रहों के कालांश के ज्ञान से होता है। जैसे–

'भास्करा नगभुवो गुणचन्द्र-भूभुवो दिविषदस्तिथयोब्जात्।
प्राक्तनैर्निगदिताः समयांशा वक्रिणोर्भृगुविदोः क्षितिहीनाः।।'

अर्थात् ... १२, १७, १३, ११, ९ और १५ ये क्रम से चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के कलांश हैं। यदि बुध और शुक्र वक्री रहते हैं तो १ अंश कम कलांश होते हैं। जिस ग्रह का सूर्य से अन्तर अपने कलांश से कम हो तो उस ग्रह को अस्त समझना चाहिए।। २।।

अथ चतुरादिभिरेकस्थैर्विना प्रव्रज्यायोगं शालिन्याऽऽह–

जन्मेशोऽन्यैर्यद्यदृष्टोऽर्कपुत्रं पश्यत्याकिर्जन्मपं वा बलोनम्।
दीक्षां प्राप्नोत्यार्किदृक्काणसंस्थे भौमार्क्यंशे सौरदृष्टे च चन्द्रे।३

जन्मेश इति।। जन्मनि यस्मिन् राशौ चन्द्रः स्थितस्तस्य योऽधिपतिर्ग्रहः स जन्मेशः। स च यद्यन्यैर्ग्रहैरदृष्टो नावलोकितः न केनिचद्-ग्रहेण दृश्यते तथाभूतोऽसावर्कपुत्रं शनैश्चरं पश्यति तदा जातस्य प्रव्रज्या भवति। सा च शनैश्चरकृता शनैश्चरजन्मेशयोः यो बलवांस्तदीयांतर्दशा-काले। उक्तं च– 'यस्येक्षतेऽर्कपुत्रं जन्मभनाथो ग्रहैर्न संदृष्टः। तस्य हि दीक्षालाभो तद्बलयोगाद्दशाकाले।।' पश्यत्यार्किरिति। अथवार्किः सौरः सबलो जन्मराश्यधिपं बलोनं वीर्यरहितं पश्यति तथापि शनैश्चरोक्त-प्रव्रज्यां वदति। उक्तं च- 'शनिदृष्टे बलहीने जन्मनि नाथे वदेच्च निर्ग्रन्थम्।' दीक्षां प्राप्नोतीति। यत्र तत्र राशौ चन्द्रे शशिन्यार्किद्रेष्काणसंस्थे सौर-द्रेष्काणव्यवस्थिते न केवलं यावद्भौमार्क्यंशे कुजसौरयोरन्यतरनवांश-कस्थे तस्मिंश्च सर्वग्रहादृष्टे शनैश्चरेणेक्षमाणे दीक्षां प्राप्नोति। शनैश्चरोक्त-प्रव्रज्यां व्रजति। तथा च– 'सौरद्रेष्काणसंस्थो यदि भवति शशी तदंश-संस्थश्च। वक्रांशे वा दृष्टः सौरेण तु सर्वदर्शनविमुक्तः।। निर्ग्रन्थसंज्ञो योऽर्क-पुत्रवीर्यानुसारेण। जन्माधिपतिः पापैरपि निरीक्षितस्त्वेक ईक्षते सौरः।।' यस्य पुरुषस्य मूर्तौ नियता दीक्षिता भवति तस्य जन्माधिपतिं विबलं निरीक्षते। यस्य सूर्यजः सबलः सोऽपि खलु भाग्यहीनः प्रव्रज्यां प्राप्नुया-ज्जातः मांद्ये कौजे वांशे शशी स्थितः कृष्णजे द्रेष्काणे वा अंशाधिपानुरूपे काले दीक्षाप्रदो भवति। अत्र योगत्रयेऽपि पूर्वापवादा अनुवर्तनीयाः।३

भाषा– यदि जन्मराशि का स्वामी दूसरे ग्रहों से अदृष्ट होकर शनि को देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशिपति को शनि देखता हो अथवा निर्बल चन्द्रमा यदि मंगल के द्रेष्काण में या मंगल वा शनि के नवांश में चन्द्रमा हो तो इन योगों में भी दीक्षा प्रव्राजक होकर प्राप्त करता है।।३।।

विशेष अर्थ- बली प्रव्रज्याकारक ग्रह की दशा-अन्तर्दशा समय में प्रव्रज्या होती है।

अथ येन योगेन जातः शास्त्रकरो भवति येन च राजाऽपि दीक्षितो तद्योगद्वयं मालिन्याऽऽह–

सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टासु धर्मे
गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीर्थकृत्स्यात्।
नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे
भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः ।।४।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके प्रव्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः।१५।

सुरगुर्विति।। सुरुगुरुः जीवः, शशी चन्द्रः, होरा लग्नम् एतासु सुरगुरुशशिहोरासु आर्किणा शनैश्चरेण दृष्टासु अवलोकितासु धर्मे नवमे

स्थाने गुरुः जीवो यदि भवति। अथशब्दः पादपूरणे। नृपतीनां योगजः कश्चिद्राजयोगो जातस्य भवति तदा सः पुरुषः तीर्थकृच्छास्त्रकृत्स्याद्भवेत्। काणादबुद्धपाञ्चशिखवराहमिहिरब्रह्मगुप्तप्रतिम इति। सुरगुरुशशि-होरास्विति। धन्विमीनकर्कटलग्नैः कैश्चिद्व्याख्यातम्। तच्चायुक्तम्। यस्मान्माण्डव्यः- 'गते मन्दालोकं गुरुशशिविलग्ने नवमगे गुरौ निष्पद्यन्ते न इह नृपयोगे नृपतयः। विजृम्भन्ते येषां लटहरचनारम्भसुभगा जगत्यां ये विद्वद्गुणकथनपाषाणसदृशाः।।' तथा चोक्तम्– 'गुरुशशिलग्ना दृष्टा कोणे न तु नवमगो यदि गुरुः। नरनाथजन्मजातः शास्त्रकरो भवति न च नृपः।।' अथ द्वितीयो राजयोगस्तत्रोपस्थानं करोति तदा राजा भवति। तीर्थकरश्च जनककाशिराजस्फुजिध्वजप्रतिम इति। उक्तं च– 'अस्मिन्योगे चान्यो नृपयोगो भवति तत्र यो जातः। स भवति जिनेन्द्र-तुल्यो नरनाथः शास्त्रकर्ता च।।' नवमभवनसंस्थे मन्दं गच्छतीति मन्दगः सौरः तस्मिन्मन्दगे लग्नान्नवमभवनसंस्थे धर्मस्थानाश्रितेऽन्यैः सर्वैर्ग्रहैरदृष्टे नावलोकिते तथा नरपयोगे राजयोगानां मध्यादन्यतमें राजयोगे सति जातो दीक्षितः प्रव्रजितः पार्थिवेन्द्रश्च राजाधिराजो भवति। पश्चात्तत्कालं सर्वबली तद्दीक्षायां दीक्षितश्च भवति। राजयोगं विनाऽयमपि प्रव्रज्या-योगः। योगजश्चेज्जातो राजा दीक्षितश्च भवति। अन्यथादीक्षित एव। उक्तं च– 'नवमस्थाने सौरो यदि स्थितः सर्वदर्शनविमुक्तः– नरनाथ-योगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितो भवति।। नृपयोगस्याभावे योगेऽस्मिन्दी-क्षितो नरो जातः। निःसंदिग्धं प्रवदेद्योगस्यास्य प्रभावेन।।' इति।४।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ प्रव्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः।१५।

भाषा– यदि बृहस्पति, चन्द्रमा और लग्न-इन तीनों पर शनि की दृष्टि हो और गुरु नवम भाग में हो तो ऐसे योग में पूर्वोक्त कोई राजयोग प्राप्त हो तो इसमें उत्पन्न मनुष्य शास्त्रकार होता है अथवा तीर्थ में भ्रमण करनेवाला होता है। अर्थात् राजा न होकर शास्त्रकार होता है। जैसे कणाद, बुद्ध आदि। अथवा नवम भाव में शनि हो उस पर किसी भी ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो ऐसे योग में कोई राजयोग पड़े तो जातक राजा होकर दीक्षित होता है।। ४।।

विशेष अर्थ– इन योगों में राजयोग नहीं हो तो जातक साधारण परिव्राजक होता है। अर्थात् प्रव्रज्यायोग में राजयोग होने से शास्त्रकार सम्प्रदाय चलानेवाला पर सिद्ध प्रव्राजक होता है। जैसे बुद्ध, शङ्कराचार्य आदि हुए। कहा भी है–

'नवमस्थाने सौरो यदि स्थितः सर्वदर्शनविमुक्तः ।
नरनाथयोगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितो भवति ॥
नृपयोगस्याभावे योगेऽस्मिन् दीक्षितो नरो जातः ।
निःसन्दिग्धं प्रवदेद्योगस्यास्य प्रभावेन ॥ इति ॥

अथ ऋक्षशीलाध्यायः ॥१६॥

अथ ऋक्षशीलाध्यायो व्याख्यायते। ऋक्षं नक्षत्रं राशिश्च तत्रादावेव चन्द्रभुज्यमाननक्षत्रशीलं भवति, तत्राश्विनीभरण्योः जातस्य शीलविज्ञानमार्ययाऽऽह–

प्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च ।
कृतनिश्चयसत्यारुग्दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥१॥

प्रियभूषण इति।। प्रियभूषणः अलंकरणवल्लभः, सुरूपः शोभनरूपः, वपुष्मान् सुभगः सर्वजनप्रियः, दक्षः सर्वकार्यकरणपटुः, मतिमान् बुद्धियुक्तः एवंविधोऽश्विनीषु जातो भवति। तारकापेक्षयाऽत्र सर्वत्र बहुवचननिर्देशः कृतः। कृतनिश्चय इति। कृतनिश्चयः प्रारब्धानां कर्मणामंतगः, सत्यः सत्यवाक्, अरुक् नीरुजः, दक्षः चतुरः, सुखितो दुखनिर्मुक्तः एवंविधो भरणीषु जातो भवति।। १ ।।

भाषा– अश्विनी में उत्पन्न मनुष्य अलङ्करणप्रिय, सुन्दर स्वरूप, सर्वजन-प्रिय, कार्यों में पटु और बुद्धिमान होता है। भरणी में उत्पन्न अपने वचन को पूरा करनेवाला, सत्यवक्ता, रोगरहित, चतुर और सुखी होता है॥१॥

अथ कृत्तिकारोहिण्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह–

बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः ।
रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियम्वदः स्थिरमतिः सुरूपश्च ।। २ ।।

बहुभुगिति।। बहुभुक् प्रभूताहारः, परदाररतः परस्त्रीष्वासक्तः, तेजस्वी असहिष्णुः, विख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धकीर्तिः एवंविधः कृत्तिकासु जातो भवति। सत्यः अवितथभाषी, शुचिः परस्वाद्यलुब्धः, शास्त्रोक्तशौचानुष्ठाता, प्रियंवदः मधुरवाक्, स्थिरमतिः एकमतिः, सुरूपश्च वपुष्मान् एवंविधः रोहिण्यां जातो भवतीति।। २ ।।

भाषा- कृत्तिका नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बहुत खानेवाला, परस्त्रीगामी, असहिष्णु और विख्यात होता है। रोहिणी में जिसका जन्म हो वह सत्यवक्ता, पवित्रात्मा, प्रियवचन बोलनेवाला, स्थिरबुद्धि और सुन्दर होता है।। २ ।।

अथ मृगशीर्षार्द्रयोः जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी ।
शठगर्वितः कृतघ्नो हिंस्रः पापश्च रौद्रर्क्षे ।। ३ ।।

चपल इति। चपलः क्रियास्वनवस्थितः, चतुरः दक्षः, भीरुः भयार्त्तः, पटुः प्रवक्ता, उत्साही सोद्यमः, धनी वित्तवान्, भोगी सम्भोगशीलः, एवंविधो मृगे मृगशिरसि जातो भवति। शठः परकार्यविमुखः। उक्तं च ग्रन्थान्तरे शठलक्षणम्— 'मनसा वचसा यश्च दृश्यते कार्यतत्परः। कर्मणा विपरीतश्च स शठः सद्भिरुच्यते।।' गर्वितः मानी, कृतघ्नः खलः कृतमुपकृतं हन्ति यः स कृतघ्नः, हिंस्रः वधिकः, पापः पापकर्मकर्ता एवंविधो रौद्रर्क्षे आर्द्रायां जातो भवतीति।। ३ ।।

भाषा— मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य चञ्चल, चतुर, डरपोक, पण्डित; उत्साही, धनी और भोगी होता है। आर्द्रा नक्षत्र में जन्म लेने वाला कुटिल हृदय, अभिमानी, कृतघ्न, हिंसक और पापी होता है।। ३ ।।

अथ पुनर्वसौ जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

दान्तः सुखी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक्पिपासुश्च ।
अल्पेन च सन्तुष्टः पुनर्वसौ जायतेमनुजः ।।४।।

दान्त इति।। दान्तः शमपरः तपःक्लेशसहः, सुखी सुखितः, सुशीलः शोभनशीलः विनयवान्, दुर्मेधा जडप्रायः रोगभाक् पीडितदेहः, तृषार्त्तः, अल्पेन स्तोकेनैवार्थेन सन्तुष्टः एवंविधो मनुजो मनुष्यः पुनर्वसौ जायते उत्पद्यते।। ४ ।।

भाषा— पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य क्लेश को सहनेवाला, सुखी, सुशील, बुद्धिहीन, रोगी, तृषार्त्त, और थोड़े में ही सन्तुष्ट होता है।। ४ ।।

अथ पुष्याश्लेषयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी धनसंभृतः पुष्ये ।
शठसर्वभक्षपापः कृतघ्नधूर्तश्च भौजगे ।। ५ ।।

शान्तात्मेति।। शान्तात्मा शमदमपरो जितेन्द्रियः, सुभगः सर्वजनप्रियः पंडितः शास्त्रार्थवित्, धनी वित्तवान्, धर्मनिरत एवंविधः, पुष्यजो भवति। शठः परकार्यविमुखः, सर्वभक्षः संचयनशीलः, पाप-

कर्मरतः, कृतघ्नः कृतमुपकृतं हति स कृतघ्नः, धूर्तः परवंचनदक्षः एवं-विधो भौजगे आश्लेषायां जातो भवति।। ५।।

भाषा– पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य शांत हृदय, सर्वप्रिय, विद्वान्, धनी और धर्म में तत्पर होता है। आश्लेषा नक्षत्र में जन्म लेने-वाला शठ, सर्वभक्षी, पापी, कृतघ्न (उपकार को न माननेवाला) और धूर्त होता है॥५॥

अथ मघापूर्वाफाल्गुन्योः जातस्य स्वरूपमार्ययाह–

बहुभृत्यधनो भोगी सुरपितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये ।
प्रियवाग्दाता द्युतिमानटनो नृपसेवको भाग्ये ।।६।।

बहुभृत्यधन इति।। बहुभृत्यधनः प्रभूतपरिवारवित्तान्वितः, भोगी भोगान्वितः, सुरपितृभक्तः देवानां पितृणां च भक्तः, महोद्यमः महोत्साही एवंविधः पित्र्ये मघायां जातो भवति। प्रियवाक् अभिमतवक्ता, दाता दानशीलः, द्युतिमान्सुकान्तिः, अटनः परिभ्रमणशीलः नृप सेवकः राजसेवानुरतः एवंविधो भाग्ये पूर्वाफाल्गुन्यां जातो भवति।६।

भाषा– मघा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बहुत धन, बहुत नौकरों से युक्त, भोगी, देवता और माता-पिता का भक्त तथा महा उद्योगी होता है। पूर्वाफालगुनी में उत्पन्न मनुष्य प्रियवक्ता, दाता, कान्तिमान्, भ्रमणशील और राजा का नौकर होता है।।६।।

अथोत्तराफाल्गुनीहस्तयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह–

सुभगो विद्याप्तधनो भोगी सुखभाग्द्वितीयफाल्गुन्याम् ।
उत्साही धृष्टः पानपोऽघृणी तस्करो हस्ते ।।७।।

सुभग इति।। सुभगः सर्वजनप्रियः। विद्याप्तधनः विद्यया आप्तं धनं येन स। भोगी भोगान्वितः, सुखभाग्दुःखरहितं एवंविधो द्वितीयफाल्गुन्यां उत्तराफाल्गुन्यां जातो भवति। उत्साही सोद्यमः, धृष्टः प्रतिभायुक्तः निर्लज्ञो वा पानपः पानप्रियः आसवानुरक्तः, अघृणी निर्दयः, तस्करः चौरः एवंविधो हस्ते जातो भवति।। ७।।

भाषा– उत्तराफालगुनी नक्षत्र में जन्म लेनेवाला सर्वप्रिय, विद्या से धनलाभ करनेवाला, भोगी और सुखी होता है। हस्त में उत्पन्न मनुष्य उत्साही, निर्लज्ज, मदिरा पीनेवाला, निर्दय और चोर होता है।।७।।

अथ चित्रास्वात्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह-

चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति चित्रायाम् ।
दान्तो वणिक्कृपालुः प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ ।।८।।

चित्राम्बरेति ।। चित्राम्बरमाल्यधरः चित्राणि नानाप्रकाराणि अम्बराणि वस्त्राणि माल्यानि च धारयति । सुलोचनाङ्गः शोभना नेत्रावयवा यस्य एवंविधः चित्रायां जातो भवति । दान्तो विनयान्वितः, जितेन्द्रियः वणिक्क्रयविक्रयज्ञः कृपालुः केचित्तृषालुरिति पठन्ति तृषालुः तृषां न सहते प्रियवाक् अभिमतवक्ता, धर्माश्रितः धर्मरतः एवंविधः स्वातौ जातो भवति ।८।

भाषा– चित्रा नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह अनेक रंग के वस्त्र और माला को धारण करनेवाला, सुन्दर लोचन और शरीरवाला होता है। स्वाती में जिसका जन्म हो वह क्लेश सहनेवाला, तपस्वी, उदार, व्यापारी, कृपालु, मधुरभाषी और धर्मात्मा होता है।। ८।।

अथ विशाखानुराधयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान्वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु ।
आढ्यो विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु ।। ९ ।।

ईर्ष्युरिति ।। ईर्ष्युः परर्द्धिमत्सरी, लुब्धो लोभाभिभूतः द्युतिमान्सुकान्तिः, वचनपटुः सम्भाषणदक्षः । केचिदर्थपटुरिति पठन्ति, अर्थार्जने पटुः प्रवीणः, कलहकृद्विरोधशीलः एवंविधो विशाखासु जातो भवति । आढ्यः ईश्वरः, विदेशवासी परदेशनिवसनशीलः, क्षुधालुः क्षुधां न सहते । अटनः परिभ्रमणशीलः एवंविधोऽनुराधासु जातो भवति ।९।

भाषा– विशाखा में उत्पन्न मनुष्य ईर्ष्या करनेवाला, लोभी, कान्तियुक्त, बोलने में चतुर और कलहकारक होता है। अनुराधा में उत्पन्न मनुष्य धनी, परदेशी, क्षुधार्त्त और भ्रमणशील होता है।। ९।।

अथ ज्येष्ठामूलयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

ज्येष्ठासु न बहुमित्रः सन्तुष्टोधर्मकृत्प्रचुरकोपः ।
मूले मानी धनवान्सुखी न हिंस्रः स्थिरोभोगी ।।१०।।

ज्येष्ठास्विति ।। न बहुमित्रः स्वल्पसुहृत्, सन्तुष्टः संतोषशीलः, धर्मकृद्धर्मानुरतः, प्रचुरकोपः अतिक्रोधी, एवंविधो ज्येष्ठासु जातो

भवति। मानी गर्वितः, धनवान् प्रभूतवित्तः, सुखी सुखितः, न हिंस्रः, सौम्यप्रकृतिः। परविघातं न करोति स्थिरः एकमतिः, भोगी भोगान्वितः एवंविधो मूले जातो भवति।। १०।।

भाषा– ज्येष्ठा में उत्पन्न मनुष्य थोड़े मित्रवाला, संतोषी, धर्मात्मा किन्तु बड़ा ही क्रोधी होता है। मूल में उत्पन्न– मानी, धनी, सुखी, अहिंसक, स्थिरचित्त और भोगी होता है।। १०।।

अथ पूर्वोत्तराषाढयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह–

इष्टानन्दकलत्रो मानी दृढसौहृदश्च जलदैवे।
वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ।।११।।

इष्टानन्दकलत्र इति।। इष्टमभिमतमानंदजनकं कलत्रं भार्या यस्य। मानी गर्वितः, दृढसौहृदः स्थिरसुहृत् एवंविधो जलदैवे पूर्वाषाढायां जातो भवति। विनीतः विनयसंयुक्तः, धार्मिकः धर्मज्ञः, बहुमित्रः प्रभूतसुहृत्, कृतज्ञः प्रत्युपकारशीलः, सुभगश्च सर्वजनप्रियः एवंविधो वैश्वदेवे उत्तराषाढायां जातो भवति।। ११।।

भाषा– पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला इच्छानुसार आनन्द देनेवाली स्त्री से युक्त, मानी और दृढ़ मैत्री करनेवाला होता है। उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जन्म लेनेवाला विनययुक्त, धर्मात्मा, अधिक मित्रवाला, कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) और सर्वजनप्रिय होता है।। ११।।

अथ श्रवणधनिष्ठयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह–

श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः।
दाता आढ्यः शूरो गीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ।।१२।।

श्रीमानिति।। श्रीमान् श्रिया युक्तः, श्रुतवान्पण्डितः, उदारदारः उदारा दारा यस्य स शोभनस्त्रीकः, धनान्वितः वित्तवान्, ख्यातः जनविदितकीर्तिः एवंविधः श्रवणे जातो भवति। दाता दानशीलः, आढ्यः ईश्वरः, रणप्रियः गीतवल्लभः, धनलुब्धः अर्थरुचिः एवंविधो धनिष्ठासु जातो भवति।। १२।।

भाषा– श्रवण में उत्पन्न होनेवाला पुरुष लक्ष्मीवान्, पण्डित, उदार भार्यावाला, धनवान् और विख्यात होता है। धनिष्ठा में दाता, धनी, शूर, गीतप्रिय और धन का लोभी होता है।।१२।।

अथ शतभिषक्पूर्वाभाद्रपदयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषजि दुर्ग्राह्यः।
भाद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनी पटुरदाता च॥१३॥

स्फुटवागिति॥ स्फुटवाक् सत्यवादी, व्यसनी स्त्र्यादिव्यसनोपहतः, रिपुहा शत्रुघातकः, साहसिकः ह्यसमीक्षितकार्यकृत्, दुर्ग्राह्यः दुराराध्यः एवंविधः शतभिषजि जातो भवति। उद्विग्नः दुःखितमना, स्त्रीजितः स्त्रीभिरभिभूतः, धनी धनवान् अथवा धनपटुः धनार्जने चतुरः, अदाता कदर्यः एवंविधः पूर्वाभाद्रपदासु जातो भवति॥ १३॥

भाषा– शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न होनेवाला साफ-साफ बोलने वाला, व्यसन (स्त्री-सङ्ग आदि) से युक्त, शत्रु को जीतनेवाला, बिना बिचारे काम करनेवाला, किसी के वश में न होनेवाला होता है। पूर्वभाद्रपदा में दुःखित हृदय, स्त्री के वश में रहनेवाला, धनवान्, पण्डित और कदर्य होता है॥ १३॥

अथोत्तराभाद्रपदारेवत्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाऽऽह—

वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिकोद्वितीयासु।
सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरः शुचिरर्थवान्पौष्णे॥ १४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
ऋक्षशीलाध्यायः षोडशः॥ १६॥

वक्तेति॥ वक्ता वचनपटुः सम्भाषणे दक्षः, सुखी विद्यमानसुखः, प्रजावान्बहुपुत्रपौत्रः, जितशत्रुः जितारिः, धार्मिकः एवंविधो द्वितीयासूत्तराभाद्रपदासु जातो भवति। सम्पूर्णाङ्गःपरिपूर्णा-वयवः सुभगः सर्वजनप्रियः, शूरः संग्रामधीरः शुचिः, परधनादिष्वलुब्धः, अर्थवान् धनान्वितः एवंविधः पौष्णे रेवत्यां जातो भवति। एते यथोक्ता नक्षत्रस्वभावाश्चन्द्रस्य सबलत्वात्परिपूर्णा भवन्ति॥ १४॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्ता-
वृक्षशीलाध्यायः षोडशः॥ १६॥

भाषा– उत्तरभाद्रपदा में उत्पन्न मनुष्य वक्ता, सुखी, बहुत पुत्र-पौत्रादि से युक्त, शत्रु को जीतनेवाला, धर्मात्मा होता है। रेवती में जन्म लेनेवाला सब अंगों से परिपूर्ण, सर्वजनप्रिय, संग्रामप्रिय, पवित्र हृदय और धनवान् होता है॥१४॥

अथ चन्द्रराशिशीलाध्यायः ॥१७॥

अथातो राशिशीलाध्यायो व्याख्यायते। अथ मेषस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

वृत्ताताम्रदृगुष्णशाकलघुभुक् क्षिप्रप्रसादोऽटनः
कामी दुर्बलजानुरस्थिरधनः शूरोऽङ्गनावल्लभः।
सेवाज्ञः कुनखी व्रणाङ्कितशिरा मानी सहोत्थाग्रजः
शक्त्या पाणितलेऽङ्कितोऽतिचपलस्तोये च भीरुः क्रिये ॥१॥

वृत्तेति॥ वृत्ते परिवर्तुले आताम्रे लोहितवर्णे दृष्टी चक्षुषी यस्य स वृत्ताताम्रदृक् परिवर्तुललोहितनेत्रः, उष्णं शाकं लघु च स्वल्पं भुक्ते स उष्णशाकलघुभुक् उष्णभोजी शाकभोजी, क्षिप्रप्रसादः आश्वेव प्रसीदति, अटनः परिभ्रमणशीलः, कामी सुरतप्रियः, दुर्बलजानुः निर्मांसलजंघासंधिः, अस्थिरधनः, अचिरवित्तः, शूरः रणप्रियः, अङ्गनावल्लभः स्त्रीप्रियः, अङ्गनानां वल्लभो अङ्गना वल्लभा यस्य। सेवाज्ञः पराराधनकुशलः, कुनखी कुत्सितनखः, व्रणाङ्कितशिराः सच्छिद्रमूर्द्धा, मानी गर्वितः, सहोत्थाग्रजः सहोत्थानां सहजातानामग्रणीर्गुण-प्रधानः, पाणितले हस्ततले स चिह्नविशेषेणांकितः चिह्नितः, अति-चपलः क्रियास्वनवस्थितः, तोये च जले भीरुः सभयः एवंविधाः क्रिये मेषस्थिते चन्द्रमसि जातो भवति॥ १ ॥

भाषा- यदि जन्मकाल में चन्द्रमा मेषराशि में हो तो वह बालक गोल-गोल रक्त वर्ण नेत्रवाला, गर्म, शाक और अल्प भोजन करनेवाला, जल्दी प्रसन्न होनेवाला, भ्रमणशील, कामी, कमजोर घुटनेवाला, चल सम्पत्तिवाला, युद्धप्रिय, स्त्रियों का प्रिय, सेवाकार्य में पटु, खराब नखवाला, शिर घाव के चिह्नों से युक्त, मानी, सहोदरों में ज्येष्ठ, हथेली में शक्ति रेखा (चिह्न) वाला, अत्यन्त चञ्चल और जल से भय खानेवाला होता है।१।

अथ वृषस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

कान्तः खेलगतिः पृथूरुवदनः पृष्ठास्यपार्श्वाङ्कित-
स्त्यागी क्लेशसहः प्रभुः ककुदवान्कन्याप्रजः श्लेष्मलः।
पूर्वैर्बन्धुधनात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः क्षमी
दीप्ताग्निः प्रमदाप्रियः स्थिरसुहृन्मध्यान्त्यसौख्यो गवि ॥२॥

कान्त इति॥ कान्तः दर्शनीयः, खेलगतिः सविलासगामी, पृथूरु-वदनः पृथू विस्तीर्णावूरू वदनं मुखं यस्य। पृष्ठं पश्चिमभागः आस्यं

वक्त्रं पार्श्वे प्रसिद्धे एषामन्यतमस्थानेऽङ्कितश्चिह्नितः, त्यागी दाता, क्लेशसहः कदर्थनासमर्थः, प्रभुरप्रतिहताज्ञः, ककुदवान् ककुद-संयुक्तः, कन्याप्रजः कन्या प्रजा यस्य, स्त्रीजनकः, श्लेष्मलः कफाधिकः, पूर्वैः प्रथमैः, बन्धुभिः कुटुम्बैः, धनैः वित्तैः, आत्मजैः पुत्रैश्च विरहितः वियुक्तः, सौभाग्ययुक्तः सर्वजनवल्लभः, क्षमी क्षमावान् सहिष्णु-रित्यर्थः। दीप्ताग्निः बह्वाशीः, प्रमदाप्रियः स्त्रीवल्लभः, स्थिरसुहृत् दृढ़मित्रः, मध्यांत्यसौख्यः मध्ये यौवनेंऽत्ये वृद्धत्वे च सुखितः अर्थादेव बाल्ये दुःखित एवंविधो गवि वृषस्थे चन्द्रे जातो भवति।। २।।

भाषा– जिस जातक के जन्म-समय में वृषराशि में चन्द्रमा हो तो वह दर्शनीय स्वरूप, सविलास गमन करनेवाला, विशाल मुखमण्डल-वाला, पीठ, मुख और पार्श्व में चिह्न (तिल-मसादि) से युक्त, दाता, कष्ट सहनेवाला, प्रभुत्वयुक्त, उँचा कन्धावाला, कन्या सन्तानवाला, कफ-प्रकृति, प्रथम बन्धु, पूर्व का धन और प्रथम सन्तान से रहित, भाग्यवान, क्षमाशील, उदीप्त जठराग्निवाला (अन्न को शीघ्र पचानेवाला), स्त्रियों का प्रिय, स्थिर मैत्री करनेवाला और मध्यम वयस (युवावस्था) तथा अन्त्य (वृद्धावस्था) में सुखयुक्त होता है।। २।।

अथ मिथुनस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

स्त्रीलोलः सुरतोपचारकुशलस्ताम्रेक्षणः शास्त्रविद्-
दूतः कुञ्चितमूर्द्धजः पटुमतिर्हास्येङ्गितद्यूतवित्।
चार्वङ्गः प्रियवाक्प्रभक्षणरुचिर्गीतप्रियो नृत्यवित्
क्लीबैर्याति रतिं समुन्नतनसश्चन्द्रे तृतीयर्क्षगे।। ३।।

स्त्रीलोल इति।। स्त्रीलोलः स्त्रीष्वभिलाषकरः, सुरतोपचारकुशलः सुरतोपचारे सुरतकर्मणि कामशास्त्रेषु कुशलः शिक्षितः, ताम्रेक्षणः लोहितनेत्रः, शास्त्रविच्छास्त्रज्ञः पण्डितः, दूतः परेच्छया गमना-गमनशीलः, कुञ्चितमूर्द्धजः कुटिलशिरोरुहः, पटुमतिश्चतुरधीः अतीव प्राज्ञः, हास्यमुपहासम् इङ्गितं परचित्तज्ञानं द्यूतं प्रसिद्धम् एतानि वेत्ति जानाति। चार्वङ्गः शोभनावयवः, प्रियवागभिमतवक्ता, प्रभक्षण-रुचिः बहुभुक्, गीतप्रियः गीतरतिः, नृत्यविन्नृत्यज्ञः, क्लीबैः षंढैः सह रतिं याति गच्छति, समुन्नतनस उन्नतनासिकः एवंविधश्चंद्रे तृतीयर्क्षगे तृतीयराशौ स्थिते मिथुनगे जातो भवतीत्यर्थः।। ३।।

भाषा– यदि जन्म-समय में चन्द्रमा मिथुन राशि में हो तो वह जातक स्त्री की विशेष इच्छा रखनेवाला, कामशास्त्र का ज्ञाता, लाल

नेत्रवाला, शास्त्रज्ञ, दूत का काम करनेवाला, घुँघराले केशवाला, तीक्ष्ण बुद्धि, सबको हँसानेवाला, दूसरे के मन की बात जाननेवाला, जुआ (शतरञ्ज, चौसर आदि) खेल को जाननेवाला, सुन्दर शरीरवाला, मधुरभाषी, अधिक भोजन करनेवाला, सङ्गीतप्रिय, नृत्य जाननेवाला, नपुंसकों से प्रेम करनेवाला और ऊँची नाकवाला होता है।। ३।।

अथ कर्कटस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

आवक्रद्रुतगः समुन्नतकटिः स्त्रीनिर्जितः सत्सुहृद्-
दैवज्ञः प्रचुरालयः क्षयधनैः सँय्युज्यते चन्द्रवत्।
ह्रस्वः पीनगलः समेति च वशं साम्ना सुहृद्वत्सल-
स्तोयोद्यानरतः स्ववेश्मसहिते जातः शशाङ्के नरः।। ४।।

आवक्रेति।। आवक्रं कुटिलं द्रुतं सत्वरं गच्छतीति आवक्रद्रुतगः कुटिलसत्वरगामी, समुन्नतकटिः उच्चजघनः, स्त्रीनिर्जितः प्रमदाजितः सत्सुहृच्छोभनमित्रः, दैवज्ञःज्योतिःशास्त्रार्थवेत्ता, प्रचुरालयः प्रभूतगृहकर्ता, क्षयधनैरपचयोपचयैश्चन्द्रवच्छशिवत्संयुज्यते, कदाचित् सधनः कदाचिद्विधन इत्यर्थः चन्द्रक्षयवृद्धिवत्, ह्रस्वः अदीर्घः, पीनगलः मांसलकण्ठः, साम्ना प्रीत्या वशं वश्यतां समेति याति, सुहृद्वत्सलः मित्रवल्लभः, तोयोद्यानरतः जलोपवनसक्तः तोये जले उपवने उद्याने च रतः एवंविधः स्ववेश्मसहिते कर्कटस्थे शशांके चन्द्रे नरः पुरुषः जातो भवति।४।

भाषा— यदि चन्द्रमा स्वराशि (कर्क) में हो तो जातक कुटिल गति से शीघ्र चलनेवाला, उन्नत कटि (ऊँची जंघावाला), स्त्री के वशीभूत, अच्छे मित्रवाला, ज्यौतिष शास्त्र का ज्ञाता, अधिक घर का निर्माण करनेवाला, चन्द्रमा के ही समान हानि-वृद्धिवाला (अर्थात कभी धनी, कभी गरीब), नाटे शरीर किन्तु स्थूल गर्दनवाला, मात्र प्रेम से वश में होनेवाला, मित्रों को प्रिय माननेवाला, जलाशय और बगीचों में रुचि रखनेवाला होता है।। ४।।

अथ सिंहस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

तीक्ष्णः स्थूलहनुर्विशालवदनः पिङ्गेक्षणोऽल्पात्मजः
स्त्रीद्वेषी प्रियमांसकानननगः कुप्यत्यकार्ये चिरम्।
क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितस्त्यागवान्
विक्रान्तः स्थिरधीः सुगर्वितमना मातुर्विधेयोऽर्कभे ।।५।।

तीक्ष्ण इति। तीक्ष्णः अमर्षशीलः, स्थूलहनुः बृहद्धनुः, बृहत्कपोलः विशालो वदनो विस्तीर्णवक्त्रः, पिङ्गेक्षणः कपिलनेत्रः, अल्पात्मजः

स्वल्पापत्यः, स्त्रीद्वेषी प्रमदाद्विट्, स्त्रीद्वेष्टेति केचित्पठन्ति। प्रियमांस-काननगः मांसमामिषं, काननमरण्यं, नगः पर्वतः, एते प्रिया यस्य आमिषवनपर्वतानुरतः, अकार्ये अकरणीयेऽर्थे कुप्यति क्रुध्यति, चिरं बहुकालं, केचिदकाण्डे अकाले। क्षुत्प्रसिद्धा तृष्णा पिपासा, उदरं जठरं, दन्ता दशनाः, मनश्चित्तमेभ्यो जाता रुजः पीडास्ताभिः सम्पीडित उपतप्तः, त्यागवान्दाता, विक्रान्तः पराक्रमशीलः, स्थिरधीरेकमतिः, गर्वितमनाः अभिमानसंयुक्तः, मातुर्विधेयो जननीवश्यः, भक्तः इत्यर्थः। 'विधेयो वचनग्राही' इत्यमरः। एवंविधोऽर्कभे सूर्यराशौ सिंहस्थे चन्द्रे जातो भवति॥ ५॥

भाषा– जिस जातक के जन्म-समय में सिंह राशि में चन्द्रमा हो तो वह तेजस्वी (अमर्षयुक्त), मोटी ठुड्डी, विशाल मुख और पीले नेत्रवाला, थोड़े पुत्रवाला, स्त्री का द्वेषी, मांस, वन और पर्वत में प्रेम रखनेवाला, (शिकारी) अकारण ही अधिक क्रोध करनेवाला, क्षुधा, तृषा, उदर रोग और मानसिक रोग से पीड़ित, दानी, पराक्रमी, अभिमानी और माता का भक्त होता है॥ ५॥

अथ कन्यागते चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाशऽऽह–

व्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिः स्रस्तांसबाहुः सुखी
श्लक्ष्णः सत्यरतः कलासु निपुणः शास्त्रार्थविद्धार्मिकः।
मेधावी सुरतप्रियः परगृहैर्वित्तैश्च सँय्युज्यते
कन्यायां परदेशगः प्रियवचाः कन्याप्रजोऽल्पात्मजः।६।

व्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिरिति॥ व्रीडा लज्जा तया मन्थरत्वमलसत्वं तेन चारु शोभनं वीक्षणं दृष्टिपातो गतिः गमनं च यस्य, स्रस्तावधःपतितौ शिथिलावंसौ स्कन्धौ बाहू भुजौ यस्य, सुखी सुखितः, श्लक्ष्णः मृदुवाक् तनुकायो वा, सत्यरतः सत्यभाषी, धार्मिकश्च परमार्थवादी, कलासु निपुणः कलासु नृत्यगीतवाद्यपुस्तकचित्रकर्मसु निपुणः सुज्ञः, शास्त्रार्थवित्पण्डितः, धार्मिकः धर्मानुरतः, मेधावी बुद्धिमान्, सुरतप्रियः कामलोलुपः, परगृहैः परवेश्मभिः वित्तैर्धनैश्च संयुज्यते सम्यग्युक्तो भवति। परदेशगः अन्यदेशनिवासशीलः, प्रियवचाः प्रियभाषी, कन्याप्रजः कन्या प्रजा यस्य– स्त्रीजनकः, अल्पात्मजः स्वल्पपुत्रः, एवंविधः कन्यायां स्थिते चन्द्रे जातो भवति॥ ६॥

भाषा– यदि सिंह राशि में चन्द्रमा हो तो जन्म लेनेवाला मनुष्य लज्जावान्, आलस से युत दृष्टिपात और गमनवाला, शिथिल (ढीले) कन्धा और बाहुवाला, सुखी, कोमल देह, सत्यवक्ता, कलाओं में निपुण, शास्त्र तत्त्व को जाननेवाला (शास्त्रतत्त्वज्ञ), धर्मात्मा, बुद्धिमान्, स्त्री-संभोग-प्रिय, दूसरे के घर और धन से युक्त, परदेशी,प्रिय वचन बोलनेवाला, अधिक कन्या और थोड़े पुत्र सन्तानवाला होता है।। ६।।

अथ तुलास्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः प्राज्ञः शुचिः स्त्रीजितः
प्रांशुश्चोन्नतनासिकः कृशचलद्गात्रोऽटनोऽर्थान्वितः।
हीनाङ्गः क्रयविक्रयेषु कुशलो देवद्विनामा सरुक्
बन्धूनामुपकारकृद्विरुषितस्त्यक्तस्तु तैः सप्तमे ।।७।।

देवेति। देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः देवानां सुराणां ब्राह्मणानां द्विजानां साधूनां सज्जनानां च पूजने रतः सक्तः, प्राज्ञः मेधावी, अत्र मेधा वृद्धिः। प्रज्ञालक्षणम्–'अतीतानुस्मृतिर्मेधा बुद्धिस्तत्कालग्राहिणी। शुभाशुभविचारज्ञा प्रज्ञा धीरैरुदाहृता।।' शुचिः परधनाद्यलुब्धः श्रोत्रियो वा, स्त्रीजितः योषितां वशगः, प्रांशुरत्युच्चः, उन्नतनासिकः अत्युन्नतनासः, कृशचलद्गात्रः दुर्बलशिथिलावयवः कृशं दुर्बलं चलत् बलहीनं गात्रं शरीरं यस्य। अटनः परिभ्रमणशीलः, अर्थान्वितः सधनः, हीनाङ्गः अपरिपूर्णावयवः, क्रयेषु विक्रयेषु च कुशलः शक्तः, देवद्विनामा सभ्य-पर्यायद्वितीयाभिधानः द्वितीयनाम देवाख्यं चास्य भवति, सरुक् पीडितदेहः, बन्धूनां स्वकुटुम्बानामुपकारकृद्धितकारी, तैश्च बन्धुभिः विरुषितः भर्त्सितः पराभूतः त्यक्तः त्यजितश्च, एवंविधः सप्तमे तुलास्थे चन्द्रमसि जातो भवति।। ७।।

भाषा– यदि तुला में चन्द्रमा हो तो जातक– देवता, विप्र (ब्राह्मण) और सन्तों का आदर करनेवाला, पण्डित, पवित्र, स्त्री के वशीभूत, सुगठित शरीर, ऊँची नाकवाला, दुर्बल और शिथिल अंगवाला, भ्रमणशील, धनवान्, अंगहीन, क्रय-विक्रय में चतुर, देववाचक दो नामवाला, रोगयुक्त, सम्बन्धी जनों का उपकार करनेवाला किन्तु स्वयं उन्हीं कुटुम्बों से अपमानित और त्यक्त होता है।। ७।।

अथ वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं मालिन्याऽऽह–

पृथुलनयनवक्षा वृत्तजङ्घोरुजानु-
र्जनकगुरुवियुक्तः शैशवेव्याधितश्च ।

नरपतिकुलपूज्यः पिंगलः क्रूरचेष्टो
झषकुलिशखगांकश्छन्नपापोऽलिजातः ॥८॥

पृथुलेति॥ पृथुलनयनवक्षाः पृथुले विस्तीर्णे नयने नेत्रे वक्ष उरो यस्य वृत्ते परिवर्तुले जंघे उरु जानुनी च यस्य। जनकैः मातृपितृभिः गुरुभिश्चोपदेशकारिभिः गौरवयुक्तैश्च वियुक्तो रहितः शैशवे बाल्ये व्याधितः पीडितः, नरपतिकुले राज्ञां वंशे पूज्यः आराध्यः, पिंगलः क्रूरचेष्टः विषमस्वभावः, झषकुलिशखगाङ्कः झषो मीनः, कुलिशं वज्रं, खगः पक्षी एतैर्मत्स्यवज्रपक्षिसमानैरंकैश्चिह्नै रङ्कितश्चिह्नितः छन्नपापः गुप्ताशुभकृत् एवंविधोऽलिनि वृश्चिकस्थे चन्द्रे जातो भवति॥८॥

भाषा– यदि वृश्चिक में चन्द्रमा हो तो जातक विशाल नेत्रवाला, विशाल वक्षःस्थलवाला, गोल जंघा और जानु (ठेहुना) वाला, माता-पिता और गुरुजनों से हीन, बाल्यावस्था में रोगी, राजकुलों में पूज्य, कपिल वर्ण, कुटिल स्वभाव, हाथ या पैर में मत्स्य, वज्र और पक्षी आकार की रेखा से युक्त तथा गुप्त पाप करनेवाला होता है॥८॥

अथ धनुर्धरस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

व्यादीर्घास्यशिरोधरः पितृधनस्त्यागी कविर्वीर्यवान्
वक्ता स्थूलरदश्रवाधरनसः कर्मोद्यतः शिल्पवित्।
कुब्जांसः कुनखी समांसलभुजः प्रागल्भ्यवान् धर्मविद्-
बन्धुद्विट् न बलात्समेति च वशं साम्नैकसाध्योऽश्वजः।९।

व्यादीर्घास्येति॥ व्यादीर्घास्यशिरोधरः व्यादीर्घमतिदीर्घमास्यं मुखं शिरोधरा ग्रीवा च यस्य। पितृधनः जनकवित्तान्वितः, त्यागी दाता, कविः काव्यज्ञः, वीर्यवान्बली, वक्ताः सम्भाषणे दक्षः, स्थूलरद-श्रवाधरनसः स्थूला महत्प्रमाणा रदा दंताः श्रवसी कर्णौ, अधर ओष्ठः, नसः नासिका घ्राणः, एते सर्व एव स्थूला यस्य। कर्मोद्यतः सर्वकार्याणामुद्यमशीलः, शिल्पज्ञः लिपिपुस्तकचित्रज्ञः कुब्जांसः अस्पष्ट-स्कंधः, कुनखी कुत्सितनखः, समांसलभुजः पीनबाहुः, प्रागल्भ्यवान् अतिप्रतिभायुक्तः, धर्मवित् धर्मज्ञः, बन्धुद्विट् बन्धूनामप्रीतिभाक् द्वेष्टा, बलात् हठादाक्रमणात् वशं संविधेयतां वश्यतां न समेति नायाति। साम्ना प्रीत्या एकेनैव गुणेन साध्यः स्वीक्रियते एवंविधो-ऽश्वजो धनुषि स्थिते चन्द्रे जातो भवति॥९॥

भाषा– यदि धनु में चन्द्रमा हो तो लम्बा भुज और लम्बा गलावाला, पैतृक धन पानेवाला, दाता, कवि, बलवान्, वक्ता, स्थूल दाँतवाला, स्थूल कान और स्थूल ओठवाला, कार्य में उद्यत, शिल्प (चित्रादि) जाननेवाला, कुबड़े गर्दनवाला, मोटे बाहु वाला, प्रगल्भ, धर्मज्ञ, बन्धुओं का द्वेषी, बल से वश में नहीं होने वाला, केवल प्रेम से वश में हो जानेवाला होता है।। ९।।

अथ मकरस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

नित्यं लालयति स्वदारतनयान्धर्मध्वजोऽधःकृशः
स्वक्षः क्षामकटिर्गृहीतवचनः सौभाग्ययुक्तोऽलसः।
शीतालुर्मनुजोऽटनश्च मकरे सत्त्वाधिकः काव्यकृ-
ल्लुब्धोऽगम्यजराङ्गनासु निरतः सन्त्यक्तलज्जोऽघृणः ॥१०॥

नित्यं लालयतीति।। नित्यं लालयति स्वदारतनयान् स्वकलत्रं तनयांश्च पुत्रान् लालयति प्रीत्या भजते। धर्मध्वजः दाम्भिकः मिथ्याधार्मिकः, अधःकृशः अधोभागादतिदुर्बलः, स्वक्षः शोभननेत्रः, क्षामकटिः कृशजघनः गृहीतवचनः उक्तग्राहकः यदुच्यते तत्सकृदेव गृह्णाति। सौभाग्ययुक्तः सर्वजनप्रियः, अलसः क्रियास्वपटुः, शीतालुः शीतं न सहते। अटनः परिभ्रमणशीलः, सत्त्वाधिकः उदारचेष्टः, बलाधिको वा, काव्यकृत् विद्वान्, लुब्धः लोभाभिभूतः, अगम्या-स्वगमनीयासु निकृष्टजातिषु जरदङ्गनासु वृद्धस्त्रीषु निरतः, सन्त्यक्त-लज्जः विमुक्तव्रीडः, अघृणः निर्दयः एवंविधो मनुजो मनुष्यो मकर-स्थे चन्द्रमसि जातो भवति।।१०।।

भाषा– यदि मकर में चन्द्रमा हो तो जातक नित्य अपनी स्त्री और सन्तान का पोषण करनेवाला, धर्मध्वजी (धर्म कार्य में मिथ्या आडम्बर करनेवाला), कमर से नीचे कृश अंग वाला, सुन्दर नेत्रवाला, क्षीण कटि (कमर) वाला, अपने वचन का पालन करनेवाला, भाग्यवान्, आलसी, शीत से डरनेवाला, भ्रमणशील, बलवान्, कवि, लोभी, अगम्या और वृद्ध स्त्री से प्रेम करनेवाला, निर्लज्ज और निर्दय होता है।। १०।।

अथ कुम्भस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं त्रोटकेनाऽऽह–

करभगलः शिरालुः खरलोमशदीर्घतनुः
पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिर्जरठः।
परवनितार्थपापनिरतः क्षयवृद्धियुतः
प्रियकुसुमानुलेपनसुहृद्घटजोऽध्वसहः ॥११॥

करभगल इति ।। करभगलः उष्ट्रसमग्रीवः, शिरालुः शिरासंततः खराः कर्कशाः लोमा यस्याः सा लोमशा दीर्घाऽत्युच्चा तनुः शरीरं यस्य। पृथू विस्तीर्णौ चरणौ पादौ तथा ऊरु जानूपरिभागौ पृष्ठं देहपश्चिमभागो जघनं नितम्बस्थानमास्यं मुखं कटिश्च बस्तिः यस्यः सः पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिः, तथा जरठः मूर्खः, परवनितासु परस्त्रीषु परार्थेषु पापे च निरतः सक्तः क्षयवृद्धियुतः उपचयपापचयैर्युक्तः, प्रियकुसुमानुलेपनसुहृत् कुसुमानि पुष्पाणि अनुलेपनं समालम्भनं सुहृदो मित्राणि प्रियाणि यस्य। अध्वसहः पथि क्षम एवंविधो घटजः कुम्भस्थे चन्द्रमसि जातो भवति ।। ११ ।।

भाषा– कुम्भ राशि में उत्पन्न मनुष्य ऊँट के समान गर्दनवाला, प्रकट नस (शिरा) वाला, रूखे और अधिक रोमयुक्त शरीरवाला, लम्बे-लम्बे पैरवाला, जंघा, पीठ, मुख और विस्तृत कमरवाला, मूर्ख, परस्त्री, परद्रव्य और पाप कर्म में आसक्त, धनादि में ह्रास-वृद्धिवाला, पुष्प, चन्दन और मित्रों में प्रीति रखनेवाला तथा भ्रमणशील होता है ॥११॥

अथ मीनस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं मालिन्याऽऽह–

जलपरधनभोक्ता दारवासोऽनुरक्तः
समरुचिरशरीरस्तुङ्गनासो बृहत्कः ।
अभिभवति सपत्नान् स्त्रीजितश्चारुदृष्टि-
र्द्युतिनिधिधन भोगी पण्डितश्चान्त्यराशौ ।।१२।।

जलपरधनभोक्तेति ।। जलपरधनभोक्ता जलधनानामुदकोत्पन्नवित्तानां मुक्ताफलानां क्रयविक्रयजातानां परधनानां च भोक्ता स्वामी, दारवासोऽनुरक्तः दारेषु कलत्रेषु विषयेषु वासांसि वस्त्राणि एतेषु चानुरक्तः, समरुचिरशरीरः समं तुल्यं सर्वावयवपरिपूर्णं रुचिरं दीप्तिमच्छरीरं यस्य। तुङ्गनासोऽत्युच्चनासिकः बृहत्कः विस्तीर्णमूर्द्धा, अभिभवति सपत्नान् शत्रून् अभिभवति पराभवति, स्त्रीजितः निधि भूमावधः स्थितोऽर्थो निधिशब्देनोच्यते धनं वित्तमेषां भोगी भोक्ता, पण्डितश्च शास्त्रार्थवित् एवंविधोऽन्त्यराशौ मीनस्थे चन्द्रमसि जातो भवति ।। १२ ।।

भाषा– मीन राशि में जन्म लेनेवाला, जल से उत्पन्न धन (मोती आदि) और दूसरे के धन को भोगनेवाला, स्त्रियों और वस्त्रों में अनुरागवाला, मझोला सुन्दर शरीरवाला, ऊँची नाक और बड़े मस्तकवाला,

शत्रुओं को जीतनेवाला, स्त्री के वशीभूत, सुन्दर नेत्रवाला, कान्ति और निधि (खान से उत्पन्न) धन का भोगी और पण्डित होता है।।१२।।

अथोक्तराशिस्वरूपमपवादं च भ्रमरविलसितेनाऽऽह—

बलवति राशौ तदधिपतौ च
स्वबलयुतः स्याद्यदि तुहिनांशुः।
कथितफलानामविकलदाता
शशिवदतोऽन्येप्यनुपरिचिन्त्याः ।।१३।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके चन्द्रराशिशीलाध्यायः सप्तदशः ।। १७ ।।

बलवति राशाविति।। पुरुषस्य जन्मसमये यस्मिन्राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तस्मिन्बलवति सबले तथा तस्य च राशेर्योऽधिपतिस्तस्मिंस्तदधिपतौ च बलवति तथा तुहिनांशुश्चन्द्रमाः स च यदि स्वबलेनात्मीयेन वीर्येण पूर्वोक्तेन संयुतोऽन्वितः स्याद्भवेत् एवमेतेषु त्रिषु यदि सबलत्वं विद्यते तदा यथोक्तराशिस्वरूपं जातो पुरुषो भवति। यत उक्तं कथितफलानामविकलदातेति। अनया सामग्र्या स चन्द्रः कथितफलानामुक्तस्वरूपाणामविकलानां परिपूर्णानां दाता भवति, एषां मध्याद्द्वयोर्बलवतोर्मध्ये युक्तं स्वरूपं प्राप्नोति। एकस्मिन्बलवति हीनं किञ्चित्, न कस्मिंश्चिद्बलवति तदुक्तं स्वरूपं न किञ्चिद्भवति। शशिवदत इति। अतोऽस्माच्चन्द्रादन्ये परिशिष्टा ये ग्रहाः रविभौमज्ञगुरुसितसौराः शशिवच्चन्द्रवत् परिकल्प्याः। यत्र राशौ स्थिता भवन्ति तदाश्रयेण वक्ष्यमाणं स्वरूपं दास्यन्ति। तदपि चन्द्रवत्। एतदुक्तं भवति। बलवति राशौ तदधिपतौ च बलवति यस्य ग्रहस्य राशिस्वरूपं पठ्यते तस्मिन्नपि बलवति तदधिपतौ च सम्पूर्णं राशिस्वरूपं भवति। यद्येकयोश्च बलवतोर्मध्यमोनमिति न कस्मिंश्चिद्बलवति। नैतत्किञ्चिदिति। चन्द्रराशिस्वभाव इति।। १३ ।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ चन्द्रराशिशीलाध्यायः सप्तदशः ।। १७ ।।

भाषा— जन्म-समय जिस राशि में चन्द्रमा हो और उसका स्वामी तथा चन्द्रमा, ये तीनों बलयुक्त हों तो उक्त फल पूर्ण रूप से समझना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि इन तीनों में दो बली हो तो कुछ न्यून, यदि एक बली हो तो आधा, यदि सब निर्बल हो तो अत्यल्प फल होता है। इसी प्रकार (चन्द्रमा के समान ही) अन्य ग्रहों के फल में भी तारतम्य करके आदेश करना चाहिए।।१३।।

अथ राशिशीलाध्यायः ॥१८॥

अथ मेषवृषगतेऽर्के जातस्य स्वरूपमौपच्छन्दसिकेनाऽऽह—

प्रथितश्चतुरोऽटनोऽल्पवित्तः क्रियगे त्वायुधभृद्वितुङ्गभागे।
गवि वस्त्रसुगन्धपण्यजीवी वनिताद्विट् कुशलश्च गेयवाद्ये।१।

प्रथित इति ।। प्रथितः प्रख्यातः, चतुरः दक्षः, अटनः परिभ्रमणशीलः, अल्पवित्तः स्तोकार्थः, आयुधभृत् शस्त्रधारणजीवी एवंविधः क्रियगे मेषस्थे भानवादित्ये जातो भवति। एतच्च फलं वितुङ्गभागे यदि तत्रैव मेषस्थः आदित्यः परमोच्चस्थो भवति तुङ्गभागं परमोच्चं वर्जयित्वा अन्यत्र स्थितेऽर्के चैतत्फलम् दोषभाग् जातो न भवति। तद्यथा। अल्पवित्तो बहुवित्तो न भवति, अटनो न भवति, आयुधभृन्न भवति, तस्यान्ये आयुधभृतोऽनुयायिनो भवन्ति। अन्ये तु पुनः पूर्वोक्ता गुणाः। प्रथितश्चतुरो भवति। गवीत्यादि। वस्त्रैरम्बरैः सुगन्धद्रव्यैः पण्यैश्च जीवति। वनिताद्विट् स्त्रीषु द्वेष्टा, गेये गीते वाद्ये च वादनविधौ कुशलः शिक्षितः, एवंविधो गवि वृषस्थे सूर्यो जातो भवति।१।

भाषा— जन्म समय में सूर्य मेष राशि में उच्चांश (१० अंश) से अन्यत्र हो तो जातक विख्यात, चतुर, भ्रमणशील, थोड़े धनवाला और शस्त्र धारण करनेवाला होता है अर्थात् सिद्ध होता है कि यदि परमोच्चांश (१०वें अंश) तक हो तो उत्कृष्ट फल (अल्पवित्त और आयुधधारी होना जो कहा गया है वह) नहीं होता है यानी उच्चांश में रहने से बहुत धनी और उसके अनुयायी लोग शस्त्रधारी होते हैं। तथा वृष में सूर्य हो तो वस्त्र, सुगन्ध (इत्र आदि) का व्यापार करनेवाला, स्त्री का द्वेषी और गाने-बजाने में निपुण होता है।। १ ।।

अथ मिथुनकर्कसिंहकन्यास्थे सूर्ये जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

विद्याज्योतिषवित्तवान्मिथुनगे भानौ कुलीरे स्थिते
तीक्ष्णोऽस्वः परकार्यकृच्छ्रमपथक्लेशैश्च संयुज्यते ।
सिंहस्थे वनशैलगोकुलरतिर्वीर्यान्वितोऽज्ञः पुमान्
कन्यास्थे लिपिलेख्यकाव्यगणितज्ञानान्वितः स्त्रीवपुः ।। २ ।।

विद्येति ।। विद्याज्योतिषवित्तवान् विद्यावान् पण्डितः, ज्योतिषवान् ज्योतिषशास्त्रज्ञः, वित्तवान् धनी एवंविधो मिथुनस्थे भानौ जातो भवति। तीक्ष्ण उग्रः, अस्वः दरिद्रः, परकार्यकृदन्येषां कार्यकर्ता, श्रम-

पथक्लेशैः श्रमेण खेदेन यथाऽध्वना क्लेशैः दुःखैश्च सर्वकालं संयुज्यते; एवंविधः कुलीरस्थे कर्कटगते भानौ जातो भवति। सिंहस्थ इति। वनमरण्यं, शैलः पर्वतः, गोकुलः गोवाटः एतेषु स्थानेषु रतिः, निवासशीलः, तदासक्त इत्यर्थः। वीर्यान्वितः बली, अज्ञः मूर्खः एवविधः पुरुषः सिंहस्थेऽर्के जातो भवति। लिपिरक्षरविन्यास लेख्यं चित्रकर्म, काव्यं कवेः कर्म, गणितं ग्रहगणितादि, ज्ञानं विज्ञानम् एतैरन्वितो युक्तः, स्त्रीबपुः स्त्रीतुल्यशरीरः एवंविधः कन्यास्थेऽर्के जातो भवति।२

भाषा– मिथुन में सूर्य हो तो जातक विद्वान्, ज्यौतिषी और धनवान होता है। कर्क में सूर्य हो तो उग्र स्वभाव, निर्धन, दूसरे का कार्य करनेवाला, श्रम और मार्ग में चलने से क्लेश का भागी होता है। सिंह में सूर्य हो तो वन, पर्वत, गोपालन में प्रेम रखनेवाला, बलवान और मूर्ख होता है। कन्या में सूर्य हो तो चित्र, लेख, काव्य और गणित शास्त्र को जाननेवाला तथा स्त्री के सदृश आकारवाला होता है॥ २॥

अथ तुलावृश्चिकधन्विमकरस्थेऽर्के जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

जातस्तौलिनि शौण्डिकोऽध्वनिरतौ हैरण्यको नीचकृत्
क्रूरः साहसिको विषार्जितधनः (१) शस्त्रान्तगोऽलिस्थिते।
सत्पूज्यो धनवान्धनुर्द्धरगते तीक्ष्णो भिषक्कारुको
नीचाऽज्ञः कुर्वाणङ्मृगेऽल्पधनवाँल्लुब्धोऽन्यभाग्यै रतः।३

जात इति।। शौण्डिको मद्यविक्रयी भवति, मद्यकरो वेति केचित्, अध्वनिरतः पथि प्रसक्तः, हैरण्यकः स्वर्णकारः, नीचकृदनुचितकर्मकर्ता एवंविधः तौलिनि तुलास्थेऽर्के जातो भवति। क्रूरः उग्रस्वभावः साहसिकः असमीक्षितकार्यकृत्। तथा च– 'असमीक्षितकार्याणां कर्त्ता साहसिकः स्मृतः।' विषार्जितधनः विषप्रयोगैरर्जितं धनं सञ्चितं वित्तं येन, प्रत्यन्तरे वृथार्जितधनः यद्धनमर्जयति तदस्य वृथा निष्फलं भवति चौरादयोऽपहरन्ति। शस्त्रान्तगः शस्त्रनैपुण्यकः शस्त्रस्यायुधस्यांतगः एवंविधोऽलिस्थिते वृश्चिकगतेऽर्के जातो भवति। सत्पूज्यः सतामर्चनीयः, धनवान्वित्तयुक्तः तीक्ष्णः क्रूरचेष्टः, भिषक् वैद्यप्रयोगज्ञः कारुकः शिल्पकर्मज्ञः एवंविधो धनुर्धरस्थेऽर्के जातो भवति। नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, अज्ञः मूर्खः, कुवणिक्

(१) 'वृथार्जितधनः' इत्यपि पाठस्तत्र वृथाऽर्ज्जितं धनं यस्येति विग्रहः।

कुत्सितवणिक्; अल्पधनवान् स्तोकार्थः, लुब्धः लोभाभिभूतः, अन्य भाग्यै रतःपरार्थोपकारभोक्ताएवंविधो मृगे मकरस्थेऽर्के जातो भवति।३

भाषा– जन्म-समय में तुला में सूर्य हो तो जातक मद्य व्यवसायी, मार्ग चलनेवाला, स्वर्णकार और अपने कुल से निन्द्य कार्य करनेवाला होता है। वृश्चिक में सूर्य हो तो क्रूर, बिना विचार काम करनेवाला, विष व्यवसायी तथा शस्त्र को जाननेवाला होता है। धनु में सूर्य हो तो जातक सज्जनों से पूजित, धनी, उग्र स्वभाव, वैद्य और चित्रकार होता है। मकर में सूर्य हो तो नीच, मूर्ख, निन्दाजनक व्यापार करनेवाला, अल्प धनवाला, लोभी और दूसरे के भाग्य से जीनेवाला होता है।।३।।

अथ कुम्भमीनगतेऽर्के जातस्य स्वरूपं चन्द्रार्कयोस्तु
लक्ष्मज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

नीचो घटे तनयभाग्यपरिच्युतोऽस्व-
स्तोयोत्थपण्यविभवो वनितादृतोऽन्त्ये।
नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे विभागे
लक्ष्मादिशेत्तुहिनरश्मि - दिनेशयुक्ते।।४।।

नीच इति।। नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, तनयैः पुत्रैः भाग्यैश्च परिच्युतः त्यक्तः पुत्रैः जनबाल्लभ्येन च विरहितः, अस्वः निर्धनः एवंविधो घटे कुंभस्थेऽर्के जातो भवति। तोयोत्थं जलोत्पन्नं मुक्ता-फलादि तत्पण्येन तद्विक्रयेण विभवमैश्वर्यं यस्य। वनितादृतः स्त्रीपूज्यः एवंविधोऽन्त्ये मीनस्थेऽर्के जातो भवति। नक्षत्रमानव-तनुरित्यादि। नक्षत्रमानवको राशिपुरुषः कालाङ्गानीत्यादिना प्रदर्शितः तुहिनरश्मिश्चन्द्रः, दिनेश आदित्यः एतौ समेतौ यस्मिन्राशौ स्थितौ च राशिनक्षत्रपुरुषस्य यस्मिन्नङ्गे स्थितस्तत्र पुरुषस्य जातस्य लक्ष्म चिह्ने मस्तकादौ समादिशेत् वदेत्। यथा मेषस्थयोः शिरसि, वृषस्थयोः मुख इत्येवमूह्यम्। इति आदित्यराशिस्वभावः।।४।।

भाषा– यदि सूर्य कुम्भ राशि में हो तो जातक नीच (अनुचित कार्य करने वाला), पुत्र और भाग्य से परित्यक्त तथा निर्धन होता है। मीन में सूर्य हो तो जलोत्पन्न वस्तु (मोती आदि) के व्यापार से धनलाभ करने वाला और स्त्री से पूजित होता है। सूर्य और चन्द्रमा जिस राशि में दोनों एक साथ हों वह राशि नक्षत्र मानव ('कालाङ्गानि' इत्यादि कथित कालपुरुष) के जिस अङ्ग में हो उस अंग पर चिह्न (मसक, तिल आदि) कहना चाहिए, जैसे मेष में हो तो मस्तक पर, वृष में हो तो मुख पर, इत्यादि।।४।।

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलस्थे कुजे जातस्य स्वरूपं त्रोटकेनाऽऽह-

नरपतिसत्कृतोऽटनश्चमूपवणिक्सधनाः
क्षततनुचौरभूरिविषयांश्च कुजः स्वगृहे।
युवतिजितान् सुहृत्सु विषमान् परदाररतान्
कुहकसुवेषभीरुपरुषान् सितभे जनयेत् ॥५॥

नरपतिसत्कृत इति॥ नरपतिसत्कृतः राजपूजितः, अटनः परिभ्रमणशीलः, चमूपः सेनापतिः, वणिक् क्रयविक्रयज्ञः, संधनाः वित्तान्वितः, क्षततनुः विक्षतदेहः व्रणितशरीरः, चौरस्तस्करः, भूरिविषयः विप्रकीर्णेन्द्रियः, एवंविधान् स्वगृहे मेषवृश्चिकस्थः कुजः भौमः जनयेत्। युवतिजितः स्त्रीविधेयः, सुहृत्सु मित्रेषु, विषमः दुर्विधेयः सक्रूरस्वभावः, परदाररतः परयोषिति प्रसक्तः,कुहकज्ञः ऐन्द्रजालिकः सुवेषः शोभनालङ्कारः, भीरुः सभयः पुरुषः, कर्कशः निस्नेहः एवं विधान्पुरुषान् सितभे शुक्रक्षेत्रे वृषे तुले च स्थितो भौमो जनयेदुत्पादयेत् ॥५॥

भाषा– मेष या वृश्चिक में हो तो जातक राजा से सत्कार पानेवाला, भ्रमणशील, सेनापति, व्यापारी और धनवान् पुरुष को पैदा करता है। यदि वृष या तुला में मंगल हो तो स्त्री के वश में रहनेवाला मित्रों से कपट करनेवाला, पर-स्त्री में रत, इन्द्रजाल विद्या जाननेवाला, सुन्दर वेशवाला, डरपोक और कर्कश मनुष्य को पैदा करता है॥५॥

अथ मिथुनकन्याकर्कटस्थे भौमे जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

बौधेऽसहस्तनयवान्विसुहृत्कृतज्ञो
गान्धर्वयुद्धकुशलः कृपणोऽभयोऽर्थी।
चान्द्रेऽर्थवान्सलिलयानसमर्जितस्वः
प्राज्ञश्च भूमितनये विकलः खलश्च ॥६॥

बौधे इति॥ असहः तेजस्वी, तनयवान्, पुत्रयुक्तः, विसुहृत मित्ररहितः, कृतज्ञः परोपकारशीलः, गान्धर्वयुद्धकुशलः गान्धर्वे गीते युद्धे च संग्रामे प्रवेशनिर्गमव्यूहरचनादिषु च कुशलः तज्ज्ञः, कृपणः अदाता, अभयः निर्भयः, अर्थी याञ्चापरः एवंविधो बौधे मिथुनकन्यास्थे कुजे भौमे जातो भवति। अथ कर्कटस्थे भौमे जातस्य स्वरूपमाह। चान्द्रे इति। अर्थवान् सधनः, सलिलयानसमर्जितस्वः सलिलयानेन प्लवादिना सम्यगर्जितं स्वं धनं येन अथवा सलिलेन जलेन यानेन गमनेनाध्वना

समर्जितं स्वं धनं येन। प्राज्ञः मेधावी, विकलोंऽगहीनः, खलः दुर्जनः एवंविधश्चान्द्रे कर्कटगते भौमे जातो भवति।। ६ ।।

भाषा– यदि मंगल मिथुन या कन्या में हो तो जातक असह (किसी की अनुचित कथा को बर्दाश्त नहीं करनेवाला अर्थात् तेजस्वी), पुत्रवान्, मित्ररहित, कृतज्ञ (उपकार को न माननेवाला), गाने-बजाने और युद्धभूमि में निपुण, कृपण, निर्भय किन्तु याचक होता है। यदि कर्क में बुध हो तो जातक धनवान्, नौका द्वारा धनोपार्जन करनेवाला, पण्डित, अंगहीन और शठ होता है।। ६ ।।

अथ सिंहधन्विमीनकुम्भमकरस्थे भौमे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

निःस्वः क्लेशसहो वनान्तरचरः सिंहेऽल्पदारात्मजो
जैवे नैकरिपुर्नरेन्द्रसचिवः ख्यातोऽभयोऽल्पात्मजः।
दुःखार्तो विधनोऽटनोऽनृतरतस्तीक्ष्णश्च कुम्भस्थिते
भौमे भूरिधनात्मजो मृगगते भूपोऽथ वा तत्समः ।।७।।

निःस्व इति।। निस्वः निर्धनः, क्लेशसहः आपद्धीरः कदर्थनाक्षमः, वनान्तरचरः अरण्यमध्यचारी, केचिदभयो वनचर इति पठन्ति। अभयो भयरहितः, वनान्तरचरोऽरण्यचारी, अल्पदारात्मजोऽल्प-कलत्रः, अल्पापत्तयः एवंविधः सिंहस्थे भौमे जातो भवति। अनेकरिपुः बह्वरिः, नरेन्द्रसचिवः मन्त्री, ख्यातः विदितकीर्तिः, अभयः निर्भयः, अल्पात्मजः स्वल्पापत्यः एवंविधो धन्विमीनस्थे भौमे जातो भवति। दुःखार्तः नित्यं दुःखसन्तप्तः, विधनः दरिद्रः, अटनः परिभ्रमणशीलः, अनृतरतः असत्यभाषी, तीक्ष्णः निरपेक्षः, क्रूरः एवंविधः कुम्भस्थे भौमे जातो भवति। भूरिधनात्मजः प्रभूतधनः प्रभूतपुत्रः, भूपः राजाः, अथवा तत्समः राजतुल्यः, एवंविधो मृगगते मकरस्थे भौमे जातो भवति। इति भौमराशिस्वभावः।। ७ ।।

*भाषा–*जन्म-समय में मंगल यदि सिंह राशि में हो तो जातक निर्धन, क्लेश सहनेवाला, जंगल में भ्रमण करनेवाला, अल्प स्त्री और अल्प पुत्रवाला होता है। यदि धनु या मीन में मंगल हो तो बहुत अधिक शत्रुवाला, राजा का मंत्री, विख्यात, निर्भय और थोड़े पुत्रवाला होता है। यदि कुम्भ में मंगल हो तो दुःख से पीड़ित, धनहीन, भ्रमणशील, झूठ बोलनेवाला तथा उग्र स्वभाव का होता है। यदि मकर में मंगल हो तो बहुत धन और बहुत पुत्रवाला राजा या राजा के तुल्य होता है।। ७ ।।

अथ मेषवृश्चिकतुलवृषगते बुधे जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

द्यूतर्णपानरतनास्तिकचौरनिःस्वाः
कुस्त्रीककूटकृदसत्यरताः कुजर्क्षे।
आचार्य भूरिसुतदारधनार्जनेष्टाः
शौक्रे वदान्यगुरुभक्तिरताश्च सौम्ये ॥८॥

द्यूतेति॥ द्यूतेऽक्षज्ञाने, ऋणे परस्वहरणे, पाने च निरतः सक्तः, नास्तिकः शास्त्रार्थादपेतः, तार्किकः नास्ति परलोके मतिर्यस्य स नास्तिकः, चौरस्तस्करः, निःस्वो दरिद्रः, कुस्त्रीकः कुत्सितभार्यः, कूटकृत् कूटकर्ता दाम्भिकः, असत्यनिरतः अनृतभाषी एवंविधा जाताः सौम्ये बुधे भौमर्क्षे मेषवृश्चिकस्थे भवन्ति। आचार्येत्यादि। आचार्यः उपदेशकर्त्ता, भूरिसुतः प्रसूतापत्यः, भूरिदारो बहुकलत्रः, धनार्जनमिष्टं अस्य, अथार्जनि नित्यमुद्यतः, वदान्यः दाता, गुरुभक्तिरताः मातृपितृगुरूणां भक्ताः एवंविधाः पुरुषाः शौक्रे वृषतुलस्थे बुधे जाता भवन्ति॥८॥

भाषा– यदि जन्म-समय में बुध मेष या वृश्चिक राशि में हो तो जातक जुआड़ी, ऋण करनेवाला, मद्यपायी, नास्तिक, चोर, निर्धन, दुष्ट स्त्री-वाला, जाल बनानेवाला तथा मिथ्याभाषी होता है। यदि वृष या तुला में बुध हो तो जातक अध्यापक, बहुत पुत्रवाला, बहुत स्त्री और बहुत धनोपार्जन करनेवाला, उदार हृदय और गुरुजन (माता-पिता आदि) का भक्त होता है॥८॥

अथ मिथुनकर्कटस्थे बुधे जातस्य स्वरूपमुपेन्द्रवज्रयाऽऽह—

विकत्थनः शास्त्रकलाविदग्धः प्रियँव्वदः सौख्यरतस्तृतीये।
जलार्जितस्वः स्वजनस्य शत्रुः शशाङ्कजे शीतकरर्क्षयुक्ते।९।

विकत्थन इति॥ विकत्थनः वाचालः असत्यवादी, शास्त्रकलाविदग्धः शास्त्रे कलासु च गीतवाद्यनृत्यखेलचित्रकर्मसु विदग्धः शिक्षितः, प्रियंवदोऽभिमतवक्ता, सौख्यरतः सुखासक्तः एवंविधः शशाङ्कजे बुधे तृतीये मिथुनस्थे जातो भवति। जलार्जित इति। जलार्जितस्वः जलेनोदकेनार्जितं स्वं धनं येन सः। केचिद्बलार्जितस्व इति पठन्ति। बलेन वीर्येणार्जितं स्वं धनं येन। स्वजनस्यात्मीयजनस्य च बन्धुजनस्य शत्रुः रिपुः एवंविधः शशाङ्कजे बुधे शीतकरर्क्षे चन्द्रकर्कटयुक्ते जातो भवति।९।

भाषा– यदि बुध मिथुन राशि में हो तो जातक अधिक बोलनेवाला (वाचाल), शास्त्रकला जाननेवाला, प्रिय बोलनेवाला और सुखी होता

है। यदि कर्क में बुध हो तो जलोत्पन्न वस्तुओं से धन उपार्जन करने-वाला और अपने कुटुम्बियों का शत्रु होता है।।९।।

अथ सिंहकन्यागते बुधे जातस्य स्वरूपं प्रहर्षिण्याऽऽह—

स्त्रीद्वेष्यो विधनसुखात्मजोऽटनोऽज्ञः
स्त्रीलोलः स्वपरिभवाऽर्कराशिगे ज्ञे ।
त्यागी ज्ञः प्रचुरगुणः सुखी क्षमावान्
युक्तिज्ञो विगतभयश्च षष्ठराशौ ।।१०।।

स्त्रीद्वेष्य इति।। स्त्रीणां द्वेष्यः स्त्रीद्वेष्यः, विधनसुखात्मजः विधनः धनरहितः, विसुखः विगतसुखः, विगतात्मजः पुत्ररहितः, अटनः परिभ्रमणशीलः, अज्ञः मूर्खः, स्त्रीलोलः वनिताभिलाषी, स्वपरिभवः स्वेमेषामात्मीयानां सकाशात्परिभवो यस्य एवंविधो ज्ञे बुधेऽर्कराशिगे सिंहस्थे जातो भवति। त्यागी दाता, ज्ञः पण्डितः, प्रचुरगुणः प्रभूतगुणैर्युतः गुणा विद्याशौर्यादयः। सुखी सुखितः, क्षमावान्सहिष्णुः युक्तिज्ञः प्रयोगवेत्ता, विगतभयः निर्भयः एवंविधः षष्ठराशौ कन्यास्थे बुधे जातो भवति।१०

भाषा— यदि बुध सिंह राशि में हो तो जातक स्त्री का शत्रु, धन, सुख और सन्तानों से हीन, भ्रमणशील, मूर्ख, स्त्रीलम्पट (पर-वनिताभिलाषी), अपने जनों से अनादृत होता है। यदि कन्या राशि में बुध हो तो दाता, विद्वान्, अनेक गुणों से युक्त, सुखी, क्षमाशील, युक्ति को जाननेवाला और निडर होता है।।१०।।

अथ मकरकुम्भधन्विमीनगते बुधे जातस्य स्वरूपमौपच्छन्दसिकेनाऽऽह--

परकर्मकृदस्वशिल्पबुद्धी
ऋणवान्विष्टिकरो बुधेऽर्कजर्क्षे ।
नृपसत्कृतपण्डिताप्तवाक्यो नवमे-
ऽन्त्ये जितसेवकोऽन्त्यशिल्पः ।।११।।

परकर्मकृदिति।। परकर्मकृत् परप्रेष्यकरः, अस्वः दरिद्रः, शिल्पबुद्धिः शिल्पकर्मस्वनुरतमतिः, ऋणवान् परस्वग्रहणशीलः, विष्टिकरः आज्ञाकरः एवंविधोऽर्कजर्क्षे मकरकुम्भस्थे बुधे जातो भवति। नृपसत्कृतः राजपूजितः नृपसम्मतो वा राजवल्लभः, पण्डितः विद्वान्, आप्तवाक्यः व्यवहारार्थवेत्ता आप्तमनुकूलं वाक्यं यस्य एवंविधो नवमे धन्विस्थिते बुधे जातो भवति। जितसेवकः जिताः सेवका येन परागधनदक्षः पराभिप्रायज्ञः, अन्त्यशिल्पः नीचशिल्पः एवंविधोऽन्त्ये मीनस्थे बुधे जातो भवति। इति बुधराशिस्वभावः।।११।।

भाषा– यदि मकर या कुम्भ में बुध हो तो जातक दूसरे का कार्य करनेवाला, गरीब, शिल्प कर्म जाननेवाला, ऋण लेनेवाला, दूसरे का हुक्म करनेवाला होता है। यदि धनु में बुध हो तो जातक राजा से पूजित, पण्डित, अपने अनुकूल बात को जाननेवाला (व्यवहारज्ञ) होता है। मीन में बुध हो तो सेवक को जीतने (वश में करने) वाला और निन्द्य कर्म करनेवाला होता है।।११।।

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलमिथुनकन्यागते जीवे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

सेनानीर्बहुवित्तदारतनयो दाता सुभृत्यः क्षमी
तेजोदारगुणान्वितः सुरगुरौ ख्यातः पुमान्कौजभे ।
कल्पाङ्गः सधनार्थमित्रतनयस्त्यागी प्रियः शौक्रभे
बौधे भूरिपरिच्छदात्मजसुहृत्साचिव्ययुक्तः सुखी ।१२।

सेनानीरिति।। सेनानीः सेनानायकः, बहुवित्तः प्रभूतधनः, बहुदारः प्रभूतकलत्रः, बहुतनयः प्रभूतापत्यः, दाता दानशीलः, सुभृत्यः शोभनभृत्यः, क्षमी क्षमावान्, तेजसा कान्त्या दारगुणैः कलत्रसौख्यैरन्वितो युक्तः, ख्यातः प्रख्यातकीर्तिः एवंविधः सुरगुरौ जीवे कौजे कुजभे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकस्थे जातो भवति। कल्पाङ्गः स्वस्थदेहः, सधनार्थः सधनः, समित्रः ससुहृत् सतनयः पुत्रान्वितः, सुखधनमित्रपुत्रयुक्तः, त्यागी दाता, प्रिय सर्वजनवल्लभः एवंविधः शौक्रभे शक्रक्षेत्रस्थे जीवे जातो भवति। बौधे इत्यादि। भूरिपरिच्छदः बहुवस्त्रगृहपरिवारः, भूर्यात्मजः बहुपुत्रः, भूरिसुहृत् प्रभूतमित्रः, साचिव्ये मन्त्रित्वे नियुक्तः सचिवस्य भावः साचिव्यं सुखितः एवंविधो बौधे बुधक्षेत्रे मिथुनकन्यास्थे जीवे जातो भवति।। १२।।

भाषा– मेष या वृश्चिक में गुरु हो तो जातक सेनापति, बहुत धन, बहुत स्त्री और बहुत पुत्रवाला, दाता, अच्छे नौकरवाला, क्षमावान्, कान्ति और स्त्रीसुख से युक्त, विख्यात पुरुष होता है। यदि गुरु वृष या तुला में हो तो जातक मजबूत देहवाला, धनी, सुख, मित्र और पुत्र से युक्त, दाता और सर्वजनप्रिय होता है। यदि मिथुन या कन्यामें गुरु हो तो अनेक वस्त्रों से युक्त, बहुत पुत्र और मित्रों से युक्त, राजमन्त्री और सुखी होता है।। १२।।

अथ कर्कटसिंहधन्विमीनकुम्भमकरस्थे जीवे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

चान्द्रे रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वितः
सिंहे स्याद्बलनायकः सुरगुरौ प्रोक्तं च यच्चन्द्रभे ।

स्वर्क्षे माण्डलिको नरेन्द्रसचिवः सेनापतिर्वा धनी
कुम्भे कर्कटवत्फलानि मकरे नीचोऽऽल्पवित्तोऽसुखी ।।१३।।

चान्द्र इति।। रत्नानि मणयः, सुताः पुत्राः, स्वं धनं, दाराः कलत्रं, विभव ऐश्वर्यं, प्रज्ञा मेधा, सुखं सुखभावः एतैरन्वितः संयुक्तः एवंविधः चान्द्रे चन्द्रक्षेत्रे कर्कटस्थे सुरगुरौ जीवे जातो भवति। बलनायकः सेना-प्रधानः अन्यच्च यच्चन्द्रभे कर्कटस्थे उक्तं रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञा-सुखैरन्वितः एवंविधः सिंहस्थे जीवे स्याद्भवेत्। माण्डलिकः मण्डला-धिपतिः सेनानाथो वा, अथवा धनी वित्तवान् एवंविधः स्वर्क्षे स्वराशौ धन्विमीनस्थे जीवे जातो भवति। कुम्भे कर्कटवदिति। योनि कर्कटस्थे जीवे फलान्यभिहितानि रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वित इत्येतानि कुम्भस्थे गुरौ भवन्ति। अत्रान्येन सह मतभेदः। तेनानिष्टं फलमविहितम्। तथा च। नीचः कुम्भे जनयति कर्मणि तोयाश्रये सक्तम्। नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, अल्पवित्तः स्तोकार्थः, असुखी दुःखितः एवंविधो मकरस्थे जीवे जातो भवति। इति बृहस्पतिराशिस्वभावः।।१३।।

भाषा– कर्क में बृहस्पति हो तो जातक रत्न, पुत्र, धन, स्त्री, ऐश्वर्य, बुद्धि और सर्व सुखों से युक्त होता है। सिंह में गुरु हो तो कर्क के जो फल कहे गये हैं, वे सब तथा सेनापति होता है। धनु या मीन में गुरु हो तो मण्डलाधीश (प्रान्तपति), राजमन्त्री, सेनापति व धनी होता है। कुम्भ में गुरु हो तो कर्क के समान सब फल समझना। यदि मकर में बृहस्पति हो तो नीच, धनहीन और दुःखी होता है।।१३।।

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलगते शुक्रे जातस्य स्वरूपं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

परयुवतिरतस्तदर्थवादैर्हृत-
विभवः कुलपांसनः कुजर्क्षे ।
स्वबलमतिधनो नरेन्द्रपूज्यः स्वजन-
विभुः प्रथितोऽभयः सिते स्वे ।।१४।।

परेति।। परयुवतिरतः परस्त्रीषु सक्तः, तदर्थवादैस्तासां पर-स्त्रीणामर्थवादैरपराधानुवचनैः हतविभवोऽपहृतार्थः, कुलपांसनः कुल-कलङ्कभूतः एवंविधः सिते शुक्रे कुजर्क्षे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकस्थे जातो भवति। स्वबलेत्यादि। स्वबलेनात्मवायण स्वमत्या आत्मीयशुद्ध्या च धनं यस्यासौ स्वबलमतिधनः नरेन्द्रपूज्यः राजवल्लभः, स्वजनविभुः बन्धुप्रधानः, प्रथितः विख्यातः, अभयः निर्भयः, एवंविधः स्वे स्वक्षेत्रे वृषतुलास्थे सिते शुक्रे जातो भवति।। १४।।

भाषा– यदि शुक्र मेष या वृश्चिक में हो तो वह जातक परस्त्रीगामी तथा उसी अपवाद से धनहीन और कुल को कलङ्कित करनेवाला होता है। यदि शुक्र अपने घर (वृष या तुला) में हो तो अपने बलबुद्धि से धन कमानेवाला, राजमान्य, अपने कुटुम्ब में श्रेष्ठ, विख्यात और निर्भय होता है॥१४॥

अथ मिथुनकन्यामकरकुम्भस्थे शुक्रे जातस्य स्वरूपमौपच्छन्दसिकेनाऽऽह–

नृपकृत्यकरोऽर्थवान्कला-
विन्मिथुने षष्ठगतेऽतिनीचकर्मा ।
रविजक्षगतेऽमरारिपूज्ये सुभगः
स्त्रीविजितो रतः कुनार्याम् ॥१५॥

नृपेति॥ नृपकृत्यकरः राजकर्मकर्त्ता, अर्थवान् धनी, कलावित् कलाज्ञः गीतवाद्यादिकवेत्ता एवंविधोऽमरारिपूज्ये दैत्यगुरौ शुक्रे मिथुनस्थे जातो भवति। षष्ठगते कन्यास्थे शुक्रेऽतिनीचकर्मा कष्टकार्य-करो जातो भवति। सुभगः सर्वजनप्रियः, स्त्रीविजितः प्रमदावशगः, कुनार्यां कुत्सितस्त्रियां रतः सक्तः एवंविधः शुक्रे रविजर्क्षगते मकर-कुम्भस्थे जातो भवति॥१५॥

भाषा– शुक्र यदि मिथुन में हो तो राजकार्य करनेवाला, धनवान तथा कलाविज्ञ होता है। यदि कन्या राशि में शुक्र हो तो वह जातक अत्यन्त निन्द्य कर्म करनेवाला होता है। मकर या कुम्भ में शुक्र हो तो सुन्दर (सर्वप्रिय), स्त्री के वश में रहनेवाला तथा कुचालवाली स्त्री में आसक्त होता है॥१५॥

अथ कर्कटसिंहधन्विमीनस्थे शुक्रे जातस्य स्वरूपं शिखरिण्याऽऽह–

द्विभार्योऽर्थी भीरुः प्रबलमदमशोकञ्च शशिभे
हरौ योषाप्तार्थः प्रवरयुवतिर्मन्दतनयः ।
गुणैः पूज्यः सस्वस्तुरगसहिते दानवगुरौ
झषे विद्वानाढ्यो नृपजनितपूजोऽतिसुभगः ॥१६॥

द्विभार्य इति॥ द्विभार्यः द्विस्त्रीकः, अर्थी याञ्चापरः, भीरुः सभयः, प्रबलमदोऽतिदृप्तः, प्रबलशोकोऽतिदुःखितः एवंविधो दानवगुरौ दैत्य-पूज्ये शुक्रे शशिभे कर्कटस्थे जातो भवति। योषाप्तार्थः स्त्री-प्राप्तधनः, प्रवरयुवतिः प्रधानस्त्रीकः, मन्दतनयः अल्पापत्यः एवंविधो हरौ सिंहस्थे शुक्रे जातो भवति। गुणैः पूज्यः मान्यः, सस्वः सधन;

एवंविधस्तुरगसहिते धन्विस्थे दानवगुरौ शुक्रे जातो भवति। विद्वान्पण्डितः, आढ्यः ईश्वरः, नृपजनितपूजः नृपेण राज्ञा जनितोत्पादिता पूजाऽर्हणं यस्य। अतिसुभगः सर्वजनानामतिवल्लभः एवंविधो झषे मीनस्थे शुक्रे जातो भवति। इति शुक्रराशिस्वभावः ॥१६॥

भाषा—यदि शुक्र कर्क में हो तो जातक दो स्त्रीवाला, याचक, सभय, विशेष मद (गर्व) वाला और प्रबल शोकयुक्त होता है। सिंह में शुक्र हो तो स्त्री के वश में रहनेवाला और अल्प सन्तानवाला होता है। धनु में शुक्र हो तो बहुपूजित और धनवान् होता है। यदि शुक्र मीन राशि में हो तो जातक विद्वान्, धनवान्, राजा का मान्य और सर्वजन-प्रिय होता है।१६।

अथ मेषवृश्चिकमिथुनकन्यागते सौरे जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

मूर्खोऽटनः कपटवान्विसुहृद्यमेऽजे
कीटे तु बन्धवधभाक् चपलोऽघृणश्च।
निर्ह्रीसुखार्थतनयः स्खलितश्च लेख्ये
रक्षापतिर्भवति मुख्यपतिश्च बौधे ॥१७॥

मूर्ख इति॥ मूर्खोऽज्ञानोपेतः, अटनः परिभ्रमणशीलः, कपटवान् दांभिकः, विसुहृत् मित्ररहितः एवंविधो यमे सौरे अजे मेषस्थे जातो भवति। बन्धवधभाक् बंधा बंधनं, वधस्ताडनं बंधबधौ भजेतम्, चपलः क्रियास्वनवस्थितः अघृणः निर्दयः एवंविधः कीटे वृश्चिकस्थे जातो भवति। निर्ह्रीसुखार्थतनयः निर्गता ह्रीर्लज्जा यस्य स निर्लज्जः निःसुखो दुःखितः निरर्थो दरिद्रः, निस्तनयः पुत्ररहितः, लेख्ये आलेख्यकर्मणि स्खलितः अज्ञः रक्षापतिर्भवत्यारक्षकः मुख्यपतिः प्रधाननाथः एवंविधो बौधे बुधक्षेत्रे मिथुनकन्यास्थे सौरे जातो भवति।१७।

भाषा—यदि शनि मेषराशि में हो तो जातक मूर्ख, भ्रमणशील, कपटी और मित्रों से रहित होता है। वृश्चिक में शनि हो तो बन्धन और वध का भागी, चञ्चल और निर्दय होता है। यदि मिथुन या कन्या में शनि हो तो निर्लज्ज, सुखहीन, लेख-कर्म से अनभिज्ञ, रक्षक (द्वारपाल) या प्रधानपति (मुख्य रक्षक) होता है।१७।

अथ वृषतुलाकर्कटसिंहस्थे सौरे जातस्य स्वरूपं मन्दाक्रान्तयाऽऽह—

वर्ज्यंस्त्रीष्टो न बहुविभवो भूरिभार्यो वृषस्थे
ख्यातः स्वोच्चे गणपुरबलग्रामपूज्योऽर्थवांश्च।
कर्किण्यस्वो विकलदशनो मातृहीनोऽसुतोऽज्ञः
सिंहेऽनार्यो विसुखतनयो विष्टिकृत्सूर्यपुत्रे ॥१८॥

वर्ज्येति।। वर्ज्यास्वगम्यासु, स्त्रीषु योषित्सु, इष्टः वल्लभः, न बहुविभवः न प्रभूतैश्वर्ययुक्तः, अल्पैश्वर्ययुक्तः, भूरिभार्यः प्रभूतदारः एवंविधो वृषस्थे सूर्यपुत्रे शनैश्चरे जातो भवति। ख्यातः विदित-कीर्तिः, गणानां समूहानां पुराणां नगराणां बलानां सैन्यानां ग्रामाणां च पूज्यो मान्यः, अर्थवान्सधनः एवंविधः स्वोच्चराशौ तुलास्थे सौरे जातो भवति। अस्वः दरिद्रः, विकलदशनः अल्पदंतः, मातृहीनः जननीवियुक्तः, असुतः पुत्ररहितः, अज्ञः मूर्खः, एवंविधः कर्कटस्थे सौरे जातो भवति। सिंहेऽनार्य इति। अनार्यः मूर्खः, विसुखो दुःखितः, वितनयः पुत्ररहितः, विष्टिकृद्भारवाहकः एवंविधः सिंहस्थे सूर्यपुत्रे शनैश्चरे जातो भवति।।१८।।

भाषा– यदि वृषराशि में शनि हो तो वह जातक अगम्या स्त्री का प्रेमी, अल्प धनवान, बहुत स्त्रियों का पति होता है। तुला में शनि हो तो जातक विख्यात जनसमूह में, नगर में, सेना में या गाँव में अग्रगण्य और धनवान होता है। कर्क में शनि हो तो धनहीन, अल्प दाँतवाला या दाँत का रोगी, मातृहीन, पुत्रहीन और मूर्ख होता है। सिंह में शनि हो तो विचारहीन, दुःखी, पुत्रहीन और भारवाही होता है।।१८।।

अथ धन्विमीनमकरकुम्भगते सौरे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

स्वन्तः प्रत्ययितो नरेन्द्रभवने सत्पुत्रजायाधनो
जीवक्षेत्रगतेऽर्कजे पुरबलग्रामाग्रनेताऽथ वा।
अन्यस्त्रीधनसँव्वृतः पुरबलग्रामाग्रणीर्मन्ददृक्
स्वक्षेत्रे मलिनः स्थिरार्थविभवो भोक्ता च जातःपुमान्।१९।

स्वन्तरिति।। स्वन्तः शोभनोऽन्तः पर्यन्तो यस्य स स्वन्तः शुभेन कर्मणा तस्य मृत्युर्भवति। अथवाऽन्ते शोभनं सुखादिकं यस्य। नरेन्द्रभवने राजगृहे प्रत्ययितः संजातप्रत्ययः, सत्पुत्रः शोभनापत्यः, सज्जाय शोभनभार्यः, सद्धनः सद्वित्तः, पुरबलग्रामाग्रनेता पुराणां नगराणां बलस्य सेनायाः ग्रामाणां च अग्रनेता प्रधानो नायकः एवं-विधोर्कजे सौरे जीवक्षेत्रे धन्विमीनस्थे जातो भवति। अन्यस्त्रीधन-संवृतः परयोषिद्भिः परधनैश्च संवृतः संयुक्तः, पुरबलग्रामाग्रणीः पुराणां बलानां ग्रामाणां च अग्रणीः प्रधाननायकः, मन्ददृगल्पचक्षुः, मलिनः मलोपेतः स्नानालसः, स्थिरार्थः स्थिरवित्तः स्थिरविभवः

स्थिरैश्वर्यः, भोक्ता असञ्चयशीलः एवंविधः पुमान् पुरुषः स्वक्षेत्रे मकरकुम्भस्थे सौरे जातो भवति। इति शनैश्चरराशिस्वभावः। एतेषु सर्वेषु ग्रहराशिस्वभावेषु बलवति राशौ तदधिपतौ च तस्मिंश्च ग्रहे बलवति जातस्य यथोक्तं राशिस्वरूपं भवति। द्वयेकयोश्च बलवतोर्मध्ये समानमिति। न कस्मिंश्चिद्बलवति न किंचिदिति॥१६॥

भाषा– शनि धनु या मीन में हो तो जातक अन्त में सुख पानेवाला, राजगृह में विश्वासपात्र, सत्पुत्र, सुन्दरी स्त्रीवाला, विपुल धन-सम्पन्न, अथवा शहर, सेना या ग्राम का मुखिया होता है। यदि मकर या कुम्भ में शनि हो तो परस्त्री और परधन से युक्त, नगर, सेना या ग्राम का अधिपति, मन्द ज्योति आँखवाला, मलिन, स्थिर धन ऐश्वर्यवाला और भोगी होता है॥१६॥

अथ मेषादिषु लग्नेषु चन्द्राक्रान्तराश्युक्तस्वरूपातिदेशं पुष्पिताग्रयाऽऽह-

शिशिरकरसमागमेक्षणानां सदृश-
फलं प्रवदन्ति लग्नजातम्।
फलमधिकमिदं यदत्र भावाद्भ-
वनभनाथगुणैर्विचिन्तनीयाः ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके राशिशीलाध्यायोऽष्टादशः॥१८॥

शिशिरेति॥ शिशिरकरश्चन्द्रमास्तस्य राशिभिः सह समागमे यत्स्वरूपमुक्तं वृत्ताताम्रदृगित्यादिकं तन्मेषलग्नजातस्यापि वक्तव्यम्। एवमन्येष्वपि राशिषु वृषादिषु स्थिते चन्द्रमसि यदुक्तं तल्लग्नजातस्यापि वक्तव्यम्। यतो मुनयः सदृशं फलं वदन्ति कथयंति; स्वरूपभेदाभावात्। तथा च सत्यः-

'मेषविलग्ने कुनखी सुरोषणो भेदकृत्स्खलितवाक्यः।
पित्तानिलभूयिष्ठः कृपणोऽतिबहुव्ययश्चैव॥
रहितो बाल्ये गुरुभिर्मन्दसुतः स्वजनसहजहितकर्ता।
धर्मस्थितौ विदेशोपगश्च कर्मारभत्यफलम्॥
नीचां वा पिशुनां वा विकलां लभतेऽन्यपूर्विकां भार्याम्।
सहजसमान्यपि मित्राणि चास्य बन्धुत्वमुपयांति॥
शस्त्रेण वा विषैर्वा मरणं पित्तोद्भवैर्विकारैर्वा।
स्वात्पक्षाज्ज्वलनाद्वा वर्षाद्दुर्गात्प्रपतनाद्वा॥

वृषभविलग्ने स्थूलोष्ठगंडनासो महाललाटश्च।
श्लेष्मानिलभूयिष्ठस्त्यागी बहुशो व्ययरतश्च॥
कन्याप्रजोऽल्पपुत्रः पितुर्जनन्याश्च दोषकृद्बहुशः।
कर्मणि सततं सक्तो विधर्मयुक्तीऽर्थभाक् चैव॥
नित्यं कलत्रकांक्षी शास्त्रविघाती सदा स्वजनहर्ता।
मृत्युः शस्त्रैः पाशैर्मृगैश्च लभतेऽन्यदेशेषु॥
देहश्रमैर्यत्नैर्वा मूलैर्वाऽप्यटननिरसनैश्चैव।
पुरुषश्चतुष्पदैर्वा बलान्वितान्मृत्युमुपयाति॥
पूर्वविलग्ने मिथुने हीनांगः सूयतेऽधिकांगो वा।
प्रियवाग्विशिष्टकर्मा मिश्रप्रकृतिर्द्विजननीकः॥
अल्पमतिरल्पकायः सतां च महितो गुरूणां च।
अल्पसहजोऽल्पचेष्टः परावमर्दी गुणयुतश्च॥
कर्मसु बहुष्वभिरतो धर्मं साधयति न चाथ धर्मेण।
प्राप्ताँल्लाभान्विविधान्दोषैस्तैस्तैश्च नाशयति॥
बह्वीः पत्नीर्लभते रोगांश्च दारुणाञ्जयति।
व्यालाद्विषान्मृगाद्वाऽप्युदकाद्वा मृत्युमुपयाति॥
कर्किणि पूर्वविलग्ने नैकामो गुह्यरोगवान् भीरुः।
उरसिकृताभिज्ञानः कफानिलात्मा दृढग्राही॥
पापानहितान्भजते परस्वमपि निक्षिपद्व्ययेन संकृत्।
स्वजनादृप्तः स्वजनैर्विभर्त्सितो ह्यस्थिरप्रसवः॥
तीक्ष्णं कर्म विदेशे नित्यं ह्यर्द्धोदितः परस्वामी।
असदृशदारो रिपुनिर्जितश्च पूज्यः समूहानाम्॥
कंठापीडाद्रज्ज्वा कफोदयादस्थिभंजनाद्भेदात्।
देहच्छेदादथवा जलोदरान्मृत्युमाप्नोति॥
सिंहविलग्ने कठिनः प्रियामिषः पैत्तिको विततनासः।
बह्वारंभकुटुंबः कृपणस्त्वथः संमतः ख्यातः॥
सहजविषादी स्वजनस्य घातको विक्रमैः स्वकैर्युक्तः।
अविषादी कर्मकरो विविधोपायैस्त्वधर्मिष्ठः॥

भार्या बह्वोर्लभते विंद्याद्विविधाः कुलैरुपेताश्च।
कट्यां रुजश्च बहुशो जान्वोर्दशनेषु चाप्नोति॥
मृत्युः शस्त्रैः पापैर्विषैश्च काष्ठैरथामयैश्चापि।
अंबुचरैर्वा सत्त्वैर्बुभुक्षया ह्रासमुपयाति॥
षष्ठविलग्ने प्रियवाक् तनुच्छविर्दीर्घकरचरणः।
मिश्रप्रकृतिश्चार्याकृतिर्व्रणी चार्थवान् कृपणः॥
स्वजनस्येष्टः कन्याबहुप्रजो भ्रातृभिर्विरुद्धश्च।
धर्मप्रियोऽल्पलाभः कर्मणि निपुणः समाचरति॥
विविधाच्चतुष्पदगणाच्छस्त्रात् पित्तोद्भवाद्रोगात्।
शोकात्संपाताद्वा मृत्युं चाप्नोति पाशाद्वा॥
सप्तमराशौ लग्ने विषमांगः सूयते विषमशीलः।
कफवातिकः सुचपलो ह्रस्वग्रीवः कृतघ्नश्च॥
अर्थान्विपुलाँल्लभते व्ययेन संपूज्यते यशः प्रायः।
गुरुसेवायां निरतः पितान्यजनसहजजनपूज्यः॥
अध्वरुचिर्धर्मिष्ठो विनाशमायाति पीडनैः स्वैः स्वैः।
मृतभार्यः कलहरुचिर्बहुशः शोकादिभिः क्लिष्टः॥
मृत्युः ख्यातात्पुरुषात्स्वजनात्सौम्याच्चतुष्पदाद्वापि।
खेदाच्च विप्रयोगादुपवासान्मार्गयोगाद्वा॥
अष्टमराशौ लग्ने विशालरक्त्वाननोदरः क्रूरः।
पित्तप्रकृतिः पिंगेक्षणो मृदुद्रुतगतिः परस्वामी॥
स्फीतकुटुम्बस्वजनोऽन्तकश्च बहुव्ययो बहुप्रसवः।
सुखरहितो भ्रातृभ्यो वृषसेवी धर्महीनश्च॥
भार्यानिमित्तविमुखी शत्रोरर्थान्न ददाति बहुशश्च।
स्वकुलोद्भूतांश्छत्रूँल्लभते रागांश्च नैकविधान्॥
गात्रच्छेदैः शत्रोर्वशंगतो बन्धनैः प्रहारैश्च।
रोगैर्वा पापकृतैर्ज्वलनाद्वा मृत्युमुपयाति॥
स्थूलोष्ठदशननासा नवमे लग्ने कफानिलप्रकृतिः।
मांसलगुह्योरुभुजः कुनखी कर्मोद्यतः शूरः॥

क्षुद्रान्नीचान्भजते चौर्यादनलान्नृपाच्च नष्टधनः।
विज्ञानानां प्रसवो बहुपूज्यो भ्रातृघातरुचिः॥
कर्मविदेशेष्विष्टः कुरुते वित्तानि चार्हति नृपेभ्यः।
धर्मे तु मध्यमगतिर्दारैश्च विरोधमुपयाति॥
रोगान्वदने लभते चतुष्पदाच्चात्मनः समाप्नोति।
मृत्युं विलेशयाद्वा नृपाच्च बन्धाञ्जनाद्वापि॥
दशमविलग्ने तनुनासिकापुटो दीर्घवक्त्रकरचरणः।
वाय्वात्मको मृगास्यो भीरुश्चपलोऽथ बन्धनभाक्॥
क्षुद्रकुटुम्बोऽल्पधनः कृपणः कन्याप्रजो मृतस्वजनः।
सहजसमृद्धः शौर्यान्नृपादरण्याच्च लब्धधनः॥
उपवासव्रतशीलो नीचामिष्टामवाप्नुयाद्भार्याम्।
बहुविग्रहोऽल्पकेशो दुर्बलजानुश्च रोगार्तः॥
बालादनिलाच्छस्त्रान्नृपाद्विषात्प्रपतनाद्गजाद्वापि।
पित्तोदयादजीर्णान्म्रियते वा मार्गविभ्रष्टः॥
एकादशे विलग्ने स्तब्धः क्रूरः कुलाग्रजः पुरुषः।
पित्तानिलभूयिष्ठस्तिलपुष्पसमाननासश्च॥
प्राप्तान्नाशयतेऽर्थान् बहुभृत्यः साध्यते व्ययश्चापि।
क्षीणः स्वगोत्रगुरुजनपरपक्षसुहृत्स्वजनशत्रुः॥
कर्मणि पापे सक्तस्तनुश्च कान्तानवाप्नुयाल्लाभान्।
धर्मध्वजप्रवृत्तौ दैवतपूजश्च कारयति भार्याम्॥
विग्रहशीलां लभते विविधान् रोगान्कफोद्भवानुरसि।
म्रियते च जठररोगाद्वमनात्स्त्रीणां प्रयोगाद्वा॥
द्वादशगे प्राग्लग्ने स्थूलोष्ठी मीनदृङ् महानासः।
कफवातिको महात्मा त्वग्दोषी नैकमतिचेष्टः॥
शिष्टायव्ययभृत्यैः स्वजनस्त्रीपूजितः सहजनाथः।
कर्मणि धर्मे युक्तः पित्रापचयः सुदारश्च॥
नीचाचारां भार्यां लभते च रिपून्सुदारुणान् क्रूरान्।
रोगात्सशोणितादाप्नुयाद्भयं व्यालसिंहेभ्यः॥

मृत्युं पुरुषैर्गणवृन्दपूजितैर्गुह्यजैर्विकारैर्वा।
विद्यौषधप्रयोगादुपवासान्मार्गदोषाद्वा ॥'

एवं शिशिरकरसमागमसदृशं लग्नजातं फलम्। तथा च। शिशिरकराश्रितराशेरीक्षणं दृष्टिफलं वक्ष्यमाणं तथा तदेव तल्लग्नजातस्यापि वक्तव्यम्। चन्द्रे भूपबुधावित्यादि। किन्तु लग्ने फलमपि किमिदम्। यदत्र भाव इति चन्द्रराशित इदमत्र लग्नादिषु भावेष्वधिकं फलं यद्भावस्तन्वादयः। भवनगुणैः राशिगुणैर्भवननाथगुणैस्तत्स्वामिगणैर्विचिन्तनीयाः विचार्याः। भवनभनाथयोर्गुणः सबलत्वम्। एतदुक्तं भवति। लग्ने बलवति लग्नपतौ च बलवति जातस्य शरीरपुष्टिर्वक्तव्या। लग्नाद्द्वितीयराशौ बलवति तदधिपतौ च बलवति जातस्य धनसमृद्धिर्वक्तव्या। एवं शेषराशिबले तदधिपबले च जातस्य भ्रात्रादीनां वृद्धिर्वक्तव्या। तथापि किञ्चिद्विशेषः कथयति। विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु इत्यादि। एवं तन्वादिस्थेषु राशिष्वबलवत्सु तदधिपेष्वबलवत्सु च भावहानिर्वक्तव्या। भवनभनाथयोः यद्येको बलवान् भवति तदा मध्यस्था भाववृद्धिर्वाच्येति। तथा च यवनेश्वरः-

'भावेशभावस्थखगस्वभावप्रधानमध्याधमदर्शनाद्यैः ।
तद्भावसम्पत्तिविपत्त्युपायैर्नैर्याणिकं पाकमुपैति पुंसाम्'।२०।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
राशिशीलाऽध्यायोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

भाषा– मेषादि राशियों में चन्द्र के योग और दृष्टि के जो-जो फल कहे गये हैं उनके समान ही मेषादि लग्नों के फल होते हैं। किन्तु लग्न में इतनी विशेषता है कि लग्नादि भावों की राशि और राशियों के स्वामी के गुणों के अनुसार भावों के फल होते हैं।

जैसे– मेषराशिस्थ चन्द्र के फल पूर्व 'वृत्तांताम्रदृग्' इत्यादि तथा आगे 'चन्द्रे भूपबुधौ' इत्यादि दृष्टिफल जो कहे गये हैं वे मेषलग्न के भी समझने चाहिए। भावफल में विशेषता यह है कि– जिस भाव की राशि और राशिस्वामी दोनों ही बली हों तो उस भाव की पूर्ण वृद्धि, एक बली हो तो मध्यम, दोनों निर्बल हों तो भाव की हानि तथा ६, ८, १२ भाव में विपरीत होते हैं।।२०।।

अथ दृष्टिफलाध्यायः ॥१६॥

अथातो दृष्टिफलाध्यायो व्याख्यायते। तत्र एवं मेषवृषि मिथुनकर्कटस्थे चन्द्रे भौमाद्यैर्ग्रहैः दृश्यमाने जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

चन्द्रे भूपबुधौ नृपोपमगुणो स्तेनोऽधनश्चाजगे
निःस्वः स्तेननृमान्यभूपधनिनः प्रेष्यः कुजाद्यैर्गवि ।
नृस्थेऽयोव्यवहारिपार्थिवबुधाभीस्तन्तुवायोऽधनः
स्वर्क्षे योद्धृकविज्ञभूमिपतयोऽयोजीविदृग्रागिणौ ॥१॥

चन्द्रे भूपबुधाविति॥ कुजाद्या भौमादयः भौमबुधबृहस्पति-शुक्रशनैश्चरार्काः तत्राजगे मेषस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे जातो भूपो राजा भवति। बुधदृष्टे बुधः पण्डितः जीवदृष्टे नृपोपमः राजतुल्यः, शुक्रदृष्टे गुणी गुणवान् भवति। केचिद्वणिगिति पठन्ति। शनैश्चरदृष्टे स्तेनश्चौरः, सूर्यदृष्टेऽधनः दरिद्र इति। एवमपि मेषलग्ने भौमादिदृष्टे फलं वाच्यम्। गविस्थेति। गवि वृषस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे जातो निःस्वः दरिद्रः भवति। बुधदृष्टे स्तेनश्चौरः, जीवदृष्टे नृमान्यः नृणां मान्यः पूज्यः, केचिन्नृपाढ्य इति पठन्ति। नृपाढ्यः नृपो राजा धनाढ्यः ईश्वरः, शुक्रदृष्टे भूपः राजा, सौरदृष्टे धनी धनवान्, सूर्यदृष्टे प्रेष्यः दासः। एवं वृषलग्नेऽपि। नृस्थे मिथुनस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टेऽयोव्यव-हारी शस्त्रविक्रयकः, बुधदृष्टे पार्थिवः राजा, जीवदृष्टे बुध : पण्डितः, शुक्रदृष्टेऽभीः निर्भयः धीरः भयरहितः, सौरदृष्टे तन्तुवायः रविदृष्टेऽधनः दरिद्रः। एवं मिथुनलग्नेऽपि। स्वर्क्षे कर्कटस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे योद्धा भवति युद्धकुशलः, बुधदृष्टे कविः काव्यकर्त्ता, जीवदृष्टेज्ञः पण्डितः, शुक्रदृष्टे भूमिपतिः राजा, सौरदृष्टेऽयोजीवी आयुधजीवी शस्त्रोपजीवी, सूर्यदृष्टे दृग्रोगी चक्षुर्व्याध्यर्दितः। एवं कर्कटलग्नेऽपि॥ १ ॥

भाषा– यदि मेष में चन्द्र हो और मंगल आदि ग्रहों से देखा जाता हो तो जातक क्रम से राजा, पण्डित, राजा के तुल्य, गुणवान्, चोर और निर्धन होता है। अर्थात् मंगल की दृष्टि से राजा, बुध की दृष्टि से पण्डित, गुरु की दृष्टि से राजा के तुल्य (मंत्री आदि), शुक्र की दृष्टि से गुणी, शनि की दृष्टि से चोर और सूर्य की दृष्टि से निर्धन, इसी प्रकार आगे राशि में भी ग्रह का क्रम समझना चाहिए। तथा वृष में चन्द्र हो और उस पर यदि मंगल आदि ग्रह की दृष्टि हो तो क्रम से निर्धन, चोर, लोक में मान्य, राजा, धनवान् और भृत्य होता है। मिथुनस्थ चन्द्रमा पर मंगल आदि की

दृष्टि हो तो क्रम से-लोहार, राजा, पण्डित, निर्भय, कपड़ा बनानेवाला और निर्धन होता है। कर्कस्थ चन्द्रमा पर मंगल आदि की दृष्टि हो तो जातक क्रम से योद्धा, कवि, पण्डित, राजा, लोहे का व्यापारी और नेत्ररोगी होता है।१।

विशेष अर्थ– मेष आदि लग्नों में भी मंगल आदि की दृष्टि से ये ही फल समझने चाहिए।। १ ।।

अथ सिंहकन्यातुलावृश्चिकस्थे चन्द्रे बुधादिदृष्टे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

ज्योतिर्ज्ञाढ्यनरेन्द्रनापितनृपक्ष्मेशा बुधाद्यैर्हरौ
तद्वद्भूपचमूपनैपुणयुताः षष्ठेऽशुभैः स्त्र्याश्रयः ।
जूके भूपसुवर्णकारवणिजः शेषेक्षिते नैकृती
कीटे युग्मपिता नतश्च रजको व्यंगोऽधनोभूपतिः ।।२।।

ज्योतिरिति ।। बुधादयः बुधगुरुशुक्रशनिसूर्यभौमाः हरिः सिंहस्तस्मिन् हरौ सिंहस्थे चन्द्रे बुधदृष्टे ज्योतिर्ज्ञः ज्योतिःशास्त्रार्थवेत्ता, जीवदृष्टे आढ्यः ईश्वरः, शुक्रदृष्टे नरेन्द्रो राजा, सौरदृष्टे नापितः, रविदृष्टे नृपः राजा, भौमदृष्टे क्ष्मेशः भूपतिः। एवं सिंहलग्नेऽपि। तद्वदित्यादि। तद्वद्बुधादिभिर्दृष्टे इत्यनुवर्तते सर्वत्र। षष्ठे कन्यागते चन्द्रे बुधदृष्टे भूपः राजा, जीवदृष्टे चमूपः सेनापतिः शुक्रदृष्टे नैपुणयुतः सर्वकार्येषु सूक्ष्मदृष्टिः, अशुभैः सौररविभौमैर्दृष्टे स्त्र्याश्रयो भवति। स्त्रियमाश्रित्य जीवतीत्यर्थः। एवं कन्यालग्नेऽपि। जूके तुलास्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे भूपो राजा भवति। जीवदृष्टे सुवर्णकारः, शुक्रदृष्टे वणिक् क्रयविक्रयज्ञः, शेषाः सौरसूर्यभौमाः एतैः दृष्टे नैकृती निकृतः प्राणिघातकः। एवं तुलालग्नेऽपि। कीटे वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे युग्मपिता युग्मस्य जनकः द्वयोः पिता जातो भवति जात एव युग्मपिता। द्विपितृक इति केचित्पठन्ति। जीवदृष्टे नतः प्रह्वः, शुक्रदृष्टे रजकः वस्त्ररागकृत्, सौरदृष्टे व्यङ्गोऽङ्गहीनः, सूर्यदृष्टेऽधनः दरिद्रः, भौमदृष्टे भूपतिः राजा। एवमेतैरेव दृष्टे वृश्चिकेऽपि।। २ ।।

भाषा– सिंह में चन्द्रमा हो और उस पर बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मंगल की दृष्टि हो तो जातक क्रम से ज्यौतिषी, धनवान्, राजा, नाई, राजा और भूपति होता है। यदि कन्या में चन्द्रमा हो, उस पर बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से राजा, मन्त्री और नैपुण (सब कार्य में सूक्ष्म बुद्धि) से युत होता है। शेष पापग्रह शनि, रवि और मंगल से दृष्ट हो तो स्त्री के आश्रित होकर जीनेवाला होता

है। तुलास्थित चन्द्रमा पर शुभ ग्रह बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से राजा, सोनार और बनियाँ होता है। शेष पापग्रह की दृष्टि हो तो प्राणिघातक होता है और वृश्चिकस्थ चन्द्र पर बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, रवि, मंगल की दृष्टि हो तो दो सन्तान का पिता, नम्र, धोबी, अंगहीन, निर्धन और राजा होता है। ये फल प्रत्येक ग्रह के क्रम से समझने चाहिए।। २।।

अथ धन्विमकरकुम्भमीनस्थे चन्द्रमसि बुधादिदृष्टे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

ज्ञातुर्वीशजनाश्रयश्च तुरगे पापैः सदम्भः शठ-
श्चात्युर्वीशनरेन्द्रपण्डितधनी द्रव्योनभूपो मृगे।
भूपो भूपसमोऽन्यदारनिरतः शेषैश्च कुम्भस्थिते
हास्यज्ञो नृपतिर्बुधश्च झषगे पापश्च पापेक्षिते ।। ३।।

ज्ञात्युर्वीशेति।। तुरगो धन्वी तत्रस्थे चन्द्रे बुधदृष्टे ज्ञातीशः स्वजनभर्त्ता, जीवदृष्टे उर्वीशो राजा, शुक्रदृष्टे जनाश्रयः जनानामाश्रयस्थानं, पापैः शनिरविभौमैर्दृष्टे सदम्भः मिथ्या धर्मध्वजी, शठः परकार्यविमुखश्च भवति। एवं धन्विलग्नेऽपि। मृगो मकरस्तत्रस्थे चन्द्रे बुधदृष्टेऽत्युर्वीशो राजाधिराजो भवति, जीवदृष्टे नरेन्द्रो राजा, शुक्रदृष्टे पण्डितः, शनिदृष्टे धनी वित्तवान्, सूर्यदृष्टे, द्रव्योनः दरिद्रः, भौमदृष्ट भूपो राजा। एवं मकरलग्नेऽपि कुम्भस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे भूपः राजा भवति। जीवदृष्टे भूपसमः राजतुल्यः, शुक्रदृष्टेऽन्यदारनिरतः परस्त्रीसक्तः। चशब्दाच्छेषैः शनिसूर्यभौमैस्त्रिभिरप्यन्यदारनिरतः एव। एवं कुम्भलग्नेऽपि। झषगे मीनस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे हास्यज्ञः उपहासं कर्तुं जानाति। जीवदृष्टे नृपतिः राजा, शुक्रदृष्टे बुधः पण्डितः। पापाः शनिसूर्यभौमाः एतैर्दृष्टे च पाप एव भवति। एवं मीनलग्नेऽपि। लग्नदृष्टिफलं चन्द्रफलातिदेशेनोक्तम्- 'शिशिरकरसमागमेक्षणानां सदृशफलं प्रवदन्ति लग्नजातम्।' इति। तत्र चन्द्रमसा दृष्टे लग्ने फलं नोक्तम्। तस्मात्तत्रोच्यते उक्तमेव यस्मादुक्तम्। 'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा।' तत्र कर्कटवर्ज्यमन्यल्लग्नम्, चन्द्रदृष्टं हीनबलं भवति। हीनबलत्वादशोभनम्। उक्तं च-'मुक्त्वा तु चन्द्रभवनं लग्नगतंशिशिरकिरणसंदृष्टम्। अशुभफलं निर्दिष्टं पृच्छायां जन्मसमये वा'।३।

भाषा— यदि धनुराशिस्थ चन्द्र पर बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से स्वजनों का भरण-पोषण करनेवाला, भूपति और बहुत जनों

का आश्रय होता है। पापग्रहों (शनि-रवि-मंगल) की दृष्टि हो तो दम्भी (मिथ्या धर्मध्वजी) तथा शठ होता है। मकर में चन्द्र पर बुध आदि ६ ग्रहों की दृष्टि से राजाधिराज, राजा, पण्डित, धनवान्, निर्धन और राजा होता है। कुम्भस्थित चन्द्र पर बुध की दृष्टि से राजा, गुरु की दृष्टि से राजा के समान, शेष ग्रहोंकी दृष्टि से परस्त्रीगामी होता है। मीनस्थित चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की दृष्टि से पण्डित और शेष पापग्रहों की दृष्टि से पापी होता है॥३॥

अथ होराद्रेष्काणव्यवस्थितस्य चन्द्रस्य ग्रहदृष्टिफलं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

होरेशर्क्षदलाश्रितैः शुभकरो दृष्टः शशी तद्गत-
स्त्र्यंशे तत्पतिभिः सुहृद्भवनगैर्वा वीक्षितः शस्यते।
यत्प्रोक्तं प्रतिराशिवीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतं
सूर्याद्यैरवलोकितेऽपि शशिनि ज्ञेयं नवांशेष्वतः॥४॥

होरेशेति॥ होराशब्देन राश्यर्द्धमुच्यते। 'होरेति लग्नं भवनस्य-चार्द्धम्' इति वचनात्। होराया ईशः तस्यर्क्षदलं होरेशर्क्षदलं तत्राश्रिता होरेशर्क्षदलाश्रिताः तैर्ग्रहैः होरेशर्क्षदलाश्रितैः शशी चन्द्रः तद्गतस्तद्धोरास्थो दृष्टः शुभकरो भवति। एतदुक्तं भवति। यत्र तत्र राशौ यस्यां होरायां चन्द्रमाः स्थितस्तद्धोरास्थैः सर्वग्रहैः यदि दृश्यते तदा जन्मनि शुभकरो भवति। तेनार्कहोरास्थश्चंद्रो यत्र तत्र राश्याश्रितैरर्कहोराश्रितैर्ग्रहैः दृष्टश्च शुभकरो भवति। अर्थादेव चन्द्रहोरास्थैर्दृष्टेऽशुभकरः। एवं यत्र तत्र राशौ स्वहोरास्थैश्चन्द्रहोरास्थैर्ग्रहैर्यत्र तत्रावस्थैर्दृष्टः शुभकरो भवति। अर्थादिवार्कहोरास्थैर्दृष्टोऽशुभकरः। एवं लग्नेऽपि होरेशेन फलं योज्यम्। त्र्यंशे तत्पतिभिरिति। यत्र तत्र राशौ यस्मिन् द्रेष्काणे स्थितश्चन्द्रस्तस्य यः पतिस्तेन द्रेष्काणपतिना दृष्टश्चन्द्रः शस्यते स्तूयते। शुभकरः इत्यर्थः। पतिभिरिति। बहुवचननिर्देशान्नवांशद्वादशांशत्रिंशांशकाधिपतयो गृह्यन्ते। तैरपि चन्द्रः शुभकरो भवति। एवं लग्नेऽपि। यद्यपि सामान्येनोक्तं तथापि शुभग्रहैर्द्रेष्काणपतिभिर्दृष्टः शस्यते। पापग्रहैर्मध्यमः। यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम्— 'क्षेत्राधिपसंदृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान्। द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नान्यैः॥' इति। सुहृद्भवनगैरित्यादि। सुहृद्भवनगैः मित्रक्षेत्रस्थैः ग्रहैः वीक्षितः दृष्टः चन्द्रः शस्यते स्तूयते शुभकर एव। अर्थादिवं स्वभवनगतैर्दृष्टः चन्द्रः शस्यते।

अर्थादिवारिभवनगतैः दृष्टः न शस्यते अशुभफलो भवति। एवं लग्नेऽपि योज्यम्। यत्प्रोक्तं प्रतिराशिवीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतमिति। प्रतिराशि राशौ राशौ मेषादिस्थे चन्द्रमसि यद्वीक्षणफलं प्रोक्तं कथितं तदेव मेषादिद्वादशांशकस्थे चन्द्रमसि स्मृतमुक्तम्। तदेव वाच्यमिति। चन्द्रे भूपबुधावित्यादि यदुक्तम्। एवं लग्नेऽपि। तत्रापि कर्कटद्वादशांशं विना चन्द्रदृष्टिरशोभना सूर्याद्यैरित्यादि। अतोऽस्मात्परं शशिनि चन्द्रे सूर्याद्यैरर्कादिभिरवलोकिते दृष्टे नवांशेषु फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यमिति।४

भाषा– चन्द्रमा पर यदि सूर्य की होरा हो तो सूर्य होरास्थित ग्रहों से दृष्ट होने से शुभदायक होता है। एवं चन्द्र अपनी होरा में हो तो चन्द्र-होरास्थित ग्रहों से दृष्ट होने पर शुभ होता है। अन्यथा अशुभ होता है। एवं जिस द्रेष्काण आदि में चन्द्रमा हो, उनके स्वामी से दृष्ट हो अथवा स्वमित्रराशिस्थ ग्रहों से दृष्ट हो तो शुभदायक होता है। प्रति राशि में जो दृष्टफल कहे गये हैं वे फल उस राशि के द्वादशांश में भी होते है। और चन्द्रमा के सूर्यादि ग्रहों से दृष्ट होने में जो-जो फल कहे गये हैं वे नवांश में भी समझने चाहिए।।४।।

विशेष अर्थ– यद्यपि होरादि स्वामियों से दृष्ट होरादिस्थित चन्द्र का शुभ फल कहा गया है, तथापि शुभ स्वामी से पूर्ण शुभ और पाप या शत्रु होरादि स्वामी हो तो न्यून फल समझना चाहिए। यदि होरादि स्वामी पापग्रह और शत्रु भी हो तो शुभ फल नहीं हो सकता है इत्यादि। यहाँ अनुक्त भी समझना चाहिए। क्योंकि स्वयं आचार्य ने लघुजातक में कहा है। यथा–

'क्षेत्राधिपसंदृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान्।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभ नान्यैः' स्पष्टार्थ ।।४।।

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलांशकस्थे चन्द्रमसि सूर्यादिदृष्टे फलं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

आरक्षिको वधरुचिः कुशलो नियुद्धे
भूपोऽर्थवान्कलहकृत्क्षितिजांशसंस्थे।
मूर्खोऽन्यदारनिरतः सुकविः शितांशे
सत्काव्यकृत्सुखपरोऽन्यकलत्रगश्च ।।५।।

आरक्षिक इति।। क्षितिजो भौमः तन्नवांशकस्थे मेषनवांशकस्थे वृश्चिकनवांशकस्थे चन्द्रमसि सूर्यदृष्टे आरक्षिको भवति। आरक्षिकः नगर-रक्षाधिकृतः। भौमदृष्टे वधरुचिः प्राणिघातकः, बुधदृष्टे नियुद्धे कुशलः, नियुद्धे बाहुयुद्धे कुशलः शिक्षितः प्रवीणः, जीवदृष्टे भूपः राजा, शुक्र-

दृष्टेऽर्थवानीश्वरः सौरदृष्टे कलहकृदिति। मूर्ख इत्यादि। सितांशके शुक्रनवांशके वृषनवांशके तुलनवांशके वा स्थिते चन्द्रमसिरविदृष्टे मूर्खो भवति। भौमदृष्टेऽन्यदारनिरतः परदारसक्तः, बुधदृष्टे काव्यकृत् काव्यज्ञः, केचिदाद्यवदिति पठन्ति। जीवदृष्टे सत्काव्यकृत् शोभनकाव्यकर्ता, शुक्रदृष्टे सुखपरः सुखासक्तः, सौरदृष्टे अन्यकलत्रगः परदाराभिगामी।५।

भाषा– मेष या वृश्चिक के नवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक नगरादिका रक्षक, मङ्गल की दृष्टि से वधिक (प्राणिघाती), बुध की दृष्टि से युद्ध में कुशल, गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की दृष्टि से धनवान् और शनि की दृष्टि से कलहकारक होता है। तथा वृष या तुला के नवांशगत चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो मूर्ख, मङ्गल की दृष्टि हो तो परस्त्रीगामी, बुध की दृष्टि हो तो कवि, गुरु की दृष्टि हो तो अच्छे काव्य बनानेवाला, शुक्र की दृष्टि हो तो सुखी और शनि की दृष्टि हो तो परस्त्रीगामी होता है।।५।।

अथ मिथुनकन्यककर्शिस्थे चन्द्रे फलं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

बौधे हि रङ्गचरचौरकवीन्द्रमंत्री
गेयज्ञशिल्पनिपुणः शशिनि स्थितेंऽशे।
स्वांशेऽल्पगात्रधनलुब्धतपस्विमुख्यः
स्त्रीपोष्यकृत्यनिरतश्च निरीक्ष्यमाणे ।।६।।

बौधे हीति।। शशिनि चन्द्रे बौधे बुधनवांशकस्थे मिथुननवांशकस्थे कन्यानवांशस्थे वा निरीक्ष्यमाणे दृष्टे रंगचरः मल्लादिको भवति। भौमदृष्टे चौरः तस्करः, बुधदृष्टे कवीन्द्रः कविराजः, जीवदृष्टे मन्त्री सचिवः, शुक्रदृष्टे शिल्पनिपुणः। स्वांशेति। स्वांशे आत्मीयनवांशकस्थे कर्कटनवांशस्थे शशिनि चन्द्रे सूर्यदृष्टेऽल्पगात्रः कृशदेहो भवति। भौमदृष्टे धनलुब्धः, कृपणः, अल्पधनो वा, बुधदृष्टे तपस्वी, जीवदृष्टे मुख्यः प्रधानः, सितदृष्टे स्त्रीपोष्यः स्त्रीभिरभिवर्धनीयः, सौरदृष्टे कृत्यनिरतः भार्यासक्तः।। ६ ।।

भाषा– मिथुन या कन्या के नवांश में स्थित चन्द्र पर रवि की दृष्टि हो तो नृत्य या मल्लयुद्ध करनेवाला होता है। मङ्गल की दृष्टि से चोर, बुध की दृष्टि से कवि, बृहस्पति की दृष्टि से राज्यमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से संगीतज्ञ और शनि की दृष्टि से शिल्प (चित्रादि) में निपुण होता है। कर्क नवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक छोटे शरीरवाला, मङ्गल की दृष्टि से धन का लोभी, बुध की दृष्टि से तपस्वी, गुरु की दृष्टि से मुखिया (प्रधान), शुक्र की दृष्टि से स्त्रियों द्वारा जीनेवाला, शनि की दृष्टि से सर्वदा कार्य करने में तत्पर रहता है।।६।।

अथ सिंहधन्विमीननवांशस्थे चन्द्रे सूर्यादिदृष्टे फलं प्रहर्षिण्याऽऽह—

सक्रोधो नरपतिसम्मतो निधीशः
सिंहांशे प्रभुरसुतोऽतिहिंस्रकर्मा ।
जीवांशे प्रथितबलो रणोपदेष्टा
हास्यज्ञः सचिवविकामवृद्धशीलः ॥७॥

सक्रोध इति।। सिंहांशकस्थे चन्द्रमस्यर्कदृष्टे सक्रोधः क्रोधयुक्तो भवति। भौमदृष्टे नरपतिसम्मतः राजवल्लभः, बुधदृष्टे निधीशः निधिना प्राप्तार्थः, गुरुदृष्टे प्रभुरप्रतिहताज्ञः, शुक्रदृष्टेऽसुतः पुत्ररहितः, सौरदृष्टेऽतिहिंस्रकर्मा क्रूरकर्मणि रतः। जीवांश इत्यादि। जीवांशे बार्हस्पत्ये नवांशके धन्व्यंशके मीनांशकगते वा स्थिते चन्द्रमसि सूर्यदृष्टे प्रथितबलः प्रख्यातवीर्यो भवति। भौमदृष्टे रणोपदेष्टा सङ्ग्रामदेशकालव्यूहरचनाभिज्ञः, बुधदृष्टे हास्यज्ञः उपहासवेत्ता, जीवदृष्टे सचिवः मन्त्री, शुक्रदृष्टे विकामः कामहीनः, पुंस्त्वहीनः, सौरदृष्टे वृद्धशीलः धर्ममतिरिति।। ७।।

भाषा— सिंह नवांशगत चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक क्रोधी, मंगल की दृष्टि से राजमान्य, बुध की दृष्टि से निधि (खान से उत्पन्न द्रव्य) का स्वामी, गुरु की दृष्टि से प्रभु (अप्रतिहताज्ञ), शुक्र की दृष्टि से पुत्रहीन और शनि की दृष्टि से अति क्रूर (हिंसा) कर्म करनेवाला होता है। धनु या मीननवांशगत चन्द्र पर सूर्य की दृष्टि हो तो विख्यात बलवान्, मंगल की दृष्टि से युद्धविद्या सिखानेवाला, बुध की दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राज्यमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से कामरहित (नपुंसक) और शनि की दृष्टि से वृद्ध स्वभाववाला होता है।।७।।

अथ मकरनवांशकस्थे कुम्भनवांशकस्थे वा चन्द्रे सूर्यादिदृष्टे जातस्य फलं शालिन्याऽऽह—

अल्पापत्यो दुःखितः सत्यपि स्वे मानासक्तः कर्मणि स्वेऽनुरक्तः।
दुष्टस्त्रीष्टः (१) कृपणश्चार्किभागे चन्द्रे भानौ तद्वदिन्द्वादिदृष्टे।८

अल्पापत्य इति।। आर्किः अर्कस्यापत्यमार्किः तस्य भागे शनैश्चरनवांशके मकरनवांशकस्थे कुम्भनवांशकस्थे वा चन्द्रे सूर्यदृष्टेऽल्पापत्योऽल्पप्रसवो भवति। भौमदृष्टे सत्यपि स्वे दुःखितः सत्यपि विद्यमानेऽपि स्वे धने दुःखितो भवति। बुधदृष्टे मानासक्तः गर्वितः,

---

(१) अत्र तृतीयपादे पञ्चमाक्षरस्य ह्रस्वत्वदोषात् 'दुष्टस्त्रीष्टोऽदातृकश्चार्किभागे' इति समुचितः पाठः।

जीवदृष्टे स्वे आत्मीये कर्मण्यनुरक्तः कुलानुरूपकर्मकृत्, शुक्रदृष्टे दुष्टस्त्रीष्विष्टः वल्लभः, सौरदृष्टे कृपणः अदाता। एवं तत्कालनवांशकवशात् ग्रहदृष्ट्या लग्नेऽपि वक्तव्यम्। किन्तु तत्रापि कर्कटनवांशकं विना चन्द्रदृष्टिरशुभेति। भानौ तद्वदिन्द्वादिदृष्टे भानावादित्ये इन्द्वादिदृष्टे चन्द्राद्यैर्ग्रहैरवलोकिते तद्वत्तेनैव प्रकारेण दृष्टिफलं यत्र तत्र राशौ यत्र तत्र नवांशकस्थे चन्द्रमस्यर्कादिदृष्टे तत्फलमुक्तं तद्वत्। यत्र तत्र नवांशकव्यवस्थितेऽर्के चन्द्रदृष्टे तदेव फलं वाच्यम्। एतदुक्तं भवति। नवांशकव्यवस्थितस्यादित्यस्य चन्द्रस्य च ताराग्रहदृष्टिफलं तुल्यम्। किन्तु यदादित्यदृष्ट्या चन्द्रस्योक्तं तच्चन्द्रदृष्ट्या सूर्यस्य वक्तव्यम्। तद्यथा मेषनवांशकस्थेऽर्के चन्द्रदृष्टे आरक्षिको भवति। वृषतुलानवांशकस्थे मूर्खः, मिथुनकन्यानवांशकस्थे रङ्गचरः, सिंहनवांशकस्थे सक्रोधः, धन्विमीननवांशकस्थे प्रथितबलः, मकरकुम्भनवांशकस्थेऽल्पापत्यः, कर्कटनवांशकस्थेऽल्पगात्रः। एवमादित्यस्य नवांशकावस्थितस्य ग्रहदृष्ट्या चन्द्रेण फलं समानमिति॥ ८॥

भाषा– मकर या कुम्भ नवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक थोड़ी सन्तानवाला, मंगल की दृष्टि से धन रहते हुए भी दुःखी, बुध की दृष्टि से अहंकारी, गुरु की दृष्टि से अपने कार्य में आसक्त, शुक्र की दृष्टि से दुष्टा स्त्री का पति और शनि की दृष्टि से कदर्य होता है। जिस प्रकार मेषादि नवांशगत चन्द्र पर रव्यादि ग्रह के दृष्टिफल कहे गये हैं; उसी प्रकार मेषादि नवांशगत सूर्य पर भी चन्द्रादि ग्रहों के दृष्टिफल होते हैं॥ ८॥

विशेष अर्थ– विशेषता इतनी है कि मंगलादि ग्रहों की दृष्टि से चन्द्रमा और रवि दोनों के फल तुल्य ही होते हैं। किन्तु चन्द्र पर जो रवि की दृष्टि से कहे गये हैं वे ही फल रवि पर चन्द्रमा की दृष्टि से भी होते हैं॥ ८॥

अथास्यैव नवांशकदृष्टिफलस्य विशेषं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभं यदुक्तं
तत्पुष्टमध्यलघुताशुभमुत्क्रमेण ।
वीर्यान्वितोंऽशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ॥९॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिते बृहज्जातके
दृष्टिफलाध्यायः एकोनविंशः ॥१९॥

वर्गोत्तमेति॥ नवांशकव्यवस्थिते चन्द्रे नवांशकदृष्टिफलं द्विप्रकारकमुक्तं शुभमशुभं च। यथा आरक्षिक इति शुभं, वधरुचिरित्यशुभं च।

तत्र वर्गोत्तमांशकगते चन्द्रे यद्ग्रहदृष्टिजं फलं शुभमुक्तं तत्पुष्टमतीव शुभं भवति। स्वांशकस्थे तु यच्छुभमुक्तं तन्मध्यमम्। परमपुष्टता मध्यता लघुता च। अशुभमुत्क्रमेण अशुभमनिष्टं यत्फलं यदुक्तं तदतीवाशुभं भवति। स्वनवांशकस्थस्य मध्यमम्। वर्गोत्तमांशस्थस्य लघुता। एवं लग्नादित्ययोरपि दृष्टिफलं योज्यम्। जातके सर्वाण्येव फलानि भवन्तीति प्राप्तम्। यस्माद्यवनेश्वरः– 'अन्योन्यराश्यंशकसम्प्रयोगैरन्योन्यसंदर्शनसङ्गमैश्च। अन्योन्यसंयोगविकल्पनाभिरिदं समुद्राम्बुवदप्रमेयम्।।' इति। अतः सदैव राशिदृष्टिनवांशकदृष्टिफलयोरपि सदैव पक्तिंप्राप्नोति। तत्र नवांशकपतौ बलवति राशिदर्शनफलबाधनार्थमाह। वीर्यान्वित इति। यस्मिन्नवांशके व्यवस्थितश्चन्द्रो लग्नं वा भवति तस्य नवांशकस्य योऽधिपतिः। स चेद्वीर्यान्वितो बलवान् भवति तदा निरुणद्धि पूर्वं प्रथमं निवारयति। किं सर्वमेव न हि। राशिक्षणस्य फलं न होराद्रेष्काणद्वादशभागेक्षणस्य तद्धित्वांशेक्षणफलमेव ददाति। अथांशके पतिर्बलवान्न भवति तदा राशीक्षणांशकेक्षणफले उभे अपि वाच्ये। एवं चन्द्रलग्नयोरुभयोरपि। आदित्यस्य तु नवांशकेक्षणफलमेव वक्तव्यम्। यस्मात्तस्य राशीक्षणफलमिह नोक्तमिति।९।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
दृष्टिफलाध्यायः एकोनविंशः ।।१९।।

भाषा– चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवांश में हो तो जितने शुभ फल कहे गये हैं वे पूर्णरूप से और अपने नवांश में हों तो सब शुभफल मध्यमान से और अन्य नवांश में हों तो सब शुभफल अल्प परिमाण से होते हैं। और अशुभ फल इससे विपरीत अर्थात् वर्गोत्तम नवांश में चन्द्रमा हो तो अशुभ फल जो कहे गये हैं वे अल्प परिमाण, अपने नवांश में हो तो अशुभ फल मध्यमान से और अन्य नवांश में हो तो अशुभ फल पूर्णरूप से होते हैं। यदि नवांशपति बलयुत हो तो राशीक्षण फल को निवारण करके पहिले नवांश दृष्टिफल को ही देता है।।९।।

विशेष अर्थ– तात्पर्य यह है कि राशि की अपेक्षा नवांश सूक्ष्म है, अतः नवांशपति के प्रबल होने से प्रथम नवांशफल ही होता है। इस प्रकार चन्द्रमा के जितने फल कहे गये हैं, वे लग्न के भी उसी प्रकार समझने चाहिए। और सूर्य के केवल नवांश फल चन्द्रवत् समझने चाहिए, क्योंकि सूर्य के लिए राशि दृष्टिफल नहीं कहे गये हैं।।९।।

— — — — —

अथ भावाध्यायः ॥२०॥

अथातो भावाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादित्यस्य लग्नगतस्य द्वितीयस्थस्य च फलं मन्दाक्रान्तयाऽऽह—

शूरः स्तब्धो विकलनयनो निर्घृणोऽर्के तनुस्थे
मेषे सस्वस्तिमिरनयनः सिंहसंस्थे निशान्धः।
नीचेऽन्धोऽस्वः शशिगृहगते बुद्बुदाक्षः पतङ्गे
भूरिद्रव्यो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी द्वितीये ॥१॥

शूर इति॥ शूरः संग्रामप्रियः, स्तब्धः चिरकार्यकृत्, विकलनयनः हीनदृष्टिः, निर्घृणः निर्दयः एवंविधोऽर्के रवौ तनुस्थे लग्नस्थे जातो भवति। एतत्तावत्सर्वलग्नेषु सामान्यफलं भवति। अथ मेषसिंह-तुलाकर्कटानामन्यतमे लग्नगतेऽर्के तदा पूर्वोक्तं फलं न भवति। वक्ष्यमाणं चोक्तराशीनां प्रतिराशिफलं भवति। तद्यथा। मेषे सस्व इति। मेषलग्ने तत्रस्थे चार्के सस्वः सार्थः, तिमिरनयनः चक्षुरोगी भवति। तिमिरश्चक्षुरोगी प्रसिद्धः। सिंहलग्ने तत्रस्थे चार्के निशांधः रात्र्यंधो भवति। आदित्यस्य नीचः तुला तस्मिंल्लग्ने तत्रस्थे चार्के सूर्येऽन्धो नेत्रहीनो स्वः दरिद्रश्च भवति। शशिगृहे कर्कटलग्ने तत्रस्थे पतंगे चार्के बुद्बुदेक्षणः पुष्पिताक्षो भवति। भूरिद्रव्य इति। लग्नात् द्वितीयेऽर्के भूरिद्रव्यः प्रभूतार्थः नृपहृतधनः राज्ञा हृतस्वो, वक्त्र-रोगी मुखपीडितश्च भवति॥१॥

भाषा– यदि सूर्य लग्न में हो तो जातक संग्रामप्रिय, देर से काम करनेवाला (दीर्घसूत्री), निर्बल नेत्रवाला और निर्दय होता है। यदि सूर्य मेषस्थ होकर लग्न में हो तो धनवान् होता है। परन्तु नेत्ररोगी होता है। सिंह लग्न में हो तो धनवान् होता है किन्तु रात्रि में अन्धा (रतौंधी) होता है। तुला में हो तो अन्धा और निर्धन होता है। कर्क में हो तो आँख में फूलीवाला होता है। द्वितीय भाव में सूर्य हो तो अधिक धनवान् होता है किन्तु उसका धन समय-समय पर राजा ले (जब्त कर) लिया करता है और मुखरोग से युक्त होता है॥१॥

अथ लग्नात् तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठस्थानस्थार्क-फलमौपच्छन्दसिकेनाऽऽह—

मतिविक्रमवांस्तृतीयगेऽर्के विसुखः पीडितमानसश्चतुर्थे।
असुतो धनवर्जितस्त्रिकोणे बलवाञ्छत्रुजितश्च शत्रुयाते॥२॥

मतीति ।। मतिः बुद्धिः, विक्रमः पराक्रमः, एतौ विद्येते यस्य स तथाविधस्तृतीयगेऽर्के रवौ भवति। विसुखो दुःखितः, पीडितमानसः नित्योद्विग्नचित्तः एवंविधश्चतुर्थगेऽर्के जातो भवति। असुतः विपुत्रः, धनवर्जितो दरिद्रः एवंविधस्त्रिकोणे पञ्चमस्थे रवौ जातो भवति। बलवान् बलयुक्तः, शत्रुजितश्च शत्रुभिररिभिः जितः एवंविधः शत्रु-याते षष्ठस्थानस्थेऽर्के जातो भवति। केचिद्बलवान् नष्टरिपुश्च शत्रु-यात इति पठंति। तथा च सत्यः– 'षष्ठे रिपुरोगशोकघ्नः।' आचार्ये-णात्र यवनेश्वरमतमंगीकृतं यतः षष्ठस्थानस्थितानां पापानां यव-नेश्वरेणानिष्टं फलमभिहितम्। तथा च स्फुजिध्वजः– 'षष्ठाश्रितोऽर्को विषशस्त्रदाहक्षुद्रोगशत्रुव्यसनोपतप्तान्। काष्ठाश्मपाताच्च विशीर्ण-दन्तान्यूनेटवीदंष्ट्रिनखिक्षतांश्च।। कुजो गतस्तत्र परिक्षतांगं दृग्व्याधितं धिक्कृतिकर्शितं च। सौरः शिरोश्माशनिपातवातद्विमुष्टिघातोपहतं च कुर्यात्।।' अनेनैवातिदेशं पापानामाचार्यः करिष्यत्यर्कवत्।।२।।

भाषा– तृतीय भाव में सूर्य हो तो बुद्धिमान् और पराक्रमी होता है। चतुर्थ भाव में हो तो सुखहीन और उद्विग्न हृदय होता है। पञ्चम भाव में हो तो पुत्रहीन और धनहीन होता है। षष्ठ भाव में रवि हो तो बली और शत्रु को जीतनेवाला होता है।।२।।

अथ लग्नात्सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशस्थेऽर्के जातस्य स्वरूपं वसंततिलकेनाऽऽह–

स्त्रीभिर्गतः परिभवं मदगे पतङ्गे
स्वल्पात्मजो निधनगे विकलेक्षणश्च।
धर्मे सुतार्थसुखभाक् सुखशौर्यभाक् रवे
लाभे प्रभूतधनवान् पतितस्तु रिःफे।।३।।

स्त्रीभिर्गत इति।। पतङ्गे आदित्ये मदगे सप्तमस्थानस्थे जातः स्त्रीभिः योषिद्भिः परिभवं गतः प्राप्तो भवति। केचिन्महते पतङ्ग इति पठन्ति। निधनगे अष्टमस्थे पतंगे सूर्ये स्वल्पात्मजः अल्पापत्यः, विकलेक्षणश्च विकले अक्षिणी यस्य, अदृढचक्षुर्भवति। हीनदृष्टि-र्भवतीत्यर्थः। धर्मे नवमस्थे सुताः पुत्राः, अर्थो धनं, सुखं सुखभावः एषां भागी भवति। केचिद्धर्मे सुतार्थरहित इति पठन्ति। तथा च सत्यः– 'साध्वाचारविरोधं रुजःप्रदो दैन्यकृन्नवमसंस्थः।' खे दशमे सुखशौर्यभाक् सुखितो बली च भवति। लाभे एकादशे प्रभूतधनवान् बहुवित्तो भवति। रिःफे द्वादशे पतितः स्वकर्मपरिभ्रष्टो भवति इत्यादित्यचारः।।३।।

भाषा– यदि जन्म-समय सप्तम भाव में सूर्य हो तो जातक स्त्री के द्वारा अपमानित होता है। अष्टम भाव में सूर्य हो तो अल्प पुत्रवाला और हीन होता है। नवम भाव में सूर्य हो तो पुत्र, धन और सुख का भागी होता है। दशम भाव में सूर्य हो तो सुखी और पराक्रमी होता है। एकादश भाव में सूर्य हो तो बहुत धनवान् होता है और द्वादश भाव में सूर्य हो तो अपने कर्म से च्युत होता है।। ३।।

अथ चन्द्रे लग्नाद्द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठस्थे
जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

मूकोन्मत्तजडान्धहीनबधिरप्रेष्याः शशाङ्कोदये
स्वर्क्षाजोच्चगते धनी बहुसुतः सस्वः कुटुम्बी धने।
हिंस्रो भ्रातृगते सुखे सतनये तत्प्रोक्तभावान्वितो
नैकारिर्मृदुकायवह्निमदनस्तीक्ष्णोऽलसश्चारिगे ।।४।।

मूक इति।। मूको वाग्धीनः, उन्मत्तः धातुवैषम्याद्यथेष्टकारी, जडः अप्रतिपन्नः, अन्धः नेत्रहीनः, हीनः अनुचितकर्मकृत्, वधिरः श्रोत्रेन्द्रियहीनः, प्रेष्यो दासः, एषामन्यतमो जातः शशांकोदये शशांके चन्द्रे उदयगे लग्नस्थे जातो भवति। एतन्मेषवृषकर्कटवर्ज्यम्। तेषां विशेषमाह। स्वर्क्षाजोच्चगत इति। स्वर्क्षः कर्कटकः तस्मिंल्लग्ने तत्स्थे चन्द्रमसि धनी वित्तवान् भवति। अजे मेषलग्ने तत्स्थे चन्द्रमसि बहुसुतः प्रभूतपुत्रो भवति। चन्द्रस्योच्चो वृषः तस्मिंल्लग्ने चन्द्रे सस्वः अर्थवान् भवति। धने लग्नात् द्वितीये चन्द्रे कुटुम्बी बहुकुटुम्बी भवति। भ्रातृगते तृतीयस्थानस्थे हिंस्रः क्रूरो भवति प्राणिबधको वा। सुखे चतुर्थ सतनये तनयेन पञ्चमेन स्थानेन युक्ते तत्प्रोक्तभावान्वितस्तेन प्रोक्तेन कथितेन भावेनान्वितो युक्तो भवति। तेन सुखे सुखितस्तनये पुत्रान्वित इति। नैकारिरित्यनेकारिः बहुशत्रुः, मृदुकायः सुकुमारशरीरः, मृदुवह्निर्नातिप्रदीप्ताग्निः, मृदुमदनः मैथुनाशीघ्रगः, तीक्ष्णः उग्रस्वभावः, अलसः क्रियास्वपटुः एवंविधोऽरिगे लग्नात् षष्ठस्थे चन्द्रे जातो भवति।। ४।।

भाषा– चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक गूँगा, उन्मत्त (पागल), मूर्ख, अन्धा, नीच कर्मकर्त्ता, बधिर और भृत्य (सेवक) होता है। यदि कर्क में होकर लग्न में हो तो धनी, मेष लग्न में हो तो बहुत सन्तानवाला और वृष लग्न में हो तो धनवान् होता है। द्वितीय भाव में चन्द्रमा हो

तो अधिक परिवारवाला होता है। तृतीय भाव में हो तो क्रूर, चतुर्थ भाव में हो तो भाव फल (गृहसुख, मातृसुख आदि) से युक्त, पञ्चम भाव में हो तो (बुद्धि, विद्या, पुत्रसुख आदि) से युक्त और यदि षष्ठ भाव में चन्द्रमा हो तो बहुत शत्रुवाला, सुकुमार शरीर, मन्दाग्नि, अल्पवीर्य, उग्रस्वभाव और आलसी होता है।।४।।

अथ लग्नात्सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

ईर्ष्युस्तीव्रमदो मदे बहुमतिर्व्याध्यर्दितश्चाष्टमे
सौभाग्यात्मजमित्रबन्धुधनभाग् धर्मस्थिते शीतगौ।
निष्पत्तिं समुपैति धर्मधनधीशौर्यैर्युतः कर्मगे
ख्यातो भावगुणान्वितो भगवते क्षुद्रोऽङ्गहीनोव्यये ।।५।।

ईर्ष्युरिति।। ईर्ष्युः परर्द्धिमत्सरी, तीव्रमदः अतिमदनः एवंविधो मदे सप्तमस्थे चन्द्रे जातो भवति। बहुमतिः बहुप्रज्ञः चपलबुद्धिरित्यर्थः। व्याध्यर्दितः रोगपीडितः एवंविधोऽष्टमस्थे चन्द्रे जातो भवति, सौभाग्यं सर्वजनवाल्लभ्यं, आत्मजाः पुत्राः, मित्राणि सुहृदः, बान्धवाः स्वजनाः, धनं वित्तम् एषां भागी भवति। शीतगौ चन्द्रे धर्मस्थे नवमस्थानाश्रिते जातो भवति। निष्पत्तिः निष्पादनं सर्वं कर्म समुपैति गच्छति। धर्मधनधीशौर्यौर्युतः धर्मेण, धनेन वित्तेन, धिया बुद्ध्या, शौर्येण बलेन युतः एवंविधः कर्मगे दशमस्थानस्थे चन्द्रे जातो भवति। ख्यातः इति। ख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धः, भावगुणान्वितः भाव एकादशो लाभस्थानं तेनान्वितः सलाभः इत्यर्थः। एवंविधो भगवते एकादशस्थे चन्द्रे जातो भवति। क्षुद्रो हिंस्रस्वभावः, अङ्गहीनः अवयवरहितः एवंविधो द्वादशस्थे चन्द्रे जातो भवति। इति चन्द्रचारः।।५।।

भाषा— सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो जातक ईर्ष्या (डाह) वाला, अतिकामी होता है। अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तो अधिक बुद्धिमान्; किन्तु रोग से पीड़ित होता है। नवम भाव में चन्द्रमा हो तो सौभाग्य, पुत्र, मित्र, बन्धु, धन और भाग्य से युक्त होता है। दशम भाव में चन्द्रमा हो तो सब कार्य में सिद्धि पानेवाला, धर्म, धन-बुद्धि और पराक्रम से युक्त होता है। एकादश भाव में चन्द्र हो तो विख्यात और लाभ से युक्त होता है। व्यय भाव में चन्द्रमा हो तो जातक क्षुद्र और अंगहीन होता है।।५।।

अथ लग्नादिस्थयोर्भौमबुधयोर्जातस्य स्वरूपं
वसन्ततिलकेनाऽऽह—

लग्ने कुजे क्षततनुर्धनगे कदन्नो
धर्मेऽघवान् दिनकरप्रतिमोऽन्यसंस्थः।
विद्वान् धनी प्रखलपण्डितमन्त्र्यशत्रु-
र्धर्मज्ञविश्रुतगुणः परतोऽर्कवज्ज्ञे ।।६।।

लग्न इति।। लग्नस्थे कुजे प्रहारादिना क्षततनुः विक्षतशरीरः, धनगे द्वितीयस्थे कदन्नः कुत्सितान्नाशी भवति। धर्मे नवमे अघवान् पापरतो भवति। अन्यसंस्थो दिनकरप्रतिमः अन्येषु परिशिष्टस्थानेषु स्थितो दिनकरप्रतिमोऽर्कतुल्यफलः तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमदशमैकादशद्वादशेषु यान्येवादित्यस्य फलान्यभिहितानि तान्येव भौमस्य वाच्यानि। तद्यथा। तृतीये मतिविक्रमवांश्चतुर्थे विसुखः पीडितमानसः पञ्चमे सुतधनवर्जितः, षष्ठे बलवान् शत्रुजितश्च, सप्तमे स्त्रीभिः परिभवं गतः, अष्टमे स्वल्पात्मज; विकलेक्षणश्च, नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यवान्, एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतितः। इति भौमचारः। अथ बुधचारः। विद्वान् धनीत्यादि। ज्ञे बुधे लग्नगते विद्वान् पण्डितो भवति, द्वितीये धनी धनवान्, तृतीये प्रखलः प्रकर्षेण खलो दुर्जनः, चतुर्थे पण्डितः, पञ्चमे मन्त्री, षष्ठेऽशत्रुः विगतरिपुः, सप्तमे धर्मज्ञः विश्रुतगुणः प्रख्यातगुणः, परतोऽनन्तरान्यस्थानेऽर्कवत् सूर्यवत्। नवमदशमैकादशद्वादशेषु यान्यर्कस्य फलान्यभिहितानि तान्येव बुधस्य वाच्यानि। तद्यथा। नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यभाक्, एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतितः इति। इति बुधचारः।।६।।

भाषा— मंगल लग्न में हो तो जातक क्षतशरीर (किसी अंग में घाववाला), धनभाव में हो तो कदन्नभोगी, नवम भाव में हो तो पापी होता है और शेष भावों में जैसे सूर्य के फल हैं वैसे ही मंगल के भी होते हैं। बुध यदि लग्न में हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो धनवान्, तृतीय भाव में हो तो खल, चतुर्थ भाव में हो तो पण्डित, पञ्चम भाव में हो तो राजमन्त्री, षष्ठभाव में हो तो शत्रुरहित, सप्तम भाव में हो तो धर्मज्ञ, अष्टम भाव में हो तो विख्यात गुणवाला होता है। शेष ९, १०, ११ और १२ भाव में बुध के फल सूर्य के फल-सदृश होते हैं।।६।।

अथ लग्नादिस्थस्य जीवस्य फलमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

विद्वान्सुवाच्यः कृपणः सुखी च धीमानशत्रुः पितृतोऽधिकश्च।
नीचस्तपस्वी सधनः सलाभः खलश्च जीवे क्रमशो विलग्नात्।७।

विद्वानिति ।। जीवे गुरौ विलग्नात्प्रभृति स्थितेषु द्वादशेषु स्थानेषु क्रमशः परिपाट्यैतानि फलानि। तद्यथा। लग्नस्थे गुरौ विद्वान् पण्डितो भवति। द्वितीये सुवाच्यः शोभनवचनः, तृतीये कृपणः अदाता, चतुर्थे सुखी, पञ्चमे धीमान् बुद्धिमान्, षष्ठेऽशत्रुः विगतरिपुः, सप्तमे पितृतोऽधिकः पितुः सकाशाद्गुणाधिकः, अष्टमे नीचः स्वकुलानुचित-कर्मकृत्, नवमे तपस्वी विद्यमानतपाः, दशमे सधनः सवित्तः, एकादशे सलाभः लाभयुक्तः, द्वादशे खलः क्रूरचेष्टः। इति बृहस्पतिचारः ।।७।।

भाषा—गुरु लग्न में हो तो विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो प्रियवक्ता, तृतीय भाव में हो तो कृपण, चतुर्थ भाव में हो तो सुखी, पञ्चम में हो विद्वान्, षष्ठ में हो तो शत्रुरहित, सप्तम में हो तो अपने पिता से अधिक गुणयुक्त, अष्टम में हो तो अनुचित कर्म करनेवाला, नवम में हो तो तपस्वी, दशम में हो तो धनी, एकादश में हो तो लाभ करनेवाला, द्वादश में हो तो जातक खल होता है।। ७ ।।

अथ लग्नादिस्थस्य शुक्रस्य फलं चित्रतयाऽऽह—

स्मरनिपुणः सुखितश्च विलग्ने प्रियकलहोऽस्तगते सुरतेप्सुः।
तनयगते सुखितो भृगुपुत्रे गुरुवदतोऽन्यगृहे सधनोऽन्त्ये।८

स्मरनिपुण इति ।। स्मरनिपुणः कामकुशलः, सुखितः संजातसुख; एवंविधो विलग्नस्थे भृगुपुत्रे शुक्रे जातो भवति। प्रियकलहः कलह-वल्लभः, सुरतेप्सुः सुरताभिलाषी एवंविधोऽस्तगते सप्तमस्थे शुक्रे जातो भवति। तनयगते पञ्चमस्थे शुक्रे सुखितो भवति। गुरुवदतोऽन्यगृहे अतो ऽस्मात्स्थानत्रयादन्यस्मिन् गृहे स्थाने गुरुवत् जीववत्फलानि वक्तव्यानि। द्वितीयतृतीयचतुर्थषष्ठाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशेषु यान्येव गुरोः बृहस्पतेः फलान्यभिहितानि तान्येव शुक्रस्य वक्तव्यानि। तद्यथा। द्वितीये सुवाक्यो भवति। तृतीये कृपणः, चतुर्थे सुखी, षष्ठेऽशत्रुः, अष्टमे नीचः, नवमे तपस्वी, दशमे सधनः, एकादशे सलाभः, द्वादशे खलः, सधनोऽन्त्ये अन्त्ये मीने यत्र तत्र भावस्थे सधनः वित्तवान्भवति। स्थानोक्तं तत्फलं न भवति। केचिद्गुरुवदतस्तु झषे द्रविणी स्यादिति पठन्ति। अतोऽनन्तरं परिशेषस्थानेषु गुरुवत्। झषे मीने द्रविणी स्यात् भवेदिति। इति शुक्रचारः ।। ८ ।।

भाषा– शुक्र लग्न में हो तो जातक कामकला (सुरत-क्रिया) में कुशल और सुखी होता है। सप्तम भाव में हो तो कलहप्रिय और मैथुनाभिलाषी होता है। पञ्चम भाव में शुक्र हो तो सुखी होता है। और अन्य भाव (२,३,४,६,८,९,१०,११ इन) में गुरु के समान फल समझना चाहिए। किन्तु द्वादश में शुक्र हो तो जातक धनवान् होता है।।८।।

अथ लग्नादिस्थस्य सौरस्य फलं शिखरिण्याऽऽह–

अदृष्टार्थो रोगी मदनवशगोऽत्यन्तमलिनः
शिशुत्वे पीडार्त्तः सवितृसुतलग्नेत्यलसवाक् ।
गुरुस्वर्क्षोच्चस्थे नृपतिसदृशो ग्रामपुरषः
सुविद्वांश्चार्वङ्गो दिनकरसमोऽन्यत्रकथितः ।।९।।

अदृष्टार्थो रोगीति।। अदृष्टार्थः नित्यं दरिद्रः, रोगी व्याधितः, मदनवशगः कामाधीनः, अत्यन्तमलिनः अतीवमलोपेतः, शिशुत्वे बाल्ये पीडार्तो व्याध्यर्दितः, अलसवाक् अव्यक्तभाषी एवंविधः सवितृसुते सौरे लग्नस्थिते जातो भवति। यदि तुलाधन्विमकर-कुम्भमीनानामन्यतमो राशिः लग्नगतो न भवति तदा तदेव तदुक्तं फलं भवति। एषामन्यतमे लग्नगे तस्य सौरस्य फलमाह। गुरुस्वर्क्षोच्चस्थ इति। गुरुक्षेत्रे धन्विमीनौ शनैश्चरस्य स्वर्क्षे स्वक्षेत्रे मकरकुम्भौ तस्यैवोच्चस्तुला एषामन्यतमो राशिः यदि लग्नगतो भवति तत्र स्थिते च सौरे नृपतिसदृशः राजतुल्यो भवति। ग्रामपुरषः ग्रामाणां पुराणां वाधिपतिः, सुविद्वान् पण्डितः, चार्वङ्गः शोभनावयवश्च भवति। केचि-त्सुहृत्स्वर्क्षोच्चस्थ इति पठन्ति तदयुक्तम्। यस्मात्सारावल्यामुक्तम्। 'स्वोच्चे स्वजीवभवने क्षितिपालतुल्यो लग्नेऽर्कजे भवति देशनराधिनाथः। शेषेषु दुःखगदपीडित एव बाल्ये दारिद्र्यकामवशगो मलिनोऽलसश्च।।' दिनकरसमोऽन्यत्र कथित इति। अन्यत्र द्वितीयादिषु स्थानेषु दिन-करसमोऽर्कतुल्यः कथित उक्तो यान्यादित्यस्य फलान्यभिहितानि तान्येव सौरस्य वाच्यानि। तद्यथा। द्वितीये भूरिद्रव्यो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी च भवति, तृतीये मतिविक्रमवान्, चतुर्थे विसुखः पीडित-मानसः, पञ्चमे असुतो धनवर्जितः, षष्ठे बलवान् शत्रुनिर्जितः, सप्तमे स्त्रीभिः परिभवं गतः, अष्टमे स्वल्पात्मजो विकलेक्षणश्च, नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यभाक्, एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतित इति शनैश्चरचारः।।९।।

भाषा– शनि यदि 'धनु, मकर, कुम्भ, मीन और तुला से भिन्न राशि में' लग्नगत हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, अतिमलिन, बाल्यावस्था में दुःखी और साफ न बोलनेवाला होता है। यदि लग्न में भी धनु, मीन, मकर, कुम्भ या तुला में हो तो जातक राजा के तुल्य, ग्राम या नगर का स्वामी, विद्वान् और सुन्दर शरीर वाला होता है। द्वितीय आदि भाव में जैसे सूर्य के फल कहे गये हैं उन्हीं के समान शनि के फल भी समझने चाहिए॥ ९॥

अथ लग्नादारभ्य ये तन्वादयो भावास्तेषु भावेषु व्यवस्थितानां सर्वेषामेव ग्रहाणां फलविशेषं मालिन्याऽऽह–

सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुङ्गस्थितानां
फलमनुपरिचिन्त्यं लग्नदेहादिभावैः।
समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः
कथयति विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु ॥१०॥

सुहृदरि॥ यदेतत्प्रतिगृहं लग्नात्प्रभृति द्वादशेसु स्थानेषु फलमनुपरिचिन्त्यम्। भावाः तनुकुटुम्बसहोत्थादयः। लग्नदेहादिभावैरिति। लग्नं देहः शरीरं परिकल्प्यम्, लग्नादारभ्य तनुकुटुम्बसहोत्थादयो भावाः परिकल्प्याः। अत्र का भ्रान्तिः? तत्रोच्यते। अस्त्येव। यस्माद्यवनेश्वरः- 'मूर्तिं च होरां शशिभं च विंद्यात्' इति। अत्र शशिभान्न परिकल्प्या लग्नात्परिकल्प्याः तेषु शरीरादिभावेषु यो ग्रहो व्यवस्थितः स तस्य भावस्य पुष्टिं कृशतां वा करोति। कथमित्याह? सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुङ्गस्थितानां फलमनुपरिचिन्त्यमिति। सुहृत् क्षेत्रं मित्रर्क्ष अरिक्षेत्रं शत्रुभं परकीयमुदासीनभं स्वर्क्षमात्मीयक्षेत्रं तुङ्गमुच्चभम् एतेषु स्थानेषु स्थितानां फलमनुपरिचिन्त्यं परिकल्प्यम्। भावस्थो ग्रहो यादृशे क्षेत्रे भवति तादृशं फलं प्रयच्छति। नन्वत्र सुहृदादिक्षेत्राणां परिगणना कृता तत्र न शुभाशुभफलविभाग उक्तः। उच्यते। अथदिवैतद्गम्यते। यथा मित्रक्षेत्रस्थो भाववृद्धिं करोति, शत्रुक्षेत्रादिस्थश्च तद्धानिम्। तत्र च ये शुभाशुभक्षेत्रे नोक्ते त्रिकोणनीचभे ते अपि ग्राह्ये। मित्रादिक्षेत्रान्यक्षेत्रोपलक्षणानि ज्ञेयानि। कः पुनरपि अरिपरिकीययोर्विशेष उच्यते। उदासीनोऽत्र परोऽभिप्रेतः, अरिः शत्रुः, पर उदासीनः, तत्रैतदुक्तं भवति। पापः सौम्यो वा नीचस्थः शत्रुक्षेत्रस्थो वा यस्मिन्भावे व्यवस्थितः तस्य भावस्य हानिं करोति।

उदासीनक्षेत्रस्थे न हानिं च वृद्धिम्। मित्रक्षेत्रे स्वक्षेत्रे मूलत्रिकोणे स्वोच्चे व्यवस्थितो भावस्य वृद्धिमिति। एतत्केषांचिन्मते। तथा च भगवान् गार्गिः– 'नीचर्क्षरिपुगेहस्थो ग्रहो भावविनाशकृत्। उदासीनगृहे मध्यो मित्रर्क्षस्वत्रिकोणगः।। स्वोच्चगश्च ग्रहोऽवश्यं भाववृद्धिंकरः स्मृतः।' इति। सत्याचार्यस्तु पुनः समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु कथयति यस्मिन् भावे सौम्याः स्थितास्तस्य भावस्य वृद्धिं कुर्वन्ति, यस्मिन् भावे पापाः स्थितास्तस्य भावस्य विपत्तिं हानिं कुर्वन्ति। किन्तु रिःफषष्ठाष्टमेष्वेतद्विपरीतं कथयन्ति। रिःफे द्वादशे स्थाने भावहानिं कुर्वन्ति पापाः वृद्धिं तेन रिःफे सौम्या व्ययहानिं कुर्वन्ति पापाः व्ययवृद्धिम्। षष्ठे सौम्याः शत्रुहानिं कुर्वन्ति पापाः शत्रुवृद्धिम्। अष्टमे सौम्याः मृत्युहानिं कुर्वन्ति पापाः मृत्युवृद्धिमिति। तथा च सत्यः– 'सौम्याः पुष्टिं पापस्तद्धानिं संश्रिता ग्रहाः कुर्युः। मर्त्यादिषु निधने-ऽन्त्ये षष्ठे च विपर्ययात्फलदाः।।' ननु पूर्वं सौम्यानां पापानां चोप-चयस्थानावस्थितानां शुभं फलं व्याख्यातं तत्कथं षष्ठस्थाः पापाः शत्रु-वृद्धिं कुर्वन्ति। अत्रोच्यते पूर्वं। सामान्येनोक्तम्। यत्र च वाचनिकी बाधा भवति तत्र सामान्यं भावफलं त्यक्त्वा यथोक्तफलं वक्तव्यम्। यद्येवं कथं स्वल्पजातके उक्तम्– 'पुष्णन्ति शुभा भावान्मूर्त्यादीन्घ्नन्ति संस्थिताः पापाः। सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः।।' इति। अत्रोच्यते। बृहज्जातके आचार्येणोक्तं स्वल्पजातकेऽन्याचार्यमतेन प्रतिज्ञातमाचार्येण– 'ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यम-स्माकम्। स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये।।' यत्राचार्याणां समसंख्यानां मतभेदसमत्वं भवति तत्र वराहमिहिरो मतद्वयमपि दर्शयति। तथा च बृहद्यात्रायामन्यरूपां ग्रहकुण्डलिकां स्वल्पयात्रायां सामान्यरूपां पठति। एवं बृहदल्पयोर्विवाहपटलयोरपि।।१०।।

भाषा– लग्न से आरम्भ कर तनु, धन आदि संज्ञा से जो द्वादशभाव हैं उन भावों में जो ग्रह मित्रराशि, शत्रुराशि, उदासीन राशि, अपनी राशि, अपने उच्च में स्थित हो तदनुसार भी उनके फल विचार करना चाहिए। जैसे जो ग्रह लग्न में देह सुखकारक कहा गया है वह ग्रह यदि मित्रराशि में हो तो देहसुख की पुष्टि, यदि शत्रुगृह में हो तो देहसुख की अल्पता, उदासीन राशि में हो तो देहसुख मध्यम, अपनी राशि में हो तो भी देहसुख पूर्ण, यदि उच्च में हो तो देहसुख अत्युत्तम

कहना चाहिए और जिस भाव में शुभग्रह का योग हो उस भाव की पुष्टि तथा जिसमें पापग्रह हो उस भाव की हानि होती है। किन्तु ६, ८, १२ माह में विपरीत यानी इन तीनों भाव में शुभग्रह हो तो भाव (शत्रु आदि) की हानि, पापग्रह हो तो भाव की वृद्धि होती है।।१०।।

अथ ग्रहकुण्डलिकाफलविशेषमनुष्टुभाह—

उच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः ।
शुभं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ।।११।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
भावाध्यायो विंशतिः ।।२०।।

उच्चेति।। ग्रहकुण्डलिकायां फलं द्विविधमुक्तं शुभमशुभं च। तत्र यच्छुभं फलं तदुच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैर्ग्रहैर्दत्तं यथाक्रमं पादोनदलपादाल्पनिष्फलं भवति। तेनोच्चस्थो ग्रहः सम्पूर्णं प्रयच्छति। मूलत्रिकोणस्थः पादोनं, स्वक्षेत्रस्थोऽर्द्धं, मित्रक्षेत्रस्थः पादफलं, शत्रुक्षेत्रस्थः पादादप्यल्पं नीचस्थोऽस्तमितश्च न किञ्चिदपि। एवं शुभफलम्। शुभग्रहणादेवाशुभस्य ग्रहस्य व्युत्क्रमो व्याख्येयः। तत्रास्तमितो नीचस्थश्चाशुभं फलं संपूर्णं प्रयच्छति। शत्रुक्षेत्रस्थः पादोनं, मित्रक्षेत्रस्थोऽर्द्धं, स्वक्षेत्रस्थः पादं, त्रिकोणस्थः पादादप्यल्पम्, उच्चस्थो न किंचिदपि। एवं जातककाले ग्रहस्यावस्थानात्फलं वाच्यम्। दशाष्टकवर्गादिफलपक्तिकाले शुभमशुभं वा पुष्टफलं प्रयच्छति। एतच्च पूर्वमेव व्याख्यातम्। उक्तं च-

'तत्कालं बलयुक्तो भवति यदि दशाधिपस्तस्य ।
शुभमशुभं वापि फलं वक्तव्यं नित्यमेव परिपूर्णम्'।।११।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
भावाध्यायो विंशतिः ।।२०।।

भाषा— पूर्व में जो शुभ भावफल कहे गये हैं वे स्वोच्च में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, मूलत्रिकोण में ३ चरण, अपने गृह में २ चरण, मित्रगृह में १ चरण, शत्रुगृह में अल्प और नीच या अस्त हो तो फल का अभाव समझना चाहिए। इसी से सिद्ध होता है कि अशुभ फल इससे विपरीत अर्थात् अस्त और नीच में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, शत्रुगृह में ३ चरण, मित्रगृह में हो तो २ चरण, अपने घर में हो तो १ चरण, मूल त्रिकोण में हो तो अल्प और उच्च में ग्रह हो तो अशुभ भावफल का अभाव होता है।। ११ ।।

———————

अथाश्रययोगाध्यायः ॥२१॥

अथात आश्रययोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवैकादिसंख्योत्तर-वृद्ध्या स्वगृहगतानां ग्रहाणां मित्रक्षेत्रगतानां च फलं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनि-
सुखिभोगिनृपाः स्वभैकवृद्ध्या ।
परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या
गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ॥१॥

कुलसमकुलेति॥ स्वभेषु स्वराशिष्वेकवृद्ध्या स्थितैः ग्रहैर्जाताः कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपाः पुरुषा भवन्ति। यस्मिंस्तस्मिन् ग्रहे स्वक्षेत्रगतजातः कुलसमः स्वकुलतुल्यो भवति। एवं द्वयोः स्वक्षेत्रस्थयोः कुलमुख्यः स्वकुलप्रधानः स्वकुलाधिकः, त्रिषु बन्धूनां पूज्यः, चतुर्षु धनी वित्तवान्, पंचसु सुखी, षट्सु भोगी नृपतुल्यः केचिद्भूप इति पठन्ति। स चोपमानाद्भूपतिरिव भूपस्तत्समत्वमेवमुक्तम्। स्वल्पजातकेऽप्युक्तम्– 'कुलतुल्यकुलाधिकबन्धुमान्यधनिभोगिनृपसमनरेंद्राः।' एवं षट्सु नृपसमः, सप्तसु नृपो राजा, एवंगुणः एकोत्तरवृद्ध्या स्वक्षेत्रगेषु जातो भवति। परविभवेत्यादि। एकवृद्ध्या इत्यनुवर्तते। मित्रभेष्वेकवृद्ध्या स्थितेषु परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च जाता भवन्ति। तेनैकस्मिन् मित्रक्षेत्रस्थे ग्रहे जातः परविभवपोष्यो भवति। पराजीवीत्यर्थः। द्वयोः सुहृत्पोष्यः, त्रिषु स्वपोष्यो ज्ञातिपोष्यो भवति। चतुर्षु बन्धुपोष्यः भ्रातृपोष्य इत्यर्थः, पंचसु गणपः गणस्वामी, षट्सु बलेशो सेनापतिः, सप्तसु नृपो राजा॥१॥

भाषा– जन्म-समय में अपने गृह में एक ग्रह हो तो जातक अपने पिता के समान, २ ग्रह स्वगृह में हो तो कुल में मुख्य, ३ ग्रह स्वगृह के हों तो बन्धुओं में पूज्य, ४ ग्रह स्वगृह के हों तो धनी, ५ ग्रह हों तो सुखी, ६ ग्रह हों तो भोगी, सातों ग्रह स्वगृह के हों तो राजा होता है। एवं एक ग्रह मित्र राशि में हो तो, दूसरे के धन से पोषित होता है। २ ग्रह मित्र गृह में हो तो मित्र द्वारा, ३ ग्रह मित्र गृह में हो तो स्वजाति द्वारा, ४ ग्रह मित्रराशि में हो तो बन्धु के द्वारा पालित होता है। ५ ग्रह मित्रराशि में हो तो बहुतों का नायक, ६ ग्रह हों तो सेनापति, सातों ग्रह मित्रराशि में हो तो राजा होता है॥१॥

अथोच्चगतस्यैकस्यापि मित्रदृष्टस्य फलमेकोत्तरवृद्ध्या नीचशत्रुस्थानानां च मालिन्याऽऽह—

जनयति नृपमेकोऽप्युच्चगो मित्रदृष्टः
प्रचुरधनसमेतं मित्रयोगाच्च सिद्धम्।
विधनविसुखमूढव्याधितो बन्धतप्तो
वधदुरितसमेतः शत्रुनीचर्क्षगेषु ॥२॥

जनयतीति॥ एकोऽप्युच्चगतो ग्रहो मित्रदृष्टः सुहृदवलोकितः नृपं राजानं जनयति उत्पादयति एवमेकोऽप्युच्चगतो मित्रयोगान्मित्रयुक्तत्वात्प्रचुरधनसमेतं सिद्धं च जनयति प्रचुरधनसमेतं पर्याप्तवित्तयुक्तं सिद्धं च सर्वत्रावाप्तपूजं जनयति। विधनविसुखमूढेत्यादि। एकवृद्ध्या शत्रुनीचर्क्षगेषु शत्रुक्षेत्रस्थेषु नीचगेषु वा ग्रहेषु विधनविसुखमूढव्याधिता बन्धतप्ता वधदुरितसमेता जाताः भवंति। तेन यस्य जन्मन्येको ग्रहः शत्रुक्षेत्रगो नीचगो वा भवति स विधनः विगतधनो भवति दरिद्रः। यस्य द्वौ स विसुखो दुःखितः। यस्य त्रयः स मूढः विचित्तः। यस्य चत्वारः स व्याधितः पीडितः। यस्य पंच स बन्धनतप्तो भवतिः। यस्य षट् स तप्तो भवति बहुदुःखसंतप्तः। यस्य सप्त स वधदुरितसमेतो भवति। वधवध्यो दुरितं दुष्कृतं वध एव दुरितं तेन समेतो वा। नीचे यद्यपि सप्त न सम्भवन्ति तथापि वज्रादिवत्पूर्वशास्त्रानुसारेण तत्फलोपदेशः॥२॥

भाषा– अपने उच्च में एक भी ग्रह हो और अपने मित्र से दृष्ट हो तो जातक अत्यन्त धनसंयुक्त राजा होता है। यदि मित्र से युक्त हो तो धनवान् राजा होकर सर्वत्र सम्मान पानेवाला होता है। यदि २ या अधिक ग्रह उच्च में हो तो फिर कहना ही क्या है? एवं एक ग्रह शत्रु या नीच राशि में हो तो धनहीन, २ ग्रह हो तो सुखहीन, ३ ग्रह हो तो मूढ़, ४ ग्रह हो तो व्याधियुक्त, ५ ग्रह नीच में हो तो बन्धन से दुःखी और ६ ग्रह नीचगृह में तथा ६ या ७ शत्रुगृह में हो तो वध (मृत्यु) और दुरित (पाप) से युक्त होता है॥२॥

विशेष अर्थ– सातों ग्रह एक साथ नीच में नहीं हो सकते हैं। परञ्च ७ ग्रह शत्रुगृह में हो सकते हैं, इसलिए ६ और सात ग्रह का फल समान ही *'पापदुरितसमेत'* एक ही कहा गया है॥२॥

अथ कुंभलग्नजातस्याशुभं फलमुपजातिकयाऽऽह—

न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यो न भागभेदाद्यवना वदन्ति।
कस्यांशभेदो न तथास्ति राशेरतिप्रसङ्गस्त्विति विष्णुगुप्तः।३।

न कुम्भलग्नमिति।। सत्याचार्यः कुम्भलग्नं जन्मनि न शुभमाह न शोभनमुक्तवान्। तथा च सत्यः– 'जन्मनि चन्द्रः श्रेष्ठः प्रवदेद्धोरारिनिधनवर्जः स्यात्। होरा च भवेदिष्टा द्विपदेष्विह कुम्भवर्ज्यं हि।। कुम्भविलग्ने जातो भवति नरो दुःखशोकसन्तप्तः।' इति। न भागभेदादिति। पुराणयवना भागभेदाद्द्वादशभागभेदाज्जन्मनि कुम्भलग्नमशुभमिति यस्य तस्य लग्नस्य कुम्भद्वादशभागे जन्म न शुभमिति तेषां मतं न कुम्भलग्ने। तथा च तन्मतानुसारिणा श्रुतकीर्तिना 'सर्वस्मिंल्लग्नगते कुंभद्विरसांशको यदा भवति। राशौ न तदा सुखितः परान्नभोजी भवेत्पुरुषः।।' इति। अत्र विष्णुगुप्तचाणक्यावाहतुः। कस्यांशभेद इति। यदुक्तम्। भागभेदात्कुंभलग्नं जन्मनि न शुभम्। तत्कस्य राशेर्लग्नगतस्य। कुंभद्वादशभागो नास्त्यपि तु सर्वस्यैवास्ति विद्यते। तस्माद्यदि कुंभस्य द्वादशभागो न शुभस्तदा सर्वाण्येव लग्नोक्तानि फलानि निरर्थकानि भवन्ति। तस्मादतिप्रसङ्गः। तेन कुंभलग्नमेवाशुभं न तत्तद्भागभेद इति। तथा च तद्वाक्यम्–

'कुम्भद्वादशभागो लग्नगतो न प्रशस्यते यवनैः।
यद्येवं सर्वेषां लग्नगतानामनिष्टफलता स्यात्।।
घटयोगाद्राशीनां न मतं तत्सर्वशास्त्रकाराणाम्।
तस्मात्कुम्भविलग्नो जन्मन्यशुभो न तद्भागः' इति ।।३।।

भाषा– 'जन्म-समय में कुम्भलग्न शुभ नहीं होता है' ऐसा सत्याचार्य कहते हैं। किन्तु किसी भी लग्न में कुम्भ का द्वादशांश अशुभ होता है, ऐसा प्राचीन यवनाचार्यों का मत है। किन्तु विष्णुगुप्त कहते हैं कि ऐसी कौन सी राशि है जिसमें कुम्भ का द्वादशांश नहीं है? अर्थात् कुम्भ का द्वादशांश तो सब राशि में है तब तो सब राशि लग्न में अशुभ हो जायेंगे, इसलिए ऐसा मानना अति-प्रसङ्ग है। इसलिए कुम्भ लग्न ही जन्म में अशुभ है।।३।।

अधुना होरास्थानां ग्रहाणां फलं वसंततिलकेनाऽऽह–

यातेस्वसत्स्वसमभेषु दिनेशहोरां
ख्यातो महोद्यमबलार्थयुतोऽतितेजाः।
चान्द्रीं शुभेषु युजि मार्दवकान्तिसौख्य-
सौभाग्यधीमधुरवाक्ययुतः प्रजातः ।।४।।

यातेष्विति।। असद्ग्रहाः पापाः तेष्वसत्सु पापेषु असमभेषु विषमराश्यवस्थितेषु न केवलं यावद्दिनेशहोरामादित्यहोरां यातेषु

प्राप्तेषु विषमराशिषु पापाः प्रथमार्द्धस्था यदा भवन्ति तदा जातः ख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धः, महोद्यमबलार्थयुतः महत्सु कार्येषूद्यमरतो, बलवान् वीर्यवान्, अर्थयुतो धनवान्ः, अतितेजा अतितेजस्वी भवति। चान्द्रीं शुभेष्विति। युजि युग्राशौ शुभेषु सौम्यग्रहेषु चान्द्रीं होरां यातेषु समराशिषु प्रथमार्द्धस्थाः सौम्या भवन्ति तदा जातो मार्दवयुतो मृदुस्वभावः, कान्तियुतो द्युतिमान्, सौख्ययुतः सुखान्वितः सौभाग्ययुतः सर्वजनप्रियः, धीयुतः मतिमान्, मधुरवाक्ययुतः प्रियंवदः एतैः गुणैर्युक्तो जातो भवति।। ४ ।।

भाषा– यदि पापग्रह विषम राशि और सूर्य भी होरा में हो तो जातक सर्वत्र विख्यात, महाउद्यमी और धनों से युत तथा परम तेजस्वी होता है। एवं यदि शुभग्रह समराशि और चन्द्रमा की होरा में हो तो जातक कोमल कान्ति, सुख, सौभाग्य, बुद्धि से युत और प्रियभाषी होता है।।४।।

विशेष अर्थ– यदि पापग्रह विषम राशि और रवि की होरा में तथा शुभग्रह समराशि और चन्द्र की होरा में हो तो ऊपर कहे हुए दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होता है, इत्यादि अपनी बुद्धि से भी समझना चाहिए।४।

अथ पुनरपि होरागतफलमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

तास्वेव होरास्वपरर्क्षगेषु ज्ञेया नराः पूर्वगुणेषु मध्याः ।
व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेषु मर्त्या भवन्त्युक्तगुणैर्विहीनाः ।५।

तास्वेवेति।। तास्वेव पूर्वोक्तासु होरास्वपरर्क्षगेष्वन्यराश्याश्रितेषु जाता नराः सर्वेषु पूर्वोक्तगुणेषु मध्याः भवन्ति। एतदुक्तं भवति। समराशिषु रविहोरायां पापग्रहाणामवस्थानं भवति तदा जातानां पूर्वोक्तगुणा मध्या भवन्ति। एवं विषमराशिषु चन्द्रहोरायां सौम्यग्रहाणामवस्थानं भवति तदा जातानां पूर्वोक्त गुणा मध्या भवन्ति। व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेष्विति। व्यत्यस्तासु विपरीतस्थासु होरासु व्यत्यस्तेषु च भवनेषु राशिषु ग्रहेषु जाता मर्त्याः मनुष्या उक्तगुणैः प्रागुद्दिष्टैः गुणैः विहीना वर्जिता भवन्ति। एतदुक्तं भवति समराशिषु चन्द्रहोरायां पापानामवस्थानं भवति तदा जाता महोद्यमबलार्थहीना भवन्ति वितेजसश्च। एवं विषमराशिषु आदित्यहोरायां सौम्यानामवस्थानं भवति तदा जाता मार्दवकान्तिसौभाग्यधीमधुरवाक्यविहीनाः भवन्ति। अत्र च दर्शिते ग्रहावस्थाने यथा यथाग्रहबहुत्वमं भवति तथा-तथा गुणबहुत्वं वक्तव्यम्।। ५ ।।

भाषा– यदि पापग्रह सूर्य होरा में होते हुए भी समराशि में हो, एवं शुभग्रह यदि चन्द्र होरा में होते हुए भी विषम राशि में हो तो जातक पूर्वकथित गुणों में मध्यम होता है। यदि बिल्कुल विपरीत (अर्थात् पापग्रह चन्द्र होरा और समराशि में हो और शुभग्रह रविहोरा और विषम राशि में हो) तो जातक ऊपर कहे हुए गुणों से हीन होता है।।५।।

अथ द्रेष्काणावस्थानाच्चन्द्रस्य फलं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्दृकाणे
चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति।
व्यालोद्यतायुधचतुश्चरणाण्डजेषु
तीक्ष्णोऽतिहिंस्रगुरुतल्परतोऽटनश्च ॥६॥

कल्याणरूपगुणमिति।। आत्मीयद्रेष्काणे यदा चन्द्रः स्थितो भवति अथवा सुहृद्द्रेष्काणे स्थितस्तदा जातः कल्याणरूपगुणः प्रशस्तरूपः प्रशस्तगुणश्च भवति। आत्मीयद्रेष्काणमित्रद्रेष्काणावस्थानं विनान्यद्द्रेष्काणावस्थिते चन्द्रमसि विचारः। यस्मादुक्तान्यगस्तदधिनाथगुणं करोति। यस्मिन् द्रेष्काणे चन्द्रमा व्यवस्थितस्तस्य योऽधिपतिः स यदि चन्द्रस्य तत्कालमध्यस्थस्तदा जातस्य मध्यमौ रूपगुणौ भवतः। अथ द्रेष्काणाधिपतिश्चन्द्रस्य तत्कालमरिस्तदा जातो रूपगुणहीनो भवति। व्यालोद्यतायुधेति। व्यालद्रेष्काणः सर्पद्रेष्काणस्तत्रस्थे चन्द्रे जातः तीक्ष्ण उग्रो भवति। उद्यतायुधद्रेष्काणः सायुधस्तत्स्थे चन्द्रे जातोऽतिहिंस्रो मारणात्मको भवति। प्राणिघातरत इत्यर्थः। चतुश्चरणः तत्रस्थे चन्द्र गुरुतल्परतो गुरुदाराभिगामी भवति। अण्डजद्रेष्काणः पक्षिद्रेष्काणस्तत्रस्थे चन्द्रेऽटनः परिभ्रमणशीलो भवति। आत्मीयादिद्रेष्काणस्थे चन्द्रमसि व्यालद्रेष्काणस्थे चन्द्रे संभवतः फलद्वयमपि वक्तव्यम्। अत्र व्यालद्रेष्काणाः कर्कटद्वितीयः कर्कटतृतीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वितीयः मीनतृतीयः उद्यतायुधद्रेष्काणाः। मेषाद्यः मेषतृतीयः मिथुनद्वितीयः मिथुनतृतीयः, सिंहतृतीयः, कन्याद्वितीयः, तुलातृतीयः, धनुषि प्रथमः, धनुषि तृतीयः, मकरतृतीयः। अथ चतुष्पदद्रेष्काणाः मेषद्वितीयः वृषद्वितीयः वृषतृतीयः कर्कप्रथमः सिंहप्रथमः सिंहद्वितीयः सिंहतृतीयः तुलातृतीयः वृश्चिकतृतीयः धनुषि प्रथमः *(१)* मकराद्यः। अथ खगद्रेष्काणाः।

(१) मकराद्यद्रेष्काणस्य चतुष्पदत्वे विसंवादः।

मिथुनद्वितीयः सिंहप्रथमः तुलाद्वितीयः कुम्भप्रथमः। अत्रापि गुण-द्वयान्तर्भूतद्रेष्काणस्थे चन्द्रे फलद्वयं वक्तव्यमिति ॥६॥

भाषा– चन्द्रमा यदि अपने या मित्र के द्रेष्काण में हो तो जातक उत्तम रूप और उत्तम गुणों से युक्त होता है। अन्य द्रेष्काण में हो तो तदनुसार ही गुण और रूप होता है। अर्थात् सम के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण सम होता है। यदि शत्रु के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण निकृष्ट (अधम) होते हैं। यदि चन्द्रमा सर्प द्रेष्काण में हो तो जातक उग्र (क्रूर) स्वभाववाला, यदि उद्यतायुध द्रेष्काण में चन्द्रमा हो तो अतिहिंसक, चतुष्पद द्रेष्काण में हो तो जातक गुरुपत्नीगामी और पक्षी द्रेष्काण में चन्द्रमा के रहने से जातक भ्रमणशील होता है॥६॥

विशेष अर्थ– यदि सर्पादि द्रेष्काण चन्द्रमा का अपना या मित्र का हो तो दोनों प्रकार के फल होते हैं।

सर्प द्रेष्काण–कर्क में दूसरा,तीसरा, वृश्चिक में प्रथम,द्वितीय,मीन में तृतीय।

उद्यतायुध द्रेष्काण–मेष में प्रथम और तृतीय, मिथुन में द्वितीय और तृतीय सिंह में द्वितीय और तृतीय, कन्या में द्वितीय, तुला में तृतीय, मकर में तृतीय।

चतुष्पद द्रेष्काण– मेष का द्वितीय, वृष का द्वितीय, तृतीय, कर्क का प्रथम, सिंह का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तुला का तृतीय, वृश्चिक का तृतीय, धनु का प्रथम और मकर का प्रथम।

पक्षी द्रेष्काण– मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय, कुम्भ का प्रथम। आगे द्रेष्काणाध्याय देखिये। यहाँ भी जिस द्रेष्काण में दो रूप हैं उनमें दोनों फल समझना चाहिए॥६॥

अधुना मेषादिनवांशकजातस्य स्वरूपं शालिन्याऽऽह–

स्तेनो भोक्ता पण्डिताढ्यो नरेन्द्रः
क्लीबः शूरो विष्टिकृद्दासवृत्तिः।
पापो हिंस्रो ऽभीश्च वर्गोत्तमां-
शेष्वेषामीशा राशिवद्द्वादशांशैः ॥७॥

स्तेन इति॥ मेषवर्ज्यमन्यस्मिन् राशौ लग्नगते मेषनवांशके जातः स्तेनश्चौरोभवति। वृषवर्ज्यं वृषनवांशके जातो भोक्ता असञ्चयशीलः। एवं मिथुनवर्ज्यं मिथुननवांशके जातः पण्डितो विद्वान्भवति। कर्कट-नवांशके जातः आढ्यः ईश्वरः। सिंहांशके नरेन्द्रो राजा। कन्यांशके क्लीबः पुरुषाकाररहितः। तुलांशके शूरः संग्रामप्रियः। वृश्चिकांशस्थे विष्टिकृद्भारजीवी। धन्व्यंशके दासवृत्तिः। मकरांशके पापः। कुंभांशके हिंस्रः क्रूरः। मीनांशकेऽभीः निर्भयः। केचिदधीरिति पठन्ति। अधीः

बुद्धिरहितः। आचार्यस्य चाभीरभिमतम्। तथा च स्वल्पजातके- 'तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुंसकाभयदरिद्राः। खलपापोप्रोत्कृष्टा मेषाद्यानां नवांशभवाः।।' इति। वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशाः। एष्वेव राशिषु वर्गोत्तमांशेषु जाता एषामेव पूर्वोक्तानामीशाः स्वामिनो भवन्ति। मेषलग्ने मेषनवांशके जातश्चौरस्वामी भवति। वृषलग्ने वृषनवांशके जातो भोक्तॄणामसञ्चयशीलानां स्वामी भवति। एवं मिथुने पण्डितस्वामी। कर्कटे लग्ने ईश्वराणां स्वामी महाधनिकः। सिंहे नृपस्वामी महाराजाधिराजः। कन्यायां क्लीबस्वामी। तुलायां शूराणां स्वामी। वृश्चिके भारवाहानां स्वामी। धन्विनि दासानां स्वामी। मकरे पापानां स्वामी। कुम्भे क्रूराणां स्वामी। मीनांशकेऽभयानां स्वामी। राशिवद्द्वादशांशैरिति। द्वादशांशः राशिवत्फलानि वाच्यानि। यानि मेषादिस्थे चन्द्रमसि फलान्यभिहितानि वृत्तातामदृगित्येवमादीनि तान्येव मेषादिद्वाशांशकजातस्य वक्तव्यानीति।।७।।

भाषा– वर्गोत्तम छोड़कर लग्न में मेष का नवांश हो तो जातक स्तेन (चोर) होता है। वृष का नवमांश हो तो भोगी, मिथुन का नवांश हो तो पण्डित, कर्क का नवांश हो तो धनवान्, सिंह का नवांश हो तो राजा, कन्या का नवांश हो तो धनवान्, सिंह का नवांश हो तो संग्रामप्रिय, वृश्चिक का नवांश हो तो भार ढोनेवाला, धनु का नवांश हो तो भृत्य, मकर का नवांश हो तो पापी, कुम्भ का नवांश हो तो हिंसक और मीन का नवांश हो तो निर्भय होता है। किन्तु यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो इन सबों का अधिपति होता है। तथा मेषादि द्वादशांश के फल के समान ही होते हैं।।७।।

विशेष अर्थ– जो राशि लग्न में हो उसी का नवांश वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेष लग्न में मेष का ही नवांश हो तो चोरों का राजा, वृष लग्न में वृष का ही नवांश हो तो भोगियों में श्रेष्ठ, मिथुन लग्न में मिथुन का ही नवांश हो तो जातक पण्डितों में श्रेष्ठ इत्यादि अन्य लग्न में भी समझना चाहिए।।७।।

अथ भौमसौरयोः स्वत्रिंशांशकस्थयोः फलं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

जायान्वितो बलविभूषणसत्त्वयुक्त-
स्तेजोऽतिसाहसयुतश्च कुजे स्वभागे।
रोगी मृतस्वयुवतिर्विषमोऽन्यदारा
दुःखी परिच्छदयुतो मलिनोऽर्कपुत्रे ।।८।।

जायान्वित इति।। जायान्वितो भार्यायुक्तः, बलं वीर्यं, विभूषणान्यलङ्करणानि, सत्त्वमौदार्यमेतैर्युक्तः तथातितेजाः अतिसाहसेनासमी-

क्षितकार्यकरणेन च युक्तः, एवंविधः कुजे भौमे स्वभागे स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति। रोगी व्याधितः, मृतस्वयुवतिः मृता स्वा आत्मीया युवतिर्भार्या यस्य। विषमः क्रूरः, अन्यदारोऽन्यसम्बन्धिनी दारा यस्य परदारासक्तः। दुःखी निःसुख, परिच्छदयुतो गृहवस्त्रपरिवारोपेतः, मलिनः मलोपेतः एवंविधोऽर्कपुत्रे सौरे स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति। नन्वत्र त्रिंशांशकग्रहणं नास्ति, तत्कथं ज्ञायते त्रिंशांशकफलमेतत्। उच्यते। शुक्रफलाभिधाने त्रिंशांशकग्रहणं भविष्यति।। ८।।

भाषा– यदि मंगल अपने त्रिंशांश में हो तो जातक स्त्रीसहित, बल, भूषण, उदारतादि गुणों से युक्त, अत्यन्त तेजस्वी और साहसी होता है। यदि शनि अपने त्रिंशांश में हो तो जातक रोगी, मृतभार्या, कुटिल, परस्त्री को रखनेवाला, दुःखी और गृह-वस्त्रादि से युक्त होता है।। ८।।

अथ जीवबुधयोः स्वत्रिंशांशकस्थयोः जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

स्वांशे गुरौ धनयशःसुखबुद्धियुक्तास्ते-
जस्विपूज्यनिरुगुद्यमभोगवन्तः ।
मेधाकलाकपटकाव्यविवादशिल्प-
शास्त्रार्थसाहसयुताःशशिजेऽतिमान्याः ।।९।।

स्वांश इति।। धनेन वित्तेन, यशसा कीर्त्या, सुखेन निर्दुःखत्वेन बुद्ध्या प्रज्ञया च युक्ताः, तेजस्वी सोत्साहः, पूज्यः लोकवंद्यः, निरुक् स्वस्थदेहः, उद्यमवान् उत्थानशीलः, भोगसंयुक्तः, एवंविधाः गुरौ जीवे स्वत्रिंशांशकस्थे जाताः भवन्ति। मेधा बुद्धिः, कला गीतवाद्य-नृत्यपुस्तकचित्रकर्मादिकाः, कपटः दाम्भिकत्वं, काव्यं कवेः कर्म, विवादः वाक्पटुत्वं, शिल्पं तक्षकर्मादि, शास्त्रार्थः सतामाचारानुष्ठानं, साहसमसमीक्षितकार्यकरणशीलता, अतिमान्योऽतिपूज्यः एवंविधाः शशिजे बुधे स्वत्रिंशांशकस्थे जाताः भवन्ति। केचिदत्र सर्वत्रैक-वचनमेवेच्छन्ति तथापि न कश्चिद्दोषः।। ९।।

भाषा– गुरु अपने त्रिंशांश में हो तो जातक धन, यश, सुख, बुद्धि से युक्त, तेजस्वी, जगन्मान्य, रोगरहित, उद्यमी और भोगी होता है। यदि बुध अपने त्रिंशांश में हो तो जातक मेधावी, कला जाननेवाला, कपटी, काव्य करनेवाला, शास्त्रार्थ जाननेवाला, साहसी और लोक में आदरणीय होता है।। ९।।

अथ शुक्रस्य स्वत्रिंशांशकस्थस्य भौमादित्रिंशांशकस्थयोश्चन्द्रा-र्कयोश्च जातस्य स्वरूपं मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

स्वे त्रिंशांशे बहुसुतसुखारोग्यभाग्यार्थरूपः
शुक्रे तीक्ष्णः सुललितवपुः सुप्रकीर्णेन्द्रियश्च ।
शूरस्तब्धौ विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुखिज्ञौ
चार्वङ्गेष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके आश्रययोगाध्याय एकविंशः ॥२१॥

स्वे त्रिंशांशे इति। बहुसुतः प्रभूतपुत्रः, बहुसुखोऽपरिमितसुखः आरोग्येण निरोगतया, भाग्यैः जनप्रियत्वेन, अर्थेन धनेन, रूपेण सुचारुतया सयुक्तः केचिद्भार्यार्थरूप इति पठन्ति। भार्यया कलत्रेण तथा तीक्ष्णः क्रूरः, सुललितवपुः शोभनशरीरः, सुप्रकीर्णेन्द्रियः विक्षिप्तेन्द्रियार्थः सुप्रकीर्णानि विक्षिप्तानीन्द्रियाणि यस्य। बहुस्त्री-गमनशीलः एवंविधः शुक्रे स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति। शूरस्तब्धा-वित्यादि। आरपूर्वांशकेषु भौमप्रथमेषु भागेषु रविशशियुक्ते-ष्वर्कचन्द्रसंयुषुक्ते यथासंख्यं फलानि। तद्यथा। भौमत्रिंशांशकस्थे-ऽर्के शूरः सङ्ग्रामप्रियः, चन्द्रे स्तब्धश्चिरकारी, सौरत्रिंशांशकस्थे-ऽर्के विषमः क्रूरो भवति। चन्द्रमसि वधकः, जीवत्रिंशांशकस्थेऽर्के सद्गुणो भवति। चन्द्रमस्याढ्यः ईश्वरः बुधत्रिंशांशकस्थेऽर्के सुखी भवति। चन्द्रे ज्ञः पण्डितः, शुक्रत्रिंशांशकस्थेऽर्के चार्वङ्गः शोभनशरीरः, चन्द्रमसीष्टः सर्वजनप्रियः एवमारपूर्वेष्वंशेषु आरोऽङ्गारकः पूर्वः प्रथमो येषामंशकानां त्रिंशद्भागानां तेष्विति ॥१०॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ आश्रययोगाध्याय एकविंशः ॥२१॥

भाषा– शुक्र अपने त्रिंशांश में हो तो जातक अधिक पुत्र, सुख, आरोग्य, भाग्य, धन, रूप से युक्त, क्रूर, सुन्दर शरीर, बहुस्त्री से गमनशील होता है। यदि मंगल के त्रिशांश में रवि हो तो स्तब्ध (धीरे कार्य करनेवाला), बुध के त्रिंशांश में रवि हो तो कुटिल, चन्द्रमा हो तो हिंसक होता है। गुरु के त्रिशांश में सूर्य हो तो गुणवान् और चन्द्रमा हो तो धनवान् होता है। शुक्र के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सुखी, चन्द्रमा हो तो पण्डित होता है। शनि के त्रिशांश में सूर्य हो तो सुन्दर शरीर और चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है॥१०॥

अथ प्रकीर्णकाध्यायः ॥२२॥

अथातः प्रकीर्णकाध्यायो व्याख्यायते। मिश्रः प्रकीर्णक इत्युच्यते। तत्र ग्रहाणां परस्परं कारकसंज्ञां वैतालीयेनाऽऽह—

स्वर्क्षतुङ्गमूलत्रिकोणगाः कण्टकेषु यावन्त आश्रिताः।
सर्व एव तेऽन्योन्यकारकाः कर्मगस्तु तेषां विशेषतः ॥१॥

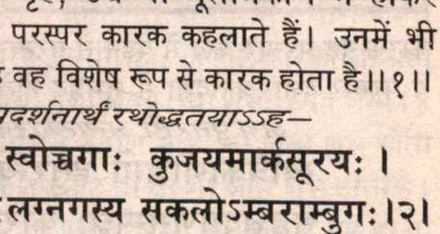
स्वर्क्षेति॥ स्वर्क्षे स्वक्षेत्रे यो ग्रहः स्थितः यश्च तुङ्गे स्वोच्चे यश्च मूलत्रिकोणे स्थितः स च यदि लग्नकण्टकेषु केन्द्रेष्वाश्रितः स्थितो भवति एवंविधस्य ग्रहस्यान्योऽप्येवंविधः केन्द्रगो यदि भवति तदा तौ ग्रहावन्योन्यं परस्परं कारकाख्यौ भवतः। अनेक प्रकारेण यः कर्मगः। यो यस्मात् ग्रहात् दशमस्थानस्थः स विशेषतः विशेषेण तेषां ग्रहाणां मध्यात्कारकसंज्ञां लभते। अत उक्तम्— कर्मगस्तु तेषां विशेषत इति।१।

भाषा— जितने ग्रह अपने गृह, उच्च या मूलत्रिकोण में होकर परस्पर केन्द्र में हों वे सब ग्रह परस्पर कारक कहलाते हैं। उनमें भी जिससे जो दशमस्थान में रहता है वह विशेष रूप से कारक होता है॥१॥

अथास्यैवोदाहरणप्रदर्शनार्थं रथोद्धतयाऽऽह—

कर्कटोदयगते यथोडुपे स्वोच्चगाः कुजयमार्कसूरयः।
कारका निगदिताः परस्परं लग्नगस्य सकलोऽम्बराम्बुगः।२।

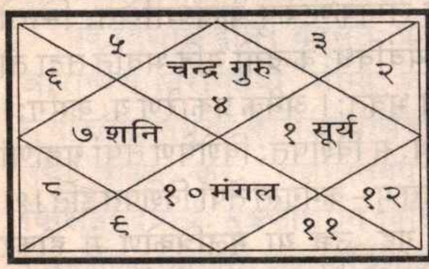
कर्कटेति॥ यथा कर्कटोदये कुलीरलग्ने तत्स्थे चोडुपे चन्द्रे कुजोऽङ्गारकः, यमः सौर, अर्क आदित्यः, सूरिर्बृहस्पतिः एते कुजयमार्कसूरयः स्वोच्चगा; आत्मीयतुङ्गस्था यदि भवन्ति कुजो मकरे, यमस्तुलायामर्को मेषे, सूरिः कर्कटे तदा ते परस्परमन्योन्यङ्कारका निगदिता उक्ताः। अनेन प्रकारेण यावन्तो भवन्ति



तावन्तः परस्पर कारकाख्याः। अनेनोदाहरणेनैतत्प्रतिपादितं भवति। यथा पुरुषस्य जन्मलग्नात् केन्द्रं विना स्वक्षेत्रे उच्चत्रिकोणगाः अपि परस्परं कण्टकगास्तदा कारकसंज्ञामपि लभन्ते। लग्नगस्येति। लग्नगस्य ग्रहस्य प्राग्लग्ने समवस्थितस्य सकलः सर्वो ग्रहोऽम्बरगः दशमस्थानस्थश्चांबुगश्चतुर्थस्थानस्थश्च कारकसंज्ञो भवति। अनेनैतदुक्तं भवति लग्नगो ग्रहः स्वक्षेत्रस्वोच्चत्रिकोणेषु यद्यपि भवति तस्माद्यो दशमस्थः

चतुर्थो वा सोऽप्युच्चत्रिकोणस्वक्षेत्राणामन्यतमस्थो भवति तथापि लग्नगतस्य स कारकाख्यो भवति न तस्य लग्नगत इति। अत उक्तम्– लग्नगस्य सकलोऽम्बरांबुग इति।। २।।

भाषा– जैसे कर्क लग्न में चन्द्रमा हो और मकर में मंगल, तुला में शनि, मेष में सूर्य, कर्क में गुरु हो तो स्वराशि और उच्चगत होकर परस्पर केन्द्र में पड़ने के कारण ये चारों ग्रह परस्पर कारक हुए। लग्नगत के चतुर्थ और दशम में जो उच्चादिस्थित हों वे सब विशेष कारक होते हैं।



जैसे– इसी उदाहरण में शनि से १० में स्वराशि और स्वोच्चगत चन्द्रमा और गुरु, ये दोनों विशेष कारक हुए। एवं मंगल से दशम स्थान में शनि स्वोच्चगत होने से विशेष कारक है। जातक को राज्यादि सुखदायक ग्रह कारक कहलाते हैं। कारक ग्रह परस्पर केन्द्र में पड़ने से परस्पर शुभ फल देने में सहायक होते हैं। ये परस्पर दशा-अन्तर्दशा में शुभप्रद होते हैं।

अथ पुनरपि अन्यत्कारकलक्षणमनुष्टुभाह–

स्वत्रिकोणोच्चगो हेतुरन्योन्यं यदि कर्मगः।
सुहृत्तद्गुणसम्पन्नः कारकश्चापि स स्मृतः ।।३।।

स्वत्रिकोणोच्चग इति।। स्वत्रिकोणोच्चगो ग्रहः कारकत्वे हेतुः कारणं न केन्द्रस्थः तथाऽन्योन्यस्य ग्रहस्य लग्नकेन्द्रं विनाप्यवस्थितस्य यदि कश्चिद्ग्रहः कर्मगो दशमस्थानस्थो भवति स च स्वक्षेत्रोच्चमूलत्रिकोणानामन्यतमे भवति। यस्माच्च दशमस्तस्य यदि सुहृन्मित्रं निसर्गतो न केवलं यावत्तद्गुणसम्पन्नस्तेन मित्रगुणेन संयुक्तस्तात्कालिके मित्रामित्रविधिनाधिमित्रतां प्राप्तस्तथाविधः सर्वग्रहः कारकाख्यो भवति। यस्य च दशमः स तस्य कारकाख्यो न भवति। कारकसंज्ञा च यात्रायामुपयुज्यते। यतस्तत्रोक्तम्– 'रिक्तोपहतदशायां जन्मोदयनाथशत्रुपाके च। स्वदशेशकारकदशासश्रयणीयो नरेन्द्रपतिः' इति। तथा ससखिवेशिगृह्युक्तः कारकर्क्षेऽपि चन्द्रः जयसुखधनदाता तत्प्रहर्तान्यथेति।।३।।

भाषा– स्वोच्च, स्वगृह, स्वमूलत्रिकोणगत ग्रह ही कारकत्व में हेतु है, न कि लग्न से ही केन्द्रगत। अतएव अन्यत्र भी स्वोच्चादि स्थित ग्रह से कोई ग्रह दशम में स्वोच्चादि-स्थान-स्थित हो और वह नैसर्गिक मित्र हो तो वह भी कारक होता है।।३।।

विशेष अर्थ– दशम चतुर्थ में विशेषण इसलिए है कि परस्पर दशम चतुर्थ में होने से तात्कालिक मैत्री होती है। और उन दोनों में नैसर्गिक मैत्री भी हो तो अधिमित्र हो जाने से विशेष कारकत्व होता है॥ ३॥

अथ कारकसंज्ञाप्रयोजनमनुष्टुभाह–

शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे।
अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यग्रहेषु च॥४॥

शुभमिति॥ यस्य लग्ननवांशे वर्गोत्तमाख्ये जन्म भवति चन्द्रोऽपि वा वर्गोत्तमांशगतो भवति तस्य शुभं जन्म। यस्मिन्राशौ पुरुषस्य जन्म समयेऽर्कः स्थितस्तस्माद्राशेर्यो द्वितीयो राशिः स वेशिसंज्ञः। यस्य च प्रागुक्ते वेशिस्थाने सद्ग्रहः सौम्यग्रहो ज्ञगुरुसितानामन्यतमो भवति तस्यापि शुभं जन्म। यस्य जन्मलग्नं केन्द्रचतुष्टयादेकमप्यशून्यं केन्द्रं भवति तस्यादि शुभं जन्म। अत्र सौम्यग्रहाधिष्ठिते केन्द्रे विशेषेण शुभं जन्म। यस्मादुक्तमनेनैव-'एकस्मिन्नपि केन्द्रे यदि सौम्यो न ग्रहोऽस्ति यात्रायाम्। जन्मन्यथवा कर्मणि न तच्छुभं प्राहुराचार्याः।' यस्य जन्मनि कारकाख्याः कारकसंज्ञा ग्रहा भवन्ति तस्यापि शुभं जन्म। अत्र यथा गुणाधिक्यं तथा शुभतरमेव जन्म। ४

भाषा– लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो तो जन्म शुभ होता है। अथवा सूर्य से द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है। अथवा लग्न से केन्द्र स्थान शून्य न हो अर्थात् किसी भी केन्द्र में ग्रह हो तो जन्म शुभ होता है। एवं जन्मकुण्डली में कारक ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है। अर्थात् ऐसे लग्न में जन्म लेनेवाला यशस्वी और सुखी होता है।४।

अथ येन योगेन जातो यौवने सुखी भवति तं दशापतिफलपाकं वैतालीयेनाऽऽह–

मध्ये वयसः सुखप्रदाः केन्द्रस्था गुरुजन्मलग्नपाः।
पृष्ठोभयकोदयर्क्षगास्त्वन्तेऽन्तः प्रथमेषु पाकदाः॥५॥

मध्ये वयस इति॥ गुरुर्जीवः जन्मनि यत्र राशौ चन्द्रमाः स्थितः तदधिपातिः जन्मपः यस्मिंल्लग्ने जातः तदधिपो लग्नपः एषामन्यतमो यस्य लग्नकेन्द्रे भवति तस्य वयोमध्ये सुखप्रदो भवति, यौवने सुखी भवतीत्यर्थः। अत्र च यवनेश्वरः- 'जन्माधिपो लग्नपतिश्च येषां चतुष्टये स्याद्बलवान् गुरुर्वा। चतुर्षु होरादिषु संगतः स्याच्चतुर्वयः कालफलप्रदः स्यात्। 'पृष्ठोभयेत्यादि। दशापतिर्दशाप्रवेशकाले पृष्ठोदयराशिगो मेष-वृषकर्कधन्विमकराणामन्यतमस्थितो यदा भवति तदा स्वदशान्ते फल-प्रदो भवति। अथोभयोदये मीने भवति तदान्तर्दशामध्ये फलप्रदो भवति। अथ कोदये शीर्षोदये मिथुनसिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भानामन्यतमे यदा

भवति तदा प्रथमदशाप्रवेशसमये फलप्रदो भवति। एवं शुभस्याप्यशुभस्य पक्तिर्वाच्या। दशाकालं त्रिधा परिकल्प्य यस्मिन्काले तस्य फलपक्तिर्ज्ञायते आद्ये मध्येऽन्त्ये तत्र चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथेति। एतत्त्रिधा विभक्ते दशाकाले ज्ञेयम्। पूर्वोक्तं सर्वं दशाफलं योज्यम्। दशापतिः प्रवेशकाले तिष्ठन्नेव तत्फलं ददातीत्येतत्कथं गम्यते। यवनेश्वरादिभिः सामान्येन चोक्तम्, उच्यते, भगवतो गर्गवचनात्, तथा च भगवान् गार्गिः-

'आद्यन्तमध्यफलदः शिरःपृष्ठोभयोदये।
दशाप्रवेशसमये तिष्ठन् वाच्यो दशापतिः' इति ॥ ५ ॥

भाषा – गुरु जन्मराशि-स्वामी और जन्मलग्न-स्वामी ये केन्द्र में हों तो वयस के बीच (युवावस्था) सुखप्रद होते हैं। जो ग्रह पृष्ठोदय (मेष, वृष कर्क, धनु, पूर्वार्ध, मकर) राशि में हो वह दशा के अन्त में, जो उभयोदय (मीन) में हो वह दशा के मध्य में और जो शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, धनु का उत्तरार्ध, वृश्चिक, कुम्भ) में हो वह दशा के आदि में ही अपने दशाफल को देता है॥ ५॥

अथाष्टकवर्गफलस्य कालं पुष्पिताग्रयाऽऽह—

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ।
रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम्।६।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके प्रकीर्णाध्यायो द्वाविंशः॥२२॥

दिनकरेति॥ चारवशात्पक्तिकाले यस्मिन्राशौ शुभमशुभं वाष्टकवर्गफलं दिनकर आदित्यः प्रयच्छति तस्मिन् राशौ प्रवेशकाले आद्ये त्रिभागे तिष्ठन्नेव फलं प्रयच्छति। एवमेव रुधिरो भौमः। गुरुर्जीवः, भृगुजः शुक्रः, एतौ गुरुभृगुजौ भवनस्य राशेर्मध्ययातौ मध्यत्रिभागगतौ फलप्रदौ भवतः। रविसुतः सौरः, शशी चन्द्रः, एतौ रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ राश्यन्तत्रिभागस्थौ फलप्रदौ भवतः। शशीतनयो बुधः सर्वकालं फलदः सर्वभागस्थः फलप्रदो भवति। सर्वस्मिन्नेव राशौ यावत्तिष्ठति तावत्फलं शुभमशुभं वा यथाप्राप्तं ददातीति॥ ६॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ प्रकीर्णाध्यायो द्वाविंशः। २२।

भाषा– रवि और मंगल, ये दोनों राशि में प्रवेश के समय में ही अष्टवर्गानुसार अपने-अपने फल को देते हैं। गुरु और शुक्र राशि के मध्य में और शनि, चन्द्रमा राशि के अन्त में और बुध सर्वदा अपने फल को देते हैं।

विशेष – एक राशि में ३० अंश होते हैं; अतः १० अंश तक राशि का आदि और उसके बाद २० अंश तक मध्य, उसके बाद ३० अंश तक अन्त समझना चाहिए॥ ६॥

— — — — —

अथाऽनिष्टाध्यायः ॥२३॥

अथातोऽनिष्टाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव दारसुतहीन-जन्मज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवालोकिते
चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथासम्भवः।
पाथोनोदयगे रवौ रविसुतो मीनस्थितो दारहा
पुत्रस्थानगतश्च पुत्रमरणं पुत्रोऽवनेर्यच्छति ॥१॥

लग्नादिति॥ यस्य जन्मनि लग्नात् पुत्रभं पञ्चमस्थानं शुभग्रहेण स्वपतिना च प्राप्तं संयुक्तं भवत्यथवा आलोकितं दृष्टं भवति तस्यापि पुत्रसम्पत् अस्तीति वक्तव्यम्। चन्द्राद्वा पञ्चमस्थानं यस्य शुभग्रहेण स्वपतिना वा युतदृष्टं भवति तस्यापि पुत्रसम्पदस्ति। यस्य लग्नचन्द्र-योरुभयोरपि पञ्चमस्थानं शुभग्रहेण स्वपतिना वा युतदृष्टं न भवति तस्य पुत्रासम्भवः, अपुत्रत्वं वक्तव्यम्। अत्र केचिद् द्वादशप्रकारं पुत्रं वर्णयन्ति- औरसः, क्षेत्रजः, दत्तः, कृत्रिमः, अधमप्रभवः, गूढोत्पन्नः, अपविद्धः, पौनर्भवः, कानीनः, सहोढः, क्रीतकः, दासीप्रभवः इति। तथा च सारा-वल्याम्— 'शुभभवनमथ शुभयुतं शुभदृष्टं वा सुतर्क्षमिह येषाम्॥ तेषां प्रभवः पुंसां भवत्यवश्यं न विपरीतम्॥ एकतमे गुरुवर्गे शुभराशावौरसो भवेत्पुत्रः। लग्नाच्चन्द्रादथवा बलयुक्ताद्वीक्षितो ऽपि वा सौम्यैः॥ संख्या नवांशतुल्या सौम्यांशे तावती सदा दृष्टा। शुभदृष्टे तद्द्विगुणा क्लिष्टा पापांशके तथा दृष्टा॥ सौरर्क्षे सौरगुणो बुधदृष्टे गुरुकुजार्कदृग्धीनः। क्षेत्रजपुत्रं जनयति बौधोऽपि गुणो रविजदृष्टः॥ मान्दं सुतर्क्षमिन्दुं निरीक्षिते यदि शनैश्चरेण युतम्। दत्तकपुत्रोत्पत्तिः क्रीतश्च बुधस्य चैवं स्यात्। सप्तमभागे कौजे सौरयुते पञ्चमे सदा भवने। कृत्रिमपुत्रं विद्याच्छेषग्रहदर्शनान्मुक्ते॥ वर्गे पञ्चमराशौ सौरे सूर्ये च तत्र संयुक्ते। लोहितदृष्टे वाच्यो जातश्च सुतोऽधमप्रभवः॥ चन्द्रे भौमांशगते धीस्थे मन्दावलोकिते भवति। गूढोत्पत्तिः पुत्रः शेषग्रहदर्शनायाते॥ तस्मिन्नेव च भौमे शनिवर्गस्थे निरीक्षिते रविणा। पुरुषस्य भवति पुत्रोऽपविद्ध इति चरकमुनिवचनात्॥ शनिवर्गस्थे चन्द्रे शनियुक्ते पञ्चमे सदा सौरे। शुक्ररविभ्यां दृष्टे पुत्रः पौनर्भवो भवति॥ चूडा यदार्कसत्त्वात्कलादृतस्यैव पञ्चमे भवने।

रविदृष्टेऽप्यथ सहिते कानीनः सम्भवति पुत्रः।। वर्गे रविचन्द्रमसोः सुतगेहे चन्द्रसूर्यसंयुक्ते। शुक्रेण दृष्टमात्रे पुत्रः कथितः सहोढश्च।। पापैर्बलिभिर्युक्ते पापर्क्षे पञ्चमे सदा राशौ। जातो पुत्रः पुरुषः सौम्य-ग्रहदर्शनातीते।। शुक्रनवांशे तस्मिन् शुक्रेण निरीक्षिते त्वपत्यानि। दासीप्रभवानि वदेच्चन्द्रेऽपि केचिदाचार्याः।। सितशशिवर्गे धीस्थे ताभ्यां दृष्टेऽथवापि संयुक्ते। प्रायेण दारिकाः स्युस्तद्राशिगणोऽपि वान्यथा पुत्राः।।' इति। एवं लग्नाच्चन्द्राद्वा कलत्रभं सप्तमं स्थानं यस्य शुभेन स्वपतिना वा युतदृष्टं भवति तस्य कलत्रसम्पदस्तीति वक्तव्यम्। एवं लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्य सप्तमस्थानं शुभग्रहेण स्वपतिना वा युतदृष्टं न भवति तस्य कलत्रसम्पन्नं भवतीति वक्तव्यम्। भार्या तस्य न भवतीत्यर्थः। यत उक्तं ज्ञेयोन्यथासम्भवः। अन्यथा तयोः पुत्रकलत्र-योरसम्भवः अभावो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। अत्र पुत्रकलत्रग्रहणमुपलक्षणा-र्थम्। सर्वेषामपि तन्वादीनां लग्नाच्चन्द्राद्वा स्थितिरन्वेष्या। यतो द्वावेतौ मूर्तिसंज्ञौ। तथा च यवनेश्वरः- 'मूर्तिं च होरां शशिनं च विंद्यात्' इति। अत्र कलत्रस्थानेऽपि केचिद्विशेषं वर्णयन्ति– 'शुक्रेन्दुजीवशशिजैः सकलैस्त्रिभिश्च द्वाभ्यां कलत्रभवने च तथैककेन। एषां गृहेऽपि च गणेऽथ विलोकिते वा सन्ति स्त्रियो भवनवर्गखगस्वभावाः।। एवं क्रूरैर्नाशो लग्नाच्चन्द्राद्वदेच्च बलयोगात्। शिशिरविजयोः कलत्रे भार्या पुंसां पुनर्भूः स्यात्।। भवनाधिपांशतुल्या भवन्ति नार्यो निरीक्षणा-द्वापि। एकैव रविकुजांशे गुरुबुधयोश्चापि जामित्रे।। प्रायेण चन्द्र-सितयोर्बलसंयुक्तेऽथवापि जामित्रे। दृष्टे वा बहुपत्न्यो भवन्ति शुक्रे विशेषेण।। गुरुशुक्रयोः स्ववर्णा रविकुजशशिभानुजैर्भवन्त्यूनाः। शुक्रे वेश्याप्रायाश्चन्द्रेऽपि वदन्ति केतुमालाख्याः।।' पाथोनेत्यादि। पाथोनः कन्या तस्मिन्नुदयगे लग्नस्थे तत्र च रवावर्के स्थिते रविसुतः सौरः मीनस्थो यदि भवति तदा दारहा भवति दारान्कलत्राणि हन्ति घातयति। तस्य पुरुषस्य जीवत एव भार्यामरणं वक्तव्यम्। अस्मिन्नेव योगे पाथोनोदयगे रवौ अवनेः भूमेः पुत्रो भौमः पुत्रस्थाने गतः पञ्चमे स्थाने गतः मकरे स्थितो भवति तदा पुत्रमरणं सुतविपत्तिं यच्छति ददाति। तस्य जीवत एव पुत्रमरणं वक्तव्यम्।।१।।

भाषा– लग्न या चन्द्रमा से ५वाँ भाव शुभग्रह और अपने स्वामी से युत वा दृष्ट हो तो उसको पुत्र-सम्पत्ति (अधिक सुपुत्र) होते हैं। एवं सप्तम

भाव यदि शुभ और स्वामी से युतदृष्ट हो तो उसे स्त्री-सम्पत्ति (अधिक स्त्री वा स्त्री से पूर्ण सुख) समझना। अन्यथा (यदि शुभ स्वामी की योग-दृष्टि नहीं हो और पापग्रहों का योग और दृष्टि हो तो) पुत्र और स्त्री का अभाव समझना चाहिए। यदि कन्या लग्न में सूर्य हो और उससे सप्तम मीन में शनि हो तो उस पुरुष की स्त्री मर जाती है। और यदि कन्या लग्न में सूर्य और पञ्चम भाव में मङ्गल हो तो पुत्र का मरणकारक होता है।१।

अथ जीवत एवं भार्यमिरणयोगत्रयं प्रहर्षिण्याऽऽह–

उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितै-
र्मध्यस्थिते भृगुतनयेऽथवोग्रयोः।
सौम्यग्रहैरसहितसंनिरीक्षिते
जायावधो दहननिपातपाशजः ॥२॥

उग्रग्रहैरिति॥ उग्रग्रहाः आदित्यभौमसौराः तैः सिताच्छुक्राद्यथासम्भवं चतुरस्रसंस्थितैः चतुर्थाष्टमगतैः यस्य जन्म भवति तस्य जायावधो भार्याविपत्तिः दहनेनाग्निना भवति। तस्य जीवत एव भार्याऽग्निनाऽत्मानं व्यापादयति। अथवोग्रयोः पापयोः द्वयोर्मध्ये शुक्रोदेको द्वादशेऽन्ये द्वितीये भृगुतनये शुक्रे स्थिते जातस्य निपातेनोच्छ्रितपतनाञ्जायावधो भवति। तस्य जातस्य जीवत एव पतनान्निपतिताभार्या म्रियत इति। अथवैकस्मिन्राशावेकेन भुक्तं स्थानमतिक्रम्यान्येन भुज्यमानमप्राप्य यदि शुक्रस्यावस्थानं तदापि पापद्वयमध्यस्थो भवति। अथ यस्य जन्मनि सौम्यग्रहयोरन्यतमेन सहितः संयुक्तः शुक्रो न भवति न चापि तन्निरीक्षितो दृष्टस्तस्य पाशजो जायावधो भवति। जीवत एव भार्योद्बन्धनेनात्मानं व्यापादयति। कैश्चिद्योगद्वयमेतद्व्याख्यातम्। उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैरेकः मध्यमस्थिते भृगुतनयेऽथवोग्रयोः द्वितीयः सौम्यग्रहैरसहितः सन्निरीक्षित इति। योगद्वयविशेषीभूतजायावधो दहननिपातपाशजः इति योगद्वयेऽपि विकल्पः। तच्चायुक्तं; यस्माद्भगवान् गार्गिः–

'चतुर्थाष्टमगैः शुक्रात्सौरारार्कैर्हुताशनात्।
तेषां द्वयोस्तु मध्यस्थे तथा शुक्रे निपातजः॥
शुक्रे सद्योगदृग्घीने पाशाद्भार्यावधो भवेत्॥२॥

भाषा– शुक्र से ४, ८ स्थान में पापग्रह (शनि, सूर्य, मंगल) हो अथवा दो पापग्रहों के मध्य में शुक्र हो, शुक्र यदि शुभग्रह से युतदृष्ट

नहीं हो तो तीनों योगों में क्रम से जातककी स्त्री अग्नि में जलकर, ऊँचे स्थान से गिरकर और गले में फाँसी लगाकर मर जाती है॥२॥

अधुना विकलनयनदारजन्मयोगज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः
पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म।
द्यूनस्थयोर्नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम्॥३॥

लग्नादिति॥ शशी चन्द्रः, तिग्मरश्मिः सूर्यः एतयोः लग्नाद्व्ययारिगतयोः एको व्यये द्वादशे स्थाने, द्वितीयोऽरिस्थाने, षष्ठे पत्न्या सहैकनयनस्य एकाक्षस्य जन्म वदन्ति कथयन्ति। जातः काणो भवति न केवलं, यावत् तद्भार्या काणी भवतीत्यर्थः। द्यूनस्थयोरिति। शुक्रसूर्ययोर्द्यूनस्थयोः लग्नाद् द्वयोरपि सप्तमस्थयोः नवमयोः पञ्चमयोर्वा जातं विकलदारमुशन्ति कथयन्ति। भार्या हीनाङ्गी भवतीत्यर्थः। अत्र द्यूनस्थयोः नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा शुक्रार्कयोः कैश्चिद्यथासम्भवमेव योगो व्याख्यातः। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान् गार्गिः—

'पञ्चमे नवमे द्यूने समेतौ सितभास्करौ।
यस्य स्यातां भवेद्भार्या तस्यैकाङ्गविवर्जिता'॥३॥

भाषा— यदि चन्द्रमा और सूर्य लग्न से १२।६ भाव में हो तो स्त्री सहित एक आँखवाले का जन्म होता है। यदि लग्न से सप्तम स्थान अथवा नवम, पञ्चम स्थान में शुक्र और मंगल हो तो जातक की स्त्री अंगहीन होती है॥३॥

अथासुतकलत्रवन्ध्यापतिजन्मज्ञानं मालिन्याऽऽह—

कोणोदये भृगुतनयेऽस्तचक्रसंधौ
वन्ध्यापतिर्यदि न सुतर्क्षमिष्टयुक्तम्।
पापग्रहैर्व्ययमदलग्नराशिसंस्थैः
क्षीणे शशिन्यसुतकलत्रजन्मधीस्थे॥४॥

कोणोदय इति॥ कोणः शनैश्चरस्तस्मिन्नुदये लग्नगते भृगुतनये शुक्रे अस्तचक्रसन्धौ वृश्चिककर्कटमीनानामन्यतमान्त्यनवांशकस्थे न केवलं यावदस्ते लग्नात्सप्तमस्थानस्थे एवमस्तस्थश्चक्रसन्धौ यदि भवति तदा जातो वन्ध्यापतिर्भवति *(१)*। वन्ध्या निष्फलातवा। एतन्मकरवृष-

(१) 'यदि सुतर्क्षं पञ्चमभवनमिष्टयुक्तं (शुभस्वामियुतं) न स्यात्' इति त्रुटिः।

कन्यालग्नेषु सम्भवति। अपुत्र इति वक्तव्ये वन्ध्यापतिग्रहणेनैतज्ज्ञापयति। यथा कौमारेभ्यो दारेभ्यः पुत्रोत्पत्तिर्भवत्यविरुद्धकामेभ्यो भवति। पापग्रहैरिति। पापग्रहैः व्ययस्थानं द्वादशं मदस्थानं सप्तमं लग्नराशिरुदयः एतेषु द्वयोरेकस्मिन् वा पापग्रहैः यथासम्भवं स्थितैः शशिनि चन्द्रे क्षीणे धीस्थे लग्नपञ्चमगे असुतस्यापुत्रस्याकलत्रस्य च स्त्रीवर्जितस्य पुत्रभार्यावर्जितस्य जन्म भवति। जातस्य न भार्या, न पुत्रो भवतीत्यर्थः ।।४।।

भाषा– शनि लग्न में हो, शुक्र राशि सन्धि (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्तिम अंश) में होकर सप्तम भाव में हो और यदि पंचम भाव शुभग्रह और पंचमेश से युक्त नहीं हो तो जातक वन्ध्या स्त्री का पति होता है। यदि पापग्रह १२, ७ और लग्न में हो और क्षीण चन्द्रमा यदि पंचम भाव में हो तो पुत्र-स्त्री से रहित व्यक्ति का जन्म होता है।।४।।

अथ परयुवतिगजन्मज्ञानं हरिण्याऽऽह–

असितकुजयोर्वर्गेऽस्तस्थे सिते तदवेक्षिते
परयुवतिगस्तौ चेत्सेंदुस्त्रिया सह पुंश्चलः।
भृगुजशशिनोरस्तेऽभार्यो नरो विसुतोऽपि वा
परिणततनू नृस्त्र्योर्दृष्टौ शुभैः प्रमदापती ।।५।।

असितेति।। असितकुजयोः सौरभौमयोः अन्यतमस्य वर्गे सिते शुक्रे स्थिते तस्मिंश्चास्तमस्थे लग्नात्सप्तमगते तदवेक्षिते तयोरेव सौरारयोरन्यतरेणावेक्षिते दृष्टे जातः परयुवतिगः परदारगामी भवति। तौ चेदित्यादि। तौ सौरारावस्ते सप्तमे स्थाने एकराशिस्थितौ सेन्दू चन्द्रसहितौ भवतः असितकुजयोः वर्गः तत्स्थः सितः तदवेक्षितः तदा जातः स्त्रिया सह पुंश्चलो भवति। स पुरुषः परदारेषु गच्छति तद्भार्या परपुरुषेषु गच्छति। भृगुजशशिनोरित्यादि। भृगुजः शुक्रः, शशी चन्द्रः तयोः भृगुजशशिनोः एकराशिगतयोः तत्र तत्रावस्थितयोः तावेव सितकुजावस्ते सप्तमे स्थाने भवतः तदा जातो नरः अभार्यो भवति विसुतो वा। वाशब्दोऽत्र चार्थे, न विकल्पने। अभार्यो भवत्यपुत्रश्च। परिणतनू इति। ना च स्त्री च नृस्त्रियौ नरस्त्रीग्रहयोरेकराशिगयोरस्ते सप्तमे तावेवासितकुजौ भवतः। तौ शुभदृष्टौ सौम्यग्रहेण केनचिद्दृश्यते तदा परिणततनू प्रमदापती भवतः परिणते तनू ययोः। एतदुक्तं भवति-तस्य वृद्धत्वे वृद्धा भार्योपतिष्ठत इति।५।

भाषा– शनि मंगल के वर्ग (गृहनवांशादि) में होकर शुक्र यदि सप्तम भाव में हो और शनि मंगल से देखा जाता हो तो जातक पर-स्त्रीगामी होता है। यदि शनि और मंगल दोनों सप्तम भाव में हो, शनि-मंगल के वर्गगत शुक्र से दृष्ट हो तो वह पुरुष पर-स्त्रीगामी और उसकी स्त्री परपुरुषगामिनी होती है। यदि शुक्र और चन्द्रमा एक राशि में हो उससे सप्तम में शनि-मंगल हो तो जातक स्त्री-रहित वा पुत्ररहित होता है। यदि पुरुष स्त्रीसंज्ञक कोई दो ग्रह एक राशि में हो, उससे सप्तम में शनि मंगल हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक स्त्रीसहित वृद्धत्व को प्राप्त करता है।।५।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

वंशच्छेत्ता खमदसुखगैश्चन्द्रदैत्येज्यपापैः
शिल्पी त्र्यंशे शशिसुतयुते केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे।
दास्यां जातो दितिसुतगुरौ रिःफगे सौरभागे
नीचोऽर्केन्द्वोर्मदनगतयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन ।।६।।

वंशच्छेत्तेति।। चन्द्रः शशी, दैत्येज्यः शुक्रः, पापाः क्रूरग्रहाः आदित्यभौमसौराः एतैः खमदसुखगैः खसंज्ञं दशमं, मदस्थानं सप्तमं, सुखसंज्ञं चतुर्थम्, एतेषु स्थानेषु चन्द्रदैत्येज्यपापैः गतैः समवस्थितैः जातो वंशच्छेत्ता भवति। एतदुक्तं भवति-यस्य जन्मनि चन्द्रमा दशमः, शुक्रः सप्तमः, पापाश्चतुर्थस्थाः स वंशच्छेत्ता। तत्कृतो वंश उच्छिद्यते, कुलविच्छित्तिर्भवति दुर्योधनप्रायः। शिल्पीत्र्यंशे इति। शशिसुतेन बुधेन युक्तो यः त्र्यंशो द्रेष्काणः स यस्य राशेः सम्बन्धी तस्मिन्स राशिः लग्नकेन्द्रस्थानेनार्किणा सौरेण दृष्टे जातः शिल्पी भवति। चित्रकर्मादिकर्मणा जीवतीत्यर्थः। अत्र केचिद्बुधयुक्तराशेः शनैश्चरदृष्टिं वर्णयन्ति। यथा राशौ दृष्टे द्रेष्काणोऽपि दृष्टः स्यात्। यद्येष पक्ष आचार्याभिप्रेतः स्यात्तदा बुधे केन्द्रस्थेन सौरेण दृष्टे शिल्पी भवत्येतदेवाचार्योऽवक्ष्यत्। त्र्यंशग्रहणं नाकरिष्यत्। कृतवांश्चातो-ऽवसीयते नैतदाचार्यस्याभिप्रेतमिति। तेन त्र्यंशग्रहणं कृतम्। तस्माद्द्रेष्काणराशेर्दृष्टिविचारः न केवलं यावद्विलग्नांशः स्वनाथे-नेत्यत्रैवोदाहार्यम्। दास्यां जात इत्यादि। दितिसुतगुरौ शुक्रे रिःफगे लग्नादद्वादशस्थे न केवलं यावत्सौरभागे शनैश्चरनवांशकव्ययस्थिते दास्यां जातः दासीपुत्रो जात इति वक्तव्यम्। नीचोऽर्केन्द्वोरिति।

अर्केन्द्वोः रविशशिनोः द्वयोरपि लग्नान्मदनगतयोः सप्तमस्थानस्थयोः सूर्यजेन सौरेण दृष्टयोरवलोकितयोः जातो नीचो भवति। स्वकुलानुचिताधर्मकर्मकृदित्यर्थः।। ६ ।।

भाषा– यदि दशम भाव में चन्द्रमा, सप्तम में शुक्र और चतुर्थ भाव में पापग्रह हो तो जातक वंश को नाश करनेवाला होता है। जिस द्रेष्काण में बुध हो उस पर केन्द्रस्थित शनि की दृष्टि हो तो जातक चित्रकार होता है। यदि शुक्र, शनि के नवांश में होकर द्वादश भाव में हो तो वह दासी का पुत्र होता है। सप्तम भाव में रवि और चन्द्रमा दोनों हो, उन पर शनि की दृष्टि हो तो जातक नीच (निन्द्य कर्म करनेवाला) होता है।।६।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगाञ्छार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

पापालोकितयोः सितावनिजयोरस्तस्थयोर्वाध्यरुक्
चन्द्रे कर्कटवृश्चिकांशकगते पापैर्युते गुह्यरुक्।
श्वित्री रिःफधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्ते रवौ
चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेशिगः।।७।।

पापालोकितयोरिति।। सितः शुक्रः, अवनिजोऽङ्गारकः एतयोरस्तयोः लग्नात्सप्तमगतयोरपि पापालोकितयोः पापग्रहदृष्टयोर्जातस्य वाध्यरुग्भवति स च प्रसिद्धः। यत्र तत्र राशौ चन्द्रे शशिनि कर्कटवृश्चिकांशकयोरन्यतमस्थे तत्र चान्ये पापेन युते जातो गुह्यरुग्भवति। गुह्यरुक्परुषव्याधिः। श्वित्रीत्यादि। अशुभयोः सौरारयोः रिःफधनस्थयोः द्वादशद्वितीयगतयोः चन्द्रे लग्ने उदयस्थे रवावादित्येऽस्ते सप्तमस्थे जातः श्वित्री श्वेतकुष्ठयुक्तो भवति। चन्द्रे खे दशमस्थेऽवनिजे भौमेऽस्तगे सप्तमस्थे अस्मिन्योगे यद्यर्कजः सौरो वेशिस्थानस्थो भवति तदा जातो विकलोऽङ्गहीनो भवति।। ७।।

भाषा– शुक्र और मंगल सप्तम भाव में यदि पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक रोग (प्रत्यक्ष दृश्य रोग से युत) होता है। और चन्द्रमा यदि पापग्रह से युत होकर कर्क या वृश्चिक के नवांश में हो तो जातक गुह्यरोगी होता है अर्थात् जिस रोग का ठीक पता नहीं चलता वह गुह्यरोग कहलाता है। १२, २ भाव में पापग्रह हो, चन्द्रमा लग्न में और रवि सप्तम भाव में हो तो श्वेतकुष्ठी होता है। चन्द्रमा दशम भाव में, मंगल सप्तम में और सूर्य से द्वितीय स्थान में शनि हो तो जातक विकल (अंगहीन) होता है।।७।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह—

अन्तः शशिन्यशुभयोर्मृगगे पतङ्गे
श्वासक्षयप्लीहकविद्रधिगुल्मभाजः ।
शोषी परस्परगृहांशगयो रवीन्द्वोः
क्षेत्रेऽथवा युगपदेकगयोः कृशो वा ॥८॥

अन्तरिति॥ यत्रतत्रस्थे शशिनि चन्द्रे अशुभयोः सौरभौमयोरन्तर्मध्ये स्थिते पतङ्गे सूर्ये च मृगगते मकरस्थे जाताः श्वासक्षयप्लीहकविद्रधिगुल्मभाजो भवन्ति। श्वासः प्रसिद्धः, क्षयः शरीरक्षयः, प्लीहः प्रसिद्धः वामकुक्षिसंस्थो मांसखण्डः, विद्रधिगुल्मौ रोगौ प्रसिद्धौ एषामन्यतमेन रोगेणार्दिता भवन्तीत्यर्थः। केचिदत्रैकवचनं पठन्ति—श्वासक्षयप्लीहकविद्रधिगुल्मभाक्स्यादिति। शोषीति। रवीन्द्वोश्चन्द्रार्कयोः परस्परमन्योन्यगृहांशगयोः आदित्यः कर्कटे, सिंहे चन्द्रोऽथवा यत्र तत्र राशौ सिंहांशके चन्द्रः, कर्कटांशे सूर्यः तदा जातः शोषी भवति। अत्र केचित्परस्परगृहांशगयो रवीन्द्वोरिति। सिंहे सिंहाशके स्थिते चन्द्रे कर्कटे कर्कटांशस्थे सूर्ये च जातः शोषी क्षयी भवतीति वर्णयन्ति। तच्चायुक्तम्। यस्माद्भगवान्गार्गिः— 'परस्परगृहे यातौ यदि वापि तदंशगौ। भवेतामर्कशीतांशू तदा शोषी प्रजायते॥' क्षेत्रेऽथवेति। युगपत्तुल्यकालं तयोरेव परस्परक्षेत्रे यदा द्वावपि भवतः सिंहे यदोभावपि अर्केन्दौ स्थितौ कर्कटे वा भवतः तदा जातः शोषी भवति कृशो वा। कृशो दुर्बलः॥८॥

भाषा— यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो और मकर में सूर्य हो तो जातक श्वास, क्षय-प्लीही, विद्रधि, गुल्म रोग से पीड़ित होता है। यदि रवि कर्क में और चन्द्रमा सिंह में, वा रवि कर्क नवांश में और चन्द्रमा सिंह नवांश में हो, अथवा दोनों कर्क वा सिंह, किसी एक ही में दोनों साथ हों तो जातक शोषरोगी या दुर्बल देह होता है॥८॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह—

चन्द्रेऽश्विमध्यझषकर्किमृगाजभागे
कुष्ठी समन्दरुधिरे तदवेक्षिते वा ।
यातैस्त्रिकोणमलिकर्किवृषैर्मृगे च
कुष्ठी च पापसहितैरवलोकितैर्वा ॥९॥

चन्द्र इति।। अश्विमध्ये धन्विपञ्चमनवांशके चन्द्रे स्थिते तत्र च समन्दरुधिरे मन्देन सौरेण रुधिरेणाङ्गारकेण युक्ते यथासम्भवमन्यतमेन तदवेक्षिते वा ताभ्यामन्यतमेन दृष्टे जातः कुष्ठी भवति। अथवा यत्र तत्र राशौ झषकर्किमृगाजभागे झषो मीनः, कर्किः कुलीरः, मृगो मकरः, अजो मेषः, एषामन्यतमे नवांशकस्थे चन्द्रे तत्र मन्दरुधिरयोरन्यतमेन युते दृष्टे वा जातः कुष्ठी भवति। अत्र चन्द्रो यदा शुभग्रहदृष्टो भवति तदा कण्डूविकारी भवति, न कुष्ठी। यस्माद्यवनेश्वरः- 'मीनांशके मेषमृगांशके वा चन्द्रस्थितोऽत्रैव हि पापदृष्टः। किलासकुष्ठादिविनष्टदेहमिष्टेक्षितः कण्डुविकारिणं च।' यातैस्त्रिकोणमिति। अलिकर्किवृषैः वृश्चिककुलीरवृषभैः मृगे च मकरे एतैश्च त्रिकोणयातैः प्राप्तैः तथाविधो लग्नो भवति। यस्यैषामन्यतमे पञ्चमे वा स्थाने भवति स च पापानामन्यतमेन युक्तो दृष्टो वा भवति तदा जातः कुष्ठी भवति।। ९।।

भाषा– यदि चन्द्रमा धनुराशि के मध्य (पञ्चम नवांश) में हो अथवा किसी भी राशि में मीन, कर्क, मकर, मेष के नवांश में हो और शनि, मंगल से युत या दृष्ट हो तो जातक कुष्ठी होता है। अथवा वृश्चिक, कर्क, वृष या मकर पापग्रह से युत या दृष्ट होकर लग्न से त्रिकोण (५।९) में हो तो भी जातक कुष्ठी होता है।। ९।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह–

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा।
बलवद्ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां जनयन्त्यनेत्रताम् ।।१०।।

निधनेति।। रविरादित्यः, चन्द्रः शशी आरः अङ्गारकः, यमः सौरः एते रविचन्द्रारयमाः। यथा तथा येन केन प्रकारेण निधनारिधनव्ययस्थिताः अष्टमषष्ठद्वितीयद्वादशगास्तदा जातानां मनुजानां मनुष्याणामनेत्रतामान्ध्यं जनयन्त्युत्पादयन्ति। यथातथेति क्रमनिवारणार्थः। तां चानेत्रतां बलवद् ग्रहदोषकारणैः तेषां चतुर्णां ग्रहाणां मध्याद्यो बलवांस्तस्य यो वातपित्तश्लेष्मणां मध्याद्दोष उक्तः तेन दोषकारणेन तत्प्रकोपेन तस्याक्षिविनाशो भवति।। १०।।

भाषा– यदि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और शनि-ये चारों किसी रीति से ८, ६, २, १२ इन स्थानों में हों तो इन चारों में जो बली ग्रह हो उसके दोष (कफ, वात या पित्त-प्रकोप) से जातक का नेत्र नष्ट होता है। १०।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाऽऽह—

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ।।११।।

नवेति।। अशुभाः पापाः नवमायतृतीयधीयुताः नवमे एकादशे तृतीये धीस्थाने पञ्चमे एतेषु यथासम्भवं युताः समवस्थिताः ते च सौम्यैः शुभग्रहैरनिरीक्षिता न दृष्टास्तदा बलवद्ग्रहदोषकारणेनैव पुरुषस्य नियमान्निश्चयाच्छ्रवणोपघातदाः श्रोत्रयोः कर्णयोः उपघातदा बाधिर्यकराः। अत्राशुभग्रहणेनार्कचन्द्रारसौराः प्रागुक्ता एव ज्ञेयाः। रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे इति। त एवार्कचन्द्रारसौराः लग्नात्सप्तमे स्थाने स्थिताः सौम्यैरदृष्टा रदानां दन्तानां वैकृत्यकराः स्युः।।११।।

भाषा- यदि अशुभग्रह ९।११।३ या ५ भाव में हो, उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो वे निश्चित रूप से कर्णरोग-कारक होते हैं। यदि पापग्रह सप्तम भाव में शुभग्रह से अदृष्ट हो तो जातक के दाँतों में विकार उत्पन्न करनेवाले होते हैं।।११।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाऽऽह—

उदयत्युडुपेऽसुरास्यगे सपिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः ।
सोपप्लवमण्डले स्वावुदयस्थे नयनापवर्जितः ।।१२।।

उदयतीति।। उडुपे चन्द्रे उदयति लग्नगते तस्मिंश्चासुरास्यगे राहुग्रस्ते तस्माच्च लग्नादशुभयोः सौरभौमयोः त्रिकोणयोः नवम-पञ्चमस्थयोः जातः सपिशाचो भवति। पिशाचाधिष्ठितो भवतीत्यर्थः। एवं रवावादित्ये मण्डले सोपप्लवे असुरास्यगे अर्के राहुग्रस्ते तस्मिं-श्चोदयस्थे लग्नगे लग्नादशुभयोः सौरभौमयोः त्रिकोणगतयोः जातो नयनापवर्जितो भवति। अन्ध इत्यर्थः।। १२।।

भाषा- राहु से ग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो तो और उससे नवम पञ्चम में पापग्रह (शनि कुज) हो तो जातक पिशाच से युक्त होता है। यदि राहुग्रस्त रवि (सूर्य) लग्न में हो और उससे त्रिकोण में शनि और मंगल हो तो जातक अन्धा होता है।१२।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

संस्पृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ
सोन्मादोऽवनिजे स्थितेऽस्तभवने जीवे विलग्नाश्रिते ।
तद्वत्सूर्यसुतोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे
जातो वा ससहस्त्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगौ ।।१३।।

संस्पृष्ट इति।। यस्य जन्मनि मन्दगः सौरो द्यूने सप्तमे युतः स्थितो भवति विलग्ने च गुरुः बृहस्पतिः स पवनेन वायुना संस्पृष्टो भवति। वातरोगी भवतीत्यर्थः। अवनि भूः तस्याः जातोऽवनिजः तस्मिन्नस्त-भवने सप्तमे स्थाने स्थिते विलग्नाश्रिते प्राग्लग्नगे च जीवे गुरौ जातः सोन्मादो भवति, विचित्त इति। तद्वदिति। सूर्यसुतः सौरः तस्मिन्नुदये लग्ने स्थिते अवनिसुते भौमे धर्मात्मजद्यूनगे नवपञ्चमसप्तम-स्थानानामन्यतमस्थानस्थे जातस्तद्वत्सोन्माद एव भवति। केचित्त-द्वच्चाहुः। यमोदय इति पठन्ति। अथवा क्षीणे शीतगौ चन्द्रे सहस्र-रश्मितनयेन शनैश्चरेण संयुक्ते व्ययं द्वादशस्थानं याते प्राप्ते वाग्र-हणात्सोन्माद एव भवति।। १३।।

भाषा—यदि सप्तम में शनि और लग्न में गुरु हो तो जातक वातव्याधि से युक्त होता है। यदि मंगल सप्तम भाव में और लग्न में गुरु हो तो वह उन्मादी (पागल) होता है। यदि शनि लग्न में और मंगल ९।५।७ भाव में हो तो भी जातक उन्मादी होता है। यदि क्षीण चन्द्रमा शनि के साथ होकर व्ययभाव में हो तो भी जातक पागल होता है।। १३।।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह—

राश्यंशपोष्णकरशीतकरामरेज्यै-
र्नीचाधिपांशकगतैररिभागगैर्वा ।
एभ्योऽल्पमध्यबहुभिःक्रमशः प्रसूता
ज्ञेयाः स्युरभ्युपगमक्रयगर्भदासाः ।।१४।।

राश्यंशपेति।। यस्मिन्नवांशके चन्द्रो वर्त्तते स राश्यंशकः तस्य पः पतिः राश्यंशपः, उष्णकरः सूर्यः, शीतकरश्चन्द्रः, अमरेज्यो जीवः एतैः राश्यंशपोष्णकरशीतकरामरेज्यैः आत्मीयादुच्चात्सप्तमराश्यधिपो नीचाधिपस्तदीये नीचाधिपनिवांशके व्यवस्थितैः अरिभागगैः शत्रुनवांश-गतैर्वा जाता दासा भवन्ति। एभ्योऽल्पमध्यबहुभिरिति। एभ्यो ग्रहेभ्यः एकोऽल्पः, द्वौ मध्यमा यत्र चत्वारो वा बहवः एभ्यः प्रसूताः क्रमशो दासा भवन्ति। यस्यैको नीचाधिपांशके शत्रुनवांशके वा भवति सोऽभ्युपगमेनात्मना जीवितार्थी दासत्वमुपपद्यते। यस्य द्वौ सोऽन्येन क्रीतो विक्रीतः येन क्रीतस्तस्य दासो भवति। यस्य त्रयश्चत्वारो वा स गर्भदासो दासस्य पुत्रो दास्या वा पुत्रो लोके गृहदास इति प्रसिद्धः।१४।

भाषा– जन्मराशि के नवांशपति सूर्य, चन्द्रमा और गुरु इनमें कोई एक, यदि नीच या शत्रु के नवांश में हो तो जातक अभ्युपगमदास (स्वयं किसी के यहाँ जाकर नौकर) होता है। यदि २ ग्रह नीच या शत्रु राशि के नवांश में हो तो क्रयदास (दूसरे के द्वारा जीवन-पर्यन्त के लिए खरीदा हुआ नौकर) होता है। यदि ३ या ४ चारों ग्रह नीच या शत्रुराशि के नवांश में हों तो गर्भदास (गर्भ से ही दास अर्थात् दास का पुत्र, जिसे गर्भदास कहते हैं) होता है॥१४॥

अथान्येषामनिष्टयोगानां ज्ञानार्थं हरिण्याऽऽह–

विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाजहयोदये
खलतिरशुभक्षेत्रे लग्ने हये वृषभेऽपि वा।
नवमसुतगे पापैर्दृष्टे रवावदृढेक्षणो
दिनकरसुते नैकव्याधिः कुजे विकलः पुमान्॥१५॥

विकृतेति॥ वृषः प्रसिद्धः, अजो मेषः, हयो धन्वी एषामुदयेऽन्यतमे लग्ने पापैर्दृष्टेऽवलोकिते विकृतदशनो विरूपदन्तो भवति। अशुभक्षेत्राणि पापग्रहराशयः मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भाः एषामन्यतमे लग्ने हये-धन्विनि वा वृषभेऽपि वा लग्ने पापदृष्टे जातः खलतिः खल्वाटो भवति। रवावादित्ये नवमसुतगे लग्नान्नवमपञ्चमयोरन्यतरस्थानस्थे पापग्रह-दृष्टे जातः अदृढेक्षणो भवत्यसारनयनः। एवं दिनकरसुते सौरे लग्नान्नव-मपञ्चमस्थे पापैः दृष्टे नैकव्याधिः बहुरोगो भवति। एवमेव कुजे भौमे लग्नान्नवमपञ्चमस्थे पापदृष्टे पुमान् पुरुषो जातो विकलोऽङ्गहीनो भवति।१५।

भाषा– वृष, मेष या धनु लग्न यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक विरूप दाँत वाला होता है। पाप राशि (मेष, वृश्चिक, सिंह, मकर, कुम्भ) धनु या वृष लग्न में जातक खल्वाट (गञ्जा सिरवाला) होता है। रवि, नवम, पञ्चम भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो अल्प दृष्टिवाला, यदि नवम पञ्चम में मंगल पापग्रह से दृष्ट हो तो अनेक रोग से युक्त, यदि पापदृष्ट शनि नवम, पञ्चम भाव में हो तो जातक अंगहीन होता है॥१५॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्पुष्पिताग्रयाऽऽह–

व्ययसुतधनधर्मगैरसौम्यैर्भवन-
समाननिबन्धनं विकल्प्यम्।
भुजगनिगडपाशभृद्दृकाणैर्बल-
वदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत्॥१६॥

व्ययसुतेति।। असौम्यैः पापैः व्ययसुतधनधर्मगैः द्वादशपञ्चमद्वितीयनवमस्थानानां यथासम्भवमन्यतमस्थानस्थैः जातस्य निबन्धनं भवति। स बध्यत इत्यर्थः। तच्च निबन्धनं भवनसमानं राशिसदृशं स प्राणी येन प्रकारेण स राशिः बध्यते तेन प्रकारेणेत्यर्थः। तद्यथा। मेषवृषधनुर्धराणामन्यतमे लग्ने तस्य रज्ज्वादिना बन्धनं भवति। मिथुनकन्यातुलाकुम्भानामन्यतमे लग्ने निगडैः बध्यते। कर्कटमकरमीनानामन्यतमे लग्ने बन्धनं विना दुर्गे स्थतो रक्ष्यते। वृश्चिकलग्ने भूगृहे बध्यते। भुजगनिगडपाशभृदिति। यस्मिन्द्रेष्काणे पुरुषो जातः स चेद्भुजगपाशभृद्भवति सर्पद्रेष्काणो निगडपाशभृद्वा द्रेष्काणः स च प्रथमपञ्चमनवमानामित्यनया गणनया यस्य राशेः सम्बन्धी भवति स चेद्राशिः बलवता असौम्येन पापग्रहेणान्यतमेन दृश्यते तथा जातस्य तद्भवनसमानं निबन्धनं तद्वत्तेनैव प्रकारेण विकल्प्यम्। भुजगद्रेष्काणः कर्कटद्वितीयः कर्कटतृतीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च। निगडद्रेष्काणो मकराद्यः। भुजगनिगडपाशभृदिति कैश्चिद् व्याख्यातम्। तत्र पाशभृदनेन द्रेष्काणो न पठितः। तस्माद्भुजगपाशभृन्निगडपाशभृदिति व्याख्येयम्। भुजगपाशभृन्निगडपाशभृद्भुजङ्गा दिभागैर्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत्। इति स्पृष्टो भवेदित्यर्थः। अस्मिन् श्लोके पठित इति।। १६।।

भाषा– लग्न से १२, ५, २, ९ में पापग्रह हो तो इन भावों से जिसमें बलवान् पापग्रह हो उस राशि के समान ही उस जातक का बन्धन समझना चहिए। यदि लग्न में सर्पयुक्त, निगड़युक्त द्रेष्काण हो, उस पर बलवान् पापग्रह की दृष्टि हो तो उसी प्रकार (जिस राशि का द्रेष्काण हो वह जिस प्रकार के बन्धन से बाँधा जाता है उसी तरह) उस जातक का बन्धन होता है।।१६।।

विशेष अर्थ– भावार्थ यह है कि ऊपर कथित दोनों योगों में जातक को बन्धन होता है। राशि समान बन्धन का अभिप्राय यह है कि-चतुष्पद राशि भाव में, वा लग्नगत द्रेष्काण राशि यदि चतुष्पद हो तो जातक को रस्सी से बन्धन होता है। द्विपदराशि हो तो बेड़ी से बन्धन होता है। जलचर राशि हो तो बिना निबन्ध का बंद रक्खा जाता है। यदि वृश्चिक राशि हो तो कंदरा आदि में बंद रक्खा जाता है।

सर्पद्रेष्काण– कर्क में द्वितीय और तृतीय। वृश्चिक में प्रथम, द्वितीय। मीन में तृतीय। निगड़द्रेष्काण–मकर का प्रथम। द्रेष्काणाध्याय देखिये।१६।

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् हरिण्याऽऽह—

परुषवचनोऽपस्मारार्तः क्षयी च निशापतौ
स-रवितनये वक्रालोकं गते परिवेषगे।
रवियमकुजैः सौम्यादृष्टैर्नभस्थलमाश्रितै-
र्भृतकमनुजः पूर्वोद्दिष्टैर्वराधममध्यमाः ॥१७॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते
बृहज्जातकेऽनिष्टाध्यायस्त्रयोविंशः ॥२३॥

परुषवचन इति ॥ निशापतौ चन्द्रेसरवितनये सौरसहिते वक्रालोकगते भौमेन दृष्टे परिवेषगे तत्कालं परिवेषयुक्ते जातः पुरुषः पुरुषवचनः सदाऽप्रियाभिधायी, अपस्मारार्तः क्षयी च भवति। अत्र चन्द्रमसस्त्रयः प्रकारा व्याख्याताः, त्रयश्च दोषाः। यस्यैकप्रकारश्चन्द्रमा भवति तस्यैको दोषो भवति। यस्य प्रकारद्वयं तेन चन्द्रे सौरेण युक्ते परुषवचनः सदैवाप्रियाभिधायी भवति। सरवितनये भौमदृष्टे अपस्मारार्तोऽपस्मारः मृत्युः। सरवितनये भौमदृष्टे तत्कालं परिवेषगे क्षयी भवति। रवियमकुजैरिति। रविरादित्यः, यमः सौरः कुजोऽङ्गारकः एतैः नभस्थलमाश्रितैः दशमस्थानस्थैः, सौम्यादृष्टैः शुभग्रहाणां मध्यान्न केनचिद्दृष्टैरवलोकितैः जातो मनुजो मनुष्यो भृतको भवति, तैः पूर्वोद्दिष्टैर्ग्रहैः रवियमकुजैः वराधममध्यमो भृतको भवति। तेषां ग्रहाणामेवंविधेनैकेन भृतकोऽपि वरः श्रेष्ठो भवति। अजुगुप्सितां भृतिं करोति। द्वाभ्यां मध्यमो भवति, मध्यमां भृतिं करोति। त्रिभिरधमो जुगुप्सितां भृतिं करोति ॥१७॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
अनिष्टाध्यायस्त्रयोविंशः ॥२३॥

भाषा— यदि चन्द्रमा शनि से युक्त, मंगल से दृष्ट और परिवेष (मंगल) युत हो तो जातक कठोरभाषी, अपस्मार (मृगी रोगी) से पीड़ित, और क्षयरोगी होता है। तथा रवि, शनि और मंगल, इनमें एक दशम भाव में हो तो उत्तम श्रेणी की नौकरी करनेवाला, यदि २ ग्रह दशम भाव में हो तो मध्यम श्रेणी की नौकरी करनेवाला, यदि तीनों ग्रह दशम भाव में हो तो अधम श्रेणी की नौकरी करनेवाला होता है ॥१७॥

विशेष अर्थ— चन्द्रमा शनि से युक्त, मंगल से दृष्ट और परिवेश सहित, इनमें एकयोग हो तो कटुभाषी, दो योग हो तो मृगी रोगवाला, तीनों योग हो तो क्षयी होता है ॥१७॥

— — — — —

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ॥२४॥

अथातः स्त्रीजातकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव पुरुषजन्मोक्त-फलातिदेशं तदधिकं च वसन्ततिलकेनाऽऽह—

यद्यत्फलं नरभवेऽक्षममङ्गनानां
तत्तद्वेदेत्पतिषु वा सकलं विधेयम् ।
तासां तु भर्तृमरणं निधने वपुस्तु
लग्नेन्दुगं सुभगतास्तमयेपतिश्च ॥१॥

यद्यत्फलमिति॥ नरभवे पुञ्जन्मनि यद्यत्फलमङ्गनानां स्त्रीणा-मक्षममसम्भाव्यं तत्पतिषुतद्भर्तृषु वदेद् ब्रूयात्। पुञ्जन्मोक्तं फलं यद्वृत्तातामग्रदृगित्यादि। तत्र यत्स्त्रीणां क्षमं योग्यं तत्तासामेव वक्तव्यं, यच्चाक्षमं न सम्भवति राज्यादि तत्पतिषु तज्जातककाले दृष्ट्वा वक्तव्यम्। यच्च सम्भवति सुनफादियोगानां फलं तदखिलं सकलमुभ-योरेव वक्तव्यम्। तानि च त्रिविधानि फलानि। कानिचित्स्त्रीणां वक्तव्यानि, कानिचित्पतिषु, कानिचिद्द्वयोरपि। वृत्तातामग्रदृगित्या-कारप्रदर्शनानि स्त्रीणामेव वक्तव्यानि, राजयोगदिफलानि तत्पतिषु। तत्पतीनां सुनफादियोगफलानि सुखदुःखप्रदर्शकानि उभयोरपि। अथवा सकलं समग्रं स्त्रीजातकफलं तत्पतिषु विधेयं वक्तव्यम्। तासामित्यादि। तासां स्त्रीणां निधनेऽष्टमे स्थाने भर्तृमरणं यथावक्तव्यं तथोपरिष्टाद्वक्ष्यति। वपुस्तु शरीरं लग्नेन्दुगं लग्नचन्द्रयोर्गतं तच्चापि तासां यथा वक्तव्यं तथा वक्ष्यति। तांसां सुभगता सौभाग्यं यादृग-भाविपतिर्वा तादृगस्तमये संप्तमस्थानाद्वक्तव्यम्। तदपि वक्ष्यति॥१

भाषा- पूर्व में पुरुष जातक के जो फल कहे गये हैं, उनमें जो फल स्त्री जातक में असम्भव हो वे फल स्त्रियों के स्वामी में समझना। अर्थात् जो फल स्त्री में भी सम्भव हो वे फल स्त्री के भी पुरुष के समान ही कहना। अपना पूर्वोक्त सब फल स्त्री के लग्नानुसार उसके स्वामी में कहना चाहिए। स्त्री के स्वामी का मरण अष्टम भाव से और शरीर सम्बन्धी फल लग्न और चन्द्रमा पर से और सौभाग्य सप्तम से कहना चाहिए॥१॥

यदुक्तं वपुस्तु लग्नेंदुगं तत्प्रदर्शनं वसन्ततिलकेनाऽऽह—

युग्मेषु लग्नशशिनोः प्रकृतिस्थिता
स्त्री सच्छीलभूषणयुता शुभदृष्टयोश्च ।
ओजःस्थयोश्च मनुजाकृतिशीलयुक्ता
पापा च पापयुतवीक्षितयोर्गुणोना ॥२॥

युग्मेष्विति ।। लग्नशशिनोरुदयचन्द्रयोरपि युग्मेषु समराशिषु स्थितयोः स्त्री योषित्प्रकृतिस्थिता स्त्रीस्वभावा भवति। प्रकृतौ स्वभावे तिष्ठति। तयोरेव लग्नेन्द्वोः शुभदृष्टयोः सौम्यग्रहावलोकितयोः सच्छीलभूषणयुता भवति। सच्छीलं शोभनचरित्रं तदेव भूषणमलङ्करणं तेन युता अथवा शोभनेन शीलेन भूषणैश्च युता। ओजःस्थयोरिति। तयोरेव लग्नेन्द्वोरोजःस्थयोर्विषमराशिगतयोः मनुजाकृतिशीलयुक्ता पुरुषाकारा पुरुषशीला च भवति। तयोः लग्नेन्द्वोः पापयुतवीक्षितयोः पापसंयुतयोः अवलोकितयोर्वा पापा पापशीला गुणोना सर्वगुणरहिता च भवति। अर्थादिवैकस्मिन्समराशिगे अन्यस्मिन् विषमराशिगे पुंस्त्रियोर्मध्यस्वरूपाकारा भवति। एवमेकस्मिन् शुभग्रहयुते अन्यस्मिन्पापयुते सच्छीला भवति, असच्छीला च मिश्रेत्यर्थः। एवमेकस्मिन् शुभग्रहदृष्टे अन्यस्मिन्पापदृष्टेऽपि। एवमुभयोरपि सौम्यासौम्ययुतदृष्टयोश्च। अनया दृशा शेषकल्पना कार्या।।२।।

भाषा – लग्न और चन्द्रमा दोनों यदि सम राशि में हो तो स्त्री प्रकृति (कोमल कान्ति-लज्जा-प्रिय वाक्य आदि) से युक्त होती है। यदि लग्न और चन्द्रमा पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उत्तम स्वभाव और वस्त्र-विभूषण से सहिता होती है। यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों भी विषम राशि हो तो वह कन्या पुरुषसदृश आकृति और स्वभाववाली होती है। उन (लग्न चन्द्रमा) पर यदि पापग्रह की दृष्टि या योग हो तो पाप करनेवाली तथा गुणहीना होती है।।२।।

विशेष अर्थ– इससे यह सिद्ध होता है कि लग्न और चन्द्रमा, इन दोनों में एक विषम एक सम में हो और पाप एवं शुभ दोनों से दृष्टयुत हो तो मिश्र स्वभाववाली होती है।।२।।

अथ भौमर्क्षे लग्नगे वा भौमादित्रिंशांशकजातायाः स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता।
भूम्यात्मजर्क्षे क्रमशोंऽशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानाम्।३।

कन्यैवेति।। भूम्यात्मजर्क्षे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकयोरन्यतरे लग्नगते चन्द्रगते वा तत्र च वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानां कुजयमजीवज्ञसितानामंशकेषु त्रिंशद्भागेषु क्रमेण फलनिर्देशो वक्तव्यः। तद्यथाभौमलग्ने भौमत्रिंशांशके लग्नगते चन्द्रगते वा जाता कन्यैव दुष्टा भवत्यनूढापि सा पुरुषसम्प्रयोगे च व्रजति गच्छतीत्यर्थः। सौरत्रिंशांशकजाता कन्यैव दास्यं दासभावं व्रजति जनयति। इहास्मिन् भौमक्षेत्रे जीवत्रिंशांशके साध्वी सच्छीला भवति। बुधत्रिंशांशके जाता समाया

मायायुक्ता भवति। शुक्रत्रिंशांशके जाता कुचरित्रयुक्ता भवति। दुर्वृत्ता इति। एवं त्रिंशांशकफलं सर्वदा गुणतया परीक्षितव्यम्।। ३।।

भाषा– मेष या वृश्चिक में लग्न या चन्द्रमा हो और मंगल का त्रिशांश हो तो जन्म लेनेवाली कन्या कुमारी अवस्था में ही दोषयुक्ता अन्य पुरुष से संयोग करनेवाली होती है। यदि शनि का त्रिशांश हो तो दासी होती है। गुरु का त्रिशांश हो तो पतिव्रता और सुशीला होती है। बुध का त्रिशांश हो तो माया जाननेवाली होती है और शुक्र का त्रिशांश हो तो दुश्चरित्रा होती है।। ३।।

अथ बुधशुक्रक्षेत्रयोरन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमादि-
त्रिंशांशकजातायाः स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

दुष्टा पुनर्भूः सगुणा कलाज्ञा
ख्याता गुणैश्चासुरपूजितर्क्षे ।
स्यात्कापटी क्लीबसमा सती च
बोधे गुणाढ्या प्रविकीर्णकामा ।।४।।

दुष्टेति।। अंशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानामिति सर्वत्रानुवर्तते असुरपूजितः शुक्रस्तस्यर्क्षे वृषतुलयोरन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौम-त्रिंशांशके जाता दुष्टा दुष्टशीला भवति, शनित्रिंशांशके जाता पुनर्भूः पाणिग्रहणादनन्तरमन्यस्य भार्या भवति। जीवत्रिंशांशके जाता सगुणा गुणवती भवति। बुधत्रिंशांशके जाता कलाज्ञा भवति। गीतवाद्यनृत्यचित्रादिषु कुशला। शुक्रत्रिंशांशके जाता गुणैः शीलादिभिः ख्याता भवति। स्यात्कापटीत्यादि। बौधे मिथुनकन्ययोरन्यतरे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमत्रिंशांशके जाता कापटी कपटासक्ता भवति। सौरत्रिंशांशके जाता क्लीवसमा नपुंसकतुल्या भवति। बृहस्पतित्रिंशांशकजाता साध्वी भवति। बुधत्रिंशांशकजाता गुणाढ्या गुणबहुला भवति। शुक्रत्रिंशांशकजाता प्रविकीर्णकामा विक्षिप्तमन्मथा सर्वपुरुषगामिनी भवतीति।।४।।

भाषा– यदि लग्न चन्द्रगत वृष या तुला राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो जन्म लेनेवाली दुष्ट स्वभाववाली, शनि का त्रिंशांश हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़कर दूसरा पति करनेवाली), गुरु का त्रिंशांश हो तो गुणों से युक्ता, बुध का त्रिंशांश हो तो कलाओं को जाननेवाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो गुणों से विख्यात होती है। मिथुन या कन्या राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो कपटयुक्ता, शनि का त्रिंशांश हो तो हिजड़िन (नपुंसक तुल्य), गुरु का त्रिंशांश हो तो सती, बुध का त्रिंशांश हो तो गुणों से युक्ता और शुक्र का त्रिंशांश हो तो कामातुरा होती है।४

अथ चन्द्रार्कजीवसौरक्षेत्राणामन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमादित्रिंशांशकजातायाः स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह—

स्वच्छन्दा पतिघातिनी बहुगुणा शिल्पिन्यसाध्वीन्दुभे
त्राचारा कुलटार्कभे नृपवधू पुञ्चेष्टिता गम्यगा।
जैवे नैकगुणाल्परत्यतिगुणा विज्ञानयुक्ता सती
दासी नीचरतार्किभे पतिरता दुष्टाऽप्रजा स्वांशकैः।५।

स्वच्छन्देति। इन्दुभे कर्कटे लग्ने तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशकजाता स्वच्छन्दा स्वैरिणी यथेष्टव्यवहारिणी भवति। सौरत्रिंशांशकजाता पतिघातिनी भवति। जीवत्रिंशांशकजाता बहुगुणा भवति। बुधत्रिंशांशकजाता शिल्पिनी शिल्पकर्मनिरता भवति। शुक्रत्रिंशांशकजाता असाध्वी दुःशीला भवति। त्राचारेति। अर्कभे सिंह लग्ने तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशके जाता त्राचारा पुरुषाचारा भवति। नुरिवाचारो यस्याः। केचिद्वाचाटा इति पठन्ति, बहुभाषिणी। सौरत्रिंशांशके जाता कुलटा असाध्वी भवति। जीवत्रिंशांशके जाता नृपवधूः राजभार्या भवति। बुधत्रिंशांशके जाता पुंचेष्टिता पुरुषस्वभावा भवति। शुक्रत्रिंशांशके जाता अगम्यगाऽगम्यपुरुषगामिनी भवति। जीवक्षेत्रे धन्विमीनयोरन्यतरे लग्नगते तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशकजाता नैकगुणा बहुगुणा भवति। सौरत्रिंशांशकजाता अल्परतिः शीघ्रवेगा भवति। बृहस्पतित्रिंशांशकजाता अतिगुणा बहुगुणवती भवति। बुधत्रिंशांशके जाता विज्ञानयुक्ता आश्चर्ययुक्ता भवति। शुक्रत्रिंशांशके जाता असती असाध्वी भवति। दासीति। आर्किभे सौरक्षेत्रे मकरकुम्भयोरन्यतरे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमत्रिंशांशकजाता दासी भवति। सौरत्रिंशांशकजाता नीचरता नीचपुरुषासक्ता भवति। जीवत्रिंशांशकजाता पतिरता भर्तृभक्ता भवति। बुधत्रिंशांशके जाता दुष्टा भवति। शुक्रत्रिंशांशके जाताऽप्रजा वन्ध्या भवति ॥५॥

भाषा— कर्क राशिगत लग्न या चन्द्र में यदि मंगल का त्रिंशांश हो तो स्वच्छन्दा (स्वतन्त्र स्वभाववाली), शनि का त्रिंशांश हो तो पति को मारनेवाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो बहुत गुणों से युक्ता, बुध का त्रिंशांश हो तो शिल्पकर्म में निपुण, शुक्र का त्रिंशांश हो तो दुराचारिणी होती है। सिंह राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो पुरुष के स्वभाववाली, शनि का त्रिंशांश हो तो कुलटा, गुरु का त्रिंशांश हो तो राजपत्नी, बुध का त्रिंशांश हो तो पुरुष के समान आचरणवाली, शुक्र का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुष से सङ्ग करनेवाली होती है। गुरु राशि (धनु मीन) में मंगल

का त्रिंशांश हो तो अनेक गुणयुक्ता, शनि का त्रिशांश हो तो थोड़ी रति (पति-संभोग) करनेवाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो अत्यधिक गुणवाली, बुध का त्रिशांश हो तो विज्ञान जाननेवाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो असती (व्यभिचारिणी) होती है। शनि राशि (मकर-कुम्भ) में मंगल का त्रिंशांश हो तो दासी, शनि का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुषों के साथ रहनेवाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो पतिव्रता, बुध का त्रिंशांश हो तो दुष्ट स्वभाववाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो वन्ध्या होती है।।५।।

एतदंशकैरिति तदर्थमनुष्टुभाह—

शशिलग्नसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम्।
बलाबलविकल्पेन तयोरुक्तं विचिन्तयेत्।।६।।

शशीति।। राशिं राशिमधिकृत्य यदेतत्त्रिशांशके उक्तं फलं तच्छशिलग्नसमायुक्तै श्चन्द्रलग्नयुक्तैस्त्रिंशांशकैः यस्मिन्राशौ यद्-ग्रहत्रिंशांशके चन्द्रमा भवति तद्वत् फलं वाच्यम्। यद्वा लग्नं भवति तस्य यस्त्रिंशांशः तद्वशाद्वा। कथमुच्यते। बलाबलविकल्पेनेत्यादि। चन्द्रलग्नयोः यो बलवान्स यत्र राशौ यत्र त्रिंशांशके भवति व्यवस्थितः तस्य यदुक्तंफलं तदेवं विचिन्तयेत्। एतदुक्तंभवति अन्यस्मिन्राशा-वन्यस्मिन् त्रिंशांशके चन्द्रमा भवति अन्यस्मिन्राशौ अन्यस्मिन् त्रिंशां-शके लग्नं तदा तयोर्यो बलवान् स यस्मिन् त्रिंशांशके भवति तस्यैव फलं वदेत्। यो बलरहितस्तस्य फलं न भवतीति।।६।।

भाषा— ये जो फल कहे गये हैं वे चन्द्रमा और लग्नगत त्रिंशांशों से समझना चाहिए। लग्न और चन्द्रमा— इन दोनों में जो बली हो उसके त्रिंशांश का ही फल विशेष रूप से कहना चाहिए। यदि दोनों बली हों तो दोनों के त्रिंशांश सम्बन्धी फल स्त्रियों में समझना चाहिए।।६।।

अथ यस्मिन् योगे जाता स्त्रीभिः पुरुषाकारसंस्थाभिः सह मदनं शमयति तद्योगद्वयज्ञानं प्रहर्षिण्याऽऽह—

दृक्संस्थावसितसितौ परस्परांशे
शौक्रे वा यदि घटराशिसम्भवोंऽशः।
स्त्रीभिः स्त्रीमदनविषानलप्रदीप्तं
संशान्तिं नयति नराकृतिस्थिताभिः।।७।।

दृक्संस्थाविति।। असितः सौरः, सितः शुक्रः एतावसितसितौ परस्परांशे अन्योन्यांशगतौ सौरः शुक्रांशगतः, शुक्रःसौरांशगतस्तौ च परस्परं दृक्संस्थौ अन्योन्यं पश्यतः एको योगः। अथवा शौक्रे राशौ वृषतुलयोरन्यतरे लग्नगते तत्कालं यदि घटराशिसम्भवोंऽशः कुम्भ-

नवांशकोदये भवति तदा द्वितीयो योगः। अस्मिन्योगद्वये जाता स्त्री अन्याभिरपराभिः स्त्रीभिः योषिद्भिः नराकृतिस्थिताभिः पुरुषसंस्थानाभिः पुरुषाकारयुताभिः मदनविषानलं प्रदीप्तं वामविषाग्निं प्रज्वलितं शान्तिं नयति शमयति। एतदुक्तं भवति-अन्या स्त्री स्वजघने पुरुष-रूपेण चर्ममयं लिङ्गं बध्वा पुंवत् तस्या रतिमभिजनयति। यतोऽति-कामार्त्तत्वात् पुरुषयोगं गन्तुं न शक्नोति।।७।।

भाषा– यदि शनि के नवांश में शुक्र और शुक्र के नवांश में शनि हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो तो अथवा वृष या तुला राशि में कुम्भ का नवांश हो तो इन दोनों योगों में उत्पन्न स्त्री, पुरुष के आकार की बनाई हुई दूसरी स्त्री के द्वारा अपनी प्रज्वलित कामना की शान्ति कराती है।।७।।

विशेष अर्थ– भावार्थ यह है कि ऐसे योग में उत्पन्न स्त्री कामातुरा होती है। और उसे पति का वियोग होता है। इसलिए वह रबर (चर्म) निर्मित लिंगधारिणी अपनी सहेलियों के द्वारा मैथुन-क्रिया से कामाग्नि का शमन कराती है।।७।।

अथास्तमये पतिश्चेति यदुक्तं तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सौम्यग्रहावीक्षिते
क्लीबोऽस्ते बुधमन्दयोश्चरगृहे नित्यं प्रवासान्वितः।
उत्सृष्टा रविणा कुजेन विधवा बाल्येऽस्तराशिस्थिते
कन्यैवाशुभवीक्षितेऽर्कतनये द्यूने जरां गच्छति।।८।।

शून्ये इति।। लग्नाच्चन्द्राद्वा यः सप्तमो राशिः स यदि शून्यः सर्व-ग्रहवियुक्तो भवति अबलो बलहीनश्च तस्मिन्नस्तभवने शून्ये अबले च बलरहिते तथा सौम्यैः शुभग्रहैरनिरीक्षिते न केनचिच्छुभग्रहेण दृश्यमाने न केनचित्सौम्यग्रहेण युते जातायाः भर्ता कापुरुषः कुत्सित-पुरुषो भवति। अथवा लग्नाच्चन्द्राद्वा यः सप्तमो राशिस्तत्र बुधमन्द-योर्ज्ञसौरयोरन्यतरे स्थिते जातायाः भर्ता क्लीबः पुरुषाकारहीनो भवति। यस्याश्चरगृहं चरराशिः सप्तमे भवति तस्याः नित्यं सर्वकालं भर्ता प्रवासान्वितः प्रवासशीलो भवति, अर्थादेवं स्थिरे सप्तमे नित्यं गृहे स्थितो भवति, द्विस्वभावे किञ्चित्प्रवासे किञ्चिद्गृहे स्थितो भवति। उत्सृष्टा रविणा कुजेन विधवेति। तरणौ रवावस्तस्थिते सप्तमगे जाता पतिनोत्सृष्टा भर्त्रा त्यक्ता भवति। एवं कुजे सप्तमगते तस्मिंश्चाशुभैः पापैः वीक्षिते बाल्ये विधवा रण्डा विगतभर्तृका भवति। अर्कतनये सौरे द्यूने सप्तमगे तस्मिंश्चाशुभैः पापैर्वीक्षिते दृष्टे

कन्यैव जरामुपगच्छति कुमार्येव वृद्धा भवति वृद्धत्वं प्राप्नोतीति। विवाहं न करोतीत्यर्थः। अत्र चन्द्रलग्नयोर्बलवशादेवैतद्वक्तव्यम्॥ ८॥

भाषा– लग्न और चन्द्रमा से सप्तम भाव यदि ग्रहरहित हो, निर्बल हो और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न कन्या का पति नीच पुरुष (अनुद्योगी) होता है। यदि सप्तम भाव में बुध और शनि हो तो उस कन्या का पति नपुंसक होता है। सप्तम भाव में चर राशि हो तो कन्या का पति परदेशी होता है। सप्तम भाव में रवि हो तो अपने पति से छोड़ दी जाती है। सप्तम भाव में मंगल हो तो बालविधवा होती है। शनि सप्तम भाव में हो तो वह कौमार्य में ही वृद्धावस्था को प्राप्त होती है॥ ८॥

विशेष अर्थ– सप्तम भाव में चर राशि से पति परदेशी होता है। इससे सिद्ध होता है कि सप्तम में स्थिर राशि हो तो उसका पति सर्वदा उसके साथ (घर में) ही रहे। और द्विस्वभाव हो तो क़भी घर और कभी परदेश में भी रहे। ८।

ननु चन्द्रात्सप्तमस्थानादप्येतत्फलं कथमवगम्यते? उच्यते, सप्तमे स्थाने चन्द्रमसः फलदर्शनाभावात् पुनरपि जाता कीदृशी भविष्यतीति तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

आग्नेयैर्विधवास्तराशिसहितैर्मिश्रैः पुनर्भूर्भवेत्
क्रूरे हीनबलेऽस्तगे स्वपतिना सौम्येक्षिते प्रोज्झिता।
अन्योन्यांशगयोः सितावनिजयोरन्यप्रसक्ताङ्गना
द्यूने वा यदि शीतरश्मिसहितौ भर्तुस्तदानुज्ञया। ९।

आग्नेयैरिति॥ एकैकस्मिन्पापग्रहे सप्तमे फलमुक्तम्। यदि बहवः आग्नेयाः क्रूराः सप्तमस्था भवन्ति तदा प्रतिग्रहोक्तफलं त्यक्त्वा तैराग्नेयैरस्तराशिसहितैः विधवैव भवति। मिश्रैः क्रूरैः सौम्यैश्च सप्तमस्थैः पुनर्भूर्भवेत्। स्वपाणिग्राहिणं त्यक्त्वा अन्यस्य भार्या भवतीत्यर्थः। द्विसंस्कृता। तथा च ग्रन्थान्तरे पुनर्भूलक्षणमुक्तम्– 'स्वैरिणी स्वपतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्। अक्षतं च प्रजाद्वारं पुनर्भूसंस्कृता पुनः॥' क्रूर इति। क्रूर आदित्याङ्गारकशनैश्चराणामन्यतमेऽस्तगे लग्नात्सप्तमस्थे तस्मिंश्च हीनबले सर्वबलरहिते तथाभूते सौम्येक्षिते शुभग्रहाणां बुधगुरुसितानामन्यतमेन दृष्टे जाता स्वपतिना आत्मीयेनैव भर्त्रा प्रोज्झिता त्यक्ता भवति। अन्योन्यांशगयोरिति। सितः शुक्रः, अवनिजोऽङ्गारकः एतयोः सितावनिजयोः अन्योन्यांशगयोः परस्परनवांशकस्थितयोः यत्र तत्र राशौ सितनवांशके भौमः भौमनवांशके शुक्रः तदा साङ्गना स्त्री अन्यप्रसक्ता परपुरुषरता भवति। अथवा द्यूने लग्नात्सप्तमे स्थाने तावेव यद्यङ्गारकशुक्रौ

शीतरश्मिसहितौ चन्द्रसहितौ भवतस्तथाप्यन्यपुरुषासक्ता भवति। किन्तु भर्तुरनुज्ञया पत्युराज्ञयेति, न तु स्वातन्त्र्येणेति।। ६।।

भाषा– यदि तीनों पापग्रह सप्तम भाव में हो तो वह स्त्री विधवा होती है। यदि पाप और शुभ ग्रह दोनों सप्तम भाव में हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़कर दूसरा पति करनेवाली) होती है। यदि निर्बल पापग्रह सप्तम में हो, उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो वह पति से परित्यक्ता होती है। शुक्र और मंगल यदि परस्पर नवांश में हो तो वह स्त्री पर-पुरुष में आसक्ता होती है। यदि चन्द्रमा सहित शुक्र और मंगल सप्तम भाव में हो तो वह अपने पति की आज्ञा से अन्य पुरुष से संग करने वाली होती है। ६।

अथ येन योगेन जाता मात्रा सह बन्धकी भवति येन च रुगर्दितयोनिर्येन च सुभगा, तद्योगत्रयं शालिन्याऽऽह–

सौरारर्क्षे लग्नगे सेन्दुशुक्रे मात्रा सार्द्धं बन्धकी पापदृष्टे।
कौजेऽस्तांशे सौरिणा व्याधियोनिश्चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांशे।१०

सौरारर्क्षे इति।। सौरः शनैश्चरः तद्क्षे मकरकुम्भौ, आरो भौमस्तद्क्षे मेषवृश्चिकौ एषामन्यतरे लग्नगते तस्मिंश्च सेन्दुशुक्रे इन्दुना चन्द्रेण शुक्रेण च संयुक्ते तथाभूते पापदृष्टे पापग्रहावलोकिते जाता बन्धकी परपुरुषगामिनी भवति न केवलं यावन्मात्रा सार्द्धं जनन्या सह बन्धकी जाता तन्माताऽपि बन्धकी परपुरुषगामिनी भवति। अस्तांशे लग्नात्सप्तमे स्थाने यो राशिस्तत्कालं कौजो भौमनवांशको भवति तस्मिंश्च कौजेऽस्तांशे सौरिणा रविजेन दृष्टे जाता व्याधियोनिः सरोगभगा भवति। यदुक्तं सुभगतास्तमये तदर्थमाह- चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांश इति। यदा लग्नात्सप्तमे स्थाने सद्ग्रहस्य शुभग्रहस्य नवांशकोदयो भवति तदा चारुश्रोणी शोभनभगा वल्लभा पत्युः प्रिया च भवति।। १०।।

भाषा– लग्न में शनि, मंगल की राशि हो, उसमें शुक्र और चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट हो तो ऐसे लग्न में उत्पन्न स्त्री माता सहित व्यभिचारिणी होती है। यदि सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो, उस पर शनि की दृष्टि हो तो वह स्त्री रोगसहित योनि वाली होती है। यदि सप्तम भाव में शुभ ग्रह के नवांश हो तो वह स्त्री सुप्रभा सुन्दरी और पति की प्रिया होती है।१०

अथ यस्याः सप्तमं स्थानं शून्यं भवति तस्याः शनैश्चराङ्गारकशुक्रक्षेत्रे तदंशे वा सप्तमे यादृशी भवति तद्विज्ञानं मालिन्याऽऽह–

वृद्धो मूर्खः सूर्यजर्क्षेंऽशके वा स्त्रीलोलः स्यात्क्रोधनश्चावनेये।
शौक्रे कान्तोऽतीवसौभाग्ययुक्तो विद्वान्भर्ता नैपुणज्ञश्च बौधे।११

वृद्ध इति।। यस्या जन्मनि लग्नात्सप्तमे स्थाने सूर्यजस्य सौरस्यर्क्षं मकरकुम्भयोरन्यतरं तत्सम्बन्धी नवांशको वा सप्तमे भवति तस्या वृद्धः मूर्खश्च भर्ता भवति। यस्याः आवनेयस्याङ्गारकस्यर्क्षे मेषवृश्चिकयोरन्यतरस्तदंशको वा सप्तमे भवति तस्याः स्त्रीलोलः स्त्रीषु स्पृहयालुः क्रोधनः क्रोधशीलश्च भर्ता भवति। एवं शौक्रे राशौ वृषतुलयोरन्यतरे तदंशके वा सप्तमस्थे कान्तोऽतीवदर्शनीयोऽतीवसौभाग्ययुक्तोवल्लभश्च भर्ता भवति। बौधेमिथुनकन्योरन्यतरे तदंशके वा सप्तमस्थे जातायाःभर्ता विद्वान्पंडितः नैपुणज्ञश्च सर्वत्र सूक्ष्मदृष्टिर्भवति।११

भाषा– सप्तम भाव में शनि की राशि या नवांश हो तो उस कन्या का पति वृद्ध और मूर्ख होता है। मंगल की राशि या नवांश हो तो उसका पति स्त्री-लम्पट और क्रोधी होता है। शुक्र की राशि या नवांश हो तो उसका पति अत्यन्त सुन्दर और भाग्यवान् होता है। बुध की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी विद्वान् और निपुण (सूक्ष्म दृष्टि) होता है।११।

अथ चन्द्रराशौ सप्तमे तन्नवांशके जीवराशौ वादित्यराशौ च तन्नवांशके वा तद्विज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

मदनवशगतो मृदुश्च चान्द्रे त्रिदशगुरौ गुणवान् जितेन्द्रियश्च।
अतिमृदुरतिकर्मकृच्च सौर्ये भवति गृहेऽस्तमयस्थितेंऽशके वा।१२

मदनेति।। यस्याः जातायाः सप्तमे स्थाने चान्द्रो राशिः कर्कटस्तदंशको वा भवति तस्या भर्ता मदनवशगतः कामातुरो मृदुश्चाकठिनश्च भवति। त्रिदशगुरोः जीवस्य राशौ धन्विमीनयोरन्यतरे सप्तमस्थे तदंशके वा जातायाः भर्ता गुणवान् शौर्यादिभिर्गुणैर्युक्तो जितेन्द्रियो दान्तश्च भवति। सौर्ये राशौ सिंहे तदंशके वा सप्तमस्थे जातायाः भर्ताऽतिमृदुरतीवाकठिनः, अतिकर्मकृदतीवव्यापारकृद्भवति व्यापारकरणशीलः। केचिद्रतिकर्मकृदतिकामातुरः कामासक्तो भवति। एवमस्तमयस्थिते सप्तमस्थानस्थे गृहे राशावंशके वा फलमभिहितं यत्रान्यसंबन्धी राशिः सप्तमे भवति अन्यसम्बन्धी नवांशश्च तत्र राश्यंशपयोः यो बलवांस्तदीयं फलं वाच्यमिति।।१२।।

भाषा- यदि जन्म-समय में सप्तम भाव में चन्द्रमा की राशि (कर्क) या नवांश हो तो उस स्त्री का स्वामी कामातुर और कोमल हृदयवाला होता है। गुरु की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी गुणवान् और जितेन्द्रिय होता है। सूर्य की राशि या नवांश हो तो उसका पति अत्यन्त मृदु स्वभाव और अधिक कार्य करने वाला होता है।।१२।।

विशेष अर्थ– सप्तम भाव में राशि और नवांश, दोनों एक ही ग्रह के हों तो उक्त फल समझना चाहिए। यदि भिन्न ग्रह के हों तो जिसके स्वामी बली हों उसके अनुसार फल कहना। यदि राशि नवांश-पति दोनों तुल्य बल हों तो दोनों के फल समझना चाहिए।।१२।।

अथ चन्द्रशुक्रबुधानां द्वौ त्रयो वा लग्नगता यस्या भवन्ति तस्या स्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

ईर्ष्यान्विता सुखपरा शशिशुक्रलग्ने
ज्ञेन्द्वोः कलासु निपुणा सुखिता गुणाढ्या ।
शुक्रज्ञयोस्तु रुचिरा सुभगा कलाज्ञा
त्रिष्वत्यनेकवसुसौख्यगुणा शुभेषु ।।१३।।

ईर्ष्येति।। यस्याः जन्मलग्ने शशिशुक्रौ चन्द्रसितौ समेतौ भवतः सा ईर्ष्यान्विता मात्सर्ययुक्ता सुखपरा सुखासक्ता च भवति। ज्ञेन्द्वोः बुधचन्द्रयोः लग्नगतयोः कलासु निपुणा तज्ज्ञा सुखिता सञ्जातसुखा भवति, गुणाढ्या गुणबहुला च। शुक्रज्ञयोः सितबुधयोर्लग्नगतयोः रुचिरा दर्शनीया सुकान्ता सुभगा भर्तृवल्लभा कलाज्ञा च भवति। त्रिष्वपीति। यस्यास्त्रयोऽपि चन्द्रबुधशुक्रा लग्नगता भवन्ति साऽनेक-वसुसौख्यगुणा अनेकैर्वसुभिः धनैः सौख्यैरनेकैर्बहुभिश्च गुणैर्युक्ता भवति। अपिशब्दात् त्रिषु शुभेषु बुधगुरुसितेषु लग्नगतेषु जाता अनेकवसुसौख्यगुणा भवति।।१३।।

भाषा– जन्म-लग्न में चन्द्रमा और शुक्र हो तो स्त्री ईर्ष्यावाली और सुख से युक्ता होती है। बुध और चन्द्रमा हो तो कलाओं को जाननेवाली, सुख और गुणों से युक्त होती है। बुध और शुक्र जन्म-लग्न में हो तो लावण्यवती, सौभाग्यवती और कला को जाननेवाली होती है। यदि तीनों शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) जन्म-लग्न में हो तो अनेक प्रकार के धन, सुख और गुणवाली होती है।।१३।।

अत्र पूर्वं तासां भर्तृमरणमिति यदुक्तं तद्विज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरोंऽशे
यस्य स्थितो वयसि तस्य समेप्रदिष्टा ।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः
कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दौ ।।१४।।

क्रूरेऽष्टम इति। यस्याः क्रूरग्रहोऽष्टमे स्थाने भवति तस्या विधवता भवति। कस्मिन्काल इत्याह। निधनेश्वरो यस्येति। निधनेश्वरोऽष्टम-स्थानाधिपतिर्यस्य ग्रहस्य नवांशके भवति तस्य यद्वयस्तस्मिन्वयसि विवाहात्परतस्तस्या वैधव्यं वक्तव्यम्। एकं द्वौ नव विंशतिरित्यादि

ग्रहवयः। एवं केचिद्वदन्ति। वयं पुनः दशान्तर्दशाकालं वयःशब्देन ब्रूमः। यत्र निधनेश्वरश्चन्द्रभौमयोरन्यतरेंऽशे भवति तत्र चन्द्र-भौमयोर्वयःप्रमाणं वर्षत्रितयम्। तत्र प्रायः कुमारीणां विवाहासंभव-स्तस्मादष्टमस्थानाधिपतिर्यस्यांशके व्यवस्थितस्तस्यान्तर्दशाधिपति-स्तस्या विवाहात्परं विधवता प्रदिष्टोक्ता। सत्स्विति। यस्या जन्मनि क्रूरग्रहोऽष्टमगो भवति सद्ग्रहः शुभग्रहः। कश्चिदर्थगो द्वितीयस्थान-गतो भवति तस्याः भर्तुः पुरस्तात् स्वस्यैव मरणं भवति। यस्या जन्मनि कन्ययामलिनि वृश्चिके गवि वृषे हरौ सिंहे वा इन्दुः स्थितो भवति तस्या अल्पसुतत्वं स्वल्पपुत्रत्वं वक्तव्यम्। कन्यालिगोहरीणामन्यत-मश्चन्द्रराशिर्यस्यास्तस्याः अल्पाः पुत्रा भवन्तीति॥ १४॥

भाषा– जन्म-समय में लग्न से अष्टम भाव में पापग्रह हो तो वह स्त्री विधवा होती है। वैधव्य योग में–अष्टमेश जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह की अवस्था (बाल-युवा-वृद्धावस्था) या दशा-अन्तर्दशा समय में वह स्त्री विधवा होती है। यदि शुभग्रह द्वितीय भाव में हो तो उस स्त्री का ही मरण स्वामी के समक्ष में होता है। जिसके जन्म-समय में कन्या, वृश्चिक, वृष या सिंह में चन्द्रमा हो उस स्त्री की थोड़ी संतति होती है।१४।

अथ यस्मिन्योगे जातो पुरुषिणी भवति, यस्मिंश्च ब्रह्मवादिनी भवति, तद्योगद्वयं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

सौरे मध्यबले बलेन रहितैः शीतांशुशुक्रेन्दुजैः
शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषिणी यद्योजराश्युद्गमः।
जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु प्राग्लग्नराशौ समे
विख्याता भुवि नैकशास्त्रनिपुणा स्त्री ब्रह्मवादिन्यपि ।१५।

सौरे इति।। सौरे शनैश्चरे मध्यबले नातिबलवति न चातिबलहीने तथा शीतांशुशुक्रेन्दुजैः शशिसितबुधैः बलेन वीर्येण रहितैः विवर्जितैः शेषैरादित्यभौमजीवैर्वीर्यसमन्वितैः सबलैर्यत्र तत्रावस्थितैर्यद्योज-राशिः विषमराशिरुद्गमः उद्गम उदये लग्ने भवति। विषमराशिः लग्ने जाता भवतीत्यर्थः। तदा जाता मेषमिथुनसिंहतुलाधन्विकुम्भानामन्यतमे सा पुरुषिणी भवति। बहुपुरुषेत्यर्थः। जीवारास्फुजिदैन्दवेष्विति। जीवो बृहस्पतिः, आरो भौमः, आस्फुजिच्छुक्रः, ऐन्दवो बुधः एतेषु यत्र तत्राव-स्थितेषु बलिषु वीर्यवत्सु तथा प्राग्लग्ने यदि समराशिर्भवति तदा जाता स्त्री भूवि भूमौ विख्याता सर्वत्र प्रथिता अनेकशास्त्रकुशला अनेकेषु बहुषु शास्त्रेषु कुशला तज्ज्ञा ब्रह्मवादिन्यपि मोक्षशास्त्रे कुशला भवति।१५

भाषा– जिस स्त्री के जन्म-समय में शनैश्चर मध्य बली हो, चन्द्रमा, शुक्र और बुध निर्बल हो, रवि, मंगल, गुरु-ये बलयुक्त हों और विषम राशि (मेष, मिथुन आदि) लग्न हो तो वह स्त्री पुरुषिणी (बहुत पुरुषों को रखनेवाली या पुरुष-समूह में रहनेवाली) होती है। यदि सम (वृष, कर्क आदि) राशि लग्न में हो तथा गुरु, मंगल, शुक्र, बुध-ये बलयुक्त हों तो वह स्त्री संसार में विख्याता, अनेक शास्त्र में निपुण और ब्रह्मविद्या को जाननेवाली होती है।।१५।।

अथ यद्योगजाता प्रव्रज्यामाश्रयति तद्विज्ञानं प्रहर्षिण्याऽऽह–

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत्।१६

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके स्त्रीजातकाध्यायश्चतुर्विंशः।। २४।।

पापे इति।। पूर्वं सप्तमस्थस्य ग्रहस्य पृथक्पृथक् फलमुक्तं तत्र लग्नात्पापे क्रूरग्रहेऽस्ते सप्तमस्थे यद्यन्यः कश्चिद् ग्रहो लग्नान्नवमगतो भवति तदा सा स्त्री प्रागुक्तं फलं न प्राप्नोति। नवमगतस्य ग्रहस्य तुल्यां तत्कथितां प्रव्रज्यां युवतिः स्त्री असंशयेन निःसंशयेनोपैति प्राप्नोति। एवं स्त्रीजातकव्याख्यातम्। उद्वाहे इति। अत्र ये योगा व्याख्यातास्ते चेदुद्वाहे विवाहकाले भवन्ति तदा योगोक्तफलं वाच्यम्। तथा तस्या वरणविधौ कन्यामार्गणकाले प्रदानकाले कन्यादानकाले च चिन्तायां प्रश्नकालेऽप्येवं सकलं सर्वं विधेयं वक्तव्यम्। स्त्रीजातकेषु ये शुभाशुभयोगा उक्तास्तेऽत्रापि शुभाशुभा वक्तव्याः, न सकलजातकोक्ताः। ते च यथाप्रदर्शितकालेनैव ज्ञेयाः। येषां च वक्ष्यमाणविवाहपटलोक्तयोगैर्बाधो भविष्यति तेऽत्र न वक्तव्याः। युक्त्यैतद्विवाहपटलमुक्तमिति।।१६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
स्त्रीजातकाध्यायश्चतुर्विंशः।। २४।।

भाषा– जिस स्त्री के जन्म-समय सप्तम भाव में पापग्रह और नवम में कोई ग्रह हो तो उस नवमगत ग्रह के समान पूर्वोक्त शाक्याजीविक इत्यादि प्रव्रज्या को वह स्त्री प्राप्त करती है। नवम भाव में ग्रह नहीं हो तो प्रव्रज्या नहीं होती है। इस अध्याय में जो कुछ फल कहे गये हैं वे सब विवाह-लग्न, कन्या-वरण (तिलक), कन्यादान, लग्न और प्रश्न-लग्न से भी विचार कर समझना चाहिए। अर्थात् जो शुभ लग्न कहे गये हैं उन्हीं में विवाहादि करना चाहिए; अशुभ में नहीं।।१६।।

— — — — —

अथ नैर्याणिकाध्यायः ।।२५।।

अथातो नैर्याणिकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवाष्टमे स्थाने ग्रहदृष्टे वियुक्ते युते वा यथा म्रियते तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

मृत्युर्मृत्युगृहे क्षणेन बलिभिस्तद्धातुकोपोद्भव-
स्तत्संय्युक्तभगात्रजो बहुभवो वीर्यान्वितैर्भूरिभिः ।
अग्न्यम्ब्वायुधजो ज्वरामयकृतस्तृट्क्षुत्कृतश्चाष्टमे
सूर्याद्यैर्निधने चरादिषि परस्वाध्वप्रदेशेष्विति ।।१।।

मृत्युरिति ।। बलिभिर्ग्रहैर्मृत्युगृहे क्षणेन मृत्युर्भवति। यस्य जन्मलग्नान्मृत्युगृहमष्टमं स्थानं शून्यं यो ग्रहो बलवान् पश्यति तस्य ग्रहस्य यो धातुरुक्तस्तद्धातुकोपोद्भवस्तेन धातुना प्रकुपितेन स म्रियते। तद्यथाऽर्कस्य पित्तं, चन्द्रस्य वातकफौ, भौमस्य पित्तं, बुधस्य त्रयोऽपि वातपित्तश्लेष्माणः, बृहस्पतेः कफः, शुक्रस्य वातकफौ, सौरस्य वात इति। तत्संयुक्तभगात्रज इति। तदित्यनेन लग्नादष्टमस्थानस्य परामर्शः। तेनाष्टमेन युक्तं यद्भगात्रं तत्संयुक्तभगात्रं तज्जातस्तत्सम्भूतः लग्नादष्टमराशिः यस्मिन्नङ्गे कालाख्यपुरुषस्य वर्तते तस्मिन्नङ्गे दृष्टग्रहोक्तदोषकोपान्म्रियते। भूरिभिर्बहुभिः वीर्यान्वितैः सबलैः बहुभवो मृत्युः यदा बहवोऽपि वीर्यान्वितास्तच्छून्यमष्टमस्थानं पश्यन्ति तदा यावन्तः पश्यन्ति तावतां ग्रहाणामुक्तदोषप्रकोपेन ते च बहवो दोषा यस्मिन्कालपुरुषाङ्गे लग्नादष्टमराशिर्वर्तते तस्मिन्नङ्गे-प्रकुप्य निधनं कुर्वन्तीति। अग्न्यम्ब्वायुधज इति। सूर्यादिभिरष्टमे स्थाने स्थितैरग्न्यादिभिर्मृत्युर्भवति। तद्यथा- यस्य लग्नादष्टमे स्थानेऽर्को भवति तस्याग्निहेतुको मृत्युर्भवति। एवं चन्द्रेऽष्टमेऽम्बुहेतुकः, भौमे आयुधहेतुकः, बुधे ज्वरहेतुकः, जीवे आमयकृतः अविज्ञातव्याधिहेतुकः, शुक्रे तृड्ढेतुकः, सौरे क्षुद्धेतुक इति। एतैर्ग्रहैर्बलिभिर्यथोक्त एव मृत्युः शुभेन कर्मणा भवति। बलहीनैरशुभेन मध्यबलैर्मध्यमेनेति। विज्ञातमरणप्रकारस्य मरणदेशज्ञानार्थमाह– निधने चरादिष्विति। यस्य निधनेऽष्टमे स्थाने चरराशिर्भवति स परदेशे म्रियते। यस्य स्थिरः स स्वदेशे, यस्य द्विस्वभावः सोऽध्वप्रदेशे पथि म्रियत इति।।१।।

भाषा– यदि अष्टम स्थान में ग्रह नहीं हो और वह बलवान् होकर अष्टम भाव को देखता हो तो उस ग्रह के धातु (कफ-वात या पित्त) के प्रकोप से उस जातक का मरण होता है। अष्टम स्थान की राशि कालपुरुष

के जिस अंग में हो उस अंग में ही उस धातु का प्रकोप होकर मरण होता है। यदि अष्टम भाव पर बहुत धनवान् ग्रह की दृष्टि हो तो उन सब ग्रहों के धातु-दोष से मरण होता है। अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि से, चन्द्रमा हो तो जल से, मंगल हो तो अस्त्र से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो तृषा से, शनि हो तो क्षुधा से मरण होता है। और अष्टम स्थान में चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर राशि हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव हो तो मार्ग में मरण होता है।।१।।

विशेष अर्थ– ग्रहों के धातु पूर्वोक्त इस प्रकार हैं- रवि का पित्त, चन्द्रमा के वात, कफ, मंगल का पित्त, बुध के कफ-वात, पित्त, गुरु का कफ, शुक्र के कफ-वात और शनि का वात है।।१।।

अथ शैलाग्राभिघातेषु यैर्योगैर्म्रियते तान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोर्मृत्युः खबन्धुस्थयोः
कूपे मन्दशशाङ्कभूमितनयैर्बन्धवस्तकर्मस्थितैः।
कन्यायां स्वजनाद्धिमोष्णकरयोः पापग्रहैर्दृष्टयोः
स्यातां यद्युभयोदयेऽर्कशशिनौ तोये तदा मज्जितः।।२।।

शैलाग्राभिहतस्येति।। सूर्यकुजयोः रविभौमयोः युगपत्तुल्य-कालं खबन्धुस्थयोर्दशमयोश्चतुर्थयोर्वा जातस्य शैलाग्राभिहतस्य शिला-प्रहारेण हतस्य मृत्युर्भवति। कूप इति। मन्दशशाङ्कभूमितनयैः सौरेन्दुभौमैर्यथासंख्यं बन्धवस्तकर्मस्थितैश्चतुर्थसप्तमदशमस्थैः। तद्यथा-सौरे चतुर्थगे चन्द्रे सप्तमगे भौमे दशमगे जातः कूपे पतितो म्रियते। कन्यायामिति। हिमोष्णकरयोश्चन्द्रार्कयोः कन्यायां स्थितयोश्च पापग्रह-दृष्टयोर्जातः स्वजनेन म्रियते स्वजनेन व्यापाद्यते उभयोदये द्विस्वभाव-राशावुदये लग्नगते तत्र चार्कशशिनौ रविचन्द्रौ यदा स्यातां भवेतां तदा तोये जले मज्जितो मग्नो म्रियते।।२।।

भाषा– जन्म-समय में रवि-मंगल दोनों चतुर्थ या दशम भाव में हो तो पत्थर की चोट से जातक की मृत्यु होती है। यदि शनि चतुर्थ में, चन्द्रमा सप्तम में और मंगल दशम भाव में हो तो वह कूप में गिरकर मरता है। यदि रवि और चन्द्रमा दोनों कन्या राशि में हों और पापग्रह से दृष्ट हों तो अपने कुटुम्बों (गोतियों) के द्वारा जातक का मरण होता है। यदि रवि और चन्द्रमा मीन राशि में हो तो जल में डूबकर मरण होता है।।२।।

विशेष अर्थ– यहाँ 'उभयोदय' से कितने टीकाकार द्विस्वभाव राशि ग्रहण किये हैं।।२।।

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मृगाङ्के मृगे
शस्त्राग्निप्रभवः शशिन्यशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षे स्थिते।
कन्यायां रुधिरोत्थशोषजनितस्तद्वत्स्थिते शीतगौ
सौरर्क्षे यदि तद्वदेव हिमगौ रज्ज्वग्निपातैः कृतः ।।३।।

मन्दे इति।। मन्दे शनैश्चरे कर्कटगे कुलीरस्थे मृगांके चन्द्रे मृगे मकरस्थिते जातस्य जलोदरकृतो जलोदरेण मृत्युर्भवति। शस्त्राग्निप्रभव इति। शशिनि चन्द्रे कुजर्क्षे मेषवृश्चिकयोरन्यतरस्थे तत्र चाशुभयोर्द्वयोः पापयोर्मध्यस्थे जातस्य शस्त्राग्निप्रभवः शस्त्रेणाग्निना वा प्रभवति तत्कृतो मृत्युः। कन्यायामिति। शीतगौ चन्द्रे कन्यायां तद्वत् स्थिते पापद्वयमध्यगते जातस्य रुधिरोत्थशोषजनितो मृत्युर्मरणं भवति। दुष्टेन रक्तेन शोषेण वा उत्थितो जनित उत्पन्नः। सौरर्क्षे इति। हिमगौ चन्द्रे सौरर्क्षे मकरकुम्भयोरन्यतरस्थे तद्वत्तस्मिंश्च पापद्वयमध्यगते यदि चेज्जातस्तदा रज्ज्वग्निपातैः रज्जवाऽग्निना पाताद्वा म्रियत इति।। ३।।

भाषा– यदि शनि कर्क में, चन्द्रमा मकर में हो तो जातक का मरण जलोदर रोग से होता है। यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के मध्य में होकर मंगल की राशि (मेष या वृश्चिक) में हो तो शस्त्र या अग्नि से जातक की मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में होकर कन्या में हो तो रक्त (शोणित) दोष से वा शोथ रोग से मरण होता है। यदि दो पापग्रहों के बीच में होकर चन्द्रमा शनि की राशि (मकर या कुम्भ) में हो तो फाँसी से, अग्नि से या गिरकर मरण होता है।।३।।

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

बन्धाद्धीनवमस्थयोरशुभयोः सौम्यग्रहादृष्टयो-
द्रेष्काणैश्च सपाशसर्पनिगडैश्छिद्रस्थितैर्बन्धतः।
कन्यायामशुभान्वितेऽस्तमयगे चन्द्रे सिते मेषगे
सूर्ये लग्नगते च विद्धि मरणं स्त्रीहेतुकं मन्दिरे ।।४।।

बन्धाद्धीनवमस्थयोरिति।। अशुभयोर्द्वयोः पापयोर्द्धीनवमस्थयोः पञ्चमनवमस्थानस्थयोश्च सौम्यग्रहैरदृष्टयोरनवलोकितयोर्जातः बन्धाद्-बन्धनेन म्रियते। द्रेष्काणैरिति। येन लग्नेन पुमान् जातस्तस्मा-दष्टमे स्थाने यो राशिस्तत्कालं वर्तते तत्र यदि सपाशसर्पो द्रेष्काणो भवति सनिगडो वा तदा जातः बन्धनेन म्रियते। तत्र भुजगपाश-

भृद्द्रेष्काणः कर्कटद्वितीयः कर्कटतृतीयः वृश्चिकप्रथमः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च। निगडद्रेष्काणः मकराद्यः। कन्यायामिति। मीनलग्नजातः कन्यायामस्तगे सप्तमस्थे चन्द्रे तस्मिंश्चाशुभान्विते केनचित्पापेन सहिते सिते शुक्रे मेषगे सूर्ये रवौ लग्नगते जातस्य मरणं मन्दिरे गृहे स्त्रीहेतुकं स्त्रीनिमित्तं विद्धि जानीहि।।४।।

भाषा– जन्म-समय में यदि दो पापग्रह पञ्चम और नवम भाव में हों, उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक का मरण बन्धन से होता है। अष्टम भाव में यदि पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी जातक का बन्धन से मरण होता है। पापसहित चन्द्रमा कन्या में होकर सप्तम भाव में हो और पापसहित शुक्र मेष में हो तथा सूर्य लग्न में हो तो अपने घर में ही स्त्री के हेतु से जातक का मरण होता है।।४।।

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह–

शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिसुते सूर्येऽपि वा खे यमे
सप्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत्पापैस्त्रिकोणाद्यगैः।
बन्धुस्थे च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दुसंवीक्षिते
काष्ठेनाभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते।।५।।

शूलोद्भिन्नतनुरिति।। सुखे चतुर्थे स्थानेऽवनिसुते भौमे स्थिते। सूर्येऽपि वा इति। रवौ चतुर्थस्थे खे दशमे स्थाने यदि यमः सौरो भवति तदा जातः शूलोद्भिन्नतनुर्म्रियते शूलेनोद्भिन्ना तनुर्यस्य शूलप्रीतस्य तस्य मरणं भवति। सप्रक्षीणेति। पापैः रविभौमसौरेः सप्रक्षीणश्च-हिमांशुभिरतिक्षीणचन्द्रसंयुक्तैश्च युगपत्तुल्यकालं त्रिकोणाद्यगैः पञ्च-मनवमलग्नस्थैः। एतदुक्तं भवति सक्षीणचन्द्राणां पापानामेतत्स्थान-त्रयं मुक्त्वाऽन्यत्रावस्थितिर्न भवति तदा चकाराच्छूलोद्भिन्नतनु-र्म्रियते। बन्धुस्थे चेति। रवौ सूर्ये बन्धुस्थे लग्नाच्चतुर्थगे, वियति दशमेऽवनिसुते भौमे स्थिते तस्मिंश्च क्षीणेन्दुना क्षीणचन्द्रेण संवीक्षिते तदा जातश्चकाराच्छूलोद्भिन्नतनुर्म्रियते। अस्मिन्नेव योगे चतुर्थगे रवौ दशमस्थे भौमे तस्मिंश्च सूर्यात्मजेन शनैश्चरेणेक्षिते दृष्टे जातः काष्ठेनाभिहतः काष्ठघातेन ताडितो मरणं प्रयाति प्राप्नोतीत्यर्थः।।५।।

भाषा– यदि मंगल या सूर्य चतुर्थ भाव में और शनि दशम भाव में हो तो जातक शूल के आघात से मरता है। अथवा क्षीण चन्द्र और शनि, रवि, मंगल ये चारों लग्न ५। ९ इन्हीं तीनों स्थान में हों तो शूल के आघात से जातक का मरण होता है। अथवा चतुर्थ रवि और दशम भाव में मंगल

हो, इन दोनों पर शनि की दृष्टि हो तो भी शूल के आघात से जातक की मृत्यु होती है। यदि इसी योग में (चतुर्थ रवि, दशम मंगल पर) शनि की दृष्टि हो तो काष्ठ के आघात से जातक की मृत्यु होती है॥ ५॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह–

रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लगुडाहताङ्गः
प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः ।
तैरेव कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैर्धू-
माग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः ॥६॥

रन्ध्रास्पदेति॥ रन्ध्रमष्टमं स्थानम्, आस्पदं दशमम्, अङ्गं लग्नं, हिबुकस्थानं चतुर्थम् एतैः रन्ध्रास्पदाङ्गहिकैर्यथासंख्यं प्रक्षीणचन्द्र-रुधिरार्किदिनेशयुक्तैः। एतदुक्तं भवति– अतिक्षीणचन्द्रोऽष्टमे, रुधिरो भौमः दशमे, आर्किः सौरोऽङ्गे लग्ने, दिनेशो रविश्चतुर्थे, एवंविधे योगे जातो लगुडहताङ्गो लगुडताडितावयवो म्रियते। केचित्पठन्ति– लगुडाहतान्त इति। लगुडाहतस्यान्तो भवति। तैरेवेति। तैरेव ग्रहैः प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशैः यथासंख्यं कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैः दशमनवमलग्नपञ्चमस्थैः क्षीणचन्द्रमा दशमे, भौमो नवमे, सौरो लग्ने, अर्कः पञ्चमे यदि भवति तदा जातस्य धूमेनाग्निना बन्धनेन शरीरनिकुट्टनेन काष्ठादिना प्रहरणेन वा तस्य मृत्युर्भवति॥ ६॥

भाषा– ८, १०, १ और ४, इन भावों में क्रम से क्षीण चन्द्र, मंगल, शनि और रवि हो तो लाठी के आघात से जातक का मरण होता है। यदि वे (क्षीण चन्द्र, मंगल, शनि और रवि) क्रम से १०, ९, १ और ५ भाव में हों तो धूम, अग्नि, बन्धन अथवा काष्ठादि के आघात से शरीर कुटे जाने पर मरण होता है॥ ६॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह–

बन्ध्वस्तकर्मसहितैः कुजसूर्यमन्दै-
र्निर्याणमायुधशिखिक्षितिपालकोपैः ।
सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखास्पदस्थै-
र्ज्ञेयः क्षतकृमिकृतश्च शरीरघातः ॥७॥

बन्ध्वस्तकर्मसहितैरिति। कुजोऽङ्गारकः, सूर्यो रविः, मन्दः सौरः एतैर्यथासंख्यं बन्ध्वस्तकर्मसहितैः चतुर्थसप्तमदशमस्थैः चतुर्थे भौमः, सप्तमे सूर्यः, दशमे सौरः यस्य जन्मनि भवन्ति तस्यायुधेन खड्गादिना शिखिनाग्निना क्षितिपालकोपेन नृपक्रोधेन वा एषामन्यतमेन निर्याणं मृत्युर्भवति। सौरेन्दुभूमितनयैः शनिशशिभौमैः यथासंख्यं स्वसुखा-

स्पदस्थैर्द्वितीयचतुर्थदशमस्थैः द्वितीये सौरः; चतुर्थे चन्द्रः, दशमे भौमः यस्य जन्मनि भवन्ति तस्य क्षतकृमिकृतः क्षते छिद्रे कृमयः कीटा उत्पद्यन्ते तत्कृतश्च शरीरपातो भवति क्षतकृमिभिः पतितैर्मृत्युर्भवति। ७।

भाषा– यदि मंगल, रवि, शनि-ये क्रम से ४, ७, १० भाव में हो तो क्रम से शस्त्र, अग्नि और राजा के कोप से जातक का मरण होता है। यदि शनि, चन्द्र और मंगल-ये २, ४, १० भाव में हो तो घाव में कीड़े पड़ने से मरण होता है। ७।

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

खस्थेऽर्केऽवनिजे रसातलगते यानप्रपाताद्वधो
यन्त्रोत्पीडनजः कुजेऽस्तमयगे सौरेन्दिनाभ्युद्गमे।
विण्मध्ये रुधिरार्किशीतकिरणैर्जूकाजसौरर्क्षगै-
र्यातैर्वा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैर्व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् ॥ ८ ॥

खस्थ इति॥ अर्के रवौ खस्थे दशमस्थानगते कुजे रसातलगते चतुर्थस्थे जातस्य यानप्रपातात् वाहनात्पतितस्य वधो मृत्युर्भवति। यन्त्रोत्पीडनज इति। कुजेऽङ्गारकेऽस्तमयगे सप्तमस्थे सौरेन्दिनाभ्युद्गमे सौरेश्चेन्दुश्चेनश्च ते सौरेन्दिनाः, शनिचन्द्ररविभिरभ्युद्गमे लग्ने स्थितैः जातस्य यन्त्रोत्पीडनजो वधः यन्त्रपीडितो म्रियते। केचित्क्षीणेन्दिनार्क्युद्गमे इति पठन्ति। क्षीणेन्दुः क्षीणचन्द्रमाः, इन आदित्यः, आर्किः सौरः एतैः लग्ने स्थितैः जातस्य यन्त्रोत्पीडनजो वधः। विण्मध्य इति। रुधिरोऽङ्गारकः, आर्किः सौरः, शीतकिरणश्चन्द्रः एतैः यथासंख्यं जूकाजसौरर्क्षगैः जूकस्तुलः, अजो मेषः, सौरर्क्षे मकरकुम्भौ तेन तुले कुजो भौमः, मेषे सौरः, मकरकुम्भयोरन्यतरे चन्द्रः एवं यस्य जन्मनि भवन्ति स विण्मध्येऽमेध्यमध्ये म्रियते। यातैर्वेति। गलितेन्दुः क्षीणचन्द्रः, सूर्य आदित्यः, रुधिरोऽङ्गारकः एतैर्यथासंख्यम् व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् यातैः प्राप्तैः। व्योम्नि दशमे क्षीणचन्द्रः, अस्तमये सप्तमे सूर्यः, बन्ध्वाह्वये बन्धुसंज्ञके चतुर्थे भौमः बन्ध्वित्याह्वा संज्ञा यस्य एवं यस्य जन्मनि भवति स वाग्रहणात् विण्मध्ये म्रियते॥ ८॥

भाषा- यदि दशम भाव में सूर्य, चतुर्थ में मंगल हो तो जातक सवारी पर से गिरकर मरता है। सप्तम भाव में मंगल और लग्न में शनि, चन्द्रमा हो तो यन्त्र (मशीन) से पिसे जाने पर मरण होता है। यदि मंगल, शनि और चन्द्रमा तुला, मेष, मकर और कुम्भ में हो अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मंगल– ये तीनों क्रम से १०, ७, ४ इन भावों में हों तो दोनों योगों में विष्ठा के बीच जातक का मरण होता है॥ ८॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाऽऽह-

वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते क्षीणेन्दौनिधनस्थितेऽर्कजे ।
गुह्योद्भवरोगपीडया मृत्युः स्यात्कृमिशस्त्रदाहजः ।।६।।

वीर्यान्वितेति।। क्षीणेन्दौ क्षीणचन्द्रे वीर्यान्वितेन सबलेन वक्रेण भौमेन दृष्टे वीक्षितेऽर्कजे सौरे निधनस्थितेऽष्टमस्थानगते जातस्य गुह्योद्भवरोगपीडया गुह्ये य उद्भूत उत्पन्नः रोगो गदस्तत्पीडयाऽर्शोभगन्दरार्त्या कृमिशस्त्रदाहजः कृमिजः शस्त्रजः दाहजः अर्शोभगन्दरादिरोगदोषात् कृमिपातेन शस्त्रकर्मणा वा क्रियमाणेन तस्य मृत्युर्भवति। ६

भाषा- यदि क्षीण चन्द्रमा अष्टम भाव में बलवान् मंगल से दृष्ट हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग की पीड़ा से जातक का मरण होता है। यदि बलवान् कुज से दृष्ट शनि अष्टम भाव में हो तो कीड़े, अग्नि और शस्त्र के घात से मरण होता है।।६।।

विशेष अर्थ- कितने ही टीकाकार इन दोनों योगों को एक ही मानते हैं।।६।।

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्ततिलकेनाऽऽह-

अस्ते रवौ सरुधिरे निधनेऽर्कपुत्रे
क्षीणे रसातलगते हिमगौ खगान्तः ।
लग्नात्मजाष्टमतपस्विनभौममन्द-
चन्द्रैस्तु शैलशिखराशनिकुड्यपातः ।।१०।।

अस्ते रवाविति।। अस्ते सप्तमे रवावादित्ये सरुधिरे भौमेन संयुक्ते स्थितेऽर्कपुत्रे सौरे निधनेऽष्टमे क्षीणे हिमगौ चन्द्रे रसातलगते चतुर्थस्थानस्थे जातः खगान्तो भवति खगः पक्षी तत्कृतो मृत्युर्भवति। तस्य मृतस्याग्निसंस्कारो न भवतीत्यर्थः। लग्नात्मजाष्टमेति। इनः सूर्यः, भौमः कुजः, मन्दः सौरः, चन्द्रः शशाङ्कः, एतैर्यथासंख्यं लग्नात्मजाष्टमतपस्सु स्थितैः लग्नपञ्चमाष्टमनवमस्थैः तेन लग्नेऽर्कः पञ्चमे भौमः अष्टमे सौरः, नवमे चन्द्रो यस्य जन्मनि भवति तस्य शैलशिखरात् पर्वतमस्तकात् पतितस्याशनिपातेन चोल्कया वज्रपातेन कुड्यपातेन भित्तिपातेन वा मृत्युर्भवति।।१०।।

भाषा- यदि सूर्य और मंगल सप्तम भाव में, शनि अष्टम भाव में और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भाव में हो तो पक्षी के द्वारा जातक का मरण होता है। यदि सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र ये क्रम से लग्न, ५, ८, ९ इन भावों में हों तो पर्वत-शिखर से गिरकर, वज्रपात से अथवा भित्ति, कोठे की छत आदि पर से गिरने से मरण होता है।।१०।।

अथ यस्य जन्मन्येतेषां योगानां मध्यादन्यतमो योगो न भवति न चाष्टमे स्थाने कश्चिद् ग्रहो भवति न चाष्टमं स्थानं कश्चिद्ग्रहः पश्यति तन्मृत्युकारणं वतालीयेनाऽऽह–

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः ।
तस्याधिपतिर्भवोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ।११।

द्वाविंश इति।। येन द्रेष्काणेन पुमान् जातस्तस्माद्यो द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति स सूरिभिः पण्डितैः निधनस्य मृत्योः कारणं निमित्तं कथितः। कथमित्याह– तस्याधिपतिरित्यादि। तस्य द्वाविंशस्य द्रेष्काणस्य योऽधिपतिग्रहस्तस्याग्न्यम्बायुधज इत्यादिस्वगुणैर्यो हेतुः पठितस्तेन निर्याणं मरणं प्रयच्छति ददाति। अथवा यस्मिन्राशौ स द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति तस्य राशेर्यः स्वामी तत्सम्भवो भवति स स्वगुणैरात्मीयहेतुभिः निर्याणं मरणं प्रयच्छति ददाति। स च द्वाविंशो द्रेष्काणो लग्नादष्टमराशौ भवति स कंथं ज्ञायते? उच्यते, यदि लग्नस्य प्रथमो द्रेष्काणस्तदाऽष्टमस्यापि प्रथमोऽथ लग्नस्य द्वितीयस्तदाऽष्टम-स्यापि द्वितीयोऽथ लग्नस्य तृतीयस्तदाऽष्टमस्यापि तृतीयः न केवलं यावत्सर्वराशीनामेषैव व्यवस्था। अनेन क्रमेण प्रकारेण योष्टमराशेः द्रेष्काणः स एव द्वाविंशो द्रेष्काण इति। तत्रैतज्ज्ञातम्यस्योक्तयोगाना-मन्यतमो योगो न भवति न चाष्टमं स्थानं ग्रहयुतवीक्षितं तस्य द्वाविंश-द्रेष्काणाधिपाष्टमराश्यधिपयोर्यो बलवांस्तदुक्तदोषेण मृत्युरिति ।११

भाषा– जिसके जन्मलग्न से अष्टम भाव पर ग्रह की दृष्टि या योग के अभाव हों उसके लग्न में जो द्रेष्काण वर्तमान हो उससे २२वाँ द्रेष्काण मरण का हेतु होता है, ऐसा पण्डितों ने कहा है। २२वाँ द्रेष्काण का स्वामी अथवा अष्टम भाव में जो राशि हो उसका स्वामी अपने पूर्वकथित (अग्नि, जल, आयुध इत्यादि प्रथम श्लोकोक्त) गुणों से जातक के मरण का हेतु होता है।।११।।

विशेष अर्थ- लग्न और अष्टम भाव के बीच में ७ राशि कहते हैं तथा एक-एक राशि में ३ द्रेष्काण होते हैं, इसलिए लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण होगा तो २२वाँ द्रेष्काण अष्टम भाव का प्रथम द्रेष्काण होगा, यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का द्वितीय, लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का तृतीय द्रेष्काण २२वाँ द्रेष्काण होता है।।११।।

अथ यादृग्भूमौ म्रियते तद्विज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

होरानवांशकप्रयुक्तसमानभूमौ
योगेक्षणादिभिरतःपरिकल्प्यमेतत् ।

मोहस्तु मृत्युसमयेऽनुदितांशतुल्यः
स्वेशेक्षिते द्विगुणितस्त्रिगुणः शुभैश्च ।।१२।।

होरानवांशेति। पुरुषस्य जन्मसमये होरायां लग्ने यो नवांशको भवति तस्य योऽधिपतिः ग्रहस्तेन यो युक्तो राशिः स राशिर्यत्र स्थित इत्यर्थः। तस्य राशेर्या योग्या भूमिस्तस्यां भूमौ स म्रियते। तद्यथा। स चेद्राशिद्वये भवति तदा अधिकसञ्चारभूमौ। स चेद्राशिः मेषो भवति तदाजाविकसंज्ञभूमौ। वृषभश्चेत्तदा वृषभप्रचारभूमौ। मिथुनश्चेत्तदा गृहे, कर्कटश्चेत्तदा कूपे, सिंहश्चेत्तदाऽरण्ये, कन्या चेत्तदा कूपे, तुला चेत्तदा पणगृहे, वृश्चिकश्चेत्तदा श्वभ्रे, धन्वीचेत्तदाऽश्वपचारभूमौ, मकरश्चेत्तदानूपे, कुम्भश्चेत्तदा गृहे, मीनश्चेत्तदानूप इति। येषां तु पुनर्मृत्युयोगे जलादौ मरणमुक्तं तेषां तत्रैव। न केवलं दर्शितराशिवशेन भूप्रदेशो वक्तव्यः, अपि तु योगेक्षणादिभिरिति। स लग्ननवांशकाधिपतिर्यस्मिन् राशौ व्यवस्थितः तत्र यद्यनेन ग्रहेण तस्य योगो भवति तदा तस्य च या भूमिः ईक्षणादिर्यो वा तत्स्थं पश्यति आदिग्रहणाद्यस्य नवांशके स्थितस्यापि या भूमिरुक्ता तस्यां स म्रियते इति। अत्र च बहुभूमिसम्भवे ग्रहबलाद्वक्तव्या। ननु च ग्रहस्य का भूमिः? उच्यते, ग्रहस्यात्मीयराशेर्या भूमिः सैवेति। ननु यस्य राशिद्वयं तस्य का भूमिरिति? उच्यते, तत्र त्रिकोणराशेः सम्बन्धिनी भूमिः। तद्यथा। आदित्यस्य सिंहभूमिः अरण्यम्। चन्द्रमसः कर्कटभूमिरनूपम्। भौमस्य मेषभूमिरजाविकसंचारप्रदेशः। बुधस्य कन्याभूमिरनूपम्। जीवस्य धनुर्भूमिरश्वप्रचारः। शुक्रस्य तुलाभूमिः विपणिः। शनैश्चरस्य कुम्भभूमिः गृहमिति। केचिदत्र देवालये अग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्कराः स्युरित्यादिकं स्थानमिच्छन्ति। एतच्च शोभनम्। यतः एतेषु स्थानेषु म्रियमाणा दृश्यन्त इति। एवमेतस्मादन्यत् परिकल्प्यं चिन्त्यम्। मोहस्त्विति। यावन्तो लग्नस्य नवांशका अनुदिताः शेषास्तेषामंशानां संपीडितानां यावत्कालो भवति तत्तुल्यः तत्समो मृत्युसमये मरणकाले कालो भवति। एतदुक्तं भवति– यावत्कालो लग्नादवशिष्टः पुरुषस्य जन्मविषये भवति तावत्कालमिति। स चेल्लग्नराशिः यदि स्वेशेन स्वपतिनेक्षितो दृष्टस्तदा स एव कालो द्विगुणो वक्तव्यः अर्थादेवं स्वामिना सौम्यग्रहेण च दृष्टस्तदा षड्गुणकालो वक्तव्यः।।१२।।

भाषा– लग्न में जो नवांश हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो उस राशि के समान भूमि ('स्वचराश्च सर्वे' इत्यादि में कथित स्थान) में

मरण कहना चाहिए। तथा नवांशपति को जिस ग्रह से योग हो या जो ग्रह देखता हो उस ग्रह के समान भूमि (देवाम्ब्वग्नि० इत्यादि कथित ग्रह स्थान) में मरण स्थान की कल्पना (विचार) करे। जन्मकाल में लग्न के जितने भोग्यांश हों उसके काल के तुल्यकाल पर्यन्त मरण समय में मोह कहना चाहिए। यदि लग्न अपने स्वामी से दृष्ट हो तो उस काल के द्विगुणित काल तुल्य तथा शुभग्रह से दृष्ट हो तो भोग्यांश काल से त्रिगुण तुल्य काल मोह कहना। यदि शुभग्रह और स्वामी, दोनों लग्न को देखते हों तो षड्गुण काल समझे, अर्थात् यह सिद्ध होता है॥ १२॥

विशेष अर्थ– भाव यह है कि लग्न नवांशपति जिस ग्रह के साथ हो उस ग्रह की जो भूमि कही गयी है उस भूमि में मरण कहना। यदि बहुत से ग्रहों का योग हो तो उनमें जो बली हो उसकी भूमि सदृश भूमि में। यदि ग्रहयोग नहीं हो तो उस पर जिसकी दृष्टि हो, बहुत ग्रहों की दृष्टि हो तो उनमें बली ग्रह जो हो उसकी भूमि के सदृश स्थान में, यदि किसी ग्रह का योग या दृष्टि नहीं हो तो नवांशपति जिस राशि में हो उसके समान भूमि में मरण-विचार कहना चाहिए॥ काल का ज्ञान इस प्रकार है कि ३० अंश में लग्न राशि के उदयकाल तो लग्न के भोग्यांश में क्या? इस प्रकार भोग्यांश को उदयमान से गुणा कर ३० के भाग देकर लब्धि-तुल्य काल समझना॥१२॥

अथ मृतस्य शरीरपरिणामज्ञानं मालिन्याऽऽह—

दहनजलविमिश्रैर्भस्मसंक्लेदशोषैः
निधनभवनसंस्थैर्व्यालवर्गैर्विडम्बः ।
इति शवपरिणामश्चिन्तनीयो यथोक्तः
पृथुविरचितशास्त्राद्गत्यनूकादिचिन्त्यम् ॥ १३॥

दहनेति। निधनभवनेऽष्टमे स्थाने यो द्रेष्काणो व्यवस्थितः तद्वशाच्छवपरिणामश्चिन्तनीयः। स च गणनया द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति। स च यदि दहनद्रेष्काणोऽग्निद्रेष्काणो भवति तदा भस्मत्वेन परिणमत्यग्निना दह्यते। पापद्रेष्काणोऽग्निद्रेष्काणः। अथ जलद्रेष्काणो भवति तदा संक्लिद्यते जलमध्ये क्षिप्यते। सौम्यग्रहद्रेष्काणो जलद्रेष्काणः, अथ मिश्रद्रेष्काणो भवति तदा शुष्यते। सौम्यग्रहद्रेष्काणः पापयुक्तो भवति, पापग्रहद्रेष्काणो वा सौम्ययुक्तस्तदा मिश्रद्रेष्काणः। तथा निधनभवनसंस्थैरष्टमराश्याश्रितैः व्यालवर्गैः सर्पद्रेष्काणैः विडम्बितो भवति तदा श्वशृगालकाकादिभिर्भुज्यते। भक्ष्यते इत्यर्थः। अत्र व्यालद्रेष्काणः कर्कटाद्यः कर्कटद्वितीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च। उक्तं च-'शशिगृहपूर्वापरगः कीटस्य च मीनपश्चिमोपगतः।

निधने यस्य भवन्ति द्रेष्काणास्तस्य च मृतस्य। भुञ्जन्ति वायसाद्याः प्राणिसमूहा न चास्ति संदेहः। पापग्रहद्रेष्काणो यस्याष्टमराशि-संस्थितो भवति। दहनं प्राप्नोति नरो मृतमात्रो निश्चयात्प्रवदेत्।'एवं सौम्यद्रेष्काणो जलमध्ये क्षिप्यते नरोऽत्र मृतः। सौम्यद्रेष्काणः पापैः पापद्रेष्काणोऽपि सौम्यमुक्तः। यस्याष्टमभवनगतः शोषं प्राप्नोति सोऽपि मृत इति। एवं प्रकारः शवानां मृतानां परिणामो विपत्तिश्चिन्तनीयो विचार्यः। पृथुविरचितशास्त्राद्विस्तीर्णाच्छास्त्राद्गत्यर्थकादि मरणादि चिन्त्यम्। मृतस्य का गतिर्भविष्यति? कस्माच्च लोकादयमागतः?। आदिग्रहणात्तत्र कीदृगासीदिति। अनूकशब्देनेहातीतजन्मोच्यते।१३।

भाषा– अष्टम भाव में अग्नि (पापग्रह का) द्रेष्काण हो तो मृतक का शरीर अग्नि में जलाया जाता है। यदि जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाता है। यदि मिश्र द्रेष्काण (शुभग्रह का द्रेष्काण पापयुत या पापग्रह का द्रेष्काण शुभयुत) हो तो मृत शरीर की विडम्बना (कुत्ते, कौए आदि के द्वारा खाये जाने पर दुर्गति) होती है। इस प्रकार मृत शरीर का परिणाम विचार कर समझना चाहिए तथा मरने के बाद की गति और पूर्वजन्म के वृत्तान्त आदि पृथुरचित शास्त्र से समझना चाहिए।।१३।।

विशेष अर्थ- 'पृथुरचित का अभिप्राय है कि यहाँ मैंने संक्षेप में कहा है। और विशेष विचार करना हो तो पूर्वरचित बृहद् ग्रन्थों को देखिए। तथा– 'पृथुयशा' नामक वराहमिहिर के पुत्र थे। उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों से भी विचार करना चाहिए। यह भी सूचित किया गया है कि नामैकदेश से नाम का ग्रहण होता है।१३।

अथ योऽयं जातो जन्तुः स कस्माल्लोकादागत इति
यदुक्तं तद्विज्ञानं मालिन्याऽऽह–

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितात् त्र्यंशना
थात् प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके ।।१४।।

गुरुरिति। गुरुर्जीवः, उडुपतिशुक्रौ चन्द्रसितौ, सूर्यभौमौ रविकुजौ, यमज्ञौ सौरबुधौ एते विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च जातान् कुर्युः। विबुधलोको देवलोकः, पितृलोकः प्रसिद्धः, तिरश्चस्तिर्यङ्लोकः प्रसिद्धः, एभ्यः आगतान् वदेत्। कथमिति तदर्थमाह। दिनकर-शशिवीर्याधिष्ठितात् त्र्यंशनाथादिति। दिनकरः, सूर्यः, शशी चन्द्रः अनयोः दिनकरशशिनोः मध्याद्यो बली वीर्यवान्। तेनाधिष्ठितो युक्तो यस्त्र्यंशो द्रेष्काणः तस्य यो नाथः स्वामी तस्य यो लोकस्तस्मादागत

इति वक्तव्यम्। तत्र स यदि द्रेष्काणो गुरोः जीवस्य सम्बन्धी भवति तदा विबुधलोकादागत इति वक्तव्यम्। अथ चन्द्रशुक्रयोरन्यतरसम्बन्धी भवति तदा पितृलोकादागत इति वक्तव्यम्। अथ सूर्यभौमयोरन्यत-रसम्बन्धी भवति तदा तिर्यग्लोकादागत इति वक्तव्यम्। अथ शनैश्चरभौमयोरन्यतरसम्बन्धी भवति तदा नरकलोकादागत इति वक्तव्यम्। यस्माल्लोकादागतस्तत्रापि श्रेष्ठमध्यमहीनस्य ज्ञानमाह—प्रवरेत्यादि। यस्य ग्रहस्य प्रदर्शितलोकात्तस्य जन्मज्ञानमाहग्रहस्तुङ्गस्थः स्वोच्चराशिगतो भवति तदा तत्र प्रवरः प्रधान आसीदिति विज्ञेयम्। अथोच्चराशिच्युतो नीचमप्राप्य तदा तत्रासौ मध्यम आसीदिति विज्ञेयम्। नीचस्थः निकृष्टः हीनः एतदनूके प्राग्जन्मनि ज्ञेयम्।।१४।।

भाषा– सूर्य और चन्द्रमा में जो अधिक बलवान् हो वह जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का स्वामी गुरु हो तो देवलोक से जातक आया है– ऐसा समझना चाहिए। यदि चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काणपति हो तो पितृलोक से, यदि सूर्य या मंगल द्रेष्काणपति हो तो तिर्यग् (मर्त्य) लोक से, यदि शनि या बुध उक्त द्रेष्काणपति हो तो नरक से आया है, ऐसा समझना चाहिए। पूर्वजन्म में भी जातक किस प्रकार का था, उसका ज्ञान कहते हैं कि उक्त द्रेष्काणपति अपने उच्च के समीप हो तो पूर्वजन्म में देवादिलोक में भी श्रेष्ठ था, उच्च-नीच के मध्य में हो तो देवादि-लोक में भी मध्यम श्रेणी का था, तथा नीच के समीप में हो तो देवादिलोक में अधम श्रेणी का था, ऐसा समझना चाहिए।।१४।।

अथ मृतस्य का गतिर्भविष्यति तद्विज्ञानं मालिन्याऽऽह–

गतिरपि रिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा
गुरुरथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थः।
उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्षो
भवति यदि बलेन प्रोज्झितास्त्र शेषाः।।१५।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके नैर्याणिकाध्यायः पञ्चविंशः।२५।

गतिरिति।। यस्य जन्मनि लग्नात्षष्ठसप्तमस्थानानि शून्यानि भवन्ति तस्य तत्कालं रिपुस्थाने षष्ठे यो द्रेष्काणो यश्च रंध्रस्थानेऽष्टमे त्र्यंसो द्रेष्काणो वर्तते तयोर्यावधिपती तयोर्मध्ये यो बलवान् तस्य यो लोकोऽभिहितः स एव गतिः। एवं रिपुरन्ध्रत्र्यंशप इति। तत्र तेन मृतेन गन्तव्यमिति। अस्तस्थितो वा। अथ लग्नात्षष्ठसप्तमाष्टम-स्थानानामन्यतमे स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति तदा तस्य दर्शितलोके तेन गन्तव्यम्। अथ लग्नात्षष्ठसप्तमाष्टमस्थानानां द्वे स्थाने त्रीणि वा

सग्रहाणि भवन्ति। अथैकस्मिन्नपि द्व्यादयो ग्रहा भवन्ति तेषां ग्रहाणां यो बलवांस्तस्य यः प्रदर्शितो लोकस्तेन गन्तव्यमिति। नन्वस्तस्थितो वेत्येकं स्थानमुक्तं तत्र सप्तमग्रहणं कृतं तत्षष्ठाष्टमस्थोवपि स्वां गतिं नयतीति किं व्याख्यातम्? उच्यते, अस्तस्थितो वेति वाशब्दश्चशब्दार्थे ज्ञेयः न केवलमस्तस्थिस्तश्चकाराद्रिपुरन्ध्रपश्चेति केचिदस्तस्थितश्चेति पठन्ति। तथा च स्वल्पजातके उक्तम्- 'सुरपितृतिर्यङ्नारकान् गुरुरुडुपसितावसृग्रवीज्ञयमौ। रिपुरंध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिधनस्थाः।।' गुरुस्थेति। अथशब्दः पादपूरणार्थे। यस्य जन्मनिः गुरुर्बृहस्पतिर्लग्नाद्रिपुस्थाने षष्ठे भवति केन्द्रेषु वा छिद्रेऽष्टमे वा स च स्वोच्चस्थः कर्कटे भवति तदैको योगः। अथवाऽन्त्ये भवने मीनराशावुदयतिं विलग्नगते तत्र च गुरुवर्ज्यं शेषा ग्रहा अन्ये ग्रहा बलेन वीर्येण प्रोज्झिता वर्जितां भवन्ति तदा द्वितीयो योगः। अस्मिन्योगद्वये जातस्य मोक्षो भविष्यतीति वक्तव्यम्। उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्ष इत्यत्र चकारो वा शब्दास्यार्थे। यथा पुरुषस्य जन्मकालग्रहवशाद्गतिरुक्ता तथा मरणकाललग्नवशादपि गतिर्वक्तव्या। यस्मात्स्वल्पजातके उक्तम्-

'षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुचेद्भवति मीनलग्ने वा।
शेषैः खगैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः' इति ॥१५॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
नैर्याणिकाध्यायः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

भाषा- जन्म-लग्न से ६।७।८ स्थान में जो ग्रह बलवान् हो उसका जो लोक (पूर्व श्लोक कथित) है उस लोक में मरने के बाद जाता है। यदि ६।७।८ इन स्थानों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठ भावगत द्रेष्काण के स्वामियों में जो बली हो उसका जो लोक कहा गया है उस लोक में जाता है। अब मोक्ष योग कहते हैं:-कर्क स्थित बृहस्पति यदि लग्न से ६।१।४।७।१०।८ इनमें किसी स्थान में हो अथवा मीन लग्नमें शुभ ग्रहका नवांश हो, इन दोनों योगोंमें अन्य ग्रह सब निर्बल हों तो जातकको मोक्षलाभ होता है। १५।

विशेष अर्थ- यहाँ 'अस्तस्थितो वा' इस प्रकार विकल्प शब्द से ६।८ स्थान स्थित ग्रह का भी बोध होता है। यथा लघुजातक में स्वयं आचार्य का वचन है-

'रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिधनस्थाः।' स्पष्टार्थ।

तथा-जिस प्रकार जन्म लग्न से गति का ज्ञान कहा गया है, उसी प्रकार मरणकालिक लग्न से भी समझना चाहिये। यथा लघुजातक में-

'षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुर्भवति मीनलग्ने वा।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः' स्पष्टार्थ ॥१५॥

अथ नष्टजातकाध्यायः ॥२६॥

अथ नष्टजातकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रसूतिकालज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

आधानजन्मापरिबोधकाले सम्पृच्छतो जन्म वदेद्विलग्नात्।
पूर्वापरार्धे भवनस्य विन्द्याद्भानावुदग्दक्षिणगे प्रसूतिम्॥१॥

आधानेति॥ यस्याधानकालो ज्ञायते तस्याधानकालात् पूर्वमेव जन्म व्याख्यातं तत्कालमिन्दुसहित इत्यादिना जन्मकालश्च व्याख्यात एव। एवमाधानजन्मकालयोरपरिबोधे अज्ञाने सति संपृच्छतः प्रष्टुः विलग्नात्प्रश्नलग्नाज्जन्म वदेत् ब्रूयात्। येन लग्नेन प्रष्टा पृच्छति तस्य यदि पूर्वार्द्धं प्रथमहोरा भवति तदा प्रष्टुः भानावादित्ये उदयगते उत्तरायणस्थे जन्म वक्तव्यम्। मकरादिराशिषट्कस्थे जात इत्यर्थः। अथ लग्नस्यापरार्धं द्वितीया होरा भवति तदा भानौ दक्षिणगते दक्षिणायनस्थे जन्म वक्तव्यम्। कर्कटादिराशिषट्कस्थे जात इत्यर्थः। तथा च आधानजन्मनी यस्याविज्ञाते तस्य देहिनः जन्म सम्पृच्छतस्तस्य प्रश्नलग्नाद्विनिर्दिशेत्॥१॥

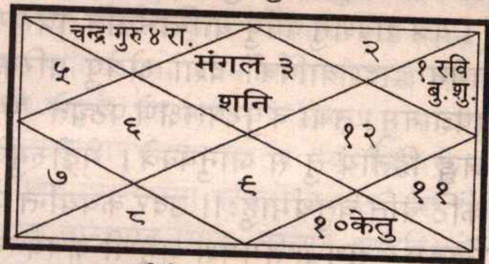
भाषा- जिसका गर्भाधान या जन्मसमय ज्ञात नहीं हो, ऐसे मनुष्य के प्रश्न-लग्न के जन्म-समय समझना चाहिये। जैसे प्रश्न लग्न राशि के १५ अंश के भीतर (यानी प्रथम होरा में) हो तो उत्तरायण (मकर से ६ राशि के सूर्य) में, यदि लग्न १५ अंश के ऊपर (यानी द्वितीय होरा में) हो तो दक्षिणायन (कर्क से ६ राशिस्थ सूर्य) में जन्म समझना चाहिए॥१॥

उदाहरण- मानो काशी में संवत् २००१ वैशाख शुक्ल पक्ष ७ तिथि शनिवार सूर्योदय से ११।१० इष्ट घटी पल पर किसी ने अपने अज्ञात जन्म-समय होने के कारण नष्ट जन्माङ्गपत्र बनाने के लिये प्रश्न किया तो उस समय के स्पष्ट ग्रह और लग्न चक्र में देखिये। दिनमान ३२।२० है। यहाँ प्रश्न लग्न १५ अंश के ऊपर है इसलिये जन्म का दक्षिण अयन हुआ॥१॥

प्रश्नकालिकः स्पष्टग्रहाः-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राशि	लग्न
०	३	२	०	३	०	१	३	२
१५	३	२२	२०	२८	३	२६	११	२८
४३	०	४५	४६	५	५३	१	३२	१५
२८	२६	४७	११	३७	५६	४६	२	५७

प्रश्नलग्न कुण्डली



अथ वर्षर्तुज्ञानमुपजातिकयाऽऽह-

लग्नत्रिकोणेषु गुरुस्त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात्।
ग्रीष्मोऽर्कलग्ने कथितास्तु शेषैरन्यायनर्त्तावृतुरर्कचारात्।२

लग्नत्रिकोणेष्विति।। त्रिभागैर्द्रेष्काणैर्लग्नत्रिकोणेषुप्रथमपञ्चम-नवमस्थानेषु गुरुर्जीवो ज्ञेयः। तद्यथा। प्रश्नलग्नस्य यदि प्रथमद्रेष्काणो भवति तदा य एव लग्नराशिस्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्तव्यम्। अथ लग्नस्य द्वितीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नाद्यः पञ्चमो राशिस्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्त-व्यम्। अथ लग्नस्य तृतीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नाद्यो नवमो राशि-स्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्तव्यम्। एवं केषाञ्चिन्मतम्। अथान्येषां मतं यथा। प्रश्नलग्नस्य यदा प्रथमो द्रेष्काणादयो भवति तदा लग्नराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिस्तिष्ठति तावत्संख्यानि प्रष्टुर्वर्षाणि वक्तव्यानि। अथ लग्ने द्वितीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नात्पञ्चमराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिर्भवति तावत्संख्यानि प्रष्टुर्वर्षाणि वक्तव्यानि। यदा लग्नस्य तृतीयो द्रेष्काणो भवति तदा लग्नान्नवमराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिर्भवति तावत्संख्यानि प्रष्टुर्वर्षाणि वक्तव्यानि। तद् व्याख्यानं न शोभनं, पूर्वव्याख्यानमेव श्रेयः। यस्माद्यवनेश्वरः- 'द्रेष्काणलग्नक्रमस्तु राशौ गुरुर्विलग्नादित्रिकोणगोऽभूत्। समुद्गते तद्भवनक्रमेण स्वाचार-भादब्दगतिं प्रगण्यात्।।' यद्यप्यत्र सामान्येनोक्तं बृहस्पतेरवस्थानम्। तथा च द्वादशभागक्रमेण प्रतिराशौ सञ्चार्यः। तद्यथा- यदि प्रश्न-लग्नस्य प्रथमद्वादशभागोदयो भवति तदा लग्नस्थे जीवे जातः। द्वितीयद्वादशभागश्चेत्तदा लग्नाद्द्वितीये गुरौ जातः। एवं तृतीयादि-द्वादशभागोदये तृतीयादिषु स्थानेषु ऊह्यम्। 'विकल्प्य वर्षाणि वयो-नुमानात्' एवं बृहस्पतेरवस्थानं ज्ञात्वा तस्य एव वयोनुमानात्तस्या-कृतिं शरीरमवेक्ष्य वर्षाणि विकल्प्य वयःप्रमाणं बुद्ध्वा द्वादशसु वर्षेषु विकल्पना कार्या। किमस्मिन्नेव भगणपरिवर्तज्ञातराशेः बृहस्पतेरव-

स्थानमभूदुत द्वितीय उत तृतीयादिषु। एवं तस्याकृतिमवेक्ष्य वयोनुमानं वक्तव्यम्। यत्र द्वादशसु वर्षेषु भ्रान्तिर्भवति तत्र पुरुषलक्षणोक्तेन दशाविभागेन द्वादशवार्षिकीं दशां क्षेत्रेषु परिकल्प्य तत्तत् क्षेत्राङ्गसंस्पर्शाद्वर्षज्ञानम्। तथा च पुरुषलक्षणे पठ्यते-'पादौ सगुल्फौ प्रथमं प्रदिष्टं जङ्घे द्वितीयं तु स जानुवक्त्रे। मेढ्रोरुमुष्काश्च ततस्तृतीयं नाभिं कटिं चेति चतुर्थमाहुः।। उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमथ स्तनान्वितम्। अथ सप्तममंश जत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे।। नवमं नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा। अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम्।।' इति। किं त्वत्र विंशत्यधिकं वर्षशतं यस्य जन्मनोऽतीतं तस्य नष्टजातकवर्षज्ञानोपाय एव नास्ति। एवं वर्षेषु ज्ञातेषु ऋतुज्ञानमाह। ग्रीष्मोऽर्कलग्न इति। येन लग्नेन प्रष्टा पृच्छति तत्र चेदर्कः सूर्यः स्थितस्तद्द्रेष्काणो वा लग्ने तदा ग्रीष्मे जात इति वक्तव्यम्। कथितास्तु शेषैरिति। शेषैरन्यैश्चन्द्रादिभिर्ग्रहैर्लग्नस्थैः ऋतुः पूर्वमेव कथित उक्तः द्रेष्काणैः शिशिरादय इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तः। तत्र यदा शनैश्चरो लग्ने भवति तद्द्रेष्काणो वा तदा शिशिरे जात इति वक्तव्यम्। एवं शुक्रे लग्नगते वा तद्द्रेष्काणो तदा वसन्ते जातः। एवं भौमे ग्रीष्मे। एवमेव रवावपि। चन्द्रे लग्नगते तद्द्रेष्काणे वा वर्षासु। बुधे शरदि। जीवे हेमन्त इति। यदा बहवो लग्नगताः भवन्ति तदा तेषां मध्ये यो बलवान् तदुक्तर्तौ जात इति वक्तव्यम्। अथ न कश्चिद्यदि लग्नगतो भवति तदा यस्य सम्बन्धी द्रेष्काणोदयो भवति तदा तदुक्तर्तौ जात इत्येवं वक्तव्यम् अन्यायनर्तावृतुरर्कचारादिति। अन्यस्मिन्नयने वान्यस्मिन्नृतावर्कचारादृतुः अन्यस्मिन्नयने तदयनासम्भवश्चेतुरन्यो भवति तदर्तुरर्कचारवशेन वक्तव्यः। एतदुक्तं भवति। सौरेण मानेन ऋतुर्वक्तव्यः न तु चान्द्रेण। यथा शिशिरे ज्ञाते मकरकुम्भयोरन्यतरे राशौ सूर्यस्यावस्थानं ज्ञेयम्। एवं शेषराशिष्वप्यूह्यम्। अनेन लौकिकश्चान्द्रमासो निराकृतो भवतीति।२

भाषा- लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न की राशि में जन्मकालिक गुरु समझना चाहिये। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न से पञ्चम राशि में और तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न से नवम राशि में जन्मकालिक गुरु समझना चाहिए। पुनः संवत्सर जानने के लिये प्रश्नकर्ता के वयस (आकृति रूप) के अनुमान से वर्ष-प्रमाण समझना। अर्थात् प्रश्न संवत्सर से उतने वर्ष पूर्व संवत्सर में प्रष्टा का जन्म हुआ, ऐसा समझना चाहिए तथा लग्न में

रवि हो तो ग्रीष्म ऋतु और अन्य ग्रहों की ऋतु 'शिशिरादयः शिशुरुचाङ्गवादिषु' इत्यादि पूर्व २ अध्याय १२ श्लोक में कही गयी है उससे समझना चाहिए। जो अयन आया हो उसी अयन की ऋतु है या भिन्न अयन की ऋतु है, इस विचार के लिए ऋतु का ज्ञान सूर्य-संक्रान्ति से ('मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः। ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरश्च तद्वद् हेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः' इस रीति से) समझना चाहिये। अर्थात् चान्द्रमान (माघ, फाल्गुन इत्यादि) से नहीं।।२।।

विशेष अर्थ- भाव यह है कि-बृहस्पति एक राशि में लगभग एक-एक वर्ष रहता है। इसलिये प्रति बारह वर्ष के बाद फिर उस राशि में आ जाता है। उक्त रीति से जन्मकालिक गुरु की राशि से वर्तमान (प्रश्नकालिक) गुरु की राशि तक जितनी संख्या हो उतने वर्ष 'प्रश्न संवत्सर से' पूर्व उस राशि में गुरु था, एवं उस संख्या में १२, १२ जोड़ने से जितनी संख्या हो उतने-उतने वर्ष पूर्व उस राशि में बृहस्पति की स्थिति रहती है। जैसे मानों प्रश्न-समय में गुरु कर्क में है और जन्म के बृहस्पति की राशि धनु है तो धनु से कर्क तक का अन्तर ७ हुआ। इसलिये प्रश्न संवत् से ७ वर्ष तथा ७+१२=१६ वर्ष, ३१, ४३, ५५, ६७, ७६, ६१ इत्यादि वर्ष पहले धनु में गुरु की स्थिति सिद्ध होती है। इसलिये यदि प्रश्नकर्त्ता के वयस अनुमान से ७ के समीप हो तो ७ को, १६ के समीप हो तो १६ को, ३१ वर्ष के समीप अनुमान हो तो ३१ को वर्तमान (प्रश्न) संवत्सर में घटाने से जन्मसंवत्सर होता है जो आगे उदाहरण में और स्पष्ट है।

(एवं ऋतु सर्वदा सौरमान से ही ग्रहण करना चाहिये। जैसे वसन्त ऋतु हो तो-मीन और मेष राशिस्थित सूर्य समझना; चन्द्रमान से चैत्र, वैशाख नहीं।)

तथा लग्न में ग्रह हो तो जो बली हो उस ग्रह की ऋतु, यदि ग्रह नहीं हो तो जिस ग्रह का द्रेष्काण लग्न में हो उसकी ऋतु समझनी चाहिए।

उत्तर अयन में शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु होती है। दक्षिण अयन में वर्षा, शरद् और हेमन्त-ये तीन ऋतुएँ होती हैं। इसे ध्यान में रखना चाहिए।।२।।

उदाहरण- प्रश्नकालिक मिथुन लग्न में तृतीय द्रेष्काण है इसलिये मिथुन से नवम कुम्भ राशि में जन्मकालिक गुरु हुआ। अतः कुम्भ से वर्तमान गुरु राशि कर्क तक ६ संख्या हुई, इसलिये वर्तमान संवत्सर से ६ वर्ष, १८ वर्ष, ३० वर्ष, ४२ वर्ष पूर्व गुरु की स्थिति कुम्भ में हो सकती है। अब प्रश्नकर्त्ता की आकृति के अनुमान से १५ और २१ के बीच वयस है तो उसके समीप की संख्या को वर्तमान संवत् २००१ में घटाने से जन्म-संवत् १६८३ हुआ। अब ऋतुज्ञान के लिये लग्न में शनि और मंगल दो ग्रह हैं। इनमें शनि बली है इसलिये शिशिर ऋतु हुई। परञ्च प्रथम दक्षिण अयन सिद्ध हुआ है और ऋतु उत्तर अयन की होने के कारण अगले श्लोक के अनुसार शनि के स्थान में गुरु की ऋतु हेमन्त जन्म की ऋतु हुई।

विशेष- अनुमानसिद्ध प्रश्नकर्त्ता की वयस वर्ष संख्या को प्रश्न संवत्सर में घटाने से जो जन्म संवत्सर हो, उसमें यदि ठीक गुरु पूर्वसिद्ध जन्मराशि का हो तो वही जन्म संवत्सर होता है। कदाचित् १ वर्ष का अन्तर हो जाता है इसलिये उस संवत्सर के पञ्चाङ्ग और उसके १ वर्ष आगे या पीछे के पञ्चाङ्ग देखना जिसमें सिद्ध जन्मराशि का गुरु मिले वही जन्म संवत् जानना।

जैसे उदाहरण में अनुमित वयस १८ को प्रश्न संवत् में घटाने से जन्म संवत् १९८३ हुआ। और उस संवत् के पञ्चाङ्ग में जन्मराशि कुम्भ का गुरु भी है, इसलिये वही जन्म संवत्सर हुआ॥२॥

अथायने विलोमे ग्रहपरिज्ञानादृतुपरिज्ञानं मासपरिज्ञानं चेन्द्रवज्रयाऽऽह-

चन्द्रज्ञजीवाः परिवर्तनीयाः शुक्रारमन्दैरयने विलोमे।
द्रेष्काणभागे प्रथमे तु पूर्वो मासोऽनुपाताच्च तिथिर्विकल्प्यः॥३॥

चन्द्रज्ञेति॥ अयने विलोमे सति चन्द्रज्ञजीवाः शुक्रारमन्दैः परिवर्तनीयाः। शशिबुधगुरवः सितभौमशनैश्वरैः अयनव्यत्यये प्राप्ते सति परिवर्तनीयाः, व्यत्ययेन व्यवस्थाप्याः। एतदुक्तं भवति। यद्यु- त्तरायणे प्रावृट्काले ज्ञाते तदा वसन्ते जात इति वक्तव्यम्। चन्द्रः शुक्रेणात्र परिवर्तितः। अथोत्तरायणे शरदि प्राप्तायां ग्रीष्मे जातः। दक्षिणायने ग्रीष्मे ज्ञाते शरदि जातः। अथ बुधो रविभौमयोरपवर्तितौ रविभौमौ बुधेन च उत्तरायणे हेमन्ते इति शिशिरे जातः। दक्षिणायने शिशिरे प्राप्ते हेमन्ते जात इति वक्तव्यम्। अत्र जीवमन्दौ परस्पर- मपवर्तितौ। एवमृतौ ज्ञाते मासज्ञानमाह। द्रेष्काणभागो वर्तते तदा ज्ञातर्तौ प्रथमे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ लग्ने द्रेष्काणस्य द्वितीयो भागो वर्तते तदा ज्ञातर्तौ द्वितीये मासि जातः। अत्रापि अर्कावस्थानत एव मासज्ञानम्। अथ एवं मासं ज्ञात्वा तिथिज्ञानार्थमाह। अनुपाताच्च तिथिर्विकल्प्यः, अनुपातात्त्रैराशिकात्तिथिर्विकल्प्यो विकल्पनीयः। लग्नस्य षड्लिप्ताशतानि द्रेष्काणः। द्रेष्काणेन ऋतुज्ञानं तदर्धलिप्ताशतत्रयम्। लिप्ताशतत्रयेण मासज्ञानम्। अत्रानुपातात्तिथि- र्लिप्ता दशकेनैको ज्ञेयः। एष तिथिरादित्यभागः। एवमादित्यस्य राशयो भागा ज्ञेयाः। मासा राशयस्तिथयो भागाः। यस्मिंश्च तिथौ ज्ञातवर्षे यथा प्रदर्शितादित्यो भवति तस्मिन् तिथौ तस्य जन्म इति वक्तव्यम्। ३

भाषा- यदि अयन और ऋतु में भिन्नता हो तो चन्द्रमा को शुक्र से, बुध को मंगल से और गुरु को शनि से परस्पर परिवर्तन करके ऋतु समझे। इस प्रकार अयन और ऋतु में एकता होती है। मास ज्ञान के लिये लग्नगत

द्रेष्काण के पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर) हो तो ऋतु का पहिला सौर मास, यदि द्रेष्काण का उत्तरार्ध हो तो दूसरा मास समझना चाहिए। उसमें द्रेष्काण का भुक्तअंशों से अनुपात द्वारा तिथि (सूर्य के भुक्तांश) समझना चाहिए।।३।।

विशेष अर्थ- अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंश की कला (३००) में ३० तिथि तो द्रेष्काण के पूर्वार्ध वा परार्ध के भुक्तकला में क्या? $\frac{\text{३०} \times \text{भुक्तकला}}{\text{३००}} = \frac{\text{भुक्तकला}}{\text{१०}}$ अथवा $\frac{\text{३०} \times \text{भुक्तांशादि}}{\text{५}} = \text{६} \times \text{भु०अंशादि}$। इससे सिद्ध होता है कि द्रेष्काण भुक्त कलादि को १०से भाग देकर लब्धि सूर्य के भुक्तांशादि अथवा द्रेष्काणार्धभुक्तांशादि को ही ६ से गुणा कर देने से सूर्य के भुक्तांशादि होते हैं।।३।।

उदाहरण- पूर्व लग्न के उत्तरार्ध होने से दक्षिण अयन और लग्न में शनि के होने के कारण शिशिर ऋतु (उत्तर अयन) की हुई, इसलिये शनि के स्थान में गुरु की ऋतु हेमन्त लेने से अयन और ऋतु में एकता हुई। अब हेमन्त ऋतु में वृश्चिक और धनु दो सौर मास होते हैं, उनमें क़ौन मास है? यह जानने के लिये लग्न २। २३। १५। ५७ के तृतीय द्रेष्काण के भुक्तांश ३।१५।५७ पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर है) अतः प्रथम सौर मास (वृश्चिकार्क) हुआ। उसमें अनुपात से अथवा भुक्तांश ३।१५।५७ को छः गुना करके सौर तिथि (सूर्य के भुक्त वृश्चिकांशादि) १९।३५।४२ अतः जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य ७।१९।३५।४२ राश्यादि हुआ। इस पर से इष्टकाल साधन कर जन्मेष्टकाल समझना चाहिए। फिर उस समय स्पष्ट ग्रह लग्नादि भाव साधन द्वारा जो जन्म-पत्र होगा वही 'नष्ट जन्मपत्र' समझना चाहिए। और उस पर से अज्ञात जन्म जातक प्रश्नकर्ता को फलादेश वास्तव में जन्मपत्रवत् कहना चाहिए।

यहाँ कितने लोग यह समझते हैं कि-'प्रश्न पर से वास्तव ही जन्म समय आ जाता है' परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जन्मकालिक जो विषय अज्ञात हो केवल उसी के लिए प्रश्न करने का आदेश है, वह अनेक प्रकार से सिद्ध होते हैं, जो आचार्य स्वयं भी कहते हैं-

प्रसङ्गवश-सूर्य जानकर इष्टकाल जानने का प्रकार-

इष्टार्कस्य तदासन्नपङ्क्त्यर्केण सहान्तरम् ।
कालीकृत्याऽर्कगत्याप्तदिनाद्येन युतो नितम् ।।
तत्पंक्तिस्थं च वाराद्यमिष्टार्केऽधिकहीनके ।
दिनाद्य इष्टकालोऽसौ ज्ञेयो ज्ञातार्कतो बुधैः ।।

अभीष्ट सूर्य के आसन्न जिस पंक्ति का सूर्य हो उस पंक्ति के सूर्य और अपने इष्ट सूर्य के अन्तर करके उसकी कला बनाना-उसमें पंक्तिस्थ सूर्य की गति कला से भाग देकर लब्धि दिनादि (दिन, घटी पल) को पंक्ति दिनादि में जोड़ने या घटाने से इष्टकाल होता है। यदि पंक्ति के सूर्य से इष्ट सूर्य अधिक हो तो पंक्ति में लब्धि जोड़ना, अन्यथा घटाना चाहिये।

जैसे सं० १९८३ जन्मकालिक सूर्य ७।१६।३५।४२ इसके आसन्न मार्गकृष्ण अमावस्या रविवार मिश्रमान काल घड़ी ४४ पल ३६ का सूर्य ७।१६।५२।३९ इसमें इष्ट सूर्य को घटाने से राश्यादि ०।०।१६।५७। इसमें पंक्तिस्थ सूर्य की गति कला ६१।६ को एकजातीय बनाकर भाग देने से लब्धि दिनादि ०।१६।४० को इष्टसूर्य अल्प होने के कारण पंक्ति के वारादि १।४४।३६ में घटाने से दिनादि १।२७।५६ यह जन्म का इष्टकाल हुआ। अर्थात् मार्गकृष्ण अमावस्या रविवार सूर्योदय से इष्ट घटी पल २७।५६ जन्म समय हुआ। इस इष्ट पर से जन्मपत्र बनाने से नष्ट जन्माङ्गपत्र कहलाता है॥ ३॥

अथ चन्द्रमानतिथिज्ञानोपायमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

अत्रापि होरापटवो द्विजेन्द्राः सूर्यांशतुल्यां तिथिमुद्दिशन्ति।
रात्रिद्युसञ्ज्ञेपु विलोमजन्म भागैश्च वेलाः क्रमशो विकल्प्याः ।४

अत्रापीति ॥ अत्रास्मिंस्थितिज्ञाने द्विजेन्द्रा मुनयो होराशास्त्रज्ञाः सूर्यांशतुल्यामंशस्थाने स्फुटार्कभागसमां तिथिमुद्दिशान्ति कथयन्ति। प्रश्नकाले तात्कालिकेनादित्येन यावन्तो भागा भुक्तास्तावन्तः शुक्ल-प्रतिपत्प्रभृतिज्ञातमासस्य तिथयो व्यतीताः। अत्र चान्द्रमाने मकर-मासे जाते माघमासो ज्ञेयः। एवमन्येष्वपि मासकल्पना कार्या। तथा च मणित्थः– 'पृच्छकाले रविणा या वन्तोंऽशाः स्फुटेन संभुक्ताः। राशे-स्तास्तिथयः स्युः शुक्लादावर्कमासस्य।' एवं दिने ज्ञाते किमयं रात्रौ जातो दिवा वेति तदर्थमाह- रात्रिद्युसंज्ञेष्विति। रात्रिद्युसंज्ञाः पूर्वं व्याख्याताः गोऽजाश्विकर्किमिथुना इत्यादिना। तत्र प्रश्नकाले यदि रात्रिसंज्ञा लग्नो भवति तदा तस्य विलोमता दिवा जन्म वक्तव्यम्। अथ द्युसंज्ञा लग्नो भवति तदा रात्रौ जन्म वक्तव्यम्। एवं दिनरात्रिविभागे ज्ञाते वेला-ज्ञानमाह—भागैश्च वेलाः क्रमशो विकल्प्याः। यस्मिन्दिने पुरुषस्य जन्मज्ञानं तस्मिन्दिने आदित्यो विज्ञातः ततस्तस्य पुरुषस्य यदि दिवा जन्म तदा तस्मादादित्याद्दिनप्रमाणं कार्यम्। अथ रात्रौ जन्म तदा रात्रिप्रमाणम्। तत्र प्रश्नलग्नस्य तस्मिन्काले यावन्तश्चषका भुक्तास्तैरनुपातः कार्यः। यदि पुरुषस्य दिवा जन्म तदा दिनप्रमाणेन। यदा रात्रौ तदा रात्रिप्रमाणेन तत्काललग्नभुक्त-चषकाणां गणनां कृत्वा तस्यैव लग्नस्य स्व-देशराश्युदयप्रमाणेन भागमपहृत्यावाप्तां वेलां तावता कालेन गतेन दिनस्य रात्रेर्वा जन्म वक्तव्यम्। एवं लग्नभागैः क्रमशः परिपाट्या वेला समयः विकल्प्या विकल्पनीया॥४॥

मेषादिराशिनां चषकाः		
मेष	२००	मीन
वृष	२४०	कुम्भ
मिथुन	२८०	मकर
कर्क	३२०	धनु
सिंह	३६०	वृश्चिक
कन्या	४००	तुला

भाषा- पूर्व प्रकार से मास के ज्ञान होने पर कितने होराशास्त्रज्ञ आचार्य प्रश्नकालिक सूर्य के अंशतुल्य चन्द्र-तिथि कहते हैं। अर्थात् सूर्य के भुक्तांश तुल्यगत तिथि और कला-विकला तुल्य वर्तमान तिथि की गत घटी पल मानते हैं। अब प्रकारान्तर से इष्टकालका ज्ञान-प्रकार कहते हैं कि-प्रश्न लग्न दिन-बली राशि हो तो रात्रि में और रात्रि-बली राशि हो तो दिन में जन्म समझना चाहिये। तथा लग्न के भुक्तांश के द्वारा अनुपात से दिनगत या रात्रिगत इष्टकाल का ज्ञान कर लेना चाहिये।।४।।

उदाहरण- जैसे हेमन्त ऋतु के प्रथम मास (मार्गशीर्ष) का ज्ञान हुआ तो प्रश्नकालिक सूर्य के भुक्तांशादि १५।४३।२८ एतत् तुल्य तिथि अर्थात् मार्गशीर्ष १५ पूर्णिमा व्यतीत होकर पौष कृष्ण प्रतिपदा के ४३।२८ घड़ी पल बीतने पर जन्म हुआ। फिर पञ्चांग देखकर तिथि भोग के अनुसार इष्टकाल का ज्ञान पर लेना चाहिये। प्रकारान्तर से इष्टकाल का उदाहरण-प्रश्न लग्न मिथुन दिन बली है इसलिये रात्रि में जन्म निश्चित हुआ। अतः प्रश्नकालिक रात्रिमान १७।४० को लग्न के भुक्तांश २३ सम्बन्धी काशी के उदयमान से भुक्त पल २३३ इसके द्वारा अनुपात किया कि-मिथुन के उदयमान ३०४ में रात्रिमान २७।४० तो लग्न के भुक्तपल में क्या? अर्थात् रात्रिमान को भुक्तपल से गुणा कर ६४४६।२ में उदयमान ३०४ के भाग देने से लब्धि रात्रिगत घटी-पल-२१।१२ इसमें दिनमान ३२।२० जोड़ने से सूर्योदय से इष्टकाल ५३।२२ हुआ।४।

विशेष अर्थ- राशि का उदयमान जहाँ प्रश्न हो वहाँ का ग्रहण करना चाहिये।४।

अर्थान्तरेण मासज्ञानमिन्द्रवज्रयाह

केचिच्छशाङ्काध्युषितान्नवांशाच्छु-
क्लान्तसञ्ज्ञं कथयन्ति मासम्।
लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं
भम्प्रोच्यतेऽङ्गालभनादिभिर्वा ।।५।।

केचिदिति।। केचिदाचार्याः शशाङ्काध्युषिताच्चन्द्रयुक्तान्नवांशाच्छुक्लान्तसंज्ञं मासं कथयन्ति प्रश्नकाले यस्मिन्नवांशके नवमेंऽशे चन्द्रमा भवति तमपि नवांशकं त्रिधा परिकल्प्य तस्मिन्नवांशके नवमेंऽशे चन्द्रमा व्यवस्थित इति चन्द्रनवांशकगतं नक्षत्रमन्वेष्यम्। तन्नक्षत्रशुक्लान्तसंज्ञकेन सितस्य जन्म वक्तव्यम्। अत्र यस्य नक्षत्रस्य शुक्लान्तसंज्ञो मासो नास्ति तस्य बृहस्पतिचारोक्तविधिना शुक्लान्तसंज्ञो मासः परिकल्प्यः। तत्रोक्तम्– 'नक्षत्रेण सहोदयमस्तं वा येन याति सुरमन्त्री। तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव।। वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानि योज्यानि। क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च

यद्वर्षम् ।। ' इति। तत्र चन्द्रमा यदि वृषनवांशके तन्नवांशकसप्तमकस्या-र्वाग् भवति तदा कार्तिके मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ वृषनवांशके तन्नवांशसप्तकस्योर्ध्वं भवति मिथुननवांशके तन्नवांशकषट्कस्या-र्वाग् यदा चन्द्रमा भवति तदा मार्गशीर्षे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ मिथुननवांशके तन्नवांशकषट्कस्योर्ध्वं कर्कटनवांशके तन्नवांशक-पञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा पौषे मासि जात इति वक्त-व्यम्। अथ कर्कटे तत्तन्नवांशकपञ्चकस्योर्ध्व सिंहनवांशके तन्नवांश-चतुष्टयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमाः तदा माघे मासि जन्म इति वक्तव्यम्। अथ सिंहनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्योर्ध्वं कन्यानवांशके तन्नवांशक-सप्तकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति फाल्गुने मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ कन्यानवांशकसप्तकस्योर्ध्वं तुलानवांशके तन्नवांशकषट्कस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा चैत्रे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ तुलानवांशके तन्नवांशषट्कस्यो र्ध्वं वृश्चिकनवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा वैशाखे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ तुला-नवांशके तन्नवांशषट्कस्योर्ध्वं वृश्चिकवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा वैशाखे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ वृश्चिके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्ध्वं धन्विनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा ज्येष्ठे मासि जात इत्यवगन्तव्यम्। अथ धन्वि-नवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्योर्ध्वं मकरनवांशकत्रयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा आषाढे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ मकरनवांशके तन्नवांशकत्रयस्योर्ध्वं कुम्भनवांशके तन्नवांशकद्वयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा श्रावणे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ कुम्भनवांशके तन्न-वांशकद्वयस्योर्ध्वं मीननवांशे तन्नवांशके पञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा भाद्रपदे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ मीननवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्योर्ध्वं मेषनवांशे तन्नवांशाष्टकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदाऽश्वयुजि मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ मेषनवांशके तन्नवांशाष्टकस्योर्ध्वं यदि चन्द्रमा भवति तदा कार्तिके मासि जात इत्यवगन्तव्यम्। यस्मिन्कृत्तिका रोहिणी च स कार्तिकः। मृगशिरार्द्रा च मार्गशीर्षः। पुनर्वसुः पुष्यश्च पौषः। आश्लेषा मघा च माघः। पूर्वा-फाल्गुन्युत्तराफाल्गुनी हस्तश्च फाल्गुनः। चित्रा स्वाती च चैत्रः। विशा-खानुराधा च वैशाखः। ज्येष्ठामूले ज्येष्ठः। पूर्वाषाढोत्तराषाढश्चाषाढः।

श्रवणधनिष्ठे च श्रावणःशतभिषक् पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदाश्च भाद्रपदः। रेवत्यश्विनीभरण्यश्चाश्वयुजः। यस्मादुक्तम्-'त्रिभं तु पञ्चम-मुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्' इति। एवं शुक्लान्तस्य मासस्य निश्चयः शुक्लान्तग्रहणेनैतत्प्रतिपादयति। यत्तथा– शुक्लपक्षान्ते येन नक्षत्रेण युक्तस्तदुपलक्षितो मासो वक्तव्यः। यथा कार्तिकशुक्लपक्षान्ते कृत्तिका-रोहिणीभ्यामन्यतरेन यश्चन्द्रमा भवति तेन कार्त्तिको मास उच्यते। एवमन्येषामपि युज्यते। तदैतत् ब्रुवते। एतदुक्तं भवति। न शुक्ला-न्तो मास इत्यतो मासः कृष्णान्त एव। तथा च यवनेश्वरः- 'मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते पूर्वे शशी मध्यबलो दशाहे।' तथा च- 'यद्राशि-संज्ञः शीतांशुः प्रश्नकाले नवांशके। स्थितस्तद्राशिगः पूर्णो यस्मिन्भ-वति चन्द्रमाः।। जन्ममासः स निर्दिष्टः पुरुषस्य तु पृच्छतः। कृष्ण-पक्षान्तिको मासो ज्ञेयोऽत्र तु विपश्चिता।'लग्नत्रिकोणेत्यादि। लग्न-स्य प्रश्नलग्नस्य त्रिकोणयोश्च नवमपञ्चमयोर्मध्याद्यस्तत्कालमुत्तमेन प्रधानवीर्येण बलेन युक्तस्तद्धं राशिः प्रोच्यते कथ्यते। तस्मिन्राशौ गते चन्द्रमसि जाता इति वक्तव्यम्। तथा च यवनेश्वरः- 'होरादिवीर्याधिक-लग्नभाजि स्थानं त्रिकोणे शशिनोऽवधार्यम्।' अङ्गालभनादिभिर्वा। कालांगानीत्यनेन प्रदर्शितो यः कालपुरुषस्याङ्गविभागस्तदालभनाद्वा-ऽनेन विधिना प्रष्टुः स्पृशतः यदेव कालपुरुषस्याङ्गं स्पृशति तत्स्थे चन्द्र-मसि जात इति वक्तव्यम्। आदिग्रहणात्प्राण्युक्तसत्त्वदर्शनश्रवणं गृह्यते।५

भाषा- कितने आचार्यों का मत है किं-प्रश्नकाल में चन्द्रमा जिस नवांश (नक्षत्र चरण) में हो उस नाम से प्रसिद्ध 'शुक्लान्त्य चान्द्रमास' जन्ममास समझना। तथा लग्न, पञ्चम, नवम इन तीनों में जो अधिक बली हो वह जन्मराशि होती है। अथवा प्रष्टा अपने जिस अङ्ग को स्पर्श करके प्रश्न करे उस अंग में 'कालांगानि' इत्यादि प्रकार से जो राशि हो वही राशि जन्म-राशि होती है।।५।।

नक्षत्र से मास की संज्ञा जानने का प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में देखिये। *यथा-*

'नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।
कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादिद्वयं द्वयम् ।।
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम् ।।'

स्पष्टार्थ चक्र-

कार्ति.	मा.शी.	पौष	माघ	फाल्गु.	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भा.प.	आश्वि.	माह
कृत्ति.	मृगशि.	पुष्य	श्लेषा	पू.फा.	चित्रा	विशा.	ज्येष्ठा	पू.षा.	श्रवण	शत.	रेवती	नक्षत्र
रोहि.	आर्द्रा	पुन.	मघा	उ.ह.	स्वा.	अनुरा.	मूल	उ.षा.	धनि.	पू.भाद्र उ.भाद्र	अश्विनी भरणी	

इसका उदाहरणप्रश्नकाल में चन्द्रमा पुनर्वसु के चतुर्थ चरण में है, इसलिये शुक्लान्त्य पौष मास जन्म मास हुआ। चान्द्रमास २ प्रकार के माने जाते हैं। एक कृष्णान्त्य, दूसरा शुक्लान्त्य अर्थात् कृष्ण प्रतिपदादि से शुक्ल पूर्णिमा पर्यन्त। यहाँ इस प्रकार से शुक्लान्त्य मास ग्रहण करके तिथि का ज्ञान करना चाहिये।

अथ प्रकारान्तरेण जन्मेशराशिज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

यावान् गतः शीतकरो विलग्नाच्चन्द्राद्वदेतावति जन्मराशिः।
मीनोदये मीनयुगं प्रदिष्टं भक्ष्याहृताकाररुतैश्च चिन्त्यम्।६

यावानिति।। विलग्नात्पृच्छालग्नाच्छीतकरश्चन्द्रो यावान् गतो यावति राशौ व्यवस्थितस्तस्माद्यस्तावति राशिः तत्रस्थे चन्द्रमसि जात इति वक्तव्यम्। मीनोदये यदि मीनलग्नगतो भवति तदा मीनयुगमेव प्रदिष्टमुक्तम्। मीनस्थचन्द्रमा इति वक्तव्यम्। ननु दर्शितविधिना राशिरनेकप्रकारो यत्र प्राप्तो भिन्नरूपस्तत्र को वक्तव्य इत्याशंक्याह– भक्ष्याहृताकाररुतैरिति। यस्य राशेः सम्बन्धि भक्ष्यद्रव्यं तस्मिन्काले कृत्रिममानीयते तदाकारश्च कश्चिद् दृश्यते। यथा मार्जारादिदर्शने सिंहो महिषादिदर्शने वृष इत्यादि। अथवा राश्युक्तरूपं पुरुषस्य दृष्ट्याऽथवा रुतेन यस्य राशिसदृशप्राणिनो रुतं शब्दः क्रियते तत्रस्थे चन्द्रमसि जात इति वक्तव्यम्।। ६।।

भाषा- प्रश्नलग्न से जितने सख्य स्थान में चन्द्रमा हो, उससे उतने ही स्थान आगे जो राशि हो वही प्रष्टा की जन्मराशि समझे। परञ्च यदि मीन प्रश्नलग्न हो तो मीन ही जन्मराशि समझना चाहिये। अथवा प्रश्न काल में जिस राशि के भक्ष्य जिस राशि सदृश आकार का प्राणी, जिस राशि सदृश शब्द अचानक देखने या सुनने में आवे वही जन्मराशि समझे।६।

विशेष अर्थ- इसका आशय यह है कि अनेक प्रकार से राशि-ज्ञान कहा गया है, वहाँ कौन प्रकार से राशि ग्रहण करना चाहिए? यथा-एक प्रकार से वृष आया और दूसरे प्रकार से मिथुन तो यहाँ कौन सा ग्रहण करें? इस विकल्प में उस स्थान पर यदि अचानक कोई घास (बैल का खाद्य) लावे या गाय अथवा बैल आ जाए, या उसका शब्द सुनने में आवे तो मिथुन (द्विपद) राशि समझना चाहिये।६।

उदाहरण- जन्मलग्न से द्वितीय स्थान (कर्क) में चन्द्रमा है अतः उस (कर्क) से द्वितीय सिंह, जन्मराशि हुई।। ६।।

वास्तव में रीति तो यह है कि-स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न राश्यादि घटाकर शेष को स्पष्ट चन्द्रमा में जोड़ने से अर्थात् द्विगुणित स्पष्ट चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न को घटाने से जो शेष बचे वह जन्मकालिक राश्यादि स्पष्ट चन्द्रमा होता है। चन्द्रमा जिस राशि में रहता है वही जन्मराशि कहलाता है।

जैसे- स्पष्ट चन्द्रमा ३।३।०।२६ दूना करने से ६।६।०।५२ इसमें लग्न २।२३।१५।५७ को घटाने से ३।१२।४४।४५ यह जन्मराशि अर्थात् जन्मकालिक स्पष्ट चन्द्रमा हुआ। इसले वास्तव जन्मराशि कर्क की हुई। क्योंकि मूल पद्य के अनुसार लग्न से चन्द्रमा के अन्तर को चन्द्रमा में जोड़ने से ही स्पष्टमान हो सकता है॥६॥

एवं जन्मराशौ ज्ञाते लग्नज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

होरानवांशप्रतिमं विलग्नं लग्नाद्रविर्यावति वा दृकाणे(१)।
तस्माद्वदेतावति वा विलग्नं प्रष्टुः प्रसूताविति शास्त्रमाह।७

होरेति।। होरायां प्रश्नलग्ने यस्य राशेर्नवांशकस्तत्कालं वर्तते तत्प्रतिमं तमेषांशकराशिं तस्य जन्मलग्नं वक्तव्यम्। अथवा लग्नाल्लग्न-द्रेष्काणादारभ्य रविः सूर्यो यावति यावत्संख्ये द्रेष्काणे व्यवस्थित-स्तस्माल्लग्नादारभ्य तावति राशौ लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम्। अत्र च द्वादशेभ्योऽधिके द्रेष्काणे द्वादशकमपास्य संख्यानिर्देशः चतुर्विंश-तेरधिके चतुर्विंशतिमपास्य शेषं वदेत्। एवं शास्त्रमाह शास्त्रं कथ-यति। न स्वमनीषिकयोक्तमिति शास्त्रग्रहणेनैतत्प्रतिपाद्यते। उक्तं च-

'पृच्छालग्ननवांशस्य यो राशिः संज्ञया समः।
तस्मिंल्लग्नगते राशौ वक्तव्यं जन्म पृच्छतः॥
यावत्संख्यो गतो लग्नाद्द्रेष्काणो दिनकृत् ततः।
तावत्संख्ये लग्नराशौ प्रष्टुर्जन्म विनिर्दिशेत्' ॥७॥

भाषा- प्रश्न लग्न में जिस राशि का नवांश हो वही जन्मलग्न समझना। अथवा लग्न से जितने द्रेष्काण आगे रवि हो उतने ही रवि से आगे जो राशि हो वही प्रश्नकर्त्ता का जन्मलग्न समझना, यह शास्त्र का आदेश है॥७॥

विशेष अर्थ- इसकी स्पष्ट रीति यह है कि लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या को स्पष्ट रवि में जोड़कर १२ से अधिक हो तो उसमें १२ के भाग देकर जो शेष बचे वही जन्मलग्न समझना॥७॥

उदाहरण- (१) जैसे लग्न (२।२३।१५।५७) में मेष का नवांश है तो मेष ही जन्मलग्न हुआ। दूसरा प्रकार, लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या जानने के लिये रवि ०।१५।४३।२८ में लग्न (२।२३।१५।५७) को घटाने से ९।२२।२७।३१ इसके अंश बनाकर २९२।२६।३१ इसमें १० के भाग देने से गत २९ वर्तमान ३०वाँ द्रेष्काण हुआ। इसलिये रवि में ३० जोड़कर ३०।१५।४३।२८ इसमें १२ के भाग देकर राश्यादि ६।१५।४३।२८ यह जन्मलग्न हुआ॥७॥

(१) प्राचीनमुद्रितपुस्तकेषु सर्वेष्वेव 'यावति च दृकाणे' इति पाठो दृश्यते तदसङ्गतं ज्ञेयं छन्दोभङ्गदोषात्।

अथ प्रकारान्तरेण लग्नानयनमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

जन्मादिशेल्लग्नगवीर्यगे वा छायाङ्गुलघ्नेऽर्कहतेऽवशिष्टम्।
आसीनसुप्तोत्थिततिष्ठताभं जायासुखाज्ञोदयगं प्रदिष्टम्।८

जन्मादिशेदिति।। लग्नगे ग्रहे जन्मादिशेत्। प्रश्नलग्ने यो ग्रह व्यवस्थितस्तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम्। अथ बहवो लग्नगता भवन्ति तदा तेषां यो बलवान् तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम्। ततः सलिलसमीकृतायामवनौ द्वादशाङ्गुलेन शङ्कुना तात्कालिका छायाङ्गुलानि गृहीत्वा तैरङ्गुलैरेकैकं ग्रहं यद्दर्शितकाले लिप्तापिंडीकृतं गुणयेत्। अथवा सर्वग्रहेभ्यो यो बलवान् ग्रहस्तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डं कृत्वा छायाङ्गुलहतं चार्कशुद्धं कारयेत् द्वादशभिर्विभजेत्तत्र यावत्संख्यमवशिष्टं तावत्संख्यो मेषादेरारभ्ययो राशिर्भवति तस्मिन्राशौ लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम्। अथ प्रकारान्तरेणाह— आसीनेत्यादि। आसीन उपविष्टो यदा प्रष्टा पृच्छति तदा लग्नाद्यज्ञायास्थानं सप्तमराशिस्तस्मिंल्लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम्। अथ सुप्तः। सुप्तोऽत्र शयनपतितो विहितः लब्धनिद्रस्य प्रश्नाभावात्। तत्र पतितो यदा पृच्छति तदा लग्नाद्यत्सुखस्थानं चतुर्थराशिस्तस्मिंल्लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम्। अथोत्थितः पृच्छति तदा तस्माल्लग्नाद्यदाज्ञास्थानं दशमो राशिस्तस्मिन् लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम्। अथ शयनादासनाच्चोथितः उत्तिष्ठन् पृच्छति तदोदयलग्नराशौ तस्मिन्नेव जन्म वक्तव्यम्। उक्तं च-

'उत्तिष्ठतो विलग्नात्प्रष्टुः सुप्तस्य बन्धुलग्नाच्च।
उपविष्टस्यास्तमये व्रजतो मेषूरणस्थानात्' इति ।।८।।

भाषा- प्रश्नलग्न में ग्रह हो तो उनमें जो बली हो उसको तात्कालिक द्वादशांगुल शंकु की छाया से गुणाकर गुणनफल में १२ के भाग देकर शेष जन्मलग्न कहना चाहिये। अथवा प्रश्नकर्त्ता यदि बैठकर प्रश्न करे तो लग्न से सप्तम राशि जन्मलग्न समझना चाहिये। यदि पृथ्वी पर लेटकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से चतुर्थ राशि, यदि पहिले से बैठा हो और उठकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से १०वीं राशि, यदि खड़े-खड़े आकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न ही प्रष्टा का जन्मलग्न समझना चाहिये।।८।।

विशेष अर्थ- ग्रह को अंगुलादि छाया से गुणा करने में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाकर अंगुलादि छाया से गुणा करके गुणनफल कलादि को फिर राश्यादि बनाकर १२ से तष्टित करे॥ ८॥

उदाहरण- जैसे पूर्वोक्त प्रश्न में शनि और मंगल है, इनमें शनि बली है इसलिये शनि (१।२६।१।४९) को कलात्मक बनाकर ३३६१।४९ इसको तात्कालिक अङ्गुलादि छाया (६।२०) से गुणा कर कलादि गुणनफल २१२९६।३०।२० इसको राश्यादि बनाने से ११।२४।५१।३० यह १२ से अल्प है अतः यही जन्मलग्न हुआ। दूसरा उदाहरण स्पष्ट ही है।

यहाँ इष्टकाल में द्वादशांगुल शंकु की छाया नाप लेनी चाहिये। अथवा इष्टकाल पर से 'नवतिगुणितमिष्टमुन्नतं' इत्यादि ग्रहलाघव आदि करण ग्रन्थ द्वारा अथवा मकरन्दसारिणी द्वारा अंगुलादि छाया का ज्ञान करना चाहिए॥ ८॥

अथ प्रकारान्तरेण सर्वमेव नष्टजातकं वक्ति। ततः प्रश्नकाले तात्कालिकं लग्नं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम्। ततस्तस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य गुणकारविज्ञानार्थं शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह-

गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ च क्रमात्
संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः।
जीवारास्फुजिदैन्दवाः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यव-
द्राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा॥९॥

गोसिंहाविति। गोसिंहादयो राशयो यथाक्रमं दशादिभिर्गुणकारैः संवर्ग्या गुणनीयाः। तद्यथा- गोसिंहौ वृषसिंहौ दशभि (१०) र्गुणयेत्। वृषलग्नं लिप्तापिण्डीकृतंदशभिर्गुणयेत्। एवं सिंह दशभिरेव। जितुमाष्टमौ मिथुनवृश्चिकौ लग्नगतावष्टभि (८) र्गुणयेत्। क्रियतुले मेषतुले एतौ सप्तभि (७) र्गुणयेत्। कन्यामृगौ कन्यामकरौ एतौ लग्नगतौ विषयैः पञ्चभि (५) र्गुणयेत्। एवमेते यथाक्रमं संवर्ग्या गुणनीयाः। शेषा अनुक्ता राशयः स्वसङ्ख्यागुणा आत्मीयसंख्यया गुणनीयाः। तत्र गणनया कर्कटं चतुर्भिर्गुणयेत्। एवं धनुर्नवभिः (९)। कुम्भमेकादशभिः (११)। एवं मीनो द्वादशभिः (१२)। एवं तावल्लग्नं स्वगुणकारेणावश्यमेव गुणयेत्। दशकाष्ट सप्तविषयैः। ततस्तत्र यदि ग्रहो भवति तदा ग्रहगुणकारेणावश्यमेव गुणयेत्। तत्र ग्रहगुणकारविधिः जीवारास्फुजिदैन्दवाः। प्रथमवद्दशकाष्टसप्तविषयैरिति। जीवे गुरौ

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
५	५	८	५	१०	७	५	०	०

लग्नगते तदेव लग्नं स्वगुणाकारैराहतं दशभिर्गुणयेत्। आरे भौमे लग्नगते अष्टभिः, आस्फुजिच्छुक्रः तस्मिंल्लग्नगते सप्तभिः, ऐन्दवे बुधे पञ्चभिः, शेषा रविशशिसौरास्ते च सौम्यवत् बुधवत्, पञ्चभिर्गुणनीया इत्यर्थः। एवं तात्कालिकं लग्नमवश्यं राशिगुणकारेण गुणयेत्। ततः सग्रहोक्तगुणकारैरपि तत्र च यदा ग्रहो भवति तदा ग्रहगुणकारेण गुणयेत्। यदा बहवो ग्रहाः भवन्ति तदा सर्वेषां गुणकारैर्गुणयेत्। एवं च तद्गुणितमेकान्ते स्थापयेत्।।९।।

भाषा– प्रश्नलग्न में वृष या सिंह हो तो राश्यादि लग्न की कला पिण्ड बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक लग्न हो तो ८ से, मेष तुला हो तो ७ से और कन्या या मकर हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशि लग्न हो तो कलापिण्ड को अपनी-अपनी संख्या से अर्थात् कर्क को ४ से, धनु को ९ से, कुम्भ को ११ से और मीन को १२ से गुणा करे। यदि लग्न में गुरु हो तो १० से, मंगल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से और बुध हो तो ५ से गुणा करे। यदि शेष ग्रह (शनि, रवि, चन्द्रमा) हो तो इनके ५ गुणक हैं। लग्न राशि की गुणनविधि तो निश्चित ही होती है किन्तु लग्न में जो ग्रह हो उसी की गुणना होती है। यदि लग्न में अधिक ग्रह हों तो सबकी गुणना करनी चाहिए। इस प्रकार लग्न कला को गुणा करने से जो पिण्ड हो, उससे आगे कहे विधि से वर्ष मासादि का ज्ञान करना चाहिए।९।

उदाहरण- प्रश्नलग्म २।२३।१५।५७ इसको कलात्मक बनाने से ४९९५।५७ इसको मिथुन के गुणकाङ्क ८ से गुणा करने से ३९९६७।३६ फिर लग्न में शनि और मंगल दो ग्रह हैं इसलिये शनि के गुणकांक ५ और मंगल के गुणकांक ८ दोनों से गुणा करने से १५९८७०४ यह लिप्ता-पिण्ड हुआ। इससे आगे कहे प्रकार से नक्षत्रादि का ज्ञान करना।।९।।

अथ नक्षत्रानयनं वसन्ततिलकेनाऽऽह–

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं दत्त्वा-
थवा नव विशोध्य न वाथवाऽस्मात्।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः
प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ।।१०।।

सप्ताहतमिति।। सप्ताहतं सप्तभिर्गुणयेत्। दत्वाथवेति। ततस्तत्र नवदेयाः शोध्या वा न किञ्चिद्वा कथमित्युच्यते। यदि स चरराशि-

र्लग्नगतो भवति तदा नव देयाः। स्थिरे न देया नाइ शोध्याः। द्विस्वभावे विलग्ने नव शोध्याः एवं केचिद्व्याचक्षते। वयं पुनर्ब्रूमः- यदि प्रश्नलग्ने प्रथमो द्रेष्काणो भवति तदा नव देयाः। द्वितीये न देया नापि शोध्याः। तृतीये नव शोध्याः। एवं कृत्वा तस्य राशेस्त्रिघनेन सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तं त्याज्यम्। तत्र यावत्संख्योऽङ्कोऽवशेषो भवति तावत्सङ्ख्यमश्विन्यादितो यन्नक्षत्रं तन्नक्षत्रं तस्य प्रष्टुर्वक्तव्यम् केचिद्वदन्तियथास्थितस्य राशेः सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कनवदानेन विशोधनेन वा यथास्थितेनाङ्केन संवाद उत्पद्यते तथा नक्षत्रं वक्तव्यम्। एवमित्यादिकलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्य इति। भार्याभर्तृपुत्ररिपुषु नष्टजातकं यदा पृच्छति तदा तद्भेभ्यस्तद्भावेभ्यः एवं प्रष्टुः पृच्छकस्य वदेत् ब्रूयात्। तमेवोदयराशिं परिकल्पयेदित्यर्थः। एतदुक्तं भवति- यदि पुरुषः स्वपत्न्या नक्षत्रं पृच्छति तदा तात्कालिके लग्ने राशिषट्कं देयम्। अथ भ्रातुः पृच्छति तदा राशिद्वयं देयमथ पुत्रस्य पृच्छति तदा राशिचतुष्कं देयमथ शत्रोः पृच्छति तदा राशिपञ्चकं देयम्। एवं कृत्वा यद्भवति तदेवोदयराशिं प्रकल्प्य तद्गुणकारेण गुणयेत्। तत्स्थग्रहगुणकारेण च ततस्तत्र प्राग्वन्नवकदानविशोधने कृत्वा सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमं यस्य प्रष्टा पृच्छति तस्य नक्षत्रं वक्तव्यम्। एतदप्युपलक्षणार्थमेव त्रिराशिसहितात्तात्कालिकाल्लग्नान्मित्रस्य वक्तव्यमेतन्नक्षत्रानयनमप्युपलक्षणमेव सकलमपि नष्टजातकं वक्तव्यम्॥१०॥

भाषा- पूर्वसाधित लग्नलिप्तापिण्ड को ७ से गुणा कर २७ के भाग देकर शेष अश्विनी आदि नक्षत्र समझना चाहिये। इसमें इतना संस्कार और है कि नक्षत्रादि मान असम्भव जान पड़े तो ९ जोड़ या घटाकर समझे। कोई २ ऐसा कहते हैं कि-यदि लग्न हो तो गुणकार से गुणित लिप्तापिण्ड में ८ जोड़े, यदि स्थिर लग्न हो तो ९ घटावे, यदि द्विस्वभाव लग्न हो तो न जोड़े, न घटावे (अर्थात् यथागुणित रहने देवे)। उसमें अपने विकल्प के भाग देकर नक्षत्रादि जाने। यह तो अपने नष्टजातक के लिये है। इसी प्रकार सप्तम भाव से कलापिण्ड बनाकर प्रश्नकर्त्ता की स्त्री का, तृतीय भाव से भाई का, पञ्चम भाव से पुत्र का और षष्ठ भाव से शत्रु का नष्ट जातकपत्र समझना चाहिए॥१०॥

उदाहरण- लग्नलिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ७ से गुणा करने से १११९० ९२८ इसमें २७ के भाग देने से शेष ४ अश्विनी से चतुर्थ रोहिणी नक्षत्र हुआ।१०।

अथ वर्षाद्यानयनं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पना स्युः।
भूयो दशादिगुणिताः स्वविकल्पभक्ता
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम् ॥११॥

वर्षर्तुमासेति॥ वर्षादीनि सर्वाणि स्वविकल्पेन भागे हृते यथा-पाठक्रमेणानयितव्यानि। तद्यथा– तात्कालिकं लग्नं लिप्तापिण्डीकृतं राशिगुणकारहतं ग्रहसंयुक्तंचेद्ग्रहगुणकाराहतमपि यदेकान्ते स्थापितं तत्पुनरपि दशादिगुणं कार्यम्। एतदुक्तं भवति। स राशिः स्थान-चतुष्टये धार्यः। एकत्र दशगुणोऽन्यत्र द्वितीयेऽष्टगुणोऽन्यत्र तृतीये सप्तगुणः, चतुर्थे पञ्चगुणः कार्यः। यत उक्तम्– भूयो दशादिगुणिताः। भूयः पुनरपि दशकाष्टसप्तविषयैर्गुणनीयाः ततस्तस्मिन्राशिचतुष्टये प्राग्वन्नवकदानविशोधने कृत्वा स्वविकल्पैर्भागमपहृत्यावाप्तं तेन वर्षादयो ज्ञेयाः॥११॥

भाषा- पूर्वरीति से साधित लग्न लिप्तापिण्ड को, फिर से दश आदि अपने-अपने गुणाकारों से गुणा करके, अपने-अपने विकल्प (संख्या) से भाग देकर, शेष तुल्य वर्ष, ऋतु, मास, तिथि, दिन, रात्रि, इष्टकाल, लग्न, राशि-नवांश समझना चाहिए। यहाँ वर्षादि सब विषय के आनयन में नक्षत्रानयनवत् ८ जोड़-घटाकर या यथावत् पिण्ड पर से क्रिया करनी चाहिए॥११॥

अथ न ज्ञायते कस्माद्राशेः कस्यानयनं कार्यं तदनुष्टुप्त्रयेणाऽऽह-

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च।
अष्टकेष्वपि मासार्द्धास्थितयश्च तथा स्मृताः ॥१२॥

विज्ञेया दशकेष्वब्दा इति॥ अत्र बहुवचनं बहुधोपयोगित्वात्कृतम्। यदुक्तम्। स्वविकल्पभक्ताद्वर्षादयस्तद्व्याख्यायते। एते चत्वारो राशयः स्थापितास्तेषां नवकदानविशोधनं कृत्वा कर्मयोग्याः सर्वे भवन्ति। ततो दशगुणस्य पृथक्स्थस्य परमायुषा विंशत्यधिकेन वर्षशतेन भाग-मपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमं तस्य वर्षसंख्यानं वर्तते। तस्यैव षड्भिर्भागमपहृत्य ऋतुसंख्यया तत्र योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमे शिशिरादारभ्यर्तौ जात इति वक्तव्यम्। तस्यैव तु माससंख्यया द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा ज्ञातर्तौ प्रथमे मासि जात इति

वक्तव्यम्। अथ शून्यमवशिष्यते तदा द्वितीये मासि जातः। एवं कृत्वा दशगुणः कर्मयोग्यो राशिरपास्यः। यस्य विंशत्यधिकाद्वर्षशतादप्यधिकं जन्मनोऽतीतं तस्य नष्टजातकज्ञानोपाय एव नास्ति। अष्टकेष्वित्यादि। योऽसावष्टहतो राशिस्तस्य पृथक्स्थस्य कर्मयोगस्य पक्षसंख्यया द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा शुक्लपक्षे जात इति वक्तव्यम्। न किञ्चिदवशिष्यते तदा कृष्णपक्षे, तस्यैव तिथिसंख्यया पञ्चदशभिर्भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमाने तिथौ जात इति वक्तव्यम्। एवं कृत्वाष्टगुणः कर्मयोग्यो राशिरपास्यः॥ १२॥

भाषा- पूर्वसाधित लिप्तापिण्ड को १० से गुना करके १२० से भाग देकर शेष वर्ष, उसी दशगुणित पिण्ड में ६ के भाग से शेष तुल्य शिशिर आदि ऋतु और २ के भाग देकर १ शेष में ऋतु का प्रथम मास, २ शेष में द्वितीय मास समझना चाहिए। पुनः लिप्तापिण्ड को ८ गुना कर नव संस्कृत करके २ के भाग से १ शेष में शुक्ल, शून्य शेष में कृष्णपक्ष तथा १५ के भाग देकर १ आदि शेष तुल्य प्रतिपदादि तिथि होती है॥ १२॥

विशेष अर्थ- विशेष ध्येय-यहाँ 'वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्'-इसका आशय यह भी है कि-पिण्ड पर जो वर्षसंख्या आवे वह यदि प्रश्नकर्त्ता के वयस से न्यून या अधिक मालूम हो तो उसमें ९ को तब तक जोड़े या घटावे जब तक प्रष्टा के वयस तुल्य सम्भव हो। जैसे-प्रष्टा की उम्र ३० के समीप मालूम होती है। उसका गत वर्ष ज्ञान करना है तो साधित पिण्ड १५९८७०४ को १० गुना कर १५९८७०४० में १२० के भाग देकर शेष ४० वर्ष हुए। परञ्च प्रश्नकर्त्ता के वयस से अधिक प्रतीत होता है। इसलिये इस (४०) में ९ घटाने से ३१ हुए। ये सम्भव वर्ष हुए। अतः इसको प्रश्न संवत्सर २००१ में घटाने से प्रष्टा का जन्म संवत्सर १९७० हुआ॥ १२॥

ऋतुज्ञान के लिये-उसी दशगुणित पिण्ड में ६ के भाग देकर शेष ४ चौथी (वर्षा) ऋतु हुई। मास जानने के लिये-२ के भाग देने से ० शेष होने से वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद) का दूसरा मास (भाद्रपद) हुआ।

पक्ष ज्ञान के लिये-लिप्तापिण्ड को ८ गुना कर १२७८९६३२ इसमें २ के भाग देने से शून्य शेष बचा इसलिए कृष्णपक्ष हुआ। तथा १५ के भाग देने से २ शेष बचा इसलिये द्वितीया तिथि हुई॥ १२॥

इस देश में मास शुक्लादि और कृष्णादि दो प्रकार से व्यवहृत है। गुजरात में शुक्लादि और अन्यत्र कृष्णादि चान्द्र मास मानते हैं। उस हिसाब से जिसे गुजरात में भाद्र कृष्ण कहते हैं उसकी अन्यत्र काशी आदि प्रदेश में आश्विन कृष्ण कहते हैं। अर्थात् शुक्लपक्ष दोनों देश में एक ही मास के होते हैं। कृष्णपक्ष में भिन्न मास हो जाते हैं। सूर्यसिद्धान्त आदि ज्यौतिष

ग्रन्थ के अनुसार गणित द्वारा शुक्लादि मास आता है। उस हिसाब से इस प्रश्न लग्न द्वारा प्रष्टा का जन्म-समय संवत् १९७० भाद्रकृष्ण २ द्वितीया अर्थात् काशी के हिसाब से आश्विन कृष्ण द्वितीया को होता है। इतना निश्चय हो जाने पर अब यह जानना आवश्यक है कि कितने इष्ठ घड़ी पल पर जन्म हुआ। उसका अयन १४वें श्लोक के अनुसार करना॥१२॥

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा।
सप्तकेष्वपि वर्गेषु नित्यमेवोपलक्षयेत्॥१३॥

दिवेत्यादि॥ योऽसौ सप्तहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधने कृत्वा तत्कर्मयोग्यं राशिं स्थापयेत्। यस्य दिवारात्रिसंख्यया द्वाभ्यां भाग्यमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा दिवसे जातोऽथ न किञ्चिदवशिष्यते तदा रात्रौ जात इति वक्तव्यम्। योऽसौ सप्तहतो राशिस्तस्य नक्षत्र सङ्ख्यया सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसंख्ये नक्षत्रेऽश्विन्यादित आरभ्य जातनक्षत्रमिति वक्तव्यम्। अस्य कर्मणः पुनरभिधानं नक्षत्रानयनस्य बाहुल्योपयोगित्वात्॥१३॥

भाषा- दिन या रात्रि में जन्म हुआ? यह जानना हो तथा नक्षत्रानयन यह सर्वदा सप्त गुणित लिप्तापिण्ड पर से करना चाहिए॥१३॥

उदाहरण- नक्षत्रानयन का प्रकार पूर्व ही दिखलाया गया है। दिन में या रात्रि में जन्म का ज्ञान करना हो तो पिण्ड को ७ से गुणा करके २ के भाग से, १ शेष में दिन और २ शेष में रात्रि समझना चाहिए॥१३॥

वेलामथ विलग्नं च होरामंशकमेव च।
पञ्चकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये॥१४॥

वेलेत्यादि॥ यस्मिन्दिने पुरुषस्य जन्मज्ञानं तद्दिनप्रमाणं घटिकादिकं कर्तव्यम्। रात्रौ चेत्तदा रात्रिप्रमाणम्। ततः पञ्चगुणस्य राशेस्तेन दिनप्रमाणेन रात्रिप्रमाणेन वा भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तस्मिन्काले दिनगते रात्रिगते वा तस्य जन्म वक्तव्यम्। अथ विलग्नमित्यादि। अथशब्दः पादपूरणार्थम्। काले ज्ञाते राश्यादि लग्नं कर्तव्यम्। ततस्तस्य होराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशत्रिंशांशभागाःकर्तव्याः। तात्कालिकग्रहाश्च कर्त्तव्याः। तया यथाभिहितेन विधिना दशान्तर्दशाष्टकवर्गादिरभिहितस्य फलस्य निर्देशः कार्यः। एवं नष्टजातकं साधयेत्।१४।

भाषा- दिन या रात्रि में जन्म के ज्ञान होने पर-इष्ट समय या लग्न होरा नवांश जानना हो तो पञ्च गुणित पिण्ड पर से करना चाहिए। ये क्रियायें केवल अज्ञात जन्म समयादिज्ञानार्थ ही कही गई हैं॥१४॥

विशेष अर्थ- यदि निश्चित हो जाय कि दिन में जन्म हुआ तो इष्टघटी ज्ञानार्थ पिण्ड को ५ से गुणा कर दिनमान घट्यादि से भाग देकर और रात्रि में रात्रिमान घट्यादि से भाग देकर शेष घट्यादि इष्टकाल समझना। उस पर से लग्नसाधन विधि से लग्न का ज्ञान करना। यदि बिना इष्टघटी ज्ञान के ही फलार्थ नष्टजातक संबन्धी जन्मलग्न का ज्ञान करना हो तो पञ्चगुणित पिण्ड को ही १२ के भाग देकर शेष तुल्य मेष, आदि लग्न समझना चाहिए। यदि लग्न का ज्ञान हो तो होराफल कथनार्थ उसी पञ्चगुणित पिण्ड को २ से भाग देकर १ शेष में प्रथम और शून्य शेष में द्वितीय होरा समझना चाहिए। एवं नवांश ज्ञान के लिये ९ का भाग देकर, द्वादशांश ज्ञान के लिये १२ से भाग देकर लब्धितुल्य नवांश या द्वादशांश समझकर लग्नराशि के अनुसार उसका फलादेश करना।।१४।।

उदाहरण- जैसे लिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ७ से गुणा करके २ के भाग देने से शून्य (अर्थात् २) शेष बचा इसलिये रात्रि में जन्म निश्चय हुआ। अब इष्टघटी ज्ञानार्थ लिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ५ से गुणाकर ७९९३५२० भाज्य, इसमें रात्रिमान (घटीपल २७।४०= एकजातीय पल १६६०) से भाग देने के लिये भाज्य को भी ६०से गुणा करके भाग देकर ६८० पल, इसकी घटी बनाने से ११।२० यह सूर्यास्त से घट्यादि जन्म इष्टकाल हुआ। इस पर से स्पष्टग्रह और लग्नादि द्वादश भाव साधन कर नष्ट जन्मपत्र होगा। अथवा बिना आयास के शीघ्रता में लग्नादि के फल कहना हो तो लग्नादि विकल्प (संख्या) से पञ्चगुणित पिण्डमें भाग देने से शेष लग्नादि होते हैं जिनका उदाहरण भी स्पष्ट है।

जैसे किसी ने प्रश्न किया कि अमुक संवत्, अमुक मास, अमुक पक्ष, अमुक तिथि, अमुक दिन में मेरा जन्म है, लेकिन काल याँ लग्न का ज्ञान नहीं है, तो हमारा किस लग्न में जन्म है? और उसका क्या फल होगा?- ऐसे प्रश्न में पञ्चगुणित लिप्तापिण्ड में १२ के भाग देकर १ आदि शेष में मेष आदि लग्न समझना। फिर लग्न के अंश जानने के लिये उसी पञ्टगुणित लिप्तापिण्ड में ३० का भाग देकर शेष तुल्य अंश समझना चाहिये। उस अंश की कला जानने के लिये पञ्चगुणित पिण्ड में ६० के भाग देकर शेष तुल्य कला और विकला समझना चाहिए। उस पर से मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार इष्टकाल और तात्कालिक स्पष्ट ग्रहादि का ज्ञान भी सुगम है।।१४।।

अथ प्रकारान्तरेण नक्षत्रानयनमार्ययाऽऽह-

संस्कारनाममात्रा द्विगुणा छायाङ्गुलैः समायुक्ताः ।
शेषात्त्रिनवकभक्तान्नक्षत्रं तद्धनिष्ठादि ।।१५।।

संस्कारनामेति।। संस्कारेण नाम संस्कारनाम तस्य मात्राः संस्कारेणागतस्य नाम्नो मात्राः संस्कारनाममात्राः। संस्कारग्रहणेनैतत्प्रतिपादितं भवति। संस्कारेण यत्पुरुषस्य नाम कृतं तस्य मात्रा ग्राह्याः, नान्यस्य

कस्यचित्कुनामादेः। मात्राश्चेह गृह्यन्ते हल् अर्द्धमात्रिकः। अत्र मात्रिकः *(१)* इत्यनया स्थित्या ताः संस्कारनामा मात्राः संगृह्य द्विगुणीकार्याः। ततस्तात्कालिकानि शङ्कुच्छायाङ्गुलानि गृहीत्वा ता द्विगुणमात्रास्तैरङ्गुलैः संयुक्ताः कार्याः। एवं कृते यद्भवति तस्य त्रिनवकेन सप्तविंशत्या भागमपहृत्य यः शेषो भवति तदङ्कसमं तस्य धनिष्ठादित आरभ्यं नक्षत्रं वक्तव्यम्॥१५॥

भाषा- नामकरण संस्कार विधि से माता-पिता द्वारा प्रश्नकर्त्ता का जो नाम हो उसमें जितने वर्ण हों उनकी मात्राओं (ह्रस्व की १, दीर्घ की २, हल् व्यंजन की अर्धमात्रा, इस प्रकार सबों) के योग में तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छायाङ्गुल संख्या जोड़कर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह धनिष्ठादि नक्षत्र समझना चाहिए॥१५॥

उदाहरण- जैसे प्रश्नकर्ता का संस्कार नाम 'देवनाथ' इन चारों वर्णो में २ ह्रस्व और दीर्घवर्ण हैं इसलिये सब मात्राएँ ६ हुईं। इसको दूना करने से १२ इसमें तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया ७ मिलाया तो १९, इसमें २७ के भाग से शेष १९वाँ धनिष्ठा से गिनने से 'चित्रा' जन्मनक्षत्र हुआ।

विशेष अर्थ- 'एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चाऽर्धमात्रकम्॥' स्पष्ट। नाम में ह्रस्व, दीर्घ और व्यंजन तीन ही से मात्रा ली जाती है। प्लुत सम्बोधन में आता है इसलिये नाम में किसी वर्ण की ३ मात्रा नहीं होती है। इष्टकाल पर से छायाङ्गुल समझने का प्रकार 'ग्रहलाघव' आदि ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार में देखिये॥१५॥

अथ नक्षत्रानयनं प्रकारान्तरेणार्ययाऽऽह-

द्वित्रिचतुर्दशदशतिथिसप्तत्रिगुणा नवाष्ट चैन्द्राद्याः।
पञ्चदसघ्नास्तद्दिङ्मुखान्विता भं धनिष्ठादि॥१६॥

द्वित्रिचतुर्दशेति॥ पूर्वाभिमुखो यदा प्रष्टा पृच्छति तदा द्वयोरङ्का स्थाप्याः। अथाग्नेयाभिमुखस्तदा त्रयाणाम्। अथ दक्षिणाभिमुखस्तदा चतुर्दशानाम्। अथ नैर्ऋत्यभिमुखस्तदा दशानाम्। अथ पश्चिमाभिमुखस्तदा तिथिसंख्यानां पञ्चदशानाम्। अथ वायव्याभिमुखस्तदा सप्तत्रिगुणा एकविंशतिः। उत्तराभिमुखस्तदा नवानाम्। ऐशान्याभिमुखस्तदाऽष्टानाम्। तद्यथा। एवं दिगभिमुखप्रष्टृवशेनाङ्कं गृहीत्वा ततः पञ्चदशगुणः कार्यः। ततस्तस्मिन्प्रदेशे यावन्तः पुरुषास्तद-

---

(१) यथा छन्दःशास्त्रे-

'एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रिकम्॥'

भिमुखाः स्थितास्तत्संख्यान्वितो युक्तः कार्यः। एवं कृते यद्भवति तस्य सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमं तस्य धनिष्ठाद्यारभ्य नक्षत्रं वक्तव्यम्॥ १६॥

भाषा- पूर्वादि दश दिशाओं में क्रम से २, ३, १४, १०, १५, ७, ३, ३, ६, ८ ये अंक हैं। प्रष्टा जिस दिशा में मुख करके प्रश्न करे उस दिशा के अंक को १५ से गुणा करे और प्रश्नस्थल में जितने अन्य व्यक्ति उस दिशा में जिधर प्रश्नकर्ता का मुख हो उधर) मुख किये हों उतनी संख्या गुणनफल में मिलाकर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह धनिष्ठादि गणना-क्रम से नक्षत्र समझना चाहिए॥ १६॥

विशेष अर्थ– यहाँ भट्टोत्पल ने केवल ८ दिशायें समझकर 'सप्तत्रिगुणा' इन तीन अंकों के स्थान में एक ही (त्रिगुणित सात=२१) अंक ग्रहण करके अर्थ किया है, जो असंगत है। क्योंकि दिशाएँ १० हैं। जैसे-पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ऐशान्य (ईशान), अधः, ऊर्ध्व; क्योंकि-प्रश्नकर्ता अधोमुख होकर, कभी ऊर्ध्वमुख होकर भी प्रश्न कर सकता है उस हालत में इस प्रकार से किस अंक का ग्रहण होगा? अथवा त्रिगुण 'यह केवल सप्त' का विशेषण नहीं हो सकता, यदि सप्त का विशेषण 'त्रिगुणा' आचार्य को अभिप्रेत होता तो 'त्रिगुण सप्त' ऐसा प्रयोग होता। अथवा 'नवाष्ट' का विशेषण हो सकता है। 'वा द्वित्रिचतुर्दश-दश-तिथिसप्त' इस समस्त पद का विशेषण हो सकता है, इस प्रकार अधः ऊर्ध्व इन दो दिशाओं के अनुपपन्न होते हैं। इसलिये ये दश अंक दश दिशाओं के लिये आचार्य ने पठित किये हैं, अतः केवल दिशा मानना असङ्गत प्रतीत होता है॥ १६॥

तथा-'तद्दिङ्मुखान्विता' इसका भी कोई ऐसा अर्थ करते हैं कि-'जितने मनुष्य जिस-जिस दिशा में मुख किये हों उस-उस दिशा के अंकों को भी मिलाना' किन्तु यह भी असंगत है। क्योंकि आचार्य का ऐसा अभिप्राय रहता तो-'परमुखदिङ्कयुताः' ऐसा ही पाठ भी रखते। अतः 'तद्दिङ्मुखान्विता' इसका वास्तविक अर्थ यही हो सकता है कि उस दिशा में जितने मनुष्य मुख करके बैठे या खड़े हों उतनी संख्या मिलावें॥ १६॥

यहाँ ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये कि इस प्रकार दिशा मानकर अंक ग्रहण करने से ३ दिशा में समान ही ३, ३, अंक होते हैं। क्योंकि ऐसा होता है। १२ राशियों में भी कितने अंक समान कहे गये हैं तो वहाँ भी ऐसी आशंका उपस्थित हो सकती है॥

दिशाओं के अङ्कबोधक चक्र

पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	अधः	ऊर्ध्व
२	३	१४	१०	१५	७	३	३	६	८

उदाहरण- किसी ने उत्तान सोए हुए (ऊर्ध्वमुख होकर ही) प्रश्न किया और वहाँ एक अन्य व्यक्ति ने भी ऊपर मुख किया हो तो यहाँ ऊर्ध्व दिशा के अंक ८ को १५ से गुणा किया १२० इसमें १ संख्या और मिलाया तो १२१ हुआ। इसमें २७ के भाग देकर शेष १३ धनिष्ठा से गिनने से पुष्य जन्मनक्षत्र हुआ।।१६।।

अथ नष्टजातकोपसंहारमार्ययाऽऽह-

इति नष्टजातकमिदं बहुप्रकारं मया विनिर्दिष्टम्।
ग्राह्यमतः सच्छिष्यैः परीक्ष्य यत्नाद्यथा भवति।।१७।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
नष्टजातकाध्यायः षड्विंशः।।२६।।

इति नष्टजातकमिति।। इति शब्दः उपसंहारे। मया वराहमिहिराचार्येण नष्टजातकं बहुप्रकारं बहुभेदविनिर्दिष्टमुक्तमिदम्। अतोऽस्माद्धेतोः सच्छिष्यैः शोभनसच्छात्रैः ग्राह्यम्। यत्नात्परीक्ष्य विचार्य यथा येन प्रकारेण सम्भवति सत्यरूपं तथा ग्राह्यमिति। येन प्रकारेण संभवति तथा ग्रहीतव्यमित्यर्थः। बहुभिरागमैर्मया विचार्य पराशर-वशिष्ठ-यवन-सत्य-मणित्थादीनां मतानि आलोक्य कृतम्। तदेव भूयो निर्मलगुणनिपुणबुद्ध्या विचार्य सम्यक्तया कार्यं येन स्फुटसिद्धोऽसौ सम्पद्यते।।१७।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ
नष्टजातकाध्यायः षड्विंशः।।२६।।

भाषा- इस तरह मैंने बहुत आचार्यों के सम्मत अनेक प्रकार से नष्टजातक कहे हैं। इनमें विद्यार्थियों को चाहिये कि यत्न से सबों की परीक्षा करके जिस प्रकार से फल में विशेष स्पष्टता हो उस प्रकार को ग्रहण करके नष्टजातक-बनाकर फलादेश करे।।१७।।

विशेष अर्थ- इससे यहाँ यह आशंका नहीं करनी चाहिये कि-'इनमें कोई प्रकार अवास्तव है, और कोई वास्तव है? इसलिये आचार्य का ऐसा आदेश है?' वास्तव में सब प्रकार ठीक ही है, जैसे अनेक स्मृतियाँ हैं, उनमें कोई किसी के अनुसार, कोई किसी के अनुसार अपने देशकाल के अनुरोधवश काम करते हैं। उसी प्रकार जिनको जो प्रकार सुलभ या स्पष्ट मालूम हो वह उसी प्रकार से बनावें, फल सब प्रकार से मिल सकता है।।१।।

अथ द्रेष्काणाध्यायः ॥२७॥

अथ द्रेष्काणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ मेषाद्यद्रेष्काणस्य स्वरूपज्ञानं वैतालीयेनाऽऽह-

कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः कृष्णः शक्त इवाभिरक्षितुम् ।
रौद्रः परशुं समुद्यतं धत्ते रक्तविलोचनः पुमान् ॥१॥

कट्यामिति। कट्यां जघने सितं श्वेतं वस्त्रमम्बरं वेष्टितं येन। कृष्णः असितवर्णः, शक्त इव अभिरक्षितुमाभिमुख्येन रक्षां कर्तुं शक्तः समर्थ इव। रौद्रो भीषणः यः परशुं कुठारं समुद्यतं धत्ते धारयति। रक्त विलोचनो लोहिताक्षः स च पुमान्पुरुषः एव पुरुषद्रेष्काणः सायुधो भौमासक्तश्च।१

भाषा- कमर में सफेद वस्त्र लपेटा हुआ, श्यामवर्ण, रक्षा करने में समर्थ, भयानक, लाल आँखवाला, फरसा को धारण किया हुआ- ऐसा मेष का प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है॥ १॥

अथ मेषद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

रक्ताम्बरा भूषणभक्ष्यचित्ता कुम्भाकृतिर्वाजिमुखी तृषार्त्ता।
एकेन पादेन च मेषमध्ये द्रेष्काणरूपं यवनोपदिष्टम्।२।

रक्ताम्बरेति॥ रक्ताम्बरा लोहितवस्त्रा, भूषणमलंकरणं भक्ष्यं भोज्यं तत्र चित्तं यस्याः कुम्भाकृतिः घटोदरी वाजिमुखी अश्ववक्त्रा, तृषार्त्ता पिपासार्त्ता एकेन पादेन चरणेनोपलक्षिता इदं द्रेष्काणरूपं मेषमध्ये मेषद्वितीयं यवनोपदिष्टं यवनाचार्यैः कथितम्। एष चतुष्पदद्रेष्काणः स्त्रीद्रेष्काणाऽर्कसक्तश्च। यस्मादाचार्यैश्चतुष्पादन्मुखाच्चतुष्पदद्रेष्काण इति व्याख्यातस्तथा खगमुखो द्रेष्काणश्च॥ २॥

भाषा- लाल वस्त्र पहिनी हुई, भूषण और भोजन की इच्छा से युत, घड़ा सदृश आकार और घोड़े के समान मुखवाली, एक पैर से खड़ी मेष का दूसरा द्रेष्काण यवनों ने कहा है॥ २॥

अथ मेषतृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

क्रूरः कलाज्ञः कपिलः क्रियार्थी भग्नव्रतोऽभ्युद्यतदण्डहस्तः।
रक्ता न वस्त्राणि बिभर्ति चण्डो मेषे तृतीयः कथितस्त्रिभागः।३

क्रूर इति॥ क्रूरो विषमस्वभावः, कलाज्ञः कलावित्, कपिलः पिङ्गलः, क्रियार्थी कर्मस्वभिलाषुकः, भग्नव्रतः स्खलितनियतः, आभिमुख्येनोद्यतो दण्डः हस्ते पाणौ यस्य। रक्तानि लोहितानि वस्त्राण्यम्बराणि बिभर्ति धारयति। चण्डःक्रोधशीलः। अयं मेषतृतीयत्रिभागे द्रेष्काणः कथित उक्तः। एष नरद्रेष्काणः सायुधो जीवसक्तश्च।३

भाषा- क्रूर, कला को जाननेवाला, कपिलवर्ण, कार्य करने का अभिलाषी, नियम का उल्लंघन करनेवाला, हाथ में लाठी उठाये हुए, क्रोधयुक्त, रक्तवस्त्र को धारण किया हुआ पुरुष मेष, का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है।। ३।।

अथ वृषप्रथमद्रेष्काणजातस्य स्वरूपं दोधकेनाऽऽह-

कुञ्चितलूनकचा घटदेहा दग्धपटा तृषिताशनचित्ता।
आभरणान्यभिवाञ्छति नारी रूपमिदं वृषभे प्रथमस्य।४।

कुञ्चितेति।। कुञ्चिताः कुटिलाः लूनाः कचाः केशा यस्याः सा कुटिलच्छिन्नकेशा, घटदेहा कुम्भसदृशोदरी, दग्धपटा दग्धवस्त्रा, तृषिता पिपासार्त्ता, अशने भोजने चित्तं यस्याः। आभरणानि भूषणानि अभिवाञ्छति सा च नारी स्त्री इदं वृषभप्रथमस्य द्रेष्काणस्य स्वरूपम्। एषः स्त्रीद्रेष्काणः साग्निकः शुक्रसक्तश्च।। ४।।

भाषा- टेढ़े-मेढ़े किन्तु छोटे-छोटे शिर के केशवाली, घड़ा के समान पेटवाली, जलावस्त्र पहिनी हुई, प्यासी, भोजन में मन रखनेवाली, आभरण चाहनेवाली स्त्री वृष के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है।। ४।।

अथ वृषद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपं स्वागतयाऽऽह-

क्षेत्रधान्यगृहधेनुकलाज्ञो लाङ्गले सशकटे कुशलश्च।
स्कन्धमुद्वहति गोपतितुल्यं क्षुत्परोऽजवदनो मलवासाः।५।

क्षेत्रधान्येति।। क्षेत्रं केदारः, धान्यानि शालयः, गृहं वेश्म, धेनुः गौः,कलाः गीतवाद्यनृत्यलेखचित्रकर्मादि एतासां ज्ञः पण्डितः, लाङ्गले हले, सशकटे शकटसहिते, कुशलः शिक्षितः, गोपतितुल्यं वृषभसदृशं, स्कन्धं ककुदमुद्वहति धारयति। क्षुत्परः क्षुधयार्तः, अजवदनः छागवक्त्रं, मलवासा मलिनाम्बरः। एष नरद्रेष्काणः चतुष्पादद्रेष्काणो बुधसक्तश्च।५।

भाषा- खेती, अन्न, गृह, गोपालन और कलाओं को जाननेवाला, गाड़ी और हल चलाने में कुशल,बैल के समान गर्दनवाला, क्षुधातुर, बकरे के समान मुखवाला और मैला कपड़ा पहिननेवाला वृष का दूसरा द्रेष्काण है।।५।।

अथ वृषतृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपं दोधकेनाऽऽह-

द्विपसमकायः पाण्डुरदंष्ट्रः शरभसमाङ्घ्रिः पिङ्गलमूर्तिः।
अविमृगलोभव्याकुलचित्तो वृषभवनस्य प्रान्तगतोऽयम्।६।

द्विपसमकाय इति।। द्विपसमकायो महाशरीरो हस्तितुल्यदेहः न पुनः हस्तिशरीरः, पाण्डुरदंष्ट्रः श्वेतदन्तः, शरभसमाङ्घ्रिः बृहत्पादो न पुनः शरभसदृशपादः, पिङ्गलमूर्तिः कपिलदेहः, अविः प्रसिद्धः, मृगः आरण्यपशुः अविमृगलोभार्थं व्याकुलं चित्तं यस्य। अयं वृषभ-वनस्य वृषराशेः प्रान्तगतस्तृतीयद्रेष्काणः। चतुष्पादः सौरसक्तश्च।। ६।।

भाषा- हाथी के समान विशाल देह, श्वेत दाँत, ऊँट के तुल्य पैर, पीले रङ्ग का देह का वर्ण, बकरा, हरिण आदि के लोभ से व्याकुल मनवाला पुरुष, ऐसा वृष का तृतीय द्रेष्काण है॥६॥

अथ मिथुनस्य प्रथमद्रेष्काणस्य स्वरूपज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

सूच्याश्रयं समभिवाञ्छति कर्म नारी
रूपान्विताभरणकार्यकृतादरा च।
हीनप्रयोच्छ्रितभुजर्तुमती त्रिभागमाद्यं
तृतीयभवनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः॥७॥

सूच्याश्रयमिति॥ नारी स्त्री शूच्याश्रयं कर्म सीवनक्रियां सम्यगभिवाञ्छति इति। रूपान्विता सुरूपा आभरणकार्ये भूषणकर्मणि कृत आदरो अभिलाषः श्रद्धा यया हीनप्रजा अपत्यरहिता उच्छ्रितभुजोर्ध्वबाहुकी ऋतुमती सार्तवा कामार्त्ता वा। तृतीयभवनस्य मिथुनस्याद्यं प्रथमं त्रिभागं द्रेष्काणं तज्ज्ञाः पण्डिताः प्रवदन्तिः कथयन्ति। एष स्त्रीद्रेष्काणो बुधसक्तश्च॥७॥

भाषा- सिलाई का काम करनेवाली स्त्री, मनोहर रूपवाली, भूषणों में श्रद्धा रखनेवाली, सन्तानहीना, दोनों हाथों को उठाये हुई, ऋतुमती (कामातुरा), ऐसा मिथुन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है।७।

अथ मिथुनद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

उद्यानसंस्थः कवची धनुष्माञ्छूरोऽस्त्रधारी गरुडाननश्च।
क्रीडात्मजालङ्करणार्थचिन्तां करोति मध्ये मिथुनस्य राशेः।८

उद्यानसंस्थ इति। उद्यानसंस्थ उपवने तिष्ठति। कवची सन्नाहप्रावृतशरीरः, धनुष्मान् चापहस्तः शूरो रणप्रियः। शरास्त्रधारी वा पाठः। शराः काण्डानि तान्येवास्त्राणि तद्धारणे शीलं यस्येति। गरुडाननः पक्षिसदृशवक्त्रं, क्रीडनं क्रीडा, आत्मजाः पुत्राः, अलंकरणमाभरणम्, अर्थो वित्तम् एषां सम्बन्धिनीं चिन्तां करोति। अयं मिथुनस्य राशेर्मध्ये द्वितीयद्रेष्काणः इत्यर्थः। एष नरद्रेष्काण सायुधः खगद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च॥८॥

भाषा- बगीचे में बैठा हुआ, कवच और धनुष को धारण किया हुआ, शूर, बन्दूक रखनेवाला, गरुड़ के समान मुखवाला, खेल, पुत्र, भूषण और धन की चिन्ता रखनेवाला पुरुष मिथुन राशि के दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है॥८॥

अथ मिथुनस्य तृतीयद्रेष्काणस्वरूपं स्वागतयाऽऽह-

भूषितो वरुणवद्बहुरत्नो बद्धतूणकवचः सधनुष्कः।
नृत्यवादितकलासु च विद्वान् काव्यकृन्मिथुनराश्यवसाने।९

भूषित इति।। भूषितोऽलंकृतः, वरुणवत्समुद्रवत्, बहुरत्नः प्रभूतमणिः, तूणं शराधानं, कवचं सन्नाहः एतौ बद्धौ ग्रथितौ येन, सधनुष्कः चापयुक्तः, नृत्ये वादिते वाद्यविषये कलासु च निःशेषासु विद्वांस्तज्ज्ञः काव्यकृत्पण्डितः कवेः कर्म काव्यं तत्करोति। एषः मिथुनस्य राशेरवसाने तृतीयद्रेष्काण इत्यर्थः। एषः नरद्रेष्काणः सायुधः सौरसक्तश्च।। ९।।

भाषा- भूषणों से शोभित, वरुण (समुद्रपति) के समान, बहुत रत्नों से युक्त, तूण (तरकस) और कवच को धारण किया, धनुष से युक्त, नृत्य और वाद्य आदि कला में निपुण, काव्य करनेवाला, ऐसा मिथुन के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है।। ९।।

अथ कर्कटपूर्वस्य स्वरूपं स्वागतयाऽऽह-

पत्रमूलफलभृद्द्विपकायः कानने मलयगः शरभाङ्घ्रिः।
क्रोडतुल्यवदना हयकण्ठः कर्कटे प्रथमरूपमुशन्ति।१०।

पत्रेति।। पत्राणि मूलानि फलानि च बिभर्ति धारयति। द्विपकायो हस्तिसदृशशरीरः। कानने वने मलयगः मलश्चन्दनवृक्षः तत्रोपगतः स्थितः। शरभाङ्घ्रिः शरभसदृशपादः, क्रोडः सूकरस्तत्तुल्यवदनः तत्सदृशवक्त्रः, हयकण्ठोऽश्वग्रीवः, कर्कटे कर्कटराशौ प्रथमद्रेष्काणस्य स्वरूपमुशन्ति कथयन्ति। एष द्रेष्काणश्चतुष्पाच्चन्द्रसक्तश्च।१०

भाषा- पत्र, मूल और फल को रखनेवाला, हाथी के समान देहवाला, वन में मलय पर्वत पर रहनेवाला, ऊँट के समान पैरवाला, सूअर के समान मुँहवाला, घोड़ा के समान कण्ठवाला, ऐसा कर्क के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है।। १०।।

अथ कर्कटद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

पद्मार्चिता मूर्धनि भोगियुक्ता
स्त्री कर्कशारण्यगता विरौति।
शाखां पलाशस्य समाश्रिता च
मध्ये स्थिता कर्कटकस्य राशेः ।।११।।

पद्मार्चितेति।। स्त्री योषिन्मूर्धनि शिरसि पद्मैः कमलैरर्चिता पूजिता। भोगियुक्ता ससर्पा, कर्कशा कठिनयौवनोपेता, अरण्यगता

एकान्तस्थिता, विरौति आक्रोशति। पलाशवृक्षस्य शाखां लतां समाश्रिता तत्रासक्ता स्थिता। कर्कटस्य राशेर्मध्ये स्थिता द्वितीयद्रेष्काणे समवस्थिता। एष स्त्रीद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणो भौमसक्तश्च।।११।।

भाषा- मस्तक पर कमल धारण की हुई, सर्प से युक्त, बड़ी ही कर्कशा, वन में रोती हुई, पलाश वृक्ष की शाखा पकड़ कर खड़ी हुई, ऐसा कर्क के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है।।११।।

अथ कर्कटस्थ तृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपं वैतालीयेनाऽऽह-

भार्याभरणार्थमर्णवं नौस्थो गच्छति सर्पवेष्टितः।
हेमैश्च युतो विभूषणैश्चिपिटास्योऽन्त्यगतश्च कर्कटे ।।१२।।

भार्येति।। भार्या जाया तस्या आभरणार्थमलंकरणनिमित्तमर्णवं समुद्रं नौस्थो नावमारूढः। सर्पवेष्टिताङ्गो गच्छति याति, हेमैः सुवर्णनिर्मितैः विभूषणैरलंकरणैर्युतः। चिपिटास्यः चिपिटमुखः, कर्कटेऽन्त्यगतः। तृतीयद्रेष्काणे इत्यर्थः। एष नरेन्द्रद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणो जीवसक्तश्च।।१२।।

भाषा- सर्प से युक्त पुरुष, स्त्री के लिये भूषण के निमित्त नौका पर बैठकर समुद्र में चलनेवाला, सोने के भूषणों से युक्त, चिपटा मुखवाला– ऐसा कर्क के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है।।१२।।

अथ सिंहपूर्वस्य द्रेष्काणस्य स्वरूपज्ञानं रथोद्धतयाऽऽह-

शाल्मलेरुपरि गृध्रजम्बुकौ श्वा नरश्च मलिनाम्बरान्वितः।
रौति मातृपितृविप्रयोजितः सिंहरूपमिदमाद्यमुच्यते।।१३।

शाल्मलेरिति।। शाल्मलिवृक्षस्योपर्यग्रे गृध्रः पक्षी, जम्बुकः शृगालः, एतौ स्थितौ तथा श्वा सारमेयः, नरो मनुष्यः स च मलिनैः मलोपेतैरम्बरैर्वस्त्रैरन्वितो युक्तः, मातृपितृविप्रयोजितो जननीजनकविरहितो रौत्याक्रोशति। इदमाद्यं प्रथमं रूपं सिंहस्योच्यते कथ्यते। सिंहप्रथमद्रेष्काण इत्यर्थः। एष नरद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः खगद्रेष्काणोऽर्कसक्तश्च।।१३।।

भाषा- सेमल के वृक्ष पर गीध, नीचे सियार और कुत्ता, तथा मलिन वस्त्र धारण किया हुआ, माता-पिता से रहित मनुष्य रोता हुआ बैठा, ऐसा सिंह के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है।।१३।।

अथ सिंहद्वितीयस्य स्वरूपं वंशस्थेनाऽऽह-

हयाकृतिः पाण्डुरमाल्यशेखरो बिभर्ति कृष्णाजिनकम्बलं नरः।
दुरासदः सिंह इवात्तकार्मुको नताग्रनासो मृगराजमध्यमः।१४

हयाकृतिरिति।। हयाकृतिः अश्वाकार पाण्डुरमीषच्छुक्लयुक्तं माल्यं पुष्पनिचयं शेखरे शिरसि यस्य। कृष्णाजिनं कृष्णमृगचर्म कम्बलमौर्णिकं बिभर्ति धारयति। केचित्कृष्णाजिनचीवरमिति पठन्ति। चीवरं जीर्णवासः, नरो मनुष्यो दुरासदः दुर्ज्ञेयः, दुसाध्यः, सिंह इव आत्तकार्मुकः गृहीत-चापः, नताग्रनासः नताग्रा नासा यस्य। मृगराजस्य सिंहस्य मध्यमो द्वितीयो द्रेष्काणः हयाकृतिः। पुरुष एवायं नरश्चतुष्पदद्रेष्काणः सायुधो जीवसक्तश्च।१४

भाषा- घोड़े के समान आकार, मस्तक पर पाण्डु (श्वेतपीत मिश्रित वर्ण की) मालावाला, कृष्णमृग चर्म और कम्बल धारण करनेवाला, सिंह के समान वश में नहीं होने वाला, धनुषधारी, नाक का अग्रभाग झुका हुआ, इस प्रकार सिंह का द्वितीय द्रेष्काण है।। १४।।

अथ सिंहतृतीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

ऋक्षाननो वानरतुल्यचेष्टो बिभर्ति दण्डं फलमामिषं च।
कूर्ची मनुष्यः कुटिलैश्च केशैर्मृगेश्वरस्यान्त्यगतस्त्रिभागः।१५।

ऋक्षानन इति।। ऋक्षः प्राणी ऋक्षाननः ऋक्षसदृशवक्त्रः, वानर-तुल्यचेष्टः वानरेण कपिना तुल्या सदृशा चेष्टा स्वभावो यस्य। दण्ड-मायुधं फलमाम्रादि, आमिषं मांसं च बिभर्ति धारयति। कूर्ची दीर्घ-श्मश्रुः, मनुष्यः पुरुषः कुटिलैः केशैर्मूर्द्धजैर्युक्तः। मृगेश्वरस्य सिंहस्यान्त्य-गतस्त्रिभागः। एष नरद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः सायुधो भौमसक्तश्च।१५।

भाषा- भालू के समान मुख, वानर के समान चेष्टावाला, लाठी, फल और मांस को धारण करनेवाला, लम्बी दाढ़ी और टेढ़े शिर के बालवाला, ऐसा सिंह का तृतीय द्रेष्काण है।।१५।।

अथ कन्यापूर्वस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

पुष्पप्रपूर्णेन घटेन कन्या मलप्रदिग्धाम्बरसंवृताङ्गी।
वस्त्रार्थसँय्योगमभीष्टमाना गुरोः कुलं वाञ्छति कन्यकाद्यः।१६।

पुष्पप्रपूर्णेनेति।। कन्या कुमारी, पुष्पप्रपूर्णेन कुसुमपरिपूरितेन कुम्भेन उपलक्षिता मलप्रदिग्धैरतिमलोपेतैः अम्बरैर्वस्त्रैः संवृताङ्गी संवृतावयवा। वस्त्राण्यम्बराणि अर्थो धनं एषां संयोगमभीष्ट-माना वाञ्छमाना गुरोः कुलं व्रजति गच्छति। कन्यकाद्यः प्रथमद्रेष्काणः। एष स्त्रीद्रेष्काणो बुधसक्तश्च।। १६।।

भाषा- पुष्प से भरा हुआ घड़ा लिए हुई कन्या मलिन वस्त्र धारण की हुई, वस्त्र और धन का संग्रह करने की इच्छा रखती हुई, गुरुकुल में जानेवाली स्त्री, ऐसा कन्या का प्रथम द्रेष्काण कहा गया है।।१६।।

अथ कन्याद्वितीयस्य स्वरूपं वैतालीयेनाऽऽह-

पुरुषः प्रगृहीतलेखनिः श्यामो वस्त्रशिरा व्ययायकृत्।
विपुलं च बिभर्ति कार्मुकं रोमव्याप्ततनुश्च मध्यमः।।१७।।

पुरुष इति।। पुरुषो नरः, प्रगृहीतलेखनिः ययाक्षराणि लिख्यन्ते सा लेखनिः श्यामो श्यामवर्णः वस्त्रशिराः कर्पटसंयमितमूर्द्धा केचिद्-बद्धशिरा इति पठन्ति। संयमितशिराः। व्ययं व्ययकृत् आयं प्रवेशं च करोति गणयति। विपुलं विस्तीर्णं कार्मुकं धनुर्बिभर्ति धारयति। रोमव्याप्ततनुः रोमशरीरः एष मध्यमो द्वितीयद्रेष्काणः। एष नर-द्रेष्काणः सायुधः सौरसक्तश्च।। १७।।

भाषा- हाथ में कलम, श्यामवर्ण, मस्तक में पगड़ी बाँधे, खर्च और आमदनी का विचार करनेवाला, रोम से व्याप्त शरीर, बड़ा विशाल धनुष धारण किया हुआ पुरुष कन्या के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है।।१७।।

अथ कन्यातृतीयस्य स्वरूप ज्ञानमुपजातिकयाऽऽह-

गौरी सुधौताग्रदुकूलगुप्ता समुच्छ्रिता कुम्भकटच्छुहस्ता।
देवालयं स्त्री प्रयता प्रवृत्ता वदन्ति कन्यान्त्यगतस्त्रिभागः।१८।

गौरीति।। गौरी गौरवर्णा, सुधौतान्यग्राणि यस्मिन् दुकूले पटविशेषे तेन गुप्ताच्छादिता। केचित्तु दुकूलहस्ता इति पठन्ति। समुच्छ्रिता अत्युच्चा कुम्भो घटः कठच्छुर्दर्वी प्रसिद्धा गृहोपयोगिकं लोहभांण्डं तत्करे हस्ये यस्या। देवालयं सुरगृहं स्त्री युवतिः प्रयता समाहिता प्रवृत्ता गन्तुमुद्यता, वदन्ति कथयन्ति मुनयः। कन्यान्त्यगतस्त्रिभागः तृतीय-द्रेष्काणः। एष स्त्रीद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च।। १८।।

भाषा- गौरवर्णा, धोया हुआ कपड़ा धारण करनेवाली, उच्च-आकृति, हाथ में घड़ा और करछुल लिये हुई, अति पवित्रा, देवालय जाने के लिये प्रवृत्ता स्त्री, इस प्रकार का कन्या राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है।१८।

अथ तुलाद्यस्वरूपं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

वीथ्यन्तरापणगतः पुरुषस्तुलावानु-
न्मानमानकुशलः प्रतिमानहस्तः।
भाण्डं विचिन्तयति तस्य च मूल्यमेतद्रूपं
वदन्ति यवनाः प्रथमं तुलायाः ।।१९।।

वीथ्यन्तरेति।। वीथ्यन्तरे मार्गमध्ये यदा पणं प्रसारकः सम-वस्थितस्तत्र गतः। पुरुषो नरस्तुलावान् तुलाहस्तः विद्यमानतुलः

उन्माने ऊर्ध्वमाने तुलादिके माने मानशब्देन कुडवादौ च तस्मिन्कुशलः तज्ज्ञः प्रतिमानं येन द्रव्याणि सुवर्णरत्नादीनि परिच्छिद्यन्ते तत्तु हस्ते यस्य भाण्डे क्रयद्रव्यं विचिन्तयति ध्यायति तस्य भाण्डस्यैतन्मूल्यमिति तस्य च भाण्डस्य च मूल्यं विचिन्तयति। एतद्यवनास्तुलायाः प्रथम-द्रेष्काणस्य रूपं वदन्ति कथयन्ति। एष नरद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च।।१९।।

भाषा- शहरों की गली में दुकान करनेवाला, हाथ में तराजू लिया हुआ पुरुष, सुवर्ण आदि तौलने में या पैली से मापने में कुशल, कसौटी (सुवर्ण जाँचने का पत्थर) हाथ में लिया हुआ, खरीदने और वस्तुओं की कीमत जाननेवाला, इस प्रकार का तुला के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप यवनों ने कहा है।।१९।।

अथ तुलाद्वितीयस्य स्वरूपं त्रोटकेनाऽऽह-

कलशं परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति गृध्रमुखःपुरुषः।
क्षुधितस्तृषितश्च कलत्रसुतान् मनसैति तुलाधरमध्यगतः।२०।

कलशमिति।। गृध्रः पक्षी गृध्रमुखो गृध्राननः कलशं कुम्भं गृहीत्वा विनिष्पतितुं निर्विशेषं पतितुमभीप्सति वाञ्छति। यतः क्षुधितो बुभुक्षितः तृषितः पिपासितोऽतः कलत्रं भार्या सुतान् पुत्रान्मनसा चित्तेनैति गच्छति। अभीप्सति अभिलषति स्मरतीत्यर्थः। इत्येवंप्रकारः तुलाधरमध्यगः तुलाद्वितीयद्रेष्काणः एष नरद्रेष्काणः खगद्रेष्काणः शनैश्चरसक्तश्च।।२०।।

भाषा- गीध के समान मुखवाला पुरुष हाथ में घड़ा लेकर गिरने की इच्छा करता हुआ, भूख और प्यास से व्याकुल, मन-ही-मन स्त्री और पुत्र का स्मरण करने वाला, ऐसा तुला का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है।२०।

अथ तुलातृतीयस्य स्वरूपं वंशस्थेनाऽऽह-

विभीषयंस्तिष्ठति रत्नचित्रितो वने मृगान्काञ्चनतूणवर्मभृत्।
फलामिषं वानररूपभृन्नरस्तुलावसाने यवनैरुदाहृतः।२१

विभीषयन्निति।। रत्नचित्रितो मणिभिर्विभूषितः वनेऽरण्ये मृगा-न्हरिणान्विभीषयन् भीषां कुर्वन् तिष्ठति। कीदृशः? काञ्चनं सौवर्णं तूणं शराधानं वर्म सन्नाहं ते च बिभर्त्ति धारयति। फलान्यामिषं च मांसं बिभर्ति नरो मनुष्यो वानररूपभृत् वानरस्य कपेरिव रूपं बिभर्ति धारयति। फलान्याम्रादीनि। केचिद्धनुर्द्धरः किन्नररूपभृन्नर इति पठन्ति। धनुर्द्धरः चापहस्तः किन्नरो देवयोनिरश्वमुखः पुरुषः, तुलावसाने तुलायास्तृतीयद्रेष्काणे यवनैः पुराणयवनैरुदाहृतः कथितः। नरो मनुष्यो वारनाकारोऽयं चतुष्पदद्रेष्काणो बुधसक्तश्च।।२१।।

भाषा- मणियों से विभूषित वानर के समान मुखवाला मनुष्य, हाथ में सुवर्ण के निषङ्ग और कवच धारण किया हुआ, वन में मृगों को भय देता हुआ, फल और मांस चाहनेवाला, ऐसा तुला का तृतीय द्रेष्काण पुराने यवनों ने कहा है।।२१।।

अथ वृश्चिकप्रथमस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

वस्त्रैर्विहीनाभरणैश्च नारी महासमुद्रात्समुपैति कूलम्।
स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा वृश्चिकराशिपूर्वः।२२।

वस्त्रैरिति।। स्त्री वस्त्रैरम्बरैस्तथाभरणैरलंकरणैश्च विहीना वर्जिता महासमुद्रान्महासागरात् कूलं समुपैत्यागच्छति। स्थानच्युता स्वस्थानात् भ्रष्टा सर्पनिबद्धपादा भुजगनियमितचरणा। मनोरमा चित्तानन्द-विधायिनी चित्ताह्लादकरी वृश्चिकराशेः पूर्वः प्रथमद्रेष्काणः। एषः स्त्रीद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणो भौमसक्तश्च।।२२।।

भाषा- वस्त्र और आभूषणों से हीन, महासमुद्र से तीर की ओर आती हुई, स्थान से भ्रष्टा, पैर में सर्प बाँधे हुई, मनोहर रूपवाली स्त्री, ऐसा वृश्चिक के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है।।२२।।

अथ वृश्चिकद्वितीयस्य स्वरूपं दोधकेनाऽऽह-

स्थानसुखान्यभिवाञ्छति नारी भर्तृकृते भुजगावृतदेहा।
कच्छपकुम्भसमानशरीरा वृश्चिकमध्यमरूपमुशन्ति।२३।

स्थानेति।। नारी स्त्री स्थानसुखान्यभिवाञ्छति भर्तृकृते पतिनिमित्तं भुजगावृतदेहा सर्पव्याप्तशरीरा। कच्छपः कूर्मः, कुम्भो घटः तत्समान-शरीरा तत्तुल्यदेहा। वृश्चिकं मध्यमरूपं द्वितीयं द्रेष्काणमुशन्ति कथयन्ति। एष स्त्रीद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणः जीवसक्तश्च।।२३।।

भाषा- पति के निमित्त स्थान-सुख चाहनेवाली स्त्री, सर्प से वेष्टित शरीर, कछुआ और घड़ा के समान आकारवाली, ऐसा वृश्चिक के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है।।२३।।

अथ वृश्चिकतृतीयस्वरूपज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽऽह-

पृथुलचिपिटकूर्मतुल्यवक्त्रः श्वमृगवराहशृगालभीषकारी।
अवति च मलयाकरप्रदेशं मृगपतिरन्त्यगतस्य वृश्चिकस्य।२४।

पृथुलचिपिटमिति।। पृथुलं विस्तीर्णं चिपिटं चर्पटं कूर्मतुल्यं कच्छपसदृशं वक्त्रं मुखं यस्य। श्वाः सारमेयः, मृगो हरिणः, शृगालः क्रोष्टा, वराहः सूकरः एष भीषकारी भयकारी मलयस्य चन्दनस्याक-रस्य प्रदेशमुत्पत्तिस्थानं भवति रक्षति स मृगपतिः सिंहः अन्त्य-

गतो वृश्चिकस्य तृतीयद्रेष्काणः। एष कूर्माननः सिंहद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः चन्द्रसक्तश्च ।। २४ ।।

भाषा- विशाल और चिपटा कछुआ के समान मुखवाला, वन में कुत्ता, हरिण, सूकर, सियार-इन जानवरों को भय देनेवाला, सिंह, चन्दन-वन की रक्षा करनेवाला, ऐसा वृश्चिक का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है।२४।

अथ धन्विपूर्वस्य स्वरूपज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायो धनुर्विगृह्यायतमाश्रमस्थः।
क्रतूपयोज्यानि तपस्विनश्च ररक्ष आद्यो धनुषस्त्रिभागः ।।२५।।

मनुष्यवक्त्र इति।। मनुष्यवक्त्रो नरवदनः, अश्वसमानकायः तुरगसदृशदेहः, आयतं दीर्घं धनुश्चापं गृहीत्वा आश्रमस्थः तत्राश्रमे तिष्ठति। क्रतूपयोज्यानि यज्ञोपकरणादीनि यज्ञभाण्डानि स्रुक्स्रुवादीनि तपस्विनः तापसान् ररक्ष रक्षितवान्। आद्यः प्रथमो धनुषस्त्रिभागो धन्विद्रेष्काणः। केचिच्च ररक्ष पूर्व इति पठन्ति। धनुषः पूर्वस्त्रिभागः प्रथमद्रेष्काणः। एषोऽश्वसमानकायः नरद्रेष्काणः चतुष्पात्सायुधद्रेष्काणः जीवसक्तश्चः।२५।

भाषा- मनुष्य के समान मुख, घोड़े के समान शरीर, हाथ में बड़ा धनुष लिए हुए आश्रमस्थ होकर यज्ञीय वस्तु और तपस्वियों की रक्षा करनेवाला, ऐसा धनु का प्रथम द्रेष्काण है।। २५।।

अथ धन्विद्वितीयस्य स्वरूपज्ञानमुपजातिकयाऽऽह-

मनोरमा चम्पकहेमवर्णा भद्रासने तिष्ठति मध्यरूपा।
समुद्ररत्नानि विघट्टयन्ती मध्यत्रिभागे धनुषः प्रदिष्टः ।।२६।।

मनोरमेति।। मनोरमा चित्ताह्लादकारिणी, चम्पकं पुष्पविशेषः हेम सुवर्णं तत्सदृशवर्णा तत्समकान्तिः भद्रासने आसनविशेषे तिष्ठति तत्र उप मध्यमरूपा न चातिशोभना नाप्यत्यसोभना समुद्ररत्नानि सागरमणीन् विघट्टयन्ती स्त्री तिष्ठति। धनुषो मध्यत्रिभागो द्वितीयद्रेष्काणो मुनिभिः प्रदिष्टः उक्तः। एष स्त्रीद्रेष्काणो भौमसक्तश्च।२६।

भाषा- मनोहर रूप, चम्पा और सुवर्ण समान वर्णवाली, समुद्र के रत्नों को बटोरती हुई, भद्रासन पर बैठी स्त्री, ऐसा धनु राशि का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है।। २६।।

अथ धन्वितृतीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

कूर्ची नरो हाटकचम्पकाभो वरासने दण्डधरो निषण्णः।
कौशेयकान्युद्वहतेऽजिनं च तृतीयरूपं नवमस्य राशेः ।।२७।।

कूर्ची नर इति।। नरो मनुष्यः कूर्ची दीर्घश्मश्रुः हाटकं सुवर्णं चम्पकः पुष्पविशेषः तदाभः तत्सदृशकान्तिः तत्समानद्युतिः वरासने प्रधानासने निषण्णः उपविष्टः दण्डधरो दण्डहस्तः, कौशेयकानि पट्ट-विशेषाणि उद्वहते धारयति। अजिनं मृगचर्म नवमस्य राशेर्धनुषः तृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपम्। एष नरद्रेष्काणः सायुधः अर्कसक्तश्च।।२७।।

भाषा- लम्बी दाढ़ीवाला पुरुष, सोना और चम्पा के समान कान्तिवाला, हाथ में दण्ड (लाठी) लेकर अच्छे आसन पर बैठा हुआ, पट्ट वस्त्र और मृगचर्म धारण किया हुआ, इस प्रकार का धनु राशि का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है।।२७।।

अथ मकरप्रथमस्य स्वरूपं दोधकेनाऽऽह-

रोमचितो मकरोपमदंष्ट्रः सूकरकायसमानशरीरः।
योक्त्रकजालकबन्धनधारी रौद्रमुखो मकरप्रथमस्तु।।२८।।

रोमेति।। रोमचितो रोमशः, मकरोपमदंष्ट्रः मकरतुल्यदंष्ट्रः मकरो जलचरप्राणी सूकरस्य वराहस्य कायो देहः तत्समानशरीरः तत्तुल्यतनुः। योक्त्रकं येन बलीवर्दा योज्यन्ते, जातकः प्रसिद्धः येन पक्षिणो बध्यन्ते बन्धनं निगडादि एतानि धारयति तच्छीलः। रौद्र-मुखो वक्रिताननः मकरप्रथमः प्रथमद्रेष्काणः। एष पुरुषद्रेष्काणः बन्धनधारित्वात्सनिगडः सूकरसमानशरीरः न सूकरः तस्मान्न चतुष्पात् शनैश्चरसक्तश्च।।२८।।

भाषा- रोम से व्याप्त देह, मगर के दाँत-समान दाँतवाला, शूकर के समान शरीरवाला, जौती (जिससे बैल बाँधे जाते हैं), जाल, बंधन (हथकड़ी) को धारण किया हुआ भयानक मुखवाला पुरुष ऐसा मकर का प्रथम द्रेष्काण है।।२८।।

अथ मकरद्वितीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाऽऽह-

कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षी श्यामा विचित्राणि च मार्गमाणा।
विभूषणालङ्कृतलोहकर्णा योषा प्रदिष्टा मकरस्य मध्ये।२९

कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षीति।। कलास्वभिज्ञा आभिमुख्येन जानाति अब्जदलायताक्षी अब्जदलं पद्मपत्रं तद्वदायते दीर्घे अक्षिणी यस्याः सा दीर्घनेत्रा च श्यामा श्यामवर्णा विचित्राणि नानाप्रकाराणि वस्तूनि च मार्गमाणा अभीप्समाना विभूषणैरलंकरणैरलंकृता लोहकर्णा लोहयुक्तश्रोत्रा लोहाभरणं कर्णयोर्यस्याः सा योषा स्त्री मकरस्य मध्ये द्वितीयद्रेष्काणे प्रदिष्टा उक्ता। एषः स्त्रीद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च।।२९।।

भाषा- सभी प्रकार के कलाओं में निपुण, कमलपत्राक्षी, श्यामवर्णा, नाना प्रकार के पदार्थ की खोज करनेवाली, विभूषणों से अलंकृत, कान में लौह धारण की हुई स्त्री, ऐसा मकर के द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है।।२६।।

अथ मकरतृतीयस्य स्वरूपं रथोद्धतयाऽऽह-

किन्नरोपमतनुः सकम्बलस्तूणचापकवचैः समन्वितः।
कुम्भमुद्वहति रत्नचित्रितं स्कन्धगं मकरराशिपश्चिमः।।३०।।

किन्नरोपमेति।। किन्नरोपमतनुः किन्नरा देवयोनयः अश्वमुखाः पुरुषास्तत्सदृशी तनुः, सकम्बलः कम्बलेन सहितः, तूणं शराधारं, चापं धनुः कवचं सन्नाहः एतैस्तूणचापकवचै; सराधारधनुःसन्नाहैः समन्वितो युक्तः कुम्भं घटं रत्नचित्रितं मणिविरचितं स्कन्धगतमंसासक्तमुद्वहति धारयति। मकरराशेः पश्चिमस्तृतीयद्रेष्काणः, एष पुरुषद्रेष्काणः सायुधः बुधसक्तश्च।३०

भाषा- किन्नर (अश्वमुख देवयोनि पुरुष) के समान शरीर, कम्बल, तूणीर (तरकस), धनुष-कवच से युत, कन्धे पर रत्नजटित घड़ा लिए हुए, इस प्रकार मकर के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है।।३०।।

अथ कुम्भप्रथमद्रेष्काणस्य स्वरूपं दोधकेनाऽऽह-

स्नेहमद्यजलभोजनागमव्याकुलीकृतमनाः सकम्बलः।
कोशकारवसनोऽजिनान्वितो गृध्रतुल्यवदनो घटादिगः।।३१।।

स्नेहमद्यजलभोजनेति।। स्नेहस्तैलादि, मद्यं पानविशेषः जलमुदकं, भोजनमशनम् एतेषां य आगमः तेन व्याकुलितं मनः चित्तं यस्य सकम्बलः कम्बलसहितः, कोषकारवसनः पट्टवासाः, अजिनान्वितः कृष्णमृगचर्मयुक्तः, गृध्रः पक्षी तत्तुल्यवदनः तत्समवक्त्रः, घटादिगः कुम्भप्रथमद्रेष्काणः एष नरद्रेष्काणः खगश्च सौरसक्तश्च।।३१।।

भाषा- तैल, घृत, मदिरा, जल, भोजन-इनकी आमदनी से व्याकुल मनवाला; कम्बल, रेशमी वस्त्र और मृगचर्म को धारण किया हुआ, गीध के समान मुखवाला ऐसा कुम्भ राशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है।३१।

अथ कुम्भद्वितीयस्वरूपं वैतालीयेनाऽऽह-

दग्धे शकटे सशाल्मले लोहान्याहरतेऽङ्गना वने।
मलिनेन पटेन संवृता भाण्डैर्मूर्ध्नि गतैश्च मध्यमः।।३२।।

दग्धे शकटे इति। शकटे गन्त्र्यां दग्धे अग्निना भस्मीकृते सशाल्मले शाल्मलवृक्षैः सहिते अङ्गना स्त्री लोहान्याहरते गृह्णाति वने अरण्ये मलिनेन पटेन समलेन वाससा संवृता प्रावृता भाण्डैः भाण्ड-

प्रकारैः मूर्ध्नि गतैः मस्तकारोपितैः उपलक्षिता। केचिद्भाण्डैरारोपितैः परिपूर्ण इति पठन्ति। मध्यमो द्वितीयद्रेष्काणः। एष स्त्रीद्रेष्काणः साग्निको बुधसक्तश्च॥३२॥

भाषा- वन में अग्नि से जले सेमल वृक्ष सहित गाड़ी पर बैठी हुई, मलिन वस्त्र पहिने हुई, माथे पर घड़ा ली हुई स्त्री लौह बटोर रही है– ऐसा कुम्भ का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है॥३२॥

अथ कुम्भतृतीयस्य स्वरूपज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

श्यामः सरोमश्रवणः किरीटी त्वक्पत्रनिर्यासफलैर्बिभर्ति।
भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि सञ्चारयत्यन्तगतो घटस्य।३३।

श्याम इति॥ श्यामः श्यामवर्णः, सरोमश्रवणः लोमशकर्णः, किरीटी मौलियुक्तः, त्वक् चर्म, पत्रं पर्णं, निर्यासः वृक्षनिर्यासः यथा गुग्गुलुः स्नेहः फलं च सुप्रसिद्धमेवाम्रादि एतैः सह भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि लोहसंयुक्तानि बिभर्ति धारयति तानि च संचारयति स्थानात् स्थानान्तरं नयति। घटस्य कुम्भस्यान्तगतः तृतीयद्रेष्काणः। एष नरद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च॥३३॥

भाषा- श्यामवर्ण, कान पर रोम, मस्तक पर किरीट धारण किया हुआ, छिलका, पत्ता, गोंद और फल से युक्त लौह से निर्मित भाण्ड (बर्तन) को धारण करनेवाला और उन बर्तनों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते हुए पुरुष को कुम्भराशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप समझना॥३३॥

अथ मीनाद्यस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

स्रुग्भाण्डमुक्तामणिशङ्खमिश्रैर्व्याक्षिप्तहस्तः सविभूषणश्च।
भार्याविभूषार्थमपां निधानं नावा प्लवत्यादिगतो झषस्य।३४।

स्रुग्भाण्डेति॥ स्रुग्भाण्डानि यज्ञोपकरणभाण्डानि, मुक्ता मौक्तिकं, मणयः प्रसिद्धाः, शंखः प्रसिद्ध एव एतैर्मिश्रैरेकीकृतैः व्याक्षिप्तो हस्तो यस्य आकुलकरः सविभूषणः साभरणः भार्या जायो तद्विभूषार्थमलंकरणार्थमपां निधानं समुद्रं नावा प्लवति नौस्थो गच्छति। केचिन्महार्णवं च नावा प्लवतीति पठन्ति। झषस्य मीनस्यादिगतः प्रथमद्रेष्काणः। एष नरद्रेष्काणो जीवसक्तश्च॥३४॥

भाषा- स्रुक् आदि यज्ञ-पात्र, मोती, रत्नमणि, शङ्ख-इन सब को अधिक संख्या में हाथ में लिया हुआ, भूषणों से शोभित और स्त्री के भूषणों के निमित्त नौका से समुद्र में तैरनेवाला पुरुष– ऐसा मीन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है॥३४॥

अथ मीनद्वितीयस्य स्वरूपज्ञानं वसन्ततिलकेनाऽऽह-

अत्युपृच्छ्रितध्वजपताकमुपैति पोतं
कूलं प्रयाति जलधेः परिवारयुक्ता ।
वर्णेन चम्पकमुखा प्रमदा त्रिभागो
मीनस्य चैष कथितो मुनिभिर्द्वितीयः ॥३५॥

अत्युच्छ्रितेति॥ अत्युच्छ्रिता अतीवोच्चध्वजाः पताका यस्मिन्पोते तमुपैति आरोहति। जलधेः समुद्रस्य कूलं तटं प्रयाति। प्रमदा स्त्री, कीदृशी? परिवारयुक्ता सखीजनेनावृता। चम्पकं पुष्पविशेषः चम्पककान्तिः मुखवर्णेन चम्पककान्तिं मुष्णातीत्यर्थः। एष मीनस्य द्वितीयत्रिभागो मुनिभिर्गदित उक्तः। एष स्त्रीद्रेष्काणश्चन्द्रसक्तश्च॥३५॥

भाषा- चम्पा पुष्पसदृश मुख की कान्तिवाली, परिवारों के सहित, अति उच्च पताका वाले, जहाज पर चढ़ी हुई समुद्र के किनारे जाती हुई स्त्री– ऐसा मीन राशि के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है॥३५॥

अथ मीनस्य तृतीयद्रेष्काणस्वरूपज्ञानमिन्द्रवज्रयाऽऽह-

श्वभ्रान्तिके सर्पनिवेष्टिताङ्गो वस्त्रैर्विहीनः पुरुषस्त्वटव्याम्।
चौरानलव्याकुलितान्तरात्मा विक्रोशतेऽन्त्योपगतो झषस्य।३६।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके
द्रेष्काणस्वरूपाध्यायः सप्तविंशः॥२७॥

श्वभ्रान्तिके इति॥ श्वभ्रान्तिके गर्तसमीपे सर्पनिवेष्टिताङ्गो भुजगावृतावयवः वस्त्रैरम्बरैर्विहीनो रहितः पुरुषो नरः अटव्यामरण्ये चौरैस्तस्करैः अनलेनाग्निना व्याकुलितः क्षुभितोऽन्तरात्मा यस्य, विक्रोशते रोदति। झषस्य मीनस्यान्त्योपगतः तृतीयद्रेष्काणः। एष व्यालद्रेष्काणो भौमसक्तश्च। द्रेष्काणस्वरूपस्य प्रयोजनं प्रदेशेषु व्याख्यातम्। तथा च यात्रायां वक्ष्यति– 'द्रेष्काणाकारचेष्टां गुणसदृशफलं योजयेद्वृद्धिहेतोर्द्रेष्काणे सौम्यरूपे कुसुमुफलयुते रत्नभाण्डान्विते च। सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात्प्रहरणसदृशे पापदृष्टे च भङ्गः सम्मोहो वाऽथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते पिपासुः'॥ इति॥ अन्यच्चास्य प्रयोजनं चौररूपस्थानादिज्ञानम्। उक्तं च षट्पञ्चाशिकायां पृथुयशसा- 'अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः। राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात्॥' एवं वृत्तानि।३६।

भाषा- वन में गर्त (गड्ढा) के समीप, सर्प से युत शरीर, वस्त्रविहीन पुरुष चोर और अग्नि के भय से व्याकुल मन से रोता हुआ– ऐसा मीन राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है॥३६॥

विशेष अर्थ- द्रेष्काण के प्रयोजन-'कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्दृकाणे चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति' इत्यादि पीछे कहे गये हैं। तथा यात्रा समय में एवं चोर के आकार, स्थानादि जानने में इनका प्रयोजन होता है। यथा-

'द्रेष्काणाकारचेष्टागुणसदृशफलं योजयेद् वृष्टिहेतोः
द्रेष्काणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च।
सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात् प्रहरणसमये पापदृष्टे च भङ्गः
सम्मोहो वाऽथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते पिपासुः॥'

भावार्थ यह है कि- लग्नगत द्रेष्काण के आकार, चेष्टा और गुण के समान ही जातक के आकार, चेष्टा और गुण होते हैं। जिस द्रेष्काण के स्वरूप आदि सौम्य, और पुष्प, फल, सुवर्ण से युत कहे गये हैं उसमें यात्रा करने से विजय और लाभ होता है। जिसका रूप भयानक, सर्प या पाशयुत तथा तृषित, क्षुधित कहे गये हैं उसमें यात्रा करने से हानि, पराजय और बन्धन होता है। एवं षट्पञ्चाशिका में-

अंशकाज् ज्ञायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः।
राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात्' स्पष्टार्थ।३६।

अथोपसंहाराध्यायः॥२८॥

अथात उपसंहाराध्यायो व्याख्यायते। अथाध्यायसंग्रहमुपजातिकयाऽऽह-

राशिप्रभेदो ग्रहयोनिभेदो वियोनिजन्माऽथ निषेककालः।
जन्माथ सद्यो मरणं तथायुर्दशाविपाकाऽष्टकवर्गसञ्ज्ञः।१।

राशिप्रभेद इति॥ राशिप्रभेदः प्रथमोऽध्यायः, ग्रहयोनिभेदो द्वितीयः, वियोनिजन्मा तृतीयः, अथ शब्द; आनन्तर्ये। निषेककालश्चतुर्थः, जन्मविधिः पञ्चमः, अथ सद्योमरणमरिष्टाध्यायः षष्ठः, आयुर्विभागः सप्तमः, दशाविभागोऽष्टमः, अष्टकवर्गसंज्ञो नवमः॥१॥

अथ शेषाध्यायसंग्रहं शालिन्याऽऽह-

कर्माजीवो राजयोगाः खयोगाश्चान्द्रा योगा द्विग्रहाद्याश्च योगाः।
प्रव्रज्याथो राशिशीलानि दृष्टिर्भावस्तस्मादाश्रयोऽथ प्रकीर्णः।२

कर्माजीव इति॥ कर्माजीवो दशमः, राजयोगाध्याय एकादशः, खयोगाः नाभसयोगाध्यायः द्वादशः, चान्द्रयोगाः सुनफाद्याश्चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः, द्विग्रहत्रिग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः, प्रव्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः, अथोऽनन्तरं राशिशीलाध्यायः षोडशः, दृष्टिफलाध्यायः सप्तदशः, तस्मात्परो भावाध्यायोऽष्टादशः, अथातः परमाश्रयाध्याय एकोनविंशतितमः, प्रकीर्णाध्यायो विंशतिः॥२॥

अथ शेषाध्यायसंग्रहं शालिन्याऽऽह-

नेष्टा योगा जातकं कामिनीनां निर्याणं स्यान्नष्टजन्मा दृकाणः।
अध्यायानां विंशतिः पञ्चयुक्ता जन्मन्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये।३

नेष्टा योगा इति।। अनिष्टयोगाध्याय एकविंशतिः, कामिनीनां स्त्रीणां जातकाध्यायो द्वाविंशतिः, निर्याणं मरणज्ञानाध्यायस्त्रयोविंशतिः, नष्टजातकाध्यायश्चतुर्विंशतिः, द्रेष्काणस्वरूपाध्यायः पञ्चविंशतिः *(१)* एवं पञ्चयुक्ताध्यायानां विंशतिः जन्मनि जातके उक्ता कथितोक्ता एतज्जातके।३

भाषा- राशिप्रभेदाध्याय १, ग्रहयोनिभेदाध्याय २ वियोनिजन्माध्याय ३, निषेकाध्याय ४, जन्माध्याय ५, अरिष्टाध्याय ६, आयुर्दायाध्याय ७, दशाध्याय ८, अष्टवर्गाध्याय ९, कर्मजीवाध्याय १०, राजयोगाध्याय ११, नाभसयोगाध्याय १२, चन्द्रयोगाध्याय १३, द्विग्रहयोगाध्याय १४, प्रव्रज्याध्याय १५, राशिशीलाध्याय १६, दृष्टिफलाध्याय १७, भावाध्याय १८, आश्रययोगाध्याय १९, प्रकीर्णाध्याय २०, अनिष्टयोगाध्याय २१, स्त्रीजातकाध्याय २२, निर्याणाध्याय २३, नष्टजन्माध्याय २४, और द्रेष्काणाध्याय २५, इस प्रकार पचीस (२५) अध्याय जातक में कहे गये हैं। इनमें नक्षत्रशील १, चन्द्रान्यराशिशील २ और उपसंहार- ये ३ अध्याय पृथक् मानने से इस ग्रन्थ में २८ अध्याय होते हैं।। १-३।।

एवमिदानीं यात्रिके यात्रायां निबद्धमध्यायसंग्रहमभिधास्ये कथयिष्ये। तच्चोपजातिकयाऽऽह-

प्रश्नास्तिथिर्भं दिवसः क्षणश्च चन्द्रो विलग्नं त्वथ लग्नभेदः।
शुद्धिर्ग्रहाणामथ चापवादो विमिश्रकाख्यं तनुवेपनं च।४।

प्रश्नास्तिथिरिति।। प्रश्नाः प्रश्नभेदाध्यायः, तिथिस्तिथिबलाध्यायः, भं नक्षत्राभिधानं, दिवसो दिवसाभिधानं वारफललक्षणं, क्षणो मुहूर्तनिर्देशः, चन्द्रश्चन्द्रबलाध्यायः, लग्नं च लग्नविनिश्चयः, अथान्तरं लग्नभेदो होराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागानां लक्षणं सफलं ग्रहाणां शुद्धिः सफला समस्तग्रहाणां कुण्डलिकाफलम्। अथानन्तर्ये अपवादाध्यायः विमिश्रकाख्यं विमिश्रकाध्यायः तनुवेपनं देहस्पन्दनम्।। ४।।

शेषाध्यायस्य कीर्तनमुपजातिकयाऽऽह-

अतः परं गुह्यकपूजनं स्यात्स्वप्नं ततः स्नानविधिः प्रदिष्टः।
यज्ञो ग्रहाणामथ निर्गमश्च क्रमाच्च दिष्टः शकुनोपदेशः।५।

(१) एतेन षोडशाध्याये कैश्चिद् त्रयोऽध्यायाः प्रकरणभेदेन नियुक्ताः सैव सरणिः टीकाकारैरपि समाश्रिता।

अतः परमिति।। अतोऽस्मात्परं गुह्यकपूजनं स्याद्भवेत् स्वप्नं स्वप्नाध्यायः ततोऽनन्तरं स्नानविधिः प्रदिष्टः उक्तः, ग्रहाणां यज्ञ ग्रहयज्ञः अथानन्तरं निर्गमः प्रास्थानिकं क्रमात्परिपाट्या दिष्ट उक्तः शकुनोपदेशः शकुनरुतज्ञानम्। एष यात्रायां संग्रहः ।।५।।

अथ शेषवस्तुसंग्रहमुपजातिकयाऽऽह-

विवाहकालः करणं ग्रहाणां प्रोक्तं पृथक्तद्विपुलाऽथ शाखा।
स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषसङ्ग्रहोऽयं मया कृतो दैवविदां हिताय।६।

विवाहकाल इति।। विवाहकालो विवाहपटले ग्रहाणां करणं पञ्चसिद्धान्तिकायां प्रोक्तं कथितं पृथग्विभज्य तद्विपुला तस्य करणस्य शुभाशुभज्ञानाय विपुला विस्तीर्णा शाखा कथिता। त्रिभिः स्कन्धैरेतैर्गणितहोरासंहिताख्यैरयं ज्योतिःशास्त्रसंग्रहो मया वराहमिहिराचार्येण दैवविदां सांवत्सरिकाणां हितार्थं कृतो विरचितः। विस्तीर्णशास्त्राण्यालोच्य संक्षेपतो मया कृतः ।। ६ ।।

भाषा- प्रश्नाध्याय १, तिथिबलाध्याय २, नक्षत्रबलाध्याय ३, दिनबलाध्याय ४, मुहूर्त ५, चन्द्रबल ६, लग्नसाधन ७, लग्नभेद (होरा, द्रेष्काणादि वर्ग) ८, ग्रहशुद्धि ९, अपवादाध्याय १०, मिश्रकाध्याय ११, अङ्गस्फुरणाध्याय १२, गुह्यकपूजनविधि १३, स्वप्नाध्याय १४, स्नानविधि १५, ग्रहयज्ञ १६, निर्गम (यात्रा निर्णय) १७, शकुनाध्याय १८, विवाहपटल १९– ये यात्रिक (अर्थात् मौहूर्तिक) विषय हैं। एवं ग्रहों का कारण (पञ्चसिद्धान्तिकोक्त) और उसकी विपुला शाखाएँ, इस प्रकार मैं (वराहमिहिर) ने ज्यौतिषियों के हितार्थ तीन (जातक, संहिता और गणित रूप) स्कन्धों में यह ज्यौतिषशास्त्र का संग्रह किया है।। ४-६ ।।

एतन्मालिन्याऽऽह-

पृथुविरचितमन्यैः शास्त्रमेतत्समस्तं
तदनु लघु मयेदं तत्प्रदेशार्थमेव।
कृतमिह हि समर्थं धीविषाणामलत्वे
मम यदिह यदुक्तं सज्जनैः क्षम्यतां तत् ।।७।।

पृथुविरचितमन्यैरिति।। एतत्समस्तं सकलशास्त्रमन्यैराचार्यैर्यवनेश्वरादिभिः पृथु विस्तीर्णं कथितं तदनु तदेव शोभनतरं मया तत्प्रदेशार्थं तदुपदिष्टार्थं लघु स्वल्पं कृतं तत्प्रदेशेऽपि योऽर्थः सोऽस्मिंस्तात्पर्यार्थः। हि यस्मादर्थे इहास्मिन् शास्त्रे कृतं धीविषाणामलत्वे

बुद्धिशृङ्गनिर्मलीकरणविषये समर्थमुक्तमेतत् कृतम्। मया चेह संग्रहे यदुक्तमशोभनयुक्तं कथितं तत्सज्जनैः पण्डितैर्मम क्षम्यतां, क्षन्तव्यमित्यर्थः॥ ७॥

भाषा- इस ज्यौतिष शास्त्र को अन्य (यवनादि) आचार्यों ने विस्तार से कहा है। उसके बाद मैंने उन शास्त्रों में कहे हुए समस्त विषयों को संक्षेप में कहा है। मैंने इस ग्रन्थ में बुद्धिरूप शृंग को निर्मल (तीक्ष्ण) बनाने के लिये ही सूक्ष्म विषयों का प्रतिपादन किया है, इसमें जो कुछ हमसे अयुक्त हुआ हो उसे सज्जन महानुभाव क्षमा करें॥ ७॥

अथ कालविशेषेण कुकृताल्पकृतयोश्च पुनः करणे सतां प्रार्थनाय वसन्ततिलकेनाऽऽह-

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण।
यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्यरागम् ॥ ८॥

ग्रन्थस्येति॥ अस्य ग्रन्थस्य यत्प्रचरतो विचरमाणस्य यद्विनाशमेति याति लेख्याल्लेखकदोषात् तत् बहुश्रुतमुखाधिगम क्रमेण बहुश्रुतानां पण्डितानां मुखादधिगम्य ज्ञात्वा क्रमेण परिपाट्या विदुषा पण्डितेन रागं मात्सर्यमपहृत्य विहाय कर्तव्यम्। ते च शास्त्रार्थपिक्षया संस्कारेण समर्थाः। यद्वा मया कुकृतं कुत्सितं कृतं तथाऽल्पमपरिपूर्णं तद्विचार्य विचारेण कर्तव्यमित्यर्थः॥ ८॥

भाषा- इस ग्रन्थ के प्रचार होने से लेखक आदि के दोषवश जो अक्षरादि नष्ट हो जायँ, अथवा मुझसे ही जो कुछ अयुक्त हुआ हो, अल्प किया गया हो या प्रमादवश छूट गया हो उसे-विवेकजन-बहुश्रुतजनों के मुख से या अपनी स्फीत बुद्धि से-मात्सर्य को छोड़कर शुद्ध कर लेवें॥ ८॥

तत्रादित्यदासाख्यस्य पितुर्नाम कापित्थाख्ये ग्रामे वरदनामादित्यदासाच्च विज्ञानागमं स्वनिवासमुज्जयिनीं च नाम होराशास्त्रनाम च वसन्ततिलकेनाऽऽह-

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्य-
ग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥ ९॥

आदित्यदा इति॥ आदित्यदासाख्यो ब्राह्मणः तस्य तनयः पुत्रःतस्मादेव पितुरादित्यदासादवाप्तः बोधः ज्ञानं येन। कापित्थाख्ये

ग्रामे योऽसौ भगवान् सविता सूर्यस्तस्माल्लब्धः प्राप्तो वरप्रसादो येन। आवन्तिकः आवन्तिके देशे उज्जयिन्यां वास्तव्यः। कोऽसौ वराहमिहिरः? अयं मुनिमतानि ऋषिप्रणीतानि शास्त्राण्यवलोक्य विचार्य सम्यग्यथावस्तु कृत्वा होरां जातकशास्त्रं रुचिरां शोभनां सुगमां चकार कृतवानिति।। ९।।

भाषा- उज्जयिनी नगर निवासी आदित्यदास विप्र के पुत्र, उन्हीं आदित्यदास (अपने पिता) से ज्ञान प्राप्त कर और कपित्थ ग्राम स्थित श्रीसूर्यनारायण की आराधना द्वारा उनसे वररूप प्रसाद को पानेवाला वराहमिहिर नामक आचार्य ने मुनियों के मत को देखकर मनोहर होरा (जातक) शास्त्र को बनाया।। ९।।

अथ सतां प्रणामपूर्वकाणि शास्त्राणि प्रणामान्तानि कृत्वा ततः शास्त्रावसाने पूर्वप्रणेतॄणां नमस्कारमार्ययाऽऽह-

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ।।१०।।

इति वराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके उपसंहाराध्यायोऽष्टाविंशः ।।२८।।

दिनकरेति।। दिनकरोऽर्कस्तदादिकाः सर्व एव ग्रहाः मुनयो वसिष्ठाद्याः गुरुरादित्यदासः तेषां चरणप्रणिपातेन पादनमस्कारकरणेन कृतो यः प्रसादोऽनुकम्पा तेनानुनयेन मतिर्बुद्धिर्यस्य तेन दिनकरमुनिगुरुचरण-प्रणिपातकृतप्रसादमतिना मयेदं शास्त्रमुपसंगृहीतं स्वीकृतमस्ति। तस्मात्पूर्वप्रणेतृभ्यः पूर्वशास्त्रकारेभ्योनमोऽस्तु नमस्करणेन यः कृतप्रसादः नम इति भद्रम्।। १०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ उपसंहाराध्यायोऽष्टाविंशः ।२८।

भाषा- श्रीसूर्य भगवान्, वसिष्ठादि मुनि और गुरु (पूज्य पिता आदित्यदास), इनके चरण-कमलों में प्रणाम करने से प्राप्त अनुकम्पा से मति (ज्ञान) पाकर मैं (वराहमिहिर) ने इस ग्रन्थ का संग्रह किया। इसलिये उन पूर्व-शास्त्र रचयिता मुनिजनों को मेरा नमस्कार होवे।। १०।।

वराहमिहिराचार्यकृते होरामहोदधौ।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रेऽर्थाप्तये विवृतिप्लवम्।।१।।
चिन्तामणिरिति ख्याता टीका शास्त्रज्ञवल्लभा।
सप्तसार्द्धसहस्राणि (७५००) मानमस्यामनुष्टुभाम्।।२।।
प्रीतिं दौष्ट्यं परित्यज्य टीकां सम्यग्विचार्य च।
उपयोग्यात्र शास्त्रे चेत्सङ्ग्राह्या नोपरोधतः।।३।।

व्याख्येयं यन्मया त्यक्तं यच्च युक्तिविवर्जितम्।
भ्रान्त्या विलिखितं यच्च तत्सर्वं स्फुटतां नयेत्॥४॥
चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे।
वस्वष्टाष्टमिते (१) शाके (८८७) कृतेयं विवृतिर्मया॥५॥
विधाय टीकां शास्त्रेऽस्मिन्यत्किञ्चित्पुण्यमर्जितम्।
तेन निर्मत्सरो भूयात्सौजन्यालंकृतो जनः॥६॥
दीर्घस्वरोष्ठ्यादिविधेयतां साहाष्टदशे द्वयजनसप्तकेन।
स्वार्थं च वेद्यां समवस्थितेन भाष्योत्पले चैव लिखापितस्तु॥७॥

इति भट्टोत्पलकृता बृहज्जातकविवृत्तिः समाप्ता।

पूर्ण - राम - नभोनेत्रमिते विक्रमवत्सरे।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां तिथौ भास्करवासरे॥
बृहज्जातकसंज्ञेऽस्मिन् वराहमिहिरोदिते।
सारार्थदीपिकाख्येयं व्याख्या सम्पूर्णतां गता॥
मिथिलादेशमध्यस्थ - चौगमाग्रामवासिना।
काश्यां पाठयता छात्रान् श्रीसीतारामशर्मणा॥
कृता पाठकवर्गाणां सज्जनानां हृदि स्थिता।
अज्ञानतिमिरं भित्त्वा भूयादर्थसंज्ञिका॥

इति वराहमिहिरकृत-बृहज्जातके-भाषाभाष्ये
सारार्थदीपिकाख्या व्याख्या सम्पन्ना॥

---

(१) अत्र 'वस्वष्टाष्टिमिते शाके, पाठोऽयं समुचितः। यतो भास्कराचार्योत्पत्त्यनन्तरं भट्टोत्पलस्योत्पत्तिरिति स्वयमेवास्यैव ग्रन्थस्य मङ्गलश्लोकविवृत्तौ-

'तरणिकिरणसङ्गादेश पीयूषपिण्डो
दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति॥'

इति प्रमाणरूपेण समाश्रयति भट्टोत्पलः। भास्कराचार्यस्य च जन्मसमयः सिद्धान्तशिरोमण्यन्ते-

'रसगुणपूर्णमही (१०३६) समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुण (३४) वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः॥'

अनेन षट्त्रिशंदधिकसहस्रमितशके निश्चीयतेऽतः षट्त्रिंशदधिकसहस्रमितशकाद्व्यतीतेषु कियन्मितेषु दिनेषु भट्टोत्पलटीकाङ्कर्तुमुद्युक्तस्तेन 'वस्वष्टाष्टिमिते १६८८ शाके कल्पयितुं शक्यते, बहुधा लेखकाध्यापकाध्येतृदोषैरिकारो भ्रष्टो जात इति विबुधैर्भृशं विभाव्यम्।

-- इति --

परिशिष्ट संस्करण

मुहूर्त-प्रकरणम्

तिथिराश्यंशनक्षत्रं विद्धं क्रूरग्रहेण यत्।
सर्वेषु शुभकार्येषु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः ।। १ ।।

तिथि, राशि, अंश (नवांश) और नक्षत्र में से जो क्रूर ग्रह से विधा हो उसको समस्त शुभ कार्यों में यत्न से त्याग देना चाहिये।।१।।

न नन्दति विवाहे च यात्रायां न निवर्तते।
न रोगान्मुच्यते रोगी वेधवेलाकृतोद्यमः ।।२।।

विधे हुए तिथ्यादिकों में विवाह करे तो आनन्द नहीं पाता; यात्रा करे तो वापस नहीं आता; और रोग का प्रारंभ हो तो रोगी रोग से नहीं छूटता है।।२।।

स्थाननाशं राशिवेधे हानिर्नक्षत्रवेधतः।
अंशवेधे भवेन्मृत्युः क्रूरग्रहफलं त्विदम् ।।३।।

क्रूह ग्रह राशि को वेधे तो स्थान का नाश, नक्षत्र को वेधे तो हानि, अंश को वेधे तो मृत्यु और इन तीनों को ही वेधे तो निश्चय ही मरण हो जाता है; इसमें संशय नहीं।।३।।

राशिनक्षत्रांशवेधे मृत्युर्भवति नान्यथा।
क्रूरदृष्टिर्गता यत्र शुभं तत्र विवर्जयेत् ।।४।।
रविदृष्टिर्गता यत्र मनसः खेदमाप्नुयात्।
भौमदृष्टौ वधं युद्धं मृत्युर्भवति निश्चितम् ।।५।।

राशि, नक्षत्र और अंश इनमें से जिस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो उसको भी शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिये।।४।। सूर्य की दृष्टि से मन को खेद; मंगल की दृष्टि से वध, युद्ध तथा मृत्यु निश्चित होती है।।५।।

सौरिदृष्टौ भवेद्धानिर्देहपीडा तथा भवेत्।
राहुणा घातपातं च केतुर्विषप्रदो भवेत् ।।६।।
शुभग्रहाणां दृष्टिश्चेत्सर्वसिद्धिः प्रजायते।
बुधदृष्टौ भवेत्प्रज्ञा गुरुदृष्टिर्यदा भवेत् ।।७।।

शनि की दृष्टि से हानि तथा देह में पीड़ा, राहु की दृष्टि से चोट का लगना और केतु की दृष्टि से विध (जहर) होता है।।६।। जिस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो, उस राश्यादि में कार्य करने से सर्व प्रकार के कामों की सिद्धि

होती है। जैसे बुध की दृष्टि से उत्तम बुद्धि; गुरु की दृष्टि से क्षेम, लाभ, जय तथा सुख और शुक्र की दृष्टि से सर्व प्रकार का शुभ फल होता है॥७॥

क्षेमं लाभं जयं सौख्यं शुक्रः शुभफलप्रदः।
शुक्ले शुभकरश्चन्द्रः कृष्णेऽप्यशुभदायकः ॥८॥

चन्द्र की दृष्टि से शुक्लपक्ष में शुभ और कृष्णपक्ष में अशुभ फल अर्थात् पूर्ण चन्द्र का शुभ तथा क्षीण चंद्र का अशुभ फल जानना चाहिये। नक्षत्र पर ग्रहों की दृष्टि का विधान आगे कहेंगे॥८॥

रोगप्रकरणम्

रोगकाले भवेद्वेधः क्रूरखेचरसंभवः।
वक्रगत्या भवेन्मृत्युः शीघ्रगत्या रुजान्वितः॥१॥

रोग के समय क्रूर ग्रह का वेध वक्रगति से हो तो रोगी की मृत्यु होती है और शीघ्रगति से हो तो रोग बना रहता है॥१॥

आदित्ये ज्वरपीडा स्याद्भौमश्च प्राणरोगदः।
अपस्मारभयं राहौ मन्दे शूलं विनिर्दिशेत् ॥२॥
नक्षत्रवेधसंयुक्ते चक्षुःपीडा प्रजायते।
मनस्तापं तथोद्वेगं मतिभ्रमोऽथ जायते ॥३॥

रोगकाल में वेधकर्ता सूर्य हो तो ज्वर से पीड़ा, मंगल हो तो प्राणरोग (श्वासकासादि), राहु वा केतु हो तो अपस्मार (मृगी) रोग का भय और शनि हो तो शूलरोग कहना चाहिये॥२॥ क्रूह ग्रह का वेध नाम के नक्षत्र को हो तो नेत्रपीड़ा, मन को क्लेश तथा उद्वेग और मति भ्रष्ट हो जावे॥३॥

क्रूरैर्नामाक्षरैर्विद्धे दाहः शोषो ज्वरो भवेत्।
पित्तोद्रेकस्तथा छर्दिरिति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥४॥

क्रूर ग्रह के वेध नाम के अक्षर का हो तो शरीर में दाह, शोष वा क्षयरोग, ज्वरपीड़ा, पित्तप्रकोप से उलटी आदि की पीड़ा होती है॥४॥

स्वरे वेधे मुखे पीड़ा कर्णव्याधिस्तथैव च।
दन्तानां पीडनं तत्र क्रूरवेधे न संशयः ॥५॥

क्रूर ग्रह का वेध नाम के स्वर को हो तो मुख में रोग, दन्तपीड़ा और कान में पीड़ा होवे। इसमें किसी तरह के संशय नहीं है॥५॥

तिथिवेधे त्वचां पीडा गडगुल्मादिका तथा।
शिरोर्तिपादशोथश्च सर्वसन्धिषु पीडनम् ॥६॥

राशिवेधे भवेद्रोगो मन्दाग्निघातकोपनम् ।
श्लेष्मा च जायते तत्र अन्तर्नाडीव्यथा भवेत् ।।७।।

क्रूर ग्रह का वेध नाम की तिथि को हो तो शरीर त्वचा में खुजली आदि का कष्ट, उदर में गडगुल्म आदि रोग, शिर में पीड़ा, पैरों में सूजन और सर्व सन्धि में अत्यन्त पीड़ा होवे।।६।। क्रूर ग्रह का वेध नाम की राशि को हो तो अग्निमन्द का रोग, जल आदि की घात, क्रोध का प्रकोप, कफ का विकार और अन्तर्नाड़ी की व्यथा अर्थात् कोशे की बीमारी होवे।।७।।

वेधस्थाने रणे भङ्गो दुर्गे खण्डिः प्रजायते ।
कविप्रवेशनं तत्र युधघातश्च तत्र वै ।।८।।

विधे हुए स्थान में संग्राम करे तो भंग हो (अर्थात् पूर्वादि काम से सर्वतोभद्रचक्र में जिस दिशा के नक्षत्रादि विधे उस दिशा से भंग होता है), ऐसे ही कला विधे तो खंडित हो, और विधे हुए स्थान में कवि प्रवेश करे (अर्थात् बलवान् शत्रु पर मौका पाके अचानक धावा करे) तो युद्ध से घाव पाये।।८।।

अस्तदिशाप्रकरणम्

यत्र पूर्वादिकाष्ठाया वृषराश्यादिगो रविः ।
सा दिशाऽस्तमिता ज्ञेया तिस्रः शेषाः सदोदिताः ।।१।।

इस सर्वतोभद्रचक्र में वृष आदि तीन तीन राशि पूर्वादि दिशाओं में लिखी हैं अर्थात् वृष, मिथुन, कर्क पूर्व में; सिंह, कन्या, तुला दक्षिण में; वृश्चिक, धनु, मकर पश्चिन में और कुंभ, मीन, मेष उत्तर में लिखी हैं। उनमें से जिस दिशा की राशियों में सूर्य हो वह एक दिशा तीन महीनों तक अस्त हो जाती है और शेष नव राशियों की तीन दिशाएँ ६ महीनों तक सदा उदय रहती हैं।।१।।

ईशानस्थाः स्वराः प्राच्यां ज्ञेया आग्नेयगा यमे ।
नैर्ऋत्यस्थास्तु वारुण्यां सौम्यायां वायुगा मताः ।।२।।
नक्षत्राणि स्वरा वर्णा राशयस्तिथयो दिशः ।
ते सर्वेऽस्तंगता ज्ञेया यत्र भानुस्त्रिमासिकः ।।३।।

ईशानकोण में के स्वर पूर्व में, अग्निकोण में के स्वर दक्षिण में, नैर्ऋत्यकोण में के स्वर पश्चिम में और वायव्यकोण में के स्वर उत्तर में अर्थात् ये स्वर इन दिशाओं के साथ अस्त होते हैं।।२।। जिस दिशा की राशियों में सूर्य हो उस दिशा के नक्षत्र, स्वर, वर्ण, राशि, तिथि और दिशा ये सर्व तीन महीने तक अस्त हुए जानने चाहिये। और शेष तीन दिशाओं के नक्षत्रादि ६ महीने तक उदय जानने चाहिये।।३।।

नक्षत्रेऽस्ते रुजो वर्णे हानिः शोकः स्वरेऽस्तगे।
राशौ विघ्नं तिथौ भीतिः पञ्चास्ते मरणं ध्रुवम् ॥४॥

जिसका नक्षत्र अस्त हो तो रोग, वर्ण अस्त हो तो हानि, स्वर अस्त हो तो शोक, राशि अस्त हो तो विघ्न, तिथि अस्त हो तो भय और पाँचों ही अस्त हों तो निश्चय उसका मरण होता है॥४॥

यात्रा युद्धं विवादं च द्वारं प्रासादहर्म्ययोः।
न कर्तव्यं शुभं चान्यदस्तवर्णादिके नरैः ॥५॥
अस्ताशायां स्थितं यस्य यदा नामाद्यमक्षरम्।
तदा तु सर्वकार्येषु ज्ञेयो दैवहतो नरः ॥६॥

जिनके नामादि अस्त हों उन मनुष्यों को अस्तदिशाभिमुख यात्रा, युद्ध, विवाद, महल वा घर का दरवाजा तथा और भी शुभ कर्म ऐसे अन्य (अशुभ कर्म भी) न करने चाहिये। क्योंकि जिस मनुष्य के नाम का आदि अक्षर जिस समय अस्तदिशा में स्थित हो, वह मनुष्य उस समय सर्व कामों में दैवहत (भाग्यहीन) हो जाता है॥५-६॥

सग्रहेऽस्तमिते विद्धे पापै चैव यदाक्षरे।
सर्वेषां प्राणसन्देहः प्राणिनां जायते ध्रुवम् ॥७॥
कवौ कोटे तथा द्वंद्वे चतुरंगे महाहवे।
उद्यमोऽस्तगतैर्योधैर्वर्जनीयो जयार्थिभिः ॥८॥

यदि अस्तगत अक्षर पापग्रह से युक्त हो (अर्थात् वह अक्षर नक्षत्र के जिस पाद का हो उसी पाद पर पापग्रह भी स्थित हो) और उस अक्षर को किसी दूसरे पापी ग्रह का वेध हो तो उन सर्व प्राणियों को निश्चय प्राण रहने में सन्देह होता है॥७॥ कवियुद्ध (अचानक धावा करना), कोटयुद्ध (किले में लड़ना) द्वन्द्वयुद्ध (कुश्ती आदि), चतुरंगसेना (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) के युद्ध और महान संग्राम में विजय की इच्छा करनेवाले अस्तगत योद्धाओं को उद्यम न करना चाहिये॥८॥

उदयास्तमनं तस्माच्चिन्तयेद्दैवविन्नरः।
येन राजा स्वकीयैस्तु शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥९॥
स्वराष्ट्राभ्युदयं ज्ञात्वा शत्रुराष्ट्रस्य संक्षयम्।
ज्ञात्वा स्वलाभमत्यन्तं विदित्वा चोन्नतिं नृपः ॥१०॥

इस वास्ते राजा के ज्योतिर्विद् को चाहिये कि स्वराजा के अक्षरादि वर्ग का उदय और अस्त को यत्न से चिन्तवन करे, जिससे राजा अपने

शत्रुओं से पराजय को प्राप्त न हो॥९॥ अपने राज्य का वर्ग उदय तथा शत्रु के राज्य का वर्ग क्षय (अस्त) और अपने को अत्यन्त लाभ जान के युद्ध करनेवाला राजा ही वृद्धि को प्राप्त होता है॥१०॥

दृष्ट्वा नामोदयं चक्रे जन्मराश्युदयं तथा।
ग्रहानुकूलतां स्वस्य ज्ञात्वा दिग्विजयी भवेत्॥११॥

सर्वतोभद्रचक्र में अपने नाम के अक्षर का उदय तथा जन्म राशि का उदय और दूसरे ग्रहों की अनुकूलता को जाननेवाला (अर्थात् दैवज्ञ की आज्ञानुसार काम करने वाला) राजा ही दिग्विजयी (अर्थात् सब दिशाओं के शत्रुओं को जीतनेवाला) होता है॥११॥

यद्दिशोऽस्तमितो वर्गस्तस्यां यात्रांनियोजयेत्।
तत्र शत्रुबलं जित्वा क्षिप्रं राजा प्रवर्तते॥१२॥

जिस दिशा का वर्ग (नक्षत्रादि) अस्त हो गया हो उस दिशा पर राजा युद्ध के वास्ते यात्रा करे तो वहाँ शत्रु के बल को जीत के शीघ्र ही उस राज्य को अपने आधीन कर लेता है॥१२॥

नृपवर्गेषु ये वर्णाः समानास्तमनोदयाः।
मध्ये चान्ते भवेद्वेधो घातश्चापि भवेद्ध्रुवम्॥१३॥

यदि युद्ध करनेवाले दोनों राजाओं के वर्णादि वर्ग एक ही समय अस्त वा उदय हों तो अस्त समय को मध्य में वा अन्त में जिसके वर्णादि को क्रूर ग्रह का वेध होगा उसका निश्चय घात होता है॥१३॥

येषां वर्गाऽस्तमायाति तस्य यात्रा मता दिशि।
शुभाशुभसमत्वे तु पूर्वयायी जयी भवेत्॥१४॥
नक्षत्रेऽभ्युदिते पुष्टिर्वर्णे लाभः स्वरे सुखम्।
राशौ ज़यस्तिथौ तेजः पदाप्तिः पंचकोदये॥१५॥

यदि दोनों राजाओं का नक्षत्रादि वर्ग एकही समय अस्त हो तथा वेध भी शुभाशुभ ग्रहों का समान ही हो तो फिर जो राजा प्रथम चढ़कर जावेगा उसकी जय होगी॥१४॥ नक्षत्र के उदय से पुष्टि, वर्ण से लाभ, स्वर से सुख, रात्रि से जय, तिथि से तेज और पाँचों ही के उदय से अपूर्व पद की प्राप्ति होती है॥१५॥

उदिते मित्रलाभः स्याद्गृहवृद्ध्यर्थसंपदः।
योधमुख्या प्रवर्तन्ते यान्ति नाशं तदारयः॥१६॥

वर्णादि के उदय से मित्र का लाभ, घर की वृद्धि तथा अर्थसंपत्ति होती है और मुख्य शूरवीर योद्धा युद्ध में जाके शत्रुओं का नाश करते हैं॥१६॥

प्रश्नलग्नप्रकरणम्

प्रश्नाक्षराद्ययद्वर्णं तद्वेधं प्राग्विचारयेत् ।
पापे स्यात्पापमुद्दिष्टं मुख्यबाध्यं तथा वदेत् ।।१।।

प्रश्नकर्ता के मुख से जो शब्द उच्चारण हों उनमें जो अक्षर प्रथम हो उसको किसी ग्रह का वेध है या नहीं इसका पहले विचार करे; क्योंकि वेध होने से उस प्रश्न का शुभाशुभ फल वेधकर्ता ग्रह के अनुसार होता है और जो वेध किसी का भी नहीं हो तो फिर उसका फल केरल के मतानुसार वा प्रश्नलग्नानुसार होता है ।।१।।

प्रश्नकाले भवेद्विद्धं यल्लग्नं क्रूरखेचरैः ।
तद्दुष्टं शोभनं ज्ञेयं सौम्यैर्मिश्रफलं मतम् ।।२।।

प्रश्नकाल में जो लग्न क्रूर ग्रहों से विधा हो उसका फल दुष्ट, सौम्य ग्रहों शुभ और क्रूर तथा सौम्य दोनों प्रकार के ग्रहों से मिश्र फल होता है ।।२।।

ग्रहभिन्नं तु यल्लग्नं फलं लग्नस्वभावतः ।
ज्ञातव्यं देशिकेन्द्रेण भाषितं यच्चरादिकम् ।।३।।

प्रश्नकाल में जो लग्न ग्रहों से विधा न हो उस लग्न का फल चरादि स्वभाव के अनुकूल जैसा ज्योतिर्विदों ने कहा है वैसा जानना चाहिये ।।३।।

चरलग्नोदये नष्टं दुर्लभं रोगिणो मृतिः ।
जातस्यापि च तत्रैव स्वल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ।।४।।
स्थिरलग्नोदये नष्टं स्वल्पकालेन लभ्यते ।
तत्र रोगी चिराल्लब्ध्वो दीर्घायुर्लब्धजन्मवान् ।।५।।

चर लग्न के समय में गई वस्तु मिलनी दुर्लभ, रोगी की मृत्यु और जन्मनेवाले की आयु थोड़े होवे ।।४।। स्थिर लग्न के समय में गई वस्तु थोड़े काल से मिले, रोगी बहुत मुद्दत से सुखी होवे और जन्मनेवाले की आयु बहुत होवे ।।५।।

नष्टस्य शीघ्रं लाभः स्याद्रोगी शीघ्रेण शोभनः ।
मध्यायुर्लब्धजन्मात्र द्विस्वभावोदयो ध्रुवम् ।।६।।
एवं सर्वेषु कार्येषु प्रश्नकाले चरादिकम् ।
लग्नं विज्ञाय धीमद्भिर्निर्दिष्टव्यं शुभाशुभम् ।।७।।

द्विस्वभाव लग्न के समय में गई वस्तु जल्दी से मिले, रोगी जल्दी अच्छा होवे, और जन्मनेवाले की निश्चय मध्य आयु होवे ।६। बुद्धिमान् लोग सर्व कामों में इस प्रकार प्रश्नकाल में लग्न के चरादि स्वभाव को जान के शुभाशुभ फल कहे ।।७।।

चरलग्नाश्च चत्वारो मेषकर्क्तुलामृगाः ।
वृषसिंहाऽलिकलशाः स्थिराःशेषा द्विसंज्ञकाः ।।८।।

मेष, कर्क, तुला तथा मकर ये ४ लग्न चर; वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ ये ४ लग्न स्थिर और मिथुन, कन्या, धनु, मीन ये ४ लग्न द्विस्वभाव हैं ।।८।।

कूर्मचक्रोत्कदेशवेधप्रकरणम्

कृत्तिकादित्रिकाद्ये भे क्रूरविद्धे च कूर्मतः ।
देशा नाभिस्थदेशाद्या विनश्यन्ति यथाक्रमम् ।।१।।

कूर्मचक्र में कृत्तिकादि तीन-तीन नक्षत्रों को क्रम से नाभि आदि नव अंगों में विभाग किया गया है। उनमें से जिस अंग के नक्षत्र क्रूर ग्रह से विधें उस अंग के देश विनाश को प्राप्त होते है॥१॥

नक्षत्रवशाद्देशज्ञानम्

कृत्तिका रोहिणी सौम्यं कूर्मनाभिगतं त्रयम् ।
साकेतं मिथिला चंपा कौशांबिः कौशिकी तथा ।।२।।
अहिच्छत्रं गया विंध्यमन्तर्वेदिश्च मेखला ।
कान्यकुब्जं प्रयागं च मध्यदेशो विनश्यति ।।३।।

कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के मध्य में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो साकेत देश, मिथिली, चंपा, कौशांबी, कौशिकी, अहिच्छत्र, गया, विंध्य, अन्तर्वेदि, मेखला, कान्यकुब्ज और प्रयाग इत्यादि मध्यदेशों का नाश होता है॥२-३॥

रौद्रं पुर्नवसुः पुष्यं कूर्मस्य शिरसि स्थितम् ।
सगौडो हस्तिबन्धश्च पञ्चराष्ट्रं च कामरुः ।।४।।
ऐन्द्रं चैव तथा ज्ञेयं मगधश्च तथैव च ।
रेवातटं च मेवासा पूर्वदिशो विनश्यति ।।५।।

आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य ये तीन नक्षत्र कूर्म चक्र के शिर (पूर्व) में हैं। इनको क्रूरग्रह का वेध हो तो गौड़देश, हस्तिबन्ध, पंचराष्ट्र, कामरु, ऐन्द्र, मगध, रेवातट (नर्मदा का किनारा) और मेवास इत्यादि पूर्व के देशों का नाश होता है॥४-५॥

आश्लेषा च मघा पूर्वा पादे वाग्नेयगोचरे ।
अंगो वंगः कलिंगश्च कुर्वजाश्चैव कोशलः ।।६।।
डहलाश्च जयन्द्राश्च तथा चैव स्तुलंजिका ।
उड्डियाणां वराटं च अग्निदेशो विनंश्यति ।।७।।

आश्लेषा, मघा व पूर्वाफाल्गुनी ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के अग्निकोण के पाद में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो अंगदेश,वंग,कलिंग,कुर्वज,कोशल, डहल, जयन्द्र, तुलंजिक,उड़ीसा व वराट इत्यादि अग्निकोण के देशों का नाश होता है।६-७।

उत्तरा हस्तचित्रा च दक्षिणां कुक्षिमाश्रिताः ।
दर्दुरं च महेन्द्रं च वनवासं च सिंहलम् ।।८।।
तापी भीमरथा लंका त्रिकुटं मलयस्तथा ।
श्रीपर्वतश्च किष्किंधा इति नश्यन्ति दक्षिणे ।।९।।

उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के दक्षिण की कुक्षि में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो दर्दुरदेश, महेन्द्र, वनवास, सिंहल, तापीनदी, भीमरथानदी, लंका, त्रिकूटपर्वत, मलयपर्वत, श्रीपर्वत और किष्किंधापर्वत इत्यादि दक्षिण के देशों का नाश होता है॥८-९॥

स्वाती विशाखा मैत्रं च कूर्मे नैर्ऋतिगोचरे।
नासिकं च सुराराष्ट्रां च धृतं मालवकं तथा ॥१०॥
वल्लिं तथा प्रकाशं च भृगुं कच्छं च कोकणम्।
खेडापुरं च मोढेरं देशा नश्यन्ति तादृशाः ॥११॥

स्वाती, विशाखा और अनुराधा ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के नैर्ऋत्यकोण के पाद में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो नासिकदेश, सोरठ, धृत, मालव, वल्लि (बसही), प्रकाश, भृगु, कच्छ, कोंकण (मुंबई), खेड़ापुर और मोढेर (मरहटादेश), इत्यादि नैर्ऋत्यकोण के देशों का नाश होता है॥१०-११॥

ज्येष्ठा मूलं तथाषाढा पुच्छे कूर्मस्य संस्थिताः।
पारेतमर्बुदं कच्छमवन्तिं पूर्वमालवम् ॥१२॥
पारावतं बर्बरं च द्वीपं सौराष्ट्रसैन्धवम्।
जलस्थाश्च विनश्यन्ति स्त्रीराज्यं पुच्छपीडने ॥१३॥

ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ा ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के पुच्छ (पश्चिम) में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो पारेतदेश, अर्बुद (आबू), कच्छ, उज्ञयिनी, पूर्वमालव, पारावत, बर्बर, सौराष्ट्रद्वीप, सिन्धुद्वीप, जलस्थदेश (टापू) और स्त्रीराज्य इत्यादि पश्चिम के देशों का नाश होता है॥१२-१३॥

उत्तराषाढभात्त्रीणि पादे वायव्यगोचरे।
गुर्जराह्वं यामुनं च मरुदेशं सरस्वतीम् ॥१४॥
जालंधरं वराटं च वालुकोदधिसंयुतम्।
मेरुशृंगं विनश्यन्ति ये चान्ये कोणसंस्थिताः ॥१५॥

उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के वायव्यकोण के पाद में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो गुर्जरदेश, यामुन, मरुदेश (मारवाड़), सरस्वती, जालंधर, वराट, वालुका समुद्र और मेरुशृंग इत्यादि वायव्यकोण के देशों का नाश होता है॥१४-१५॥

शतभादित्रयं चैव उत्तरां कुक्षिमाश्रितम्।
नेपालं कीरकाश्मीरं गज्जनं सुरसानकम् ॥१६॥
माथुरं म्लेच्छदेशश्च खशं केदारमण्डले।
हिमाश्रयाश्च नश्यन्ति देशा ये चोत्तराश्रिताः ॥१७॥

शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा ये तीन नक्षत्र कूर्मचक्र के उत्तर के कुक्षि में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो नेपालदेश, कीर,

काश्मीर, गजनी, खुरासान, माथुर, म्लेच्छदेश, खश, केदारमंडल और हिमालय के आश्रित इत्यादि उत्तर के देशों का नाश होता है॥१६-१७॥

रेवती अश्विनी याम्यं पादे ईशानगोचरे।
गंगाद्वारं कुरुक्षेत्रं श्रीकंठं हस्तिनापुरम् ॥१८॥
अश्वचक्रैकपादाश्च गजकर्णास्तथैव च।
विनश्यन्ति च ते सर्वे देशास्त्वीशानगोचरे ॥१९॥

रेवती, अश्विनी और भरणी ये तीन नक्षत्रकूर्मचक्र के ईशान के पाद में हैं। इनको क्रूर ग्रह का वेध हो तो गंगाद्वार देश, कुरुक्षेत्र, श्रीकंठ, हस्तिनापुर, अश्व-चक्र, एकपाद और गजकर्ण इत्यादि ईशान के देशों का नाश होता है॥१८-१९॥

यस्मिन् भागे संस्थिताः पापखेटास्तद्भागस्था नाशमायान्ति देशाः।
वेधस्थानं पीडयन्तीह नूनं तत्रस्था वै सत्फलं दद्युरिष्टाः।२०।

जिस अंग के नक्षत्रों पर क्रूर ग्रह स्थित हो उस अंग के देशों का अनेक प्रकार से नाश होता है। तथा जिस अंग के नक्षत्रों को क्रूर ग्रहों का वेध हो उस अंग के देशों में निश्चय किसी प्रकार से पीड़ा होती है। और जिस अंग के नक्षत्रों पर शुभ ग्रह स्थित हों वा शुभ ग्रहों का वेध हो उस अंग के देशों में सर्व प्रकार से शुभ फल होता है। यदि मिश्रयोग हो तो मिश्रफल जानना॥१९-२०॥

पृथ्वीकूर्मः समाख्याता कृत्तिकादियमान्तकाः।
देशादिः स्वस्वऋक्षादिरेष एव क्रमः स्मृतः ॥२१॥

पूर्वोक्त पृथ्वीकूर्म में कृत्तिका को आदि लेकर ३। ३ नक्षत्रों से भरणी तक ९ विभाग किये। ऐसे ही देश, नगर, ग्राम और क्षेत्रादि के कूर्म में भी उस उसके नाम के नक्षत्र को आदि लेके ३। ३ नक्षत्रों से पूर्वोक्त क्रम से ९ विभाग करे। फिर इनका वेधफल भी पूर्वोक्त विधि से जाने॥२१॥

तौल्यं भाण्डं रसो धान्यं गजाऽश्वादिचतुष्पदम्।
सर्वं महर्घतां याति यत्र क्रूरो व्यवस्थितः ॥२२॥

जहाँ क्रूरग्रह की वेधव्यवस्था हो वहाँ तौल्य (तौल से बिकने के पदार्थ), भांड (रत्न), रस (मधुरादि), धान्य (गोधूमादि) और हाथी घोड़े आदि चौपाये, ये सर्व महर्घता को प्राप्त होते हैं, अर्थात् बहुत धन से भी दुर्लभ हो जाते हैं॥२२॥

देशद्रव्याक्षरा ये च विद्धाः खेटैः शुभाशुभैः।
सर्वतोभद्रचक्रे च विशेषात्तच्छुभाशुभम् ॥२३॥

देश और वस्तु इन दोनों के नाम के अक्षर को एक ही समय शुभ ग्रह का वेध हो तो उस देश में वह वस्तु अधिक सस्ती और अशुभ ग्रह का वेध हो तो अधिक महँगी हो जाती है। यदि दोनों प्रकार के ग्रहों का वेध हो तो बलाधिक ग्रह का फल होता है। इसका विस्तार से निर्णय आगे अर्घप्रकरण में लिखेंगे॥२३॥

--इति--

अथ विंशोत्तरीमहादशायामन्तर्दशादिचक्रम्

सूर्यान्तर्दशाचक्रम् ६ वर्ष				चन्द्रान्तर्दशाचक्रम् १० वर्ष				भौमान्तर्दशाचक्रम् ७ वर्ष			
ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन
सूर्य	०	३	१८	चंद्र	०	१०	०	मंगल	०	४	२७
चंद्र	०	६	०	मंगल	०	७	०	राहु	१	०	१८
मंगल	०	४	६	राहु	१	६	०	गुरु	०	११	६
राहु	०	१०	२४	गुरु	१	४	०	शनि	१	१	९
गुरु	०	९	१८	शनि	१	७	०	बुध	०	११	२७
शनि	०	११	१२	बुध	१	५	०	केतु	०	४	२७
बुध	०	१०	६	केतु	०	७	०	शुक्र	१	२	०
केतु	०	४	६	शुक्र	१	८	०	सूर्य	०	४	६
शुक्र	१	०	०	सूर्य	०	६	०	चंद्र	०	७	०

राहोरन्तर्दशाचक्रम् १८ वर्ष				गुरोरन्तर्दशाचक्रम् १६ वर्ष				शनेरन्तर्दशाचक्रम् १९ वर्ष			
ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन
राहु	२	८	१२	गुरु	२	१	१८	शनि	३	०	३
गुरु	२	४	२४	शनि	२	६	१२	बुध	२	८	९
शनि	२	१०	६	बुध	२	३	६	केतु	१	१	९
बुध	२	६	१८	केतु	०	११	६	शुक्र	३	२	०
केतु	१	०	१८	शुक्र	२	८	०	सूर्य	०	११	१२
शुक्र	३	०	०	सूर्य	०	९	१८	चंद्र	१	७	०
सूर्य	०	१०	२४	चंद्र	१	४	०	मंगल	१	१	९
चंद्र	१	६	०	मंगल	०	११	६	राहु	२	१०	६
मंगल	१	०	१८	राहु	२	४	२४	गुरु	२	६	१२

बुधान्तर्दशाचक्रम् १७ वर्ष				केत्वन्तर्दशाचक्रम् ७ वर्ष				शुक्रान्तर्दशाचक्रम् २० वर्ष			
ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन	ग्रह	वर्ष	मास	दिन
बुध	२	४	२७	केतु	०	४	२७	शुक्र	३	४	०
केतु	०	११	२७	शुक्र	१	२	०	सूर्य	१	०	०
शुक्र	२	१०	०	सूर्य	०	४	६	चंद्र	१	८	०
सूर्य	०	१०	६	चंद्र	०	७	०	मंगल	१	२	०
चंद्र	१	५	०	मंगल	०	४	२७	राहु	३	०	०
मंगल	०	११	२७	राहु	१	०	१८	गुरु	२	८	०
राहु	२	६	१८	गुरु	०	११	६	शनि	३	२	०
गुरु	२	३	६	शनि	१	१	९	बुध	२	१०	०
शनि	२	८	९	बुध	०	११	२७	केतु	१	२	०

सूर्यमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तरम् ३ मास १८ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	५	२४
चंद्र	०	९	०
मंगल	०	६	१८
राहु	०	१६	१२
गुरु	०	१४	२४
शनि	०	१७	६
बुध	०	१५	१८
केतु	०	६	१८
शुक्र	०	१८	०

सूर्यमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तरम् ६ मास ० दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	०	१५	०
मंगल	०	१०	३०
राहु	०	२७	०
गुरु	०	२४	०
शनि	०	२८	३०
बुध	०	२५	३०
केतु	०	१०	३०
शुक्र	१	०	०
सूर्य	०	९	०

सूर्यमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तरम् ४ मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
मंगल	०	७	२१
राहु	०	१८	५४
गुरु	०	१६	४८
शनि	०	१९	५७
बुध	०	१७	५१
केतु	०	७	२१
शुक्र	०	२१	०
सूर्य	०	६	१८
चंद्र	०	१०	३०

सूर्यमहादशायमां राह्वन्तरे प्रत्यन्तरम् १० मास २४ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	१	१८	३६
गुरु	१	१३	१२
शनि	१	२१	१८
बुध	१	१५	५४
केतु	०	१८	५४
शुक्र	१	२४	०
सूर्य	०	१६	१२
चंद्र	०	२७	०
मंगल	०	१८	५४

सूर्यमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तरम् ९ मास १८ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	१	८	२४
शनि	१	१५	३६
बुध	१	१०	४८
केतु	०	१६	४८
शुक्र	१	१८	०
सूर्य	०	१४	२४
चंद्र	०	२४	०
मंगल	०	१६	४८
राहु	१	१३	१२

सूर्यमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तरम् ११ मास १२ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
शनि	१	२४	९
बुध	१	१८	२७
केतु	०	१९	५७
शुक्र	१	२७	०
सूर्य	०	१७	६
चंद्र	०	२८	३०
मंगल	०	१९	५७
राहु	१	२१	१८
गुरु	१	१५	३६

सूर्यमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तरम् १० मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
बुध	१	१३	२१
केतु	०	१७	५१
शुक्र	१	२१	०
सूर्य	०	१५	१८
चंद्र	०	२५	३०
मंगल	०	१७	५१
राहु	१	१५	५४
गुरु	१	१०	४८
शनि	१	१८	२७

सूर्यमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तरम् ४ मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
केतु	०	७	२१
शुक्र	०	२१	०
सूर्य	०	६	१८
चंद्र	०	१०	३०
मंगल	०	७	२१
राहु	०	१८	५४
गुरु	०	१६	४८
शनि	०	१९	५७
बुध	०	१७	५१

सूर्यमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ० मास			
ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	२	०	०
सूर्य	०	१८	०
चंद्र	१	०	०
मंगल	०	२१	०
राहु	१	२४	०
गुरु	१	१८	०
शनि	१	२७	०
बुध	१	२१	०
केतु	०	२१	०

चन्द्रमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यनतरम् १०मास०दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	०	२५	०
मंगल	०	१७	३०
राहु	१	१५	०
गुरु	१	१०	०
शनि	१	१७	३०
बुध	१	१२	३०
केतु	०	१७	३०
शुक्र	१	२०	०
सूर्य	०	१५	०

चन्द्रमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तरम् ७मास०दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
मंगल	०	१२	१५
राहु	१	१	३०
गुरु	०	२८	०
शनि	१	३	१५
बुध	०	२६	४५
केतु	०	१२	१५
शुक्र	१	५	०
सूर्य	०	१०	३०
चंद्र	०	१७	३०

चन्द्रमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ६मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	२	२१	०
गुरु	२	१२	०
शनि	२	२५	३०
बुध	२	१६	३०
केतु	१	१	३०
शुक्र	३	०	०
सूर्य	०	२७	०
चंद्र	१	१५	०
मंगल	१	१	३०

चन्द्रमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ४ मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	२	४	०
शनि	२	१६	०
बुध	२	८	०
केतु	०	२८	०
शुक्र	२	२०	०
सूर्य	०	२४	०
चंद्र	१	१०	०
मंगल	०	२८	०
राहु	२	१२	०

चन्द्रमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ७मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
शनि	३	०	१५
बुध	२	२०	४५
केतु	१	३	१५
शुक्र	३	५	०
सूर्य	०	२८	३०
चंद्र	१	१७	३०
मंगल	१	३	१५
राहु	२	२५	३०
गुरु	२	१६	०

चन्द्रमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ५ मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
बुध	२	१२	१५
केतु	०	२६	४५
शुक्र	२	२५	०
सूर्य	०	२५	३०
चंद्र	१	१२	३०
मंगल	०	२६	४५
राहु	२	१६	३०
गुरु	२	८	०
शनि	२	२०	४५

चन्द्रमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तरम् ७ मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
केतु	०	१२	१५
शुक्र	१	५	०
सूर्य	०	१०	३०
चंद्र	०	१७	३०
मंगल	०	१२	१५
राहु	१	१	३०
गुरु	०	२८	०
शनि	१	३	१५
बुध	०	२६	४५

चन्द्रमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष ८ मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	३	१०	०
सूर्य	१	०	०
चंद्र	१	२०	०
मंगल	१	५	०
राहु	३	०	०
गुरु	२	२०	०
शनि	३	५	०
बुध	२	२५	०
केतु	१	५	०

चन्द्रदशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तरम् ६मास

ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	९	०
चंद्र	०	१५	०
मंगल	०	१०	३०
राहु	०	२७	०
गुरु	०	२४	०
शनि	०	२८	३०
बुध	०	२५	३०
केतु	०	१०	३०
शुक्र	१	०	०

भौममहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तरम् ४मास २७दिन			
ग्रह	दिन	घटी	पल
मंगल	८	३४	३०
राहु	२२	३	०
गुरु	१९	३६	०
शनि	२३	१६	३०
बुध	२०	४९	३०
केतु	८	३४	३०
शुक्र	२४	३०	०
सूर्य	७	२१	०
चंद्र	१२	१५	०

भौममहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष १८ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	१	२६	४२
गुरु	१	२०	२४
शनि	१	२९	५१
बुध	१	२३	३३
केतु	०	२२	३
शुक्र	२	३	०
सूर्य	०	१८	५४
चंद्र	१	१	३०
मंगल	०	२२	३

भौममहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तरम् ११मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	१	१४	४८
शनि	१	२३	१२
बुध	१	१७	३६
केतु	०	१९	३६
शुक्र	१	२६	०
सूर्य	०	१६	४८
चंद्र	०	२८	०
मंगल	०	१९	३६
राहु	१	२०	२४

भौममहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष १ मास ९ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
शनि	२	३	१०	३०
बुध	१	२६	३१	३०
केतु	०	२३	१६	३०
शुक्र	२	६	३०	०
सूर्य	०	१९	५७	०
चंद्र	१	३	१५	०
मंगल	०	२३	१६	३०
राहु	१	२९	५१	०
गुरु	१	२३	१२	०

भौममहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तरम् ११ मास २७ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
बुध	१	२०	३४	३०
केतु	०	२०	४९	३०
शुक्र	१	२९	३०	०
सूर्य	०	१७	५१	०
चंद्र	०	२९	४५	०
मंगल	०	२०	४९	३०
राहु	१	२३	३३	०
गुरु	१	१७	३६	०
शनि	१	२६	३१	३०

भौममहादशायां केत्यन्तरे प्रत्यन्तरम् ४ मास २७ दिन			
ग्रह	दिन	घटी	पल
केतु	८	३४	३०
शुक्र	२४	३०	०
सूर्य	७	२१	०
चंद्र	१२	१५	०
मंगल	८	३४	३०
राहु	२२	३	०
गुरु	१९	३६	०
शनि	२३	१६	३०
बुध	२०	४९	३०

भौममहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष २ मास			
ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	२	१०	०
सूर्य	०	२१	०
चंद्र	१	५	०
मंगल	०	२४	३०
राहु	२	३	०
गुरु	१	२६	०
शनि	२	६	३०
बुध	१	२९	३०
केतु	०	२४	३०

भौममदाहशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तरम् ४मास ६दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	६	१८
चंद्र	०	१०	३०
मंगल	०	७	२१
राहु	०	१८	५४
गुरु	०	१६	४८
शनि	०	१९	५७
बुध	०	१७	५१
केतु	०	७	२१
शुक्र	०	२१	०

भौममहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तरम् ७ मास ० दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	०	१७	३०
मंगल	०	१२	१५
राहु	१	१	३०
गुरु	०	२८	०
शनि	१	३	०
बुध	०	२९	१५
केतु	०	१२	४५
शुक्र	१	५	१५
सूर्य	०	१०	३०

राहुमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तरम् २ वर्ष ८ मास १२ दिन				राहुमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तरम् २ वर्ष ४ मास २४ दिन				राहुमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तरम् २ वर्ष १० मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	४	२५	४८	गुरु	३	२५	१२	शनि	५	१२	२७
गुरु	४	६	३६	शनि	४	१६	४८	बुध	४	२५	२१
शनि	५	३	५४	बुध	४	२	२४	केतु	१	२६	५१
बुध	४	१७	४२	केतु	१	२०	२४	शुक्र	५	२१	०
केतु	१	२६	४२	शुक्र	४	२४	०	सूर्य	१	२१	१८
शुक्र	५	१२	०	सूर्य	१	१३	१२	चंद्र	२	२५	३०
सूर्य	१	१८	३६	चंद्र	२	१२	०	मंगल	१	२६	५१
चंद्र	२	२१	०	मंगल	१	२०	२४	राहु	५	३	५४
मंगल	१	२६	४२	राहु	४	६	३६	गुरु	४	१६	४८

राहुमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तरम् २ वर्ष ६ मास १८ दिन				राहुमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तरम् १ वर्ष १८ दिन				राहुमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तरम् ३ वर्ष ० मास ० दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
बुध	४	१०	३	केतु	०	२२	३	शुक्र	६	०	०
केतु	१	२३	३३	शुक्र	२	३	०	सूर्य	१	२४	०
शुक्र	५	३	०	सूर्य	०	१८	५४	चंद्र	३	०	०
सूर्य	१	१५	५४	चंद्र	१	१	३०	मंगल	२	३	०
चंद्र	२	१६	३०	मंगल	०	२२	३	राहु	५	१२	०
मंगल	१	२३	३३	राहु	१	२६	४२	गुरु	४	२४	०
राहु	४	१७	४२	गुरु	१	२०	२४	शनि	५	२१	०
गुरु	४	२	२४	शनि	१	२६	५१	बुध	५	३	०
शनि	४	२५	२१	बुध	१	२३	३३	केतु	२	३	०

राहुमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि १०मास२४दि.				राहुमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष ६ मास				राहुमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि १वर्ष१८दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	१६	१२	चंद्र	१	१५	०	मंगल	०	२२	३
चंद्र	०	२७	०	मंगल	१	१	३०	राहु	१	२६	४२
मंगल	०	१८	५४	राहु	२	२१	०	गुरु	१	२०	२४
राहु	१	१८	३६	गुरु	२	१२	०	शनि	१	२६	५१
गुरु	१	१३	१२	शनि	२	२५	३०	बुध	१	२३	३३
शनि	१	२१	१८	बुध	२	१६	३०	केतु	०	२२	३
बुध	१	१५	५४	केतु	१	१	३०	शुक्र	२	३	०
केतु	०	१८	५४	शुक्र	३	०	०	सूर्य	०	१८	५४
शुक्र	१	२४	०	सूर्य	०	२७	०	चंद्र	१	१	३०

गुरुमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष १ मास १८ दिन				गुरुमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष ६ मास १२ दिन				गुरुमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष ३ मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	३	१२	२४	शनि	४	२४	२४	बुध	३	२५	३६
शनि	४	१	३६	बुध	४	६	१२	केतु	१	१७	३६
बुध	३	१८	४८	केतु	१	२३	१२	शुक्र	४	१६	०
केतु	१	१४	४८	शुक्र	५	२	०	सूर्य	१	१०	४८
शुक्र	४	८	०	सूर्य	१	१५	३६	चंद्र	२	८	०
सूर्य	१	८	२४	चंद्र	२	१६	०	मंगल	१	१७	३६
चंद्र	२	४	०	मंगल	१	२३	१२	राहु	४	२	२४
मंगल	१	१४	४८	राहु	४	१६	४८	गुरु	३	१८	४८
राहु	३	२५	१२	गुरु	४	१	३६	शनि	४	६	१२

गुरुमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तराणि ० वर्ष ११ मास ६ दिन				गुरुमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष ८ मास ० दिन				गुरुमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि ० वर्ष ६ मास १८ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
केतु	०	१६	३६	शुक्र	५	१०	०	सूर्य	०	१४	२४
शुक्र	१	२६	०	सूर्य	१	१८	०	चंद्र	०	२४	०
सूर्य	०	१६	४८	चंद्र	२	२०	०	मंगल	०	१६	४८
चंद्र	०	२८	०	मंगल	१	२६	०	राहु	१	१३	१२
मंगल	०	१६	३६	राहु	४	२४	०	गुरु	१	८	२४
राहु	१	२०	२४	गुरु	४	८	०	शनि	१	१५	३६
गुरु	१	१४	४८	शनि	५	२	०	बुध	१	१०	४८
शनि	१	२३	१२	बुध	४	१६	०	केतु	०	१६	४८
बुध	१	१७	३६	केतु	१	२६	०	शुक्र	१	१८	०

गुरुमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष ४ मास ० दिन				गुरुमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि ० वर्ष ११ मास ६ दिन				गुरुमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष ४ मास २४ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	१	१०	०	मंगल	०	१६	३६	राहु	४	६	३६
मंगल	०	२८	०	राहु	१	२०	२४	गुरु	३	२५	१२
राहु	२	१२	०	गुरु	१	१४	४८	शनि	४	१६	४८
गुरु	२	४	०	शनि	१	२३	१२	बुध	४	२	२४
शनि	२	१६	०	बुध	१	१७	३६	केतु	१	२०	२४
बुध	२	८	०	केतु	०	१६	३६	शुक्र	४	२४	०
केतु	०	२८	०	शुक्र	१	२६	०	सूर्य	१	१३	१२
शुक्र	२	२०	०	सूर्य	०	१६	४८	चंद्र	२	१२	०
सूर्य	०	२४	०	चंद्र	०	२८	०	मंगल	१	२०	२४

शनिमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि				
३ वर्ष ० मास ३ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
शनि	५	२१	२८	३०
बुध	५	३	२५	३०
केतु	२	३	१०	३०
शुक्र	६	०	३०	०
सूर्य	१	२४	६	०
चंद्र	३	०	१५	०
मंगल	२	३	१०	३०
राहु	५	१२	२७	०
गुरु	४	२४	२४	०

शनिमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि				
२ वर्ष ८ मास ६ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
बुध	४	१७	१६	३०
केतु	१	२६	३१	३०
शुक्र	५	११	३०	०
सूर्य	१	१८	२७	०
चंद्र	२	२०	४५	०
मंगल	१	२६	३१	३०
राहु	४	२५	२१	०
गुरु	४	६	१२	०
शनि	५	३	२५	३०

शनिमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तराणि				
१ वर्ष १ मास ६ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
केतु	०	२३	१६	३०
शुक्र	२	६	३०	०
सूर्य	०	१६	५७	०
चंद्र	१	३	१५	०
मंगल	०	२३	१६	३०
राहु	१	२६	५१	०
गुरु	१	२३	१२	०
शनि	२	३	१०	३०
बुध	१	२६	३१	३०

शनिमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि			
३ वर्ष २ मास ० दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	६	१०	०
सूर्य	१	२७	०
चंद्र	३	५	०
मंगल	२	६	३०
राहु	५	२१	०
गुरु	५	२	०
शनि	६	०	३०
बुध	५	११	३०
केतु	२	६	३०

शनिमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि			
० वर्ष ११ मास १२ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	१७	६
चंद्र	०	२८	३०
मंगल	०	१६	५७
राहु	१	२१	१८
गुरु	१	१५	३६
शनि	१	२४	६
बुध	१	१८	२७
केतु	०	१६	५७
शुक्र	१	२७	०

शनिमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि			
१ वर्ष ७ मास ० दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	१	१७	३०
मंगल	१	३	१५
राहु	२	२५	३०
गुरु	२	१६	०
शनि	३	०	१५
बुध	२	२०	४५
केतु	१	३	१५
शुक्र	३	५	०
सूर्य	०	२८	३०

शनिमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि				
१ वर्ष १ मास ६ दिन				
ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
मंगल	०	२३	१६	३०
राहु	१	२६	५१	०
गुरु	१	२३	१२	०
शनि	२	३	१०	३०
बुध	१	२६	३१	३०
केतु	०	२३	१६	३०
शुक्र	२	६	३०	०
सूर्य	०	१६	५७	०
चंद्र	१	३	१५	०

शनिमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि			
२ वर्ष १० मास ६ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	५	३	५४
गुरु	४	१६	४८
शनि	५	१२	२७
बुध	४	२५	२१
केतु	१	२६	५१
शुक्र	५	२१	०
सूर्य	१	२१	१८
चंद्र	२	२५	३०
मंगल	१	२६	५१

शनिमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि			
२ वर्ष ६ मास १२ दिन			
ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	४	१	३६
शनि	४	२४	२४
बुध	४	६	१२
केतु	१	२३	१२
शुक्र	५	२	०
सूर्य	१	१५	३६
चंद्र	२	१६	०
मंगल	१	२३	१२
राहु	४	१६	४८

बुधमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि — २ वर्ष ४ मास २७ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
बुध	४	२	४६	३०
केतु	१	२०	३४	३०
शुक्र	४	२४	३०	०
सूर्य	१	१३	२१	०
चंद्र	२	१२	१५	०
मंगल	१	२०	३४	३०
राहु	४	१०	३	०
गुरु	३	२५	३६	०
शनि	४	१७	१६	३०

बुधमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तराणि — ० वर्ष ११ मास २७ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
केतु	०	२०	४६	३०
शुक्र	१	२६	३०	०
सूर्य	०	१७	५१	०
चंद्र	०	२६	४५	०
मंगल	०	२०	४६	३०
राहु	१	२३	३३	०
गुरु	१	१७	३६	०
शनि	१	२६	३१	३०
बुध	१	२०	३४	३०

बुधमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि — २ वर्ष १० मास ० दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	५	२०	०
सूर्य	१	२१	०
चंद्र	२	२५	०
मंगल	१	२६	३०
राहु	५	३	०
गुरु	४	१६	०
शनि	५	११	३०
बुध	४	२४	३०
केतु	१	२६	३०

बुधमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि — ० वर्ष १० मास ६ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	१५	१८
चंद्र	०	२५	३०
मंगल	०	१७	५१
राहु	१	१५	५४
गुरु	१	१०	४८
शनि	१	१८	२७
बुध	१	१३	२१
केतु	०	१७	५१
शुक्र	१	२१	०

बुधमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि — १ वर्ष ५ मास ० दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	१	१२	३०
मंगल	०	२६	४५
राहु	२	१६	३०
गुरु	२	८	०
शनि	२	२०	४५
बुध	२	१२	१५
केतु	०	२६	४५
शुक्र	२	२५	०
सूर्य	०	२५	३०

बुधमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि — ० वर्ष ११ मास २७ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
मंगल	०	२०	४६	३०
राहु	१	२३	३३	०
गुरु	१	१७	३६	०
शनि	१	२६	३१	३०
बुध	१	२०	३४	३०
केतु	०	२०	४६	३०
शुक्र	१	२६	३०	०
सूर्य	०	१७	५१	०
चंद्र	०	२६	४५	०

बुधमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणिं — २ वर्ष ६ मास १८ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	४	१७	४२
बुध	४	२	२४
शनि	४	२५	२१
बुध	४	१०	३
केतु	१	२३	३३
शुक्र	५	३	०
सूर्य	१	१५	५४
चंद्र	२	१६	३०
मंगल	१	२३	३३

बुधमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि — २ वर्ष ३ मास ६ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	३	१८	४८
शनि	४	६	१२
बुध	३	२५	३६
केतु	१	१७	३६
शुक्र	४	१६	०
सूर्य	१	१०	४८
चंद्र	२	८	०
मंगल	१	१७	३६
राहु	४	२	२४

बुधमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि — २ वर्ष ८ मास ६ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
शनि	५	३	२५	३०
बुध	४	१७	१६	३०
केतु	१	२६	३१	३०
शुक्र	५	११	३०	०
सूर्य	१	१८	२७	०
चंद्र	२	२०	४५	०
मंगल	१	२६	३१	३०
राहु	४	२५	२१	०
गुरु	४	६	१२	०

केतुमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ४ मास २७ दिन

ग्रह	दिन	घटी	पल
केतु	८	३४	३०
शुक्र	२४	३०	०
सूर्य	७	२१	०
चंद्र	१२	१५	०
मंगल	८	३४	३०
राहु	२२	३	०
गुरु	१९	३६	०
शनि	२३	१६	३०
बुध	२०	४९	३०

केतुमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि
१ वर्ष २ मास ० दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	२	१०	०
सूर्य	०	२१	०
चंद्र	१	५	०
मंगल	०	२४	३०
राहु	२	३	०
गुरु	१	२६	०
श.	२	६	३०
बुध	१	२९	३०
केतु	०	२४	३०

केतुमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ४ मास ६ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
सूर्य	०	६	१८
चंद्र	०	१०	३०
मंगल	०	७	२१
राहु	०	१८	५४
गुरु	०	१६	४८
शनि	०	१९	५७
बुध	०	१७	५१
केतु	०	७	२१
शुक्र	०	२१	०

केतुमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ७ मास ० दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
चंद्र	०	१७	३०
मंगल	०	१२	१५
राहु	१	१	३०
गुरु	०	२८	०
शनि	१	३	१५
बुध	०	२९	४५
केतु	०	१२	१५
शुक्र	१	५	०
सूर्य	०	१०	३०

केतुमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ४ मास २७ दिन

ग्रह	दिन	घटी	पल
मंगल	८	३४	३०
राहु	२२	३	०
गुरु	१९	३६	०
शनि	२३	१६	३०
बुध	२०	४९	३०
केतु	८	३४	३०
शुक्र	२४	३०	०
सूर्य	७	२१	०
चंद्र	१२	१५	०

केतुमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि
१ वर्ष ० मास १८ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
राहु	१	२६	४२
गुरु	१	२०	२४
शनि	१	२९	५१
बुध	१	२३	३३
केतु	०	२२	३
शुक्र	२	३	०
सूर्य	०	१८	५४
चंद्र	१	१	३०
मंगल	०	२२	३

केतुमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ११ मास ६ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी
गुरु	१	१४	४८
शनि	१	२३	१२
बुध	१	१७	३६
केतु	०	१९	३६
शुक्र	१	२६	०
सूर्य	०	१६	४८
चंद्र	०	२८	०
मंगल	०	१९	३६
राहु	१	२०	२४

केतुमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि
१ वर्ष १ मास ९ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
शनि	२	३	१०	३०
बुध	१	२६	३१	३०
केतु	०	२३	१६	३०
शुक्र	२	६	३०	०
सूर्य	०	१९	५७	०
चंद्र	१	३	१५	०
मंगल	०	२३	१६	३०
राहु	१	२९	५१	०
गुरु	१	२३	१२	०

केतुमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि
० वर्ष ११ मास २७ दिन

ग्रह	मास	दिन	घटी	पल
बुध	१	२०	३४	३०
केतु	०	२०	४९	३०
शुक्र	१	२९	३०	०
सूर्य	०	१७	५१	०
चंद्र	०	२९	४५	०
मंगल	०	२०	४९	३०
राहु	१	२३	३३	०
गुरु	१	१७	३६	०
शनि	१	२६	३१	३०

शुक्रमहादशायां शुक्रान्तरे प्रत्यन्तराणि ३ वर्ष ४ मास				शुक्रमहादशायां सूर्यान्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष ० मास				शुक्रमहादशायां चन्द्रान्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष ८ मास			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
शुक्र	६	२०	०	सूर्य	०	१८	०	चंद्र	१	२०	०
सूर्य	२	०	०	चंद्र	१	०	०	मंगल	१	५	०
चंद्र	३	१०	०	मंगल	०	२१	०	राहु	३	०	०
मंगल	२	१०	०	राहु	१	२४	०	गुरु	२	२०	०
राहु	६	०	०	गुरु	१	१८	०	शनि	३	५	०
गुरु	५	१०	०	शनि	१	२७	०	बुध	२	२५	०
शनि	६	१०	०	बुध	१	२१	०	केतु	१	५	०
बुध	५	२०	०	केतु	०	२१	०	शुक्र	३	१०	०
केतु	२	१०	०	शुक्र	२	०	०	सूर्य	१	०	०

शुक्रमहादशायां भौमान्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष २ मास				शुक्रमहादशायां राह्वन्तरे प्रत्यन्तराणि ३ वर्ष ० मास				शुक्रमहादशायां गुर्वन्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष ८ मास			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
मंगल	०	२४	३०	राहु	५	१२	०	गुरु	४	८	०
राहु	२	३	०	गुरु	४	२४	०	शनि	५	२	०
गुरु	१	२६	०	शनि	५	२१	०	बुध	४	१६	०
शनि	२	६	३०	बुध	५	३	०	केतु	१	२६	०
बुध	१	२९	३०	केतु	२	३	०	शुक्र	५	१०	०
केतु	०	२४	३०	शुक्र	६	०	०	सूर्य	१	१८	०
शुक्र	२	१०	०	सूर्य	१	२४	०	चंद्र	२	२०	०
सूर्य	०	२१	०	चंद्र	३	०	०	मंगल	१	२६	०
चंद्र	१	५	०	मंगल	२	३	०	राहु	४	२४	०

शुक्रमहादशायां शन्यन्तरे प्रत्यन्तराणि ३ वर्ष २ मास				शुक्रमहादशायां बुधान्तरे प्रत्यन्तराणि २ वर्ष १० मास				शुक्रमहादशायां केत्वन्तरे प्रत्यन्तराणि १ वर्ष २ मास			
ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी	ग्रह	मास	दिन	घटी
शनि	६	०	३०	बुध	४	२४	३०	केतु	०	२४	३०
बुध	५	११	३०	केतु	१	२९	३०	शुक्र	२	१०	०
केतु	२	६	३०	शुक्र	५	२०	०	सूर्य	०	२१	०
शुक्र	६	१०	०	सूर्य	१	२१	०	चंद्र	१	५	०
सूर्य	१	२७	०	चंद्र	२	२५	०	मंगल	०	२४	३०
चंद्र	३	५	०	मंगल	१	२९	३०	राहु	२	३	०
मंगल	२	६	३०	राहु	५	३	०	गुरु	१	२६	०
राहु	५	२१	०	गुरु	४	१६	०	शनि	२	६	३०
गुरु	५	२	०	शनि	५	११	३०	बुध	१	२९	३०

इति प्रत्यन्तर्दशा चक्रम्।

अथ नवांशदशावर्ष-अन्तर्दशादिचक्रम्

मेषांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मेष	०	५	२६	२४
वृष	१	१	१३	१२
मिथु.	०	७	१६	४८
कर्क	१	५	१९	१२
सिंह	०	४	६	०
कन्या	०	७	१६	४८
तुला	१	१	१३	१२
वृश्चि.	०	५	२६	२४
धनु	०	८	१२	०

मेषांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
वृष	२	६	२१	३६
मिथु.	१	५	८	२४
कर्क	३	४	९	३६
सिंह	०	९	१८	०
कन्या	१	५	८	२४
तुला	२	६	२१	३६
वृश्चि.	१	१	१३	१२
धनु	१	७	६	०
मेष	१	१	१३	१२

मेषांश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मिथु.	०	९	२१	३६
कर्क	१	१०	२०	२४
सिंह	०	५	१२	०
कन्या	०	९	२१	३६
तुला	१	५	८	२४
वृश्चि.	०	७	१६	४८
धनु	०	१०	२४	०
मेष	०	७	१६	४८
वृष	१	५	८	२४

मेषांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
कर्क	४	४	२७	३६
सिंह	१	०	१८	०
कन्या	१	१०	२०	२४
तुला	३	४	९	३६
वृश्चि.	१	५	१९	१२
धनु	२	१	६	०
मेष	१	५	१९	१२
वृष	३	४	९	३६
मिथु.	१	१०	२०	२४

मेषांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
सिंह	०	३	०	०
कन्या	०	५	१२	०
तुला	०	९	१८	०
वृश्चि.	०	४	६	०
धनु	०	६	०	०
मेष	०	४	६	०
वृष	०	९	१८	०
मिथु.	०	५	१२	०
कर्क	१	०	१८	०

मेषांश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
कन्या	०	९	२१	३६
तुला	१	५	८	२४
वृश्चि.	०	७	१६	४८
धनु	०	१०	२४	०
मेष	०	७	१६	४८
वृष	१	५	८	२४
मिथु.	०	९	२१	३६
कर्क	१	१०	२०	२४
सिंह	०	५	१२	०

मेषांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
तुला	२	६	२१	३६
वृश्चि.	१	१	१३	१२
धनु	१	७	६	०
मेष	१	१	१३	१२
वृष	२	६	२१	३६
मिथु.	१	५	८	२४
कर्क	३	४	९	३६
सिंह	०	९	१८	०
कन्या	१	५	८	२४

मेषांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
वृश्चि.	०	५	२६	२४
धनु	०	८	१२	०
मेष	०	५	२६	२४
वृष	१	१	१३	१२
मिथु.	०	७	१६	४८
कर्क	१	५	१९	१२
सिंह	०	४	६	०
कन्या	०	७	१६	४८
तुला	१	१	१३	१२

मेषांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
धनु	१	०	०	०
मेष	०	८	१२	०
वृष	१	७	६	०
मिथु.	०	१०	२४	०
कर्क	२	१	६	०
सिंह	०	६	०	०
कन्या	०	१०	२४	०
तुला	१	७	६	०
वृश्चि.	०	८	१२	०

वृषांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
मक.	२	७	४५	५३
कुंभ	२	७	४५	५३
मीन	५	१९	१४	४२
वृश्चि.	३	२८	३५	१८
तुला	९	१	३	३२
कन्या	५	२	१८	१४
कर्क	११	२५	४५	५३
सिंह	२	२४	४२	२१
मिथु.	५	२	४८	१४

वृषांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	७	४५	५३
मीन	५	१९	१४	४२
वृश्चि.	३	२८	३५	१८
तुला	९	१	३	३२
कन्या	५	२	१८	१४
कर्क	११	२५	४५	५३
सिंह	२	२४	४२	२१
मिथु.	५	२	४८	१४
मक.	२	७	४५	५३

वृषांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मीन	१	२	३	३१	४६
वृश्चि.	०	९	२६	२८	१४
तुला	१	१०	१७	३८	४९
कन्या	१	०	२१	१०	३५
कर्क	२	५	१९	२४	४२
सिंह	०	७	१	४५	५३
मिथु.	१	०	२१	१०	३५
मकर	०	५	१९	२४	४३
कुंभ	०	५	१९	२४	४३

वृषांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृश्चि.	०	६	२७	३१	४६
तुला	१	३	२४	३१	१०
कन्या	०	८	२६	४९	२५
कर्क	१	८	२२	३५	१७
सिंह	०	४	२८	१४	७
मिथु.	०	८	२६	४९	२५
मकर	०	३	२८	३५	१८
कुंभ	०	३	२८	३५	१८
मीन	०	९	२६	१८	१४

वृषांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
तुला	३	०	४	१४	७
कन्या	१	८	९	५२	५६
कर्क	३	११	१३	३	३२
सिंह	०	११	८	४९	२५
मिथु.	१	८	९	५२	५६
मकर	०	९	१	३	३२
कुंभ	०	९	१	३	३२
मीन	१	१०	१७	३८	४९
वृश्चि.	१	३	२४	२१	११

वृषांश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कन्या	०	११	१३	३	३२
कर्क	२	२	२०	२८	१४
सिंह	०	६	१०	३५	१८
मिथु.	०	११	१३	३	३२
मकर	०	५	२	२८	१४
कुंभ	०	५	२	२८	१४
मीन	१	०	२१	१०	३५
वृश्चि.	०	८	२६	४९	२५
तुला	१	८	९	५२	५६

वृषांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कर्क	५	२	७	४५	५३
सिंह	१	२	२४	४२	२१
मिथु.	२	२	२०	२८	१४
मक.	०	११	२५	४५	५३
कुंभ	०	११	२५	४५	५३
मीन	२	५	१९	२४	४३
वृश्चि.	१	८	२२	३५	१७
तुला	३	११	१३	३	३२
कन्या	२	२	२०	२८	१४

वृषांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
सिंह	०	३	१५	५२	५६
मिथु.	०	६	१०	३५	१८
मक.	०	२	२४	४२	२१
कुंभ	०	२	२४	४२	२१
मीन	०	७	१	४५	५३
वृश्चि.	०	४	२८	१४	७
तुला	०	११	८	४९	२५
कन्या	०	६	१०	३५	१८
कर्क	१	२	२४	४२	२१

वृषांश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मिथु.	०	११	१३	३	३२
मक.	०	५	२	२८	१४
कुंभ	०	५	२	२८	१४
मीन	१	०	२१	१०	३५
वृश्चि.	०	८	२६	४९	२५
तुला	१	८	९	५२	५६
कन्या	०	११	१३	३	३२
कर्क	२	२	२०	२८	१४
सिंह	०	६	१०	३५	१८

मिथुनांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृष	३	१	०	२१	४१
मेष	१	४	५	४७	०
मीन	१	११	३	५८	३३
कुंभ	०	९	७	३५	२५
मकर	०	९	७	३५	२५
धनु	१	११	३	५८	३३
मेष	१	४	५	४७	०
वृष	३	१	०	२१	४१
मिथु.	१	८	२४	३४	४२

मिथुनांश मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मेष	०	७	२	३१	४८
मीन	०	१०	३	३६	५२
कुंभ	०	४	१	२६	४५
मकर	०	४	१	२६	४५
धनु	०	१०	३	३६	५२
मेष	०	७	२	३१	४८
वृष	१	४	५	४७	०
मिथु.	०	९	३	१५	१०
वृष	१	४	५	४७	०

मिथुनांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मीन	१	२	१३	४४	६
कुंभ	०	५	२३	२९	३८
मकर	०	५	२३	२९	३८
धनु	१	२	१३	४४	६
मेष	०	१०	३	३६	५२
वृष	१	११	३	५८	३३
मिथु.	१	१	०	२१	४२
वृष	१	११	३	५८	३३
मेष	०	१०	३	३६	५२

मिथुनांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	९	२३	५२
मकर	२	९	२३	५२
धनु	५	२३	२९	३८
मेष	४	१	२६	४५
वृष	९	७	३५	२५
मिथु.	५	६	८	४०
वृष	९	७	३५	२५
मेष	४	१	२६	४५
मीन	५	२३	२९	३८

मिथुनांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
मकर	२	९	२३	५२
धनु	५	२३	२९	३८
मेष	४	१	२६	४५
वृष	९	७	३५	२५
मिथु.	५	६	८	४०
वृष	९	७	३५	२५
मेष	४	१	२६	४५
मीन	५	२३	२९	३८
कुंभ	२	९	२३	५२

मिथुनांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
धनु	१	२	१३	४४	६
मेष	०	१०	३	३६	५२
वृष	१	११	३	५८	३३
मिथु.	१	१	०	२१	४२
वृष	१	११	३	५८	३३
मेष	०	१०	३	३६	५२
मीन	१	२	१३	४४	६
कुंभ	०	५	२३	२९	३८
मक.	०	५	२३	२९	३८

मिथुनांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मेष	०	७	२	३१	४८
वृष	१	४	५	४७	०
मिथु.	०	९	३	१५	१०
वृष	१	४	५	४७	०
मेष	०	७	२	३१	४८
मीन	०	१०	३	३६	५२
कुंभ	०	४	१	२६	४५
मक.	०	४	१	२६	४५
धनु	०	१०	३	३६	५२

मिथुनांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृष	३	१	०	२१	४१
मिथु.	१	८	२४	३४	४२
वृष	३	१	०	२१	४१
मेष	१	४	५	४७	०
मीन	१	११	३	५८	३३
कुंभ	०	९	७	३५	२५
मक.	०	९	७	३५	२५
धनु	१	११	३	५८	३३
मेष	१	४	५	४७	०

मिथुनांश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मिथु.	०	११	२१	१९-३२	
वृष	१	८	२४	३४	४२
मेष	०	९	३	१५	१०
मीन	१	१	०	२१	४२
कुंभ	०	५	६	८	४०
मक.	०	५	६	८	४०
धनु	१	१	०	२१	४२
मेष	०	९	३	१५	१०
वृष	१	८	२४	३४	४२

कर्कांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कर्क	५	१	१६	२	४७
सिंह	१	२	१९	३२	५
कन्या	२	२	११	९	४६
तुला	३	१०	२६	३०	४२
वृश्चि.	१	८	१५	२०	५६
धनु	२	५	९	४	११
मक.	०	११	२१	३७	४१
कुंभ	०	११	२१	३७	४१
मीन	२	५	९	४	११

कर्कांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
सिंह	०	३	१४	३९	४
कन्या	०	६	८	२२	२०
तुला	०	११	४	५३	१
वृश्चि.	०	४	२६	३०	४२
धनु	०	६	२९	१८	९
मक.	०	२	२३	४३	१५
कुंभ	०	२	२३	४३	१५
मीन	०	६	२९	१८	९
कर्क	१	२	१९	३२	५

कर्कांश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कन्या	०	११	९	४	११
तुला	१	८	२	४७	२६
वृश्चि.	०	८	२३	४३	१५
धनु	१	०	१६	४४	४०
मक.	०	५	०	४१	५१
कुंभ	०	५	०	४१	५१
मीन	१	०	१६	४४	४०
कर्क	२	२	११	९	४६
सिंह	०	६	८	२२	२०

कर्कांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
तुला	२	११	२१	३७	४१
वृश्चि.	१	३	१८	५०	१४
धनु	१	१०	९	४६	२
मक.	०	८	२७	५४	२६
कुंभ	०	८	२७	५४	२६
मीन	१	१०	९	४६	२
कर्क	३	१०	२६	३०	४२
सिंह	०	११	४	५३	१
कन्या	१	८	२	४७	२६

कर्कांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृश्चि.	०	६	२५	६	५९
धनु	०	९	२३	१	२४
मक.	०	३	२७	१२	३३
कुंभ	०	३	२७	१२	३३
मीन	०	९	२३	१	२४
कर्क	१	८	१५	२०	५६
सिंह	०	४	२६	३०	४२
कन्या	०	८	२३	४३	१५
तुला	१	३	१८	५०	१४

कर्कांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
धनु	१	१	२८	३६	१६
मक.	०	५	१७	२६	३०
कुंभ	०	५	१७	२६	३०
मीन	१	१	२८	३६	१६
कर्क	२	५	९	४	१३
सिंह	०	६	२९	१८	९
कन्या	१	०	१६	४४	४०
तुला	१	१०	९	४६	२
वृश्चि.	०	९	२३	१	२४

कर्कांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
मक	२	६	५८	३७
कुंभ	२	६	५८	३७
मीन	५	१७	२६	३०
कर्क	११	२१	३७	४१
सिंह	२	२३	४३	१५
कन्या	५	०	४१	५१
तुला	८	२७	५४	२६
वृश्चि.	३	२७	१२	३३
धनु	५	१७	२६	३०

कर्कांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	६	५८	३७
मीन	५	१७	२६	३०
कर्क	११	२१	३७	४१
सिंह	२	२३	४३	१५
कन्या	५	०	४१	५१
तुला	८	२७	५४	२६
वृश्चि.	३	२७	१२	३३
धनु	५	१७	२६	३०
मक.	२	६	५८	३७

कर्कांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मीन	१	१	२८	३६	१६
कर्क	२	५	९	४	१३
सिंह	०	६	२९	१८	९
कन्या	१	०	१६	४४	४०
तुला	१	१०	९	४६	२
वृश्चि.	०	९	२३	१	२४
धनु	१	१	२८	३६	१६
मक.	०	५	१७	२६	३०
कुंभ	०	५	१७	२६	३०

सिहांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
वृश्चि.	०	५	२६	२४
तुला	१	१	१३	१२
कन्या	०	७	१६	४८
कर्क	१	५	१९	१२
सिंह	०	४	६	०
मिथु.	०	७	१६	४८
वृष.	१	१	१३	१२
मेष	०	५	२६	२४
मीन	०	८	१२	०

सिंहांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
तुला	२	६	२१	३६
कन्या	१	५	८	२४
कर्क	३	४	९	३६
सिंह	०	९	१८	०
मिथु.	१	५	८	२४
वृष.	२	६	२१	३६
मेष	१	१	१३	१२
मीन	१	७	६	०
वृश्चि.	१	१	१३	१२

सिहांश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
कन्या	०	९	२१	३६
कर्क	१	१०	२०	२४
सिंह	०	५	१२	०
मिथु.	०	९	२१	३६
वृष.	१	५	८	२४
मेष	०	७	१६	४८
मीन	०	१०	२४	०
वृश्चि.	०	७	१६	४८
तुला	१	५	८	२४

सिहांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
कर्क	४	४	२७	३६
सिंह	१	०	१८	०
मिथु.	१	१०	२०	२४
वृष	३	४	९	३६
मेष	१	५	१९	१२
मीन	२	१	६	०
वृश्चि.	१	५	१९	१२
तुला	३	४	९	३६
कन्या	१	१०	२०	२४

सिहांश में सिंह दशा वर्ष ५ अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
सिंह	०	३	०	०
मिथु.	०	५	१२	०
वृष	०	९	१८	०
मेष	०	४	६	०
मीन	०	६	०	०
वृश्चि.	०	४	६	०
तुला	०	९	१८	०
कन्या	०	५	१२	०
कर्क	१	०	१८	०

सिंहांश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मिथु.	०	९	२१	३६
वृष	१	५	८	२४
मेष	०	७	१६	४८
मीन	०	१०	२४	०
वृश्चि.	०	७	१६	४८
तुला	१	५	८	२४
कन्या	०	९	२१	३६
कर्क	१	१०	२०	२४
सिंह	०	५	१२	०

सिंहांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
वृष	२	६	२१	३६
मेष	१	१	१३	१२
मीन	१	७	६	०
वृश्चि.	१	१	१३	१२
तुला	२	६	२१	३६
कन्या	१	५	८	२४
कर्क	३	४	९	३६
सिंह	०	९	१८	०
मिथु.	१५	८	२४	०

सिहांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मेष	०	५	२६	२४
मीन	०	८	१२	०
वृश्चि.	०	५	२६	२४
तुला	१	१	१३	१२
कन्या	०	७	१६	४८
कर्क	१	५	१९	१२
सिंह	०	४	६	०
मिथु.	०	७	१६	४८
वृष	१	१	१३	१२

सिहांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मीन	१	०	०	०
वृश्चि.	०	८	१२	०
तुला	१	७	६	०
कन्या	०	१०	२४	०
कर्क	२	१	६	०
सिंह	०	६	०	०
मिथु.	०	१०	२४	०
वृष	१	७	६	०
मेष	०	८	१२	०

कन्यांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्ददर्शा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	७	४५	५३
मक.	२	७	४५	५३
धनु	५	१६	२४	४२
मेष	३	२८	३५	१८
वृष	६	१	३	३२
मिथु.	५	२	२८	१४
कर्क	११	२५	४५	५३
सिंह	२	२४	४२	२१
कन्या	५	२	२८	१४

कन्यांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
मक.	२	७	४५	५३
धनु	५	१६	२४	४२
मेष	३	२८	३५	१८
वृष	६	१	३	३२
मिथु.	५	२	२८	१४
कर्क	११	२५	४५	५३
सिंह	२	२४	४२	२१
कन्या	५	२	२८	१४
कुंभ	२	७	४५	५३

कन्यांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
धनु	१	२	३	३१	४६
मेष	०	६	२६	२८	१४
वृष	१	१०	१७	३८	४६
मिथु.	१	०	२१	१०	३५
कर्क	२	५	१६	२४	४२
सिंह	०	७	१	४५	५३
कन्या	१	०	२१	१०	३५
कुंभ	०	५	१६	२४	४३
मक.	०	५	१६	२४	४३

कन्यांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मेष	०	६	२७	३१	४६
वृष	१	३	२४	३१	१०
मिथु.	०	८	२६	४६	२५
कर्क	१	८	२२	३५	१७
सिंह	०	४	२८	१४	७
कन्या	०	८	२६	४६	२५
कुंभ	०	३	२८	३५	१८
मक.	०	३	२८	३५	१८
धनु	०	६	२६	१८	१४

कन्यांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृष	३	०	४	१४	७
मिथु.	१	८	६	५२	५६
कर्क	३	११	१३	३	३२
सिंह	०	११	८	४६	२५
कन्या	१	८	६	५२	५६
कुंभ	०	६	१	३	३२
मक.	०	६	१	३	३२
धनु	१	१०	१७	३८	४६
मेष	१	३	२४	२१	११

कन्यांश में मिथुन दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मिथु.	०	११	१३	३	३२
कर्क	२	२	२०	२८	१४
सिंह	०	६	१०	३५	१८
कन्या	०	११	१३	३	३२
कुंभ	०	५	२	२८	१४
मक.	०	५	२	२८	१४
धनु	१	०	२१	१०	३५
मेष	०	८	२६	४६	२५
वृष	१	८	६	५२	५६

कन्यांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कर्क	५	२	७	४५	५३
सिंह	१	२	२४	४२	२१
कन्या	२	२	२०	२८	१४
कुंभ	०	११	२५	४५	५३
मक.	०	११	२५	४५	५३
धनु	२	५	१६	२४	४३
मेष	१	८	२२	३५	१७
वृष	३	११	१३	३	३२
मिथु.	२	२	२०	२८	१४

कन्यांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
सिंह	०	३	१५	५२	५६
कन्या	०	६	१०	३५	१८
कुंभ	०	२	२४	४२	२१
मक.	०	२	२४	४२	२१
धनु	०	७	१	४५	५३
मेष	०	४	२८	१४	७
वृष	०	११	८	४६	२५
मिथु.	०	६	२०	३५	१८
कर्क	१	२	२४	४२	२१

कन्यांश में कन्या दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कन्या	०	११	१३	३	३२
कुंभ	०	५	२	२८	१४
मक.	०	५	२	२८	१४
धनु	१	०	२१	१०	३५
मेष	०	८	२६	४६	२५
वृष	१	८	६	५२	५६
मिथु.	०	११	१३	३	३२
कर्क	२	२	२०	२८	१४
सिंह	०	६	१०	३५	१८

तुलांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
तुला	३	१	०	२१	४१
वृश्चि.	१	४	५	४७	०
धनु	१	११	३	५८	३३
मक.	०	६	७	३५	२५
कुंभ	०	६	७	३५	२५
मीन	१	११	३	५८	३३
वृश्चि.	१	४	५	४७	०
तुला	३	१	०	२१	४१
कर्क	१	८	२४	३४	४२

तुलांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृश्चि.	०	७	२	३१	४८
धनु	०	१०	३	३६	५२
मक.	०	४	१	२६	४५
कुंभ	०	४	१	२६	४५
मीन	०	१०	३	३६	५२
वृश्चि.	०	७	२	३१	४८
तुला	१	४	५	४७	०
कर्क	०	६	३	१५	१०
तुला	१	४	५	४७	०

तुलांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
धनु	१	२	१३	४४	६
मक.	०	५	२३	२६	३८
कुंभ	०	५	२३	२६	३८
मीन	१	२	१३	४४	६
वृश्चि.	०	१०	३	३६	५२
तुला	१	११	३	५८	३३
कर्क	१	१	०	२१	४२
तुला	१	११	३	५८	३३
वृश्चि	०	१०	३	३६	५२

तुलांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
मक.	२	६	२३	५२
कुंभ	२	६	२३	५२
मीन	५	२३	२६	३८
वृष	४	१	२६	४५
तुला	६	७	३५	२५
कन्या	५	६	८	४०
तुला	६	७	३५	२५
वृष	४	१	२६	४५
धनु	५	२३	२६	३८

तुलांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	६	२३	५२
मीन	५	२३	२६	३८
वृश्चि.	४	१	२६	४५
तुला	६	७	३५	२५
कर्क	५	६	८	४०
तुला	६	७	३५	२५
वृष	४	१	२६	४५
धनु	५	२३	२६	३८
मक.	२	६	२३	५२

तुलांश मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मीन	१	२	१३	४४	६
वृष	०	१०	३	३६	५२
तुला	१	११	३	५८	३३
कर्क	१	१	०	२१	४२
तुला	१	११	३	५८	३३
वृष	०	१०	३	३६	५२
धनु	१	२	१३	४४	६
मक.	०	५	२३	२६	३८
कुंभ	०	५	२३	२६	३८

तुलांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृश्चि.	०	७	२	३१	४८
तुला	१	४	५	४७	०
कन्या	०	६	३	१५	१०
तुला	१	४	५	४७	०
वृष	०	७	२	३१	४८
धनु	०	१०	३	३६	५२
मक.	०	४	१	२६	४५
कुंभ	०	४	१	२६	४५
मीन	०	१०	३	३६	५२

तुलांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
तुला	३	१	०	२१	४१
कन्या	१	८	२४	३४	४२
तुला	३	१	०	२१	४१
वृश्चि.	१	४	५	४७	०
धनु	१	११	३	५८	३३
मक.	०	६	७	३५	२५
कुंभ	०	६	७	३५	२५
मीन	१	११	३	५८	३३
वृष	१	४	५	४७	०

तुलांश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कन्या	०	११	२१	१६	३२
तुला	१	८	२४	३४	४२
वृश्चि.	०	६	३	१५	१०
धनु	१	१	०	२१	४२
मक.	०	५	६	८	४०
कुंभ	०	५	६	८	४०
मीन	१	१	०	२१	४२
वृश्चि.	०	६	३	१५	१०
तुला	१	८	२४	३४	४२

वृश्चिकांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
कर्क	५	१	१६	२	४७
सिंह	१	२	१९	३२	५
मिथु.	२	२	११	९	४६
वृष	३	१०	२६	३०	४२
मेष	१	८	१५	२०	५६
मीन	२	५	९	४	११
वृश्चि.	०	११	२१	३७	४१
मक.	०	११	२१	३७	४१
धनु	२	५	९	४	११

वृश्चिकांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
सिंह	०	३	१४	३९	४
मिथु.	०	६	८	२२	२०
वृश्चि.	०	११	४	५३	१
मेष	०	४	२६	३०	४२
मीन	०	६	२९	१८	९
कुंभ	०	२	२३	४३	१५
मक.	०	२	२३	४३	१५
धनु	०	६	२९	१८	९
कर्क	१	२	१९	३२	५

वृश्चिकांश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मिथु.	०	११	९	४	११
वृश्चि.	१	८	२	४७	२६
मेष	०	८	२३	४३	१५
मीन	१	०	१६	४४	४०
कुंभ	०	५	०	४१	५१
मक.	०	५	०	४१	५१
धनु	१	०	१६	४४	४०
कर्क	२	२	११	९	४६
सिंह	०	६	८	२२	२०

वृश्चिकांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
वृष	२	११	२१	३७	४१
मेष	१	३	१८	५०	१४
मीन	१	१०	९	४६	२
कुंभ	०	८	२७	५४	२६
मक.	०	८	२७	५४	२६
धनु	१	१०	९	४६	२
कर्क	३	१०	२६	३०	४२
सिंह	०	११	४	५३	१
मिथु.	१	८	२	४७	२६

वृश्चिकांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मेष	०	६	२५	६	५९
मीन	०	९	२३	१	२४
कुंभ	०	३	२७	१२	३३
मक.	०	३	२७	१२	३३
धनु	०	९	२३	१	२४
कर्क	१	८	१५	२०	५६
सिंह	०	४	२६	३०	४२
मिथु.	०	८	२३	४३	१५
वृष	१	३	१८	५०	१४

वृश्चिकांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मीन	१	१	२८	३६	१६
कुंभ	०	५	१७	२६	३०
मक.	०	५	१७	२६	३०
धनु	१	१	२८	३६	१६
कर्क	२	५	९	४	१३
सिंह	०	६	२९	१८	९
मिथु.	१	०	१६	४४	४०
वृष	१	१०	९	४६	२
मेष	०	९	२३	१	२४

वृश्चिकांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा				
राशि	मास	दिन	घटी	पल
कुंभ	२	६	५८	३७
मक.	२	६	५८	३७
धनु	५	१७	२६	३०
कर्क	११	२१	३७	४१
सिंह	२	२३	४३	१५
मिथु.	५	०	४१	५१
वृष	८	२७	५४	२६
मेष	३	२७	१२	३३
मीन	५	१७	२६	३०

वृश्चिकांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा				
राशि	मास	दिन	घटी	पल
मक.	२	६	५८	३७
धनु	५	१७	२६	३०
कर्क	११	२१	३७	४१
सिंह	२	२३	४३	१५
मिथु.	५	०	४१	५१
वृष	८	२७	५४	२६
मेष	३	२७	१२	३३
मीन	५	१७	२६	३०
कुंभ	२	६	५८	३७

वृश्चिकांश में धनु दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा					
राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
धनु	१	१	२८	३६	१६
कर्क	२	५	९	४	१३
सिंह	०	६	२९	१८	९
मिथु.	१	०	१६	४४	४०
वृष	१	१०	९	४६	२
मेष	०	९	२३	१	२४
मीन	१	१	२८	३६	१६
कुंभ	०	५	१७	२६	३०
मक.	०	५	१७	२६	३०

धनु अंश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी	पल
मे.	०	५	२६	२४	०
वृ.	१	१	१३	१२	०
मि.	०	७	१६	४८	०
क.	१	५	१९	१२	०
सिं.	०	४	६	०	०
कं.	०	७	१६	४८	०
तु.	१	१	१३	१२	०
वृ.	०	५	२६	२४	०
ध.	०	८	१२	०	०

धनु अंश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	दिन	मास	घटी	पल
वृ.	२	६	२१	३६	०
मि.	६	५	८	२४	०
क.	३	६	९	३६	०
सिं.	०	९	१८	२	०
कं.	६	५	८	२४	०
तु.	२	६	२१	३६	०
वृ.	१	१	१३	१२	०
ध.	१	६	३६	०	०
मे.	१	१	१३	१२	०

धनु अंश में मिथुन दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

राशि	वर्ष	मास	दिन	घटी
मि.	०	९	२१	३६
क.	१	१०	२०	२४
सिं.	०	५	१२	०
कं.	०	९	२१	३६
तु.	१	५	८	२४
वृ.	०	७	१६	४८
ध.	०	१०	२४	०
मे.	०	७	१६	४८
वृ.	१	५	८	२४

धनु अंश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.
क.	४	४	२७	३६
सिं.	१	०	१८	०
कं.	१	१०	२०	२४
तु.	३	४	९	३६
वृ.	१	५	१९	१२
ध.	१	१	६	०
मे.	२	५	१९	१२
वृ.	३	४	९	३६
मि.	१	१०	२०	२४

धनु अंश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.
सिं.	०	३	०	०
कं.	०	५	१२	०
तु.	०	९	१८	०
वृ.	०	४	६	०
ध.	०	३	०	०
मे.	०	४	६	०
वृ.	०	९	१८	०
मि.	०	५	१२	०
क.	१	०	१८	०

धनु अंश में कन्या दशा वर्ष ९ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.
कं.	०	९	२१	३६
तु.	१	५	८	२४
वृ.	०	७	१६	४८
ध.	०	१०	२४	०
मे.	०	७	१६	४८
वृ.	१	५	८	२४
मि.	०	९	२१	३६
क.	१	१०	२०	२४
सिं.	०	५	१२	०

धनु अंश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.
तु.	२	६	२१	३६
वृ.	१	१	१३	१२
ध.	१	७	६	१२
मे.	१	१	१३	०
वृ.	२	३	२१	१२
मि.	१	५	८	२४
क.	१	४	९	३६
सिं.	०	९	१८	०
कं.	०	५	८	२४

धनु अंश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.
वृ.	०	५	२६	२४
ध.	०	८	१२	०
मे.	०	५	२६	२४
वृ.	१	१	१३	१२
मि.	०	७	१६	४८
कं.	१	५	१९	१२
सिं.	०	४	६	०
कं.	०	७	१६	४८
तु.	१	१	१३	१२

धनु अंश में धन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.
ध.	१	०	०	०
मे.	०	८	१२	०
वृ.	१	७	६	०
मि.	०	१०	२४	०
क.	२	१	६	०
सिं.	०	६	०	०
कं.	०	१०	२४	०
तु.	१	७	६	०
वृ.	०	८	१२	०

मकरांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
म.	०	२	७	४५	५३
कु.	०	२	७	४५	५३
मी.	०	५	१६	१४	४२
वृ.	०	३	२८	१५	१८
तु.	०	६	१	३	३२
कं.	०	५	२	२८	१४
क.	०	११	२८	४५	५३
सिं.	०	२	२४	४२	२१
मि.	०	५	२	२८	२४

मकरांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
कु.	०	७	२	४५	५३
मी.	०	५	१६	२४	४२
वृ.	०	३	२८	३५	१८
तु.	०	६	१	३	३२
कं.	०	५	२	२८	१४
क.	०	११	२५	४५	५३
सिं.	०	२	२४	४२	२१
मि.	०	५	२	२८	१४
म.	०	२	७	४५	५३

मकरांश में मीन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मी.	१	२	३	३१	४६
वृ.	०	६	२६	२८	१४
तु.	१	१०	१७	३८	४६
कं.	१	०	२१	१०	३५
क.	२	५	१६	२४	४२
सि.	०	७	१	४५	५३
मि.	१	०	२१	१०	३५
म.	०	५	१६	२४	४३
कु.	०	५	१६	२४	४३

मकरांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
वृ.	०	६	२७	३१	४६
तु.	१	३	२४	२१	१०
क.	०	८	२६	४६	२५
कं.	१	८	२२	३५	१७
सिं.	०	४	२८	१४	७
मि.	०	८	२६	४६	२५
म.	०	३	२८	३५	१८
कु.	०	३	२८	३५	१८
मी.	०	६	२६	१८	१४

मकरांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
तु.	६	०	४	१४	७
क.	१	८	६	५२	५६
कं.	३	११	१३	३	३२
सिं.	०	११	८	४६	२५
मि.	१	८	६	५२	५६
म.	०	६	१	३	३०
कु.	०	६	१	३	३२
मी.	१	१०	१७	३८	४६
वृ.	१	३	२४	२१	११

मकरांश में कन्या दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
कं.	०	११	१३	३	३२
क.	२	२	२०	२८	१४
सि.	०	६	१०	३५	१८
मि.	०	११	१३	३	३२
म.	०	५	२	२८	१४
कु.	०	५	२	२८	१४
मी.	१	०	२१	१०	३५
वृ.	०	८	२६	४६	२५
तु.	१	८	६	५२	५६

मकरांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
क.	५	२	७	४५	५३
सिं.	१	२	२४	४२	३१
मि.	२	२	२०	२८	१४
म.	०	११	२५	४५	५३
कु.	०	११	२५	४५	५३
मी.	२	५	१६	२४	४३
वृ.	१	८	२२	३५	१७
तु.	३	११	१३	३	३२
कं.	२	२	२०	२८	१४

मकरांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
सिं.	०	३	१५	५२	५६
मि.	०	६	१०	३५	१८
म.	०	२	२४	४२	२१
मी.	०	७	१	४५	५३
मी.	०	७	१	४५	५३
वृ.	०	४	२८	१४	७
तु.	०	११	८	४६	२५
क.	०	६	१०	३५	१८
कं.	१	२	२४	४२	२१

मकरांश में मिथुन दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मि.	०	११	१३	३	३२
म.	०	५	२	२८	१४
कु.	०	५	२	२८	१४
वृ.	०	८	२६	४६	२५
वृ.	०	८	२६	४६	२५
तु.	१	८	६	५२	५६
क.	०	११	१३	३	३२
कं.	२	२	२०	२८	१४
सिं.	०	६	१०	३५	१८

कुंभांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
वृ.	३	१	०	२१	४१
मे.	१	४	५	४७	०
मी.	१	११	३	५८	३३
कु.	०	६	७	३५	२५
म.	०	६	७	३५	२५
ध.	१	११	३	४८	३३
मे.	१	४	५	४७	०
वृ.	३	१	०	२१	४१
मि.	१	८	२४	३४	४२

कुंभांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
मे.	०	७	२	३१	४८
मी.	०	१०	३	३६	५२
कु.	०	४	१	२६	४५
म.	०	४	१	२६	४५
ध.	०	१०	३	३६	५२
मे.	०	७	२	३१	४८
वृ.	१	४	५	४७	०
मि.	०	६	३	१५	१०
वृ.	१	४	५	४७	०

कुंभांश में मी दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मी.	१	२	१३	४४	६
कु.	०	५	२३	२६	३८
मं.	०	५	२३	२६	३८
ध.	१	२	१३	४४	६
मे.	०	१०	३	३६	५२
वृ.	१	११	१	५	३३
मि.	१	१	०	१	४२
वृ.	१	११	३	५८	३३
मे.	०	१०	३३	३६	५२

कुंभांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
कु.	०	२	६	२३	५२
म.	०	२	६	२३	५२
ध.	०	५	२३	२६	३८
मे.	०	४	१	२६	४५
वृ.	०	६	७	३५	२५
मि.	०	५	६	८	४०
वृ.	०	६	७	३५	२५
मे.	०	४	१	२६	४५
मी.	०	५	२३	२६	३८

कुंभांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
म.	०	२	६	२३	५२
ध.	०	५	२३	२६	३८
मे.	०	४	१	२६	४५
वृ.	०	६	७	३५	२५
मि.	०	५	६	८	४०
वृ.	०	६	७	३५	२५
मे.	०	४	१	२६	४५
मी.	५	२३	२६	३८	कु.
कु.	०	२	६	२३	५२

कुंभांश में धन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
ध.	१	२	१३	४४	६
मे.	०	१०	३	३६	५२
वृ.	१	११	३	५८	३३
मि.	१	१	०	२१	४२
वृ.	१	११	३	५८	३३
म.	०	१०	३	३६	५२
मी.	१	२	१३	४४	६
कु.	०	५	२३	२६	३८
म.	०	५	२३	२६	३८

कुंभांश में मेष दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मे.	०	७	२	३१	४८
वृ.	१	४	५	४७	०
मि.	०	६	३	१६	१०
वृ.	१	४	५	४	७०
मे.	०	७	२	३१	४८
मी.	०	१०	३	३६	५२
कु.	०	४	१	२६	४८
म.	०	४	१	२६	४८
ध.	०	१०	३	३६	५२

कुंभांश में वृष दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
वृ.	३	१	०	२१	४१
मि.	१	८	२४	३४	४२
वृ.	३	१	०	२१	४१
मे.	१	४	५	४७	०
मी.	१	११	३	५८	३३
कु.	०	६	७	३५	२५
म.	०	६	७	३५	२५
ध.	१	११	३	५८	३३
मे.	१	४२	५	७	०

कुंभांश में मिथुन दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मि.	०	११	२१	१६	३२
म.	१	८	२४	३४	४२
कु.	०	६	३	१५	१०
मी.	१	१	०	२१	४२
वृ.	०	५	६	८	४०
तु.	०	५	६	८	४०
कं.	१	१	०	२१	४२
क.	०	६	३	१५	१०
सिं.	१	८	२३	३४	४२

मीनांश में कर्क दशा वर्ष २१ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
क.	५	१	१६	२	४७
सिं.	१	२	१६	३२	५
कं.	२	२	११	६	४७
तु.	३	१०	२६	३०	४२
वृ.	१	८	१५	२०	५६
ध.	२	५	६	४	११
म.	०	११	२१	३७	४१
कु.	०	११	२१	३७	४१
मी.	०	५	६	४	११

मीनांश में सिंह दशा वर्ष ५ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
सिं.	०	३	१४	१६	४
कं.	०	६	८	२२	२०
तु.	०	११	४	५३	१
वृ.	०	४	२६	३०	४२
ध.	०	६	२६	१८	६
म.	०	२	२३	४३	१५
कु.	०	२	२३	४३	१५
मी.	०	६	२६	८	६
क.	१	२	१६	३२	५

मीनांश में कन्या दशा वर्ष ६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
कं.	०	११	६	४	११
तु.	१	८	२	४७	२६
वृ.	०	८	२३	४३	१५
ध.	१	०	१६	४४	४०
म.	०	५	०	४१	५१
कु.	०	५	०	४१	५१
मी.	१	०	१६	४४	४०
क.	२	२	११	६	४६
सिं.	०	६	८	२२	२०

मीनांश में तुला दशा वर्ष १६ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
तु.	२	११	२१	३७	४१
वृ.	१	३	१८	५०	१४
ध.	०	१०	६	४६	२
म.	०	८	२७	५४	२६
कु.	०	८	२७	५४	२६
मी.	१	१०	६	४६	२
क.	३	१०	२६	३०	४२
सिं.	०	११	४	५३	१
मी.	१	८	२	४७	२६

मीनांश में वृश्चिक दशा वर्ष ७ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
वृ.	०	६	२५	६	५६
ध.	०	६	२३	१	२७
म.	०	३	२७	१२	३३
कु.	०	३	२७	१२	३३
मी.	०	६	२३	१	२४
क.	१	८	१५	२०	५६
सि.	०	४	२२	२०	४२
कं.	०	८	२३	५३	१५
तु.	१	३	१८	५०	१४

मीनांश में धन दशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
ध.	१	१	२८	३६	१६
म.	०	५	१७	२६	३०
कु.	०	५	१७	२६	३०
मी.	१	१	२८	३६	१६
क.	२	५	६	४	१३
सिं.	०	६	२६	१८	६
कं.	१	०	१६	४४	४०
तु.	१	१०	६	४६	२
वृ.	०	६	२३	१	२४

मीनांश में मकर दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
म.	०	२	६	५८	३७
कु.	०	२	६	५८	३७
मी.	०	५	१८	२६	३०
क.	०	१	२१	३७	४१
सि.	०	२	१३	४३	१५
कं.	०	५	०	४१	५१
तु.	०	८	२७	५४	२६
वृ.	०	३	२८	१२	३३
ध.	०	५	१७	२६	३०

मीनांश में कुंभ दशा वर्ष ४ में अन्तर्दशा

रा.	व.	दि.	मा.	घ.	प.
कु.	०	६	६	५८	३७
मी.	०	५	१७	२६	३०
क.	०	११	२०	३७	४१
सिं.	०	२	३	४३	१५
कं.	०	५	०	४१	५१
तु.	०	८	२७	५४	२६
वृ.	०	३	२७	१२	२३
ध.	०	५	१७	२६	३०
म.	०	२	६	५८	३७

मीनांश में मीनदशा वर्ष १० में अन्तर्दशा

रा.	व.	मा.	दि.	घ.	प.
मी.	१	१	२८	३६	१६
क.	२	५	६	४	१३
सि.	०	६	२६	१८	६
कं.	१	०	१६	४४	४०
तु.	१	१०	६	४६	२
वृ.	०	६	२३	१	२४
ध.	१	१	२८	३६	१६
म.	०	५	१७	२६	३०
कु.	०	५	१७	२६	३०

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रं ज्यौतिषाचार्य श्रीगणेशदत्तपाठककृतसटीकं सोदाहरणं समाप्तम्।

फिल्म प्रोसेस
श्री अन्नपूर्णा ब्लॉक वर्क्स, बाँस फाटक, वाराणसी–1
फोन : 352099

" स्थायी कारक चक्र "

